अनुक्रम

पहला प्रवचन

आस्था का दीप--सदगुरु की आंख में

नाव मिली केवट नहीं, कैसे उतरै पार।।
कैसे उतरै पार पथिक विश्वास न आवै।
लगै नहीं वैराग यार कैसे कै पावै।।
मन में धरै न ग्यान, नहीं सतसंगति रहनी।
बात करै नहिं कान, प्रीति बिन जैसी कहनी।।
छूटि डगमगी नाहिं, संत को वचन न मानै।
मूरख तजै विवेक, चतुराई अपनी आनै।।
पलटू सतगुरु सब्द का तनिक न करै विचार।
नाव मिली केवट नहीं, कैसे उतरै पार।। 1।।

साहिब वही फकीर है जो कोई पहुंचा होय।।
जो कोई पहुंचा होय, नूर का छत्र विराजै।
सबर-तखत पर बैठि, तूर अठपहरा बाजै।।
तंबू है असमान, जमीं का फरस बिछाया।
छिमा किया छिड़काव, खुशी का मुस्क लगाया।।
नाम खजाना भरा, जिकिर का नेजा चलता।
साहिब चौकीदार, देखि इबलीसहुं डरता।।
पलटू दुनिया दीन में, उनसे बड़ा न कोय।
साहिब वही फकीर है, जो कोई पहुंचा होय।। 2।।

लहना है सतनाम का, जो चाहै सो लेय।।
जो चाहै सो लेय, जायगी लूट ओराई।
तुम का लुटिहौ यार, गांव जब दहिहै लाई।।
ताकै कहा गंवार, मोठभर बांध सिताबी।
लूट में देरी करै, ताहि की होय खराबी।।
बहुरि न ऐसा दांव, नहीं फिर मानुष होना।
क्या ताकै तू ठाढ़, हाथ से जाता सोना।।
पलटू मैं ऊरिन भया, मोर दोस जिन देय।
लहना है सतनाम का, जो चाहै सो लेय।। 3।।

अजहूं चेत गंवार! नासमझ! अब भी चेत! ऐसे भी बहुत देर हो गई। जितनी न होनी थी, ऐसे भी उतनी देर हो गई। फिर भी, सुबह का भूला सांझ घर आ जाए तो भूला नहीं।

अजहूं चेत गंवार! अब भी जाग! अब भी होश को सम्हाल!

ये प्यारे पद एक अपूर्व संत के हैं। डुबकी मारी तो बहुत हीरे तुम खोज पाओगे। पलटूदास के संबंध में बहुत ज्यादा ज्ञात नहीं है। संत तो पक्षियों जैसे होते हैं। आकाश पर उड़ते जरूर हैं, लेकिन पद-चिह्न नहीं छोड़ जाते। संतों के संबंध में बहुत कुछ ज्ञात नहीं है। संत का होना ही अज्ञात होना है। अनाम। संत का जीवन अंतर्जीवन है। बाहर के जीवन के तो परिणाम होते हैं इतिहास पर, इतिवृत्त बनता है। घटनाएं घटती हैं बाहर के जीवन की। भीतर के जीवन की तो कहीं कोई रेख भी नहीं पड़ती। भीतर के जीवन की तो समय की रेत पर कोई अंकन नहीं होता। भीतर का जीवन तो शाश्वत, सनातन, समयातीत जीवन है। जो भीतर जीते हैं उन्हें तो वे ही पहचान पाएंगे जो भीतर जाएंगे। इसलिए सिकंदरों, हिटलरों, चंगीज और नादिरशाह, इनका तो पूरा इतिवृत्त मिल जाएगा, इनका तो पूरा इतिहास मिल जाएगा। इनके भीतर का तो कोई जीवन होता नहीं, बाहर ही बाहर का जीवन होता है; सभी को दिखाई पड़ता है।

राजनीतिज्ञ का जीवन बाहर का जीवन होता है; धार्मिक का जीवन भीतर का जीवन होता है। उतनी गहरी आंखें तो बहुत कम लोगों के पास होती हैं कि उसे देखें; वह तो अदृश्य और सूक्ष्म है।

अगर बाहर का हम हिसाब रखें तो संतों ने कुछ भी नहीं किया। तो, तो सारा काम असंतों ने ही किया है दुनिया में। असल में कृत्य ही असंत से निकलता है। संत के पास तो कोई कृत्य नहीं होता। संत का तो कर्ता ही नहीं होता तो कृत्य कैसे होगा? संत तो परमात्मा में जीता है। संत तो अपने को मिटा कर जीता है--आपा मेट कर जीता है। संत को पता ही नहीं होता कि उसने कुछ किया, कि उससे कुछ हुआ, कि उससे कुछ हो सकता है। संत होता ही नहीं। तो न तो संत के कृत्य की कोई छाया पड़ती है और न ही संत के कर्ता का कोई भाव कहीं निशान छोड़ जाता है।

पलटूदास बिलकुल ही अज्ञात संत हैं। इनके संबंध में बड़ी थोड़ी सी बातें ज्ञात हैं--उंगलियों पर गिनी जा सकें। एक--उनके ही वचनों से पता चलता है गुरु के नाम का। गोविंद उनके गुरु थे। गोविंद संत भीखा के शिष्य थे, एक परम संत के शिष्य थे। और गोविंद उनके गुरु थे।

संतों ने अपने बाबत चाहे कुछ भी न कहा हो, लेकिन गुरु का स्मरण किया है, जरूर किया है। अपने को तो मिटा डाला है, लेकिन गुरु में हो गए। अपने को पोंछ डाला, सब तरह से अपने को समाप्त कर लिया। उसी समाप्ति में गुरु से तो संबंध जुड़ता है। और परमात्मा की याद की है, लेकिन गुरु की याद को नहीं भूले हैं। क्योंकि परमात्मा से जिसने जुड़ाया उसे कैसे भूल जाएंगे!

... तो गोविंद उनके गुरु थे, यह बात ज्ञात है। दूसरी बात, जो उनके पदों से ज्ञात होती है, वह यह कि वे वणिक थे, वैश्य थे, बनिया थे। वह भी इसलिए ज्ञात होती है कि वैश्य की भाषा का उपयोग किया है। जैसे कबीर जुलाहे थे तो कबीर के पदों में जुलाहे की भाषा का उपयोग है। स्वाभाविक। झीनी-झीनी बीनी रे चदरिया! अब यह कोई दूसरा नहीं लिखेगा, जिसने चदरिया कभी बीनी ही न हो। यह दूसरा नहीं लिख सकता। गोरा कुम्हार लिखेगा तो वह मटके बनाने की बात लिखता है। ऐसे इनके पदों में इनके वणिक होने का प्रमाण मिलता है। बड़ी मस्ती की बात कही है। कहा है कि मैं राम का मोदी--राम का बनिया हूं; राम को बेचता हूं! छोटी-मोटी दुकान नहीं करता।

सुनो ये अदभुत वचन--

कौन करै बनियाई, अब मोरे कौन करै बनियाई।।

त्रिकुटी में है भरती मेरी, सुखमन में है गादी।

दसवें द्वारे कोठी मेरी, बैठा पुरुष अनादी।।

इंगला-पिंगला पलरा दूनौं, लागी सुरति की जोति।

सत्त सबद की डांडी पकरौं, तौलौं भर-भर मोती।।

चांद-सुरज दोउ करैं रखवारी, लगी सत्त की ढेरी।

तुरिया चढ़िके बेचन लागा, ऐसी साहिबी मेरी।।

सतगुरु साहिब किहा सिपारस, मिली राम मुदियाई।

पलटू के घर नौबत बाजत, निति उठ होति सबाई।।

"सतगुरु साहिब किहा सिपारस... "।

तो गुरु ने सिफारिश कर दी परमात्मा से, लिख दी चिट्ठी मेरे नाम। उनकी बिना सिफारिश के तो कुछ होता नहीं। अपने से तो मैं पहुंच नहीं सकता था। वह तो उनकी सिफारिश से पहुंच गया। नहीं तो कहां मुझे पता परमात्मा का!

"सतगुरु साहिब किहा सिपारस, मिली राम मुदियाई।"

खूब सिफारिश की, तब से राम का मोदी हो गया, राम का बनिया हो गया, तब से राम को ही बेचता हूं।

और ये सारे शब्द...

"तुरिया चढ़िके बेचन लागा"...

चार अवस्थाएं हैं चेतना की : जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरिया। कहते हैं पलटू कि तीनों को पार कर गया।

तुरिया चढ़िके बेचन लागा, ऐसी साहिबी मेरी।

अब मैं तुरिया ही बेचता हूं, अब तो मेरे पास कुछ है भी नहीं। मेरी मस्ती देखो! मेरी साहबी देखो। मेरा धन देखो--मैं तुरिया बेचता हूं!

"चांद-सुरज दोउ करैं रखवारी, लगी सत्त की ढेरी।।

सत्त सबद की डांडी पकरौं, तौलौं भर-भर मोती।।"

अब और तो कुछ बचा नहीं, मोती ही लुटा रहा हूं।

मगर यह भाषा वैश्य की है।

"कौन करै बनियाई, अब मोरे कौन करै बनियाई!

त्रिकुटी में है भरती मेरी, सुखमन में है गादी।"

अति महासूक्ष्म में गादी जमा कर बैठ गया हूं। और त्रिकुटी में मेरा धन है अब। तीसरा नेत्र खुला है, वहां मेरी असली संपदा है।

"दसवें द्वारे कोठी मेरी... ।"

नौ द्वार से हम परिचित हैं। ये जो नौ छेद हैं शरीर में, ये नौ द्वार कहते हैं संत--आंख, कान, नाक... ये जो नौ छेद हैं शरीर में। एक दसवां छेद भी है, उसमें सरक गए तो परमात्मा में पहुंच गए। वह दिखाई नहीं पड़ता। वह तुम्हारे अंतर्तम में है। वह परम छिद्र है। उसको दसवां द्वार कहा है।

"दसवें द्वारे कोठी मेरी, बैठा पुरुष अनादी।

इंगला-पिंगला पलरा दूनौं, लागी सुरत की ज्योति।।"

इंगला-पिंगला को कहते हैं दो पलड़े हैं मेरे तराजू के।

"सत्त सबद की डांडी पकरौं"... और उन दोनों के बीच में सत्य की डांडी है, सत्य का संतुलन है।

यह जो भाषा है, यह वणिक की है।

इस संबंध में एक बात ख्याल रख लेना, जो तुम्हें याद दिला देनी जरूरी है--कि तुम कहीं भी हो वहीं से परमात्मा का रास्ता है। अगर बनिये हो तो वहां से भी रास्ता हैः तो राम के मोदी हो जाओ। कोई ऐसा नहीं है कि ब्राह्मण का ही ब्रह्म पर दावा है। कुछ ऐसा भी नहीं है कि क्षत्रियों का ही दावा है। ब्राह्मण भी सत्य को उपलब्ध हुए हैं, क्षत्रिय भी, वणिक भी, शूद्र भी। प्रत्येक जीवन के ढंग की अपनी सुविधा है, अपनी असुविधा है।

ब्राह्मण को एक सुविधा... और ध्यान रखना, जब मैं इन शब्दों का उपयोग कर रहा हूं तो मेरा मतलब जन्मजात नहीं है। जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता और जन्म से कोई शूद्र नहीं होता। जन्म से इसका क्या संबंध! लेकिन वृत्ति से ब्राह्मण होते हैं, वृत्ति से शूद्र होते हैं, वृत्ति से क्षत्रिय होते हैं। वृत्ति की बात है। यह व्यक्तित्व की बात है। ये जो चार वर्ण हैं, ये जो चार रंग हैं... वर्ण का अर्थ होता है रंग।

थोड़ा सोचना। ये चार रंग के लोग हैं दुनिया में। चार ढंग के लोग हैं दुनिया में। और यह चार ढंग की जो व्याख्या है, पांच हजार साल हो गए, हिंदुओं ने जब तय किया था कि चार रंग के लोग हैं, चार ढंग के लोग हैं--इसे आगे नहीं बढ़ाया जा सकता। अभी भी कार्ल गुस्ताव जुंग ने जो फिर से विवेचन किया मनुष्य के संबंध में तो चार ढंग फिर आ गए। नाम कुछ भी हों, लेकिन चार कोटियों में बंटे हुए लोग हैं। इससे बचा नहीं जा सकता।

कुछ लोग हैं जो बुद्धि में जीते हैं, वे ब्राह्मण हैं। कुछ लोग हैं जो भुजाओं में जीते हैं। कुछ लोग हैं जिनकी सारी खोज विचार की है, वे ब्राह्मण हैं। कुछ लोग हैं जिनकी खोज शक्ति की है, शक्ति के पूजक--वे क्षत्रिय। कुछ लोग हैं जिनकी खोज महत्वाकांक्षा, प्रतिष्ठा, धन, इस बात की है--वे लोग वैश्य। कुछ लोग हैं जिनकी कोई खोज ही नहीं है; जो ऐसे ही जीते हैं, जैसे कि एक लकड़ी का टुकड़ा नदी में बहता चला जाए--न कहीं जाना, न कहीं पहुंचना, न कोई मंजिल है, न कोई गंतव्य है। न कोई बड़ी भविष्य की महत्वाकांक्षा है--ऐसे व्यक्ति शूद्र। वे कुछ भी छोटा-मोटा करके गुजार लेते हैं। जिंदगी गुजारनी है, जिंदगी से कुछ बनाना नहीं है।

ये चार वृत्तियां हैं। प्रत्येक वृत्ति का लाभ है और प्रत्येक वृत्ति की हानि भी है। जैसे कि जो आदमी बुद्धि में जीता है, अगर उसका ठीक उपयोग कर ले तो बुद्धि ही निखरते-निखरते चैतन्य बन जाती है, होश, जागरूकता, सुरति बन जाती है। तो ब्राह्मण को एक लाभ है कि वह अपनी बुद्धि को किसी भी दूसरे वर्ण की बजाय--क्षत्रिय, शूद्र, वैश्य की बजाय--ज्यादा आसानी से ध्यान में लगा सकता है। यह तो लाभ है। लेकिन खतरा भी है। खतरा यह है कि इतनी ही आसानी से वह अपनी बुद्धि को पांडित्य इकट्ठा करने में भी लगा सकता है।

प्रत्येक लाभ अपने साथ छाया की तरह अपनी हानि लाता है। तो जितनी सुविधा है ब्राह्मण को उतनी ही असुविधा भी है। सुविधा यह है, अगर ठीक मार्ग पकड़ ले--स्मृति को भरने में न लग जाए, बोध को जगाने में लग जाए--तो, तो बुद्ध हो जाए। लेकिन अगर स्मृति को भरने में लग गया, जिसकी बहुत संभावना है, क्योंकि स्मृति को भरना ऐसे है जैसे कोई ढलान की तरफ चले, उसमें मेहनत नहीं है। और बोध को जगाना ऐसे है जैसे कोई पहाड़ की यात्रा करे; उसमें बड़ा श्रम है। तो बहुत संभावनाएं हैं। निन्यानवे ब्राह्मण वृत्ति के लोग, सौ में से निन्यानवे स्मृति को भरने में लग जाएंगे, पंडित हो जाएंगे। इसलिए ब्राह्मण पंडित होकर समाप्त हो जाते हैं। कभी-कभी कोई एकाध, सौ में एकाध प्रज्ञावान होता है।

ऐसी ही क्षत्रिय की वृत्ति है। क्षत्रिय की वृत्ति के आदमी को एक लाभ है। उसके पास संकल्प का बल है; जूझ सकता है; जुझारू है; लड़ सकता है। दूसरे से लड़ना हो तो दूसरे से भी लड़ सकता है और अपने से लड़ना हो तो अपने से भी लड़ सकता है। लड़ने की उसके पास कला है। लड़ेगा तो फिर वह संकोच नहीं करता। जान लेने में भी उतना ही कुशल है, उतना ही देने की तैयारी भी रखता है। जिसको लेनी हो जान उसे देने की तैयारी भी रखनी पड़ती है।

तो अगर क्षत्रिय को ठीक राह मिल जाए तो वह तीर्थंकर हो जाएगा। जैनों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय हैं। हिंदुओं के सारे अवतार क्षत्रिय हैं। बुद्ध क्षत्रिय हैं। जुझारू लोग! तलवार दूसरे पर चलती रही--चलते-चलते एक दिन समझ आ गई, तो अपने पर चलने लगी। जिस दिन अपने पर चलने लगी, उस दिन अहंकार काट कर गिरा दिया। काटने की कला तो आती ही थी।

ब्राह्मण हैं--याज्ञवल्क्य और अष्टावक्र और शंकराचार्य। ठीक चले कोई तो शंकर हो जाए; चूके तो पंडित हो जाए।

ऐसी ही वैश्य की संभावनाएं हैं। धन की उसे पकड़ है। सौ में निन्यानवे मौके पर तो वह धन को ही इकट्ठा करेगा और धन को ही इकट्ठा करके मर जाएगा और लोग कहते हैं; मर कर फिर सांप हो जाएगा और धन पर कुंडली मार कर बैठ जाएगा। मर कर भी वह धन की ही रक्षा करेगा। लेकिन, अगर परम धन की याद आ जाए वैश्य को--तो धन का खोजी है, धन पर सब लगा देता है, दांव सब लगा देता है--एक दफा परम धन की उसे याद आ जाए, कि उसे यह समझ में आ जाए कि धन मेरे भीतर है, बाहर नहीं, तो फिर वैश्य जितनी सुविधा से भीतर जा सकता है उतनी सुविधा से कौन जाएगा।

ऐसी ही बात शूद्र की भी है। सौ में निन्यानवे मौके पर शूद्र तो बस ऐसे ही इधर-उधर छोटा-मोटा काम करके जिंदगी समाप्त कर लेगा। खा-पी लेगा, बस ओढ़ना-बिछौना हो जाए, घर पर छप्पर हो जाए, खाना-पीना हो जाए, फिर उसकी ज्यादा फिकर नहीं है। साधारणतः खाओ-पीओ मौज करो, न कोई जिंदगी में पाना है कुछ, न कहीं जाना है कुछ--जीवन में कोई अर्थ की तलाश नहीं है। ऐसे समाप्त हो जाएंगे सौ में निन्यानवे। लेकिन अगर ठीक दिशा लग जाए तो सौ में एक लाओत्सु बन सकता है। वह सौ में एक जो है, जो अगर इस बात को समझ ले कि जीवन में सच में ही कोई आकांक्षा नहीं है, कुछ भी पाना नहीं है, परम विश्राम में बैठ जाए--तो शूद्र जितनी आसानी से परम विश्राम में बैठ सकता है उतना कोई नहीं बैठ सकता।

क्षत्रिय के भीतर कुछ न कुछ चलता ही रहता है। ब्राह्मण के सिर में कुछ न कुछ चलता रहता है। बनिये के हृदय में सुगबुग ही लगी रहती है : धन, धन, पद-प्रतिष्ठा! यहां भी मिले, वहां भी मिले, परलोक में भी मिले! वह इंतजाम ही करता रहता है। शूद्र को एक लाभ है। उसको बहुत फिकर नहीं है--न धन की न पद की, न शक्ति की, न ज्ञान की। चूंकि यह कोई फिकर नहीं है, उसकी वासना न्यून मात्र है, अति न्यून है। गिराने में देर न लगेगी। तो शूद्र जैसे गोरा या रैदास, परमज्ञान को उपलब्ध हुए।

तुम जहां भी हो, जो भी हो, उससे कभी यह चिंता मत लेना कि तुम जहां हो वहां से परमात्मा नहीं पाया जा सकता। सब जगह से, सौ में से एक व्यक्ति परमात्मा को पाता है। तुम वह एक व्यक्ति बन जाओ। तुम जहां हो, वहीं से। निन्यानवे तो भटक जाते हैं, तुम उस निन्यानवे भटकाव से बचना।

तीसरी बात पता चलती है पलटू के वचनों से कि दो भाई थे। वह दोनों पलट गए। बाहर के धन की फिकर छोड़ दी और भीतर का धन खोजने लगे--खोजने नहीं लगे, खोज ही लिया।

बाहर तो धन खोज कर भी कहां कौन खोज पाता है! बाहर धन है ही नहीं जो खोज सको। बाहर तो धन का भुलावा है, छलावा है, छल है। मृग-मरीचिका है, दिखाई पड़ता है। दूर क्षितिज दिखाई पड़ता है मिलता जमीन से; जैसे-जैसे पास पहुंचते हो, क्षितिज दूर हटता जाता है। कभी तुम ऐसी जगह नहीं पहुंच पाओगे जहां क्षितिज वस्तुतः जमीन से मिलता हो। ऐसे ही कभी भी वासना तृप्ति से नहीं मिलती। वासना क्षितिज की भांति है।

दोनों भाई बदल गए। बदलने के कारण गुरु ने दोनों को पलटू नाम दे दिया। एक भाई को कहा पलटूप्रसाद और एक भाई को कहा पलटूदास। यह शब्द बड़ा प्यारा दिया गुरु ने : "पलटू"! ईसाई जिसको कनवर्सन कहते हैं। पलट गए! जिसको वैज्ञानिक एक सौ अस्सी डिग्री का रूपांतरण कहते हैं। एकदम पलट गए। कहीं जाते थे और ठीक उलटे चल पड़े। और ऐसे पलटे कि क्षण में पलट गए। देर-दार न की। सोच-विचार न किया। कहां बाजार में गादी लगा कर बैठे थे और कहां सूक्ष्म में गादी लगा दी। कहां तौलते थे--अनाज तौलते होंगे, साग-सब्जी तौलते होंगे, कुछ तौलते होंगे--और कहां सत्त शब्द की ढेरी से तौलने लगे! और कहां साधारण चीजें बेचते रहे होंगे--और तुरिया बेचने लगे; समाधि बेचने लगे! ऐसा रूपांतरण था कि गुरु ने कहा कि तुम बिलकुल ही पलट गए! ऐसा मुश्किल से होता है। यह क्रांति थी।

पलटू नाम का अर्थ हुआ क्रांति। एक बड़ी अपूर्व क्रांति हुई। यह नाम भी बड़ा प्यारा है। असली नाम का तो कुछ पता नहीं है। असली नाम यानी मां-बाप ने जो दिया था, उस नाम का तो कुछ पता नहीं है। गुरु ने जो

नाम दिया था, वह यह था। और गुरु ने खूब प्यारा नाम दिया! बड़ा सांकेतिक नाम दिया। दो-दो चार-चार पैसे के लिए दुकान करते रहे होंगे और जब पलट गए तो ऐसी क्रांति घटी!

पंडित-पुरोहित तो बहुत नाराज हुए। पंडित-पुरोहित सदा ही नाराज रहे हैं इस तरह पलट जाने वाले लोगों से। क्योंकि इस तरह पलट जाने वाले लोग उनके धंधे पर ही चोट करने लगते हैं। अब जब तुरिया बेचता हो बाजार में, समाधि बेचने लगे, वे पंडित-पुरोहित तो उससे परेशान हो जाएंगे; उनके पास तो समाधि का धन नहीं है बेचने को। वे तो कोरे, उधार, बासे शब्द बेच रहे हैं। और यहां कोई ताजा झरना लेकर आ गया है, जिसके प्राणों में नए फूल खिल रहे हैं। और ताजे भीतर खिलते कमल बेचने लगा है। तो तुम्हारे बासे कमल और सदियों से सड़े कमल कौन खरीदेगा! तो मंदिर-मस्जिद सदा नाराज हो जाते हैं संत पर।

पंडित-पुरोहित तो बहुत नाराज थे। लेकिन जिनके पास आंखें थीं, उनकी भीड़ आने लगी। दूर-दूर प्रांतों से लोग आने लगे।

कहा है पलटू ने :

"लै लै भेंट अमीर, नाम का तेज विराजा।

लै लै भेंट अमीर, नाम का तेज विराजा।

सब कोई रगरे नाक, आइकै परजा राजा।।"

पलटू ने कहा : यह भी खूब हुआ। मैं साधारण दुकानदार, जरा राम के नाम से क्या जुड़ गया कि असाधारण हो गया! मैं दो कौड़ी का आदमी, राम-नाम से क्या भर गया कि बहुमूल्य रत्न हो गया!

"लै लै भेंट अमीर, नाम का तेज विराजा!"

बड़े-बड़े धनी कीमती बहुमूल्य भेंटें लेकर मेरे द्वार पर आने लगे! नाम का तेज विराजा!

लेकिन पलटू यह नहीं कहते कि मेरी कोई खूबी है--उस प्रभु का तेज, उस प्रभु की चमक मुझ में आ गई, वह मेरी आंखों से झांक रहा है! उसकी ही खूबी है!

"सब कोई रगरे नाक, आइकै परजा-राजा!"

और प्रजा से भी लोग आने लगे और बड़े राजा और सम्राट भी आने लगे।

"बिन लसकर बिन फौज, मुलुक में फिरी दुहाई।"

न कोई फौज-फांटा है अपने पास--पलटू कहते हैं--न अपने पास कोई और उपाय है।

"बिन लसकर बिन फौज, मुलुक में फिरी दुहाई।"

लेकिन सारे देश में हवा गरम हो गई, सारे देश में खबरें पहुंचने लगीं। यह जो सुगंध पैदा हुई, इस सुगंध के धागे दूर-दूर तक चले गए। और जब यह सुगंध पैदा होती है तो यह सब दीवालों को पार करके निकल जाती है, सब सीमाओं को पार करके निकल जाती है। दूर-दूर अज्ञात स्थानों से लोग चल कर आने लगते हैं। कोई अज्ञात शक्ति उन्हें बुलाने लगती है, पुकारने लगती है।

"जन महिमा सतनाम, आपुमें सरस बड़ाई।"

तो पलटू कहते हैं, खूब रही यह बात! "जन महिमा सतनाम"... देखो यह सतनाम की महिमा, पलटू जैसा गरीब बनिया राम का मोदी हो गया।

"सत्तनाम के लिहे से पलटू भया गंभीर।

हाथ जोरि आगे मिलें, लै लै भेंट अमीर।।"

जिनके दर्शन होने मुश्किल थे, जिनके द्वार पर पलटू जाते तो द्वार न खुलते... "सत्तनाम के लिहे से पलटू भया गंभीर!"

और ऐसी गहराई आ गई पलटू में सिर्फ सतनाम के लेने से, सिर्फ ठीक-ठीक स्मरण कर लेने से प्रभु का! पारस को छू लिया, लोहा सोना हो गया। जिनके द्वार-दरवाजे बंद थे, वे बड़ी-बड़ी भेंटें लेकर द्वार पर आने लगे।

उनके भाई पलटूप्रसाद ने पलटू के संबंध में कुछ वचन लिखे हैं :

"नंगा जलालपुर जन्म भयो है, बसै अवध के खोर।

कहैं पलटूप्रसाद हो, भयो जगत में सोर।।"

गरीब गांव में पैदा हुए थे, नाम ही था : नंगा जलालपुर। तुम सोच ही सकते हो : नंगा जलालपुर! गरीबों का गांव होगा, बिलकुल नंगों का गांव होगा। "नंगा जलालपुर जन्म भयो है"... अत्यंत गरीब घर में पैदा हुए... "बसै अवध के खोर"... फिर जाकर अयोध्या में बस गए। यह बड़ा प्रतीकात्मक है। पैदा हुए एक गरीब से गांव में, फिर राम की नगरी अयोध्या में बस गए। गृहस्थ पैदा हुए थे, फिर संन्यस्त हो गए। धन, पद, मद में डूबे थे--फिर एक दिन राम की महिमा में उतर गए।

"नंगा जलालपुर जन्म भयो है, बसै अवध के खोर।

कहैं पलटूप्रसाद हो, भयो जगत में सोर।।

चार बरन को मेटिके भक्ति चलाई मूल।"

सब मिटा डाला--ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, चारों वर्ण मिटा दिए। भक्ति में सब मिट जाते हैं। संन्यासी का कोई वर्ण नहीं होता। संन्यासी रंगों के पार हो जाता है, ढंगों के पार हो जाता है। संन्यासी परमात्मा का हो जाता है। परमात्मा का तो कोई वर्ण नहीं, इसलिए संन्यासी का भी कोई वर्ण नहीं होता। गृहस्थ के वर्ण होते हैं, क्योंकि गृहस्थ के ढंग होते हैं। गृहस्थ संसार में होता है।

"चार बरन को मेटिके भक्ति चलाई मूल।

गुरु गोविंद के बाग में पलटू फूले फूल।।"

वह जो गोविंद का बाग था... गुरु गोविंद के बाग में पलटू फूले फूल। और यह पलटू नाम का फूल गुरु के बगीचे में खिला।

"सहज जलालपुर मूंड मुंडाया, अवध तुडी कर धनियां।

सहज करैं व्योपार घटहि मैं पलटू निर्गुन बनियां।।"

"सहज जलालपुर मूंड मुंडाया"... । "सहज" शब्द पर ध्यान देना। संतों की सारी प्रक्रिया सहज है; चेष्टा से नहीं, बोध से है, समझ से है। जिस दिन बात समझ में आ गई, उस दिन सिर मुंडा लिया, संन्यासी हो गए। ऐसे पलटे, क्षण में पलटे। सहज जलालपुर मूंड मुंडाया... । इसमें कोई आयोजना नहीं थी, कोई बहुत दिन सोच-विचार नहीं किया था। कुछ हिसाब-किताब नहीं बांधा था कि पुण्य-लाभ होगा, स्वर्ग जाएंगे, परलोक मिलेगा, कुछ नहीं था। बात दिखाई पड़ गई कि इस संसार में कुछ भी नहीं है। प्रतीक-रूप सिर मुंडा लिया। तो जलालपुर में ही सिर मुंडा लिया। बाजार में ही सिर मुंडाना पड़ता है।

"अवध तुडी कर धनियां"।

फिर अवध पहुंच कर वह जो जनेऊ पहने हुए थे, करधनियां, वह भी तोड़ कर गिरा दिया। जब राम के नगर पहुंच गए, वहां कैसा वर्ण! फिर कैसा व्रत! फिर कौन हिंदू कौन मुसलमान! फिर कैसा जनेऊ! फिर सारे नियम तोड़ कर गिरा दिए। नियम मात्र से मुक्त हो गए। अव्रती हो गए।

"अवध तुडी करधनियां"... । और ध्यान रखना, राम की अयोध्या में उन्हीं का प्रवेश है जो न हिंदू हों न मुसलमान हों, न ब्राह्मण हों न शूद्र हों। उन्हीं का प्रवेश है जो वर्ण को छोड़ दें। उन्हीं का प्रवेश है जो सारे नियम इत्यादि, जो समाज और जीवन के लिए जरूरी हैं, उनके पार हो जाएं। अतिक्रमण करें, वे ही अयोध्या में प्रविष्ट होते हैं।

"सहज करैं व्योपार घटहि मैं पलटू निर्गुन बनियां।"

अब तो बाहर का कोई व्यापार रहा नहीं, अब तो भीतर का ही व्यापार बचा। सहज करैं व्योपार घटहि मैं-- . . अब तो भीतर ही भीतर चल रहा है सब--लेना भी, देना भी। ग्राहक भी भीतर, दुकानदार भी भीतर।

सहज करैं व्योपार घटहि मैं पलटू निर्गुन बनियां।

थे तो बनिया, अब निर्गुण हो गए। अब निराकार हो गए।

बस इससे ज्यादा पलटूदास के संबंध में और कुछ ज्ञात नहीं है।

अंतिम बात, फिर हम उनके पदों में उतरें--

शब्द उनके, पलटू के, ठीक वैसे ही आग्नेय हैं, अग्निमय हैं जैसे कबीर के। बड़े ऊंचे घाट के शब्द हैं और बड़े चोट रखने वाले शब्द हैं। ठीक अगर कबीर के साथ किसी दूसरे को हम खड़ा कर सकें, तो पलटू। इसलिए, संतों में यह बात कही जाती रही कि पलटू दूसरे कबीर हैं। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। तुम जब उनके पदों में उतरोगे, तुम भी पाओगे। बड़ी ऊंची बात है और बड़ी सचोट है। हृदय में उतर जाए, तुम्हारे पोर-पोर में भर जाए--ऐसी बात है। रसपूर्ण भी उतनी ही जितनी सचोट। मस्ती भी उतनी ही, जैसी कबीर की। एक-एक शब्द से खूब शराब झरती है! डुबकी लेना।

"नाव मिली केवट नहीं, कैसे उतरै पार।।

कैसे उतरै पार पथिक विश्वास न आवै।

लगै नहीं वैराग यार कैसे कै पावै।।

मन में धरै न ग्यान, नहीं सतसंगति रहनी।

बात करै नहिं कान, प्रीति बिन जैसी कहनी।।

छूटि डगमगि नाहिं, संत को वचन न मानै।

मूरख तजै विवेक, चतुराई अपनी आनै।।

पलटू सतगुरु सब्द का, तनिक न करै विचार।

नाव मिली केवट नहीं, कैसे उतरै पार।।"

समझो! नाव तो मिल सकती है। नाव तो मुर्दा है। लेकिन जब तक माझी न मिले, नाव से काम न होगा। तुम्हें नदी पार करनी है, नाव तो मिल सकती है, क्योंकि माझी भी नाव को तो किनारे पर ही बांध कर घर चला जाता है रात। आधी रात भी मिल सकती है। मगर तुम नाव से तो नदी पार न कर सकोगे। माझी चाहिए। केवट चाहिए।

शास्त्र नाव जैसे हैं, मुर्दा। सदगुरु के बिना उनका अर्थ प्रकट नहीं होता। शास्त्र तो मिल जाते हैं, रखे हैं। सदगुरु चले जाते हैं, शास्त्र तो रह जाते हैं। जैसे नाव बंधी रह जाती है किनारे पर और माझी घर चला गया कि सो गया। तो नाव तो कभी भी मिल सकती है। नाव की तो कोई अड़चन नहीं है।

पलटू कहते हैंः नाव मिली केवट नहीं, कैसे उतरै पार।

पार उतरना कैसे होगा? कोई नक्शा पास नहीं, कोई मार्गदर्शक पास नहीं। कोई दिशा का बोध नहीं। कौन ले जाएगा? कौन साथ देगा? कौन सहारा देगा? कोई चाहिए जीवंत। शास्त्र अपने आप में किसी को भी ले जा नहीं सकता--न गीता, न कुरान, न वेद। क्योंकि वेद का तुम जो अर्थ करोगे वह भी तुम्हारा होगा। नाव कभी चलाई न हो और तुम नाव चलाओगे तो डूबने की ही ज्यादा संभावना है बजाय उबर जाने के। भीतर का अनुभव न हुआ हो तो बाहर के शब्दों से तुम किसी भी तरह भीतर की प्रतीति न कर सकोगे। शास्त्र में सब रखा है, लेकिन कौन जताएगा, कौन दिखाएगा, कौन जगाएगा, कौन चेताएगा अर्थ को?

शास्त्र में शब्द हैं, अर्थ तो भीतर से उमगते हैं, शास्त्र में तो केवल प्रतीक हैं, चिह्न हैं। लेकिन उन चिह्नों को कोई खोलने वाला चाहिए।

इसलिए सारे संतों ने सदगुरु पर बहुत जोर दिया है--शास्त्र से ज्यादा जोर दिया है। सदगुरु मिल गया तो शास्त्र मिल गया। नाव न भी हो तो भी अगर माझी मिल जाए तो कोई उपाय खोज लेगा--तुम्हें नदी के पार ले जाने का; शायद कंधे पर बिठा कर ले जाए। या हो सकता है तैरना सिखा दे, तो तुम खुद ही तैर जाओ। या हो सकता है, लक्कड़ को बांध कर छोटी-मोटी नाव बना ले। लेकिन कोई चाहिए जो दूसरे किनारे से परिचित हो।

सदगुरु का अर्थ होता हैः इस किनारे, उस किनारे को जानने वाला मिल जाए। इस जगत में उस जगत की पहचान वाला मिल जाए। खड़ा तो हो बाजार में, लेकिन अनुभव उसे परमात्मा का हो। खड़ा तो हो तुम्हारे साथ तुम्हारे जैसा ही, लेकिन कुछ हो उसके भीतर जो तुम जैसा न हो; जिसने जीवन की सारी गहराइयां देखी हों, पहचानी हों।

कबीर ने कहा : कबीरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ।

बाजार में खड़ा हूं, लिए लुकाठी हाथ। लट्ठ लिए खड़ा हूं। हो जिसकी हिम्मत आ जाए, तो उसका सिर गिरा दूं। हो जिसकी हिम्मत तो चल पड़े साथ। घर जो बारे आपना, चले हमारे साथ! जो तुमने घर समझ रखा है, जो भी तुमने घर समझ रखा है, जहां-जहां तुमने मोह बना रखा है और जहां-जहां तुमने अपने राग जोड़ रखे हैं और चाहत के सपने बसा रखे हैं--उन सबको जलाने को जो तैयार हो वह हमारे साथ चले।

कबीर कहते हैं : बाजार में आकर खड़ा हो गया हूं। तैयारी पूरी है उस तरफ के चलने की। जिनकी हिम्मत हो वे मेरे पीछे आ जाएं।

कोई चाहिए जो ठीक संसार में खड़ा हो और संसार जिसके भीतर न हो। उसी को सदगुरु कहते हैं।

"नाव मिली केवट नहीं, कैसे उतरै पार।।

कैसे उतरै पार, पथिक विश्वास न आवै।"

आस्था कैसे आए शास्त्र पर? कोई समझाने वाला नहीं। शास्त्र में कितना ही टटोलो, कागज और स्याही के अतिरिक्त कुछ मिलता नहीं। कोई हृदय की धड़कन नहीं है। कैसे आवे विश्वास? शास्त्र जिसने लिखा है, उसने सच को जान कर लिखा होगा कि कल्पनाओं का जाल रचा है--कैसे आवे विश्वास?

सदगुरु को तो तुम भीतर झांक सकते हो। सदगुरु के तो पास बैठ सकते हो। सदगुरु के साथ तो अंतर का संबंध जोड़ सकते हो। सदगुरु के साथ तो धीरे-धीरे-धीरे, उसका व्यवहार, उसका उठना, उसका बैठना, उसका बोलना, उसका मौन--इन सबसे तुम धीरे-धीरे अनुमान भी लगा सकते हो कि क्या घटा है। लेकिन शास्त्र में तो अनुमान को भी कोई जगह नहीं। शास्त्र तो बिल्कुल मुर्दा है। यह तो ऐसा ही है शास्त्र, जैसा किसी कब्र के पास चक्कर लगाते रहो। कुछ पता न चलेगा कि कौन सोया है भींतर--सत्पुरुष सोया, असत्पुरुष सोया; जागा हुआ सोया कि सोया हुआ ही सोया? कुछ पता न चलेगा कब्र के पास। कब्रें तो सब एक जैसी हैं।

बहुत बार ऐसा हो जाता है कि बड़े सुंदर पद रचने वाले लोगों के पास जब तुम जाओगे, तब तुम्हें पता चलेगा कि वे पद कोरे पद हैं, उनके भीतर कोई प्राण नहीं है। इसलिए कहते हैं कि साधारणतः अगर किसी कवि की कविता तुम्हें अच्छी लगे तो कवि के पास मत जाना; जाओगे तो भ्रम टूट जाएगा। क्योंकि कवि केवल कविताएं लिखते हैं, उनके जीवन में काव्य की धुन नहीं होती। तो कविता में तो हो सकता है बड़ी ऊंची उड़ान हो, आकाश खुलता हो; और जब तुम जाओ कवि को मिलने तो वह किसी शराब-घर में गाली बकते मिल जाएं। तो तुम्हें बड़ी पीड़ा होगी। शायद काव्य में तो ऐसी सुगंध हो, शब्दों की सुगंध, शब्दों की लयबद्धता एक ऐसी सुगंध का भ्रम पैदा करती हो; लेकिन जब तुम कवि को जाकर देखो तो तुम पाओगे : वह तुम से गया-बीता आदमी है। शब्द तो झूठे भी हो सकते हैं, धोखे के भी हो सकते हैं। शब्द तो केवल जाल हो सकते हैं; तर्क की व्यवस्था हो सकते हैं। शब्द में केवल भाषा का सौंदर्य हो सकता है। शब्द को कैसे परखोगे, कसौटी क्या होगी?

यह तो ऐसा ही समझो कि एक कागज पर लिखा है सोना, तुम्हारे पास माना कि सोने को कसने का पत्थर है--क्या तुम सोचते हो जिस कागज पर लिखा है सोना, इसको तुम कस लोगे सोने के पत्थर पर? क्या कसोगे? कागज तो कागज है, सोना लिखा हो कि मिट्टी बराबर है। कोई निशान न छूटेगा। सोने को कसने वाला पत्थर हाथ में रखे बैठे रहो तो भी कोई निशान नहीं छूटेगा। सोना चाहिए--सोना शब्द से नहीं होगा।

सदगुरु का अर्थ होता है : जहां उपाय है कस लेने का। इसलिए पलटू कहते हैं : कैसे उतरै पार, पथिक विश्वास न आवै। यह नाव तो बंधी है, लेकिन यह ले जाएगी कि डुबाएगी? यह नाव तो बंधी है, कोई कभी इसे उस पार ले भी गया है या नहीं, या बना कर इसी पार रखी गई है? कोई इस नाव से कभी पार भी हुआ है? नाव तो जरूर बंधी है! लेकिन इस नाव को दूसरे पार का कोई अनुभव है? इसने कभी कोई यात्रा की है? छल-छिद्र से न भरी हो। डुबा न दे। कहीं मंझधार में धोखा न दे जाए।

"कैसे उतरै पार, पथिक विश्वास न आवै"।

विश्वास आ ही नहीं सकता शास्त्र पर। इसलिए दुनिया में इतने विश्वासी दिखते हैं और फिर भी विश्वास नहीं है। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई जैन, कोई बौद्ध--इतने लोग हैं और सभी कुछ न कुछ विश्वास करते हैं। लेकिन तुम्हें विश्वासी आदमी मिलता है कहीं? कोई आंखें दिखती हैं जिनमें आस्था के दीये जल रहे हों? तुम्हें कहीं कोई हृदय की धड़कन सुनाई पड़ती है जिसमें श्रद्धा का स्वर हो? सब तरफ अश्रद्धा है। सब तरफ अनास्था है। सब तरफ अविश्वास है। संदेह की दुर्गंध से भरी है पृथ्वी। और इतने विश्वासी लोग! जरूर कहीं कुछ भूल-चूक हो रही है।

नाव पर विश्वास नहीं आ सकता। मोहम्मद मिल जाते तो मजा आ जाता; लेकिन कुरान मिली तुम्हें, तुम्हारा दुर्भाग्य। कृष्ण मिल जाते तो मस्ती छा जाती। कृष्ण की मौजूदगी भरोसा पैदा करवाती है। मौजूदगी के अलावा और कोई उपाय नहीं है। कृष्ण की मौजूदगी में तत्क्षण तुम भी उड़ना शुरू कर देते हो। कृष्ण जब पंख पसारते हैं, तुम्हें भी अपने छिपे हुए पंखों की याद आ जाती है। कृष्ण का एक-एक शब्द तुम्हारे हृदय में सोई हुई आत्मा को जगाने लगता है। जाग्रत शब्द ही जगा सकता है। कृष्ण मिलते तो सौभाग्य, लेकिन तुम गीता लिए बैठे हो। तुम तोतों की तरह गीता कंठस्थ कर लोगे। दोहराते रहोगे, दोहराते-दोहराते मर जाओगे। नाव बंधी रहेगी, तुम नाव की पूजा करते-करते मर जाओगे; लेकिन पूजा करने से कोई उस पार नहीं जाता, नाव में यात्रा करनी होती है।

लोग शास्त्रों की पूजा कर रहे हैं। बड़ा निर्वचन होता है शास्त्रों का, व्याख्या होती है शास्त्रों की; लेकिन जो उस पार न गया हो; उसके निर्वचन का भी कोई मूल्य नहीं है। उसकी व्याख्या का भी कोई मूल्य नहीं है।

पंडित सहयोगी नहीं हो सकता--केवल ज्ञानी ही सहयोगी हो सकता है। और बिना विश्वास के तो कुछ भी नहीं होता। यह तो यात्रा ही निस्संदिग्ध मन से हो तो ही होती है। संदेह तो ऐसा ही है जैसे नाव में छेद हों। छेद दिखाई पड़ रहा है नाव में, तुम कैसे बैठोगे? नाव में पानी भरा जा रहा है, बंधी-बंधाई नाव में पानी भरा जा रहा है--तुम कैसे बैठोगे? आस्था तो होनी चाहिए साफ कि नाव डूबेगी नहीं। जब तुम नाविक को नाव में देखते हो, उसकी मजबूत कलाइयों को देखते हो, उसके हाथ में पतवार को देखते हो, उसके हाथ में पतवार के गट्ठे देखते हो, उसके चेहरे पर हजार-हजार सूरज की धूप निकली है, नाव इस पार से उस पार होती रही है--जब तुम्हें यह सारी बात दिखाई पड़ जाती है कि कोई मल्लाह मौजूद है, कोई नाविक मौजूद है, कोई केवट मौजूद है--आस्था पैदा होती है। तब फिर नाव में अगर छेद हो तो भी फिकर नहीं; यह मल्लाह उसकी भी चिंता कर लेगा। फिर तुम्हें दूसरे किनारे का भरोसा दिलाने के लिए झूठी बातों की जरूरत नहीं है। इसकी आंख पर्याप्त है। तुम इसकी आंख में झांकोगे, तुम्हें दूसरा किनारा दिखाई पड़ जाएगा। इसके हृदय की धड़कन काफी है। तुम जरा पास बैठ कर इसकी धड़कन का गीत सुनोगे तो आस्था पैदा हो जाएगी।

इसलिए बुद्ध के पास या नानक के पास या कबीर के पास या पलटू के पास आस्था का जन्म होता है। आस्था सदा जीवंत व्यक्ति के पास ही जागती है। बुझे दीयों से तुम अपने बुझे दीये को जलाओगे भी तो कैसे जलाओगे? कोई जला दीया चाहिए। उसके पास जाओगे तो ज्योति एक झपट में तुम्हारी बुझी बाती को पकड़ लेगी।

"नाव मिली केवट नहीं, कैसे उतरै पार।।

कैसे उतरै पार, पथिक विश्वास न आवै।

लगै नहीं वैराग यार कैसे कै पावै।।"

यह जो वैराग्य है, यह जब तक कोई प्यारा न मिल जाए, कोई यार न मिल जाए--जिसको बुद्ध ने कल्याणमित्र कहा है, उसी को पलटू यार कह रहे हैं--जब तक कोई यार न मिल जाए, जब तक तुम उसकी यारी में डुबकी न लो, जब तक कोई कल्याणमित्र न मिल जाए, जब तक कोई प्रेमी न मिल जाए... गुरु यानी प्रेमी।

परमात्मा का तो तुम्हें पता नहीं है। परमात्मा तो बहुत दूर का किनारा है। लेकिन परमात्मा में होकर कोई आया हो, ऐसा जब तक यार न मिल जाए--लगै नहीं वैराग यार कैसे कै पावै--तब तक वैराग्य का रंग नहीं लगता। तब तक तुम बातें वैराग्य की करते रहो, तब तक संन्यास का रंग नहीं लगता।

जो खुद रंगा हो, वही तुम्हें रंग सकेगा। जो खुद डूबा हो, वही तुम्हें डुबा सकेगा।

शराबी के पास बैठोगे तो उसके मुंह से शराब की गंध आती है। पक्का पता हो जाता है। फिर उसकी मस्ती दिखाई पड़ती है, उसके पैर डोलते मालूम पड़ते हैं। कहीं रखता पैर और कहीं पड़ते हैं। शराब के लिए कोई प्रमाण-पत्र थोड़े ही खोजने पड़ते हैं; शराबी की चाल बता देती है कि प्रमाणपत्र है। शराबी का रंग-ढंग बता देता है। और जब यार मिल जाता है और यारी जम जाती है--यही तो शिष्य और गुरु का मिलन है : यारी का जम जाना। जब दो हृदयों के बीच ऐसा प्रेम पकड़ जाता है कि तुम्हें लगता है कि यह दूसरे किनारे हो आया, यह भरोसा जैसे-जैसे बढ़ने लगता है, वैसे-वैसे दूसरा किनारा करीब आने लगता है।

"लगै नहीं वैराग, यार कैसे कै पावै।"

तो नाव तो पड़ी है, लेकिन इसमें यार तो बैठा नहीं। शास्त्र तो रखा है, लेकिन शास्ता मौजूद नहीं है।

"मन में धरै न ग्यान, नहीं सतसंगति रहनी।"

इसलिए कहते हैं कि तुम जब तक सत्संगति न खोजोगे, तब तक कितना ही पढ़ो, कितना ही लिखो, कितना ही स्मृति को प्रांजल करो, भरो--कुछ सार न होगा।

"मन में धरै न ग्यान, नहीं सतसंगति रहनी।"

लोग ऐसे हैं कि मन में धारण नहीं करते हैं, बस केवल स्मृति में भरते हैं। इस फर्क को समझो। मेरी बात तुमने सुनी, तुम उस बात के साथ दो काम कर सकते हो। मेरी बात सुनी, तत्क्षण उसे स्मृति में रख लिया, फाइल किया, कहा कि कभी जरूरत होगी तो काम में ले आएंगे; किसी को समझाना होगा तो समझा देंगे; कोई पूछेगा अर्थ तो बता देंगे। तुमने अपने काम में नहीं लाए। तुमने रख दी कि किसी और के काम आ जाएगी। अधिकतर तुम्हारा ज्ञान ऐसा ही है।

एक दूसरी बात है, एक दूसरा ढंग है--वास्तविक ढंग--कि तुमने बात को समझा और पी गए और पचा गए। वह तुम्हारे मांस-मज्जा में समा गई। तुमने स्मृति न बनाई। तुमने उसका जीवन बना लिया।

"मन में धरै न ग्यान... "

अधिक लोग ऐसे हैं कि मन में ज्ञान को इस तरह पचाते नहीं; बस पंडित रह जाते हैं। पंडित--अपच। पंडित का अर्थ होता हैः जिसने खाया तो, लेकिन पचाया नहीं; जिसने भोजन तो कर लिया लेकिन मांस-मज्जा न बनी। इससे बीमारी पैदा होगी। इससे वमन होगा। इससे दस्त आएंगे। इससे शरीर स्वस्थ नहीं होगा। इससे शरीर को नुकसान पहुंचने वाला है।

और जैसे शरीर का भोजन है, ऐसे ही आत्मा का भोजन है ज्ञान। पचाओ

"मन में धरै न ग्यान, नहीं सत्संगति रहनी।"

और जब तक तुम सत्संगति में न जाओगे तब तक तुम समझ ही न पाओगे कि ये दो चीजें हैं--मन में धरना, पचाना, या स्मृति में रखना।

शास्त्र केवल स्मृति में रखा जा सकता है। सदगुरु ही केवल मन में धारा जा सकता है। शास्त्र तो केवल तुम्हारी जानकारी बनेगी। तुम्हें पता हो जाता है : वेद क्या कहते हैं ईश्वर के संबंध में। मगर ईश्वर क्या है? ...

उपनिषद क्या कहते हैं ईश्वर के संबंध में। लेकिन संबंध में जान लेना ईश्वर को जान लेना तो नहीं। ईश्वर को जानना तो बात और है।

बिना प्रेम किए तुम प्रेम के संबंध में बहुत कुछ जान ले सकते हो। पुस्तकालयों में किताबें प्रेम पर लिखी रखी हैं, तुम जाकर सब अध्ययन कर लो। तुमने कभी प्रेम नहीं किया, प्रेम के संबंध में तो जान लोगे; लेकिन इससे क्या तुम्हें प्रेम का जरा सा भी रस आएगा? प्रेम के अमृत की एक बूंद भी तुम्हारी जीभ पर पड़ेगी? स्वाद आएगा? नहीं, तुम पंडित हो जाओगे। चाहो तो थीसिस लिखो, कोई यूनिवर्सिटी तुम्हें डॉक्टरेट दे देगी। यूनिवर्सिटी यही काम करती है। तुम बड़े ज्ञानी हो जाओगे। शास्त्र लिख सकते हो। यह तुम्हारा शास्त्र वमन होगा। पहले तुम शास्त्र को पी गए, पचा नहीं; अब उसका वमन कर दिया; दूसरों की खोपड़ी पर डाल दिया।

लेकिन सदगुरु के बिना दूसरी घटना नहीं घटती। दूसरी घटना का अर्थ है, जब तुम किसी के साथ अपने जीवन का धागा जोड़ देते हो; जब तुम किसी के साथ अपनी गांठ बांध लेते हो। जैसे विवाह! जैसे किसी के साथ फेरे पड़ गए। इसलिए तो "यार" कहते हैं पलटू। यह प्रेम का विवाह है। शिष्य विवाहित हो गया गुरु से। अब दोनों एक हो गए, रच-पच गए। तभी पाचन शुरू होता है।

"मन में धरै न ग्यान, नहीं सतसंगति रहनी।"

सत्संगति के बिना नहीं हो पाएगा, मन में ज्ञान नहीं प्रविष्ट होगा।

"बात करै नहिं कान, प्रीति बिन जैसी कहनी।"

और तुम तो ऐसे हो कि सुनते भी हो, तो भी कहां सुनते हो! पढ़ते भी हो तो कहां पढ़ते हो! पहले तो शास्त्र मुर्दा, मुर्दे को तो पढ़ रहे हो और फिर भी कहां पढ़ते हो! पढ़ना भी ऐसा ही है। मन हजार काम और करता है। एक तो पंडित को सुनने जाते और उसको भी कहां सुनते हो! तो पहले तो पंडित सुनते, तो भी तो शायद ही कोई लाभ होना था; फिर उसको भी कहां सुनते हो! पंडित बोले जाता है, तुम कुछ-कुछ सोचे जाते हो। यह तो तभी हो पाएगा, यह सुनना तो तभी हो पाएगा, जब मन का राग बैठ जाए; जब मन एक प्रेम में पड़ जाए।

प्रेम के अतिरिक्त कोई श्रवण नहीं है।

तो यारी पहले बननी चाहिए। प्रेम पहले बनना चाहिए, तब ज्ञान। प्रेम के पीछे आता है ज्ञान। और जिसने सोचा कि ज्ञान के पीछे प्रेम आएगा, वह भूल में पड़ा। उसने बैल पीछे बांध दिए गाड़ी के। ये गाड़ी अब कहीं जाएगी नहीं। प्रेम पहले आता है। भाव पहले आता है। हृदय पहले आता है--तब सिर। जिसने सोचा कि पहले सिर, फिर हृदय को ले आएंगे, वह कभी भी नहीं ला पाएगा। क्योंकि सिर तो हृदय के खिलाफ है और हृदय को कभी उमगने न देगा। सिर तो संदेह है। और हृदय है आस्था, श्रद्धा। तो सिर तो हजार उपाय करेगा संदेह खड़े करने के। सिर में तो संदेह ही लगता है। सिर से कभी श्रद्धा नहीं होती। श्रद्धा हृदय से होती है। सरलचित्तता चाहिए। विनम्रता चाहिए। अकड़ का अभाव चाहिए। प्रेम में पड़ने की हिम्मत चाहिए।

"बात करै नहिं कान, प्रीति बिन जैसी कहनी।"

बिना प्रेम के सब कहना व्यर्थ है; सब सुनना व्यर्थ है।

"लगै नहीं वैराग यार कैसे कै पावै।

छूटि डगमगी नाहिं, संत को वचन न मानै।"

डगमगी लगी रहती है सिर में तो, सिर तो दुविधा से भरा रहता है। सिर तो कहता है पता नहीं हो ठीक, न हो ठीक, ऐसा हो वैसा हो--सिर तो हजार बातें उठाता है। सिर का तो काम ही यही है, कि वह संदेह खड़ा करता है। जैसे वृक्षों में पत्तें लगते हैं, ऐसे सिर में संदेह लगते हैं।

"छूटि डगमगी नाहिं... " डगमग होता रहता है सब सिर के भीतर तो। सिर कभी अकंप नहीं होता। सिर तो कंपता ही रहता है। वहां भूकंप चलता ही रहता है। वहां भूकंप कभी बंद नहीं होता। हृदय में कभी कंप नहीं

होता। हृदय निष्कंप है। वहां भूकंप जाता ही नहीं। जो हृदय में पहुंच गया, वह कंपन के पार हो जाता है। वहां संदेह पैदा नहीं होते। वहां श्रद्धा के कुसुम लगते हैं। वहां आस्था के कमल खिलते हैं। और सारा जीवन रूपांतरित हो जाता है।

"छूटि डगमगी नाहिं, संत को वचन न मानै।"

और डगमगी न छूटे तो संत का वचन कैसे मानोगे? संत के पास भी पहुंच गए भूल-चूक से, संयोगवशात, तो मान न सकोगे; सिर बीच में आड़े आ जाएगा, पत्थर की तरह खड़ा हो जाएगा, अड़चन बन जाएगा। संत का झरना भी बहता होगा तो तुम्हारे हृदय तक नहीं पहुंच पाएगा। सिर को उतार कर रखना होता है।

कबीर ने कहा है : अगर आना हो मेरे पास तो सिर को उतार कर जमीन पर रख दे। सिर को रखै उतार!

"छूटि डगमगी नाहिं संत को वचन न मानै।

मूरख तजै विवेक, चतुराई अपनी आनै।।"

और मूर्ख की बड़ी मूर्खता यह है कि वह सोचता है कि मैं बड़ा चतुर। मूर्ख की मूर्खता को बचाने का यही उपाय है कि वह सोचता है मैं बड़ा चतुर। वह कहता है, ऐसे हम किसी की बातों में आने वाले, कि ऐसे हम किसी पर श्रद्धा लाने वाले, कि ऐसे हम सम्मोहित होने वाले नहीं हैं, हम तो सोच-विचार करेंगे। हम तो सब तरह का हिसाब-किताब लगाएंगे! ऐसे प्रेम में पड़ जाएं? हम ऐसे नासमझ नहीं हैं, हम बड़े चतुर हैं!

पलटू कहते हैं : "मूरख तजै विवेक, चतुरई अपनी आनै।" इसी अपनी चतुराई में विवेक का अवसर खो देता है।

और विवेक और चतुराई में बड़ा फर्क है। चतुराई सिर्फ मूढ़ता है। विवेक तुम्हारी आत्मा का जागरण है। लेकिन जागे हुए से जुड़ो तो जागोगे। और यह चतुराई तुम्हें जागे हुए से जुड़ने नहीं देती। बुझा हुआ दीया चतुराई से भरा है, डगमग हो रहा है कि जाऊं पास न जाऊं, पता नहीं ठीक हो कि गलत हो, ऐसा हो वैसा हो! ज्योति भी दिखाई पड़ती है तो भी साहस नहीं जुटा पाता। पास न जाएगा तो चूक जाएगा। साहस चाहिए।

तो अक्सर ऐसा हो जाता है कि कभी-कभी साहसी लोग सत्य की संगति में उतर जाते हैं और कमजोर और तथाकथित समझदार लोग दूर ही खड़े रह जाते हैं। वे अपनी समझदारी में ही मर जाते हैं।

समझदारी से सावधान! क्योंकि समझदारी तुम्हारी मूढ़ता को छिपाने का उपाय है। एक बात सदा सोचना, एक बात सदा याद रखना : अगर तुम चतुर हो तो तुम्हारी जिंदगी में सबूत होना चाहिए। कहां है आनंद? कहां है रस? क्या पाया? कौन सी ज्योति है तुम्हारे भीतर? कौन सी सुगंध उठी? कौन सा संगीत बना? कौन सा नृत्य हुआ? उत्सव कहां है? चांदनी कहां है? अंधेरा ही अंधेरा भरा है, फिर भी तुम अपने को चतुर कहे चले जाते हो! और सब तरह की वासनाओं के सांप-बिच्छू भीतर सरक रहे हैं, फिर भी तुम अपने को चतुर कहे जाते हो! थोड़ा तो सोचो! थोड़ा तो विचारो! अगर चतुर ही होते तो तुम्हारी जिंदगी में परमात्मा का वास होता; तुम्हारी जिंदगी में आनंद होता; तुम्हारी जिंदगी में एक पुलक होती।

तुम्हारी जिंदगी में यह उदासी क्यों है? तुम्हारी जिंदगी में यह इतना ज्यादा रुग्ण भाव क्यों है? तुम हो कहां? धक्के खाते रहते भीड़ में--यहां से वहां, इस जन्म से उस जन्म में, इस यात्रा से उस यात्रा में। पहुंचे कहां हो? मंजिल कहां है? पास भी आती नहीं मालूम होती और कहते हो चतुर हो।

अगर चतुर हो तो जीवन में प्रमाण चाहिए। और अगर जीवन में प्रमाण न हों तो कृपा करके इस चतुराई को उतार कर रख दो। यह चतुराई नहीं है; यह वस्तुतः विवेक से बचने का उपाय है। यह मूढ़ता की तरकीब है। यह तुम्हारा अज्ञान तुम्हें चतुराई का धोखा देकर अपने को बचा रहा है। मूरख तजै विवेक, चतुराई अपनी आनै।

"पलटू सतगुरु सब्द का, तनिक न करै विचार।"

वह अपनी-अपनी मारता रहता है, अपनी-अपनी लगाता रहता है।

"पलटू सतगुरु सब्द का, तनिक न करै विचार।

नाव मिली केवट नहीं, कैसे उतरै पार।।"

और जब तक तुम सदगुरु के वचन का विचार न करोगे, जब तुम अपनी अकड़ हटा कर, अपने उपद्रव को शांत करके, अपने को दूर करके, अपने को बीच से हटा कर--कहोगे कि अब मैं सीधा विचार करना चाहता हूं। मेरी जिंदगी तो बेकार गई तो एक बात सच है कि मेरे पास कोई विवेक नहीं है। मैं तो भटका ही भटका। घाव ही घाव इकट्ठे किए हैं। यह मेरी जिंदगी रही है। अब बहुत भटक चुका। अब मैं कहता हूं कि अब अपनी समझ से क्या चलना। अपनी समझ से चल कर खूब देख लिया, कहां पहुंचा?

मनोवैज्ञानिक कहते हैं--मनस्विद कहना चाहिए--पूरब के मनस्विद कहते हैं कि छोटा बच्चा अगर अपनी चतुराई की बात हांके, क्षमायोग्य है, क्योंकि उसे अभी जीवन का कोई अनुभव नहीं है। लेकिन उम्र पाकर भी अगर तुम अभी अपनी चतुराई की हांको तो तुम बड़े अज्ञानी हो; तुम क्षमा भी नहीं किए जा सकते। उम्र पाकर तो दिखाई पड़ जाना चाहिए कि मेरी चतुराई का परिणाम क्या है। और वह परिणाम दिखाई पड़ जाए तो एक घटना घटती हैः तुम्हें अपनी बुद्धि पर संदेह आ जाता है, बस। तुम्हारे जीवन में परमात्मा के आगमन का पहला कदम पड़ा--अपनी बुद्धि पर संदेह। जब अपनी बुद्धि पर संदेह आता है तो सदगुरु पर आस्था आती है। जब तक तुम सोचते हो अपने से ही तर जाएंगे, तब तक तुम क्यों किसी का हाथ पकड़ोगे! तब तक तुम यारी में न पड़ोगे।

"नाव मिली केवट नहीं, कैसे उतरै पार।"

फिर तुम्हारी चतुराई तुम्हें ज्यादा से ज्यादा शास्त्र तक ले जा सकती है, नाव तक पहुंचा सकती है। लेकिन केवट? केवट तो यारी से मिलता है। तुम्हारी चतुराई तुम्हें किताब तक ले जा सकती है। तो लोग किताब बड़े मजे से पढ़ते हैं। ऐसे बहुत लोग हैं, लाखों लोग हैं जो मेरी किताबें पढ़ते हैं। यहां नहीं आते। मुझे पत्र भी लिखते हैं कि हम आपकी किताबें पढ़ते हैं और बड़ा आनंद आता है; लेकिन आने में संकोच है, आने में डर है, कि आने की अभी हिम्मत नहीं है; आना चाहते हैं मगर अभी हिम्मत नहीं।

क्या डर होगा आने में?

यारी बनाने में डर है।

प्रेम खतरनाक बात है। प्रेम बन जाएगा तो तुम्हारी जिंदगी फिर वैसी ही न रह जाएगी। किताब के साथ कोई खतरा नहीं है; किताब तुम पढ़ लेते हो और ताक पर रख देते हो। किताब तुम्हारी हो गई। मेरी क्या है? तुमने खरीद ली तुम्हारी हो गई। तुम जहां चाहो वहां लकीरें लगाओगे; जहां चाहो काट दोगे, जहां चाहो लाल निशान लगा दोगे; तुम जो चाहो अर्थ कर लोगे। किताब तुम्हारी हो गई। मेरा उसमें क्या रहा? मेरा तो मेरे पास आओगे तो ही पता चलेगा।

"साहिब वही फकीर है जो कोई पहुंचा होय।"

जो दूसरा पार हो आया है, वही फकीर है।

अब फकीर का अर्थ समझो। लोग समझते हैं फकीर का अर्थ है, जिसने संसार छोड़ दिया। यह नहीं है फकीर का अर्थ। जो पहुंचा होय। संसार छोड़ देने से क्या होता है? ऐसे तो बहुत फकीर हैं। जिनके पास कुछ नहीं था वे भी छोड़-छाड़ कर फकीर हो गए हैं। कुछ था ही नहीं, छोड़ने की कोई झंझट भी नहीं थी। और फकीर होने का मजा ले रहे हैं।

सौ में निन्यानवे तुम्हारे फकीर और साधु और संन्यासी और महात्मा नकारात्मक फकीर हैं। संसार छोड़ दिया है, लेकिन परमात्मा पाया या नहीं? संसार छोड़ना थोड़े ही पर्याप्त परिभाषा है। शायद संसार छोड़ना इतना ही हो सकता है, जैसे एक आदमी बगीचा लगाना चाहे, जमीन साफ करे, कांस उखाड़ कर फेंक दे, घास-पात को काट दे, जला दे, जड़ें घास-पात की निकाल कर जमीन को शुद्ध कर ले, पानी छिड़क दे और बैठ जाए और कहे कि बगीचा तैयार हो गया। यह कोई बगीचा हुआ? ठीक है जमीन तैयार हो गई, मगर अभी बगीचा तो तैयार होना है। जमीन तैयार हो गई, अच्छा हुआ। मगर इसको ही बगीचा मत मान लो। नहीं तो इस खाली जमीन में गुलाब के फूल न खिलेंगे। इस खाली जमीन में देर-अबेर फिर संसार का कांस उग आएगा।

एक मजे की बात ख्याल रखना, गुलाब का फूल अपने-आप नहीं उगता, घास-पात अपने आप उगता है। घास-पात को लाना नहीं पड़ता कि तुम जाओ, बीच बाजार से खरीद कर लाओ, तब उगेगा। तुम बैठे भर रहो जमीन साफ करके, वह अपने से उग जाएगा। जमीन साफ कर ली तो और ढंग से उगेगा, क्योंकि पत्थर इत्यादि सब अलग हो गए, अब बड़े मजे से उगेगा। तुम जल्दी ही पाओगे जमीन हरी हो गई। गुलाब अपने से नहीं उगेगा। गुलाब को तो लगाना पड़ता है।

फकीर की ठीक परिभाषा पलटू कर रहे हैं : "साहिब वही फकीर है जो कोई पहुंचा होय।" जिसके जीवन में गुलाब के फूल खिले हों, परमात्मा खिला हो, वह फकीर है। संसार छोड़ देना पर्याप्त नहीं है। परमात्मा पाना जरूरी है। यह विधायक परिभाषा हुई। नकार से परिभाषा नहीं करनी चाहिए।

ऐसा समझो कि एक आदमी है, कोई पूछे कि यह आदमी आंख वाला है, इसकी क्या परिभाषा? तुम कह सकते हो : क्योंकि यह अंधा नहीं है। यह तो ठीक बात हो गई कि जो अंधा नहीं है वह आंख वाला होना चाहिए। लेकिन जो अंधा नहीं है वह भी आंख बंद किए बैठा हो सकता है। आंख पर पट्टी बांधी हो सकती है। जो अंधा नहीं है वह भी सोया हो सकता है। तो भी आंख वाला नहीं है। आंख वाला तो वही है जिसे दिखाई पड़ता है। और कोई परिभाषा से काम न चलेगा। अंधा नहीं है, इतनी नकारात्मक परिभाषा काफी नहीं है। अंधा नहीं है, यह तो ठीक है, कामचलाऊ परिभाषा हो गई।

फकीर वह जिसने संसार छोड़ा, यह ऐसे ही है जैसे आंख वाला वह जो अंधा नहीं है। आंख वाला वह, जिसे दिखाई पड़ता है, जिसे दर्शन होता है। अंधा नहीं होने से क्या होता है? आंख रहते भी आदमी आंख बंद किए बैठे रहते हैं, तो भी दिखाई नहीं पड़ेगा। संसार छोड़ दिया, यह तो ठीक है; लेकिन परमात्मा दिखाई पड़ा या नहीं, असली बात तो वहां तय हो गई।

"साहिब वही फकीर है जो कोई पहुंचा होय।।

जो कोई पहुंचा होय, नूर का छत्र विराजै।"

जिसके चारों तरफ परमात्मा की रोशनी हो; जिसकी रोशनी दूसरों को भी अनुभव हो; जिसके आस-पास रोशनी का छत्र हो, आभामंडल हो; जो ज्योति से जगमग हो; जिसके छोटे से दीये में सूरज उतरा हो।

"जो कोई पहुंचा होय, नूर का छत्र विराजै।

सबर-तखत पर बैठि, तूर अठपहरा बाजै।।"

और जो संतोष के सिंहासन पर विराजमान हो। सबर... सब्र... संतोष

"सबर तखत पर बैठि"... जिसे तुम पाओ कि जो संतोष के तख्त पर बैठा है, परितुष्ट है; जिसे अब न कहीं जाना न कहीं कुछ पाना--पा लिया जो पाना था। परमात्मा पाने के बाद और क्या पाने को बचता है? तो जिसने परमात्मा पा लिया उसको कुछ पाने को नहीं बचता। पाने की दौड़ गई, आपाधापी समाप्त हुई।

"सबर-तखत पर बैठि, तूर अठपहरा बाजै।"

और जिसके पास आठों पहर संगीत का नाद हो रहा हो, निनाद बज रहा हो, उत्सव चल रहा हो, रस बह रहा हो--तूर अठपहरा बाजै! जिसके पास अगर तुम चुप होकर बैठ जाओ तो तुम अपूर्व संगीत में डूबने लगो। जिसके पास अगर तुम शांत होकर बैठ जाओ तो डोलने लगो, जैसे सांप डोलता है तुरही को सुन कर।

"तूर अठपहरा बाजै, सबर तखत पर बैठि।" यह परिभाषा कर रहे हैं वे।

कौन है केवट? किसको सदगुरु चुनोगे? देखना संतोष। जांचना संतोष से।

बड़ी अदभुत बात कह रहे हैं और बड़ी गहरी बात कह रहे हैं। कुछ और बात से तय नहीं होता। अगर तुम एक महात्मा के पास जाओ और तुम पाओ कि वह अभी भी खोज रहा है परमात्मा को, अभी भी साधना में लगा है, अभी भी योग-प्राणायाम साध रहा है, अभी भी शीर्षासन, सर्वांग-आसन कर रहा है, अभी भी ध्यान, पूजा,

पाठ कर रहा है--तो समझना अभी सबर-तखत पर बैठा नहीं, अभी सब्र नहीं हुआ, अभी संतोष नहीं हुआ, अभी मिलना नहीं हुआ।

परमात्मा से मिलने के बाद फिर शीर्षासन करोगे? परमात्मा की मजाक उड़ानी है? उसके सामने सिर के बल खड़े होओगे? कि परमात्मा से मिलने के बाद पूजा-पाठ करोगे! अब क्या पूजा-पाठ? कि परमात्मा से मिलने के बाद मंदिर-मस्जिद जाओगे! अब कैसा मंदिर, कैसी मस्जिद? अब तो सभी उसका हो गया।

फकीर बायजीद के संबंध में कहा है कि वह रोज मस्जिद जाता था। वर्षों से जाता था। बीमार हो तो भी जाता था। कभी चूकता ही नहीं था। पांचों नमाज मस्जिद में करता था। लोग तो यह भूल ही गए थे कि बायजीद के बिना और मस्जिद हो सकती है। गांव नहीं छोड़ता था, क्योंकि दूसरे गांव जाए, मस्जिद न हो, रास्ते में रुकना पड़े, मस्जिद न हो, तो वह गांव नहीं छोड़ता था। तो एक दिन मस्जिद नहीं आया। सुबह जो लोग मस्जिद पहुंचे नमाज पढ़ने, वे चौंके। उन्होंने कहा, सिवाय इसके कि वह मर गया हो, और तो कोई बात है नहीं। जल्दी-जल्दी नमाज पूरी करके भागे हुए बायजीद के घर पहुंचे। वह अपने बैठे हैं एक झाड़ के नीचे, एकतारा बजा रहे थे। उन्होंने पूछा : बायजीद क्या अब बुढ़ापे में दिमाग खराब हुआ? जिंदगी भर नमाज की, अब छोड़ते हो? बायजीद ने कहा : जब तक की, जब तक पाया नहीं, अब क्या खाक करें? अब क्या कहां जाएं? अब एकतारा बजाते हैं।

वह एकतारा प्रतीक है।

"तूर अठपहरा बाजै... "!

ध्यान अगर अभी भी करते हो तो फिर अभी पहुंचे नहीं। जो पहुंच गया वह ध्यान हो गया, अब कैसे ध्यान करें। जो पहुंच गया वह पूजा हो गया, उसका जीवन अर्चना हो गई। इसलिए कबीर कहते हैं : उठूं-बैठूं सो परिक्रमा। अब मैं कैसे मंदिर की परिक्रमा करने जाऊं? अब तो उठना-बैठना वही परिक्रमा है, क्योंकि जब भी उठता हूं उसी के पास उठता हूं; जब भी चलता हूं उसी के पास चलता हूं। खाऊं-पीऊं सो सेवा। अब कैसे मंदिर में जाकर भोग लगाऊं भगवान को? मैं खाता हूं, उसी की सेवा हो जाती है, क्योंकि वही खा रहा है।

सुनते हो--खाऊं-पीऊं सो सेवा!

"सबर-तखत पर बैठि, तूर अठपहरा बाजै।

तंबू है असमान, जमीं का फरस बिछाया।"

अब कहां छोटे-मोटे मंदिर-मस्जिद की जरूरत रही! तंबू है असमान, जमीं का फरस बिछाया।

"छिमा किया छिड़काव... "

जैसे कि कोई तैयारी करता है, कोई मेहमान आ रहा है, कोई बड़ा मेहमान आ रहा है--तो तुम छिड़काव करते हो जल का बगीचे में, जमीन पर धूल बैठ जाए, तंबू तानते। पलटू कहते हैंः अब आकाश का तंबू ही एकमात्र तंबू है और पूरी जमीन अपना फर्श है। और अब पानी से क्या सींचना, अब तो क्षमा से सींचते हैं। क्षमा प्रेम की एक अभिव्यक्ति है। अब तो प्रेम से सींचते हैं। अब तो क्षमा से सींचते हैं।

"छिमा किया छिड़काव, खुशी का मुस्क लगाया।" और अब कौन सी इत्र लगाएं, अब कौन सा मुश्क लगाएं, अब कौन सी सुगंध? ... खुशी का मुस्क लगाया। अब तो चौबीस पहर, सोते-जागते, आनंद का भाव उठ रहा है, आनंद की लहरें चल रही हैं, आनंद की तरंगें चल रही हैं। यही सुगंध है।

"नाम खजाना भरा, जिकिर का नेजा चलता।

साहिब चौकीदार, देखि इबलीसहुं डरता।।"

अब तो बड़ी गजब की बात हो रही है। वे कहते हैं, फकीर कौन? साहिब वही फकीर है जो कोई पहुंचा होय! और जब कोई पहुंच जाता है तो खुद पहरा नहीं देना पड़ता अपने जीवन पर। खुद साहिब, खुद भगवान

पहरा देता है। फिर तुम्हें अपनी फिकर नहीं रखनी पड़ती कि यह करूं, यह करूं, न करूं; यह करना ठीक है कि गलत कि सही--फिर ये सब बातें गईं, अच्छा-बुरा गया। साहिब चौकीदार देखि इबलीसहुं डरता। अब तो शैतान खुद ही डरता है क्योंकि वह साहिब चौकीदार हो गए हैं। अब तो परमात्मा फिकर करता है।

तुमने वह प्यारी कहानी सुनी न, कि तुलसीदास सोते हैं और धनुर्धारी राम द्वार पर खड़े होकर पहरा देते हैं! वह प्रतीकात्मक है। जिसने सब परमात्मा पर छोड़ दिया उसकी चौकीदारी परमात्मा करता है। तुम जब तक अपनी चौकीदारी खुद करते हो, खतरे में हो। तब तक शैतान तुम्हें सताएगा और शैतान तुमसे जीतेगा। तुम शैतान से क्या बचोगे? उसके रास्ते बड़े सूक्ष्म हैं।

"नाम खजाना भरा... "

और अब तो एक ही खजाने में बात रह गई हैः उसका नाम, उसकी स्मृति, उसका स्मरण। बस इतना ही धन है अब। यह ध्यान ही धन है।

"नाम खजाना भरा, जिकिर का नेजा चलता।"

और अब तो चौबीस घंटे उसके स्मरण का भाला ही चलता रहता है। अब तो चौबीस घंटे श्वास-श्वास में जिकिर है, नामस्मरण है, प्रार्थना है। यह करनी नहीं पड़ती, यह अपने से हो रही है।

संत वही जिसमें प्रार्थना अपने से हो रही हो--जिसके होने में प्रार्थना हो; जिसके उठने-बैठने में प्रार्थना हो; जिसकी आंखें झपकें तो पूजा हो जाए; जिसके पास तुम जाओ तो तुम्हें परमात्मा पहरा देता हुआ मालूम पड़े।

"पलटू दुनिया दीन में, उनसे बड़ा न कोय।"

पलटू कहते हैंः फकीर से बड़ा कोई भी नहीं है--न इस दुनिया में, न उस दुनिया में।

"पलटू दुनिया दीन में, उनसे बड़ा न कोय।

साहिब वही फकीर है, जो कोई पहुचा होय।।"

ऐसे किसी फकीर का हाथ पकड़ो, यारी करो, तो केवट मिले, तो माझी मिले, तो उस पार उतर पाओ। अपने से न पहुँच पाओगे। अपने से पहुंचने की धुन में इसी किनारे अटके रह गए हो जन्मों-जन्मों से। अबहूं चेत गंवार! अब चेतो!

"लहना है सतनाम का, जो चाहै सो लेय।"

और लाभ तो एक ही है दुनिया में, धन तो एक ही है दुनिया में।

"लहना है सतनाम का, जो चाहै सो लेय।"

प्रभु के स्मरण के अतिरिक्त और कोई धन नहीं है, और कोई लाभ नहीं है! फिर जिसको लेना हो ले ले। रुकावट जरा भी नहीं है। कोई रोक नहीं रहा है; तुम अपने ही हाथ से नहीं ले रहे हो। इसे ख्याल में रखना।

जीसस ने कहा हैः नॉक--एण्ड दि डोर शैल बी ओपंड अनटू यू। आस्क--एण्ड इट शैल बी गिवेन। मांगो और मिलेगा। खटखटाओ और द्वार खुल जाएंगे।

राबिया ने तो कहा है : द्वार बंद ही नहीं हैं, खटखटाओ भी मत, आंख खोलो। द्वार खुले हैं।

सूफी फकीर हसन रोज कहा करता थाः प्रभु, द्वार खोल! प्रभु, द्वार खोल! बहुत देर हो गई, द्वार खोल। मैं तड़प रहा हूं। रोता, छाती पीटता।

एक दफा वह राबिया के घर ठहरा। वह वही जो करता था रोज सुबह से, उसने किया। प्रार्थना की, फिर रोने लगा, छाती पीटने लगा, भाव-विह्वल--कि हे प्रभु, द्वार खोल। राबिया ने एक दिन सुना, दो दिन सुना, तीन दिन सुना। तीसरे दिन वह आई। उसने कहा कि बंद कर यह बकवास! द्वार खुले हैं। आंख खोल!

और कहते हैं हसन जागा। जिंदगी भर से वह यह ही मचाए हुए था कि प्रभु द्वार खोल। राबिया की यह चोट कि नासमझ, क्या बकवास लगा रखी है, आंख खोल! द्वार तो खुले ही हैं।

कहते हैं पलटू : "लहना है सतनाम का, जो चाहै सो लेय।" जिसने चाहा उसे मिला। किसी क्षण मिला, जिस क्षण चाहा। एक क्षण की भी देर नहीं होती। मगर तुम चाहते ही नहीं। तुम कुछ कूड़ा-कचरा चाहते हो। कोई धन के लिए दौड़ रहा है, कोई पद के लिए दौड़ रहा है। परमात्मा के लिए कौन दौड़ता है! कभी-कभी तुम परमात्मा की याद भी करते हो तो पद के लिए; चुनाव में खड़े हो गए तो जाकर हनुमान जी को समझाते हो कि महाराज, जरा ख्याल रखना। नारियल चढ़ाऊंगा! जब चुनाव में खड़े हो गए तो हनुमान-चालीसा पढ़ने लगते हो, मस्जिद-मंदिर, पूजा-पाठ करने लगते हो। साधु-संतों के पास जाने लगते हो।

मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैं कि महाराज, चुनाव में खड़े हैं, आशीर्वाद चाहिए!

मुझे क्यों झंझट में डालते हो? तुम पाप करो, मुझको भी फंसाओगे? जिस दिन चुनाव छोड़ना हो, उस दिन आ जाना, मैं आशीर्वाद दे दूंगा। मगर ये चुनाव के लिए तो आशीर्वाद मत लो। क्योंकि फिर तुम जो करोगे, उसका भी जिम्मा मेरा हो जाएगा। मेरा कोई हाथ नहीं है इसमें।

वे बड़े हैरान होते हैं, क्योंकि और साधु-संतों के पास जाते हैं, वे तो जल्दी से आशीर्वाद देने को तैयार हैं। आशीर्वाद देने में लगता ही क्या है किसी को! मिलने वाले को मिल गई आशा और देने वाले का कुछ जाता नहीं।

तुम कभी परमात्मा की याद भी करते हो तो गलत कारणों से करते हो। उसकी याद तो बस उसी के लिए की जानी चाहिए; कोई और हेतु नहीं होना चाहिए।

"लहना है सतनाम का, जो चाहै सो लेय।

जो चाहै सो लेय, जायगी लूट ओराई।"

और बहुत देर मत करो, कहीं ऐसा न हो कि दूसरे लूट लें; सब लुट ही जाए और तुम ऐसे ही बैठे रह जाओ!

"जो चाहै सो लेय, जायगी लूट ओराई।

तुम का लुटिहौ यार, गांव जब दहिहै लाई।"

और क्या तुम बैठे-बैठे तब की राह देख रहे हो जब सब पूरा गांव लूट लेगा, तब? तुमने कोई ऐसी जिद्द बांध रखी है कि जब सब लोग लूट चुकेंगे, तब आखिरी में हम।

"तुम का लुटिहौ यार, गांव जब दहिहै लाई।

ताकै कहा गंवार, मोठभर बांध सिताबी।"

इसलिए पलटू कहते हैं कि गंवार, इसलिए तुझको गंवार कहना पड़ रहा है कि तू काहे के लिए रुका है, पूरा गांव लूट लेगा तब तू लूटेगा?

"ताकै कहा गंवार... "

इसलिए मजबूरी है, तुझे गंवार कहना पड़ रहा है कि देर मत कर, जल्दी से खोल अपनी गठरी, और बांध लें, और जितना बांध सके बांध ले। "ताकै कहा गंवार, मोठभर बांध सिताबी।"

जल्दी कर और जल्दी से अपनी गठरी बांध ले, अपने हृदय को भर ले परमात्मा से। किस प्रतीक्षा में रुका है?

"लूट में देरी करै, ताहि की होय खराबी।"

जो देर करेगा वह व्यर्थ ही दुख पाता है। क्योंकि जब तक तुमने नहीं लूटा परमात्मा को तब तक तुम दुख में रहोगे, नरक में रहोगे।

लोग सोचते हैं नरक कहीं और हैं। तुम जहां हो, यह नरक है। जब तक परमात्मा नहीं लूटा, तब तक तुम नरक में हो। यह भी खूब मजेदार तरकीब पंडितों ने खोजी है कि नरक कहीं दूर, जमीन के पाताल में! तुम कभी

जाओगे नरक में, यह भी खूब मजेदार तरकीब है। इससे तुम निश्चिंत हो गए हो। तुम कहते हो, हम थोड़े ही हैं नरक में!

नरक में तुम हो।

मैंने सुना है, एक आदमी मरा, जब वह नरक पहुंचा तो बड़ा हैरान हुआ, वहां तो हालतें बड़ी अच्छी थींं। तो उसने पूछताछ की, शैतान के पास गया कि हमने तो बड़ी बदनामी सुनी है नरक की, यहां की हालतें तो बड़ी अच्छी हैं। पृथ्वी पर हालतें इससे ज्यादा खराब हैं।

शैतान ने कहा कि वह पंडितों की तरकीब है, अन्यथा असलियत यही है कि नरक वहीं है।

तुम जरा देखो तो अपने चारों तरफ, अपने भीतर, अपने बाहर। और क्या नरक होगा? और क्या बुरा हो सकता है? इससे ज्यादा और क्या पीड़ा हो सकती है, जिसमें तुम गुजर रहे हो? जब तक परमात्मा नहीं है, तब तक नरक है। इसलिए कहते हैं पलटू :

"लूट में देरी करै, ताहि की होय खराबी।

ताकै कहा गंवार, मोठभर बांध सिताबी।।"

जल्दी कर, बांध ले अपनी गठरी।

"बहुरि न ऐसा दांव, नहीं फिर मानुष होना।"

क्योंकि हजारों-हजारों जन्मों के बाद आदमी मनुष्य होता है। चौरासी कोटियों के बाद आदमी मनुष्य होता है। चौरासी करोड़ योनियों के बाद एक बार आदमी उस वर्तुल में आता है, उस जगह आता है जहां मनुष्य होता है। जैसे चाक घूमता है न! जब पूरा चाक घूम जाता है, तब फिर आरा ऊपर आता है; फिर गया नीचे, तो फिर पूरा चाक घूमेगा तब ऊपर आएगा।

पूरब के मनीषियों ने संसार को गाड़ी के चाक की तरह देखा है। वह जो भारत के ध्वज पर चाक का निशान है, वह जिन्होंने चुन कर रखा है, उनको शायद अंदाज भी न हो कि वह किसलिए चाक का निशान है। वह बौद्ध चक्र है। वह अशोक ने अपने पत्थरों पर खुदवाया था। प्रतीक है वह संसार का कि यहां सब चीज घूम जाती है। पूरा घूमना पड़ता है। फिर एक दफे चूके ऊपर आकर, तो फिर पूरा चक्कर है। फिर पूरा चाक जब होगा, तब फिर दोबारा लौटोगे। न मालूम कब दुबारा आदमी होओगे। "बहुरि न ऐसा दांव... " फिर दुबारा दांव मिले न मिले, अवसर आए न आए, या कब आए!

"बहुरि न ऐसा दांव, नहीं फिर मानुष होना।

क्या ताकै तू ठाढ़, हाथ से जाता सोना।।"

और तू खड़ा-खड़ा क्या कर रहा है? क्या ताक रहा है? दिखाईगीर क्यों बना है? तमाशबीन क्यों बना है? लूट ले!

अजहूं चेत गंवार!

"बहुरि न ऐसा दांव, नहीं फिर मानुष होना।

क्या ताकै तू ठाढ़, हाथ से जाता सोना।।

पलटू मैं ऊरिन भया, मोर दोस जिन देय।

लहना है सतनाम का जो चाहै सो लेय।।"

पलटू कहते हैंः और ख्याल रखना, मुझे जो कहना था मैंने कह दिया, मैं उऋण हुआ। मुझे मिल गया। इतना और ऋण बचा था।

जिस व्यक्ति को भी मिलता है, उस पर इतना ऋण बचता है कि वह दूसरों को भी कह दे। पलटू कहते हैं : मैंने अपनी गठरी भर ली, खूब दिल भर कर भर ली, कुछ कमी नहीं छोड़ी, संतोष के तखत पर विराजमान हो

गया हूं। तूर अठपहरा बाजै। इतना ऋण और बचा था कि तुमसे कह दूं कि कैसे मैंने लूटा, कैसे मैंने पाया और कैसे पाकर मैं धन्यभागी हुआ।

"पलटू मैं ऊरिन भया"... अब मेरी झंझट मिटी। मुझसे मत कहना पीछे। मैंने ऋण चुका दिया। "मोर दोस जिन देय... " इसलिए मुझे कोई भूल कर भी दोष न दे पीछे, फिर मुझसे मत कहना कि पलटू, तुम्हें मिल गया और हमको खबर न दी। हम तुम्हारे पास ही थे, हमें बता तो देते कि खजाना इतने करीब है। तुमने खोद भी लिया, गठरी भी भर ली, बैठ भी गए सिंहासन पर, आनंद में मगन भी हो गए--और हम भटकते ही रहे और अंधेरे में टटोलते ही रहे। हमें खबर तो दे देते, पुकार तो दे देते। जरा हमें चेता तो देते। फिर मुझसे मत कहना, मुझे दोष मत देना।

पलटू बड़ी प्यारी बात कह रहे हैं।

"पलटू मैं ऊरिन भया, मोर दोस जिन देय।

लहना है सतनाम का, जो चाहै सो लेय।।"

ना, अब मैंने सब दरवाजा खोल दिया है, सीधी-सीधी बात कह दी है कि यह पड़ा है सतनाम का लहना, यह प्रभु-स्मरण का धन है, जिसको लेना हो ले ले। फिर पीछे मुझसे मत कहना कि हमको खूब भटकाया; बता देते तो न भटकते।

पलटू के इन वचनों पर ध्यान करो। तुम्हारा जीवन नरक है। खड़े-खड़े क्या देख रहे हो? कब तक देखते रहोगे? पत्थर की मूरत हो गए हो। थोड़े हिलो-चलो। थोड़े उठो। थोड़े जीवन को गति दो। प्रभु सामने खड़ा है। प्रभु चारों तरफ विराजमान है। इसकी स्मृति को जगाओ। इस आह्लाद को अपने भीतर उतरने दो। यह किरण तुम्हारे भीतर जाना चाहती है। यह किरण तुम्हारे अंधेरे को तोड़ना चाहती है। यह सूरज तुम्हारे भीतर प्रभात बनना चाहता है। आंख खोलो।

और ऐसे भी बहुत देर हो चुकी है। कितने जन्मों से तुम भटक रहे हो! कितनी लंबी यात्रा तुमने की है! और सिर्फ धूल-धवांस के अतिरिक्त तुम्हारे हाथ कुछ भी न लगा। धन लगा ही नहीं। धन लगता ही नहीं हाथ, जब तक ध्यान न लगे।

ध्यान कुंजी है धन की--असली धन की। असली धन यानी जो मिल जाए तो फिर कभी खोता नहीं। यह धन तो मिल-मिल कर खो जाता है। यह धन तो मिला भी तो न मिला, बराबर है। धनी होकर भी, तुम देखते नहीं, लोग कितने गरीब हैं! सब है उनके पास और भीतर कुछ भी नहीं है। भीतर कोरा सन्नाटा और अंधेरा है; रुदन और आंसू भरे हैं। बाहर तिजोरी भरती चली गई है और भीतर आत्मा खाली होती चली गई है। जितनी तिजोरी भर ली है उतनी ही आत्मा बेच डाली है।

जीसस ने कहा है : अपनी आत्मा को बेच कर अगर तूने सारे संसार को भी पा लिया तो क्या? तूने बड़ा गलत सौदा कर लिया।

जागो! थोड़ा होश सम्हालो! थोड़े से कदम ठीक--और मंजिल दूर नहीं! थोड़ा होश अडिग--और मंजिल दूर नहीं है! थोड़ी श्रद्धा की स्फुरणा--और मंजिल दूर नहीं है! और नाव की पूजा में मत लगे रहना, माझी को खोजो।

"लहना है सतनाम का, जो चाहै सो लेय।"

न कोई रोक रहा है, न कोई पहरा है। न कोई कीमत मांग रहा है। मुफ्त मिल रहा है सब, मुफ्त लूटा जा रहा है परमात्मा।

"लहना है सतनाम का, जो चाहै सो लेय।।

जो चाहे सो लेय, जायगी लूट ओराई।

तुम का लुटिहौ यार, गांव जब दहिहै लाई।

ताकै कहा गंवार, मोठभर बांध सिताबी।

लूट में देरी करै, ताहि की होय खराबी।
बहुरि न ऐसा दांव, नहीं फिर मानुष होना।
क्या ताकै तू ठाढ़, हाथ से जाता सोना।।
पलटू मैं ऊरिन भया, मोर दोस जिन देय।
लहना है सतनाम का, जो चाहे सो लेय।।"

आज इतना ही।

दूसरा प्रवचन

मनुष्य का मौलिक गंवारपन

पहला प्रश्नः "अजहूं चेत गंवार"--पलटूदास जी का यह संबोधन तो सभी के लिए है; पर हम सबका एकमात्र गंवारपन क्या है? आप कृपा करके हमें कहें।

एक ही अज्ञान है कि हमें पता नहीं कि हम कौन हैं। फिर सारे अज्ञान उसी एक अज्ञान से पैदा होते हैं। एक ही बीज है; फिर तो वृक्ष बड़ा हो जाता है; फिर तो बहुत शाखाएं-प्रशाखाएं होती हैं; बहुत फूल-पत्ते लगते, फल लगते। और फिर एक बीज में बहुत बीज भी लगते हैं। वनस्पतिशास्त्री कहते हैं : एक छोटा सा बीज सारी पृथ्वी को हरियाली से भर देने में समर्थ है। और एक छोटे से अज्ञान के बीज ने मनुष्य को परिपूर्ण अंधकार से भर दिया है।

बीज है छोटा : यह बोध नहीं है कि मैं कौन हूं। और जिसे यही बोध नहीं है कि मैं कौन हूं, फिर वह जो भी करेगा गलत ही करेगा। जहां भीतर का दीया ही न जला हो, फिर तुम्हारे कृत्य के ठीक होने की कोई संभावना नहीं। और हम सब चेष्टा करते हैं कि कृत्य ठीक हो जाए। यह ऐसे ही है जैसे कोई अंधेरे में दीया तो न जलाए और ठीक-ठीक चलने का अभ्यास करे, ताकि अंधेरे में मैं बिना गिरे चल सकूं, बिना टकराए चल सकूं, दीवालों से सिर न फूटे, जब चाहिए तब दरवाजा मिल जाए।

काश, जिंदगी थिर होती तो यह संभव हो जाता! काश, ऐसा होता कि तुम एक ही मकान में सदा रहते, एक ही कक्ष में सदा रहते, तो धीरे-धीरे अभ्यास हो जाता। धीरे-धीरे तुम जानने लगते बिना दीये के जलाए, द्वार कहां है, दीवाल कहां है। जानने लगते टेबिल कहां रखी है, कुर्सी कहां रखी है। जानने लगते किस दिशा में जाएं, किस दिशा में न जाएं। तो दीये की भी जरूरत न थी। लेकिन जिंदगी रोज बदल जाती है, यह अड़चन है। यह जिंदगी का मकान परिवर्तनशील है। यहां एक क्षण को भी कुछ थिर नहीं है। यहां सब धारा है। यहां सब बह रहा है। यहां सब बदल रहा है। इसलिए कल तुमने जो कि तय किया था वह आज काम नहीं आता। आज जो तुम अनुभव करोगे, वह कल काम में नहीं आएगा। दीया तो जलाना ही होगा।

यह जिंदगी के सरित-प्रवाह में, केवल अभ्यास कर लेने से कृत्यों का, कोई परिणाम होने वाला नहीं है; बल्कि खतरा होता है। ऐसा सोचो कि कमरा रोज बदल जाता हो, रात तुम सोए कमरा घूम जाता हो; जहां दरवाजा था, दीवाल आ जाती हो और जहां दीवाल हो, दरवाजा आ जाता हो। कल तुमने अभ्यास कर लिया था, निश्चिंत होकर सोए थे कि अब तो सब पता हो गया, अब दोबारा सिर न टकराएगा, अब चोट न खाऊंगा; अब तो जब निकलना होगा बाहर तो निकल जाऊंगा; अब तो मैं जानता हूं। कल तुम निश्चिंत होकर सो गए थे, लेकिन रात सारा मकान बदल गया। तुम्हारा ज्ञान सहयोगी न होगा; और बाधा पड़ेगा। क्योंकि तुम निश्चिंत हो कि अब मैं जानता हूं। अब तुम एकदम से दीवाल से टकरा जाओगे। वहां कल दरवाजा था। आज वहां दरवाजा नहीं है।

इसलिए जिसको हम तथाकथित अनुभवी आदमी कहते हैं, वह और भी गड्ढों में गिरता है। बच्चे तो थोड़ा सम्हल कर भी चलें, अनुभवी सम्हल कर नहीं चलता। क्योंकि अनुभवी को ख्याल है कि मैं तो जानता ही हूं।

जानना तो सिर्फ एक है जगत में कि मैं कौन हूं। उससे ही भीतर का दीया जलता है और तुम्हारा सारा जीवन, तुम्हारे सारे कृत्य रोशन हो जाते हैं। और दीया फिर ऐसा है कि मकान बदलता रहे, बदलता रहे, जब दीया जल रहा है तो द्वार जहां होगा दिखाई पड़ जाएगा। यही नीति और धर्म का भेद है।

नीति सिखाती है क्या करो। नीति अभ्यास करवाती है--शुभ का, शिव का; बुरा छोड़ो, बुरे की आदत न डालो, भले की आदत डालो। नीति आचरण को बदलवाती है और अंतस अंधेरे से ही भरा रहता है। तो आचरण तो अच्छा भी हो जाता है, तो भी क्या परिणाम होता है! बुरे आदमी उन्हीं गड्ढों में तड़प रहे हैं जिनमें भले आदमी तड़प रहे हैं। कोई फर्क नहीं है।

जब मैं यह कहता हूं, तुम थोड़े चौंकोगे। तुम कहोगे बुरे आदमी कारागृह में बंद हैं और भले आदमी अपने महलों में बैठे हैं--फर्क क्यों नहीं है? ऊपर से जरूर फर्क है। उनके गड्ढे ऊपर से अलग दिखाई पड़ते हैं। लेकिन अगर गहरे में देखोगे तो अहंकार का एक ही गड्ढा है। उसमें कारागृह में बंद आदमी भी तड़प रहा है, उसमें मंदिर में बैठा हुआ पूजा करने वाला आदमी भी तड़प रहा है। गड्ढा एक है। अहंकार का गड्ढा है। गड्ढा एक है, क्योंकि अंधेरा एक है। न तो बुरा आदमी जागा है--जाग जाता तो बुरा क्यों होता! और यह वचन भी मुझे तुमसे कहने दो कि न भला आदमी जागा है--अगर जाग जाता तो भला क्यों होता! तुम थोड़े चौंकोगे। क्योंकि जागा हुआ आदमी न बुरा होता न भला होता। जागा हुआ आदमी तो बस जागा होता है। जागरण भलाई के उतने ही ऊपर है जितने बुराई के। जागा हुआ आदमी न तो दुर्जन होता न सज्जन होता। जागा हुआ आदमी बुद्ध होता, प्रबुद्ध होता।

बुद्ध से किसी ने पूछा है : आप कौन हैं? देख कर उनके अप्रतिम सौंदर्य को, लगता है जैसे कोई देवपुरुष उतर आया है इंद्रासन से पृथ्वी पर--तो पूछा है पूछने वाले ने : आप कौन हैं? क्या आप देवता हैं? इस वनस्थली में, इस एकांत निर्जन में, इस वट वृक्ष के नीचे बैठे, क्या आप स्वर्ग से उतरे कोई देवता हैं? आपके सौंदर्य को देख कर ऐसा लगता है इस पृथ्वी के नहीं हैं? पार्थिव नहीं है यह सौंदर्य। आप देवता हैं।

बुद्ध ने आंख खोली और कहा : नहीं, मैं देवता नहीं हूं।

उस आदमी ने पूछा : तो फिर आप किन्नर हैं? देवताओं की थोड़ी नीची कोटि--जो दरबार में देवताओं के संगीतज्ञ हैं, आप वे हैं?

बुद्ध ने कहा : नहीं, वह भी नहीं।

तो पूछा उस आदमी ने : आप चक्रवर्ती सम्राट हैं? इस पृथ्वी के सबसे बड़े राजा हैं?

बुद्ध ने कहा : नहीं, वह भी नहीं।

तो आप कौन हैं? मनुष्य तो होंगे कम-से-कम--उस आदमी ने पूछा। और बुद्ध ने कहा कि नहीं, मनुष्य भी नहीं हूं। तब तो वह आदमी जरूर अवाक रह गया होगा कि यह आदमी होश में है या बेहोश, पागल है! देवता नहीं, चलो न सही, चक्रवर्ती सम्राट न सही, न सही; मगर कम-से-कम मनुष्य! इसको भी इनकार करते हो!

तो उस आदमी ने पूछा : फिर आप कौन हैं?

बुद्ध ने कहा : मैं बुद्ध हूं। मैं जागा हुआ हूं। और जागा हुआ सिर्फ जागा हुआ होता है; उसकी और कोई सीमा नहीं होती; उसकी और कोई परिभाषा नहीं होती।

भीतर का दीया जल जाता है तो तुम रोशन हो जाते हो। तुम जागे हुए हो जाते हो। जागे हुए से बुराई तो होती ही नहीं--हो ही नहीं सकती। और जागे हुए को ऐसा बोध कैसे हो कि मुझसे भलाई होती है? जिससे बुराई होनी बंद हो गई, उसे यह बोध भी मिट जाता है कि मुझसे भलाई होती है।

जब तक तुम्हारे भीतर चोर है तब तक तुम्हारे भीतर दानी भी हो सकता है। जिस दिन चोर चला गया उस दिन दानी भी चला गया। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि दान नहीं होगा। उसी दिन दान होगा--लेकिन दानी नहीं होगा। तुमसे दिया तो जाएगा, लेकिन अब देने वाले का अहंकार निर्मित नहीं होगा। तुम यह दावा न करोगे कि मैं दानी हूं। तुमसे हिंसा तो नहीं होगी--अहिंसा भी नहीं रह जाएगी। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम्हारे जीवन में अहिंसा नहीं होगी--अहिंसा ही होगी। मगर मैं अहिंसक हूं, ऐसी थोथी धारणा नहीं बनेगी। जिस दिन बीमारी चली जाती है उसी दिन स्वास्थ्य का भी विस्मरण हो जाता है।

तुमने देखा या नहीं, सोचा या नहीं? सिर में दर्द होता है तो सिर की याद आती है। जब सिर में दर्द नहीं रह जाता तो सिर की कौन याद करता है? तुम जगत में ऐसा शोरगुल थोड़े ही मचाते फिरते हो कि आज मेरे सिर में दर्द नहीं है, कि आज मेरा सिर बिना दर्द के है। तो लोग हंसेंगे। लोग कहेंगे : तो जरूर दर्द है, अन्यथा कौन बात करता है सिर की! जब दर्द चला गया तो सिर भी चला गया। दर्द में ही बोध होता है। दर्द में ही चोट लगती है, दर्द में ही कांटा गड़ता है। जब बीमारी नहीं रह जाती तो स्वास्थ्य भी नहीं रह जाता।

तुम देखो, स्वास्थ्य की चर्चा बीमार लोग ही करते हैं! जो आदमी जितने स्वास्थ्य की चर्चा करे, समझना उतना ही बीमार है। बीमार आदमी प्राकृतिक चिकित्सा की किताबें पढ़ते हैं। और स्वास्थ्य के संबंध में बड़े जानकार हो जाते हैं। बीमार आदमी स्वास्थ्य की खोज में ही लगे रहते हैं कि स्वास्थ्य क्या है, कैसे बनाना कैसे नहीं बनाना, स्वास्थ्य का अर्थ क्या है? स्वास्थ्य नहीं है, इसलिए स्वास्थ्य क्या है, इसकी खोज है। बीमारी न हो तो बीमारी की छाया, वह जो स्वास्थ्य का विचार था, वह भी खो जाएगा।

परम स्वस्थ आदमी का लक्षण होता है कि उसे अपने शरीर का पता ही नहीं होता। विदेह अवस्था है परम स्वास्थ्य। उसे पता ही नहीं होता कि शरीर है। तुम्हें पता है पैर का? जब तक पैर सो नहीं गया तब तक पता नहीं चलेगा। जब पैर सो जाएगा और झुनझुनी चढ़ेगी, तब पता चलेगा। पैर में कांटा लगेगा तो पैर का पता चलेगा। सिर में दर्द होगा तो सिर का पता चलेगा।

संस्कृत में दुख और ज्ञान के लिए एक ही शब्द है--वेदना। वेद का अर्थ ज्ञान होता है। विद का अर्थ जानने वाला होता है। बड़ा अनूठा शब्द है वेदना। दुनिया की किसी भाषा में ऐसा शब्द नहीं है। संस्कृत के पास कुछ शब्द हैं जो दुनिया की किसी भाषा में नहीं हैं--हो नहीं सकते। क्योंकि जिन्होंने वे शब्द निर्मित किए, उन्होंने बड़ी अनुभूति से उन्हें रचा है। वेदना का अर्थ होता है जानना और वेदना का अर्थ होता है दुख। जब दुख होता है, तभी ज्ञान बनता है। दुख का ही ज्ञान होता है। इसलिए वेदना के दो अर्थ हैं; बड़े भिन्न अर्थ हैं। दोनों में कोई संबंध नहीं दिखाई पड़ता। कहां ज्ञान और कहां दुख! लेकिन दुख के अतिरिक्त कोई ज्ञान ही नहीं है। जब दुख चला गया तो ज्ञान भी चला गया। तब एक परम शांति, एक निर्मल शांति--जहां न दुर्जन है न सज्जन, न पापी है न पुण्यात्मा, न नास्तिक है न आस्तिक। हिंसा गई, अहिंसा गई। नीति गई, अनीति गई। झूठ गया, सच गया। वे द्वंद्व गए; निर्द्वंद्व हुए। इस निर्द्वंद्व दशा का नाम धर्म है।

नीति द्वंद्व में चुनाव करवाती है। कहती है : हिंसा छोड़ो, अहिंसा करो। झूठ छोड़ो, सच करो; चोरी न करो, दान करो; घृणा न करो, प्रेम करो। नीति कृत्य सिखाती है--ठीक कृत्य सिखाती है। धर्म? धर्म कृत्य की बात ही नहीं है। धर्म को आचरण से कुछ लेना-देना नहीं है। धर्म अपूर्व क्रांति है। धर्म कहता है, सिर्फ भीतर का दीया जले, फिर सब हो जाएगा; अपने से हो जाएगा। अपने से ही हो जाता है। फिर तुम्हें कुछ करना नहीं पड़ता।

इसलिए परम ज्ञानियों ने तुम्हें जीवन और आचरण के नियम नहीं दिए। उन्होंने तो सिर्फ, कैसे भीतर का दीया जल जाए, इसकी प्रक्रिया दी। प्रक्रिया का नाम ही ध्यान है।

तुम पूछते हो कि क्या है हमारा मौलिक गंवारपन? क्यों कहते हैं पलटू अजहूं चेत गंवार? अब जाग!

चेत शब्द को समझो। चेत का अर्थ जागना भी होता है, चेत का अर्थ चेतना भी होता है। चेत का अर्थ होता है सावधान। खूब सो लिए, आंख खोलो, जागो! काफी सो लिए, अब तक सोए ही रहे। कभी बुराई में सोए, कभी भलाई में सोए।

ऐसा समझो कि रात तुम सपने देखते हो। कभी सपना देखते हो कि साधु हो गए। हाथ में कमंडलु लिए भिक्षा मांगने निकले हो। और कभी सपना देखते हो कि हत्यारे हो गए, चोर हो गए और डाका डालने निकले। नैतिक व्यक्ति कहेगा : अच्छा सपना देखो; साधु बनो, असाधु न बनो। धार्मिक आदमी कहेगा : सपने सब सपने हैं। चाहे तुम चोर बनो सपने में और चाहे साधु बनो, क्या फर्क है? सुबह जाग कर पता चलेगा दोनों झूठे थे।

इसलिए धार्मिक व्यक्ति कहता है : अब जागो! सपने कब तक बदलते रहोगे? ऐसे ही हम सपने बदलते रहे हैं। एक सपने से थक जाते हैं तो विपरीत सपना देखने लगते हैं। रोज हो रहा है ऐसा। जब तक मन की इस अवस्था को तुम ठीक से ख्याल में न लोगे, जागोगे नहीं. . .।

एक आदमी बहुत भोजन करता है तो ऊब जाता है; फिर भोजन से कष्ट होने लगता है, सुख तो मिलता नहीं। बहुत करने से कष्ट होने लगता है। जब कष्ट होने लगता है तो उपवास की सोचने लगता है। एक अति से दूसरी अति पर चला। जब कष्ट बहुत होने लगा तो आदमी सोचता है उपवास कर लूं। और मेरे अनुभव में ऐसा आया कि भोजन कम करना ज्यादा कठिन है, भोजन न करना ज्यादा आसान है। मैंने अनेक लोगों को देखा। उनसे अगर कहो कि थोड़ा सम्यक भोजन करो, इतना मत करो, आधा कर दो--वे कहते हैं, यह कठिन है। आप कहो तो बिलकुल बंद कर दें।

अति पर जाना मन को आसान है, मध्य में आना मन को कठिन है। निश्चिंत ही जब खूब दुख भोग लिया ज्यादा भोजन करके, पेट में दर्द है और सिर भारी है और दिन में आलस्य छाया रहता है और प्रतिभा में निखार नहीं रह गया, सब धुंधला-धुंधला हो गया, अंधेरा-अंधेरा और शरीर बेढब हुआ जाता है, शरीर सौंदर्य खोए देता है और जिंदगी एक बोझरूप मालूम होने लगी--तो तुम जल्दी से उपवास का सोचने लगते हो। चले उरली कांचन--उपवास कर लें। और तुम्हें उपवास करने वाले, करवाने वाले मिल जाते हैं। मगर तुम्हारे जीवन की दशा को कोई नहीं समझता कि अड़चन कहां है।

तुम उपवास कर लोगे--कितने दिन? कोई जीवन भर उपवास कर सकता है? दस-पांच दिन उपवास करके घर आओगे, फिर अति पर पहुंच जाओगे। क्योंकि दस-पांच दिन जब उपवास किया तो भोजन ही भोजन का सोचोगे। और करोगे क्या? उपवासी आदमी भोजन ही भोजन की सोचता है; और कुछ सोचता ही नहीं। उसके चित्त में एक ही धारा बहती है--भोजन, भोजन। वह बड़ी योजनाएं बनाता है।

देखते हैं न जैनों के पर्यूषण के बाद। सोहन इधर बैठी है, उससे पूछना। वह अठई करती रही है। आठ दिन क्या सोचती रही? वह नौवें दिन की बात सोचेगी कि नौवां दिन आता है, अभी आया ही जाता है। पर्यूषण जैनों के खत्म होते, देखते हैं एकदम सब्जी-बाजार में दाम बढ़ जाते हैं सब्जियों के। आठ-दस दिन किसी तरह रोक लिया है--बलपूर्वक, हिंसात्मक ढंग से। क्योंकि हिंसा है उपवास। ज्यादा खाना तो हिंसा है ही, उपवास भी हिंसा है। ज्यादा खाने में भी तुम शरीर को सताते हो इसलिए हिंसा है और कम खाकर भी शरीर को सताते हो, इसलिए हिंसा है। सताते तुम दोनों हालत में हो। तुम्हारी दुष्टता जाती नहीं। कभी धर्म के नाम पर सताते हो, कभी अधर्म के नाम पर सताते हो, मगर सताते तुम निश्चित हो। आठ-दस दिन सता लिया--आशा में कि स्वर्ग मिलेगा। लोभ में किसी तरह बांध कर आठ-दस दिन गुजार लिए।

इसलिए जब जैन उपवास करते हैं तो मंदिर में रहते हैं ज्यादा समय, क्योंकि वहां आसानी पड़ती है; वहां और भी उन्हीं जैसे दुष्ट अपने को सताए हुए बैठे हैं। उनको देख कर राहत मिलती है कि हम कोई अकेले नहीं हैं। नाव में और बुद्धू भी सवार हैं। अकेले होने में आदमी को शंका होने लगती है, संदेह होने लगता है कि पता नहीं मैं यह क्या कर रहा हूं। उपवासी आदमी को रेस्तरां में जाकर बिठा दो, तो उसे बड़ी अड़चन होगी, क्योंकि सब लोग भोजन कर रहे हैं, गुलछर्रे उड़ा रहे हैं, चर्चा कर रहे हैं; भोजन की सुगंधियां उठ रही हैं, नासापुटों को उत्तेजित कर रही हैं, भूख को जगा रही हैं। उपवासी आदमी रेस्तरां में जाकर नहीं बैठता; मंदिर जाता है। वहां भोजन से दुनिया बिलकुल दूर है। वहां न भोजन की गंध उठती है, न कोई भोजन करता है, न कोई भोजन लाता है। और जितने बैठे हैं वे भी ऐसे उदास, मुर्दा; वे भी ऐसे ही अपने को सताए हुए। वहां आसानी है। फिर, वहां धर्म-चर्चा चल रही है।

धर्म-चर्चा का कुल अर्थ इतना होता है कि यहां, तुम जो कर रहे हो, इसका बड़ा फल तुम्हें स्वर्ग में मिलेगा। मोक्ष मिलेगा। परम धाम मिलेगा। वहां परम ऐश्वर्य सुख ही सुख, कल्पवृक्ष! तो बैठा उपवासी आदमी सोचता है कि थोड़े दिन की बात और है, फिर तो कल्पवृक्ष के नीचे बैठेंगे और जो भी चाहिए वह प्राप्त कर लेंगे; जैसा चाहिए, जब चाहिए उसी क्षण मिलेगा। ऐसे किसी दिन दस-पांच दिन धर्म-चर्चा सुन कर लोभ का विस्तार करके गुजार दिए, फिर इसके बाद तुम एकदम भोजन पर टूटते हो। वह जो दस दिन का उपवास है, उसका बदला लोगे न। उसका बदला कहां जाएगा! वह तो लेना ही पड़ेगा। अब मन दस दिन भूखा रह-रह कर ऊब गया; अब मन कहता है, ठीक से खा लो, अब तो ठीक से खा लो, अब दो-चार दिन तो बिलकुल स्वतंत्रता दे दो!

तो जितना उपवास में वजन गिरता है, उसके पांच-सात दिन के भीतर उतना वजन वापस बढ़ जाता है; थोड़ा ज्यादा ही बढ़ जाएगा, क्योंकि उपवास भूख को भी जगा देता है और शरीर को राजी कर देता है ज्यादा पचाने के लिए। तो शरीर झपट्टा मार देता है; जल्दी पचाने लगता है; जल्दी खाने लगता है। पाचक-रस जल्दी छूटते हैं, ज्यादा छूटते हैं।

तो तुम देखोगे, उपवास में वजन गिर जाएगा, दो-चार दिन में वजन फिर उतना ही हो जाएगा; थोड़ा ज्यादा भले हो जाए, कम तो नहीं होने वाला। फिर तुम सोचने लगोगे कुछ महीनों के बाद उपवास कर लें। ऐसा मनुष्य का द्वंद्व है।

स्त्रियों के पीछे भागते-भागते परेशान हो गए, एक दिन तय करते हो अब स्त्रियों को छोड़ कर जंगल में भाग जाएं--यह स्त्री नरक का द्वार है! या पुरुषों के पीछे बहुत ज्यादा सिर फोड़ा-फाड़ी हो गई है; सब देख लिया संसार, कुछ रस नहीं पाया--अब सोचते हैं कि अब, अब छोड़-छाड़ दें, इस सबसे हट जाएं। मगर एक अति से दूसरी अति. . .।

तो नीति तुम्हें एक अति से दूसरी अति पर ले जाती है। क्रांति नहीं हो पाती। अति से मुक्ति में क्रांति है। मध्य में खड़े हो जाने में क्रांति है। संतुलन में क्रांति है। सम्यकत्व क्रांति है।

सम्यकत्व शब्द को समझो। उसका मतलब है समतुल; ठीक बीच में आ गए, जैसे तराजू के दोनों पलड़े बराबर हो जाते हैं और कांटा बीच में आ जाता है। न इधर झुके न उधर झुके। न संसार में झुके और न मोक्ष में झुके; मध्य में खड़े हो गए।

वही तो पलटू ने कल कहा कि इड़ा-पिंगला मेरे दो पलड़े हो गए, दोनों को सतनाम की डांडी से सम्हाल लिया है।

जैसे-जैसे तुम्हारे भीतर बोध बढ़े, वैसे-वैसे तुम्हारे भीतर संतुलन आता है। तुम्हारे भीतर द्वंद्व कम हो जाता है। यह निर्द्वंद्व दशा का नाम ही अद्वैत है।

एक ही भूल है कि तुम्हारा दीया जला हुआ नहीं है।

आचरण को सुधारने में बहुत चिंता मत लगाओ। और ध्यान रखना, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आचरण को बिगाड़ने में चिंता लगाओ। जब मैं सुधारने तक को दो कौड़ी का मानता हूं तो बिगाड़ने को कैसे मूल्य दे सकूंगा! मैं कहता हूं आचरण से दृष्टि को बदलो, गेयर बदलो, अंतर्मुखी बनो।

भीतर अंधेरा है। इसको कैसे रोशन करें, यहां कैसे प्रकाश प्रकटे, कैसे उजाला हो?

ध्यान से उजाला होता है। ध्यान है ज्योति जलाने की प्रक्रिया। और मजा ऐसा है कि सब साधन मौजूद हैं। तुम्हारे घर में दीया है तेल-भरा, बाती-लगा, माचिस भी रखी है। जरा माचिस को रगड़ना है। जरा माचिस को रगड़ना है कि ज्योति पैदा हो जाएगी। फिर माचिस से ज्योति को बाती से छुआ देना है, छुआ देना है कि दीया जल उठेगा।

तुम सब लेकर आए हो। तुम्हारे अंतरतम में सब मौजूद है। जो होना चाहिए, वह सब मौजूद है। जो-जो जरूरी है, सब मौजूद है। थोड़ा संयोजन करना है। थोड़ा सा संयोजन। तुम्हारे भीतर साक्षी-भाव की संभावना छिपी पड़ी है। जरा चेष्टा, जरा अपने को झकझोरना।

उसी झकझोरने को पलटू कहते हैं : अजहूं चेत गंवार!

अब तो जाग! अब तो जाग खूब सो लिया, कितना सो लिया! सोते-सोते जन्म-जन्म बीते, सदियां बीतीं, अनंत काल बीत गया। अब आंख खोल। बहुत सपने देखे, अब सत्य को देख। स्वयं को देख।

दूसरा प्रश्नः संत पलटूदास कहते हैं कि भावगत-धन की लूट हो रही है और "जो चाहे सो लेय"। यदि ऐसी बात है तो क्यों इस बात का धनी करोड़ों में एकाध हो पाता है?

धन की लूट तो हो रही है, लेकिन तुम्हें धन दिखे, तब न! नदी बही जा रही है, लेकिन तुम्हें प्यास लगे, तब न, तो तुम पीओ! प्यासे को नदी दिखाई पड़ती है। और प्यासे को, नदी हजारों मील दूर भी बह रही हो, तो भी वह यात्रा करके नदी तक पहुंच जाता है। और गैर-प्यासे के सामने, घर के सामने से बहती हो गंगा तो भी दिखाई नहीं पड़ती।

ख्याल रखना, तुम्हें वही दिखाई पड़ता है जिसकी तुम खोज कर रहे हो। जिसे तुम देखने निकले हो वही दिखाई पड़ता है।

कहते हैं, चमार जब रास्ते पर चलते लोगों को देखता है तो उसे सिर्फ लोगों के जूते दिखाई पड़ते हैं। सिर्फ जूते दिखाई पड़ते हैं। जूते ही खोजने चला है। जूतों से हिसाब लगाता रहता है। जूता देख कर पहचान लेता है चमार; करीब-करीब तुम्हारे जूते से तुम्हारी पूरी आत्मकथा पहचान लेता है। जूते की खस्ता हालत बता देती है कि शायद हार गए चुनाव में इस बार। जूते पर चमक, दर्पण जैसी चमक दिखा देती है कि मालूम होता है जीत गए। जूते की चमक बता देती है कि जेब गर्म है कि ठंडी। जूते की हालत बता देती है कि बुलाए, तुम्हारे साथ मेहनत करें कि गुजर जाने दे। जूते की हालत बता देती है कि भैया, गुजर ही जाओ तो अच्छा है, कहीं और ही चले जाओ तो अच्छा है; यहां न लौट आना, नहीं तो उधारी करोगे।

चमार जूते को देखता है। चमार जूता देखने को ही बैठा है। उसकी नजर वहां लगी है। दर्जी तुम्हारे कपड़े देखता है। दर्जी तुम्हें नहीं देखता। उसे तुम्हारे कपड़े ही दिखाई पड़ते हैं।

तुम जो खोजने निकले हो, वही तुम्हें दिखाई पड़ता है। इस सत्य को खूब गहराई में पकड़ो। वही रास्ता, वही सड़क, वही बाजार, तुम अलग-अलग बार निकले हो और तुम्हें अलग-अलग दुकानें वहां दिखाई पड़ी हैं। तुमने कभी सोचा? जीवन के छोटे-छोटे तथ्यों पर विचार करो, और वहां से बड़े तथ्यों की पकड़ आएगी। जब तुम भूखे होते हो तो भोजनालय और रेस्तरां और होटल, यही दिखाई पड़ते हैं। उपवास करके एक दिन जाओ बाजार में और तुम पाओगे अरे, इतने रेस्तरां हैं यहां! इतनी होटलें! इतनी दुकानों पर भोजन बिक रहा है! यह तुम्हें कभी ख्याल में न आया था। तुम भरे पेट निकले थे। ख्याल में आने का कोई कारण न था। फिर एक दिन भरे पेट जाओ, फिर वे दिखाई न पड़ेंगे।

जिसकी कामवासना पीड़ित है, उसे रास्ते पर पुरुष नहीं दिखाई पड़ेंगे, स्त्रियां दिखाई पड़ेंगी। उसे पुरुष छूट ही जाएंगे। पुरुषों को वह मद्देनजर कर जाएगा। वे गुजरेंगे जरूर, लेकिन उनकी कोई छाप न बनेगी। लेकिन जिसकी कामवासना तृप्त है, उसे स्त्री-पुरुषों से कोई भेद नहीं पड़ेगा। और जो कामवासना के पार जा चुका है, उसे तो यह भी भेद करना मुश्किल हो जाएगा कि कौन स्त्री है, कौन पुरुष है। स्त्री-पुरुष का भेद तुम तभी तक करते हो जब तक तुम्हारे भीतर तलाश है, तुम्हारे भीतर वासना प्रदीप्त है। नहीं तो कौन चिंता करता है!

तुमने ख्याल किया? तुम वही देखते हो जो तुम खोज रहे हो। तो पलटू तो कहते हैं कि भागवत-धन की लूट हो रही है, यह सामने ढेरी लगी है, लूट सको तो लूट लो। खड़े-खड़े क्या देख रहे हो, पलटू कहते हैं। लेकिन जो खड़े-खड़े देख रहा है उसको वहां धन दिखाई नहीं पड़ रहा। उसे वहां कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा है। या यह भी हो सकता है कि जो लूट रहे हैं वे उसे पागल मालूम होते हों। क्योंकि जब उसे धन नहीं दिखाई पड़ता और ये टूटे पड़ रहे हैं तो पागल ही तो मालूम होंगे। ये किस चीज पर टूटे पड़ रहे हैं? यहां कुछ भी तो नहीं है। उसे लगेगा ये सब मन की कल्पना के जाल में पड़ गए हैं।

ऐसा ही तो होता है। तुम यहां बैठे हो; जो लोग यहां नहीं हैं, वे तुम्हें पागल समझते हैं। वे पागल समझेंगे ही। वे कहेंगे : किन कल्पनाओं में पड़े हो! अरे यथार्थ जगत को देखो। किस सम्मोहन में उलझ गए हो? किसकी बातों में उलझ गए हो? ये सब बातें हैं। इनमें मत उलझ जाना, नहीं तो घर-गृहस्थी खराब हो जाएगी। बाल-बच्चों को देखो। पत्नी को देखो, परिवार को देखो। अपने कर्तव्य का ध्यान रखो। यथार्थ को देखो। ये किन बातों में पड़े हो? इतना समय दुकान पर लगाओ, बाजार में लगाओ। कुछ कमाओ। कमाई हाथ में आएगी तो कुछ काम आएगी। यह धर्म-चर्चा, तत्व-चर्चा, यह किस काम में आएगी? इसकी रोटी बनाओगे कि कपड़े बनाओगे कि इससे छप्पर बनाओगे? इससे बच्चों का पेट नहीं भरेगा और न पत्नी के लिए साड़ी खरीद सकोगे। किस झंझट में पड़ गए हो?

लोग तुम्हें समझाते हैं। लोग तुम्हें कहते होंगे : अभी भी लौट आओ; अभी ज्यादा नहीं गए हो, नहीं तो फिर पीछे लौटना मुश्किल हो जाएगा। कहीं ज्यादा मत उतर जाना इसमें, होश-हवास न खो देना। औरों ने खो दिया है।

उनकी बात भी ठीक तो है--उनकी तरफ से ठीक ही है।

अब यहां लोग मेरे पास आए हैं, दूर-दूर से आए हैं। कोई जापान से है, कोई जर्मनी से है, कोई ईरान से है, कोई इथिओपिया से है, कोई अमरीका से है, कोई स्वीडन से आया है, कोई इंग्लैंड से है, कोई इटली से है। दूर-दूर से लोग आए हैं। करीब-करीब जमीन के हर तरफ से लोग यहां मौजूद हैं; सिर्फ चीन और रूस को छोड़ कर, क्योंकि वहां से आ नहीं सकते। लेकिन मेरे पड़ोसी भी हैं यहां पूना में, वे नहीं आए हैं। वे समझते हैं ये सब पागल हो गए हैं, इनका दिमाग खराब हो गया है। और उनकी बात में भी सच्चाई है, उनकी तरफ से सच्चाई है। उनको यहां कुछ दिखाई नहीं पड़ता, यहां धन लुट ही नहीं रहा है। धन तो वे कमा रहे हैं। तुम तो यहां बैठे-बैठे धीरे-धीरे निर्धन हो जाओगे। तुम्हें लग रहा है कि तुम धन लूट रहे हो।

तो एक बात समझो, धन और "धन" भी तो देखना पड़ता है! जिन्हें बाहर की वस्तुओं में धन दिखाई पड़ता है, उन्हें भीतर की वस्तुओं में धन नहीं दिखाई पड़ता। जिन्हें भीतर की वस्तुओं में धन दिखाई पड़ जाता है उन्हें बाहर की वस्तुओं में धन नहीं दिखाई पड़ता।

बुद्ध ने अपना राजमहल छोड़ा तो उनके सारथी ने, जब उन्हें छोड़ने गया जंगल में, उसने उनके पैर पकड़ लिए सारथी ने। बूढ़ा सारथी, बचपन से बुद्ध को रथ पर घुमाया है। बचपन से बुद्ध को बढ़ते हुए देखा है। उसका भी बेटे जैसा लगाव है बुद्ध से। उसने बुद्ध के पैर पकड़ लिए और कहा कि यह क्या कर रहे हो, यह जंगल में कहां जा रहे हो? इस महल को छोड़ कर--इस संगमरमरी महल को छोड़ कर! उस सुंदर यशोधरा को, तुम्हारी पत्नी को छोड़ कर! उस नए-नए पैदा हुए बेटे राहुल को छोड़ कर! अपने बूढ़े बाप को छोड़ कर! तुम जा कहां रहे हो? तुम बूढ़े बाप के हाथ की लकड़ी हो। और यह सुंदर महल और यह सारा वैभव! जंगल में मिलेगा क्या? तुम मुझसे पूछो--मुझ बूढ़े से पूछो! मैं जंगलों में खूब भटका हूं, वहां कुछ भी नहीं है। और दुनिया तो महलों की तरफ जाना चाहती है। तुम्हारा दिमाग ठीक है? तुम महल से छोड़ कर जा रहे हो! कौन नहीं जो राजा न होना चाहे! और तुम राजा होना, तुम्हारे हाथ में है और छोड़ कर जा रहे हो!

वह बूढ़ा रोने लगा। उसकी बात भी तो ठीक है। उस बूढ़े को जंगलों में कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। उसे सब महल में दिखाई पड़ता है।

गरीब आदमी का धन महल में मालूम होता है। यह तो कभी किसी अमीर को समझ में आता है कि महल में कुछ भी नहीं है। यह तो किसी अमीर के अनुभव में बात उतरती है कि यहां कुछ भी नहीं, क्योंकि देख लिया, कुछ पाया नहीं। शोरगुल तो बहुत है, सार बिलकुल नहीं है।

बुद्ध हंसने लगे। उन्होंने कहा, तू तेरी तरफ से ठीक कहता है, लेकिन मेरी तरफ से वहां कुछ भी नहीं है। वहां से मैं देख कर आ रहा हूं। तू तो बाहर-बाहर था बूढ़े। तू तो सारथी ही था। मैं भीतर रह कर आ रहा हूं, वहां कुछ भी नहीं है। और जिन्हें तू महल कहता है--सुंदर, आलीशान, वैभव से भरे, संगमरमर के--उन्हें मैं केवल लपटों में जलता हुआ देख रहा हूं। मुझे जल्दी दूर निकल जाने दे। इसके पहले कि वे मुझे भी खाक कर दें, क्योंकि वे बहुतों को खाक कर चुके हैं--मेरे पिता के पिता और उनके पिता और उनके पिता, वे सब वहीं खाक हो गए हैं--मुझे भाग जाने दे। वहां लपटें उठ रही हैं।

वह बूढ़ा देखता है महल की तरफ, वहां कोई लपटें नहीं है। यह बड़ा दृष्टियों का भेद है। और बुद्ध ने जो कहा था ठीक ही कहा था। क्योंकि जंगल में ही मिला। जो धन था, परमधन था, वह एक दिन बैठ कर जंगल में ही मिला। वह छह साल की अथक खोज के बाद एक दिन निरंजना नदी के तट पर बटवृक्ष की छाया में बैठे हुए वह धन बरसा।

तो एक अदृश्य धन है। तभी तक अदृश्य है जब तक तुम्हारी आंखें बाहर से उलझी हैं। उसी दिन दृश्य हो जाएगा जिस दिन तुम्हारी आंखें बाहर से मुक्त हो गई। दृष्टि की क्रांति चाहिए।

तुम पूछते हो : "पलटू कहते हैं भागवत-धन की लूट हो रही है और जो चाहे सो लेय"।

ठीक कहते हैं--शत-प्रतिशत ठीक कहते हैं। बस चाहना ही पर्याप्त है लेने के लिए। जो चाहै सो लेय। कोई रोक नहीं रहा है।

समाधि का धन ऐसा है कि उसे कोई भी रोक नहीं रहा है तुम्हें। कोई बाधा नहीं डाल रहा है। मगर बड़ा मजा है। जिस धन पर बड़ी बाधाएं हैं, जो तुम्हें मिलना एकदम आसान नहीं है, उस पर तुम टूटे पड़ रहे हो और जो मिल भी गया अगर, तो भी कुछ मिलेगा नहीं, उस पर तुम टूटे पड़ रहे हो, उस पर लूट मची है। और जो धन कोई भी छीनने को नहीं मालूम हो रहा और जो धन इतना है कि सभी को मिल जाए, तो भी न्यून नहीं होता--उस धन की तरफ तुम जा भी नहीं रहे हो।

तुम सब भागे जा रहे हो बाहर की तरफ। और तुम्हारा धन तुम्हारे भीतर है। तुम्हारा धन तुम हो। तुम्हारे होने में, तुम्हारी सत्ता में तुम्हारा धन है। तुम्हारे शून्य में, तुम्हारे मौन में, तुम्हारा धन है। तुम्हारे अस्तित्व में समाया है धन।

खजाना लेकर तुम आए हो। चाबी भी तुम्हारे पास है। लेकिन इस चाबी को तुम कभी भीतर की तरफ लगाते नहीं, बाहर की तरफ लगाते हो। यही आंखें जो बाहर की तरफ भाग रही हैं, दूर दिशाओं में दौड़ी चली जा रही हैं, यही आंखें लौट कर अपने धन को खोज लेती हैं। यही हाथ जो और सारे संसार को पकड़ते फिर रहे हैं, इन्हीं हाथों में छिपी ऊर्जा भीतर की तरफ लौट कर परम धन को सम्हाल लेती है। लेकिन कोई रोकता नहीं। फिर भी तुम उसके प्यासे नहीं।

तुम अभी संसार से थके नहीं हो। तुम्हें लगता है यहां शायद हो। आज नहीं मिला, कल मिले। जितना मिला है शायद इतने से तृप्ति नहीं हो रही; थोड़ा और ज्यादा मिले, तो तृप्ति हो जाए।

दस हजार तुम्हारे पास हैं, तो शायद दस लाख होंगे तो तृप्ति हो जाएगी। दस लाख होंगे तो मन कहेगा : दस करोड़ हो जाएं तो तृप्ति हो जाएगी। और मन के फैलाव का कोई अंत नहीं है। मन आंकड़े बड़े करता चला जाता है। तुम जहां रहोगे वहीं से मन के आंकड़े बाहर और भविष्य की तरफ विस्तीर्ण हो जाएंगे। मन क्षितिज की तरह फैलता चला जाता है। मन कभी भी तुम्हें ऐसा मौका न देगा कि अब आगे नहीं है।

मर गया होता कभी का आपदाओं की कठिन मार से।

यदि नहीं आशा श्रवण में नित्य यह संदेश देती प्यार से--
घूंट यह पी लो कि संकट जा रहा है
आज से अच्छा दिवस कल आ रहा है।

मर गया होता कभी का आपदाओं की कठिनतम मार से! कभी का यह मन मर गया होता, लेकिन यह मन आशा का दीया जलाए रखता है। यह मन कहता चला जाता है : यदि नहीं आशा श्रवण में नित्य यह संदेह देती प्यार से! बड़ी मीठी बातें कहता है मन। मन कहता है फिकर न करो। दुर्दिन गए, भले दिन आने को ही हैं। अब मत लौटो। करीब आकर मत लौट जाओ। अब तो बिल्कुल हाथ में ही है मंजिल, अब न लौट जाओ। पागल हुए हो? इतनी दूर चल आए, अब कहां लौट कर जाते हो?

घूंट यह पी लो कि संकट जा रहा है
आज से अच्छा दिवस कल आ रहा है।

कल कभी आता नहीं। और मन कहे चले जाता है : आ रहा है, आ रहा है! बस जरा ही दूर है, आया ही जाता है। कल कभी आता नहीं। कल सदा दूर ही बना रहता है। तुम्हारे बीच और कल के बीच दूरी शाश्वत है; सदा उतनी ही रहेगी जितनी सदा से है। उसमें कभी कोई कमी नहीं पड़ेगी। और मन सदा कल की बातें करता रहेगा।

यह जो मन का धन है, कल में है। और कल आता नहीं। और यह असली धन है वह अभी है, यहीं है और तुम्हारे भीतर है और तुम्हारे साथ ही आया है। असली धन खोता ही नहीं, सिर्फ विस्मरण होता है। और नकली धन कभी मिलता ही नहीं, सिर्फ आशा बंधती है।

तो पलटू कहते तो ठीक ही हैं कि जो चाहे सो लेय। जिस दिन चाहोगे, जिस दिन भी तय कर लोगे कि बस ऊब आया, थक गया, अब और कल की दौड़ नहीं, अब और आपाधापी नहीं, समझ लिया मन को; मन का गणित समझ में आ गया है कि यह तो रोज ही यही कहे चला जाएगा कि कल, कल, कल; इस जन्म में नहीं, अगले जन्म में; यहां नहीं, स्वर्ग में; यहां नहीं, कहीं और! मन सदा कहता है : कहीं और है सुख!

देखो, भिखमंगा सड़क पर सोचता है चलते समय महल में जो विराजमान है वहां है सुख। और महल में जो बैठा है परेशान-पीड़ित, रात भर सो भी नहीं सका... महल में नींद कहां! जिसकी भूख भी मर गई. . . महल में भूख कहां! जो किसी तरह दवाइयों के सहारे जीए जा रहा है, वह सोचता है रास्ते पर चलते भिखारी को देख कर कि शायद इस भिखमंगे की मस्ती में सुख हो--देखो किस मजे से चला जा रहा है एकतारा बजाता! देखता है इस भिखमंगे को रास्ते पर सोया हुआ धूप में, घनी धूप में, और गुर्राटे ले रहा है! और वह अपने महलों में सुंदरतम बिस्तर बनाए हुए है, तो भी नहीं सो पाता। नींद असंभव हो गई है, चैन हराम हो गया है। भिखमंगे को देख कर, उसकी चाल को देख कर, उसकी मस्ती को देख कर, उसके निर्द्वंद्व भाव को देख कर, अमीर को लगता है शायद सब छोड़ देने में सुख है।

तुम भी ऐसा सोचते हो, इसलिए मैं तुमसे कह रहा हूं। सोचना। तुम सदा ऐसा सोचते हो कोई और सुख पा रहा है। शहर में रहने वाला सोचता है गांव में रहने वाले लोग बड़े सुखी हैं। गांव वाले से तो पूछो कभी। गांव वाला लाख कोशिश कर रहा है कि कैसे शहर पहुंच जाए। बंबइया सोचता है कि कैसे गांव पहुंच जाए और गांव वाला सोचता है कैसे बंबइया हो जाए। गांव वाले की एक ही आशा लगी है कभी बंबई पहुंच जाए। और बंबई वाला सोचता रहता है, कविताएं भी पढ़ता है। वे बंबइए ही लिखते हैं। वे कविताएं भी बंबई में रहने वाले लोग लिखते हैं--गांव के सौंदर्य की, गांव की प्रकृति की, गांव के निसर्ग की। गांव-वांव जाते नहीं वे। कौन रोक रहा है तुम्हें गांव जाने से?

मैं दिल्ली में था और एक हिंदी के बड़े कवि मुझे मिलने आए। उन्होंने एक कविता सुनाई। गांव की बड़ी प्रशंसा! मैंने उनसे पूछा, कविता तो ठीक है मगर एक सवाल पूछूं, नाराज तो न होओगे? उन्होंने कहा कि नहीं।

वे सोचे कि शायद मैं कविता के संबंध में कुछ पूछ रहा हूं। मैंने कहा, तुम्हें रोकता कौन है? दिल्ली में तुमसे कह कौन रहा है कि तुम रहो? कोई दिल्ली तुम्हारे पीछे पड़ी है? तुम गांव जाते क्यों नहीं?

वे तो जरा चौंके। दस-पांच और लोग बैठे थे, वे जरा बेचैन भी हो गए। इसका उत्तर क्या दें!

. . .रोकता कौन है तुम्हें? अभी निकल जाओ। टिकिट की दिक्कत है? तो मैं जिनके घर में ठहरा था, मैंने उनको कहा कि टिकिट का इंतजाम कर दें। इनको अब जाने दें। न पत्नी है न बच्चे हैं। दिल्ली में भी घर-द्वार नहीं है; होटल में रहते हैं। काहे परेशान हो? कौन से गांव जाना है? मैंने उनसे पूछा।

उन्होंने कहा : आप भी खूब हैं! क्या मुझे भेज ही देंगे?

मैंने कहा : किस गांव की यह तस्वीर तुमने उतारी है?

कहने लगे : यह किसी गांव की नहीं, यह तो गांव मात्र की है।

मैंने कहा : फिर भी तो कोई गांव. . .? यह कहीं है जमीन पर, वहां तुम्हें भेज दें? और तुम दुबारा लौट कर दिल्ली मत आना।

उन्होंने कहा कि यह तो कविता है। आप भी इसको बड़ी गंभीरता से ले रहे हैं। मैं तो समझा कि इतनी तुमने मेहनत की है, रात देर तक जगे होओगे, कविता लिखी है, जोड़-तोड़ किया, शब्द बनाए, तो कुछ मतलब की होगी। कौन रोकता है?

लेकिन ये गांव जाते नहीं। ये गांव से ही आए हैं और इनको भलीभांति पता है कि गांव का सौंदर्य कैसा है। अभी बरसा के दिन हैं तो कीचड़ ही कबाड़ है वहां। और मच्छर हैं। और खटमल हैं और हजार तरह की बीमारियां हैं। और भुखमरी है। और यह सब प्रकृति और सौंदर्य, यह सब बकवास शहर में बैठे आदमी को सूझ रही है।

लेकिन तुम जहां नहीं हो वहां सौंदर्य दिखाई पड़ता है, वहां घट रही है असली बात। तुम जहां हो, कुछ परमात्मा ऐसा नाराज है कि वहीं भर नहीं घटती, और सब जगह घटती है।

हर दूसरे की शक्ल तुम्हें हंसती हुई मालूम पड़ती है। और तुम भी भलीभांति जानते हो कि तुम जब घर से निकलते हो तो आईना में देख-दाख कर, चेहरा बनाबनू कर तुम भी मुस्कराते निकलते हो। फिर भी तुम्हारी अक्ल में नहीं आता कि ऐसे ही सभी मुस्कराते निकलते हैं घर से। यह धोखा है। कोई मुस्करा नहीं रहा है। ये सब रो रहे हैं। यह भीतर के आंसुओं को छिपा लेने की तरकीब है। यह आवरण है यह मुस्कराहट। क्योंकि रोना जरा अभद्र होगा। और कौन अपनी बेइज्जती करता है! रास्ते पर खड़े होकर रोना--कौन अपनी दीनता दिखाए! शरमा रहे हैं अपने रोने से, तो मुस्कराहट पोत कर निकले हैं। छिपा ली हैं झुरियां जीवन की पावडर में, लाली में लगा कर। किसी तरह छुपा लिए हैं अपनी आंखों के अंधेरे सुरमा-काजल में। किसी तरह बन-ठन कर बाहर आ गए हैं। इनको देख कर दूसरे मोहेंगे और सोचेंगे : गजब, तो यह आदमी ने पा लिया मालूम होता है, यह आदमी ऐसी मस्ती से चला जा रहा है! इससे तो पूछो! इसके भीतर तो झांको। और इसके भीतर झांकने की कोई जरूरत नहीं, तुम अपने भीतर झांको, तुम भी तो यही कर रहे हो!

हम दूसरे को धोखा देते हैं और इस कारण सारी दुनिया हमें धोखा दे रही है। तुम जो कर रहे हो वही दूसरे लोग भी कर रहे हैं। कोई यहां सुखी नहीं है। क्योंकि सुख तो भीतर जाने से मिलता है। यहां कोई भीतर जाता नहीं मालूम पड़ता है; सबकी ऊर्जा बाहर बही जा रही है--धन-पद में, प्रतिष्ठा में। दिल्ली चलो! सभी दिल्ली जा रहे हैं। किसी तरह चलो दिल्ली के करीब ही पहुंच जाओ; न पहुंचे दिल्ली भी तो कहीं तो रास्ते में करीब पहुंच गए; जितने करीब पहुंच गए उतना ही सुख मिल जाएगा।

अपने भीतर आने से कोई सुख को उपलब्ध होता है। तब चेहरों पर मुस्कुराहट पोतनी नहीं पड़ती। तब एक दीप्ति होती है--सहज, भीतर से उठती। तब एक शांति होती है, जिसके लिए कोई आयोजन नहीं करना होता। जागो, तो रहती है; सो जाओ, तो रहती है। उठो तो रहती है, बैठो तो रहती है। बोलो तो, चुप रहो तो। तब एक आनंद की लहर चौबीस घंटे बनी रहती है--जिसको पलटू ने कहा कि आठों पहर तूरा बजता है। वह

बजता ही रहता है भीतर का संगीत। उसे बजाना थोड़े ही पड़ता है। वह बज ही रहा है। तुम्हारे भीतर इस क्षण भी बज रहा है। लूट सके तो लूट।

मगर लूटने में बाधा क्या है? कोई बाधा नहीं--सिवाय इसके कि तुम भीतर जाते नहीं; तुम बाहर भागे जा रहे हो। तुम अपने से कोसों दूर खड़े हो। तुम अपने से ऐसे भागे हो जैसे कोई अपने दुश्मन से भाग गया हो। तुम अपने से ऐसे भागे हो जैसे कोई मौत से भाग गया हो। तुम अपने पास ही नहीं आते। तुम दूर-दूर चक्कर मार रहे हो। तुम चांद-तारों पर घूम रहे हो, लेकिन कभी घर नहीं लौटते। तुम्हारा घर, तुम्हारे घर का मार्ग जन्मों-जन्मों से न चलने के कारण तुम्हें बिलकुल अपरिचित हो गया है। इसलिए कोई गुरु चाहिए कि जो तुम्हें घर के मार्ग को फिर से याद दिला दे।

सारा धर्म घर वापस लौट आने की यात्रा है। यह पुनः वापसी है। महावीर ने इसको प्रतिक्रमण कहा है। आक्रमण तुम कर रहे हो अभी। आक्रमण का अर्थ है : वहां है सुख, जाऊंगा, कब्जा कर लूंगा। प्रतिक्रमण का अर्थ है : लौट आना--वापस लौट आना। वहां नहीं है सुख, यहां है सुख। मैं हूं सुख, अपने में लौट आऊंगा।

पलटू कहते हैं, इतनी ही भर जरूरत है कि तुम चाहो। पर चाह कैसे पैदा हो? चाह तभी पैदा होगी जब तुम अपनी बाहर चाह की घनीभूत पीड़ा को देखो। तुम क्या कर रहे हो?

जैसे ही बाहर की असलियत तुम्हें दिखाई पड़ने लगेगी... और कोई कारण नहीं है कि क्यों दिखाई न पड़े। तुम देखना नहीं चाहते, देखते नहीं, देखने से बचते हो।

प्रत्येक अनिश्चय से कुछ नष्ट होता हूं
प्रत्येक निषेध से कुछ खाली
प्रत्येक नए परिचय के बाद दूना अपरिचित
प्रत्येक इच्छा के बाद नई तरह से पीड़ित
हर अनिर्दिष्ट चरण निर्दिष्ट के समीपतर पड़ता है
हर आसक्ति के बाद मन उदासियों से घिरता है।
जागो और जरा देखो।
हर अनुरक्ति मुझे कुछ इस तरह बिता जाती है।
मानो फिर जीने के लिए कोई भविष्य नहीं बचता है।

कितनी बार तुमने वे ही सुख जाने, जिनको तुम अभी भी चाहने की आकांक्षा से भरे हो! फिर मिला क्या? थोड़ा परखो! थोड़ा कसो!

एक स्त्री के, सुंदर स्त्री के प्रेम में पड़ गए थे कि सुंदर पुरुष के प्रेम में पड़ गए। फिर मिल गई सुंदर स्त्री, फिर क्या हुआ? एक बार लौट कर देखो, विश्लेषण करो। फिर हुआ क्या? कहां खो गया सौंदर्य? कहां खो गई सुंदर स्त्री? कहां खो गया प्रेम? हाथ में राख रह गई, अंगार भी तो नहीं। और अब फिर तुम योजना बना रहे हो।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मर गई, तो उसके एक मित्र ने तीन-चार दिन बाद पूछा कि मुल्ला बहुत दुखी मालूम पड़ते हो। तुम्हारे दुख को देख कर तो ऐसा लगता है कि अब तुम दुबारा विवाह नहीं करोगे।

मुल्ला ने कहा : क्षमा करें। मेरे जीवन भर का अनुभव यह है कि अनुभव पर सदा आशा की विजय हो जाती है।

अनुभव पर आशा की विजय! मित्र ठीक ही कर रहा था, लेकिन मुल्ला जीवन का एक गहरा अनुभव बता रहा है। वह कह रहा है कि अनुभव पर आशा की विजय हो जाती है। इस पत्नी के साथ सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं जाना--तुम जानते, मैं भी जानता। लेकिन पता नहीं किसी दूसरी स्त्री के साथ सुख मिलना बदा हो!

अनुभव पर आशा की विजय। और ऐसा भी नहीं है कि एकाध बार ऐसा हुआ हो; हर बार ऐसा हुआ। तुम अनुरक्त थे एक भवन में, एक मकान के खरीद लेने में; फिर तुमने बड़ी मेहनत की, वर्षों श्रम उठाया, धन कमाया, चोरी-चपाटी बेईमानी की, धोखाधड़ी की, सब जाल-साजियां कीं, किसी तरह उस मकान को पाने में

समर्थ हो गए--फिर क्या हुआ? मिला सुख? पहुंचे किसी आनंद में? कोई मग्नता बरसी? कोई फूल खिले? फिर खाली के खाली, फिर राख के राख। फिर सोचने लगे कि कोई दूसरा मकान। ऐसे तुम जीवन के हर अनुभव से गुजरे हो, बहुत बार गुजरे हो; लेकिन तुम अनुभव से सीखते ही नहीं। अनुभव पर आशा की विजय हो जाती है।

अगर अनुभव से सीखो तो यह तुम्हें दिखाई पड़ेगा :

प्रत्येक अनिश्चय से कुछ नष्ट होता हूं।

प्रत्येक निषेध से कुछ खाली

प्रत्येक नए परिचय के बाद दूना अपरिचित।

तुम अपनी पत्नी से अपरिचित हो गए हो या नहीं, यह मुझे सोच कर कहो। सोचना अपने भीतर। परिचय बनाने चले थे, सोचा था कि विवाह करके इससे परिचित हो जाएंगे। मगर परिचय हुआ? तीस-तीस साल तक लोग पति-पत्नी की तरह रहे हैं और अपरिचित और जरा भी एक-दूसरे को पहचानते नहीं और जरा भी दोनों के बीच सामंजस्य नहीं उठ सका है, संगीत नहीं उठ सका है। दोनों के सुरताल मिले नहीं--परिचय कहां? जितने दिन साथ रहोगे उतने अपरिचित हो जाते हो।

प्रत्येक निषेध से कुछ खाली

प्रत्येक नए परिचय के बाद दूना अपरिचित

प्रत्येक इच्छा के बाद नई तरह से पीड़ित।

देखा नहीं, कितनी इच्छाएं तुम भर लेते हो! भरते ही नई पीड़ा शुरू हो जाती है। इधर पुरानी इच्छा पूरी नहीं हुई कि नई इच्छाओं के अंकुर निकल आते हैं। यह होता ही रहेगा। यह होता ही रहा है। इसी को हम आवागमन का चक्र कहते हैं। इसी को हम कहते हैं चौरासी करोड़ योनियों में भटकना।

हर अनिर्दिष्ट चरण निर्दिष्ट के समीपतर पड़ता है।

हर आसक्ति के बाद मन उदासियों से घिरता है।

कितनी बार प्रेम में पड़े, और कितनी बार हाथ खाली के खाली रहे! कितनी बार समझा कि हीरा है और जब उठाया तो पत्थर पाया। मगर अब भी जब चमकदार पत्थर दिखाई पड़ेगा, फिर तुम हीरे का भ्रम खा लोगे। तुमने भ्रम खाने की जिद्द ही कर रखी है। तो फिर पलटू का धन तुम्हें दिखाई न पड़ेगा।

तुम्हें जो धन मालूम होता है, जब तक वह तुम्हें कूड़ा-कर्कट न दिखाई पड़े, तब तक पलटू का धन न दिखाई पड़ेगा। ये दोनों धन एक साथ दिखाई नहीं पड़ सकते। अगर तुम्हें दुनिया में धन दिखाई पड़ रहा है तो आत्मा में धन नहीं दिखाई पड़ेगा। दुनियावी भाषा का धन आत्मा की भाषा के धन से बिलकुल विपरीत है। और जिस दिन तुम्हें दुनिया में कोई धन न दिखाई पड़ेगा, उस दिन देर नहीं है फिर। फिर एक क्षण में लौटना हो जाता है। तुम्हें भीतर का धन दिखाई पड़ने लगेगा।

हर अनुरक्ति मुझे कुछ इस तरह बिता जाती है

मानो फिर जीने के लिए कोई भविष्य नहीं बचता है।

लेकिन फिर उमग आता है। फिर निर्मित हो जाता है। जरा देर के लिए तुम उदास हो जाते हो, जरा देर के लिए थक जाते हो। रात सो लेते हो, सुबह फिर उमंग से भर जाते हो। फिर दौड़-धूप, फिर संसार। फिर फैलाव, फिर कल्पना के जाल। अगर तुमने जीवन के सारे दुखों को ठीक-ठीक देखा तो उनका इकट्ठा परिणाम यह होता है कि संसार दुख है। यह बात जितनी सघन होकर तुम्हारे प्राणों पर खुद जाती है, अंकित हो जाती है, उतनी ही जल्दी पलटू की बात तुम्हें समझ में आ जाएगी।

कुछ इस कदर है गमे-जिंदगी से दिल मानूस

खिजां गई तो बहारों में भी जी नहीं लगता।

अगर सच में तुम जिंदगी के दुखों को समझ लो...

कुछ इस कदर है गमे-जिंदगी से दिल मानूस

अगर तुम्हारा दिल जीवन के सारे दुखों से इस भांति जागरूक हो जाए, देख ले, ठीक-ठीक देख ले, पहचान ले, सब पर्दे उघाड़ कर पहचान ले कि कहीं कोई सुख नहीं है. . .

कुछ इस कदर है गमे-जिंदगी से दिल मानूस
खिजां गई तो बहारों में भी जी नहीं लगता।

फिर तो पतझड़ चले जाने की तो बात ही छोड़ो, जब बहार भी आ जाएगी तो भी जी नहीं लगेगा। अभी तो तुम्हें जहां कोई सुख नहीं है वहां भी सुख मालूम होता है। अभी तो दुख में भी सुख का भ्रम होता है। फिर असली सुख भी सामने खड़ा हो जाए संसार का, तो भी तुम्हें दुख दिखाई देगा। क्योंकि अब तुम जानते हो, ये सब धोखे हैं। संसार ने बहुत बार धोखा दिया है। यह भ्रामक जाल है। यह मृग-मरीचिका है।

ऐसा तुम्हें दिखाई पड़े और कोई कारण नहीं कि क्यों दिखाई न पड़े। अगर तुम देखना चाहो तो अभी दिखाई पड़े, यहीं दिखाई पड़े। मैं कुछ ऐसी बात नहीं कह रहा हूं कि तुम सोचना कल, विचारना, देखना। तुम जीए हो, काफी जी लिए हो। सब अनुभव दोहर चुके हैं। अनुभव कितने थोड़े हैं। जरा सोचो तो! दो-चार बातें, आदमी दोहराता रहता है। वही क्रोध, कितनी बार कर चुके, हजार बार कर चुके लाख बार कर चुके--अब कब तुम्हें अनुभव होगा? वही राग, कितनी बार कर चुके, वही मोह, वही ईर्ष्या, वही मत्सर, वही अहंकार। मामला तो कुछ इना-गिना, उंगलियों पर गिना जा सके, इतना है; कुछ बड़े गणित की जरूरत नहीं है। उसी-उसी को हम दोहराते रहते हैं।

एक महीने की डायरी तो रखो, तीस दिन की डायरी रखो--और तुम पाओगे तुमने करीब-करीब सब दोहरा लिया जो जिंदगी में दोहरता है। दुखी हुए, नाराज हुए, परेशान हुए, पीड़ित हुए, अपमानित हुए, दंभ घिरा, मोह पकड़ा, राग में पड़े, सब हो गया। एक महीने में सब दोहर जाएगा। फिर तुम्हें नया करने को और क्या बचा? फिर इसी को तुम कितनी ही बार दोहराते रहो, फिर तुम ग्रामोफोन के टूटे हुए रिकार्ड हो जाओगे। फिर वही-वही लकीर दोहरती रहेगी, दोहरती रहेगी।

पुनरुक्ति है जीवन। इसलिए तो हमने चाक से उसकी उपमा दी है। इस देश ने जीवन को अगर चका कहा है, चक्र कहा है, तो इसीलिए कि चाक घूमता रहता है। पुनरुक्ति है। वही, फिर वही, फिर वही। नया क्या है? नया कहां है? कुछ भी नया नहीं है। फिर तुम कैसे इसे पकड़े हो? तुम देखते ही नहीं। तुम अनुभव से कुछ निचोड़ते नहीं। अनुभव के निचोड़ का नाम बोध है।

तुमने महाभारत की प्रसिद्ध कथा सुनी है। पांडव जंगल में भटक गए हैं। पानी नहीं मिला है। एक झील पर खोजने गए हैं। पहला भाई गया। लेकिन झील पर झुकता ही था पानी भरने को कि कोई यक्ष ने वृक्ष से आवाज दी कि रुक, पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दे दे। अगर मेरे प्रश्न का उत्तर बिना दिए तूने पानी भरने की कोशिश की तो यहीं गिर पड़ेगा और मर जाएगा।

क्या प्रश्न है?

और उस यक्ष ने कहा कि अगर मेरे प्रश्न का गलत उत्तर दिया तो भी पानी न भर सकेगा; नहीं तो मर जाएगा। ठीक उत्तर देगा, तो ही पानी भर सकेगा। यह मेरे जीवन-मरण का प्रश्न है, उस यक्ष ने कहा। मैं तब तक इसी वृक्ष पर कैद रहूंगा, जब तक मुझे ठीक उत्तर नहीं मिल जाता। इसलिए मैं किसी को पानी भी नहीं पीने दूंगा, जब तक मुझे ठीक उत्तर कोई दे न दे। नहीं तो मेरी जिंदगी यही बंधी है। जन्मों से मैं यहीं अटका हूं।

क्या प्रश्न है? पूछा।

फिर उसने प्रश्न कई पूछे। उनमें पहला प्रश्न बड़ा अदभुत है--बड़ा सीधा-सरल और बड़ा कठिन भी। पहला प्रश्न यही कि आदमी के संबंध में सबसे ज्यादा आश्चर्य की बात क्या है? कुछ उत्तर दिया होगा, वह सही उत्तर नहीं था। फिर भी पानी भरने की कोशिश की तो पहला भाई मुर्दा होकर गिर पड़ा। ऐसे चार भाई आए और मुर्दा होकर गिर पड़े। एक के बाद एक। फिर युधिष्ठिर अंत में आए। चारों भाई गए और लौटते नहीं और सांझ हुई जाती है, क्या हुआ! पहुंचे तो उस यक्ष ने फिर कहा : चारों की लाशें पड़ी हैं। उस यक्ष ने कहा, मेरे प्रश्नों का उत्तर चाहिए।

युधिष्ठिर ने जो उत्तर दिया है, वह सीधा-सरल उत्तर है। यही जो सारे संत सदा कहते रहे हैं, फिर भी तुमने सुना नहीं है। युधिष्ठिर ने कहा, आदमी के संबंध में सबसे आश्चर्य की यही बात है कि वह अनुभव से सीखता नहीं है। उत्तर सही था। यक्ष मुक्त हो गया। युधिष्ठिर ने पानी भर लिया। युधिष्ठिर ने प्रार्थना की, मेरे भाइयों को भी जिला दे। वे भाई भी जिला दिए गए। यक्ष प्रसन्न था, क्योंकि वह वृक्ष में बंधा था, आबद्ध, कीला गया था, ठोंका गया था। वह मुक्त हो गया।

यह छोटा सा पाठ! तुम सोचते हो अगर तुम पानी भरने गए होते उस झील पर, तो जिंदा लौट सकते थे? तुम यह उत्तर देते? यह उत्तर तुम्हारे जीवन से उठता? नहीं उठता। तो तुम भी उसी मूढ़ता में पड़े हो जिसमें सारे लोग पड़े हैं। अनुभव सभी को होते हैं। जो अनुभवों को निचोड़-निचोड़ कर इत्र बना लेता है, हर अनुभव से इत्र निचोड़ लेता है. . .।

ख्याल करना, फूल हैं। तुम फूलों को इकट्ठा न कर सकोगे। फूल तो आए और गए। सुबह थे, सांझ न रहे। अभी हैं, अभी कुम्हला जाएंगे। फूलों को कोई सम्हाल कर नहीं रख सकता। तिजोरी में बंद भी कर लोगे, तो सड़ जाएंगे। राख रह जाएगी कुछ दिन बाद। सुगंध तो नहीं बचेगी, दुर्गंध हो सकती है। लेकिन फूलों को बचाने का एक उपाय है : इत्र निचोड़ लो। उनका सार निचोड़ लो। उनकी गंध निचोड़ लो। फूल तो मर जाएंगे, लेकिन इत्र सदियों तक रह सकता है। इत्र शाश्वत हो सकता है।

ऐसे ही अनुभव के फूल हैं। आज क्रोध किया, यह एक फूल है। इसमें से निचोड़ लो--कुछ बोध, कुछ काम की बात, कुछ सार की बात। इसको ऐसे ही मत जाने दो। आज प्रेम किया, इसमें से निचोड़ लो कुछ काम की बात--एक फूल खिला। आज अपमानित हुए, नाराज हो गए, मूर्च्छित हो गए, अनाप-शनाप बकने लगे, अनर्गल व्यवहार किया, विक्षिप्तता प्रकट की। ये फूल हैं, निचोड़ लो कुछ। ऐसे रोज-रोज हर अनुभव के फूल से अगर निचोड़ते गए तो बोध का इत्र इकट्ठा होता है--तो बुद्धिमान होता है आदमी।

बुद्धिमान आदमी शास्त्रों से नहीं होता। बुद्धिमानी जीवन के शास्त्र को अनुभव करने से आती है। और सबको यह शास्त्र मिला है। यह जीवन सबके पास एक जैसा है--गरीब के पास, अमीर के पास; ग्रामीण के पास, शहरी के पास; पढ़े-लिखे के पास, गैर-पढ़े लिखे के पास। सबके पास एक सा जीवन है, क्योंकि जीवन के अनुभव एक से हैं। पर बहुत थोड़े से लोग इसमें से इत्र निचोड़ते हैं। जो इत्र निचोड़ते हैं उनको पलटू की बात जंच जाएगी, समझ में आ जाएगी। इत्र निचोड़-निचोड़ कर तुम पाओगे कि बाहर के जीवन के किसी अनुभव में कोई सुख नहीं है। दुख ही दुख है। खालिस दुख है।

इसलिए बुद्ध ने कहा है : जन्म दुख है, जरा दुख है, मृत्यु दुख है, जीवन की पूरी कथा दुख है। जीवन में दुख छिपा है। ऊपर-ऊपर सुख के आभूषण हैं, भीतर-भीतर दुख के घाव हैं। ऊपर-ऊपर सुख के सुंदर वस्त्र हैं, भीतर-भीतर बड़ी अंधेरी रात है। जिस दिन ऐसा दिखाई पड़ जाता है कि बाहर दुख मात्र है, जिस दिन ऐसी प्रतीति होती है कि बाहर दुख मात्र है--फिर कहां जाओगे? फिर तो बाहर जाने को कोई जगह न रही। फिर तो एक ही जगह बची--भीतर ही जा सकते हो।

पलटू ने कल कहा न कि दसवें द्वार पर बैठा हूं। नौ द्वार--आंख, कान, नाक, मुंह, जननेंद्रियां, ये सब नौ छेद हैं आदमी के शरीर में। तुम्हारे सारे तथाकथित सुख इन्हीं नौ छेदों से भीतर आते हैं। सुगंध आती है नाक से। संगीत आता है कान से। सौंदर्य आता आंख से। ऐसा. . .। और इन्हीं नौ छिद्रों से तुम जगत में जाते हो, बाहर जाते हो। एक सुंदर स्त्री को देखा, चले बाहर। आंख से ही देखा। दूर जाते देखा। लेकिन तुम चल पड़े उसके पीछे। फिर तुम अपनी पत्नी के साथ चल रहे हो, लेकिन हो नहीं वहां। पत्नी तत्क्षण पहचान लेती है कि आप चल पड़े, आप कहीं निकल गए दूर। पत्नियों को धोखा देना भी मुश्किल है। पत्नी जानती है; वह पूछने लगती है कि कहां चले गए, क्या मामला है? तुम यहां नहीं मालूम होते। और ऐसा भी नहीं है कि तुम आंख बचाओ तो बच सकते

हो। तुम आंख बचाओ तो भी चले गए। आंख बचाने का मतलब ही यह है : एक स्त्री सुंदर जाती थी, तुमने नहीं देखने की कोशिश की, मगर अब इससे क्या होगा; नहीं देखने की कोशिश में ही चले गए। भीतर तो रूप उठ आया। आंख से तुम बाहर बह गए।

ये नौ छेद हैं। और एक दसवां छेद है। "दशम द्वार" उसको ज्ञानियों ने कहा है। वह दसवां छेद भीतर की तरफ जाता है; नौ छेद बाहर की तरफ। संसार के पक्ष में तो नौ मार्ग हैं। इसलिए लोग संसार में सुगमता से चलते हैं। रास्तों पर रास्ते हैं; यह चूके तो दूसरा है, दूसरा चूके तो तीसरा। यहां कई पटरियां इकट्ठी दौड़ती हैं। यहां नौ पटरियां इकट्ठी दौड़ रही हैं। इस ट्रेन में न मिले जगह तो दूसरी में मिल जाती है। कहीं न कहीं मिल जाती है। लोग दौड़ते रहते हैं। कोई संगीत का दीवाना है, कोई रूप का दीवाना है, कोई काम का दीवाना है, कोई धन का दीवाना--दीवाने ही दीवाने हैं। और हरेक ने अपनी-अपनी पटरी पकड़ ली है।

भीतर जाने का मार्ग सिर्फ एक है--एक मात्र है। उसे ध्यान कहो, भक्ति कहो या जो भी नाम देना हो। होश भीतर जाने का मार्ग है। सुरति। वह एक ही है। नौ मार्गों से जाओगे तो तीन-तेरह हो जाओगे। हो ही जाओगे, क्योंकि नौ मार्गों पर भागना पड़ेगा। बिखर जाओगे, खंड-खंड में टूट जाओगे। एक हिस्सा इस पटरी पर दौड़ेगा, दूसरा हिस्सा दूसरी पटरी पर दौड़ेगा। एक हाथ एक ट्रेन में चढ़ गया, एक पैर दूसरी ट्रेन में चढ़ गया। ऐसी हालत है आदमी की--खंड-खंड, टुकड़े-टुकड़े, अंग-भंग! तुम पूरे-पूरे एक ट्रेन में भी कहां बैठे हो! क्योंकि जो धन की ट्रेन में बैठा है, वह पद की ट्रेन में भी बैठा है। वह सोचता है : धन कमा कर चुनाव में लड़ लेंगे। जो पद की ट्रेन में बैठा है, वह सोचता है : एक दफा दिल्ली पहुंच जाएं तो सारी सुंदर स्त्रियों को इकट्ठा कर लेंगे। फिर क्या अड़चन है? फिर कौन रोकने वाला है?

तुम एक ही ट्रेन में भी नहीं हो, क्योंकि बाहर जाने वाली यात्रा एक ही ट्रेन में हो भी नहीं सकती है। यहां इतनी ट्रेनें जा रही हैं; तुम कैसे चूको! सभी को भोग लेना चाहते हो। तो आंख कहीं चढ़ गई, कान कहीं चढ़ गए, हृदय कहीं बैठा, सिर कहीं बैठा, एक पैर कहीं, एक अंग कहीं--ऐसे तुम खंड-खंड हो गए। ऐसे आदमी बिखर जाता है, छितर जाता है टुकड़ों-टुकड़ों में। यही तो संताप है। यही तो चिंता है। इनमें द्वंद्व हो जाता है। एक पूरब जा रहा है, एक दक्षिण जा रहा है। अनेक घोड़ों पर सवार हो गए, अब फांसी लगी। अब बड़ी अड़चन होती है। क्योंकि तुम एक हो और तुम अनेक घोड़ों पर कैसे सवार हो सकोगे? क्योंकि होओगे तो झंझट में पड़ोगे। टूटोगे। विक्षिप्तता आएगी।

जितनी मनुष्य की वासनाएं बढ़ती जाती हैं उतनी ही विक्षिप्तता आती जाती है, उतना जीवन का संगीत शून्य हो जाता है; बेसुरापन हो जाता है; भीतर की तालबद्धता टूट जाती है। वह एकतारा फिर नहीं बजता। वह एकतारा है। फकीर के हाथ में तुमने एकतारा देखा न, वह बहुत तारों वाली वीणा नहीं बजाता। बहुत तारों वाली वीणा तो संसार में ले जाती है। फकीर तो एकतारा बजाता है। उसमें एक तार है। वह दशम द्वार की खबर देता है। वह तो एक को ही याद करता है। वह बहुत से प्रेम नहीं करता; वह एक को प्रेम करता है।

इसलिए पलटू ने कहा : पतिव्रता! भक्त तो पतिव्रता होता है। उसने तो एक को पकड़ लिया। उसने सबको छोड़ दिया। और एक साधे, सब सधे; सब साधे, सब जाए।

संसार में जाने वाला आदमी धीरे-धीरे सब खो देता है। स्वयं में जाने वाला सब पा लेता है। तुम अपनी हालत देखो। मैं जो कह रहा हूं, केवल तथ्य की बात कह रहा हूं। न तो यह कोई काव्य है, न यह कोई दर्शनशास्त्र है। यहां सिद्धांतों में कोई रस ही नहीं है। मैं तुम्हें कोई शास्त्र नहीं समझा रहा हूं। मैं तुम्हें सिर्फ इतना कह रहा हूं : जरा अपने जीवन के पन्नों को गौर से पलट कर देखो। मैं तुम्हें गीता पढ़ने की सलाह नहीं देता, न वेद पढ़ने की, न कुरान पढ़ने की। वह तुम समझोगे नहीं। जिसने जीवन के जीवंत शास्त्र को न समझा वह कैसे वेद पढ़े, कैसे कुरान पढ़े? जो जीवन की अपनी कहानी को भी नहीं निचोड़ पा रहा है, वह मोहम्मद के वचनों से क्या

पाएगा? वह कृष्ण के वचनों से क्या पाएगा? जीवंत परमात्मा तुम्हें चारों तरफ से घेरे खड़ा है और उसकी तुम्हें याद नहीं आ रही; तुम मुर्दा किताबों में उसे कैसे खोज पाओगे? हां, यहां खोज लो तो वहां भी मिल जाएगा।

इसलिए मैं कहता हूं : जीवन में पहले पढ़ लो तो फिर वेद पढ़ लेना। फिर बुद्ध की वाणी पढ़ लेना। फिर जिन-वाणी पढ़ लेना। वहां भी पा लोगे। यहां जो मिल गया तो वहां तो मिल ही जाएगा। यहां न मिला तो कहीं भी नहीं मिल सकता है। मैं तुम्हें इस केवल तथ्य के प्रति जागने को कहता हूं। और तुम्हारे पास तथ्य है। और तुम्हारे पास जागने की क्षमता भी है। होश भी है तुम्हारे पास और तथ्यों का जमाव भी है। अब क्यों बैठे हो? निचोड़ क्यों नहीं लेते? थोड़ा इत्र निचोड़ो।

इसलिए कोई रुकावट नहीं है, फिर भी करोड़ों में कोई एकाध इस ढंग का धनी हो पाता है। होना चाहिए सभी को। होने के हकदार हैं सभी। सभी की मालकियत है यह। जन्मसिद्ध अधिकार है। नहीं-नहीं, ठीक होगा कहना : स्वरूप-सिद्ध अधिकार है। सबका अधिकार है। यह सबकी मालकियत है। फिर भी तुम्हारी मर्जी। तुम इतने मालिक हो कि गुलाम बने रहना चाहो तो बने रह सकते हो। तुम इतने स्वतंत्र हो कि तुम गुलाम रहने को भी स्वतंत्र हो, तुम्हारी स्वतंत्रता असीम है। तुम्हारी स्वतंत्रता पूर्ण है। तुम चाहो तो भटकने के लिए भी स्वतंत्र हो। यह तुम्हारे हाथ में है। जब तक तुम भटकना चाहो भटकते रहोगे। जिस दिन तुम तय करोगे लौट चलना है, लौट आओगे।

बुद्ध एक नदी के किनारे से गुजरते हैं। कुछ बच्चे खेल रहे हैं। उन्होंने रेत के घर बनाए हैं। और वे लड़ रहे हैं आपस में। कोई कहता है, मेरा है। वह कहता है, यह तेरा है, दूर रख; अपने मकान को मेरे मकान के करीब मत ला। उन्होंने अपने-अपने रेत के मकान के चारों तरफ रेखाएं खींच रखी हैं कि यह मेरा आंगन, यह मेरा बगीचा, यह मेरी सीमा है; इस सीमा के भीतर कोई न आए। उन्होंने अपने-अपने नाम लिख रखे हैं अपनी-अपनी सीमा के सामने, अपनी-अपनी तख्तियां लगा रखी हैं। और फिर भी बच्चे तो हैं ही, कभी भूल से किसी का पैर किसी के मकान में लग गया। और रेत के मकान हैं, वे गिर जाते हैं। वे गिर गए तो मारपीट हो जाती है। एक बच्चे का पैर किसी के मकान पर पड़ गया तो वह बच्चा उसकी छाती पर चढ़ बैठा और उसने बाकी को भी कहा कि भाइयो तुम भी आओ, और इसको दुरुस्त करो, इसको राह पर लगाओ। बाकी भी आ गए। न्याय का सवाल है। दूसरे के मकान पर कब्जा कर लिया है। दूसरे का मकान गिरा दिया है! और उनको भी तो अपने मकान बचाने हैं, ऐसे आदमी के खिलाफ उनको भी लड़ना ही पड़ेगा। उन सबने मिल कर उसकी खूब मरम्मत की।

यही तो हम करते हैं। कोई चोर तुम्हारे घर में घुस गया तो तुम थोड़े ही अकेले लड़ोगे, पड़ोसी भी आ जाते हैं। क्योंकि उनको भी अपनी तिजोड़ियां बचानी हैं। कोई तुम्हारी ही तिजोड़ी का थोड़े ही सवाल है। ऐसे चोर अगर चोरी करने लगे तो कल उनकी तिजोड़ियों को भी खतरा है। कल के खतरे को देख कर वे आज इसकी अच्छी मरम्मत कर देते हैं। किसी का जेब कट जाए तो जिन-जिन के पास जेब है, वे सब जेबकतरे को पकड़ने में संलग्न हो जाते हैं, क्योंकि यह संभावित खतरा उनके लिए भी है।

उन सब बच्चों ने मिल कर उसकी खूब कुटाई की। दंड दिया। . . . यही तो तुम्हारी अपराध और तुम्हारी दंड की व्यवस्था है। तुम्हारे कानून, तुम्हारी अदालतें क्या हैं? तुम्हारे नियम, तुम्हारे मजिस्ट्रेट, तुम्हारी पुलिस क्या है? जिन-जिन को खतरा है, . . .।

ऐसे दिन भर खेल चलता रहा। फिर सांझ हो गई। किसी ने आकर, नौकर ने आकर, नदी के किनारे जोर से आवाज दी कि बच्चों, अब घर चलो, तुम्हारी माताएं तुम्हारी राह देख रही हैं। अब सूरज भी ढल गया है। बच्चों ने देखा कि हां सूरज ढल गया है। वे तो खेल में तल्लीन हो गए थे, भूल ही गए थे कि दिन अब जा चुका, अब घर लौटने का वक्त आ गया।

और तब क्या हुआ, पता है? बुद्ध खड़े देख रहे थे, वे देखते रहे। ऐसे जीवन को देखना चाहिए सब अंगों में, सब दृष्टियों से। हर अनुभव से कुछ मिलता है। बुद्ध खड़े देखते रहे। वे चुपचाप सुनते रहे क्या हो रहा है। वे

बच्चे जो लड़ते थे, एक-दूसरे से कहते थे मेरा-तेरा, अपने-अपने मकान की रक्षा करते थे, जिन्होंने एक बच्चे की कुटाई कर दी थी--वे खुद ही अपने मकानों पर कूदने लगे। और उन्होंने अपने मकान खुद ही गिरा दिए और खूब हुल्लड़ मचा। और सब रेत उन्होंने साफ कर दी। सब मकान पुंछ गए, सब दीवालें गिर गईं, सब सीमाएं असीम में खोकर एक हो गईं, वे सब बच्चे घर की तरफ भागे। मां की याद आ गई। अब घर जाना है, सांझ हो गई।

ठीक बुद्ध ने दूसरे दिन अपने भिक्षुओं से कहा--ऐसा ही संसार है। रेत के घर! मेरा-तेरा! बड़ी लड़ाई, बड़ी कलह! बड़ा द्वेष, बड़ी ईर्ष्या! बड़े संघर्ष! युद्ध! अदालतें! हत्याएं! और फिर एक दिन सांझ हो जाती है। सूरज ढल जाता है, मौत आ जाती है। और घर से खबर आती है। फिर जाना पड़ता है। सब यहीं पड़ा रह जाता है। रेत के घर रेत में ही पड़े रह जाते हैं। रेत के घर रेत के हैं, तुम्हारे कैसे! रेत में खींची गई रेखाएं कहीं खिंचती हैं! हवा के झोंके आएंगे और रेखाएं पुंछ जाएंगी।

कितने लोग यहां जमीन पर रहे हैं और कितने लोगों ने यही खेल खेला, जो तुम खेल रहे हो! इन्हीं मकानों में खेला, इन्हीं दुकानों में खेला, इन्हीं बाजारों में, इन्हीं पद-प्रतिष्ठानों में! कितने लोग, कभी सोचोगे! करोड़ों-करोड़ों, अरबों-अरबों लोग! सब जा चुके। उनकी सांझ आ गई, चले गए। तुम्हारी सांझ भी जल्दी ही आती होगी। अजहूं चेत गंवार। अब भी चेतो! जो सांझ आने के पहले चेत जाए, वह समझदार। जो मौत के आने पर चेते, वह तो बहुत देर हो गई, उसको फिर जन्म लेना पड़ेगा। जन्म में ही चेते तो फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। मरते वक्त अगर चेते भी और एक ख्याल भी आए कि अरे मैं बेकार मेहनत करता रहा, अदालत-मुकदमा, यह, वह, झगड़ा-झांझा। कुछ सार नहीं, सब पड़ा रह जाएगा। यह सब पड़ा रहा जा रहा है और मैं चला। मगर मरते वक्त चेते तो बहुत देर हो गई। बहुत देर हो गई, अब कुछ करने को न बचा। अब कब ध्यान करोगे? कब करोगे पूजा-अर्चन? कब करोगे प्रार्थना? अब तो जबान भी लड़खड़ा गई, आंखें भी मद्धिम हो गईं। भीतर की थोड़ी-बहुत जो बुद्धि थी, ज्यादा तो थी ही नहीं, ज्यादा होती तो कभी के जाग गए होते। थोड़ी-बहुत थी, ऐसी धुंधियाती-धुंधियाती, धुआं-धुआं भरी, वह भी और धुंधली हो गई, मौत की घबड़ाहट देख कर प्राणों में समा गई, रोआं-रोआं कांप गया, बेहोश होने लगे। नए जन्म की तैयारी हो गई।

जो बेहोश मरता है वह नया जन्म ले लेता है। जो होश से मर जाता है, फिर उसका कोई जन्म नहीं। लेकिन होश से मरोगे कैसे? जब जागते-जागते मृत्यु के बहुत दिन आने के पहले भी तुम यह पहचान लोगे कि मौत आ रही है और जीवन दुख है। इस अनुभव की परिणति ही संन्यास है।

इस अनुभव की परिणति कि संसार में सुख नहीं, सब रेत के घर-घूले हैं, यहां बनाया बनता नहीं, मिट जाता है, जो मिट ही जाता है उसके लिए क्या झगड़ा, क्या फसाद, क्यों इतनी चिंता, क्यों इतनी व्यथा! और फिर मौत तो आ ही रही है। जो छीन ही लेगी मौत, उसको हम भी क्यों पकड़ें? जो मौत छीन लेगी, उसे हम ही क्यों न छोड़ दें? पकड़ क्यों न छोड़ दें?

और ध्यान रखना, जब मैं कहता हूं हम क्यों न छोड़ दें, तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम दुकान छोड़ कर भाग जाओ। भागोगे कहां? मैं यह नहीं कह रहा हूं पत्नी-बच्चे छोड़ कर भाग जाओ। भागने से सार क्या है? पकड़ छोड़ दो। पकड़ना छोड़ दो। और यहां भूल हो जाती है। लोग पकड़ तो नहीं छोड़ते; जो पकड़ा था, उसे छोड़ देते हैं, मगर पकड़ जारी रहती है। तो घर छोड़ दिया, आश्रम पकड़ लोगे। जाओगे कहां? पकड़ तो कायम रहेगी। पत्नी-बच्चे छोड़ दिए तो शिष्य-शिष्याओं को पकड़ लोगे। जाओगे कहां? उनसे मोह लग जाएगा। उनसे प्रेम लग जाएगा। वे मरेंगे तो रोओगे। वे छोड़ कर चले जाएंगे तो लगेगा कि धोखा दे गए, मेरा शिष्य धोखा दे गया--जैसे मेरा बेटा धोखा दे गया! यह तो वही का वही खेल है, नाम बदल गया। लेबिल बदल लिए, जाल तो वही का वही है।

इसलिए मैं नहीं कहता कि तुम जो पकड़े हो उसको छोड़ दो। मैं कहता हूं, सिर्फ मुट्ठी खोल लो। जो भी पकड़े हो उसको अब पकड़ो मत। पत्नी अपनी जगह है, तुम मत पकड़ो। बेटा अपनी जगह है, तुम मत पकड़ो। बेटा अपनी जगह भला है, यह मत कहो कि मेरा है। मेरा कहा कि पकड़ शुरू हुई। और छोड़ कर भागने की भी कोई जरूरत नहीं; अपना था ही नहीं तो भागोगे क्या छोड़ कर? छोड़ कर भागने में तो वह भ्रम अभी भी कायम है कि मेरा था, छोड़ दिया। मेरा था ही नहीं कभी, एक क्षण को भी मेरा नहीं था--छोड़ोगे कैसे? त्याग क्या करोगे?

जिस व्यक्ति ने भोग की व्यर्थता देख ली, उसके जीवन में त्याग का उपाय नहीं रहा। अगर त्याग करते हो तो उसका मतलब : अभी भी बातों में मूल्य था। तुम कहते हो मैंने लाखों रुपए छोड़ दिए। इसका क्या मतलब हुआ? अभी लाखों रुपयों में तुम्हें लाखों दिखाई पड़ते हैं, अभी भी दिखाई पड़ते हैं; तब भी दिखाई पड़ते थे। कुछ फर्क न हुआ। तब तुमने इस संसार की बैंकों में जमा कर रखे थे; अब तुमने परमात्मा की बैंक में, परलोक में जमा कर रखे हैं। अब तुम हिसाब लगा रहे हो कि जब पहुंचूंगा परमात्मा के सामने तो बता दूंगा पूरा खाता-बही खोल कर कि लाखों छोड़े थे, क्या मिलता है इसके उत्तर में? सुना तो था तेरे पंडितों से कि यहां एक दो, वहां करोड़ गुना मिलता है, अब कहां है? तुम हिसाब लगा रहे हो, तुम सौदा कर रहे हो। तुमने कुछ छोड़ा नहीं।

छोड़ना होता ही नहीं--जागना होता है। तो फिर तुम भी करोड़ों में वह एक हो सकते हो। और सबके होने की क्षमता है। जो होना चाहे सो हो जाए। और देर क्यों करो? और खड़े-खड़े क्यों देखते रहो?

पलटू कहते हैं : क्या खड़े-खड़े देख रहे हो? तमाशबीन कब तक बने रहोगे? अनुभव लो। जागो! और क्या सारी बस्ती लूट लेगी, तब तुम लूटोगे? क्या तुमने तय कर रखा है कि सबसे आखिर में अपना नंबर लगाएंगे? किस कारण? जो अभी मिल सकता है उसे कल क्यों पाना? जो अभी मिल सकता है उसे कल के लिए क्यों छोड़ना? जो मिला ही हुआ है, उस रस में क्यों न डूब जाओ? उस उत्सव में क्यों न तल्लीन हो जाओ? क्यों न उठने दो महोत्सव तुम्हारे जीवन से? क्यों न बहे रसधार?

रसो वै सः! वह परमात्मा रस-रूप है!

तीसरा प्रश्न भी दूसरे से संबंधित है, उसके साथ ही ले लें।

तीसरा प्रश्न है : संन्यास का फल मधुर है, फिर भी सभी उसे क्यों नहीं चखते? कृपा करके कहिए।

मधुर है, यह तो चखोगे तब पता चलेगा न! मेरे कहने से मधुर है, तो थोड़े ही चख लोगे। अब यह जरा अड़चन की बात है। चखोगे तो पता चलेगा मधुर है। और तुम चाहते हो कि पहले मधुर होने का पता चल जाए, फिर चखें। यह तो फिर हो नहीं सकती बात। यह तो बात बनेगी नहीं। यह तो बात बनती थी, उसके पहले बिगड़ गई।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन तैरना सीखना चाहता था। वह नदी पर गया--अपने एक मित्र को लेकर, जो तैरना सिखा सकता था। संयोग की बात--संयोग की भी नहीं कहनी चाहिए, भीतर तो कारण रहे होंगे, डरा-डरा गया होगा, भयभीत गया होगा--नदी का किनारा, सीढ़ियों पर काई जमी थी, उसका पैर फिसल गया। चारों खाने चित्त पड़ा है। सिर में चोट भी लग गई। वह उठा और एकदम घर की तरफ भागा। उसके मित्र ने कहा : भाई, बड़े मियां, कहां चले? उसने कहा : अब जब तैरना सीख लूंगा, तभी नदी के पास आऊंगा। यह तो खतरनाक मामला है। अगर पानी में गिर गया होता तो जान गंवा दी होती। नमस्कार!

उसने कहा : अब तो जब तैरना सीख लूंगा, तभी नदी के पास आऊंगा।

लेकिन तैरना कहां सीखोगे? गद्दे-तकिए लगा कर घर में? तैरना हो तो नदी के पास आना होगा। और तुम कसम ले लिए कि कसम, अब नहीं आने वाला। और मुल्ला की बात वैसे समझदारी की लगती है, अनुभवी की लगती है। व्यवहारिक बात है कि यह तो खतरनाक मामला है; जरा और चूके होते और पानी में पड़ गए होते तो आज मौत हो जाती। अब नदी से दूर ही रहूंगा। अब तो तैरना सीख लूंगा, फिर आऊंगा।

गणित की है, तर्क की है बात। शुद्ध तर्क है। लेकिन यह तो बात बनते-बनते बिगड़ गई, यह तो शुरू से बिगड़ गई। यह तो कभी तैरना सीखेगा नहीं और कभी नदी के पास आएगा नहीं।

तुम कहते हो : संन्यास का फल मधुर है, फिर भी सभी उसे क्यों नहीं चखते? चखें तो पता चले। और तो कोई उपाय नहीं है। न चखोगे तो पता नहीं चलेगा। चख कर ही तो पता चलता है। तो फिर क्या करें? लोगों की बुद्धियां बड़े तर्क से भरी हैं; वे कहते हैं कि पहले प्रमाण चाहिए कि ईश्वर है, तो फिर हम ईश्वर की तरफ चलेंगे। और ईश्वर की तरफ चलने से प्रमाण मिलता है कि--है। अब यह बड़ी मुश्किल बात है। यही अबूझ पहेली है धर्म की। अनुभव करने से प्रमाण मिलता है, और कोई प्रमाण नहीं है। और चखने से स्वाद आता है, और कोई उपाय नहीं है। इसलिए जो हिम्मतवर हैं, जो कहते हैं कि ठीक है, बहुत से बहुत यही होगा न कि कड़वा होगा--तो थूक देंगे। ज्यादा से ज्यादा इतना ही होगा न कि फल मीठा नहीं होगा, कड़वा होगा--तो जिंदगी में इतने कड़वे फल चखे हैं, एक और सही।

कितने तो तुमने कड़वे फल चखे हैं। अभी तक तुमने मीठा फल चखा कहां है! कड़वे के तो तुम अभ्यासी हो। तो क्या घबड़ाहट है, एक फल और सही। कड़वा ही निकल सकता है, चख तो लो! हालांकि जिन्होंने चखा उन्होंने पाया कि मीठा है। मगर चख कर पाया।

डूबोगे तो अनुभव होगा। नदी में उतरोगे तो तैरना सीखोगे। तैरना सीखोगे तो उस पार जा सकोगे। तैरना सीखोगे तो गहराइयों में उतरने की क्षमता आ जाएगी। और गहराइयों में मोती पड़े हैं। नदी की सतह पर तो सूखे पत्ते इत्यादि बहते हैं, मोती नहीं। सागरों की गहराई में डुबकी मारनी पड़ती है, गोताखोर होना पड़ता है। बिना तैरे तो कैसे गोता मारोगे?

इसलिए बहुत लोग वंचित रह जाते हैं क्योंकि बहुत लोग तर्कनिष्ठ हैं। तर्कनिष्ठा धर्मनिष्ठा में बाधा है। धर्म की तरफ तो वही जाता है जिसको पलटू ने कहा--जिसे विश्वास हो जाए। विश्वास कैसे हो? विश्वास होने का क्या रिश्ता? अब मैं तुमसे यह भी नहीं कह रहा हूं, पलटू भी नहीं कहते कि तुम जाकर ऐसे ही नदी में कूद पड़ो। पलटू भी कहते हैं कि किसी को खोज लो जो तैरना जानता हो। उसका संग-साथ बना लो। यारी बना लो। किसी यार को खोज लो। कोई तो तैरना जानता होगा। कोई तो तुमने तैरता हुआ देखा होगा। किसी को तो पानी पर उमंग से तिरता हुआ देखा होगा। जिसको तुमने तैरता देखा हो, जिसको तुमने देखा हो पानी में खेलता है और जरा भी डूबता नहीं, उससे दोस्ती कर लो, उसके साथ संग-साथ बना लो। इसको ही सदगुरु की खोज कहते हैं।

इसलिए पलटू कहते हैं : नाव भी मिल जाए तो क्या करोगे? केवट तो होना चाहिए। माझी कहां है? शास्त्र मिल जाए, क्या करोगे? शास्ता होना चाहिए। हाथ पकड़ने वाला कहां है? शास्त्र को तुम पकड़ सकते हो। तुम तो खुद ही डूबने वाले हो, तुम्हारे साथ शास्त्र भी डूब जाएगा। कोई चाहिए जो तुम्हें पकड़ ले। तो शायद बच सको। कोई जो स्वयं तैर सकता हो, तो तुम्हें बचा ले। और एक दफा थोड़े दिन साथ हो जाए, तैरने का अनुभव आ जाए।

तैरना कुछ बड़ी कठिन बात नहीं है।

सच तो यह है, तैरने में हम कुछ सीखते थोड़े ही हैं। तैरने में तो केवल सिर्फ आत्मविश्वास बढ़ता है। और कुछ भी नहीं होता, सीखते हम कुछ भी नहीं। तैरना कोई सीखन-सीखावन थोड़े ही है। इसलिए तो एक मजे की बात है कि तैरना अगर तुम एक दफा सीख गए, फिर पचास साल न तैरो तो भूल थोड़े ही जाओगे। पचास साल अगर तुम भाषा जो सीख गए हो, न बोलो तो भूल जाओगे। पचास साल तक कैसे याद रखोगे? सीखा हुआ भूल

जाएगा। लेकिन तैरना नहीं भूलता। तो तैरना सीखने जैसा नहीं है; कुछ बात भिन्न है। अगर पचास साल तक तुमने मान लो जर्मन भाषा सीख ली और पचास साल तक बोले नहीं, उपयोग नहीं किया, पढ़ी नहीं, सुनी नहीं, तो पचास साल बाद साफ हो जाएगी; पता भी नहीं चलेगा कि कभी तुमने सीखी थी।

लेकिन तैरना, पचास साल तुम तैरो ही मत, एक दफा तैरना सीख लिया, फिर नदी जाओ ही मत, सरोवर के पास जाओ ही मत, पचास साल के बाद भी पानी में उतरोगे, तैरोगे। फर्क है कुछ। यह बात स्मृति से संबंधित होती तो भूल गई होती। यह बात स्मृति से संबंधित नहीं है। फर्क यह है कि तैरना तो हमें आता ही है, वह हमारा स्वभाव है। फिर हम नदी में डरते क्यों हैं? डरने का कारण है : आत्मविश्वास की कमी। तैरना नहीं आता, ऐसा नहीं।

तैरने वाला क्या करता है, तुमने देखा? नए सिक्खड़ को नदी में ले जाओ, वह क्या करता है? दोनों एक ही काम करते है दोनों हाथ-पैर फड़फड़ाते हैं। सिक्खड़ बेतरतीब से फड़फड़ाता है और घबड़ाता है और डरता है। सीखा हुआ भी हाथ-पैर फड़फड़ाता है--व्यवस्था से फड़फड़ाता है, संगति से--और डरता नहीं और निर्भय फड़फड़ाता है, क्योंकि उसे भरोसा आ गया है। वह जानता है। फिर जब तैरने में कोई बिलकुल कुशल हो जाता है तो हाथ-पैर भी नहीं फड़फड़ाता, नदी पर ऐसे ही तैर जाता है।

तुमने एक चमत्कार देखा या नहीं कि मुर्दा आदमी नदी पर तैर जाता है और जिंदा डूब जाता है। जरूर कुछ मामला है। मुर्दा डूबा हुआ, ऊपर आ जाता है, तैरने लगता है। मुर्दों को तरकीब मालूम हो और जिंदों को तरकीब नहीं मालूम! मुर्दा न तो हाथ-पैर फड़फड़ाता न कुछ, सिर्फ तैर जाता है। क्या बात होगी? मुर्दे को भय नहीं है। अब मर ही गए, अब भय क्या? अब मर ही गए तो भय किसको! मुर्दा निर्भय है। जिंदा आदमी भयभीत है। भय डुबाता है, नदी नहीं डुबाती। इस बात को तुम ख्याल में रख लेना। गांठ बांध लेना हीरे की तरह। भय डुबाता है, नदी नहीं डुबाती। इसलिए जब तैरने में तुम कुशल हो जाते हो और भय मिट जाता है, तो तुम मुर्दे की तरह पानी पर तैर सकते हो, जिंदा रहते हुए भी। असली तैराक हाथ-पैर थोड़े ही हिलाता है; असली तैराक तो ऐसे ही तिर जाता है। तिरने में और तैरने में यही फर्क है। तिरने का मतलब है : वह ऐसे ही पड़ जाता है नदी पर, मजा लेने लगता है, धूप आ रही; धूप-स्नान ले लेता है नदी में पड़ा-पड़ा, हाथ-पैर भी नहीं हिलाता, डूबता भी नहीं। फर्क क्या हो गया? अब भरोसा आ गया।

सारी बात श्रद्धा की है--अपने पर श्रद्धा आ जाए। अभी तुम्हें अपने पर श्रद्धा नहीं इसलिए किसी ऐसे आदमी का हाथ पकड़ लो जिसे अपने पर श्रद्धा हो; जिसके पास तुम्हें एक बात समझ में आती हो कि इस आदमी को अपने पर भरोसा है; जिस आदमी को अपने पर भरोसा हो; जिस आदमी को जरा भी संदेह की रूपरेखा न हो; जिस आदमी को अब जरा भी डिगमिगी न हो; पलटू कहते हैं, डिगमिगी मिट गई हो; जो अब थिर होकर बैठ गया हो--उसका हाथ पकड़ लो।

संन्यास का और क्या अर्थ है? संन्यास का इतना ही अर्थ है : किसी का हाथ पकड़ लो, दीक्षा ले लो। शिष्यत्व स्वीकार करो--किसी का, जो तैरना जानता है। जो तिरता हो पानी में बिना हाथ-पैर तड़फड़ाए। जल्दी ही तुम भी योग्य हो जाओगे। और योग्यता कुछ खास नहीं है। योग्यता इतनी ही है कि तुमको भी पानी में उतर-उतर कर भरोसा आ जाएगा कि अपने हाथ-पैर चलाने से डूबने से बचा जा सकता है। एक बात। फिर धीरे-धीरे दूसरी बात पता चलेगी कि हाथ-पैर भी तड़फड़ाने की जरूरत नहीं है; बचना स्वाभाविक है। पानी तो मुर्दे को तैरा देता है, तो मैं तो जिंदा हूं, मुझे क्यों न तैराएगा! तुम रुक कर पड़ जाते हो। जब एक दफा रुक कर पड़ जाते हो और नहीं डूबते--बस एक दफा अनुभव की किरण उतर गई कि नहीं डूबता, डूबना होता ही नहीं--भय गया--भय सदा को गया।

सतगुरु के संग-साथ में भय मिट जाता है। सतगुरु भगवान थोड़े ही दे सकता है तुम्हें; सिर्फ भय मिटा सकता है। और भय मिट गया तो भगवान मिल गया। और अभी तो तुम्हारा जो भगवान है, केवल तुम्हारा भय है। बड़ी उलटी बातें हैं। अभी तुम मंदिर-मस्जिद जाते हो, वह भय के कारण जाते हो। अभी तो तुम्हारा भगवान जो है वह भय के भूत से ज्यादा नहीं है। और भय से कैसे भगवान मिले? निर्भय को भगवान मिलता है।

तो सारी बात भगवान पाने की नहीं है--सारी बात : कैसे निर्भय हो जाएं? किसी निर्भीक के पास बैठो, सत्संग करो। उसकी निर्भय की किरणें तुम्हें भी आंदोलित करें, उसकी तरंगें तुम्हें भी छुएं--और धीरे-धीरे तुम भी निर्भय हो जाओ।

संगति के परिणाम होते हैं। कायरों के साथ रहोगे, कायर हो जाओगे। वीरों के साथ रहोगे, वीर हो जाओगे। जैसों के साथ रहोगे धीरे-धीरे वैसे हो जाओगे। संग-साथ परिणाम लाता है।

अगर परमात्मा की तलाश है, अगर आत्मधन की तलाश है तो उनका साथ करो जिनको मिल गया हो। पंडितों के पास बैठ कर समय मत गंवाना; उनको भी नहीं मिला है, तुम्हें कैसे दे सकेंगे? उस आदमी से सावधान रहना जिससे तुम कहो कि मुझे तैरना सीखना है और वह पोथी खोल कर बैठ जाए और कहे कि देख, मुझे सब पता है कि तैरने में क्या-क्या होता है; यह लिखा है, मेरी किताब में सब लिखा है; यह रही संहिता, इसमें सब लिखा हुआ है, और मैं तुझे सब समझाए देता हूं कि तैरना कैसा होता है।

नहीं, जो आदमी तुम्हें नदी के तट पर ले जाने को तैयार हो--तुम पूछो तैरना कैसा, वह कहे आओ; तुम पूछो ध्यान कैसा, वह कहे आओ; तुम पूछो भक्ति कैसी, वह कहे आओ और डुबकी लो, बताए देता हूं--जिसका इंगित यथार्थ की तरफ हो।

संन्यास का फल निश्चित मधुर है। सिर्फ संन्यास का फल ही मधुर है; संसार के तो सभी फल कड़वे हैं। और अगर तुम्हें कड़वे लगते भी न हों तो सिर्फ उसका कारण इतना है कि तुम्हारी जिह्वा अभयस्त हो गई है, जड़ हो गई है।

ऐसा हो जाता है न, पहली-पहली दफे कॉफी पीओ तो तिक्त लगती है। फिर कुछ दिन अभ्यास करते रहो। इस आशा में कि यह तो सीखनी पड़ेगी, सुसंस्कृत आदमी और कॉफी न पीओ, तो गंवारपन का लक्षण है; कॉफी तो सीखनी ही पड़ेगी--थोड़े दिन अभ्यास करते रहो, फिर कॉफी तिक्त नहीं लगती। पहली दफा सिगरेट पीओ तो खांसी आती है, आंख में आंसू आ जाते हैं, गले में अड़चन मालूम होती है। बिलकुल स्वाभाविक हो रहा है यह। लेकिन फिर यह देख कर कि यह तो बड़ी कमजोरी की बात हो गई और सिगरेट तो सभी बलशाली आदमी पीते हैं--तो किए जाओ अभ्यास, थोड़े दिन में शरीर स्वीकार कर लेता है इस अत्याचार को। धुएं को बाहर-भीतर ले जाना, गंदे धुएं को, तंबाकू के ज्वरग्रस्त धुएं को बाहर-भीतर ले जाना--और धीरे-धीरे तुम्हें रस आने लगता है। रस होता तो पहले दिन आ जाता। रस था नहीं। रस अभ्यास से बनाया जा रहा है।

इसलिए मैं तुमसे कहता हूं कि परमात्मा का रस तो पहले ही अनुभव में आ जाता है। उसका अभ्यास नहीं करना होता; एक दफा मुड़ो भर, बस एक दफा चखो भर--पहला कौर परमात्मा का और रस मिल जाता है। अभ्यास नहीं करना होता। पहले ही कौर में प्राण मुक्त हो जाते हैं। एक ही कौर--और रोआं-रोआं अमृत से भर जाता है। मगर एक कौर लेने की हिम्मत तो करनी ही पड़े।

आज इतना ही।

तीसरा प्रवचन

बड़ी से बड़ी खता--खुदी

दीपक बारा नाम का, महल भया उजियार।।
महल भया उजियार, नाम का तेज विराजा।
सब्द किया परकास, मानसर ऊपर छाजा।।
दसों दिसा भई सुद्ध, बुद्ध भई निर्मल साची।
छूटी कुमति की गांठ, सुमति परगट होय नाची।।
होत छतीसो राग, दाग तिर्गुन का छूटा।
पूरन प्रगटे भाग, करम का कलसा फूटा।।
पलटू अंधियारी मिटी, बाती दीन्ही बार।
दीपक बारा नाम का, महल भया उजियार। 4।।

हाथ जोरि आगे मिलैं, लै-लै भेंट अमीर।।
ले-लै भेंट अमीर, नाम का तेज विराजा।
सब कोऊ रगरै नाक, आइकै परजा-राजा।।
सकलदार मैं नहीं, नीच फिर जाति हमारी।
गोड़ धोय शटकरम, वरन पीवै लै चारी।।
बिन लसकर बिन फौज, मुलुक में फिरी दुहाई।
जन-महिमा सतनाम, आपु में सरस बढ़ाई।।
सत्तनाम के लिहे से पलटू भया गंभीर।
हाथ जोरि आगे मिलैं, लै-लै भेंट अमीर।। 5।

संत सासना सहत हैं, जैसे सहत कपास।।
जैसे सहत कपास, नाय चरखी में ओटै।
रुई धर जब तुनै हाथ से दोउ निभोटै।।
रोम-रोम अलगाय पकरिकै धुनिया धूनी।
पिउनी बहं दै कात, सूत ले जुलहा बूनी।।
धोबी भट्टी पर धरी, कुंदीगर मुगरी मारी।
दरजी टुक टुक फारि-जोरिकै किया तयारी।।
परस्वारथ के कारने दुख सहै पलटूदास।
संत सासना सहत हैं, जैसे सहत कपास।। 6।।

जीवन में दुख है। इस दुख के साथ दो उपाय हैं। एक तो है इसे भूल जाना और एक है इससे जाग जाना। भूलने की विधि, भूलने की सारी विधियों का नाम संसार है। जागने की विधि--और जागने की एक ही विधि है--उसका नाम है ध्यान, भक्ति, योग।

दुख है, तो शराब से भूला जा सकता है, संभोग में भूला जा सकता है, संगीत में भूला जा सकता है, और-और ----। लेकिन भूलने से कुछ बात मिटती तो नहीं; बात तो अपनी जगह बनी रहती है। भूलने से तुम मिटते हो, बात नहीं मिटती है। भूलने से दुख नहीं मिटता--तुम मिटते हो। भूलने से धीरे-धीरे तुम मूर्च्छित होते चले जाते हो; तुम्हारे चैतन्य में प्रकाश की जगह अंधकार हो जाता है। जितना भूलोगे उतना ही भरमोगे, क्योंकि उतना ही अंधेरा हो जाएगा। भूलने का मतलब ही अंधेरा होता है--चैतन्य का खो जाना। पी ली शराब, दुख थे हजार, चिंताएं थीं, संताप थे, संकट थे, बोझ खड़े थे सामने सवाल थे जो हल न होते थे, समस्याएं थीं जो समाधान मांगती थी और समाधान दिखाई न पड़ते थे--पी ली शराब, न रहे कोई दुख, न रही कोई समस्या, भूल-भाल गए। लेकिन भूले कैसे? कीमत क्या चुकाई? कीमत चुकाई कि चैतन्य को गंवाया; आत्मा को काट कर फेंका। तुम मुर्दा हो गए। तुम जड़ हुए।

ऐसे आदमी अपने दुख को भुलाने के लिए धीरे-धीरे अपने को तोड़ता-मिटाता है। धन में भूलो तो भी शराब है। धन का मद भी होता है--धन-मद। जेब गरम होती है तो नशा होता है। पद में भूलो तो शराब है--पद-मद। जो पद पर बैठ जाता है, उसकी अकड़ देखते! जो पद से उतर जाता, उसकी हालत देखते!

पद मद है। वह भी शराब है। और अक्सर मजे की बात है कि राजनीतिज्ञ, सारी दुनिया में, जैसे ही पद पर पहुंचते हैं, शराब बंद करना चाहते हैं। और सबसे बड़ी शराब वे ही पी रहे हैं। सबसे बड़ी शराब सत्ता की है। और अंगूरों से जो निकलती है वह तो बहुत साधारण है, घड़ी-दो-घड़ी में उतर जाती है। यह जो सत्ता से निकलती है, इसका नशा बड़ा गहरा है और बड़े दूर तक जाता है। जो खुद नशे में डूबे हैं वे दूसरों को नशे में नहीं डूबने देना चाहते।

लेकिन आदमी उपाय खोजता रहा है, सदियां हो गई हैं। शास्त्रों ने कहा शराब मत पीओ। संतों ने कहा शराब मत पीओ। लेकिन आदमी की तकलीफ तो समझो, आदमी शराब पीता क्यों है? आदमी की जिंदगी में दुख है। दुख इतना है कि या तो भुलाए या स्वयं जागे। और ये दोनों प्रक्रियाएं बड़ी विपरीत हैं। और भुलाना सस्ता है। भुलाना तो बाजार में खरीदा जा सकता है; काऊंटर पर बिकता है; एक प्याली शराब में आ जाता है। जगाना तो बहुत कठिन है। जगाना तो बड़ी साधना है। तो या तो शराब या साधना।

इसलिए धर्मों ने शराब का विरोध किया है--शराब के कारण नहीं। क्योंकि शराब प्रतियोगी है ध्यान की। इस भेद को समझना। जब राजनीतिज्ञ शराब का विरोध करता है तो उसे कुछ भी पता नहीं वह क्या कह रहा है। वह शायद राजनीति की ही बातें कर रहा हो। लेकिन जब धर्म शराब के विरोध में कुछ कहता है तो उसके कारण बड़े अनूठे हैं, बड़े और हैं। धर्म इसलिए शराब का विरोध करता है कि शराब झूठा धर्म है। शराब नकली सिक्का है। अगर भूलना है तो भूलने का असली उपाय तो एक है : जागना। क्योंकि जागते ही दुख मिट जाता है; भूलने की जरूरत ही नहीं रह जाती। दुख समाप्त हो जाता है। कमरे में अंधेरा घिरा है। तुमने नशा पी लिया, अब तुम भूल गए कि अंधेरा है। लेकिन अंधेरा अपनी जगह है। धर्म कहता है दीया जला लो, फिर अंधेरा है ही नहीं। फिर अंधेरा समाप्त हुआ।

मय-गुलफाम भी है, साजे-इसरत भी है, साकी भी
मगर मुश्किल है आशोबे हकीकत से गु.जर जाना।

फूल जैसी सुंदर शराब है, सुख का संगीत है, सुंदर साकी भी है, शराब पिलाने वाली भी है; मगर मुश्किल है आशोबे हकीकत से गुजर जाना। लेकिन फिर भी जीवन की जो पीड़ा है, वास्तविकता की जो पीड़ा है, यथार्थ का जो कष्ट है, उससे मुक्त हो जाना, उससे बिना दुखी हुए गुजर जाना बहुत कठिन है, असंभव है। कठिन नहीं, असंभव ही है। रोज-रोज भुलाओगे, रोज-रोज दुख अपनी जगह खड़ा हो जाएगा। तो या तो शराब पीओ या परमात्मा को पीओ।

फिर शराब बहुत किस्म की है--पद की, मद की, धन की, यश की, नाम की, प्रतिष्ठा की। फिर शराबें बहुत किस्म की हैं। मगर वे सब अलग-अलग ढंग ही हैं शराब के। अलग-अलग दुकानों पर बिकती हैं, बस इतना ही फर्क है। अगर चुनाव करना हो तो दो में ही करना होता है।

इसलिए दुनिया में दो ही तरह के लोग हैं--संसारी और संन्यासी। संसारी का अर्थ है, जो अभी इस चेष्टा में संलग्न है कि भुला लूंगा, कोई न कोई रास्ता खोज लूंगा कि भूल जाएगी बात; और थोड़ा धन होगा, और थोड़ा बड़ा मकान होगा, और सुंदर स्त्री होगी, बच्चा पैदा हो जाएगा, लड़के की नौकरी लग जाएगी, बच्चे की शादी हो जाएगी, बच्चों के बच्चे होंगे--कुछ रास्ता होगा कि मैं भूल जाऊंगा और यह झंझट मिट जाएगी।

झंझट को भूलने में संसारी और झंझट खड़ी करता जाता है। इसलिए ज्ञानियों ने संसार को प्रपंच कहा है। मिटाने के लिए चलते हो, और बन जाता है। सुलझाने चलते हो, और उलझ जाता है। जितना सुलझाने की कोशिश करते हो उतनी ही गांठ उलझती जाती है; उतनी ही मुश्किलें खड़ी होती चली जाती हैं। एक समाधान खोजते हो, एक समाधान से दस समस्याएं और खड़ी हो जाती हैं। और जो एक जिसे हल करने चले थे वह तो अपनी जगह बनी रहती है, दस नई खड़ी हो जाती हैं। ऐसे विस्तार होता चला जाता है। मरते-मरते तक आदमी अपने ही जाल में फंस जाता है। उसने ही रचा था। उसने ही ये गड्ढे खोदे थे। उसने बड़ी आशा से ये जंजीरें ढाली थीं। उसे ख्याल भी न था कि ये मेरे ही हाथ में पड़ जाएंगी।

मैंने सुना है रोम में एक बहुत प्रसिद्ध लोहार हुआ। उसकी प्रसिद्धि सारी दुनिया में थी, क्योंकि वह जो भी बनाता था वह चीज बेजोड़ होती थी। उस लोहार की दुकान पर बनी तलवार का कोई सानी न था। और उस लोहार की दुकान पर बने सामानों का सारे जगत में आदर था; दूर-दूर के बाजारों में उसकी चीजें बिकती थीं, उसका नाम बिकता था। फिर रोम पर हमला हुआ। और रोम में जितने प्रतिष्ठित लोग थे, पकड़ लिए गए। रोम हार गया। वह लोहार भी पकड़ लिया गया। वह तो काफी ख्यातिलब्ध आदमी था। उसके बड़े कारखाने थे। और उसके पास बड़ी धन-सम्पत्ति थी, बड़ी प्रतिष्ठा थी। वह भी पकड़ लिया गया। तीस रोम के प्रतिष्ठित जो सर्वशक्तिशाली आदमी थे उनको पकड़ कर दुश्मनों ने जंजीरों और बेड़ियों में बांध कर पहाड़ों में फेंक दिया मरने के लिए। जो उनतीस थे वे तो रो रहे थे, लेकिन वह लोहार शांत था। आखिर उन उनतीसों ने पूछा कि तुम शांत हो, हमें फेंका जा रहा है जंगली जानवरों को खाने के लिए! उसने कहा, फिकर मत करो मैं हूं, मैं लोहार हूं। जिंदगी भर मैंने बेड़ियां और हथकड़ियां बनाई हैं, मैं खोलना भी जानता हूं। तुम घबड़ाओ मत। एक दफा इनको फेंक कर चले जाने दो, मैं खुद भी छूट जाऊंगा, तुम्हें भी छोड़ लूंगा। तुम डरो मत।

तो लोगों की हिम्मत आ गई, आशा आ गई। बात तो सच थी, उससे बड़ा कोई कारीगर न था। जरूर जिंदगी भर ही लोहे के साथ ही खेल खेला है, तो जंजीरें न खोल सकेगा! खोल लेगा। यह बात भरोसे की थी। फिर दुश्मन उन्हें फेंक कर गड्ढों में, चले गए। वे सब घिसट कर किसी तरह उस लोहार के पास पहुंचे। पर वह लोहार रो रहा था। उन्होंने पूछा कि मामला क्या है? तुम और रो रहे हो? और हमने तो तुम पर भरोसा किया था। और हम तो तुम्हारी आशा से जीते रहे अब तक। हम तो मर ही गए होते। तुम क्यों रो रहे हो? हुआ क्या? अब तक तो तुम प्रसन्न थे।

उसने कहा कि मैं रो रहा हूं इसलिए कि मैंने जब गौर से अपनी जंजीरें देखीं तो उन पर मेरे हस्ताक्षर हैं, वे मेरी ही बनाई हुई हैं। मेरी बनाई जंजीरें तो टूट ही नहीं सकतीं। ये किसी और की बनाई होती तो मैंने तोड़ दी होतीं। लेकिन यही तो मेरी कुशलता है कि मेरी बनाई जंजीर टूट ही नहीं सकती। असंभव। यह नहीं हो सकता। मरना ही होगा।

उस लोहार की कहानी जब मैंने पढ़ी तो मुझे याद आया : यह तो हर संसारी आदमी की कहानी है। आखिर में तुम एक दिन पाओगे कि तुम्हारी ही जंजीरों में फंस कर तुम मर गए। तुमने बड़ी कुशलता से उनको ढाला था। तुम्हारे हस्ताक्षर उन पर हैं। तुम भलीभांति पहचान लोगे कि यह अपने ही हाथ का जाल है। इस पूरे सिद्धांत का नाम कर्म है। तुम ही बनाते हो। तुम्हीं ये सीखचे ढालते हो। तुम्हीं ये पिंजरे बनाते हो। फिर कब तुम

इसमें बंद हो जाते हो, कब द्वार गिर जाता है, कब ताले पड़ जाते हैं, तुम्हें समझ में नहीं आता। ताले भी तुम्हारे बनाए हुए हैं। शायद तुमने किसी और कारण से दरवाजा लगा लिया था--सुरक्षा के लिए। लेकिन अब खुलता नहीं। शायद हाथ में तुमने जंजीरें पहन ली थीं, आभूषण समझ कर। अब जब पहचान आई है तो अब खुलती नहीं, क्योंकि आभूषण तो नहीं जंजीरें थीं।

जिनको तुमने मित्र समझा था वे शत्रु सिद्ध हुए हैं। और जिनको तुमने सोचा था कि जीवन के मार्ग को प्रशस्त करने के लिए बना रहे है, उनसे ही नरक का रास्ता प्रशस्त हुआ।

कहावत है : नरक का रास्ता शुभ आकांक्षाओं से भरा पड़ा है। अच्छी-अच्छी आकांक्षाएं करके ही तो आदमी नरक का रास्ता तय करता है। नरक का रास्ता तुम्हारे सपनों से ही पटा है। तुम्हारी योजनाओं के पत्थर ही नरक से रास्ते पर लगे हैं; उन्हीं से नरक का रास्ता बना है।

एक तो संसारी है जो दुख को भुलाने के उपाय करता है। और एक संन्यासी है जो दुख को भुलाने के उपाय नहीं करता--जो अपने को जगाने के उपाय करता है। बड़ा क्रांतिकारी फर्क है। बात क्रांति की हो गई। जिसको यह बात दिखाई पड़ने लगी कि असली सवाल यह नहीं कि बाहर दुख है; असली सवाल यह है कि मैं अंधा हूं कि मैं सोया हूं, कि मैं मूर्च्छित हूं, कि मैं बेहोश हूं। असली सवाल यह नहीं है कि मुझे बाहर सुख क्यों नहीं मिल रहा है; असली सवाल यह है कि मेरे भीतर सुख का संगीत अभी नहीं बज रहा है।

बाहर से सुख मिलता ही नहीं। भीतर बजे संगीत तो बाहर भी उठती हैं तरंगें। भीतर उठें लहरें तो बाहर तक भी उन लहरों का नाद पहुंचता है। लेकिन बाहर से कभी सुख नहीं मिलता। सुख होता है तो भीतर होता है। और जब तक तुम भीतर के प्रति न जागे, तब तक दुख ही पाओगे--और नए दुख, और नए दुख। आदमी दुख ही बदलता रहता है।

एक पश्चिम का विचारक, आस्कर वाइल्ड, जब मरा तो उसने अंतिम दिन अपनी डायरी में लिखा है कि जीवन भर का मेरा अनुभव सार-निचोड़ इतने में है कि एक दुख से मैं दूसरा दुख बदलता रहा। एक दुख से थक गया तो दूसरे को पकड़ लिया। इस आशा में कि शायद यहां सुख होगा। फिर उसमें भी दुख पाया। उससे थक गया तो तीसरा पकड़ लिया। लेकिन जिंदगी भर का निचोड़ यह है कि एक दुख से मैं दूसरे दुख पर जाता रहा। फ्राम वन न्यूसेंस टू एनअदर न्यूसेंस। एक उपद्रव से बचे नहीं कि दूसरा उपद्रव रच लिया।

जिस दिन तुम्हें यह समझ में आ जाता है कि बाहर तो उपद्रव ही है, उत्सव भीतर है; जिस दिन यह समझ में आ जाता है बाहर अर्थात दुख; जिस दिन तुम्हारी अंतर भाषा में बाहर का अर्थ दुख हो जाता है और भीतर का अर्थ सुख हो जाता है--उस दिन क्रांति घटती है। उस दिन तुम भी पलटू हो गए, पलट गए। उस दिन रूपांतर हुआ। उस दिन लौट पड़े घर की तरफ। अभी भागे जाते थे दूर-दूर-दूर, कहीं और स्वर्ग था। फिर लौट पड़े। और जो लौट पड़ा उसे स्वर्ग अपने ही भीतर मिल जाता है।

संन्यास का अर्थ है अंतर्यात्रा।

ये आज के सूत्र तुम्हारे जीवन को संसार से संन्यास की तरफ लाने में बड़े बहुमूल्य मील के पत्थर सिद्ध हो सकते हैं। एक-एक सूत्र को ध्यान से समझना।

"दीपक बारा नाम का, महल भया उजियार।।

महल भया उजियार, नाम का तेज विराजा।"

पहली बातः भीतर कोई दीया जलाना है। उसे तुम क्या नाम देते हो, फर्क नहीं पड़ता। बुद्ध कहते हैं शून्य का दीया। और शंकर कहते हैं ब्रह्म का दीया। और मध्ययुग के संत नानक, कबीर, दादू, पलटू, दरिया, वे सब कहते हैं : नाम का दीया।

नाम का अर्थ समझो।

नाम का अर्थ होता है : प्रभु-स्मरण। नाम का अर्थ होता है : उसकी याद, जिक्र, सुरति, स्मृति, स्मरण। परमात्मा भीतर विराजमान है, हम उसकी स्मृति खो गए हैं। परमात्मा हमने नहीं खोया है। भूल कर भी मत सोचना कि तुमने परमात्मा खोया है, क्योंकि परमात्मा तुम खो दोगे तो फिर श्वास भी न ले सकोगे। श्वास ही

वही ले रहा है। भूल कर भी मत सोचना कि परमात्मा खोया जा सकता है। क्योंकि जो खोया जा सके वह परमात्मा नहीं है। परमात्मा तुम्हारा स्वभाव है। तुम्हारे रोम-रोम में वही धड़कता है। तुम्हारे कण-कण में वही जीवित है। तुम वही हो। तत्त्वमसि श्वेतकेतु!

उद्दालक ने अपने बेटे को कहा है : तू वही है, श्वेतकेतु!

मगर हमें याद नहीं है। विस्मरण हुआ है। भूल गए हैं।

एक सम्राट का बेटा बिगड़ गया। गलत संग-साथ में पड़ गया। बाप नाराज हो गया। बाप ने सिर्फ धमकी के लिए कहा कि तुझे निकाल बाहर कर दूंगा; या तो अपने को ठीक कर ले या मेरा महल छोड़ दे। सोचा नहीं था बाप ने कि लड़का महल छोड़ देगा। छोटा ही लड़का था। लेकिन लड़के ने महल छोड़ दिया। बाप का ही तो बेटा था, सम्राट का बेटा था, जिद्दी था। फिर तो बाप ने बहुत खोजा, उसका कुछ पता न चले। वर्षों बीत गए। बाप बूढ़ा; रोते-रोते उसकी आंखें धुंधिया गईं। एक ही बेटा था। उसका ही यह सारा साम्राज्य था। पछताता था बहुत कि मैंने किस दुर्दिन में, किस दुर्भाग्य के क्षण में यह वचन बोल दिया कि तुझे निकाल बाहर कर दूंगा!

ऐसे कोई बीस साल बीत गए और एक दिन उसने देखा कि महल के सामने एक भिखारी खड़ा है। और बाप एकदम पहचान गया। उसकी आंखों में जैसे फिर से ज्योति आ गई। यह तो उसका ही बेटा है। लेकिन बीस साल! बेटा तो बिलकुल भूल चुका कि वह सम्राट का बेटा है। बीस साल का भिखमंगापन किसको न भुला देगा! बीस साल द्वार-द्वार, गांव-गांव रोटी के टुकड़े मांगता फिरा। बीस साल का भिखमंगापन पर्त-पर्त जमता गया, भूल ही गई यह बात कि कभी मैं सम्राट था। किसको याद रहेगी! भुलानी भी पड़ती है, नहीं तो भिखमंगापन बड़ा कठिन हो जाएगा, भारी हो जाएगा। सम्राट होकर भीख मांगना बहुत कठिन हो जाएगा। जगह-जगह दुतकारे जाना; कुत्ते की तरह लोग व्यवहार करें; द्वार-द्वार कहा जाए, आगे हट जाओ--भीतर का सम्राट होगा तो वह तलवार निकाल लेगा। तो भीतर के सम्राट को तो धुंधला करना ही पड़ा था, उसे भूल ही जाना पड़ा था। यही उचित था, यही व्यवहारिक था कि यह बात भूल जाओ।

और कैसे याद रखोगे? जब चौबीस घंटे याद एक ही बात की दिलवाई जा रही हो चारों तरफ से कि भिखमंगे हो, लफंगे हो, आवारा हो, चोर हो, बेईमान हो; कोई द्वार पर टिकने नहीं देता, कोई वृक्ष के नीचे बैठने नहीं देता, कोई ठहरने नहीं देता--लो रोटी, आगे बढ़ जाओ-- मुश्किल से रोटी मिलती है। टूटा-फूटा पात्र! फटे-पुराने वस्त्र! नए वस्त्र भी बीस वर्षों में नहीं खरीद पाया। दुर्गंध से भरा हुआ शरीर। भूल ही गए वे दिन--सुगंध के, महल के, शान के, सुविधा के, गौरव-गरिमा के। वे सब भूल गए। बीस साल की धूल इतनी जम गई दर्पण पर कि अब दर्पण में कोई प्रतिबिंब नहीं बने।

तो बेटे को तो कुछ पता नहीं, वह तो ऐसे ही भीख मांगता हुआ इस गांव में भी आ गया है, जैसे और गांवों में गया था। यह भी और गांवों जैसा गांव है। लेकिन बाप ने देखा खिड़की से यह तो उसका बेटा है। नाक-नक्श सब पहचान में आता है। धूल कितनी ही जम गई हो, बाप की आंखों को धोखा नहीं दिया जा सका। बेटा भूल जाए, बाप नहीं भूल पाता है। मूल स्रोत नहीं भूल पाता है। उद्गम नहीं भूल पाता है। उसने अपने वजीर को बुलाया कि क्या करूं? वजीर ने कहा, जरा सम्हल कर काम करना। अगर एकदम कहा तो यह बात इतनी बड़ी हो जाएगी कि इसे भरोसा नहीं आएगा। यह बिलकुल भूल गया है, नहीं तो इस द्वार पर आता ही नहीं। इसे याद नहीं है। यह भीख मांगने खड़ा है। थोड़े सोच-समझ कर कदम उठाना। अगर एकदम से कहा कि तू मेरा बेटा है, तो यह भरोसा नहीं करेगा, यह तुम पर संदेह करेगा। थोड़े धीरे-धीरे कदम, क्रमशः।

तो बाप ने पूछा, क्या किया जाए? तो उसने कहा, ऐसा करो कि उसे बुलाओ। उसे बुलाने की कोशिश की तो वह भागने लगा। उसे महल के भीतर बुलाया तो महल के बाहर भागने लगा। नौकर उसके पीछे दौड़ाए तो उसने कहा कि ना भाई, मुझे भीतर नहीं जाना। मैं गरीब आदमी, मुझे छोड़ो। मैं गलती हो गई कि महल में आ गया, राजा के दरबार में आ गया। मैं तो भीख मांगता हूं। मुझे भीतर जाने की कोई जरूरत नहीं।

वह तो बहुत डरा सजा मिले कि कारागृह में डाल दिया जाए कि पता नहीं क्या अड़चन आ जाए! लेकिन नौकरों ने समझाया कि मालिक तुम्हें नौकरी देना चाहता है, उसे दया आ गई है। तो वह आया। लेकिन वह महल के भीतर कदम न रखता था। वह महल के बाहर ही झाड़ू-बुहारी लगाने का उसे काम दे दिया गया। फिर धीरे-धीरे जब वह झाड़ू-बुहारी लगाने लगा और महल से थोड़ा परिचित होने लगा, और थोड़ी पदोन्नति की गई, फिर और थोड़ी पदोन्नति की गई। फिर वह महल के भीतर भी आने लगा। फिर उसके कपड़े भी बदलवाए गए। फिर उसको नहलवाया भी गया। और वह धीरे-धीरे राजी होने लगा। ऐसे बढ़ते-बढ़ते वर्षों में उसे वजीर के पद पर लाया गया। और जब वह वजीर के पद पर आ गया तब सम्राट ने एक दिन बुला कर उससे कहा कि तू मेरा बेटा है। तब वह राजी हो गया। तब उसे भरोसा आ गया। इतनी सीढ़ियां चढ़नी पड़ीं। यह बात पहले दिन ही कही जा सकती थी।

तुमसे मैं कहता हूं, तुम परमात्मा हो। तुम्हें भरोसा नहीं आता। तुम कहते हो कि सिद्धांत की बात होगी; मगर मैं और परमात्मा! मैं तुमसे रोज कहता हूं, तुम्हें भरोसा नहीं आता। इसलिए तुमसे कहता हूं : ध्यान करो, भक्ति करो। चलो झाड़ा-बुहारी से शुरू करो। ऐसे तो अभी हो सकती है बात, मगर तुम राजी नहीं। ऐसे तो एक क्षण खोने की जरूरत नहीं है। ऐसे तो क्रमिक विकास की कोई आवश्यकता नहीं है। एक छलांग में हो सकती है। मगर तुम्हें भरोसा नहीं आता, तो मैं कहता हूं चलो झाड़ू-बुहारी लगाओ। फिर धीरे-धीरे पदोन्नति होगी। फिर धीरे-धीरे धीरे-धीरे बढ़ना। फिर एक दिन जब आखिरी घड़ी आ जाएगी, वजीर की जगह आ जाओगे, जब समाधि की थोड़ी सी झलक पास आने लगेगी, ध्यान की स्फुरणा होने लगेगी, तब यही बात एक क्षण में तुम स्वीकार कर लोगे। तब इस बात में श्रद्धा आ जाएगी।

नाम का अर्थ होता है : स्मृति। स्मृति का अर्थ होता है कि हमें याद था कभी, फिर हम भूल गए। हर बच्चा परमात्मा की स्मृति से भरा होता है। लेकिन उसे स्मृति होती है, ऐसा कहना भी ठीक नहीं। क्योंकि अभी विस्मृति ही नहीं हुई तो स्मृति कैसे होगी? इस जटिलता को थोड़ा समझना।

बच्चे शांत होते हैं। छोटा बच्चा है तुम्हारा, तुम्हारा बेटा है या बेटी है--शांत है। मगर उसकी शांति अभी बड़ी अचेतन शांति है। क्योंकि अशांति उसने जानी नहीं है। अशांति को जाने बिना शांति की परिभाषा नहीं बनती। जिसने अंधेरा नहीं जाना उसके प्रकाश के जानने का बहुत ज्यादा प्रमाण नहीं है। अंधेरे को जानेगा तो प्रकाश की परिभाषा उठेगी। यह बड़ी बेबूझ पहेली है, लेकिन जीवन की अनिवार्य पहेलियों में से एक है। समझ लो तो काम पड़ सकती है।

यहां भटके बिना कोई परमात्मा तक पहुंच ही नहीं सकता। परमात्मा में तो हम होते ही हैं, लेकिन भटक कर पहुंचते हैं। भटकना होता है पहुंचने के लिए। जैसे मछली सागर में पैदा होती है तो सागर में ही जीती है, उसे पता ही नहीं होता सागर कहां है। कैसे पता हो? सागर से कभी छूटी नहीं, पता कैसे हो? पता होने के लिए थोड़ी दूरी होनी चाहिए। पता होने के लिए थोड़ी बिछड़न होनी चाहिए, वियोग होना चाहिए। वियोग हुआ नहीं कभी, सागर में ही पैदा हुई, सागर में ही बड़ी हुई, सागर में ही रही, सागर ही सारा जीवन, अहर्निश--कैसे पता चले कि सागर कहां है? एक मछुआ उसे पकड़ ले, तब उसे याद आती है। सागर छूटते ही सागर की याद आती है। तड़फती है घाट पर। सागर में डूब जाना चाहती है फिर। अब अगर सागर में पहुंच जाए तो परम आनंद को उपलब्ध होगी। यह वही सागर है। जिसमें वह घड़ी भर पहले थी। लेकिन कभी आनंद न जाना था।

बच्चे वहीं हैं, जहां संत पहुंचते हैं। लेकिन बच्चों को कुछ आनंद का पता नहीं है; संतों को पता होता है। संत ऐसी मछलियां हैं जो घाट पर तड़प लिए, रेत में तड़प लिए। फिर, फिर डुबकी लगी।

नाम का अर्थ होता है : जो भूल गया उसकी याद। नाम का अर्थ होता है : जो सागर खो गया उसमें पुनः प्रवेश। नाम का अर्थ होता है : सुरति, याद का लौट आना।

"दीपक बारा नाम का, महल भया उजियार।"

और जैसे ही स्मृति जगती है कि मैं कौन हूं, वैसे ही उजियारा हो जाता है। और उजियारे के साथ ही जो कल झोंपड़ी जैसा लगता था वह महल हो जाता है। संत महल में ही रहते हैं। झोंपड़ी में रहे तो भी महल में ही रहते हैं। नंगे रहें तो भी सम्राटों के पास वैसे वस्त्र नहीं हैं। भूखे रहें तो भी उन जैसा कोई तृप्त नहीं है। अग्नि में जलें तो भी उनके भीतर कुछ जलता नहीं; वहां सब शीतल बना रहता है। कांटे उन पर बरसते रहें तो भी उनके भीतर का कमल खिला ही रहता है।

"दीपक बारा नाम का, महल भया उजियार"

समझ लेना। पलटू के पास कोई महल वगैरह नहीं था। लेकिन कहते हैं : महल भया उजियार! उजियारा होते ही महल हो जाता है। झोंपड़ा भी महल हो जाता है। एक क्षण में दीनता-हीनता खो जाती है। एक क्षण में दरिद्रता खो जाती है। एक क्षण में आदमी सम्राट हो जाता है। सम्राट तुम थे ही; सिर्फ याद की बात थी। भूली-बिसरी याद वापस लौट आई।

"दीपक बारा नाम का. . ."

यह नाम का दीया कैसे जले? कैसे जलाओ? यह प्रकाश कैसे प्रकटे? खोए हो तुम हजार बातों में। जो तुम खोए हो हजार बातों में, उसी में तुम्हारी जीवन-ऊर्जा व्यय हो रही है। वही जीवन ऊर्जा अगर न खोए तो प्रकाश की तरह प्रकट हो जाती है। थोड़ा मन धन में लगा है, थोड़ा मन पद में लगा है, थोड़ा मन प्रतिष्ठता में लगा है, थोड़ा दुकान में, थोड़ा बाजार में थोड़ा घर-गृहस्थी में--ऐसे मन हजार खंडों में बंटा है।

देखा तुमने, सूरज की किरणें पड़ती हैं तो आग पैदा नहीं होती! फिर एक कांच का टुकड़े से लेकर उन्हीं किरणों को इकट्ठा कर लो और वे ही किरणें इकट्ठी होकर एक कागज पर गिरें, . . . अलग-अलग गिरती थीं, छितरी-छितरी गिरती थीं तो कुछ आग पैदा नहीं होती थी। उन्हीं को एक कांच के टुकड़े से इकट्ठा कर लो और गिरें कागज पर तो, आग पैदा हो जाती है।

तुम्हारे पास ज्योति पैदा करने का उपाय है। तुम्हारे पास ज्योति की क्षमता है। लेकिन तुम्हारी ज्योति की क्षमता बहुत दिशाओं में बंटी है। एक टुकड़ा यहां, एक टुकड़ा वहां--तुम हजार टुकड़े हो। ये हजार टुकड़े इकट्ठे हो जाएं, एकाग्र हो जाएं। यह तुम्हारी दौड़ जो अनंत-अनंत दिशाओं में चल रही है, रुक जाए और तुम्हारी एक ही दौड़ हो जाए--अंतर्दिशा में। जैसे ही सारी जीवन-ऊर्जा एक दिशा में दौड़ती है, ज्योति जल जाती है।

प्रभु का नाम तो केवल बहाना है। इसलिए पतंजलि ने योगशास्त्र में कहा कि यह तो एक उपाय है। यह तो एक खूंटी है जिस पर तुम अपने सारे खंडों को टांग सको और अखंड हो सको! ईश्वर है या नहीं, इसकी फिकर मत करो। किसी भी बहाने टांग दो। महावीर ने बिना ईश्वर को माने टांग दिया तो भी बात घट गई। बुद्ध ने बिना आत्मा को माने टांग दिया तो भी बात घट गई। मानने की बात का कुछ सवाल नहीं है; खूंटी मिल जाए, खूंटी पर टांग दो; खीली लगी हो खीली पर टांग दो; खीली भी न हो तो दरवाजे के कोने पर टांग दो। सवाल टांगने का है। जैसे ही तुम इकट्ठे हो जाते हो--किसी बहाने, किसी निमित्त से, तुम्हारे खंड अखंड हो जाते हैं--वैसे ही दीया जल जाता है।

"दीपक बारा नाम का, महल भया उजियार।।

महल भया उजियार, नाम का तेज विराजा।"

वह जो संतों में तुम्हें तेज दिखाई पड़ता है, वह संतों का नहीं है, वह परमात्मा का है। वह उनका नहीं है। वे तो मिट गए--इसलिए है। वे तो जगह खाली कर गए। वे तो अब कहीं भी नहीं हैं।

संत का अर्थ होता है : व्यक्ति का अभाव हो गया। अहंकार गया। खाली बांस की पोंगरी रह गई अब। अब भीतर कुछ भी नहीं है, खालीपन है। उसी खालीपन से परमात्मा के स्वर प्रकट होते हैं।

"महल भया उजियार, नाम का तेज विराजा।"

इसलिए कोई संतपुरुष ऐसा नहीं कहेंगे कि यह मेरा तेज है। यह परमात्मा का तेज है। और अगर कभी कोई कहेगा मेरा तेज है तो "मेरे" से वह परमात्मा ही बोल रहा है, संत नहीं बोल रहा है। अगर कृष्ण ने कहा कि

मामेकं शरणं ब्रज, आ जा मेरी शरण--तो वे जिस मैं की बात कर रहे हैं वह कृष्ण का मैं नहीं है, वह परमात्मा का मैं है। जब जीसस ने कहा मैं ही हूं मार्ग, मैं ही हूं द्वार, मैं ही हूं सत्य, तो यह जीसस का मैं नहीं है। जीसस का मैं तो इतनी हिम्मत कहां कर सकेगा? कोई मैं इतनी हिम्मत नहीं कर सकता। मैं तो बड़ी कमजोर चीज है। झूठी चीज है, इतनी हिम्मत हो भी कैसे सकती है! यह तो परमात्मा ही बोला।

इसलिए हम कहते हैं वेद के जो वचन उतरे वे परमात्मा से उतरे; ऋषि तो केवल मार्ग बने। वचन अपौरुषेय हैं। गीता कृष्ण से उतरी, कही तो परमात्मा ने। और बाइबिल के अपूर्व वचन जीसस से आए हैं। ये बांसुरियां अलग-अलग हैं लेकिन जिसने गीत गाया है, वह एक ही है। बांसुरियां अलग-अलग हैं, इसलिए स्वर-भेद भी हो गया है। बांसुरियां अलग-अलग हैं तो बांसुरियों के ढंग अलग-अलग हैं। भाषा अलग-अलग है, शैली अलग-अलग है। मगर जो झांकेगा इस बांसुरी के खालीपन के पार खोजेगा ओंठ, खोजेगा किसके प्राण संगीतबद्ध होकर बह रहे हैं, तो एक को ही पाएगा।

"महल भया उजियार, नाम का तेज विराजा।"

तो पलटू कहते हैं, अब मैं तो रहा नहीं, और यह मैं जब तक था तब तक तो यह झोंपड़ा था। मेरे कारण झोंपड़ा था। मैं जब तक था तब तक दीन था, दुखी था, दरिद्र था। मेरे कारण दुख था, दीनता थी, दरिद्रता थी। इधर मैं गया इधर झोंपड़ा महल हो गया। और अब तो तेज विराजा है, क्षमा करना, मेरा नहीं है। वह तो उसकी याद का तेज विराजा है।

और ऐसा तेज तुममें भी विराज सकता है, क्योंकि तुम भी उससे इतने ही जुड़े हो। ये फूल तुम में भी खिल सकते हैं, क्योंकि तुम परमात्मा की पृथ्वी से उसी तरह संयुक्त हो जैसे पलटू का वृक्ष संयुक्त है या कि बुद्ध का, या कि नानक का या कि कबीर का या कि मोहम्मद का। तुम्हें याद भूल गई है कि अपनी जड़ों की, बस इतना ही भेद है। पलटू को याद आ गई है अपनी जड़ों की।

"सब्द किया परकास, मानसर ऊपर छाजा।"

सुनते हो यह अपूर्व वचन! सब्द किया परकास. . . .। वह बोला और प्रकाश हो गया है। लेकिन वह बोलता तभी है जब तुम नहीं बोलते। एक ही शर्त पूरी करनी है कि तुम न बोलो, तो प्रभु बोले। दोनों साथ नहीं बोल सकते। आदमी और परमात्मा के बीच कभी डायलॉग नहीं होता। आदमी बोलता है, परमात्मा चुप रहता है। ठीक ही है, जब आदमी बोल रहा है तो परमात्मा सुनता है। जब आदमी चुप होता है तो परमात्मा बोलता है।

इसलिए तुम अपनी प्रार्थनाओं में बहुत बोलना मत। तुम बोले तो परमात्मा को तुम कभी न सुन पाओगे। और तुम बोले तो बोलोगे भी क्या? तुम अपने उसी कूड़े-कर्कट को दोहराते रहोगे। तुम अंधेरे के साथ ही खेल और रास रचाते रहोगे।

"सब्द किया परकास. . . ."।

प्रभु जब बोलता है, जब उसका नाद होता है, तब प्रकाश होता है। तो अब यह समझना। सारे संतों ने "सब्द" पर जोर दिया है। और सारे संतों ने निःशब्द पर जोर दिया है। तो कभी-कभी उलझन होती है सोचने-विचारने वाले को कि मामला क्या है : कभी निःशब्द पर जोर देते, कभी शब्द पर! शब्द परमात्मा का; निःशब्द तुम्हारा--इतना ख्याल रहे तो फिर अड़चन न आएगी। दो अलग तलों की बात हो रही है। तुम चुप हो जाओ। तुम निःशब्द हो जाओ। तुम बोलो ही मत। तुम्हारे भीतर मौन हो--तुम मुनि हो जाओ। घड़ी दो घड़ी भी अगर दिन में तुम मौन में उतर जाओ तो वहीं से तुम पाओगे : सब्द किया परकास! उसका स्वर, उसकी स्वर-लहरी बहने लगती है। धीमा स्वर है वह। तुम्हारा बाजार का कोलाहल अगर जारी रहा तो सुनाई न पड़ेगा। अति सूक्ष्म है स्वर वह। तुम्हारी स्थूल बकवास जारी रही तो वह कहीं भी खो जाएगा।

"सब्द किया परकास, मानसर ऊपर छाजा।"

और जैसे मानसरोवर पर कमल खिलते हैं न, ऐसे जब तुम्हारे भीतर निःशब्द का मानसरोवर होगा; निःशब्द की शांति, शून्य होगा, लहर भी न उठती होगी तुम्हारे मानसरोवर पर, तब उसके शब्द उतरते हैं और कमल बन जाते हैं। इसलिए कहता हूं, यह बड़ा प्यारा वचन है।

"सब्द किया परकास, मानसर ऊपर छाजा।"

मेरा मानसरोवर है--कमल उसके खिले हैं। मैं तो सिर्फ चुप हो गया, तरंगहीन निस्तब्ध हो गया--कमल उसके खिले हैं। कमल उसके हैं, सुगंध उसकी है। मैंने तो सिर्फ जगह दी है, मैंने तो सिर्फ मार्ग साफ कर दिया है। मैं बीच में नहीं खड़ा हुआ हूं, मैं अटकाया नहीं हूं उसे बस। इतनी ही मेरी कुशलता है कि मैं हट गया हूं, कि मैं द्वार पर अटक कर खड़ा नहीं हूं। झरना तो उसका है, मैं चट्टान नहीं बना हूं बस--और झरना बहने लगा है।

तुम मानसरोवर बनो।

ध्यान की सारी प्रक्रियाएं और कुछ नहीं करती--तुम्हें मानसरोवर बनाती हैं; तुम्हें निस्तंरग बनाती हैं। धीरे-धीरे शब्द और विचार की तरंगें शांत होती जाएं। तुम एक ऐसी जगह आ जाओ जहां तुम्हारे भीतर कोई बोलने वाला न बचे; अबोल हो जाए; सन्नाटा हो जाए; अतल सन्नाटा हो जाए। एक छोर से दूसरे छोर तक कहीं भी कोई लहर न उठती हो। उसी क्षण तुम्हारे ऊपर, तुम्हारी छाती पर, तुम्हारे मानसर पर अपूर्व कमल खिलने लगेंगे, जो कभी नहीं खिले। और उन्हीं कमलों की तलाश है; उसी सुवास की तलाश है; उसी आनंद की. . .।

"सब्द किया परकास, मानसर ऊपर छाजा।

दसों दिसा भई सुद्ध, बुद्ध भई निर्मल साची।"

पलटू यह कह रहे हैं कि अपने किए तो बहुत कोशिश की थी कि शुद्ध हो जाऊं; नहीं हो पाया। अपने किए तो कितनी चेष्टा की थी कि बुराई मिट जाए, चोरी मिटे, लोभ मिटे, मान-मत्सर मिटे। अपने किए तो कितनी चेष्टा न की थी कि सज्जन बनूं, संत बनूं, अहिंसा आ जाए, दया हो, करुणा हो, पाप जाए, पुण्य आए! अपने किए तो कितनी चेष्टा नहीं की थी, और किए-किए भी मैं शुद्ध न हो सका था। "मैं" तो कभी शुद्ध होता ही नहीं। "मैं" का होना ही अशुद्धि में है। "मैं" तो कीड़ा ही अशुद्धि का है। "मैं" तो अशुद्धि में ही जीता है। अशुद्धि उसका भोजन है। इसलिए "मैं" कभी शुद्ध नहीं हो सकता है।

तो जब तक तुम अपने को शुद्ध करने में लगे हो, तब तक तुम शुद्ध न हो पाओगे, क्योंकि तुम तो बचोगे--और तुम्हारा बचना ही अशुद्धि है। और तुम्हारी दुर्गंध दसों दिशाओं में भरती रहेगी। शुद्धि तो परमात्मा की मौजूदगी से होती है। शुद्धि तो उसके आने मात्र से हो जाती है। जैसे प्रकाश के आते ही अंधेरा चला जाता है, ऐसे ही उसके आते ही शुद्धि हो जाती है, अशुद्धि खो जाती है।

"दसों दिसा भई सुद्ध. . . ."।

इस कमल के खिलते ही दसों दिशाएं अचानक शुद्ध हो गईं। चमत्कार हुआ है। सभी संतों को इस चमत्कार का अनुभव है। इसलिए तो तुम जब उनसे जाकर पूछते हो कि आप ऐसे शुद्ध कैसे हुए, तो उनके पास कोई उत्तर नहीं है। शुद्ध वे अपनी तरफ से हुए भी नहीं हैं। और जो तुमसे कहते हों हम कैसे शुद्ध हुए, जानना अभी शुद्ध हुए भी नहीं हैं। अपनी चेष्टा से कोई शुद्ध नहीं होता। अपनी चेष्टा से शुद्ध होना ऐसा ही है जैसे कोई अपने जूते के बंद पकड़ कर अपने को उठाने की कोशिश करे। तुम्हारी चेष्टा अंततः तुम्हारी चेष्टा है। तुम ही अशुद्ध हो तो तुम्हारी चेष्टा से शुद्धि कैसे होगी? यह असंभव है। यह नहीं हो सकता। इसके होने का कोई उपाय नहीं है।

फिर कैसे आदमी शुद्ध होता है? आदमी जरूर शुद्ध होता है। शुद्ध आदमी जमीन पर हुए हैं। थोड़े सही, लेकिन शुद्ध आदमी जमीन पर हुए हैं। उनके कारण ही मनुष्य की गरिमा है। उनके कारण ही मनुष्य के जीवन में कुछ नमक है। उनके कारण ही मनुष्य के जीवन में कुछ काव्य है, कुछ संगीत है, कुछ सौरभ है, कुछ सौंदर्य है।

मगर जो भी कभी शुद्ध हुआ है--वह अपने को हटा कर, अपने को गिरा कर। इधर तुम गिरे, उधर परमात्मा तुम्हारे भीतर उठा।

"दसों दिसा भई सुद्ध, बुद्ध भई निर्मल साची।"

और कितनी चेष्टा करते थे और नहीं होता था और आज अचानक हो गया, अनायास हो गया, प्रसाद-रूप हो गया। बुद्ध भई निर्मल साची। बुद्धि निर्मल भी हो गई और सारा मल खो गया। और सत्य भी हो गई, प्रामाणिक भी हो गई। अब तो वही कहती है जो है। अब तो वैसा ही कहती है जैसा है। जस का तस। जैसे का तैसा कह देती है। अब कहीं कुछ खोट न रही।

"छूटी कुमति की गांठ. . . ."।

और अब तक जो गांठ बंधी थी कुमति की, छूटे न छूटती थी; जितना छुड़ाते थे, और बंधती जाती थी, और जटिल होती जाती थी।

"छूटी कुमति की गांठ, सुमति परगट होय नाची"।

और अब गांठ खुल गई कुमति की और ठीक उसकी जगह सुमति का नृत्य शुरू हुआ है। सुमति परगट होय नाची। प्रफुल्लित हो रही है सुमति। नाच रही है सुमति। उत्सव हो रहा है सुमति का।

अब कुमति और सुमति में जो ऊर्जा है वह तो एक ही है--मति। मति का अर्थ होता है : बोध। कुमति में भी वही बोध है। सुमति में भी वही बोध है। कुमति में गलत से बंधा है, मैं से बंधा है, तो गांठ बंध गई। सुमति में परमात्मा से जुड़ गया है तो गांठ खुल गई, नाच शुरू हो गया।

तुम अपने से अपने को तोड़ो और प्रभु से जोड़ो। अपने पर बहुत भरोसा मत रखो कि मेरे किए कुछ हो जाएगा। तुम्हारे किए होता तो हो गया होता। कितने जन्मों से तुम कोशिश कर रहे हो, अभी तक हुआ नहीं। कब तुम्हें समझ आएगी, कि तुम्हारे किए नहीं होगा। तुम्हारे किए ही सब उलझा है। तुम परमात्मा से जोड़ो। तुम उसका हाथ गह लो।

"होत छतीसो राग. . ."।

और पलटू कहते हैं : अजीब बात है मैं तो राग इत्यादि जानता ही नहीं। वणिक थे पलटू तो, दुकानदार थे। राग इत्यादि का कहां पता! अगर जानते भी होंगे तो एक जो कलदार की खनक होती है उसी राग को जानते थे; और तो कोई संगीत जानते नहीं थे। और आज अचानक क्या हुआ है! आकाश टूट पड़ा है। अनिर्वचनीय!

"होत छतीसो राग, दाग तिर्गुन का छूटा।"

एक अपूर्व संगति, एक अपूर्व संगीत, एक अहोभाव! दाग तिर्गुन का छूटा. . . .सत्व, रज, तम तीनों छूट गए।

अब यह थोड़ा समझने का है। तुम अगर कोशिश करोगे तो तम से बहुत चेष्टा करो तो रज में आ सकते हो। और बहुत चेष्टा करो रज से तो सत्व में जा सकते हो; सत्व में अटक जाओगे, उसके पार न जा सकोगे। बुरा आदमी बहुत चेष्टा करे तो सज्जन हो सकता है। दुर्जन सज्जन हो सकता है। चोर दानी हो सकता है। यह कोई बहुत अड़चन की बात नहीं है। मगर चोर के पीछे जो बात थी वही दानी के पीछे मौजूद रहेगी, फर्क न पड़ेगा। उलटा करने लगा दानी। चोर दूसरों की जेब से निकाल लाता था; दानी अपनी जेब से दूसरों की जेब में डालने लगा। व्यवसाय का ढंग बदल गया। पहले दूसरे की जेब से अपनी जेब में डालता था, अब अपनी जेब से दूसरे की जेब में डालता है--मगर नजर तो धन पर ही लगी है। और हिसाब अभी भी जेबों पर ही चल रहा है।

अब तुम चोर पर बड़े नाराज होते हो। चोर भी काम वही करता है। एक जेब से निकालता है, दूसरी में डालता है। तुम्हारी से निकालता है और अपनी में डाल लेता है। और दानी भी यही काम करता है; एक जेब से निकालता है और दूसरी में डाल देता है--अपनी से निकालता है, तुम्हारी में डाल देता है। तुम दानी की प्रशंसा करते हो--क्यों? क्योंकि दानी तुम्हारी जेब में डाल देता है। तुम दानी की प्रशंसा करते हो, क्योंकि दानी तुम्हें

बिना चोर बनाए तुम्हें चोर होने का फायदा दे देता है। और तो कुछ नहीं। तुम भी निकालना चाहते थे उसकी जेब से, वह खुद ही दे देता है। तुम कहते हो, धन्यभाग, बड़े सज्जन आदमी हो! कष्ट न दिया हमें।

मगर चोर और दानी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। चोर को भी धन में मूल्य मालूम होता है और दानी को भी धन में मूल्य मालूम होता है। चोर प्रसन्न होता है जब बहुत चुरा लेता है; दानी प्रसन्न होता है जब बहुत दान दे देता है। लेकिन "बहुत" क्या? कौन सी चीज बहुत? वह धन ही बहुत। हर हालत में धन का ही मूल्य है।

तो चेष्टा अगर करोगे तो दुर्जन से सज्जन हो जाओगे। लेकिन तुम्हारा मौलिक आधार नहीं बदला। तुम्हारी बुनियाद वही रही। जिस बुनियाद पर वेश्यागृह का मकान खड़ा था उसी बुनियाद पर तुमने मंदिर बनाया। लेकिन बुनियाद वही रही। इसलिए दानी की भी अकड़ होती है--बड़ी अकड़ होती है! कभी-कभी तो चोर विनम्र होते हैं और दानी विनम्र नहीं होते। चोर को तो थोड़ा डर भी रहता है कि मैं चोर हूं : दानी को क्या डर है? दानी तो परमात्मा के सामने भी अकड़ कर खड़ा हो जाएगा।

मैंने सुना है, एक आदमी मरा, स्वर्ग पहुंचा। बड़ी अकड़ से भीतर गया। परमात्मा ने पूछा कि इतनी अकड़ से चले आ रहे हो, आखिर ऐसा किया क्या है? क्योंकि करने वाले ही इतनी अकड़ से आते हैं। तो परमात्मा तो जानता ही होगा, सनातन काल से देखता है। चोर अगर आते भी हैं तो सिर झुका कर आते हैं, कुछ थोड़ी सी विनम्रता होती है। दानी रहा होगा यह आदमी। किया क्या है?

तो उस आदमी ने क्या किया है? उसने अपने दान की कथा बताई। कहानी बड़ी मजेदार है। उसने कहा कि मैंने तीन पैसे एक औरत को दिए थे। तुम सोचोगे कि तीन पैसे में इतनी अकड़! मगर तुम जितना भी दोगे वह परमात्मा के सामने तीन पैसे से ज्यादा का होने वाला नहीं है। तुमने तीन करोड़ दे दिए थे, लेकिन तुम्हारे तीन करोड़ उस परम-अवस्था के सामने तीन पैसे भी तो नहीं हैं। इसलिए ठीक ही कहती है कहानी कि उस आदमी ने कहा कि मैंने तीन पैसे एक गरीब औरत को दिए थे। परमात्मा भी थोड़ा उलझन में पड़ा कि अब क्या करना! दिए थे, यह सच है। खाते-बही दिखवाए, इसने दिए थे। तो उसने अपने सलाहकार से पूछा कि भाई क्या करना इसके साथ? तीन पैसे इसने दिए थे।

तो सलाहकार ने कहा, इसको तीन पैसे वापस करो। नरक भेजो, और क्या करना? लेकिन जाएगा तो नरक ही।

वह जो अकड़ है वह तो नरक ही ले जाएगी।

चोर शायद कभी परमात्मा के दरवाजे पर पहुंच भी जाए, दानी नहीं पहुंच सकता। और तुम इतना ही कर सकते हो कि दुर्जन से सज्जन बन जाओ। और भी एक चेष्टा तुम कर सकते हो कि तुम सज्जन से भी ऊपर उठने लगो और साधु बन जाओ। सत्त्व यानी साधु।

ये तीन शब्द समझो। दुर्जन, जो बुरा करता है; भले की कभी सोचता भी नहीं। सज्जन, जो भला करता है यद्यपि बुरे की सोचता है। साधु, जिसने बुरे के सोचने को भी तोड़ डाला है; जो बुरे की सोचता भी नहीं; जिसने अपने बुरे सोचने को बिलकुल ही अपने से काट कर फेंक दिया है; जो भला ही करता है, भला ही सोचता है और चौबीस घंटे भलाई में ही अपने को लगाए रखता है। लेकिन साधु भी डरा रहता है। क्योंकि जो उसने काट कर फेंक दिया है, वह कटता थोड़े ही है।

तुम कुछ काट कर फेंक ही नहीं सकते। अगर तुमने कामवासना दबा ली है तो दबा भर ली है, वह मौजूद है। जरा सा उकसावा जरा सी प्रेरणा कहीं से मिल जाए, जरा सी पुलक आ जाए, वह फिर जग जाएगी। वर्षों के बाद जग जाएगी। तुमने क्रोध अगर दबा दिया है तो दबाने से कुछ कट नहीं जाता। वह पड़ा है तुम्हारे घर के भीतर अंधेरे कक्ष में। वहां तुम नहीं जाते इसलिए तुम्हें पता नहीं चलता; लेकिन वह पड़ा है, वह प्रतीक्षा कर रहा है। कभी भी मौका मिलेगा वह प्रकट हो जाएगा। सदियों पड़ा रहे तो भी निर्जीव नहीं होता।

तो साधु अपने बहुत से अंगों को काट डालता है। साधु अपंग हो जाते हैं। तुम अपने साधुओं को देख लो, बिलकुल अपंग हो जाते हैं। कोई मंदिर में बंद बैठा है, वह बाहर आने में डरता है। क्योंकि बाहर आए तो बाहर

दुनिया है। दुनिया का मतलब होता है चुनौतियां। दुनिया का अर्थ होता है वहां हजार तरह के प्रलोभन और हजार तरह की वासनाएं हवा में घूम रही हैं। वहां घबड़ाता है आने में। या हिमालय पर बैठ गया है गुफा में जाकर, वहां से नीचे नहीं उतरता। सब तरह से तुम्हारा साधु भयभीत है। लेकिन यह भी कोई साधुता हुई जिसमें इतना भय हो?

महावीर ने तो कहा है अभय के बिना कोई सत्य को जान न सकेगा। और तुम्हारा साधु तो बड़ा भयभीत है। जैन साधुओं को अकेले चलने की भी आज्ञा नहीं है, क्योंकि अकेले में कोई आदमी गड़बड़ कर ले! तो नजर रखते हैं। पांच आदमी चला दिए, जत्था चला दिया पांच का। तो चार नजर रखते हैं। यह भी कोई बात हुई? ये कोई चोर चल रहे हैं कि साधु चल रहे हैं? ऐसे तो चोर भी इतना चार पुलिस वालों के बीच में नहीं चलते हैं। मगर जैन साधु के लिए नियम है कि वह अकेला न रहे। एकांतसेवी में खतरा है। क्योंकि अकेला रहे, कुछ गड़बड़ कर ले! देखे कहीं मौका है कुछ, कोई देखने वाला भी नहीं है, अकेले मिल गए हैं, चलो कर गुजरो। तो चार को साथ चला देते हैं।

मगर यह नजर रखने की बात, तो यह साधुता कैसी है? यह भी व्यवस्था ही हुई। यह तो जबरदस्ती कोड़े के बल से किसी बच्चे को शांत बिठा दिया है--लोभ या भय के कारण। मगर भीतर आग जल रही है--धू-धू कर आग जल रही है। और यह कोई न कोई उपाय निकाल लेगा। जब आग जल रही है तो रास्ता खोजेगी। कहीं से तो धुंआ निकलेगा।

आदमी अपने बस से दुर्जन से सज्जन हो जाए, या और बहुत अथक चेष्टा करे तो सज्जन से साधु हो जाए--मगर संत कभी नहीं हो पाता। संत अपने किए होता ही नहीं। संत मनुष्य के कृत्य के बाहर है। संत तो परमात्मा के प्रसाद से होता है।

"होत छतीसो राग, दाग तिर्गुन का छूटा।"

कैसी अदभुत बात कही है कि त्रिगुण का दाग छूट गया। इस त्रिगुण में तम तो सम्मिलित है ही, रज भी सम्मिलित है, सत्व भी सम्मिलित है। दुर्जनता गई, सज्जनता गई, साधुता गई--ये दाग ही छूट गया। जब तक तुम साधु हो तब तक असाधुता कहीं बची है; नहीं तो साधु कैसे, साधु किसलिए?

संत का अर्थ है जिसके भीतर कुछ भी न बचा। वह जो तीन का जाल था, वह जो तीन का त्रिशूल छिदा था आत्मा में, वह अलग हो गया। मगर यह प्रभु-कृपा से ही होता है, यह प्रभु-प्रसाद से ही होता है।

"होत छतीसो राग, दाग तिर्गुन का छूटा।

पूरन प्रगटे भाग, करम का कलसा फूटा।।"

कितनी चेष्टा हमने की है--पलटू कहते हैं--अपने कर्मों को बदलने की, लेकिन कलसा लंबा था, पुराना था, भारी था, जन्मों-जन्मों का था। अगर तुम अपने कर्मों को बदलने चलोगे तो कब बदल पाओगे? थोड़ा सोचो भी, कितने कर्म तुमने किए हैं--कितने पाप, कितने पुण्य, कितनी चोरियां, कितने झूठ, कितने अनंत-अनंत जन्मों में तुमने अनंत पाप किए हैं, अगर उनका एक-एक का हिसाब तुम्हें देना पड़े और एक-एक के मुकाबले तुम्हें कोई शुभ कर्म करना पड़े, तो कब छूटोगे? तब तो अनंत काल बीत जाएगा और तुम छूटोगे नहीं। और यह अनंत काल जो बीतेगा, इसमें भी कुछ करोगे न, बैठे थोड़े ही रहोगे! तो वह जो करोगे, फिर आगे के लिए जाल बनता जाएगा। और तब यह बात दुष्चक्र की हो गई। इसके बाहर कैसे निकलना है? एक क्षण भी तो बिना किए नहीं रह सकते। श्वास भी लो तो कर्म हो रहा है। बोलो तो कर्म हो रहा है। श्वास भी लो तो कोई कीड़े-मकोड़े मर रहे हैं।

वैज्ञानिक कहते हैं, एक चुंबन लेने में कोई एक लाख कीटाणु मर जाते हैं। एक शब्द बोले, ओंठ खुला, बंद हुआ, तो बहुत से कीटाणु मर गए। चले हवा में तो कीटाणु मर गए। जमीन पर चले तो कीटाणु मर गए। भोजन करोगे तो हिंसा होगी। कपड़े पहनोगे तो हिंसा होगी। नंगे रहोगे तो हिंसा होगी। यहां कुछ बिना किए तो एक

क्षण भी जीया नहीं जा सकता। जीवन तो कृत्य की धारा है। और अनंत जन्मों से यह धारा चल रही है, सबका हिसाब-किताब चुकाना है। कैसे चुकेगा? तो फिर मोक्ष तो हो ही नहीं सकता है। फिर निर्वाण की आशा छोड़ो। लेकिन आशा छोड़ने की जरूरत नहीं है, क्योंकि तुम्हारे किए मोक्ष नहीं होता। तुम्हारे किए केवल संसार होता है। तुम जो भी करोगे उससे संसार ही होता है। जिस दिन तुम करना छोड़ देते, समर्पित हो जाते--तुम कहते : अब तू कर, तेरी मर्जी; अब मैं कुछ भी न करूंगा; तू जो करवाएगा, करूंगा; चोरी करवाएगा, चोरी करूंगा; भजन करवाएगा, भजन करूंगा; अपनी तरफ से बीच में लाऊंगा ही नहीं; तेरी जो मर्जी बुरा बनाएगा तो बुरा बनूंगा, भला बनाएगा तो भला बनूंगा; न तो मैं भले के लिए कोई अकड़ लूंगा न बुरे के लिए कोई पश्चाताप लूंगा . . .।

समझें इस बात को। कृत्य के लिए मैं अपने कर्ता को निर्मित न करूंगा। तू जान। तू कर्ता है। हम तो बस जो आज्ञा दे देगा वही करते रहेंगे--ऐसी भक्त की दशा है।

"पूरन प्रगटे भाग. . . ."।

और ऐसे समर्पण की स्थिति में भाग्य का पूर्ण चांद निकलता है। पूरन प्रगटे भाग! कोशिश करने से तो थोड़ा बहुत आदमी भाग्य को प्रकट कर ले तो बहुत है! दूज का चांद हो जाए तो बहुत है; पूर्णिमा का चांद कभी नहीं हो पाता। दूज का ही हो जाए तो बहुत है। अपनी चेष्टा कितनी--चम्मच जैसी! इससे सागर उलीचने चले हो!

"पूरन प्रगटे भाग, करम का कलसा फूटा।"

और यह जो भाग्य का पूर्ण प्रकट हो जाना है, यह जो परमात्मा का पूरा बरस जाना है, इसका दूसरा सहज परिणाम हो गया कि वह जो कलसा था, वह जो भांडा था, वह जो सिर पर घड़ा लिए चल रहे थे जन्म-जन्म के कर्मों का, वह फूट गया।

"पलटू अंधियारी मिटी, बाती दीन्ही बार।"

सब अंधकार मिट गया, दीया जल उठा, ज्योति प्रगटी।

"दीपक बारा नाम का, महल भया उजियार।"

"हाथ जोरि आगे मिलैं, लै लै भेंट अमीर।"

और पलटू कहते हैं कि मैं गरीब आदमी, राम का मोदी, राम का बनिया, कभी कुछ और किया नहीं, तराजू सम्हालना भर जानता था। बेचता रहा सामान गांव के छोटे से बाजार में--नंगा जलालपुर। गरीबों का गांव रहा होगा, इसलिए नंगा जलालपुर। बड़े-बड़े धनपति, बड़े यशस्वी आगे आ-आ कर, भेंट ले-ले कर मुझ से मिलते हैं! हैरानी होती है। मुझ में तो ऐसा कोई गुण नहीं था।

यह भक्त की दशा है। मुझ में तो कभी ऐसे कोई गुण की बात ही नहीं थी। यह हो क्या गया! यह कौन मेरे भीतर प्रकट हो रहा है जिसको यह नमस्कार की जा रही है।

दुनिया में दो तरह के लोग हैं। कोई आदमी पद पर पहुंच जाता है, तुम उसको नमस्कार करते हो तो वह समझता है तुम उसको नमस्कार कर रहे हो। कौन उसको नमस्कार करता है! वी. वी. गिरि को कोई नमस्कार करता है? वे बेचारे खुद ही प्रचार करते फिरते हैं कि, कि मैं अभी भी जवान हूं और अभी भी काम में आ सकता हूं देश की सेवा करने को। उससे मगर कोई सेवा लेने को भी उत्सुक नहीं हैं। सेवा देने वालों की भी सेवा लेने को कोई उत्सुक नहीं है!

पद पर जो है उसे यह भ्रांति होती है कि लोग मुझे नमस्कार कर रहे हैं। पद पर से उतरते ही पता चलता है कि भ्रांति थी। लोग पद को नमस्कार करते हैं। तो जो राजनेता पद पर होता है, देखो उसके स्वागत-समारंभ! लाखों का खर्च। लाखों की भीड़-भाड़। लोग ऐसे चले आते हैं जैसे परमात्मा का अवतरण हुआ हो। फिर वह आदमी पद पर नहीं रहा, कोई देखता भी नहीं। फिर उन्हीं सज्जन को तुम अपना सामान ढोते हुए और स्टेशन पर देखोगे। अपना टांगा खुद ही खोज रहे हैं। कोई लेने भी नहीं आता। लोग बच कर निकल जाते हैं कि भई

इनसे बचो; अब इनका सत्संग करना खतरनाक है, इनसे नमस्कार भी करना खतरनाक है, क्योंकि इनके विरोधी अब सत्ता में हैं, अब झंझट की बात है। इनकी खुशामद करते थे, गुलामी करते थे, इनकी बड़ी स्तुति के गीत गाते थे। अब इनसे लोग आंखें चुराते हैं।

तो एक तो ऐसे लोग हैं जो सोचते हैं पद पर होने से उनको लोग नमस्कार कर रहे हैं। यह राजनीतिज्ञ की भ्रांति है। और एक धार्मिक आदमी है कि उसे दिखाई पड़ता है : बड़ी हैरानी की बात है, मैं तो कुछ हूं ही नहीं, मैं तो ना-कुछ, नाचीज! यह हुआ क्या है, लोग क्या पागल हो गए हैं! "हाथ जोरि आगे मिलैं, लै-लै भेंट अमीर। इनको हुआ क्या नासमझों को! मुझ गरीब आदमी को, जिसमें न कोई गुण हैं, न कोई लक्षण हैं, न कोई योग्यता है, न कोई कला है।

"लै-लै भेंट अमीर, नाम का तेज विराजा।"

पलटू कहते हैं : जरूर कुछ बात उसी की है, उसका तेज विराजा है! ये उसी को नमस्कार कर रहे हैं। ये प्रभु को नमस्कार कर रहे हैं, मैं तो निमित्त मात्र हूं, ये मुझे नमस्कार नहीं कर रहे हैं।

"लै-लै भेंट अमीर, नाम का तेज विराजा।

सब कोऊ रगरै नाक, आइकै परजा-राजा।।

सकलदार मैं नहीं, नीच फिर जाति हमारी।

पलटू कहते हैं : न तो मेरे पास कोई सौंदर्य है. . . सकलदार मैं नहीं। मेरे पास कोई सुंदर चेहरा भी नहीं। कोई सौंदर्य भी नहीं है। साधारण जैसा आदमी हूं।

"सकलदार मैं नहीं, नीच फिर जाति हमारी।"

फिर हमारा कोई वर्ण बहुत ऊंचा नहीं कि मैं कोई ब्राह्मण हूं कि लोग मेरे पैर छुएं।

"गोड़ धोय शटकरम, वरन पीवै लै चारी।"

और यह मामला क्या हुआ जा रहा है कि लोग आते हैं, चारों वर्णों के लोग आते हैं, शटकर्मों को करने वाले ज्ञानी आते हैं और मेरे पैर धो कर पानी पीते हैं! जरूर यह बात मेरी नहीं है। नाम का तेज विराजा। ये मेरे पैर नहीं छू रहे और न ये मेरे पैर धो रहे हैं। इन्हें कुछ दिखाई पड़ रहा है। इन्हें वही दिखाई पड़ने लगा है जो मुझे भीतर दिखाई पड़ रहा है।

यह धार्मिक आदमी का लक्षण है।

"बिन लसकर बिन फौज, मुलुक में फिरी दुहाई।"

न मेरे पास फौज है न फांटा है, मगर सारे देश में मेरी दुहाई की दुंदुभि पिट रही है!

"जन-महिमा सतनाम, आपु में सरस बढ़ाई।"

तेरे नाम की महिमा अपार है! हमने तो कुल इतना ही किया कि तेरी याद की और यह क्या हो गया! हमने तो कुल इतना ही किया कि तुझे स्मरण किया; विस्मरण किया था, स्मरण किया!

"जन-महिमा सतनाम, आपु में सरस बढ़ाई।

सत्तनाम के लिहे से, पलटू भया गंभीर।

हाथ जोरि आगे मिलैं, लै-लै भेंट अमीर।।"

गंभीर का अर्थ समझना। गंभीर का वैसा अर्थ नहीं है जैसा आमतौर से आज हो गया है। गंभीर का अर्थ होता है बड़े गंभीर हैं, बड़े सीरियस! नहीं, ऐसा गंभीर का अर्थ नहीं है। गंभीर का मौलिक अर्थ है : गहरे, गहन। पलटू कहते हैं कि मैं बड़ा गहरा हो गया। तेरी मौजूदगी क्या आई, मैं गहरा हो गया! मैं अपूर्व रूप से गहरा हो गया। एक गहनता आ गई, जो मुझ में कभी थी नहीं। मैं तो छिछला-छिछला था। मैं तो ऊपर-ऊपर था, मैं तो सतह पर था।

"सत्तनाम के लिहे से पलटू भया गंभीर।

हाथ जोरि आगे मिलैं, लै-लै भेंट अमीर।।"

संत सासना सहत हैं, जैसे सहत कपास।।

जैसे सहत कपास, नाय चरखी में औटे।"

यह वचन समझना। संत सासना सहत हैं... संत कष्ट सहते हैं, जैसे सहत कपास। जैसे कपास बहुत सी तकलीफों से गुजरता है। लेकिन सासना शब्द का एक अर्थ कष्ट भी होता है, मौलिक अर्थ कुछ और होता है। मौलिक अर्थ तो होता है : शासन, अनुशासन, साधना।

कष्ट दो तरह के हैं जगत में। एक तो कष्ट, जो तुम सहना नहीं चाहते और सहते हो। उससे जीवन टूटता है। और एक कष्ट, जो तुम स्वयं अंगीकार करते हो, उससे जीवन निर्मित होता है। और यह बात बड़े काम की है। इसे याद अगर रख सको तो तुम कष्टों का स्वरूप बदल सकते हो। जो कष्ट तुम्हें विध्वंस कर जाएंगे उन्हीं को तुम सृजनात्मक बना सकते हो। उन्हें स्वीकार करो, उनका उपयोग करो। जब दुख आए तो तुम उसे साधना बनाओ। तुम उसे भी जागने का उपाय बनाओ। दुख में आदमी बड़ी सुविधा से जागता है। सुख में तो आदमी सो जाते हैं; दुख में जाग जाते हैं। अगर जरा सी भी बुद्धि हो तो दुख में तो आदमी सो ही कैसे सकता है? चादर ओढ़ कर नहीं सो सकते दुख में। इस मौके का उपयोग कर लो।

"संत सासना सहत हैं जैसे सहत कपास।"

जैसे कपास को बड़े कष्टों से गुजरना पड़ता है, लेकिन वे सारे कष्ट कपास को इस योग्य बना देते हैं कि कभी वह सम्राटों का वस्त्र बने, सम्राटों के अंग छुए, ढाके की मलमल बने। ऐसे ही व्यक्ति भी धीरे-धीरे कष्टों का अगर ठीक से उपयोग करे तो परमात्मा के अंग छूने के योग्य हो जाता है।

"संत सासना सहत हैं जैसे सहत कपास।

जैसे सहत कपास, नाय चरखी में ओटै।"

कपास को चरखी में ओटना पड़ता है।

"रुई धर जब तुनै हाथ से दोउ निभोटै।"

और फिर दोनों हाथों से तोड़ता है, तोड़ा जाता है।

"रोम-रोम अलगाय पकरिकै धुनिया धूनी।"

और एक-एक रेशे को अलग करता है धुनिया, धूनी में धुन-धुन कर।

"पिउनी बहं दै कात". . . . .। फिर पूनी को बढ़े हुए नाखून में छेद करके उसमें से बारीक-बारीक सूत निकालता है।

"पिउनी बहं दै कात, सूत ले जुलहा बूनी।"

फिर जुलाहा बुनाई करता है।

"धोबी भट्टी पर धरी. . . ."।

फिर धोबी है कि भट्टी पर धरता है . . . कुंदीगर मुगरी मारी। फिर मुगरियों से पीटा जाता है--सफाई के लिए, शुद्धता के लिए।

"दरजी टुक टुक फारि-जोरिकै किया तयारी।"

फिर दरजी काटता है, फाड़ता है, फिर कहीं वस्त्र बनता है। वस्त्र--जो सम्राटों के अंग लग जाए।

ऐसा ही संत का जीवन है। जीवन की हरेक स्थिति का वह उपयोग कर लेता है। दुख का भी उपयोग कर लेता है। दुख को शासन बना लेता है, आत्मानुशासन बना लेता है।

मेरी हस्ती का मोहब्बत में फना हो जाना
वो मेरा नाजिस-ए-अरबाग-ए-वफा हो जाना
उनको हम जिंदा-ए-जावेद कहा करते हैं

जानते हैं जो मोहब्बत में फना हो जाना।
केवल वे ही लोग अमरत्व को उपलब्ध होते हैं। --...
उनको हम जिंदा-ए-जावेद कहा करते हैं
जानते हैं जो मोहब्बत में फना हो जाना।

जो प्रेम में मर जाना जानते हैं, जो प्रेम में मिट जाना चाहते हैं, जो प्रेम में शून्य हो जाना जानते हैं--वे ही अमरत्व को उपलब्ध होते हैं। तो भक्त तो अपने को मिटा डालता है, जैसे कपास सब तरफ से मिट जाता है।

वे जो मिटने की सारी प्रक्रियाएं हैं, वे ही बनने की प्रक्रियाएं हैं। तुम मिटने को मिटना मत समझना। मिटना समझे तो तुम बचने लगोगे। मिटना समझे तो कष्ट। फिर कष्ट से बचने के लिए भुलाने का उपाय--शराब, सौंदर्य, संगीत। अगर कष्ट को कष्ट न समझे; समझा कि परमात्मा धुन रहा है, रेशे-रेशे अलग कर रहा है, कि परमात्मा धो रहा है; यह जो मुगरी से पीटा जा रहा हूं, यह मेरी सफाई हो रही है, मुझ से कूड़ा-कचरा अलग किया जा रहा है। यह जो मैं चरखी में रौंदा जा रहा हूं, यह इसीलिए है ताकि मेरे भीतर जो छिपा हुआ रहस्य है, वह प्रकट हो जाए; मेरे भीतर जो छिपा हुआ प्रकाश है वह प्रकटे। मेरा कमल उठे, खिले। मेरी सुवास प्रकट हो।

जिसने इस भांति ले लिया उसने दुख को अनुशासन बना लिया। उसके जीवन में क्रांति निश्चित हो जाएगी। फिर वह दुख से भागता नहीं, दुख से बचता नहीं, दुख को भुलाता नहीं--दुख के अवसर का उपयोग कर लेता है; दुख को चुनौती बना लेता है।

"परस्वारथ के कारने दुख सहै पलटूदास।

संत सासना सहत हैं, जैसे सहत कपास।।"

और संत के जीवन में दो तरह के दुख हैं। पहले--संतत्व के घटने के पहले। वह बहुत तरह के दुख झेलता है। दुख तो सभी को हैं। ऐसा नहीं कि संत को ही दुख है; दुख तो तुम्हें भी है, सभी को हैं। लेकिन तुम उनसे बचना चाहते हो; संत उन्हें अंगीकार करता है, स्वीकार करता है, अहोभाव से स्वीकार करता है। यह भी प्रभु की मर्जी। यह भी प्रभु की भेंट है।

काश तुम दुख को भी प्रभु की भेंट समझ लो तो अनुशासन पैदा हो जाएगा। फिर तुम्हारे भीतर नाराजगी न रह जाएगी। और तुम्हारे भीतर क्रोध न रह जाएगा और शिकायत न रह जाएगी। और तुम्हारे भीतर से प्रार्थना उठेगी।

बीज को जमीन में डालते हैं। बीज को अगर पता न हो--कैसे पता होगा कि वृक्ष बनने वाला है, खिलेंगे फूल, आकाश में उठेंगी शाखाएं, घने पत्ते आएंगे, वसंत आएगा, हवाएं नाचेंगी, पक्षी घोंसले बनाएंगे, सूरज की किरणों से बातें होंगी, चांद-तारों से गुफ्तगू होगी--यह सब तो उसे पता नहीं है। जब तुम बीज को डालते हो जमीन में तो बीज तो तड़फता होगा कि यह किस कष्ट में मुझे डाला जा रहा है, यह क्यों मुझे मिट्टी में दबाया जा रहा है? अभी तो मैं जिंदा हूं, क्यों मेरी कब्र खोदी जा रही है? उसे तो लगता होगा यह कब्र हो गई। उसे पता नहीं कि इसी कब्र से उसका जीवन निकलेगा। यही मृत्यु उसके नए जीवन की शुरुआत है।

ठीक ऐसे ही हमारे जीवन के कष्ट हैं। संसारी उनसे बचता है; संन्यासी उन्हें अंगीकार करता है--सौभाग्यपूर्वक, धन्यवादपूर्वक, कृतज्ञता से, उनको भेंट मान लेता है।

तुम जरा कुछ दिन प्रयोग करके देखो। जब अबकी बार दुबारा दुख आए, कोई भी दुख आए, कैसा भी दुख आए, शरीर का कि मन का, उसे भेंट की तरह स्वीकार करके देखो और तुम पाओगे चमत्कार हुआ। उस दुख की सारी गुणवत्ता बदल गई। उसका सारा रूपांतरण हो गया। वह दुख कुछ का कुछ हो गया।

प्रयोग करके देखना, क्योंकि यह तो बात प्रयोग करने की है। जो भी दुख आए उसे स्वीकार कर लेना कि प्रभु ने भेजा तो जरूर निखारता होगा, मांजता होगा, साफ करता होगा। याद रखना पलटू के ये वचन;

संत सासना सहत हैं, जैसे सहत कपास।।

जैसे सहत कपास, नाय चरखी में ओटै।
रुई धर जब तुनै हाथ से दोउ निभोटै।।
रोम-रोम अलगाय पकरिकै धुनिया धूनी।
पिउनी बहं दै कात, सूत ले जुलहा बूनी।।
धोबी भट्टी पर धरी, कुंदीगर मुगरी मारी।
दरजी टुक टुक फारि-जोरिकै किया तयारी।।

ख्याल रखना, इतनी तैयारी करनी पड़ेगी।

जब स्वर्णकार सोने को डालता होगा आग में तो सोना भी तड़फता होगा कि यह कौन सा कष्ट मुझे दिया जा रहा है! लेकिन आग में पड़ कर ही तो सोना कुंदन बनता है, शुद्ध होता है, कचरा जलता है। दुख के बिना कोई कभी निखरता नहीं।

मुझ से कभी-कभी लोग आकर पूछते हैं कि परमात्मा अगर है तो दुनिया में इतना दुख क्यों है? उनका प्रश्न सार्थक मालूम होता है; तर्क के जगत में तो बिलकुल सार्थक मालूम होता है। असल में वे यह कह रहे हैं कि अगर इतना दुख है तो परमात्मा हो ही नहीं सकता; या अगर परमात्मा है तो यह दुख बेबूझ है, यह नहीं होना चाहिए। क्योंकि लोग कहते हैं परमात्मा दयालु है, रहमान है, रहीम है, कृपालु है। तो फिर परमात्मा जब इतना रहमान है तो इतना दुख क्यों है? वे एक तार्किक सवाल उठा रहे हैं। वे यह कह रहे हैं कि अगर यह दुख है तो साफ है कि या तो परमात्मा रहमान नहीं है, शैतान है; और या फिर परमात्मा है ही नहीं। यह जगत केवल एक दुर्घटना मात्र है, एक संयोग मात्र, हो गया है। इसके पीछे कोई चलने वाला नहीं है। इसके पीछे कोई रखवाला नहीं है। इसके पीछे कोई नहीं है जो इसकी चिंता करता हो। अगर चिंता करने वाला परमात्मा हो तो इतना दुख क्यों? और या वे कहते हैं कि अगर परमात्मा है तो फिर समझाइए कि दुख का क्या कारण है? पिता अपने बच्चों को दुख तो नहीं देना चाहता। मां अपने बेटे को दुख तो नहीं देना चाहती। और यह परमात्मा पिता है हमारा, तो दुख क्यों है?

उनकी बात तर्क के तल पर बड़ी सही है, मगर जीवन और अस्तित्व के तल पर बड़ी नासमझी से भरी है। इसीलिए दुख है कि परमात्मा है। मैं जब उन्हें यह उत्तर देता हूं तो वे बहुत चौंकते हैं। मैं कहता हूं, इसीलिए दुख है कि परमात्मा है। मां बहुत कष्ट देती है बच्चों को और बाप भी बहुत कष्ट देता है। यह तुम से किसने कहा कि बाप कष्ट नहीं देता है और किसने कहा कि मां कष्ट नहीं देती। हां, मां कष्ट करुणा के कारण ही देती है। हजार बार बच्चे नाराज होते हैं; हजार बार मां मारती है। हजार बार जाना चाहते हैं कहीं, नहीं जाने देती। आग में हाथ डालना चाहते हैं, किसी को खींचना पड़ता है। बच्चे बच्चे हैं। सच तो यह है कि कौन बच्चे अपने मां-बाप को माफ कर पाते है! कि चोट बनी रहती है कि बहुत सताया जब छोटे थे।

परमात्मा है, इसीलिए दुख है। यह दुख तुम्हारे निखार के लिए है। यह दुख औषधि-रूप है। कड़वी है औषधि, माना; मगर औषधियां कड़वी होती है। मिठाइयां नहीं हैं औषधियां। जहर को जहर से मारना होता है। कांटे को कांटे से निकालना होता है।

तुम्हारे जीवन में बड़ा अंधकार है। धुन-धुन कर उसे अलग करना होगा। तुम्हारे जीवन में बड़ा अहंकार है। उसकी खोल मजबूत है। तुम्हें मिट्टी में डाल कर कूटना होगा ताकि अहंकार की खोल मिट जाए तो तुम्हारे भीतर से पौधा, तुम्हारे भीतर छिपी हुई संभावना प्रकट हो जाए।

तो एक तो संत दुख झेलता है। मगर उसका भाव बड़ा अनूठा है। एक तुम दुख झेलते हो; तुम्हारा भाव बड़ा क्रोध से भरा है। तुम दुख झेलते हो--बड़े प्रतिरोध से लड़ते-लड़ते, जूझते-जूझते। संत झेलता है--स्वीकार से, समर्पण से, अहोभाव से।

तुम दुख ऐसे झेलते हो जैसे बड़े वृक्ष तूफान में खड़े रहते हैं अकड़ कर, जिद्द से, लड़ते हैं; और जब कभी गिर जाते हैं तो फिर उठ नहीं पाते। संत ऐसे दुख झेलता है जैसे घास के पौधे। आया तूफान, घास का पौधा पूर्व गिर गया तो पूर्व गिर जाता है; पश्चिम गिरा दिया तो पश्चिम गिर जाता है। जहां गिरा दिया, गिर गया। घर का पौधा रेसिस्ट नहीं करता, प्रतिशोध नहीं लेता, प्रतिरोध नहीं करता। झगड़ने की वृत्ति नहीं है उसकी; झुक जाता है। यह झुकना ही समर्पण है। और झुकने में बड़ा मजा है। गिर तो जाता है, लेकिन जैसे ही तूफान चला जाता है, बड़े वृक्ष गिर गए सो गिर गए, फिर नहीं उठ सकते; घास का पौधा फिर उठ आता है--और भी लहलहाता हुआ, पहले से भी ज्यादा ताजा। धूल झाड़ गया तूफान, ले गया कूड़ा-करकट जो आस-पास लग गया होगा जिंदगी में ताजा होकर, हरा होकर पौधा फिर खड़ा हो गया। तूफान उसे तोड़ नहीं पाया। क्योंकि जिसे झुकने की कला आती है, उसे कोई भी नहीं तोड़ पाता।

सिर्फ अहंकारी टूटते हैं; विनम्र नहीं टूटते हैं। निरहंकारी को कैसे तोड़ोगे? उसे झुकने की कला आती है।

पूर्व के सारे शास्त्र और पूर्व के सारे धर्म झुकने की कला सिखाते हैं। घास के जैसे हो रहो। अकड़े हुए देवदारु के वृक्ष बन कर मत खड़े हो जाओ। यह अकड़ महंगी पड़ेगी। गिरे तो फिर उठ न सकोगे।

तो अहंकार है. . . संसारी लड़ता है। संन्यासी झुकता है।

एक तो यह स्थिति है। फिर जब संतत्व उपलब्ध हो जाता है, तब दूसरे तरह के कष्ट शुरू होते हैं, फिर समाज कष्ट देना शुरू करता है। उन कष्टों का संसारी को बिलकुल पता नहीं है। परमात्मा जो कष्ट देता है वे तो संसारी और संन्यासी दोनों को बराबर है। फर्क संन्यासी और संसारी की भाव-दशा में है, कैसे उन्हें स्वीकार किया जाए। संन्यासी अहोभाव से स्वीकार करता है, आलिंगन लेता है। क्योंकि परमात्मा की भेंट है, और कोई उपाय है भी नहीं स्वीकार करने का; यही ठीक मार्ग है। नाच कर, धन्य-भाग से, प्रसाद-रूप! संसारी लड़ता है। यहां तक तो बात बराबर है कि दोनों को दुख होते हैं। फर्क यहां से शुरू होता है कि संन्यासी स्वीकार-भाव से लेता है।

फिर एक दूसरा दुख है जो केवल संत को ही होता है, संन्यासी को ही होता है। वह संसारी को नहीं होता। वह दुख है समाज के द्वारा।

"परस्वारथ के कारने दुख सहै पलटूदास।

संत सासना सहत हैं जैसे सहत कपास।।"

जैसे ही किसी के व्यक्ति में परमात्मा का तेज विराजता है कि उस व्यक्ति के जीवन में अपूर्व विद्रोह घटता है, क्रांति घटती है। उसके शब्द-शब्द में अंगार हो जाते हैं। यह समाज उन अंगारों को बरदाश्त नहीं कर पाता; उन शब्दों की चोट सह नहीं पाता। यह संसार संतों का सदा विरोधी हो जाता है। तो सुकरात को जहर पिला देता है। जीसस को सूली लटका देता है। मंसूर के अंग-अंग काट कर मार डालता है। इसको भी संत बड़े आनंद से सहते हैं।

"परस्वारथ के कारने. . . ."।

पहले तो दुख सहे कि निखरें; अब जब निखर गए तो ये जो न निखरे लोग हैं इनको नाराजगी शुरू होती है। स्वभावतः इनको बड़ी ईर्ष्या पकड़ती है, बड़ा कष्ट होता है कि कोई हम से पहले जाग गया और हम सो रहे हैं। और कोई परमात्मा को पा लिया और हमने नहीं पाया! मिटा देंगे इसे! इस सबूत को मिटा देंगे। यह प्रमाण न रहने देंगे।

जीसस को जब यहूदियों ने सूली दी तो क्या किया? परमात्मा का प्रमाण मिटाना चाहा। एक को नहीं मिलेगा। सुकरात को जब लोगों ने जहर पिलाया तो किसलिए? क्योंकि शब्द को बरदाश्त न कर सके। लोग झूठ में जीते हैं। तुम्हारी सारी जिंदगी झूठ से भरी है। और जब कोई आदमी सच बोलने वाला खड़ा हो जाता है तो तुम्हें बड़ी अड़चन होती है। तुम्हें वह बड़ी दिक्कत में डाल देता है। अगर वह ठीक है तो तुम सब गलत हो। और तुम सब गलत हो, यह मानना तुम्हारे अहंकार को संभव नहीं। तो यही उचित है कि वह एक ही गलत होगा।

उस एक को हटा दो। उसे मिटा दो। उसकी चमकती हुई जिंदगी तुम्हारे अंधकार से भरे घरों के लिए बड़ी कठिन हो जाती है। उसकी चमकती हुई जिंदगी के कारण तुम्हें अपने अंधकार में रहना कठिन हो जाता है वह तुम्हें बाहर खींचने लगता है। पुकार उठने लगती है। तुम उसे सताने भी लगते हो।

"परस्वारथ के कारने दुख सहै पलटूदास।"

पलटूदास कहते हैं, एक तो दुख वह सहा, वह परमात्मा ने भेजा था भेंट की तरह; और दूसरा दुख इसलिए सहना पड़ता है कि जब आनंद मिलता है तो उसके साथ ही यह संदेश भी मिलता है कि इसे बांटो। जब सत्य मिलता है तो उसके साथ यह भी अनिवार्य रूप से घटता है कि इस सत्य को पहुंचाओ उन तक जो असत्य में खड़े हैं। इसलिए परस्वारथ के कारने . . . . . अब दूसरे के लिए, जो भटक रहे हैं अंधेरे में, उनको भी खबर मिल जाए। मुझे मिल गई, उन्हें भी मिल जाए। माना कि वे सिर तोड़ेंगे। माना कि वे नाराज होंगे। माना कि वे कोई धन्यवाद नहीं देंगे।

संतों को कब धन्यवाद दिया हमने! हम सदा नाराज हुए हैं। और अगर हमने धन्यवाद भी दिया तो उनके मर जाने के बाद दिया। मर जाने के बाद सुविधा है। बुद्ध जा चुके, अब तुम उनकी पूजा करो, कोई हर्जा नहीं है। वह सत्य तो जा चुका, अब राख पड़ी रह गई है, अब इसकी पूजा करते रहो।

लोग राख की पूजा करते हैं, अंगार से डरते हैं। स्वाभाविक है। अंगार जला देगा; राख तो जलाएगी नहीं।

जीसस को सूली दी और अब जीसस के नाम पर कितने चर्च हैं दुनिया में! सुकरात को जहर देकर मार डाला और पच्चीस सौ साल हो गए सुकरात की याद करते लोग, कितनी याद करते हैं! और तुमसे मैं कहता हूं, सुकरात फिर आए तो तुम फिर मारोगे। क्योंकि तुम्हारा झूठ फिर अड़चन में पड़ जाएगा।

हुआ आज दुश्मन जमाना मेरा
मेरी साफगोई खता हो गई
ढले गम सभी अशआर में मेरे
सजा मेरे हक में जजा हो गई।
हुआ आज दुश्मन जमाना मेरा
मेरी साफगोई खता हो गई।

वह जो सच है, साफगोई, वह जैसे को वैसा ही कह देना है--उसे कोई भी क्षमा नहीं करता। सत्य को कोई क्षमा नहीं करता। सत्य पर लोग बड़े नाराज हो जाते हैं। कोई नहीं चाहता कि तुम्हारी नग्नता प्रकट की जाए। और कोई नहीं चाहता कि तुम्हारे झूठ खोल कर तुम्हारे सामने रखे जाएं। और कोई नहीं चाहता कि तुम्हारे घावों की तुम्हें याद दिलाई जाए, और तुम्हारी मूढ़ताओं की और तुम्हारे अज्ञान की बातें तुम्हें समझाई जाएं। कोई नहीं चाहता।

अब ये पलटूदास अगर तुम्हें मिल जाएं और कहें कि अजहूं चेत गंवार, तो तुम नाराज ही हो जाओगे कि मुझे गंवार कह रहे! होश में हो? किसको गंवार कह रहे?

पलटूदास कहते हैं : अब चेतो, बहुत हो गई गंवारी।

एक दूसरे वचन में उन्होंने कहा है : अवसर न चूक भौंदू!

तुमको नाराजगी हो ही जाएगी कि भौंदू, मुझ से भौंदू कह रहे! मैं पढ़ा-लिखा आदमी प्रतिष्ठित आदमी--तुम मुझको भौंदू कह रहे हो!

मगर वे ठीक ही कह रहे हैं। वे यही कह रहे हैं कि पढ़-लिख तो तूने लिया, लेकिन जाना कुछ नहीं है। धन तो कमा लिया, और भीतर निर्धन है। पद तो मिल गया, असली पद कब खोजेगा? अवसर न चूक भौंदू! यह भौंदूपन मत कर! बाहर का कुछ काम नहीं आएगा। बस भीतर को जो पा लेता है वही समझदार है; नहीं तो सब गंवार है।

लेकिन संत के लिए तो अनिवार्य है कि उसने जो जाना है वह कहे। जब फूल गंध से भर जाता है तो गंध प्रकट होती है चाहे हवाएं स्वीकार करें और न करें। जब बादल भर जाते हैं जल से तो बरसते हैं, चाहे पृथ्वी प्यासी हो चाहे न हो। जब दीया जलता है तो रोशनी प्रकट होती है, चाहे अंधेरा नाराज हो चाहे राजी हो।

हुआ आज दुश्मन जमाना मेरा
मेरी साफगोई खता हो गई।

वही अक्षम्य अपराध हो जाता है, सत्य को कह देना। मगर सत्य को कहना ही होगा। वह संत की मजबूरी है।

बुद्ध ने कहा है कि प्रज्ञा के साथ-साथ करुणा अनिवार्य रूप से आती है; वे साथ ही आते हैं। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इधर बोध हुआ उधर करुणा आई। करुणा का मतलब है : परस्वारथ के कारने. . .। अब वे जो दूसरे अंधेरे में भटक रहे हैं। उनको भी प्रकाश की तरफ लाना होगा, यद्यपि वे विरोध करेंगे। वे अपने ही हित की बात नहीं सुनेंगे। वे अपने ही हित की बात सुनाने वाले को क्षमा भी नहीं करेंगे। यह सब ठीक है।

ढले गम सभी अशआर में मेरे
सजा मेरे हक में जजा हो गई।

लेकिन संत तो इस सजा को भी अपने लिए उत्सव मानता है, जजा मानता है, पुरस्कार मानता है। वह तो कहता है कि परमात्मा ने इतना काम मुझ से ले लिया!

मंसूर को जब सूली हुई, उसके जब हाथ काटे गए और जब उसके पैर काटे गए, इसके पहले कि वे गर्दन काटते, उसने सिर आकाश की तरफ उठाया और वह खिलखिला कर हंसा। उसने जब सिर आकाश की तरफ उठाया तो लाख आदमी इकट्ठे हो गए थे उसको फांसी देने के लिए और देखने के लिए। उन्होंने भी सिर ऊपर उठाया कि देख क्या रहा है यह! जब किसी के हाथ-पैर कट रहे हों तो यह आकाश की तरफ क्या देख रहा है और फिर हंसता क्यों है? एक आदमी ने भीड़ में से पूछा कि मंसूर बात क्या है, तुम मारे जा रहे हो, हंस क्यों रहे हो और तुमने सिर क्यों ऊपर उठाया है?

मंसूर ने कहा : इसलिए कि चलो मेरी मौत के बहाने ही सही, थोड़ी देर को तुम भी सिर ऊपर उठा लो। मैंने सिर ऊपर उठाया इसलिए कि तुम्हारा चलो इसी बहाने थोड़ी देर को ही सही, एक बार तो तुम आकाश की तरफ देख लो! इतना भी हो गया तो बस मेरा काम पूरा हो गया! और हंसा मैं इसलिए कि परमात्मा तेरे भी रास्ते अनूठे हैं इन लोगों को समझाने के! लाख आदमी मुझे कभी देखने वैसे आते भी नहीं, मैं गरीब आदमी हूं, कौन आता है! तेरी भी खूब तरकीबें हैं लोगों को जगाने की! अब मंसूर को देखने बुलवा दिया लाख आदमियों को। चलो मेरे पैर कटेंगे, हाथ कटेंगे, मेरी जान जाएगी; लेकिन तुम्हारे भीतर मैं याद बन कर रह जाऊंगा, इसलिए हंसा कि तेरी भी तरकीबें खूब हैं!

और कहते हैं उन लाख लोगों में से अनेक लोगों की जिंदगी में मंसूर का बीज पड़ गया। जिन लोगों ने वह हंसी देखी थी, भूलते भी कैसे! मरते वक्त कोई हंसता है इस तरह! हाथ-पैर काटे जाते हों, हंसता है कोई इस तरह! वह तस्वीर फिर भूले न भुलाई गई! फिर बहुत चाहा होगा कि हटा दें इस तस्वीर को, मगर वह बार-बार सपनों में आई होगी। सुबह-सांझ आई होगी। बैठे होंगे तो याद आई होगी। मस्जिद में गए होंगे तो याद आई होगी। कुरान पलटा होगा तो याद आई होगी। याद आई होगी वे हंसती हुई आंखें, वह हंसता हुआ चेहरा! मौत के सामने हंसता हुआ! निश्चित ही यह तभी हो सकता है जब किसी ने अमृत को जाना हो।

ढले गम सभी अशआर में मेरे।

तो संत के तो सारे दुख, अपने दुख तो उसने धन्यवाद बना लिए थे; अब ये जो समाज देता है, इनको भी वह गीत बना लेता है।

ढले गम सभी अशआर में मेरे।

गीत बना लेता है, जो भी दुख आते हैं, सब से गीत बना लेता है, सबकी प्रार्थनाएं ढाल लेता है।

सजा मेरे हक में जजा हो गई।

और सजाएं पुरस्कार बन जाती हैं। बनाने की कला आनी चाहिए, तो दंड भी पुरस्कार हो जाते हैं और रातें, अंधेरी रातें सुबह की जन्मदात्री हो जाती हैं। और दुखों से परम सुख का जन्म हो जाता है।

ये हमें दुख दुख जैसे इसीलिए मालूम पड़ते हैं कि हमारा अहंकार खड़ा है। अगर अहंकार न हो तो दुख है ही नहीं।

तुमने कभी देखा, पैर में चोट लगी हो या घाव हो गया हो या फोड़ा हो गया हो, तो उस दिन दिन भर पैर में चोट लगती है। कुर्सी के पास से निकलते तो कुर्सी लग जाती है वहीं। परदे के पास से निकलें तो परदा उलझ जाता है पैर में। बच्चा आ जाता है, पैर पर खड़ा हो जाता है। तुम बड़े हैरान होते हो कि मामला क्या है! रोज दरवाजे से निकलते हो, परदा नहीं अटकता था; आज परदा अटक गया। छू गया घाव को, दर्द दे गया। रोज कुर्सी से उठते-बैठते हो हजार बार, कभी पैर में चोट नहीं लगती थी; आज कुर्सी के पैर ने भी धोखा दे दिया। यह बच्चा रोज तुमसे मिलने आता है, तुम्हारा बच्चा है और आज तुम्हारे पैर पर चढ़ कर खड़ा हो गया है। यह बात क्या है? आज दर्द है तो वहीं चोट क्यों लगती है?

बात सिर्फ इतनी है कि रोज बच्चा, यह रोज ही खड़ा होता था, मगर तुम्हें कभी ख्याल नहीं आया, क्योंकि वहां दर्द नहीं था। और यह परदा भी कई बार तुम्हारे पैर में उलझ गया था; आज कुछ खास आयोजन से नहीं उलझा है। परदे को पता भी क्या! मगर तब तुम्हें पता न चला था। यह कुर्सी का पैर भी कई दफे आड़े आ गया था। यह फाइल भी कई दफे हाथ से छूट गई थी और पैर पर गिर पड़ी थी, लेकिन तुम्हें इसकी याद भी नहीं है। क्योंकि पैर में दर्द ही न था तो पता ही न चला था।

मैं यह कहना चाह रहा हूं कि तुम्हें दुख का पता चलता है क्योंकि भीतर अहंकार का घाव है। जिस दिन अहंकार गया उस दिन कोई दुख पता नहीं चलता। परमात्मा दे, समाज दे, लोग दें, अपने दें, पराए दें--कहीं से भी आए, पता नहीं चलता। तुम्हारे भीतर घाव नहीं होता तो चोट नहीं होती।

तेरे जब्र की इंतिहा ही नहीं
मेरे सब्र की इंतिहा हो गई।

"तेरे अत्याचार का कोई अंत ही नहीं है।" तुम्हें ऐसे ही लगता है।

तेरे जब्र की इंतिहा ही नहीं
मेरे सब्र की इंतिहा हो गई।

और मेरा संतोष चुका जा रहा है, मेरा धीरज चुका जा रहा है और तेरे अत्याचार का कोई अंत नहीं। ऐसा तुम्हें लगता है।

नहीं छोड़ पाया मैं अपनी खुदी
हां अक्सर यह मुझसे खता हो गई।

बस, लेकिन असली खता एक है, भूल एक है।

नहीं छोड़ पाया मैं अपनी खुदी
हां, अक्सर यह मुझसे खता हो गई।

मगर वही खता, वही भूल बड़ी से बड़ी भूल है, सब भूलों की भूल है। एक खुदी चली जाए, एक अहंकार चला जाए, फिर तो दुख भी सौभाग्य है। और अहंकार बना रहे तो सुख भी सौभाग्य नहीं है। अहंकार चला जाए तो कांटे भी फूल हैं। और अहंकार बना रहे तो फूल भी कांटे हो जाते हैं।

आज इतना ही।

चौथा प्रवचन

जीवन एक श्लोक है

पहला प्रश्नः आप कहते हैं कि शिष्य गुरु को नहीं खोज सकता; गुरु ही शिष्य को खोजता है। लेकिन कोई शिष्य यह कैसे समझे कि उसे सदगुरु ने खोजा है?

पहली बात, यह थोड़ी अटपटी मालूम होती है कि शिष्य गुरु को नहीं खोज सकता। साधारणतः हम यही सोचते हैं कि शिष्य गुरु को खोजता है। लेकिन यह संभव नहीं है। शिष्य को तो कुछ भी पता नहीं है, खोजेगा कैसे? शिष्य को तो यह भी पता नहीं है कि सत्य क्या है, असत्य क्या है? शिष्य को यह भी पता नहीं है कि कौन सदगुरु कौन असदगुरु? शिष्य को अपना ही पता-ठिकाना नहीं है। और शिष्य अगर अपने हिसाब से खोजेगा--और अपने ही हिसाब से खोज सकता है, और तो कोई हिसाब नहीं है--तो गलत को ही खोजेगा।

शिष्य ने जब भी गुरु खोजा तो गलत गुरु खोजा। शिष्य ठीक खोज ही नहीं सकता। ठीक की दृष्टि चाहिए न! आंखें कहां हैं अभी जो ठीक को देख लें? तो शिष्य खोजेगा परंपरागत ढंग से। अगर जैन घर में पैदा हुआ है, जैन मुनि को खोजेगा। फिर चाहे उसके द्वार के सामने ही एक मुसलमान फकीर, पहुंचा हुआ फकीर खड़ा रहे, तो भी उसे नहीं खोज सकेगा। क्योंकि उसके पास बंधी लकीरें हैं। अगर दिगंबर है . . . तो ज्ञानी को नग्न होना चाहिए--और यह फकीर कपड़े पहने खड़ा है। बात अटक गई। अगर हिंदू है तो हिंदू को खोजेगा। अगर मुसलमान है तो मुसलमान को खोजेगा। बंधे हुए लक्षण उसके हाथ में हैं। आंख तो नहीं है, देखने की क्षमता तो नहीं है कि आर-पार हृदय में देख ले, कि झांक ले कहां घटना घटी है, कहां कौन जागा है।

जागने की पहचान तो तभी आएगी जब थोड़ी सी जागरण की किरण तुम्हारे भीतर भी आए। रोशनी का थोड़ा स्वाद मिले तो वे जो परम रोशनी से मंडित हो गए हैं, पहचान में आ जाएंगे। जल थोड़ा एक घूंट ही क्यों न पीया हो, फिर सारे जल की पहचान आ गई; फिर सागरों की भी पहचान आ गई। क्योंकि एक घूंट जल में भी जल के पूरे लक्षण आ जाते हैं।

लेकिन साधारणतः अज्ञान की दशा में, तो हम शास्त्र से खोजेंगे, परंपरा से खोजेंगे, सुनी बातों से खोजेंगे; जिस घर में पैदा हुए हैं, जैसे संस्कार मिले हैं, उससे खोजेंगे। इसीलिए तो महावीर को हिंदू न खोज पाए। महावीर मौजूद रहे, हिंदुओं से कोई संबंध न बन सका। बुद्ध को जैन न खोज पाए; बुद्ध मौजूद रहे, जैनों से कोई संबंध न बन सका। रामकृष्ण जिंदा थे, कोई दूसरा नहीं पहुंचा; जो काली के भक्त थे वही पहुंच पाए। रमण जीवित थे, कौन गया? वे ही गए जो परंपरागत रूप से पहुंच सकते थे।

ख्याल करना, पहले तो तुम परंपरागत रूप से खोजोगे, तो सत्य को खोज न पाओगे। और अगर कभी भूल-चूक से परंपरा में भी कोई सत्य को उपलब्ध व्यक्ति पैदा हुआ, तो भी तुम उसे थोड़े ही देख पाओगे, सिर्फ लक्षणों का हिसाब रखोगेः कब उठता कब बैठता; क्या खाता क्या पीता--यही तुम्हारा गणित होगा। अगर तुम हिंदू होने के कारण रमण के पास भी पहुंच गए, तो भी रमण को न देख पाओगे; तुम हिंदू को देखोगे।

ऐसा समझो कि तुम अपने अतिरिक्त और कुछ भी नहीं देख सकते। तुम जहां जाओगे, अपनी ही शक्ल देखोगे। तो गुरु कैसे खोजोगे?

इसलिए इस बात को समझ लेना कि गुरु ही खोजता है। मगर खोज का मतलब यह नहीं है कि गुरु खोजता हुआ तुम्हारे घर आएगा। खोजने तो तुम्हें ही निकलना पड़ता है। एक घाट से दूसरे घाट, एक गुरु से दूसरे गुरु, एक द्वार से दूसरे द्वार--खोजने तो तुम्हें ही निकलना पड़ता है। कुआं तुम्हारे पास नहीं आता है; प्यासे

को ही जाना पड़ता है। लेकिन जब तुम किसी गुरु की नजर में आ जाओगे... इतना तुम्हें करना ही पड़ेगा कि गुरु की नजर में पड़ जाओ। और उसे अगर लगा कि पात्र हो, तो उंडेल देगा। वही खोजने का मतलब है। उसे अगर लगा कि तैयार हो तो दे देगा धक्का। उसे अगर लगा अभी तैयार नहीं हो, तो चुप रह जाएगा; तुम्हें गुजर जाने देगा; तुम्हें कहीं और चले जाने देगा; प्रतीक्षा करेगा कि जब तैयार हो जाओ तब आ जाना।

पूछते होः "शिष्य कोई कैसे समझे कि सदगुरु ने खोजा है?"

समझने की बात ही नहीं है यह। जब सदगुरु की आंख तुम्हारी आंख में पड़ जाती है तो बात हो जाती है। यह प्रेम जैसी बात है, समझ जैसी बात नहीं है।

तुम कैसे समझते हो कि कोई स्त्री तुम्हारे प्रेम में पड़ गई? तुम कैसे समझते हो कोई पुरुष तुम्हारे प्रेम में पड़ गया? कैसे समझते हो? समझने का वहां कुछ भी नहीं है। जब गुरु प्रेम से तुम्हारी आंख में झांकता है तो तुम्हारे हृदय में सुगबुगाहट पैदा हो जाती है। वह समझ की बात ही नहीं है। मस्तिष्क में नहीं घटती घटना; घटना हृदय में घटती है। जहां समझ इत्यादि की बातें चल रही हैं, वहां नहीं घटती; तर्क के तल पर नहीं घटती, प्रेम के तल पर घटती है।

शिष्य और गुरु के बीच जो नाता है वह हृदय और हृदय का है--दो आत्माओं का है। यह बात जब घटती है तो पहचान में आ ही जाती है; इससे बचने का कोई उपाय नहीं है।

अगर तुम मेरी बात समझो तो मैं ऐसा कहूंगाः जब गुरु तुम्हें चुनेगा तो तुम कैसे बचोगे समझने से? असंभव है बचना! वे आंखें तुमसे कह जाएंगी। वह भाव तुमसे कह जाएगा। गुरु की उपस्थिति तुमसे कह जाएगी कि तुम अंगीकार हो गए हो; किसी ने तुम्हें चाहा है और किसी ने बड़ी विराट ऊंचाई से चाहा है। उसकी चाहत में ही तुम्हारी आंखें शिखरों की तरफ उठने लगेंगी। किसी ने तुम्हें पुकारा है और अनंत की दूरी से पुकारा है और उसकी पुकार में ही तुम्हारे भीतर हजार फूल खिलने लगेंगे।

मगर यह बात समझ की नहीं है, फिर भी दोहरा दूं। यह घटना घटेगी भाव के तल पर, समझ के तल पर नहीं। मस्तिष्क का इसमें कुछ लेना-देना नहीं है। और अगर तुमने बहुत जिद की मस्तिष्क से समझने की, तो शायद तुम चूक ही जाओ। गुरु चुन भी लेता है बहुत बार और फिर भी शिष्य चूक सकता है, अगर वह अपनी खोपड़ी ही लड़ाता रहा; अगर उसने अपने हृदय की न सुनी, तो चूक भी हो जाती है। ऐसा जरूरी नहीं है कि गुरु चुने और तुम चुन ही लिए जाओ। दुर्भाग्य के बहुत द्वार हैं; सौभाग्य का एक द्वार है। पहुंचने के बहुत द्वार नहीं हैं; भटक जाने के बहुत द्वार हैं। पहुंचने का एक मार्ग है; भटक जाने के हजार मार्ग हैं। भूल-चूक होना बहुत संभव है। एक तो गुरु के पास पहुंचना करीब-करीब असंभव सा मालूम होता है। पहुंच भी जाओ तो उन आंखों की भाषा को समझ पाओगे? समझने से मेरा मतलबः हृदय को आंदोलित होने दोगे। कहीं ऐसा तो नहीं है कि हृदय को बंद रखो, हृदय को दूर रखो और बुद्धि को बीच में ले आओ। और बुद्धि से सोचो तो चूक जाओगे। समझने की कोशिश की तो बिना समझे लौट जाओगे। अगर समझने की फिकर नहीं की, यही श्रद्धा का अर्थ है।

श्रद्धा का अर्थ हैः समझने की चिंता अब नहीं है; अब होने का भाव उठा है। समझ-समझ कर तो देख लिया, क्या समझ पाए? कितना तो रगड़ा सिर को पत्थरों से, कोई चमक पैदा नहीं हुई।

यह लेकिन, स्थिति वैसी ही है जैसी प्रेम की। जब तुम किसी प्रेम में पड़ जाते हो तो तुम क्या उत्तर दे पाते हो? निरुत्तर खड़े रह जाते हो। कोई तुमसे पूछेः क्यों? कैसे? क्या कारण है प्रेम का? तुम कहोगे, अकारण है। हो गया। बस पाया कि हो गया। कोई चीज गूंज गई हृदय में! कोई अंकुरण हो गया! कुछ पुलक समा गई!

जैसे प्रेम पहचाना जाता है वैसे ही गुरु की आंख पहचानी जाती है।

जीवन एक श्लोक है जिसका सबसे सीधा भाष्य प्यार है

प्राण-प्राण जिसकी धड़कन है, कंठ-कंठ जिसकी पुकार है

जीवन एक श्लोक है जिसका सबसे सीधा भाष्य प्यार है।

प्रथम शब्द पर्याय जन्म का और अंतिम संदर्भ मरण का
एक यही है मंत्र कि जिसको दोहराता जग बार-बार है।

बहुत तलों पर एक ही मंत्र दोहराया जाता है। शरीर के तल पर भी यही मंत्र दोहराया जाता है--प्रेम का। मन के तल पर भी यही मंत्र दोहराया जाता है-- प्रेम का। आत्मा के तल पर भी यही मंत्र दोहराया जाता प्रेम का। जब तुम किसी से कामाविष्ठ हो जाते हो, तो शरीर के तल पर प्रेम घटता है; और जब तुम किसी के प्रेम में आंदोलित हो जाते हो, तो मन के तल पर; और जब तुम किसी की भक्ति में आंदोलित हो जाते हो, तो आत्मा के तल पर। मगर मंत्र एक ही है; तल अलग-अलग हैं। घाटियों में गीत गाया था तो कामवासना थी। घाटियों से उठे, शिखर तक नहीं पहुंचे अभी, लेकिन मध्य में आ गएः घाटी से दूर भी हो गए, शिखर के पास भी हो गए, लेकिन अभी शिखर पर पहुंचे नहीं। फिर वही मंत्र दोहराया। यह जो मध्य की यात्रा से दोहराया गया मंत्र है, यही प्रेम है। फिर शिखर पर पहुंच गए, मंत्र वही है--और अब शिखर की उत्तुंग ऊंचाई पर जहां बादलों से शिखर मुलाकात करता है और जहां चांद-तारों से गुफ्तगू होती है। वहां फिर वही मंत्र दोहराया। मंत्र तो वही है। तो अब श्रद्धा, प्रार्थना, भक्ति...

जीवन एक श्लोक है जिसका सबसे सीधा भाष्य प्यार है
प्राण-प्राण जिसकी धड़कन है कंठ-कंठ जिसकी पुकार है
प्रथम शब्द पर्याय जन्म का और अंतिम संदर्भ मरण का
एक यही है मंत्र कि जिसको दोहराता जग बार-बार है।

संसार में भी तुम आए हो तो प्रेम के कारण और संसार से बाहर भी तुम जाओगे तो प्रेम के कारण। संसार में आए हो--घाटीवाला प्रेम ले आया है; अंधेरे में उतार लाया है। संसार के बाहर जाओगे निर्वाण में, मोक्ष में, तो शिखरों का प्रेम बाहर ले जाएगा। लेकिन प्रेम ही लाता है। और प्रेम ही ले जाता है। यह तो सीधी सी, बहुत सीधी सी बात है। जिस द्वार से तुम इस जगह आ गए हो, उसी द्वार से वापस भी जाओगे। आने और जाने के द्वार अलग नहीं होते हैं। जिस रास्ते से तुम यहां तक आए हो अपने घर से, उसी रास्ते पर वापस अपने घर जाओगे। रास्ता वही होगा। फर्क सिर्फ एक होगा, और कुछ ज्यादा फर्क न होगा--तुम्हारी दिशा विपरीत होगी। यहां आते समय मुंह मेरी तरफ था, जाते समय पीठ मेरी तरफ होगी। बस इतना ही फर्क होगा। रास्ता वही, पैर वही, तुम वही, सब कुछ वही--सिर्फ इतना सा फर्क होगा।

पलटू के गुरु ने "पलटू" नाम दिया है शिष्य को--पलट गया। जिस रास्ते से संसार में आया था, उससे उलटा चल पड़ा। घूम गया। ठीक विपरीत दिशा में चल पड़ा।

प्रेम ही लाया है; प्रेम ही ले जाएगा। प्रेम ने ही बांधा है; प्रेम ही मुक्त भी करेगा। बहुत बार तर्क यह कहता है कि जिसने बांधा है, वह कैसे मुक्त करेगा? बस वहीं तुम्हारी भूल हो जाएगी। जिसने बांधा है वही मुक्त करेगा--वही मुक्त कर सकता है, और तो कोई कैसे मुक्त करेगा? जहर ने मारा है, जहर ही जिलाएगा। इसलिए जहर ही मौत भी बनती है, बीमारी भी, और जहर ही औषधि भी।

छोटा प्रेम ले आया है; बड़ा प्रेम बाहर ले जाएगा। संकुचित प्रेम ने कारागृह बना दिया है; विराट का प्रेम मुक्त आकाश दे देगा।

कैसे पहचानोगे कि गुरु के पास बात घटी। सिर खाली हो जाए और हृदय भर जाए तो पहचान जाओगे। अजीब से लक्षण तुम्हें दे रहा हूं, क्योंकि तुमने लक्षण कुछ और सुने हैं। तुमने लक्षण इस बात के सुने हैं कि गुरु कैसा हो। एक बार भोजन करे, ब्रह्ममुहूर्त में उठे, पूजा-पाठ करे कि ध्यान करे, कि ऐसे कपड़े पहने, कि ऐसा बोले, ऐसा न बोले। तुमने लक्षण गुरु के सुने हैं। मैं तुम्हें जो लक्षण दे रहा हूं वे तुम्हारे हृदय के भीतर घटेंगे। सिर हलका होने लगेगा।

गुरु वही जिसके पास ज्ञान मिट जाए; जो तुम्हें ज्ञान से मुक्त कर दे और प्रेम से भर दे। और जब प्रेम से भरते हो तो असली ज्ञान आता है। प्रेम के बिना तो जो ज्ञान है--कचरा है, धूल है, धवांस है, दो कौड़ी का है।

किताबें पढ़ीं, मन का मंथन किया
खूब सोचा-समझा और जांचा
लेकिन ज्ञान का रास्ता मुझे रास नहीं आता है।
बिलकुल शुद्ध हिंदी में पुकारता हूं
तब भी आराध्य पास नहीं आता है
चारों ओर से हारा हुआ
मैं पराजय का गीत गाता हूं
अपना टूटा हुआ अहंकार
तुम्हारे चरणों पर चढ़ाता हूं
अपना यह ज्ञान वापस लो
और देवता, मुझे मुक्ति दो!

अपना यह ज्ञान वापस लो, और देवता, मुझे मुक्ति दो!

प्रेम से तुम आए हो, प्रेम से तुम जाओगे। ज्ञान ने तुम्हें अटकाया है। न तो ज्ञान के कारण तुम संसार में आए हो और न ज्ञान के कारण तुम संसार से जा सकोगे। जिस कारण आए ही नहीं उस कारण जाओगे कैसे?

प्रेम लाता।
प्रेम ले जाता।
ज्ञान अटकाता।

अब यह बहुत मजे की बात है, थोड़ा समझना। ज्ञान न तो ठीक से संसार में उतरने देता और न परमात्मा में उतरने देता। ज्ञान सिर्फ अटकाता है। ज्ञान का काम अटकावा है। इसलिए जिनके सिर में बहुत ज्ञान का कचरा भर जाता है, वे संसार में भी कहां जी पाते हैं; न पत्नी को प्रेम कर पाते, न बच्चों को प्रेम कर पाते। वह ज्ञान का कचरा प्रेम नहीं करने देता। न जिंदगी के राग-रंग में सम्मिलित हो पाते हैं; रुखे-सूखे रह जाते हैं। ज्ञान वहां भी अटका लेता है। फिर यही व्यक्ति कभी मंदिर भी जाते हैं तो वहां प्रार्थना का रस नहीं उतर पाता। वही ज्ञान वहां भी अटका लेता है। कभी इनको संयोग से गुरु भी मिल जाए तो वहां भी वही ज्ञान अटका लेता है।

जहां तुम जाओगे, ज्ञान दीवाल है।

प्रेम ने जरूर उतारा है संसार में; प्रेम ही ले जाएगा। ज्ञान ने न उतारा है, न ज्ञान ले जा सकता है। ज्ञान से ज्यादा व्यर्थ और कुछ भी नहीं है। ज्ञान से ज्यादा और अज्ञान की कोई भी दशा नहीं है।

तो गुरु वह है जिसके पास जाकर ज्ञान का बोझ कम होने लगे। "रंजी सास्तर ग्यान की"... वह जो कचरा-कूड़ा है शास्त्र-ज्ञान का, दरिया कहते हैं, उसे झाड़ दे, अलग कर दे, नहला दे तुम्हें; जिसके प्रेम में नहा कर तुम जानकारी की धूल से मुक्त हो जाओ। और विरोधाभास यही है कि जिस दिन जानकारी झड़ जाती है, उस दिन जानना घटता है। शास्त्र तो खो जाते हैं, शब्द तो खो जाते हैं, शून्य विराजमान हो जाता है। लेकिन वही शून्य तुम्हारा पहली दफा दर्शन का द्वार बनता है। उसी शून्य से तुम पहली दफे देखते हो। गिरह हमारा सुन्न में, अनहद में विसराम। वहीं पहली दफा घर बसता है--शून्य में। और उस अनहद में विश्राम मिलता है।

तो गुरु को कैसे पहचानोगे कि उसने चुन लिया? सिर खाली होने लगे। गुरु ज्ञान नहीं देता। जो ज्ञान देता है, वह शिक्षक। जो ज्ञान ले लेता है, वह गुरु। जो तुम्हारी खोपड़ी को थोड़ी और जानकारी से भर देता है, वह शिक्षक, वह विद्यालय। और जहां तुम्हारी खोपड़ी से सारा ज्ञान हटा दिया जाता है और तुम्हारे चित्त की सलेट खाली की जाती है, पोंछी जाती है; जो सारी स्मृतियां छीन लेता है--वही गुरु। क्योंकि जब सारी स्मृति हट जाती है तो सुमिरण का जन्म होता है।

अभी कितनी स्मृतियां हैं! तुम्हारी इतनी स्मृतियों के कारण उस एक की स्मृति नहीं आ रही; वह एक भीड़ में खो गया है। बाजार है, दुकान है, बच्चे हैं, पत्नी है, शास्त्र हैं, हिंदू हैं, मुसलमान हैं, ईसाई हैं--और ज्ञान बढ़ता गया है। स्वभावतः जैसे-जैसे यात्री यात्रा करता है, उतनी धूल वस्त्रों पर जमती जाती है। पांच हजार

साल पहले आदमी के सिर पर इतना बोझ नहीं था जितना आज है। पांच हजार साल बाद और भी करोड़ गुना हो जाएगा। ज्ञान बढ़ता जाता है। और जैसे-जैसे ज्ञान बढ़ता है, प्रेम कम होता जाता है। जैसे-जैसे ज्ञान का बोझ बढ़ता है वैसे-वैसे हृदय मरता जाता है। कुछ ऐसा लगता है कि मस्तिष्क शोषण कर लेता है हृदय की सारी ऊर्जा का। मस्तिष्क जैसे एक कैंसर की गांठ हो जाता है, सारी जीवन-ऊर्जा को पीने लगता है। मस्तिष्क एक तानाशाह है; वह सबका अपशोषण कर लेता है।

गुरु के पास आओगे तो गुरु सर्जरी है। तुम्हें उसने चुन लिया, इसका मतलब होगा कि उसने कटाई शुरू कर दी। गुरु के पास आओगे तो वह तुम्हारे मस्तिष्क को तोड़ेगा, खंड-खंड करेगा, बिखरा देगा। जहां तुम्हारा सिर खंड-खंड होकर गिरा दिया जाए, वहां जानना कि चुन लिए गए। और उस सिर के टूट जाने में ही तुम्हारे भीतर हृदय में पल्लव आएंगे, फूल खिलेंगे।

समझने की बात नहीं। भाव की बात है। भाव-दशा है। और कभी भूल नहीं होती। पंडित चूक जाते हों, अन्यथा भूल नहीं होती। इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि जब सदगुरु पृथ्वी पर होते हैं तो पंडित चूक जाते हैं। सहज, निष्कपट मन के लोग, सरलचित्त लोग, भोले-भाले लोग लाभ ले लेते हैं।

अब तुम सोचते हो कि पलटूदास से काशी के पंडित जाकर और चरणों में सिर झुकाएंगे? कठिन है। ... कि मुसलमान दरिया के चरणों में सिर झुकाएंगे? कठिन है। ... कि जुलाहा कबीर के चरणों में सिर झुकाएंगे, कठिन है। काशी के सारे पंडित कबीर से नाराज थे। नाराज होने का कारण था। यह आदमी जुलाहा और हजारों लोग, सीधे-साधे, भोले-भाले लोग इसके चरणों में सिर रखते हैं, इसे परमात्मा मानते हैं। पंडितों को यह बात अखर जाने वाली बात थीः परमात्मा और जुलाहे में उतरेगा? परमात्मा तो किसी शुद्ध ब्राह्मण में उतरता है। चारों वेद का पाठ करने वाले ब्राह्मण में उतरता तो समझ में आने वाली बात थी।

लेकिन परमात्मा के अनूठे ढंग हैं। वह वेद-भेद की फिकर नहीं करता। तुम कितना वेद जानते हो, इसकी चिंता नहीं करता। तुम्हारे भीतर कितना अपूर्व प्रेम है, वहां उतर आता है। परमात्मा प्रेम का भूखा है, ज्ञान का नहीं। ... तो कबीर के हृदय में उतर आया है। पंडित परेशान हैं; कष्टपूर्ण है उनकी स्थिति। जुलाहे के जीवन में ऐसी ज्योति जली, वे देखना भी नहीं चाहते, मानना भी नहीं चाहते; देख भी लें तो आंख बचाना चाहते हैं।

काशी के पंडित भर वंचित रह गए; कबीर का यह अपूर्व जो लाभ था, सिर्फ पंडित चूके। सीधे-साधे भोले-भाले लोग, जिनके पास यह हिसाब-किताब नहीं था कि वेद जाने कि न जाने, कि हिंदू हो कि मुसलमान हो, वे सीधे-साधे लोग खिंचे चले आए; जैसे चुंबक के पास लोहे के कण खिंचे चले आते हैं। उन्होंने लाभ ले लिया। वे इस अमृत को पी गए।

यह सदा से हुआ है। और ऐसा लगता है कि दुर्भाग्य... यह सदा ऐसा ही होगा दुर्भाग्य से। जानकार अपनी जानकारी के कारण इंच भर नहीं सरक पाता। उसका न्यस्त स्वार्थ है। उसकी जानकारी बाधा डालती है। अज्ञानी उतर जाता है अज्ञात में; कोई जानकारी तो है नहीं; कुछ भय भी नहीं, कुछ खोता भी नहीं।

जिनके मन में बड़ी धारणाएं हैं; पूर्व-धारणाएं हैं, वे कहीं भी नहीं जा पाते, क्योंकि पूर्व-धारणाएं सभी जगह अवरुद्ध कर देती हैं। तुमने अगर पहले से ही कुछ तय कर रखा है कि सदगुरु ऐसा होना चाहिए, तो तुम चूकोगे सदगुरु से। अभी तुम्हें सदगुरु मिला नहीं, तुम्हें पता कैसे कि कैसा होना चाहिए? तुम अभी खुली आंख रखो, अभी पक्षपात-मुक्त रहो; अभी तो कहो कि देखेंगे, होगा तो जोड़ लेंगे संबंध; बनेगा संबंध तो उतर जाएंगे। खोने को है भी क्या, घबड़ाहट क्या है? ज्यादा से ज्यादा इतना ही हो सकता है न कि कोई आदमी के तुम प्रेम में पड़ जाओगे और वह सदगुरु न होगा। इतनी ही ज्यादा से ज्यादा भूल हो सकती है। पर मैं तुमसे कहता हूं कि अगर तुम असदगुरु के भी परिपूर्ण प्रेम में पड़ जाओ तो तुम्हें सदगुरु मिल गया। क्योंकि प्रेम सदगुरु है। तुम वहां से भी पहुंच जाओगे। और तुम सदगुरु के पास भी बैठे रहो और प्रेम में न पड़ो, तो कहीं न पहुंचोगे क्योंकि असली बात ही चूकी जा रही है।

प्रेम मिट्टी को भी सोना बना लेता है और प्रेम के अभाव में सोना भी मिट्टी की तरह रह जाता है।

दूसरा प्रश्नः हेतु के साथ प्रधानमंत्री के चरण छूने में और हेतु के साथ संत के चरण छूने में क्या कुछ भी फर्क नहीं है?

आत्यंतिक अर्थों में तो कुछ भी फर्क नहीं है।

जहां हेतु है वहां वासना है। जहां वासना है वहां झुकना कैसा; वहां झुकना धोखा है। फिर तुम किसके सामने झुकते हो, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। तुम प्रधानमंत्री के सामने झुकोगे, क्योंकि उनसे कुछ मिलने की आशा है। तुम किसी संत के सामने झुकोगे, क्योंकि उससे भी कुछ मिलने की आशा है। मगर मिलने की आशा से झुक रहे हो। तुम अपने लोभ के ही सामने झुक रहे हो।

शक्तिशाली के सामने झुक जाते हो, क्योंकि उसके पास जगत की सत्ता है। और संत के सामने झुक जाते हो, क्योंकि लगता है इसके पास परमात्मा की सत्ता है, परमात्मा की शक्ति है। लेकिन तुम झुक किसलिए रहे हो? तुम्हारा कोई हेतु है? तुम कुछ मांगने के लिए झुक रहे हो? अगर तुम कुछ मांगने के लिए झुक रहे हो तो तुम्हारे झुकाव में लोभ है। फिर तुम कहां झुकते हो... परमात्मा के सामने भी झुको तो कोई फर्क नहीं पड़ता है।

इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि जिनकी प्रार्थना में मांग है, उनकी प्रार्थना जन्म के पहले ही मर गई। परमात्मा से मांगना ही मत। वह परमात्मा का अपमान है। तुम्हारी प्रार्थना भी खराब हो गई और तुमने परमात्मा का भी अपमान किया। और उलटा पाप लगा। इससे तो न प्रार्थना करते तो बेहतर था।

परमात्मा की प्रार्थना का तो अर्थ यही होता है कि अकारण झुके। अहैतुकी! अब तुम्हारा कोई हेतु नहीं है। झुकने में मजा आया, इसलिए झुके। स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा। मजा आया। स्वान्तः सुखाय। कुछ और नहीं मांगना है। यह झुकने में ही आनंद आया। अकारण। कोई लक्ष्य नहीं। कोई उद्देश्य नहीं। उद्देश्य आया कि गंदगी आई। उद्देश्य आया कि संसार आया। हेतु अर्थात संसार।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन कविता पाठ कर रहे थे। धीरे-धीरे श्रोता खिसक गए एक-एक करके। मगर मुल्ला अपनी कविता सुनाने में इतने मस्त थे कि उन्हें इस बात का अहसास ही न हुआ। कविता समाप्त कर चुके तो उन्हें होश आया। श्रोता के नाम पर एक ही व्यक्ति मौजूद था। मुल्ला गद्गद हो गए और उसकी लगे प्रशंसा करने। वह व्यक्ति अनायास अपनी प्रशंसा सुन कर खीझ उठा और बोलाः अजी, बस करिए जनाब, मैं आपकी कविता सुनने नहीं रुका रहा; आप बस में से मेरा सूटकेस उतार लाए थे और मैं आपका। आप मेरा वापस कर दीजिए और यह रहा आपका। मैं यही राह देख रहा हूं कि कब आप कविता खत्म करो। और भी मुझे काम हैं।

अब यह जो आदमी सूटकेस बदलने के कारण बैठ कर कविता सुन रहा है, यह कविता सुन रहा होगा? यह गालियां दे रहा होगा कि बंद करो, कहां की बकवास लगा रखी है! और भी काम हैं। हेतु है इसका, तो काव्य से चूकेगा।

तुमने अगर हेतु से गुलाब के फूल की तरफ देखा तो तुम गुलाब के फूल से चूक गए। तुम अगर माली हो और बाजार में फूल बेचने का काम करते हो और तुमने फूल गुलाब का देखा और तुमने देखा ठीक है चार आने मिल जाएंगे कि आठ आने मिल जाएंगे--तुम चूक गए गुलाब के फूल से। आठ आने बीच में आ गए। वे आठ आने ज्यादा मूल्यवान हैं; गुलाब का फूल पीछे पड़ गया। इस गुलाब के फूल में जो अपूर्व घटा था, जो परमात्मा उतरा था, जो परमात्मा ने क्षण भर को झलक मारी थी, वह तुम चूक गए--आठ आने में चूक गए।

गुलाब का फूल देखना हो तो बिना किसी हेतु के देखना; न बेचना है न तोड़ना है। इतना भी नहीं की परमात्मा के चरणों में चढ़ाना है; तब भी चूक जाओगे। तब भी तुम इस गुलाब के फूल को देखने से चूके। तब भी तुम इस परमात्मा को देखने से चूके।

जहां हेतु आया वहां भूल हुई। जीवन में कुछ हिस्से रखो जो हेतु से मुक्त हों। वे ही क्षण प्रार्थना के, वे ही क्षण ध्यान के, वे ही क्षण परमात्मा के, सुमिरण के, सूरति के। घड़ी आधा घड़ी को तो हेतु छोड़ो! बाजार, बाजार, बाजार; पाना, पाना, पाना--और हर चीज के पीछे हिसाब! नमस्कार भी लोग करते हैं तो हिसाब से करते हैं! सिर भी उतना ही झुकाते हैं जितना मतलब होता है। उस आदमी के सामने झुकाते हैं जिससे मतलब होता है। जब मतलब निकल गया, फिर कोई सिर नहीं झुकाता; फिर आदमी से कन्नी काट जाते हैं; फिर आंख बचा कर निकल जाते हैं कि अब कोई नमस्कार न करना पड़े फिर इन सज्जन से। बात ही खत्म हो गई।

तुमने भी देखा होगा, अपने ही भीतर देखा होगा--नमस्कार भी मतलब से! तुमने देखा, छोटे-मोटे गांव में अगर जाओ तो अभी भी, देहात में, लोग जयराम जी कर लेते हैं--बिना कारण! तुम्हें जानते भी नहीं, तुमसे कोई पहचान भी नहीं। तुमसे कुछ लेना-देना भी नहीं। एक अजनबी आदमी गांव से निकल रहा है और देखोगे कई लोग उससे जयराम जी कर लेते हैं। शहर में यह नहीं होता। शहर में लोग ज्यादा समझदार हो गए हैं कि जिससे मतलब नहीं उससे जयराम जी क्या करना! अपना कुछ लेना-देना नहीं है। यह आदमी अपने रास्ते जा रहा है, हम अपने रास्ते जा रहे हैं, जयराम जी क्यों करना? सिर भी क्यों हिलाना? हाथ भी क्यों उठाना? शहर में लोग ज्यादा समझदार हो गए हैं। गांव में लोग अभी भी नासमझ हैं। नासमझ यानी अभी भी भोले-भाले।

मगर गांव की बात में कुछ खूबी है। जब गांव में लोग बिना कारण जयराम जी कर लेते हैं तो वे यह कह रहे हैं कि कम से कम जयराम जी तो बिना कारण करो! और सब कर लेना कारण से... कि जिसकी जेब गरम हो उसको नमस्कार करेंगे, तो फिर तुमने जयराम जी नहीं की।

जयराम जी शब्द को सुनते हो! दुनिया में बहुत तरह के नमस्कार के ढंग हैं; लेकिन जैसा ढंग भारत के पास है वैसा किसी के पास नहीं। कोई कहता है गुड मार्निंग (सुबह अच्छी है); मगर यह भी कोई बहुत बड़ी बात नहीं हुई। यह कोई बहुत बड़ी बात नहीं हुई। लेकिन यह अनूठा है भारत का हिसाबः राम की जय! यह राम को याद करने का एक उपाय हो गया। एक अजनबी आदमी गुजरता है; तुम उससे कहते हो जयराम जी; तुम उससे कहते हो, भाई, राम की जय! तुम्हारे कारण मुझे राम की याद आ गई, तुम्हारा भी धन्यवाद। तुम क्या निकल आए, राम की याद का एक मौका मिल गया! एक अकारण बात को राम की स्मृति का आधार बना लिया।

जब तुम जयराम जी कहते हो किसी को तो तुम यह कहते हो कि तुम्हारे भीतर बैठे राम को नमस्कार करता हूं। तुम अजनबी हो, लेकिन तुम्हारा "राम" थोड़े ही अजनबी है; उससे तो मैं उतना ही जुड़ा हूं जितने तुम जुड़े हो। यह तुम्हारा चेहरा-मोहरा न पहचाना हुआ हो; तुम्हारा नाम-पता-ठिकाना मुझे मालूम नहीं है; तुम कौन हो, क्या नहीं हो, कुछ लेना-देना भी नहीं है--लेकिन एक बात पक्की है कि तुम कोई भी हो, राम तो हो ही। स्त्री हो कि पुरुष हो, कि हिंदू हो कि मुसलमान हो, कि काले हो कि गोरे हो, कि अच्छे हो कि बुरे हो, चोर हो सज्जन हो, साधु हो--कौन हो, इससे कुछ मतलब नहीं है। ये सब गौण बातें हैं। ये सब तो नाटक के हिस्से हैं। मगर एक बात पक्की है कि तुम राम हो। अभी चाहे तुम चोर बन गए हो और चाहे साधु बन गए हो और चाहे तुमने बड़ा दान किया हो और चाहे बड़े नुकसान किए हों लोगों के, अभी तुमने कोई भी पार्ट अदा किया हो, हमें तुम्हारे पार्ट से कुछ लेना-देना नहीं है। परदे के पीछे तुम राम हो। हम उसकी याद करते हैं और तुम्हें भी उसकी याद दिलाते हैं।

और यह याद काफी है। स्वान्तः सुखाय।

शहर का आदमी गांव जाता है तो थोड़ी सी परेशानी अनुभव करता है कि ऐरे-गैरे-नत्थुखैरों को जयराम जी करनी पड़ती है! क्या मतलब? किसलिए? उसका सब काम हिसाब का हो गया है।

पूछा है तुमने कि "हेतु के साथ प्रधानमंत्री के चरण छूने में और हेतु के साथ संत के चरण छूने में क्या कुछ भी फर्क नहीं है?"

जरा भी फर्क नहीं है। साधारणतः तुम्हें फर्क दिखाई पड़ता है। तुम कहते हो, संत के चरण तो हम पारलौकिक संपदा के लिए छूते हैं! प्रधानमंत्री के चरण तो छूते हैं कि चलो लड़के की नौकरी लगा देना; कि जरा

बढ़ौतरी करवा देना; कि अब रिटायरमेंट की उम्र आ रही है, पांच एक साल और सरका देना आगे। कुछ मतलब है। इस संसार की कोई संपदा। लेकिन संत के चरण तो हम परलोक की संपदा के लिए छूते हैं, तो फर्क होना चाहिए--ऐसा तुम्हारा तर्क कहता है। लेकिन जरा भी फर्क नहीं है। संपदा तो संपदा--इस संसार की कि उस संसार की। संपदा से लगाव, तो लगाव। चाह यहां की या वहां की, कोई फर्क नहीं पड़ता। चाह तो चाह, चाह तो फांसी का फंदा।

संत के चरण अहोभाव से छूना, हेतु से नहीं। संत के चरण उसी भाव से छूना कि धन्यभाग मेरे, कि किसी ऐसे व्यक्ति को देखना-मिलना हो गया--किसी ऐसे व्यक्ति से दो क्षण को आंखें चार हो गईं जिसके भीतर परमात्मा परिपूर्ण रूप से प्रकट हुआ है, कम से कम मुझसे ज्यादा प्रकट हुआ है! मेरा ही भविष्य, मैं जो कल हो सकता हूं, मुझे आज इस संत में दिखाई पड़ गया!

बस इतना काफी है। धन्यवाद के लिए चरण छूना; कृतज्ञता के भाव से चरण छूना। भविष्य की कोई आकांक्षा न हो, यह वर्तमान का क्षण ही परम सुंदर है। आशीर्वाद भी मत मांगना। मांगा कि चूके। अगर नहीं मांगा तो आशीर्वाद मिलता है।

तुम थोड़े हैरान होओगे। तुमने अगर आशीर्वाद मांगा और कहा संत से कि मेरे सिर पर हाथ रख कर, आशीर्वाद दे दें, किस बात के लिए आशीर्वाद मांगते हो? संत की मौजूदगी काफी आशीर्वाद नहीं है? और क्या आशीर्वाद मांगते हो? फिर आशीर्वाद में वासना आ गई पीछे से सरक कर, कि उम्र लंबी हो जाए कि बीमारी छूट जाए, कि लड़की की शादी हो जाए, कि मकान बन जाए, कि स्वर्ग में जगह मिल जाए, कि नरक न जाना पड़े--आशीर्वाद दे दो। आगे का हिसाब करने लगे। यह वर्तमान के क्षण से चूक गए। यह जो परम क्षण था, इस क्षण में जो डुबकी लग सकती थी, इस शांत मनुष्य के साथ थोड़ी देर एक होने का जो मौका मिला था--वंचित हो गए। तुम आगे भाग निकले। तुमने कहा, आशीर्वाद दो। तुम भविष्य को ले आए। भविष्य को लाए कि वर्तमान से चूके।

संत की मौजूदगी आशीर्वाद है। मांगना नहीं पड़ता। जो मांगता है वह चूक जाता है। जो नहीं मांगता उसे मिलता है। मिलता ही है। संत के पास बैठे कि मिल ही गया। फूल के पास से गुजरोगे तो नासापुटों में गंध भर ही जाएगी। और रोशनी के पास से गुजरोगे तो आंखों में किरणें चमकेंगी। यह संत का तूरा बज रहा है। अठपहरा बाजे। इसके भीतर संगीत गूंज रहा है। तुम किस आशीर्वाद को मांग रहे हो? दो क्षण बैठ जाओ। सत्संग करो। दो क्षण इस आदमी के साथ हो लो; इसकी रौ में बह लो; इसकी लहर के साथ लहर बन जाओ। दो क्षण को जाने दो तुम्हारा संसार हेतुओं से भरा हुआ और व्यवसाय से भरा हुआ, और यह चाहूं और वह चाहूं, और यह हो और वह न हो। छोड़ो वे सब चिंताएं, जंजाल! दो क्षण को इस आदमी के साथ हो लो। यह आदमी सब चिंताएं और जंजाल छोड़ कर किस परम आनंद के भाव में विराजमान है! अनहद में विसराम! इस आदमी का अनहद में विश्राम हो रहा है, थोड़ी देर तुम भी तो अनहद में उतरो। वही आशीर्वाद है।

मौन प्रार्थनाएं जल्दी पहुंचती हैं ईश्वर तक
क्योंकि मुक्त होती हैं वे शब्दों के बोझ से।

हेतु की तो बात ही छोड़ दो। हेतु तो बड़ा भारी पत्थर बांध दिया तुमने छाती पर। अब यह पक्षी उड़ न पाएगा प्रार्थना का। शब्द तक भारी हो जाते हैं। असली प्रार्थनाएं तो हेतु से मुक्त ही नहीं होतीं, शब्दों से भी मुक्त होती हैं; वासना से तो मुक्त होती ही हैं, वचन से भी मुक्त होती हैं, वाणी से भी मुक्त होती हैं।

संत के पास बैठो, आंसू आ जाएं तुम्हारी आंख में--समझ में आता है। ... कि गदगद होकर डोलने लगो--समझ में आता है। नाचने लगो--समझ में आता है। मगर क्या बोलने को है? क्या कहने को है? सुनने को भला हो, कहने को तो कुछ भी नहीं है।

इसलिए जो वास्तविक प्रार्थनाएं हैं वे परमात्मा को सुनती हैं, परमात्मा से बोलती नहीं। मंदिर में कभी गए, मस्जिद में कभी गए, बैठ गए! परमात्मा को मौका दो बोलने का। वहां भी तुम अपनी बकवास लगाए हुए हो! वहां भी तुमने खोल लिए अपने खाते-बही! वहां भी तुम अपने हेतु और संसार को ले आए! वहां तो कम से कम चुप हो जाओ! गहन निस्तब्ध! सुनो! परमात्मा अगर बोले तो सुनो; अगर परमात्मा चुप रहे तो उसकी चुप्पी को सुनो। और जो परमात्मा के साथ करते हो वही संत के साथ करो।

क्योंकि संत और क्या है? संत तो मिट गया; अपनी तरफ से तो समाप्त हो गया है; अपनी तरफ से तो नहीं बचा है। यही तो संत का अर्थ है। संत का अर्थ होता हैः जो स्वयं तो मिट गया और अब सत्य ही बचा। सत्त ही बचा--वही संत।

यह संत शब्द बड़ा प्यारा है; सत्त से निर्मित हुआ है। जो अपने तो अंत पर आ गया, जिसने अपने को तो समाप्त कर डाला, जिसका मैं-भाव तो गया और अब केवल सत्त-भाव, सत्ता मात्र बची।

संत तो जीता-जागता मंदिर है; चलता-फिरता परमात्मा है। शायद तुम वृक्षों में न देख पाओ, अभी तुम्हारी आंखें इतनी योग्य नहीं हैं; फूलों में न देख पाओ, क्योंकि तुम्हारी आंखें अभी इतनी योग्य नहीं हैं; चांद-तारों में न देख पाओ; नदी पहाड़ों में न देख पाओ, क्योंकि वह भाषा तुमने सीखी नहीं। इसे भी अब पहले तुम किसी आदमी में देखो, क्योंकि आदमी की भाषा तुम्हारे करीब है। किसी आदमी में पहले संतत्व को देखो। वहां से सीखो; धीरे-धीरे भाषा आ जाएगी, तो फिर तो तुम्हें सब तरफ दिखाई पड़ने लगेगा। जिस दिन तुम्हें ठीक से दिखाई पड़ेगा, उस दिन असंतत्व तो मिट ही जाता है जगत से; फिर तो जो भी है, परमात्मा है; जो भी हैं, सभी संतत्व में विराजमान हैं। उन्हें भी पता न हो, तो भी कुछ फर्क नहीं पड़ता। तभी तो कोई कह पाता है हर किसी से जयराम जी, राम की जय हो!

तीसरा प्रश्नः सुबह और शाम, रात और दिन आपका ही ख्याल उठता है। घर वाले पागल कहते हैं। प्रभु, एक धक्का और दें कि गहरे ध्यान में डूबूं और आप से छुटकारा हो।

पूछा है मनोहरलाल ने।

पहली तो बात, मनोहरलाल, अभी पूरे पागल नहीं। अभी बड़ी होशियारी से चल रहे हो। घर वाले पागल कहते होंगे; मैं तुम्हें अभी पागल नहीं कहता। अभी तो मेरे रंग में नहीं रंगे, अभी संन्यासी तक नहीं हुए। बड़े होशियार हो, समझदार हो। घर वालों ने जरा जल्दी पागल कहना शुरू कर दिया है। घर वालों की समझ भी कितनी है! अभी तुम कुनकुने हो और घर वाले कह रहे हैं, उबलने लगे! तुम्हारे घर वाले बिलकुल ठंडे होंगे बरफ की तरह, इसलिए तुम्हारी कुनकुनाहट उनको उबलती हुई मालूम होती है। तुलना से ही तो मालूम होता है न!

मेरे देखे तो अभी तुम बिलकुल कुनकुने हो। अभी उबले ही नहीं और तुम भाप बनने की योजना कर रहे हो! धक्का दूंगा जरूर, लेकिन थोड़ा और पागलपन बढ़ने दो। क्योंकि मैं धक्का मारूं और तुम अगर पूरे पागल न होओ तो तुम भाग ही जाओगे। फिर तुम मेरे पास भी न आओगे। तो मुझे भी सोच-समझ कर धक्का मारना पड़ता है कि यह आदमी भाग ही तो नहीं जाएगा।

अभी मनोहरलाल, तुम्हारे भागने की संभावना है।

तुम कहते होः "सुबह और शाम, रात और दिन आपका ही ख्याल उठता है।"

उठता है जरूर, मगर बहुत मंदा-मंदा। उससे कुछ फर्क नहीं हो रहा है। वह भी एक तरह का विलास है। मेरा ख्याल कर लेने में क्या अड़चन है! दांव पर कुछ भी नहीं लगाते! कभी-कभी मेरा नाम याद कर लेते होओगे, ठीक है। मेरी बातें अच्छी लगती हैं, वह भी ठीक है। लेकिन मेरी बातें करोगे कब? अगर अच्छी लगती

हैं तो करो। क्योंकि करने से ही प्रमाण मिलेगा कि अच्छी लगीं। नहीं तो एक तरह का मनोरंजन है। सुन लिया, पढ़ लिया, एक बौद्धिक विलास हुआ। इससे कुछ सार नहीं होने का है।

और घर वाले पागल इसलिए कहते हैं कि तुम मेरी बातें करते होओगे, विवाद करते होओगे, मेरी बातें समझाने की कोशिश करते होओगे। मैं तुमको तब पागल कहूंगा जब तुम मेरी बातों-जैसे हो जाओ।

समझने-वमझाने की बात नहीं है। किसको कौन समझा पाया है! अब तुम ही देखो न, मनोहरलाल, मैं तुमको अभी नहीं समझा पाया; तुम किसको समझाओगे? तुम, मुझे सुनते-सुनते इतने वर्ष हो गए और अभी मनोहरलाल के मनोहरलाल बने हो! मुझे नाम तो बदलने दो। पागल ही होना है तो कम से कम गैरिक वस्त्रों से शुरुआत करो। इससे थोड़ा प्रमाण मिलेगा कि हुए पागल। इससे शुरुआत होगी।

पूछते होः "सुबह-शाम, रात-दिन आपका ख्याल उठता है। घर वाले पागल कहते हैं।"

घरवाले तो जब भी तुम जरा अन्यथा होने लगोगे, पागल कहना शुरू कर देते हैं। वह उनकी तरकीब है तुम्हें और आगे न जाने देने की। वह तुम्हारे रास्ते में पत्थर लगाने की तरकीब है। क्योंकि आदमी दुनिया में अगर किसी चीज से बहुत डरता है तो वह पागल होने से डरता हैः और सब ठीक है; मगर कम से कम पागल तो न हो जाऊं! वे तुम्हें डरा रहे हैं।

घर वाले यानी कौन? जहां तक घरवाली। और मनोहरलाल की घर वाली भी यहां मौजूद है, इसलिए... । तुम घरवाले कह रहे हो, लेकिन जहां तक मेरी समझ है--घरवाली। पत्नियां बहुत डरी रहती हैं कि पति कहीं जरा सीमा के बाहर न चले जाएं। उनको बड़ा भय बना रहता है। क्योंकि पत्नियों को सारी चिंता सुरक्षा की रहती है कि कहीं और जरा आगे गए, पता नहीं और क्या कर गुजरें! भाग ही जाएं, छोड़ दें। बच्चे का क्या हो, मेरा क्या हो, घर-द्वार का क्या हो!

और ऐसा नहीं है कि पत्नियां ही डरती हैं; अगर पत्नियां बहुत ज्यादा रस लेने लगती हैं परमात्मा में तो पति डरने लगते हैं। तो पति बाधा डालने लगते हैं। पति तो बाधा डालते हैं, वह बहुत स्थूल प्रकार की होती है--कि सिर तोड़ दूंगा, टांग तोड़ दूंगा अगर यहां से गई। वह स्थूल प्रकार की होती है; स्थूल बुद्धि होती है पतियों की। मेरे पास स्त्रियां आती हैं; वे कहती हैं कि पति ने कह दिया है कि अब अगर गई तो टांग तोड़ देंगे। पत्नियां तुम्हारी टांग तो नहीं तोड़ सकतीं; वे तरकीब सूक्ष्म उपयोग करती हैं। वे कहती हैंः पागल हो रहे हो! पागल हो जाओगे! वे तुमको घबड़ाती हैं। वे मनोवैज्ञानिक भय पैदा करती हैं। टांग नहीं तोड़तीं, वे तुम्हारी आत्मा ही तोड़ देती हैं। पत्नियां ज्यादा सूक्ष्म हैं, ज्यादा होशियार हैं। वे तुम्हें भयभीत किए रखती हैं। फिर, यह एक भय स्वाभाविक है। पति-पत्नी के बीच एक लगाव है, एक गहरा संबंध है। जैसे ही उन दो में से, जोड़े में से कोई एक किसी गुरु में उत्सुक हो जाए, तो एक नया लगाव पैदा होता है जो पुराने लगाव से भी ज्यादा मजबूत है; वह बड़ी घबड़ाने की बात है। तुम्हारी पत्नी, तुम किसी दूसरी स्त्री से भी थोड़े संबंधित हो जाओ तो भी इतनी न घबड़ाएगी, क्योंकि आखिर स्त्री स्त्री है, निपट लेंगे; लेकिन तुम किसी गुरु से संबंधित होने लगो तो बहुत घबड़ाहट पैदा होती है कि यह मामला हाथ के बाहर जा रहा है, यह निपटने के बाहर जा रहा है। और जब तुम किसी गुरु में उत्सुक होने शुरू हो जाते हो तो तुम्हारे सारे प्राण खिंचते हैं जैसे चुंबक खींच रहा हो। तो पत्नी बेचैन हो जाए, स्वाभाविक है; क्योंकि कल तक तुमने उसी को चुंबक जाना था, आज तुमने एक नया चुंबक खोज लिया और बड़ा शक्तिशाली चुंबक खोज लिया! अब पत्नी गौण मालूम होती है; पत्नी को छोड़ कर भी जा सकते हो, ऐसी हालत आ गई। या पति को छोड़ कर पत्नी जा सकती है, ऐसी हालत आ गई। तो सारा भयाक्रांत हो जाता है मन। उस भयाक्रांत मन के द्वारा ये सब आयोजन किए जाते हैं। वह समझाएगी कि तुम पागल हो गए। पति समझाएगा कि तेरा दिमाग खराब हो गया है, तुझे समझ नहीं है कुछ। स्त्रियां भोली-भाली होती हैं। किसके सम्मोहन में पड़ गई है?

इसलिए घरवालों ने कहना शुरू कर दिया होगा कि तुम पागल हो गए। मगर अगर तुम सच में ही पागल होना चाहते हो तो उनसे कह देना कि सौभाग्य मेरा, तो उनसे कह देना कि अब तुम भी हो जाओ।

और कुछ प्रमाण दो कि उनका भी... । आखिर बेचारे इतना कहते हैं कि तुम पागल हो गए हो, तुम प्रमाण ही नहीं देते कुछ! आखिर उनका मन भी तो दुखता होगा कि हम कहे ही चले जाते हैं और ये कोई प्रमाण ही नहीं देते; मनोहरलाल मनोहरलाल ही बने हुए हैं। तुम कुछ प्रमाण दो। इस बार लौट कर जब जाओ जालंधर तो गैरिक वस्त्रों में पहुंच जाओ। कहना, भई आप सब कहते थे कि पागल हो गए तो मैंने सोचा अब कब तक आपकी बात झुठलानी। अब हो गया।

और धीरे-धीरे इसमें आगे बढ़ो, धक्का भी लगेगा। मगर पहले तुम इतना तो दिखाओ कि तुम धक्का सह सकोगे? कपड़ों से शुरू करो, तब आत्मा में धक्का लगे। अ ब स से शुरू करो। एकदम गहरे सागर में उतर जाने की मत सोचो। पहले किनारे पर थोड़े उथले में तैरना सीख लो।

"प्रभु, एक धक्का और दें कि गहरे ध्यान में डूबूं और आपसे छुटकारा हो।"

अगर मुझसे छुटकारा चाहिए तो मुझमें डूबना पड़ेगा। और कोई छुटकारे का उपाय नहीं है। अब यह तुमने जो बात पूछी है, यह बड़ी अड़चन की है। अगर मुझसे छुटकारा चाहिए तो मुझमें डूबना होगा। पूरा डूबना होगा। मुझ में पूरे डूब कर ही तुम मुझसे मुक्त हो जाओगे। और अगर तुम मुझसे छुटकारा पाने के लिए ध्यान इत्यादि करते हो... क्योंकि तुम पूछ रहे हो कि "गहरे ध्यान में डूबूं, ताकि आपसे छुटकारा हो"... तो ध्यान में भी न डूब पाओगे। यह कोई ध्यान होगा, जिसमें मुझसे छूटने के लिए ध्यान में जाओगे यह ध्यान भी नहीं लगेगा। मेरी याद वहां भी आती रहेगी। कैसे छुटकारा होगा? यह तो एक तरह का दमन होगा।

तुम मुझसे छूटना चाहते हो, क्योंकि घरवाले पागल न कहें। तुम मुझसे छूटना चाहते हो कि दुनिया तुम्हें बुद्धिमान समझे। तुम मुझसे छूटना चाहते हो, ताकि यह जो दिन-रात तुम्हें याद आती है न आए। तुम मुझसे डरे हुए हो। तुम मुझसे घबड़ाए हुए हो। तुम्हें लगता है कि आज नहीं कल जो लोग कह रहे हैं, यह हो ही जाएगा, मैं पागल हो ही जाऊंगा। इससे तुम मुझसे छूटना चाहते हो। इसके लिए तुम ध्यान तक करने को तैयार हो। मगर यह ध्यान करने का ठीक कारण न हुआ। सम्यक हेतु न हुआ।

कैसे तुम ध्यान करोगे? ऐसे तो बहुत लोग कर रहे हैं। कोई धन से छूटना चाहता है; वह जाकर मंदिर में बैठ कर ध्यान करता है। धन ही धन ही याद आता है, रुपयों की कतार निकलती है, आंखों के चारों तरफ धन के ढेर लग जाते हैं। कोई स्त्री से छूटना चाहता है; अब वह जाकर बैठा है मस्जिद में और सिर मार रहा है; नमाज पढ़ रहा है। मगर जैसे ही नमाज पढ़ता है, स्त्री और सुंदर, और सुंदर होकर खड़ी हो जाती है। अप्सराएं प्रकट होने लगती हैं। हूरें उतरने लगती हैं बहिश्त से।

तुम्हारे ऋषि-मुनियों की सारी कथाएं इसी से भरी हैं--अप्सराएं चली आ रही हैं, आकाश से उतरती, घूंघर बजाती। क्या मामला है? स्त्रियों से छूटने गए थे।

अगर तुम मुझसे छूटने के लिए ध्यान में गए तो मैं तुम्हें घेर लूंगा बुरी तरह से, सब तरफ से। फिर मैं ही मैं याद आऊंगा। फिर ध्यान में तुम बिलकुल पगलाने लगोगे। अगर मुझसे सच में मुक्त होना हो तो एक ही उपाय हैः मुझमें डूब जाओ। डूबते ही मुक्ति है। क्योंकि फिर क्या मुक्त होना है! यह भागने की चेष्टा क्या? भाग कर जाओगे कहां? अब जाना हो भी नहीं सकता। उस जगह के तो पार आ गए हो मनोहरलाल, जहां से भाग सकते थे। आगे न जाओ तो अटके रह जाओगे।

नीम पागल की हालत बड़ी खराब हालत है। या तो पूरे पागल हो जाओ या पूरे गैर-पागल हो जाओ। मगर नीम पागल की हालत बड़ी खराब हालत है।

अब तुम्हारी हालत नीम पागल की है। कुछ तो पूर्णता करो--या इस तरफ या उस तरफ। बीच में मत अटको। या इस किनारे या उस किनारे। एक मझधार में मत खड़े रहो।

फिर इतनी घबड़ाहट क्या है? मैं तुमसे क्या छीन लूंगा? तुम्हारे पास है क्या जिसको बचाने के लिए तुम मुझसे छूटना चाहते हो। यह कौन है जो बचना चाहता है? यह तुम्हारा अहंकार ही होगा जो बचना चाहता है। इसको बचा कर क्या करोगे? इसी के साथ तो जन्मों-जन्मों से चल रहे हो, बचा-बचा कर भी मिला क्या है?

एक मौका मिला है तुम्हें कि अपने अहंकार को कहीं जाकर डुबा सकते हो। यह गहराई तुम्हारे सामने खड़ी है। एक डुबकी लगा कर देखो। तुम तो बचोगे; अहंकार चला जाएगा। तुम तुम जैसे नहीं बचोगे; तुम परमात्मा जैसे बचोगे। बाहर आओगे, तुम पाओगे निकल गया सब रंग-रोगन, जो ऊपर से चिपकाया हुआ था; बह गए वे रंग, बचा असली रूप--स्वरूप!

चौथा प्रश्नः आप तो बड़ी सरलता और सहजता से कह देते हैं कि दुखी तुम अपने कारण हो, चाहो तो दुख से मुक्त हो जाओ; कि अपने ही बनाए जालों में फंसे हो, चाहो तो निकल आओ। आपके लिए तो बात बड़ी छोटी सी है; पर इस छोटी सी बात को आप से सुन-सुन कर भी हम क्यों नहीं समझ पाते हैं? कृपा करके कहिए।

दुख दुख है, ऐसा तुमने अभी जाना नहीं। अभी तुम्हें दुख में सुख का भ्रम बना हुआ है, इसलिए तुम सुन-सुन कर भी नहीं समझ पाते।

मैं तुमसे कहता हूं कि वह जो दूर दिखाई पड़ रही है, मृग-मरीचिका है; वह जो मरूद्यान दिखाई पड़ रहा है मरुस्थल में, है नहीं, सिर्फ भ्रांति है। मेरी बात तुम सुन लेते हो; लेकिन तुम्हारी आंखें तो कहती हैं हमें दिखाई पड़ रहा है। और दिखाई तो पड़ ही रहा है। मैं तुम्हें याद दिलाता हूं कि इस तरह तो तुम्हारी आंखों ने तुम्हें पहले भी धोखा दिया था। और बहुत पड़ावों पर भी तुमको दिखाई पड़ा था मरूद्यान और तब भी तुमसे किसी ने कहा था कि मरूद्यान है नहीं, सिर्फ आंख का धोखा है; सिर्फ मृग-मरीचिका है, दिखाई पड़ता है, है नहीं। तब भी तुमने यह कहा था, लेकिन हमें तो दिखाई पड़ता है। इतने बार के अनुभव के बाद तुम सीखे नहीं। तुम्हारा मन कहता है कि हो सकता हैः इतने सब अनुभवों में हम गलत थे, कौन जाने इस बार सही हों! ऐसी दुविधा है। तुम्हें लगता है, इस बार शायद हो जाए! इस स्त्री से सुख नहीं मिला, उस स्त्री से सुख नहीं मिला; लेकिन यह जो तीसरी स्त्री है, शायद इससे मिल जाए, कौन जाने! इससे तो अभी तक हमने जाना नहीं। एक स्त्री से थक गए, दो स्त्रियों से थक गए, हजार स्त्रियों से थक गए; लेकिन पृथ्वी तो और अनंत स्त्रियों से भरी है, शायद कोई स्त्री हो जिससे मिल जाए! शायद जिसके लिए तुम बनाए गए हो!

हर आदमी को यह भ्रांति है कि कोई एक स्त्री है कहीं जिसके लिए वह बनाया गया है और जो उसके लिए बनाई गई है; जब मिलन हो जाएगा तो रसधार बहेगी। वह मिलन कभी होता नहीं--वह कभी हुआ ही नहीं। मगर भ्रांति तो बनी रहती है। स्त्री से मुक्त नहीं हो पाते तुम। एक से मुक्त हो जाते, दूसरी से मुक्त हो जाते, तीसरी से मुक्त हो जाते--लेकिन स्त्री से नहीं मुक्त हो पाते। अभी तुम्हें यह तो दिखाई पड़ा कि यह अ नाम की स्त्री ने दुख दिया, यह ब नाम की स्त्री ने दुख दिया, यह स नाम की स्त्री ने दुख दिया--लेकिन स्त्री मात्र दुख देती है या पुरुष मात्र दुख देता है या संबंध मात्र दुख देता है, इस बात का तुम्हें बोध नहीं हुआ।

इसलिए मैं कहता हूं, तुम सुन भी लेते हो। किसी-किसी उड़ान के क्षण में जब तुम मेरे साथ थोड़े उड़ने लगते हो आकाश में, तो झलक भी मारता है सत्य कि शायद ठीक ही होगा। मगर शायद बना रहता है। होगा ही, ऐसा ही है--ऐसा सुनिश्चय नहीं बन पाता।

मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन से उसकी प्रेमिका कह रही थीः विवाह के बाद मैं तुम्हारे सभी दुख बांट लूंगी। मुल्ला ने कहाः परंतु मैं दुखी कहां हूं? उस प्रेमिका ने कहाः मैं विवाह के बाद की बात कर रही हूं।

जीवन में जो सबसे बड़ी कठिनाई है समझने की, वह--आशा भ्रामक है--यह समझने की है। आशा नए-नए स्वप्न सजाए जाती है।

तो एक तो यह, कि तुम सुनते हो मेरी बात। तुम्हें मुझसे लगाव है, तो तुम्हें मेरी बात में सत्य की भी झलक मालूम होती है। लेकिन तुम्हें अपने से लगाव है, वह ज्यादा है। मुझसे तुम्हें लगाव है, वह अभी इतना ज्यादा नहीं है कि जितना लगाव तुम्हें अपने से है। तुम ऐसा मत समझना कि मनोहरलाल को ही ऐसा है। सभी को ऐसा है--सभी "लालों" को ऐसा है। तुम्हें अपने से लगाव ज्यादा है। मुझसे लगाव है, सच; मगर वह इतना नहीं है कि तुम्हें जितना अपने से है। इसलिए जब भी निर्णय होगा जिंदगी में, तुम सदा अपने तईं निर्णय करोगे; तुम मेरा निर्णय न मान सकोगे। कठिनाई वहां है। और वहीं संघर्ष होना है। गुरु और शिष्य के बीच वहीं युद्ध है।

तुमने देखा न, महाभारत का युद्ध हुआ, वह नकली युद्ध है, उसमें कुछ खास नहीं है; असली युद्ध तो कृष्ण और अर्जुन के बीच हुआ, वह रथ पर, जिससे गीता पैदा हुई, मंथन निकला। असली युद्ध तो उनके बीच हुआ। बाकी तो ठीक था, लोग मारे गए--वैसे ही मर जाते। कोई न भी मारता तो भी मर जाते। वे मरने ही थे; कोई अभी तक जिंदा नहीं रहते। तो वह तो कोई खास बात न थी; होनी ही थी, हो गई। इस तरह मरे कि उस तरह मरे, खाट पर मरे कि युद्ध के मैदान में मरे--इससे क्या बहुत भेद पड़ता है! असली युद्ध दूसरा ही हुआ। असली महाभारत मेरे देखे रथ के ऊपर हुआ--कृष्ण और अर्जुन के बीच हुआ। वह बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना घटी। उस युद्ध में अर्जुन हार गया, ये उसका सौभाग्य था; अगर जीत जाता तो दुर्भाग्य ही होता। जीत भी सकता था।

बहुत बार दुर्भाग्य से शिष्य जीत जाता है, तो भटक जाता है। गुरु की जीत में ही तुम्हारी जीत है। संघर्ष यही है कि गुरु को चुनें कि अपने को चुनें; अपने को बचाएं कि गुरु को बचाएं। जैसे ही तुम गुरु के पास आए, यह उपद्रव शुरू होता है कि किसको बचाना, किसकी सुनना, किसकी मानना?

मैं तुमसे इतना ही कहता हूं कि अपनी मान कर तो तुम इतने दिन चले हो, अब कब तक और अपनी ही मान कर चलोगे? अजहूं चेत गंवार! इतने दिन मानने के बाद मिला क्या है, हाथलाई क्या है? हाथ में क्या है? रिक्त, घड़ा खाली है। भर-भर कर थक गए हो कुछ भरा नहीं है--जरा भी नहीं भरा है। दौड़-दौड़ कर थक गए हो, बूंद भी नहीं मिली है। तृप्ति तो दूर, तृप्ति की बूंद भी नहीं मिली। तृप्ति के सरोवर तो बहुत दूर। सपनों ही सपनों में चलते रहे हो।

बुद्धिमान वही है जो यह सत्य देख ले कि अब तक मैं भटका और भटकने का कारण यह है कि मैंने अपनी मानी। अब मैं किसी की मानूं, जो मुझसे बिलकुल अन्य हो, जो मुझसे बिलकुल भिन्न हो। जहां मुझे मरूद्यान दिखता है वहां उसे कुछ भी न दिखाई पड़ता हो, उसकी मानूं। जहां मुझे माया के हजार प्रलोभन मालूम पड़ते हैं, उसे कोई प्रलोभन न मालूम पड़ता हो, उसकी मानूं। अपने तईं तो खूब चल लिया, थोड़े दिन किसी और की मान कर चल लूं।

अर्जुन को हारने दो, कृष्ण को जीतने दो। तो बात बड़ी सरल है, अभी हो जाए। लेकिन तुम सोचते हो कि तुम जीत जाओ, तो बात सरल कभी भी न हो पाएगी।

फिर तीसरा भी कारण है। तुम अभी तक खाली हाथ नहीं बैठे रहे हो; कुछ न कुछ करते रहे हो। तो बहुत सी चीजें अधूरी पड़ी हैं; सच तो यह है सभी अधूरा पड़ा है। क्या पूरा होता है! संसार में कभी कुछ पूरा नहीं होता। परमात्मा में कभी कुछ अधूरा नहीं और संसार में कभी कुछ पूरा नहीं। यहां कोई कहानी कभी इति पर कहां आती है! फिल्में खत्म हो जाती हैंः दि एण्ड। मगर जिंदगी में कौन कहानी कभी इति पर आती है! कोई कहानी इति पर नहीं आती। मध्य में ही शुरू होती है, मध्य में ही अंत हो जाती है। अचानक शुरू हो जाती है।

एक बच्चा पैदा हुआ, अचानक कहानी शुरू हो गई--अधूरे में शुरू हो गई। जिंदगी चल रही थी। हजारों लोग जिंदा थे, लाखों लोग जिंदा थे। जाल फैला हुआ था, वह बच्चा उस जाल में आ गया। इन हजारों कहानियों

में एक कहानी और जुड़ गई। मगर ये कहानियां तो चल ही रही थीं, यह बच्चा इन्हीं कहानियों का हिस्सा बनेगा। इसकी मां की एक कहानी थी, इसके बाप की एक कहानी थी; उनकी कहानियों में यह हिस्सा बन गया। यह अचानक उनकी कहानी में प्रविष्ट हो गया।

ऐसा ही समझो कि एक नाटक चल रहा हो, तुम दर्शक की जगह बैठे थे, फिर अचानक बीच में उठे और चले गए मंच पर। वहां राम और सीता बात कर रहे हैं, रामलीला चल रही है, तुम बीच-बीच में बोलने लगे। तुम्हें भगाया जाएगा, क्योंकि कोई मंच यह बर्दाश्त नहीं करेगा कि यह क्या मामला है! आप कैसे आ गए! मैनेजर दौड़ेगा, पर्दा गिराएगा, तुम्हें निकाल बाहर करेगा।

लेकिन जिंदगी में ऐसा ही चल रहा है। पति-पत्नी की बात चल रही थी, आप अचानक आ गए। यह बेटा पैदा हो गया। अब इनको न किसी ने पार्ट दिया है, न किसी ने बुलाया है। कोई इनकी प्रतीक्षा भी नहीं कर रहा था। बर्थ कंट्रोल के भी उपाय किए जा रहे थे और ये आ गए। नसबंदी भी काम नहीं आई और ये आ गए। अब इन्होंने सब हिस्सा बदल दिया। एक छोटा सा बच्चा सारी कहानी को बदल देता है। क्योंकि छोटा बच्चा कुछ छोटी-मोटी घटना नहीं है। वह सारी कहानी बदल देगा। अब रात बाप को सोने नहीं देगा।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन कह रहा था अपनी पत्नी से कि मालूम होता है कि सुबह हो गई है, अब उठूं।

पत्नी ने कहाः कैसे पता चला? अभी तो अंधेरा है!

उसने कहा कि बेटा सो गया, सुबह हो गई। रात भर तो इसके मारे मैं नहीं सो पाता।

सुबह होते-होते सोते हैं बेटे भी खूब तरकीब से, रात तो उपद्रव मचाते हैं। अब यह रात भर का थका-मांदा दफ्तर जाएगा, कभी मालिक से झंझट हो जाएगी, झगड़ा हो जाएगा। किसी को पता भी नहीं चलेगा कि बेटे ने रात भर नहीं सोने दिया, उसने इसके दफ्तर को भी बदल दिया। मालिक से झगड़ा हो गया, नौकरी खत्म हो गई, गांव बदलना पड़ा। यह सब चलेगा। पत्नी धीरे-धीरे पति की फिकर छोड़ कर बेटे की फिकर करेगी। स्वभावतः बेटे को ज्यादा फिकर की जरूरत है; पति धीरे-धीरे धीरे-धीरे हाशिए में पड़ जाएगा। कभी वक्त बचेगा तो उनकी फिकर कर लेगी।

इसलिए कोई पति बेटों को पसंद नहीं करता, क्योंकि उनके आते ही से पत्नी पति की रह ही नहीं जाती। जैसे ही मां बनी स्त्री, वह बेटे की हुई। अब पति... ठीक हैं; वे रह गए, उनकी हैसियत एक नौकर-चाकर की रह गई। और यह बेटा सब तरह से तानाशाह होता है। छोटे बच्चे बड़े तानाशाह होते हैं; हर मांग पूरी होनी चाहिए--इसी वक्त पूरी होनी चाहिए! ... यह सारी जिंदगी की कहानी को बदल देगा।

ऐसे बीच में अचानक कहानी आ जाती है और फिर एक दिन अचानक खत्म हो जाती है। मगर हमेशा बीच में। कोई चीज कभी पूरी नहीं होती।

तो तुम जब मेरी बात सुनते हो तो तुम्हारी कहानी तो चल रही है। तुमने बहुत से जाल बो रखे हैं; बहुत सी दुकानें चला रखी हैं, बहुत से व्यवसाय कर रखे हैं। उन सबमें तुमने खूब अपनी जीवन-ऊर्जा न्यस्त की है, इंवैस्ट की है। अचानक मेरी बात सुन कर अगर तुम्हें ठीक लग जाए तो उसका मतलब हुआ कि अब तक तुमने जो किया सब व्यर्थ था, सब व्यर्थ गया। अगर मेरी बात ठीक लग जाए, तो तुम्हारा व्यवसाय जो तुमने अब तक किया था, किसी भी ढंग का, तुमने अब तक जीवन के नाम पर जो-जो व्यापार किए थे, जो-जो संबंध बनाए थे, जो-जो आशाएं योजनाएं बनाई थीं, वे सब व्यर्थ हो गईं। इतनी हिम्मत बहुत कम लोगों में होती है। वे कहते हैं, कुछ तो बचा लो, इतनी जिंदगी लगाई है, तीस साल हो गए कि चालीस साल कि पचास साल से इस धुन में लगा हुआ था... ।

एक मित्र मेरे पास आते हैं। वे कोई पंद्रह-बीस साल से चीफ मिनिस्टर होने की कोशिश कर रहे हैं। मिनिस्टर तक पहुंच गए हैं। वे कहते हैं कि आपकी बात भी मुझे बिलकुल ठीक लगती है, और मैं आपको भरोसा

दिलाता हूं कि एक दफे चीफ मिनिस्टर भर हो जाऊं, फिर मैं संन्यास ले लूंगा। मगर एक दफे चीफ मिनिस्टर... आखिर तीस साल से मेहनत कर रहा हूं।

उन्नीस सौ सैंतालिस से लेकर, जब से देश आजाद हुआ, वे मेहनत कर रहे हैं। और कहते हैं कि अब बिलकुल पहुंच गया हूं, करीब ही है मामला, कभी भी घट जाए। अब ये तीस साल जो उन्होंने न्यस्त कर दिए हैं, इनसे मोह हो गया है। वे कहते हैं कि छोड़ना तो यह तो मुझे समझ में आता है। और यह समझ में आता है कि कुछ सार नहीं है। मिनिस्टर होकर देख लिया, कुछ सार नहीं है। मगर तीस साल से मेहनत कर रहा हूं, अब इसको पूरा कर लेने दें, चीफ मिनिस्टर होकर देख लेने दें।

कहते हैं, मालूम भी है मुझे कि उसमें भी कुछ सार नहीं है, क्योंकि जब मिनिस्ट्री में कुछ नहीं मिला... । पहले वे डिप्टी मिनिस्टर थे, तब वे मिनिस्टर के पीछे पड़े थे। डिप्टी मिनिस्टर थे, तब कहते थे, डिप्टी मिनिस्ट्री में कुछ सार नहीं है। फिर मिनिस्टर हो गए, अब कहते हैं इसमें कुछ सार नहीं।

मैंने उनसे कहा, तुम चीफ मिनिस्टर होकर भी यही कहोगे। और फिर तुमको भी नशा चढ़ेगा कि अब प्राइम मिनिस्टर ही क्यों न हो जाएं। और उम्र तुम्हारी तो अभी कुछ उम्र भी नहीं है, अब देखो मोरारजी तो बयासी के हुए और पहुंच गए। अगर किसी मुर्दे को भी कब्र में खबर मिल जाए कि इलेक्शन हो रहा है तो वह उठ कर खड़े हो जाएं, चुनाव लड़ने लगें कि चलो एक दफे तो कोशिश कर लें और... ।

मरते दम तक महत्त्वाकांक्षा नहीं जाती।

तो उनको मैंने कहा कि तुम्हारी तो अभी ज्यादा कोई उम्र भी नहीं है। पचास ही साल की उम्र है, अगर कोशिश करते रहो तो बयासी तक तुम भी पहुंच ही जाओगे, धक्के खाते-खाते... । कहावत है नः सौ-सौ जूता खाएं, तमाशा घुस कर देखें। पड़ने दो जूते, कोई फिकर नहीं। लेकिन एक दफा घुस कर तमाशा देख लें। तो तुम भी देख लोगे घुस कर तमाशा, लेकिन छोड़ोगे कब?

वे कहते हैं, आपकी बात भी मुझे जंचती है और जूते भी मैं काफी खा रहा हूं और काफी खा लिए हैं। मगर... और वह "मगर" बड़ा अटका देता है। वे कहते हैं, तीस साल खराब किए, आप यह भी तो सोचो, अब साल छः महीने की बात और है।

तो तुमने जो न्यस्त किया है वह तुम्हें अटकाता है। तुम कहते होः इतना जीवन दांव पर लगाया, अब करीब आने को हूं। और हमेशा ही सब करीब आने को हैं, ख्याल रखना। यही तो मजा है जिंदगी का, यही तो प्रलोभन है कि सदा लगता हैः अब आए, अब आए, आता ही है, होता ही है! आज नहीं हुआ तो कल हो जाने ही वाला है! कल सुबह और देख लें! ऐसे आशा सरकती जाती है। और पीछे जो उपद्रव खड़े कर रखे हैं, उनको पूरा करने का मन बना रहता है।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन का नौकर उससे कह रहा थाः बड़े मियां, मोची कह रहा है कि जूते की मरम्मत के पैसे उसे अभी तक नहीं मिले। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहाः ठीक है, उससे कह देना कि उसकी बारी आने पर मिल जाएंगे; अभी तो मुझे जूते के दाम ही चुकाने हैं।

ऐसी उलझनें हैं। अभी जूते ही के दाम नहीं चुके; अब मोची ने सुधारा है जूता, उसका तो अभी सवाल ही कहां उठता है! अभी तो पंक्तिबद्ध जब आएगा नंबर, देख लेंगे।

तो तुम्हारे पीछे एक क्यू लगा है हजारों उलझनों का। तुम्हें मेरी बात सुनाई भी पड़ती है, समझ भी पड़ती है, फिर भी समझ नहीं पड़ पाती। साहस नहीं है तुममें इतना कि तुम एकबारगी पर्दा गिरा दो और कहो कि ठीक है यह नाटक, हो चुका। और जब तक तुम अधूरे में रोकने को राजी नहीं हो, कभी नहीं रोक पाओगे; तुम मर जाओगे; यह नाटक जारी रहेगा; मरते दम तक भी यह बना रहेगा।

तुम क्या सोचते हो मरते दम ऐसी कोई घड़ी आ जाएगी जब तुम पाओगे सब जाल उलझ गया, सब काम सुलझ गया? यह कभी नहीं होने वाला। अपनी उलझन से किसी तरह बचे तो बेटे-बेटियां पैदा हो जाएंगे, उनकी उलझनें; उनसे बचे तो उनके पोते पैदा हो जाएंगे, उनकी उलझन है। उलझन तो जारी रहती है। एक दिन मौत आ जाती है।

इसके पहले कि मौत आए, संन्यास को आने दो। इसके पहले कि मौत आए, समाधि को आने दो। और ध्यान रखना, मौत पूछ कर नहीं आती। यही अड़चन है। मौत तुमसे पूछती ही नहीं, इसलिए आती है। अगर मौत भी पूछ कर आती होती तो कोई मरता ही नहीं।

तुम जरा सोचो मेरी बात पर। अगर मौत भी पूछ कर आती होती, एक चिट्ठी लिख देती आने के पहले कि अब मेरा आने का ख्याल है, आपका क्या विचार है? तुम कहते, जरा ठहर माई! अभी तो कुछ... सब उलझन पड़ी है, सुलझा लेने दे। एक साल दो साल की बात है, चीफ मिनिस्टर तो हो जाने दे। फिर आ जाना। ऐसी क्या जल्दी पड़ी है? अभी और इतने लोग हैं, उनको उठा कर ले जा। जो चीफ मिनिस्टर है, उसको उठा कर ले जा, तो फिर मेरा भी नंबर आ जाए।

लेकिन मौत पूछ कर नहीं आती। इसलिए आती है; नहीं तो आ ही नहीं सकती थी।

समाधि के साथ झंझट है; तुम बुलाओगे तो आएगी। मौत बिना बुलाए आती है। समाधि बुलाए-बुलाए भी मुश्किल से आती है। तुम पुकारोगे तो आएगी। बिना बुलाए मेहमान दो कौड़ी के होते हैं। असली मेहमानों को बुलाना हो तो बड़ा आयोजन करना होता है; निमंत्रण भेजने पड़ते हैं; समझाना-बुझाना होता है; आने के लिए राजी करना होता है। जितना बड़ा मेहमान बुलाओगे उतनी ही प्रतीक्षा और प्रार्थना। समाधि को बुलाते हो? यह मैं जो तुमसे कह रहा हूं सब समाधि को बुलाने का आयोजन है। यह सब तुम्हें मैं सिखा रहा हूं कि कैसे पाती लिखो समाधि को, कैसे पत्र लिखो, कैसे प्रेम-पत्र लिखो परमात्मा को कि वह आ जाए। तुम कहते होः जरूर लिखेंगे, मगर आज नहीं, कल लिखेंगे; अभी थोड़े दिन संसार को और... ।

और मेरी बात तुम गलत भी नहीं कह सकते, क्योंकि तुम्हारा अनुभव भी कहता है कि मेरी बात सही है। तुम्हारी अड़चन यह हैः तुम्हारा अनुभव भी कहता है कि यह बात तो मेरी सही है, जो मैं कह रहा हूं ठीक ही कह रहा हूं कि यहां कुछ है नहीं। तुम्हारा अनुभव भी कहता है। लेकिन तुम्हारी आशा और तुम्हारे अनुभव में मेल नहीं है, कभी नहीं होता। आशा हमेशा अनुभव के विपरीत जाती है। अनुभव कुछ कहता है, आशा कुछ कहती है। आशा अनुभव से उलटी बातें बोलती है। वह कहती है कल तक दुख मिला यह सच है; लेकिन कल भी मिलेगा इसका क्या पक्का है? कल सुख मिल सकता है, थोड़ी तो और कोशिश कर लो। जिस दिन तुम्हें मेरी बात ठीक-ठीक समझ में आ जाए--ठीक-ठीक समझने से मेरा मतलब है जिस दिन तुम दांव लगाने को राजी हो जाओ--उस दिन तुम समझ पाओगेः

फुगां को वस्ल में आराम क्या हो
जुदाई का तसव्वर बंध रहा है

तब तो तुम सुख में भी आराम न पाओगे। आने वाले सुख की तो बात छोड़ो; आ गए सुख में भी तुम आराम न पाओगे।

फुगां को वस्ल में आराम क्या हो
जुदाई का तसव्वर बंध रहा है।

तब तुम जानोगेः यह जो मिलन हुआ है, इसमें भी क्या खाक आराम, क्योंकि विदाई का क्षण करीब आ रहा है। अभी तो जो मिला नहीं है उसकी आशा में जी रहे हो। समझ जब आती है तो जो मिल भी जाता है, उसमें भी आशा नहीं रहती; उसकी भी विदाई का क्षण करीब आए जा रहा है, जल्दी ही विदा होना पड़ेगा। रात आ गई, सुबह होगी। सुबह हो गई, सांझ होगी। जिंदगी बदलती चली जाती है। यहां कोई भी चीज थिर नहीं है।

सब बदल रहा है। इस सारे बदलते हुए वर्तुल के बीच में सिर्फ एक चीज थिर है--समाधि, चैतन्य, साक्षी। उस एक को पा लो, तो तुमने सब पा लिया। उस एक को गंवाया तो सब गंवाया।

पांचवां प्रश्नः आपने हमें बहुत डरा दिया है। चौरासी कोटि योनियों में भटकने के बाद जीवन-चक्र का आरा केवल एक बार ही मनुष्य-रूप में आता है और इस एक बार में मूर्च्छा एवं अज्ञानवश भगवद्स्वरूप होने की संभावना खो जाए और खो जाने की पूरी अवस्था है, तो क्या पुनः चौरासी कोटि योनियों में भटकना पड़ेगा? चौरासी कोटि योनियों का अभिप्राय कृपा करके समझाइए और हमें भय से मुक्त करिए।

भय से मुक्त मैं तुम्हें नहीं कर सकता, तुम ही कर सकते हो। भय वास्तविक है। तुम चाहोगे कि मैं तुमसे कह दूं कि नहीं जी, कोई चिंता की बात नहीं है, चौरासी कोटि योनियां वगैरह नहीं होतीं--ताकि तुम निर्भार हो जाओ और लग जाओ अपनी वासनाओं की दौड़ में फिर।

नहीं, यह मैं तुमसे नहीं कह सकता। ऐसा ही है। सत्य यही है कि यह जो वर्तुल है, यह घूम रहा है। तुमने अगर मनुष्य होने का लाभ न उठाया तो तुम मनुष्य होने का हक खो देते हो। यह सीधा सा गणित है। आखिर मनुष्य होने का हक तुम्हें मिला है--किसी कारण से।

बुद्ध से किसी ने पूछा--एक युवक आया, संन्यस्त होना चाहता था--उसने पूछा कि आपको देख कर, राह पर आपको चलते देख कर, आपकी यह प्रसादपूर्ण कांति, आपका यह अपूर्व अपार्थिव सौंदर्य--मेरे मन में भी बड़ी गहन आकांक्षा उठी है। मगर मैंने कभी इसके पहले संन्यास का सोचा भी नहीं था। और मैं कभी धर्म इत्यादि में उत्सुक भी नहीं रहा। पंडित-पुरोहितों से मैं जरा दूर ही दूर रहा। मेरे पिता और मेरी मां भी मुझे अगर कभी ले जाना चाहते हैं तो मैं बच जाता हूं हजार बहाने करके। पंडितों की बातें सुन कर मुझे सिर्फ सिरदर्द हो आता है और ऊब आती है। मगर आपको देख कर मैं बड़ा आंदोलित हो गया हूं और एक भाव उठता है भीतर कि मैं भी दीक्षित हो जाऊं। मगर यह मेरी समझ में नहीं आता कि अनायास! पीछे कोई सिलसिला नहीं है, कोई शृंखला नहीं है। अनायास! इतनी बड़ी बात होने की मेरे मन में कैसे कामना आ गई!

बुद्ध ने आंख बंद की और उसे कहाः युवक, तुझे पता नहीं, तू पिछले जन्म में हाथी था। जंगल में आग लग गई थी और तू भागा जा रहा था। सारे पशु-पक्षी भागे जा रहे थे। थका-मांदा तू एक वृक्ष के नीचे थोड़ी देर विश्राम करने को खड़ा हो गया। तेरे पैर थक गए थे और एक पैर के नीचे कांटा चुभ रहा था, तो तूने वह पैर ऊपर उठाया। जिस बीच तूने पैर ऊपर उठाया उसी बीच एक खरगोश तेरे उस पैर के नीचे आकर बैठ गया। तूने नीचे देखा। वह घड़ी ऐसी थी कि सारा जंगल आग से लगा था। वह मौका ऐसा था कि तुझे एक बात दिखाई पड़ीः हम सभी अपने जीवन के लिए भागे जा रहे हैंः यह खरगोश भी बेचारा भागा जा रहा है। मैं थक गया, मैं हाथी हूं, तो यह भी थक गया है। और यह किस निश्चिंतता से मेरे पैर के नीचे बैठा है जो मैंने उठाया हुआ है; अब मैं रखूंगा पैर नीचे तो यह मर जाएगा।

वह घड़ी ऐसी थी कि तू अपने जीवन के लिए इतना उत्सुक था, तेरी जीवेष्णा इतनी प्रबल थी कि बच जाऊं, कि तुझे यह लगा कि जैसे मैं बचना चाहता हूं वैसे सभी बचना चाहते हैं। तुझे बड़ा बोध हुआ। और तू पैर वैसा ही उठाए खड़ा रहा और वह खरगोश नीचे निश्चिंत बैठा रहा। जब खरगोश हट गया तब तूने पैर नीचे रखा। लेकिन पैर अकड़ गया था। तू नीचे न रख पाया, गिर पड़ा। खरगोश तो बच कर निकल गया लेकिन तू उस जंगल में लगी आग में जल कर मर गया। लेकिन मरते वक्त तेरे मन में बड़ी तृप्ति थी, एक बड़ी शांति थी, एक अपूर्व उल्लास था, एक आनंद का भाव था कि मैंने खरगोश को नहीं मारा; चलो मैं मर गया, ठीक। उसका फल है कि तू मनुष्य हुआ।

बुद्ध ने कहाः तूने वह जो करुणा दिखाई, उस करुणा के कारण तू मनुष्य हुआ। उसी करुणा के कारण तेरे भीतर यह बीज पड़ गया।

बुद्ध कहते थेः जिसके जीवन में करुणा हो उसके जीवन में प्रज्ञा आती है, बोध आता है। और जिसके जीवन में प्रज्ञा हो उसके जीवन में करुणा आती है। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तो जो व्यक्ति ध्यान को उपलब्ध होकर प्रज्ञा को उपलब्ध होता है उसके जीवन में महाकरुणा आ जाती है। और जिसके जीवन में करुणा की थोड़ी सी भी गंध हो, वह आज नहीं कल समाधि में उत्सुक हो ही जाएगा। उस करुणा के कारण आज राह पर चलते मुझे देख कर तेरे मन में यह भाव उठा। यह अकारण नहीं है, इसके पीछे शृंखला है।

मैं तुमसे कहता हूं कि तुम मनुष्य हो, यह अकारण नहीं है। कुछ किया होगा। कुछ हुआ होगा। अनंत-अनंत यात्रा-पथ पर तुमने अर्जन किया है मनुष्यत्व। यह अर्जित है। लेकिन यह अवसर अवसर ही है। यह तुम्हारी कोई शाश्वत संपदा नहीं है। तुम इसके मालिक नहीं हो गए हो। यह क्षणभंगुर है। यह आज है और कल चला जाएगा। जैसे अर्जित किया है वैसे ही गंवा भी सकते हो।

अगर एक हाथी करुणा के कारण मनुष्य हो सकता है, तो एक मनुष्य कठोरता के कारण हाथी हो सकता है। यह तो सीधा गणित है। अगर एक हाथी करुणा के कारण मनुष्य होने की क्षमता, पात्रता पैदा कर लेता है, तो तुम कठोरता के कारण, हिंसा के कारण, क्रूरता के कारण पशु होने की क्षमता में उतर ही जाओगे। जाओगे कहां और? वर्तुल घूम जाएगा। चाक घूम गया। आरा नीचे जाने लगा। फिर लंबी यात्रा है, क्योंकि आरा तभी वापस लौटेगा जब पूरा चाक घूम जाए।

यह जो चौरासी कोटियों की बात है, यह एकदम अवैज्ञानिक नहीं है। और यह चौरासी करोड़ योनियों की जो बात है, यह केवल कोई पौराणिक आंकड़ा भी नहीं है। ऐसा ही है। अब तो वैज्ञानिक धीरे-धीरे-धीरे खोज करते-करते इस नतीजे पर पहुंच रहे हैं कि हिंदुओं का आंकड़ा शायद सही सिद्ध होगा। इतनी ही कोटियां हैं। अभी तक इतनी पूरी नहीं हो पाई हैं; लेकिन रोज खोज हो रही है। पहले तो ईसाई हंसते थे कि चौरासी करोड़! चौरासी करोड़ योनियां दिखाई कहां पड़ती हैं? चलो होंगी लाख, दो लाख, पचास लाख, करोड़ मान लो; मगर चौरासी करोड़ योनियां दिखाई कहां पड़ती हैं? लेकिन अब संख्या करोड़ों में हो गई है। क्योंकि बहुत योनियां हैं जो अदृश्य हैं। बहुत से छोटे कीटाणु हैं, सूक्ष्म कीटाणु हैं जो अदृश्य हैं। अब उनकी भी गणना हो रही है। धीरे-धीरे करोड़ों पर संख्या पहुंच गई है। और अब तो वैज्ञानिकों को लगता है कि शायद हिंदुओं का आंकड़ा चौरासी करोड़ सही सिद्ध हो जाए। कम तो नहीं होंगी, ज्यादा भला हों। इतनी बात अब साफ हो गई है। जितनी नवीनतम शोधें हुई हैं, उनसे बात साफ हो गई है कि प्राणियों के होने के ढंग ज्यादा तो हो सकते हैं, कम नहीं हो सकते। अभी आंकड़ा पूरा नहीं हुआ है, लेकिन हो जाएगा आंकड़ा पूरा।

यह पूरा वर्तुल है। ये चौरासी करोड़ आरे हैं और इनका पूरा चाक है। यह चाक पूरा घूमता है। एक बार तुम मनुष्य होने के आरे पर ऊपर आए, शिखर बने... मनुष्य शिखर है। अगर वहां से छलांग लगा ली तो लगा ली। क्योंकि वहां थोड़ा बोध है--बहुत थोड़ा! मनुष्य होने में ही इतना थोड़ा बोध है कि यहां से भी चूक जाते हो। तो फिर और हाथी, घोड़े, कुत्ते होने में तो फिर बोध और खो जाएगा। फिर वहां से तो चूकना निश्चित ही है।

तो मैं तुम्हें भय से मुक्त नहीं कर सकता--तुम्हीं भय से मुक्त कर सकते हो। मत चूको, भय खत्म हुआ। भय का उपयोग कर लो। इसको भय क्यों समझो? इसको सत्य समझो।

ऐसा ही समझो कि तुम जा रहे हो एक रास्ते पर, मैं तुमसे कहता हूं बाएं तरफ एक गड्ढा है। तुम कहते हो, मार डाला। अब हम क्या करें? हमें भय से मुक्त करिए; कहिए कि गड्ढा नहीं है।

मैं तो कह दूं कि गड्ढा नहीं है, लेकिन इससे गड्ढा सुनेगा नहीं और गड्ढा मिटेगा नहीं। मेरे कहने से खतरा बढ़ जाएगा। मैं कह दूं कि गड्ढा नहीं है, जाओ बेटा, मजे से जाओ, गीत गाते हुए जाओ, फिल्मी धुन गाना; कोई गड्ढा वगैरह नहीं है; यह तो तुम्हें डराने के लिए कहा था--अब तुम जरूर गिरोगे।

गड्ढा है। दोनों तरफ है। रास्ता संकरा है। रस्सी की तरह पतला है। जैसे रस्सी पर चलते नट को देखा है न--अब गिरा तब गिरा--ऐसा ही जीवन है। खतरा यहां है ही। इसको भय मत समझो। यह सच्चाई है। इस सच्चाई का उपयोग कर लो। इस सच्चाई के ऊपर उठ जाओ।

इस मनुष्य-जीवन के अवसर को खोओ मत। अजहूं चेत गंवार! अब भी जागो! यह अवसर बड़ा बहुमूल्य है। तुम जैसे गंवा रहे हो, इसलिए बेचारे पलटूदास को कहना पड़ता है गंवार--जैसे तुम गंवा रहे हो। जो गंवाए सो गंवार। तुम किस चीज में लगा रहे हो यह अवसर को? कोई स्त्री के पीछे दौड़ रहा है, कोई पुरुष के पीछे दौड़ रहा है, कोई धन के पीछे, कोई पद के पीछे। लेकिन यही तो तुम जन्मों-जन्मों में, कोटियों-कोटियों में, अलग-अलग योनियों में करते रहे हो। वहां भी यही सब चलता है।

तुमने देखी बंदरों की एक जमात! उनमें एक राष्ट्रपति होता है--सबसे ज्यादा उपद्रवी, झंझटी, झगड़ैल, मारने-पीटने को तैयार, डरवाने में कुशल। वह अगुआ होता है। बाकी सब उससे डरते हैं। फिर अगर तुम बंदरों को गौर से देखो, जिन्होंने अध्ययन किया है बंदरों को, तो वे कहते हैं बंदरों में पूरी की पूरी राजनीति होती है, पूरा कैबिनेट पाओगे तुम, पूरा मंत्रिमंडल। वह जो एक सबसे ज्यादा दुष्ट, उसके आस-पास दस-पांच का एक गिरोह, जो उसके सलाहकार और, और फिर उसके बाद और, और फिर उसके बाद और। और तुम उनमें बराबर वर्ण भी पाओगे। कुछ हैं जो काम शूद्र के ही करते हैं। कुछ हैं जो काम सिर्फ ब्राह्मण का ही करते हैं, वे सिर्फ सलाह-मश्वरा देते हैं; कोई झगड़ा-झांसा आ जाए, तो मार्ग सुझाते हैं। कुछ हैं जो क्षत्रिय का काम करते हैं; झगड़ा-झांसा हो तो लड़ने को तैयार हैं--जवान, मजबूत। और स्त्री-बच्चे हैं, उनकी सब सुरक्षा करते हैं। जब बंदरों का गिरोह चलता है तो स्त्री-बच्चे बीच में चलते हैं; अगुआ आगे चलता है। स्त्री-बच्चों को घेर कर क्षत्रिय चलते हैं।

ठीक बंदरों में तुम पूरे मनुष्य की राजनीति पाओगे। तुम नई दिल्ली के सब रंग-ढंग बंदरों में पा सकते हो। तो पार्लियामेंट में अगर थोड़ा बंदरपन हो जाता है, तो बहुत चिंता मत किया करें, वह होने ही वाला है। अगर माराधापी हो जाती है, खींचतान हो जाती है, एक-दूसरे को धक्कम-धुक्की हो जाती है, वह होने ही वाली है। राजनीतिज्ञ से इससे ज्यादा की आशा की भी नहीं जा सकती। राजनीति है ही वही जंगलीपन, वही जानवर की वृत्ति--कैसे दूसरे का मालिक हो जाऊं!

जब तक तुम दूसरे के मालिक होना चाहते हो तब तक तुम पशु-वृत्ति से जी रहे हो। जिस दिन तुम अपने मालिक होना चाहते हो, उस दिन तुम सच में मनुष्य हुए। स्वयं की मालकियत की खोज धर्म; दूसरे की मालकियत की खोज राजनीति है।

फिर धन इकट्ठा कर रहे हो, तो धन भी इकट्ठा करके क्या होगा? सब पड़ा रह जाएगा। सब ठाठ पड़ा रह जाएगा, जब बांध चलेगा बनजारा। तो तुम अवसर खो रहे हो। परमात्मा की संपत्ति सामने पड़ी है, उसकी गांठ नहीं बांधते, उसकी गठरी नहीं बांधते, और कूड़ा-कर्कट बांध रहे हो! ... तो अगर पलटू गंवार कहते हैं तो नाराज मत होना, सच्चाई ही कहते हैं। और तुम खड़े-खड़े ही देख रहे हो। असली चीज के संबंध में तो तुम दूर खड़े देखते हो, नकली चीज में एकदम दौड़ पड़ते हो। व्यर्थ को तो इकट्ठा करते हो, सार्थक की चिंता ही नहीं है। और जिंदगी बीती जाती है। और हाथ से समय खोया जाता है, एक-एक पल बहा जाता है। जल्दी ही मौत द्वार पर खड़ी हो जाएगी।

इसके पहले कि मौत द्वार पर खड़ी हो जाए, जो समझदार है वह समाधि को द्वार पर खड़ा कर लेगा। मौत के पहले समाधि, यह लक्ष्य होगा समझदार का। और जिसको समाधि पहले मिल गई मौत के, उसकी मौत होती ही नहीं; वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है। अमृतस्य पुत्रः--वेद कहते हैं--वह अमृत का पुत्र हो जाता है।

तो मैं तुम्हें भय से मुक्त कैसे करूं? भय से मुक्त होने का एक ही उपाय है कि तू समाधि को उपलब्ध हो जाओ। बस ध्यान में ही भय मरेगा। क्योंकि समाधि में ही मृत्यु मरेगी। जब तक मृत्यु है तब तक भय रहेगा। तो मृत्यु के पार हो जाओ, अमृत का रस ले लो। अमृत बनो।

अमृत बन सकते हो। वह तुम्हारी संभावना है। उसे पुकारो! उसे आह्वान करो! उसे जगाओ! चेतो!

तुम मनुष्य हो, परमात्मा हो सकते हो। और अगर परमात्मा नहीं हुए तो पशु होने के सिवाय कोई उपाय नहीं है। मनुष्य संक्रमण है। मनुष्य पुल है। या तो इस पार जाओ; या उस पार जाओ मनुष्य होने में टिक नहीं सकते।

अकबर ने एक नगर बसाया थाः फतेहपुर सीकरी। उस नगर को जोड़ने वाला जो पुल है, उस पुल पर वह एक वचन लिखना चाहता था। बड़ी खोज-बीन की उसके पंडितों ने कि कोई ऐसा वचन मिल जाए। बहुत वचन खोजे गए, फिर जीसस का एक वचन उसे पसंद आया। मुसलमान बहुत प्रसन्न तो नहीं थे, क्योंकि वे चाहते थे, मोहम्मद का वचन हो। हिंदू पंडित भी उसके दरबार में थे, वे भी बहुत प्रसन्न नहीं थे, क्योंकि वे चाहते थे कोई उपनिषद और वेद से मिले। मगर वह वचन सच में बहुमूल्य था। वह वचन है कि यह जीवन एक पुल की भांति है, इससे गुजर जाना, इस पर घर मत बनाना।

पुल पर कोई घर थोड़े ही बनाता है! मनुष्य तो केवल संक्रमण है, सेतु; एक तरफ पशु है, दूसरी तरफ परमात्मा है। मनुष्य तो बीच की सीढ़ी है। इससे गुजर जाना, इस पर घर मत बनाना। क्योंकि इस पर अगर रुके तो नीचे गिरोगे। या तो नीचे गिरो या ऊपर जाओ। यहां रुकना हो नहीं सकता।

इतना ही मतलब है इस बात का कि चौरासी कोटि योनियों में भटकना पड़ेगा। ठीक ही किया है संतों ने कि तुम्हें साफ-साफ कह दिया है। गड्ढे हैं और गिर कर लौटना आसान नहीं होता। क्योंकि जब आसान हो सकता था तब आसान नहीं हुआ; बोध था, तब आसान नहीं हुआ--गड्ढे में गिर गए, फिर तो अबोध हो जाओगे। फिर तो बहुत मुश्किल हो जाएगा। फिर तो प्रकृति की प्रक्रिया से ही घूमते-घूमते लंबी यात्रा के बाद शायद दुबारा कभी आओ अनंत काल में। अभी बागडोर हाथ में ली जा सकती थी। अभी न ली... ।

पशुओं के हाथ में अपनी बागडोर नहीं है। मनुष्य के हाथ में अपनी बागडोर है।

भय से मुक्त होने का एक ही उपाय है कि तुम इस भय का उपयोग कर लो; इसका सृजनात्मक उपयोग कर लो। समाधि को बुला लो--समाधान हो जाएगा। सब समस्याएं मिट जाएंगी। भक्ति हो, प्रार्थना हो कि ध्यान हो, किसी भी मार्ग से उस चित्त-दशा को खोज लोः गिरह हमारा सुन्न में, अनहद में बिसराम!

आज इतना ही।

पांचवां प्रवचन

जीवन--एक वसंत की वेला

क्या सोवै तू बावरी, चाला जात बसंत।।
चाला जात बसंत, कंत ना घर में आये।
धृग जीवन है तोर, कंत बिन दिवस गंवाये।।
गर्व गुमानी नारि फिरै जोवन की माती।
खसम रहा है रूठि, नहीं तू पठवै पाती।।
लगै न तेरो चित्त, कंत को नाहिं मनावै।।
कापर करै सिंगार, फूल की सेज बिछावै।।
पलटू ऋतु भरि खेलि ले, फिर पछतावै अंत।
क्या सोवै तू बावरी, चाला जात बसंत।। 7।।

ज्यौं-ज्यौं सूखै ताल है, त्यौं-त्यौं मीन मलीन।।
त्यौं-त्यौं मीन मलीन, जेठ में सूख्यो पानी।
तीनों पन गए बीति, भजन का मरम न जानी।
कंवल गए कुम्हिलाय, हंस ने किया पयाना।
मीन लिया कोऊ मारि, ठांय ढेला चिहराना।
ऐसी मानुष-देह वृथा में जात अनारी।
भूला कौल-करार आपसे काम बिगारी।।
पलटू बरस औ मास दिन, पहर घड़ी पल छीन।
ज्यौं-ज्यौं सूखै ताल है, त्यौं-त्यौं मीन मलीन।। 8।।

पिय को खोजन मैं चली, आपुइ गई हिराय।।
आपुइ गई हिराय, कवन अब कहै संदेसा।
जेकर पिय में ध्यान, भई वह पिय के भेषा।।
आगि-माहि जो परै, सोउ अगनी ह्वै जावै।
भृंगी कीट को भेंट, आपु सम लैइ बनावै।।
सरिता बहिकै गई, सिंध में रही समाई।
सिव सक्ती के मिले, नहीं फिर सक्ती आई।।
पलटू दिवाल कहकहा, मत कोउ झांकन जाय।
पिय को खोजन मैं चली, आपुइ गई हिराय।। 9।।

सायते फसल गुल है जवानी
क्यों न जिस्मे-मय हो, मयवशां हो
आकबत के अजाबों का रोना

इंबो मुबारक महीनों में क्यों हो?

भक्ति प्रेम-विरोधी नहीं है; भक्ति है प्रेम का ऊर्ध्वगमन। भक्ति राग-विरोधी नहीं है; भक्ति है राग का रूपांतरण। भक्ति सौंदर्य-विरोधी नहीं है; भक्ति है परम सौंदर्य की खोज। भक्ति प्रिय से तुम्हें तोड़ती नहीं--परमप्रिय से जोड़ती है। इस बात को पहले ध्यान में ले लें। यह भक्ति की अपूर्व दशा है।

भक्ती कहती नहीं, छोड़ो प्रेम। भक्ति कहती है, प्रेम को बढ़ाओ। छोटे प्रेम को जाने दो, बड़े प्रेम को बुलाओ।

भक्ति वियोग नहीं सिखाती, योग नहीं सिखाती, वैराग्य नहीं, तप-तपश्चर्या नहीं। भक्ति सिखाती है : कैसे प्रिय के रंग में रंग जाओ।

संसार के विरोध का कारण प्रेम नहीं है। संसार के विरोध का कारण है कि संसार प्रेम के लिए उपयुक्त पात्र नहीं है। विरागी कहता है : छोड़ो राग को, क्योंकि राग बुरा है। भक्त कहता है : जहां तुमने राग लगाया है, वह विषय-वस्तु व्यर्थ है। राग को मत छोड़ो; विषय-वस्तु को बदल लो। जहां तुमने क्षुद्र को विराजा है, बिठाया है, क्षुद्र को सिंहासन पर विराजमान किया, वहां प्रभु को बिठाओ। जिस हृदय में तुमने धन, मद, पद, इन सबको बिठा रखा है, वहां प्रभु का गुण गाओ। जितना तुम संसार के लिए श्रम कर रहे हो उतने ही श्रम से परमात्मा मिल सकता है।

कुछ नया नहीं करना है साधना में; जो तुम जानते हो, उसकी ही दिशा बदलनी है। यही पैर पहुंचा देंगे। दिशा बदलनी है। यही आंखें दिखा देंगी। दिशा बदलनी है। यही तुम परमात्मा में प्रविष्ट हो जाओगे, परमात्मा के आलिंगन को उपलब्ध हो जाओगे। जरा भी तुम में कमी नहीं है। लेकिन तुम्हारी दिशा गलत है। तुम गलत नहीं हो, तुम्हारी दिशा गलत है।

यह भक्ति का आधारभूत सिद्धांत है : तुम गलत नहीं हो, तुम्हारी दिशा मात्र गलत है। तुम्हें नहीं बदलना है, सिर्फ दिशा को बदल लेना है। तुम चले हो जिस तरफ, जो तुम पाने चले हो, वह तो ठीक ही है; लेकिन जिस तरफ तुम चले हो वहां वह पाया न जा सकेगा।

जैसे कोई आदमी चला, नदी जाना चाहता था और बाजार की तरफ चला। चल रहा है, यह भी ठीक है; नदी पहुंचना चाहता है, यह भी ठीक है। प्यासा है तो नदी पहुंचना चाहता है। लेकिन चल पड़ा है बाजार की तरफ। पैर भी ठीक है, चलना भी ठीक है। प्यास भी ठीक है, पानी की तलाश भी ठीक है। लेकिन जरा राह गलत चुन ली, दिशा गलत चुन ली--नदी की तरफ चले।

तो भक्ति तुम्हारी सारी सांसारिकता को परमात्मा में नियोजित कर देती है। यह भक्ति की बड़ी अपूर्व कला है। ज्ञानी तोड़ता है। भक्त तोड़ता ही नहीं। ज्ञानी काटता है। भक्त काटता ही नहीं। ज्ञानी के लिए बड़ा संघर्ष है। भक्त के लिए सिर्फ समर्पण है। भक्त तो कहता है, यहां भी जो सौंदर्य तुम्हें दिखाई पड़ रहा है, संसार में भी, वह भी है परमात्मा का। तुम जिस दिन पहचानोगे उस दिन जानोगे : यहां भी जो वसंत आता है वह भी उसकी प्रार्थना का क्षण है। जब तुम्हारे भीतर, तुम्हारे खून में जीवन-ऊर्जा तूफान उठाती है, यह भी उसी का तूफान है। सब उसका है। उसी की तरफ बहने लगे, स्रोत की तरफ जाने लगे, तो ठीक हो जाएगा।

आज के पलटू के पद बहुत सोचने-समझने जैसे हैं। भक्ति की आधार-शिलाएं उनमें हैं।

क्या सोवै तू बावरी, चाला जाता बसंत।

यह जीवन तो वसंत की बेला है। यह जीवन तो वसंत की ऋतु है। देखते हो, जीवन की कोई निंदा नहीं है। यह जीवन तो वसंत है। यह तो अहोभाग्य है। और तुम सोए-सोए बिताए दे रहे हो! वसंत आ गया, फूल खिल गए, पक्षी गीत गा रहे हैं, मोर नाच रहे हैं। सारा जगत उल्लास से भरा है। और तुम सोए-सोए बिता दोगे? तुम मूर्च्छित ही बने रहोगे?

"क्या सोवै तू बावरी. . ."।

तुम कैसे पागल हो! जागने की घड़ी आ गई, वसंत द्वार थपथपा रहा है। जागने का क्षण आ गया, सब तरफ राग-रंग है। सब तरफ प्रभु की वर्षा है। सूरज निकल आया, किरणों का जाल फैल गया। तुम कैसे पागल हो कि अभी भी सोए हो! फिर कब जागोगे?

"क्या सोवै तू बावरी, चाला जात बसंत।।

चाला जात बसंत, कंत ना घर में आये।"

प्यारे को तूने खोजा ही नहीं। प्यारे को घर भी न बुलाया! प्यारे को पाती भी न लिखी, निमंत्रण भी नहीं भेजा और ये वसंत के जाने के क्षण करीब आने लगे।

यह जीवन अभी है, अभी खो जाएगा! यह जीवन सदा तो नहीं रहेगा। आता है, चला जाता है--क्षणभंगुर है। यह जो क्षणभंगुर जीवन है, इसे प्रभु की पुकार बना लो। अगर यह प्रभु की पुकार बन जाए और प्रभु की तरफ यात्रा शुरू हो जाए तो तुम ऐसे वसंत में पहुंच जाओगे जो आता है, फिर जाता नहीं। यह वसंत तो आता है जाता है। इस जीवन का वसंत तो बनता है मिटता है। लेकिन एक और भी वसंत है--प्रभु में डूब जाने का। वहां फिर फूल सदा ही खिलते हैं। वहां सनातन के फूल खिलते हैं। एस धम्मो सनंतनो! जिसको बुद्ध कहते हैं, शाश्वत, सनातन, जो कभी नहीं मुर्झाता--उसके फूल खिलते हैं--उस धर्म के फूल खिलते हैं।

यहां तो निश्चित ही समय के जगत में, समय की व्यवस्था में, जो भी पैदा होता है मर जाता है। वसंत भी आया और गया। आया भी नहीं कि जाने की तैयारी शुरू हो जाती है। सुबह हुई और सांझ होने लगी। जन्म हुआ और मृत्यु होने लगी। मिले नहीं कि बिछुड़ने की घड़ी आने लगी। यह वसंत तो थोड़ी देर को है। यह द्वार जरा सी देर को खुलता है। लेकिन इस द्वार का जो सदुपयोग कर ले तो वह परम वसंत को उपलब्ध हो जाए।

"क्या सोवै तू बावरी, चाला जात बसंत।।

चाला जात बसंत, कंत ना घर में आए।"

अभी प्रेमी के बिना ही तुझे रहना पड़ रहा है। स्वामी से मिलन ही न हुआ। मालिक से कोई संबंध ही न जुड़ा। साहिब को कब पुकारोगे? उसी परम प्यारे के मिल जाने पर तृप्ति है।

यहां भी तुम जो खोज रहे हो, खोज तो उसी को रहे हो। पत्नी में खोजते हो, पति में खोजते हो--कभी सोचा है किसे खोजते हो? यह किसकी खोज चल रही है--पति में, पत्नी में; बेटे में, बेटी में, मित्रों में, संबंधों में, परिजनों में, किसकी खोज चल रही है? और तुमने यह भी नहीं सोचा, कभी इसकी जांच-परख भी नहीं की कि हर बार खोज व्यर्थ हो जाती है। हर बार विषाद हाथ लगता है, विफलता हाथ लगती है। पत्नी में खोजो, पति में खोजो--तुम जिसे खोज रहे हो वह इतना बड़ा है कि कोई पत्नी उसे तुम्हें न दे पाएगी। और तब तुम अंततः नाराज होओगे गरीब पत्नी पर। उसका कोई कसूर भी न था। तुम्हारी मांग बड़ी थी। घड़े में सागर खोजने चले थे। घड़े का क्या कसूर? पति में परमात्मा को खोजने चले थे। नहीं मिला पति में परमात्मा, तो क्या कसूर पति का? फिर नाराजगी पति पर आती है।

तुमने देखा, पति-पत्नी एक-दूसरे पर बड़े क्रुद्ध हो जाते हैं। क्योंकि उनको लगता है धोखा दिया गया है। उनको लगता है : जो प्रलोभन हमें दिया गया था, जो देने का आश्वासन दिया गया था, वह पूरा नहीं किया गया। उन्हें शिकायत होती है। चाहे शिकायत साफ-साफ न हो, लेकिन पति-पत्नी का मन एक-दूसरे के प्रति तिक्तता से भरता जाता है, कड़वाहट से भर जाता है। कारण?

कारण समझना। कारण बड़ा धार्मिक है। कारण यही है कि पत्नी ने जिसे प्रेम किया था, सोचा था उसमें परमात्मा मिलेगा। मिला एक साधारण आदमी--क्षुद्र वासनाओं से भरा, क्षुद्र सीमाओं से घिरा। सोचा था असीम से दोस्ती होगी। सोचा था मंदिर मिल जाएगा। मिला घर, मंदिर नहीं मिला। घरवाली बन गई, घरवाले मिल

गए--लेकिन मंदिर नहीं मिला। और आकांक्षा मन की थी, प्यास तो मन की एक ही है--मंदिर के लिए। शाश्वत को चाहा था, यह क्षणभंगुर मिला। यह अभी है अभी चला।

तुमने जिस पत्नी को प्रेम किया था, जिस प्रेयसी को प्रेम किया था, सोचा था इसमें सौंदर्य, परम सौंदर्य मिल जाएगा, तुम तृप्त हो जाओगे, तुम्हारा दिल भर जाएगा। लेकिन धीरे-धीरे यह सौंदर्य चला और दिल भरा नहीं। दिल भरने की तो बात दूर रही, धीरे-धीरे यह सौंदर्य अब सौंदर्य भी दिखाई नहीं पड़ता। जिसको फूल समझ कर करीब आए थे, उसमें बहुत कांटे मिले--मन तिक्त होने लगा, मन कड़वाहट से भर गया, मन विरोध से भर गया। तुम सोचते हो : पत्नी धोखा दे गई; यह सुंदर थी नहीं, इसने दिखावा किया। पत्नी सोचती है : तुम धोखा दे गए; तुम ऐसे विराट थे नहीं जैसा तुमने दिखावा किया था।

किसी ने दिखावा नहीं किया था। तुम्हारी आकांक्षा परमात्मा को खोजने की है।

मैंने सुना है, एक मुसलमान सम्राट कभी-कभी एक सूफी फकीर को बुलाया करता था। महल में बुलाता था। उसका सत्संग करता था। एक दिन फकीर ने कहा कि यह नियम के प्रतिकूल है। मैं आ जाता हूं दया करके। लेकिन कुरान कहती है कि फकीर कभी सम्राट के घर न जाए। तुम बुलाते हो तो मैं इंकार नहीं कर पाता। लेकिन कुरान कहती है कि जब जाए तो सम्राट ही फकीर के घर जाए। तो यह आखिरी बार मेरा आना हुआ। अब तुम इस योग्य भी हो गए हो कि मेरी बात समझ सकोगे। सत्संग ने तुम्हें इस योग्य बना दिया। पहले दिन ही मैं तुमसे मना करता तो शायद तुम्हारी अक्ल में भी न आता, तुम समझते अपमान हो गया। लेकिन अब तुम समझ सकते हो। तुम्हें चाहिए तो तुम आओ, कुएं के पास आओ। तुम प्यासे हो। कुएं को बुलाते हो, यह बात तो जरा ठीक नहीं। अब जब आना हो तो तुम आ जाना।

राग तो लग गया था सम्राट को इस फकीर का। इसके प्रेम की कुछ बूंदें उसे मिली थीं। इसके जीवन में कुछ उसने झांका भी था। कुछ लगता था कि जो नहीं साधारणतः होता, वह हुआ है। तो वह एक दिन पहुंचा फकीर के झोंपड़े पर। फकीर खेत में काम करने गया था। उसकी पत्नी ने कहा, आप बैठ जाएं। वह खेत की मेंड़ पर पत्नी अपने पति की प्रतीक्षा कर रही है, भोजन लेकर आई है। वह कहती है, आप यहीं बैठ जाएं मेंड़ पर, मैं पति को बुला लाती हूं, वे दूर वहां काम कर रहे हैं।

सम्राट ने कहा कि मैं टहलूंगा, तू जाकर बुला ला। पत्नी को लगा कि शायद मेंड़ पर कुछ बिछा नहीं है, इसलिए सम्राट बैठता नहीं। तो वह भागी गई, अपने झोंपड़े में से एक उठा लाई दरी। गरीब की दरी! थेबड़ों लगी। जगह-जगह फटी, जरा-जीर्ण। मगर उसने बड़े प्रेम से बिछा दी मेंड़ पर और कहा कि आप बैठ जाएं। सम्राट ने दरी देखी और टहलता ही रहा। उसने कहा, मैं टहलूंगा ही, तू पति को बुला ला। उसने सोचा कि शायद मेंड़ पर बैठना सम्राट के लिए योग्य नहीं, तो उसने कहा, आप ऐसा करें, झोंपड़े में भीतर चलें, तो हमारी खाट पर बैठ जाएं। तो वह भीतर ले गई, लेकिन खाट भी सम्राट को जंची नहीं। खाट ही थी गरीब की। और झोंपड़ा भी. . .।

वह बाहर फिर आ गया। उसने कहा, मैं टहलूंगा, तू फिकर मत कर। तू जाकर फकीर को बुला ला।

पत्नी गई। राह में उसने फकीर से--अपने पति से--कहा कि सम्राट कुछ अजीब सा है! मैंने बहुत कहा, मेंड़ पर बैठ जाओ, नहीं बैठा। दरी बिछाई। नहीं बैठा। भीतर ले गई, अपनी खाट पर बैठने को कहा, वहां नहीं बैठा। यह बात क्या है, यह बैठता क्यों नहीं?

फकीर हंसने लगा। उसने कहा, पागल! सम्राट बैठ कैसे सकता है? हमारी दरी भी उसके योग्य नहीं, खेत की मेंड़ भी उसके योग्य नहीं, हमारी खाट भी उसके योग्य नहीं।

और फिर फकीर हंसने लगा। उसकी पत्नी ने कहा, आप हंसते क्यों हैं? उसने कहा, यही तो सारे मनुष्य के जीवन की कथा है कि हमारा मन कहीं बैठता नहीं, क्योंकि मन है सम्राट। कभी तुम दुकान पर बिठालना चाहते

हो, नहीं बैठता है। कभी तुम किसी की देह में बिठाना चाहते हो, नहीं बैठता है। यह तो बैठेगा ही नहीं जब तक परमात्मा न मिले। यह सम्राट है। यह परमात्मा मिले तो ही बैठेगा और परमात्मा मिल जाता है तो ऐसा बैठ जाता है, हिलता ही नहीं, डुलता ही नहीं। सब कंपन खो जाते हैं।

कह रहे हैं पलटू : "चाला जात बसंत, कंत ना घर में आये।"

अभी वह मालिक न तो तुमने बुलाया, न घर में आया, और ये वसंत के जाने के दिन भी करीब आ गए। यह पागलपन है। यह पागलपन छोड़ो।

"धृग जीवन है तोर, कंत बिन दिवस गंवाये।"

और जीवन में अगर कोई भी एक पाप हो सकता है तो यही है कि उस परम प्यारे के बिना कोई जीवन बिताए।

"धृग है जीवन तोर. . ."।

तेरा जीवन व्यर्थ है, व्यथा, किसी मूल्य का नहीं, निरर्थक। अभागा है तू। क्योंकि और कोई दुर्भाग्य ही नहीं है जगत में--बिना परमात्मा के जीवन बिताना। यह ऐसा ही है जैसे बिना रोशनी का दीया, ऐसा ही। यह ऐसा ही है जैसे कि गरमी में सूख गई सरिता; रेत ही रेत का पाट है, जल की जरा भी धार नहीं है। यह ऐसा ही है जैसे एक मरुस्थल, जहां न कभी वृक्ष उगते, न फूल लगते, न पक्षी गीत गाते; जहां वसंत कभी आता ही नहीं।

परमात्मा के बिना जीवन रस-विहीन है। रसो वै सः! परमात्मा रस-रूप है। उसे बुलाओगे तो रस-लिप्त हो जाओगे। उसके बिना सूखे-सूखे ही रहोगे। उसके बिना आंखें गीली न होंगी, न हृदय गीला होगा। उसके बिना गीत नहीं उठेगा। उसके बिना समाधि नहीं, उसके बिना समाधान नहीं है।

और ख्याल रखना, यह जो परमात्मा का प्रेम है, यह तुम्हारे सांसारिक प्रेम के विपरीत नहीं है; इससे ऊपर जरूर है, इसके विपरीत नहीं है। यह संसार के प्रेम में भी तुम इसलिए पड़ गए हो कि परमात्मा की तुम्हें तलाश है। टटोल रहे हो। जैसे एक अंधा आदमी अंधेरे कमरे से बाहर निकलना चाहता है तो टटोलता है; हाथ से टटोलता है या लकड़ी से टटोलता है। कभी दीवाल टटोलता है, कभी खिड़की टटोलता है, कभी कुरसी टटोलता है--रास्ता खोज रहा है, दरवाजा खोज रहा है। दरवाजा खोजना चाहता है, इसीलिए टटोलता है।

तुम्हारा जो सांसारिक प्रेम है वह परमात्मा के लिए ही तुम्हारा टटोलना है। कभी स्त्री को टटोलते, कभी पुरुष को टटोलते, कभी पति को, कभी पत्नी को, कभी बेटे को, कभी मित्र को, कभी यहां-वहां--लेकिन तुम टटोल परमात्मा के लिए रहे हो। कभी तुम्हारी टटोलती हुई लकड़ी दीवाल से लगती है तो तुम थोड़ी देर बाद हट जाते हो, क्योंकि यहां तो दीवाल है। कभी कुरसी से टकराती है तो तुम हट जाते हो, क्योंकि यहां तो कुरसी है। ऐसे ही धीरे-धीरे सारे संसार में टटोलने के बाद दरवाजा मिलता है।

यह संसार परमात्मा की खोज का ही अंग है।

जमजमा साज का पायल के छनाके की तरह
बेहतर अजसोरसे ताकूसो अजां है साकी।

भक्तों ने कहा है कि अजान की आवाज और शंख की आवाज, इससे भी ज्यादा प्यारी आवाज है संगीत की, प्रेम की, रस की।

जमजमा साज का पायल के छनाके की तरह। वह जो पायल की झनकार है, उसमें जो संगीत है, वह कहीं ज्यादा मूल्यवान है अजान, रूखी-सूखी अजान से। वह जो पायल की छन-छन है, वह कहीं ज्यादा रस-सिक्त है, ज्यादा जीवंत है मंदिर के शंख की सूखी-साखी आवाज के मुकाबले। क्यों? क्योंकि मंदिर के शंख की आवाज जीवन-रहित है। और अजान भी जीवन-रहित है।

तुम इस जीवन में जो खोज रहे हो, तुमने अपने बेटे को जिस नजर से देखा है, या अपनी बेटी को, या अपने भाई को, या अपनी प्रेयसी को--तुमने जिस प्रेम की नजर से अपनी प्रेयसी को देखा है वही नजर काम आएगी। उसमें ही असली बात छिपी है।

ऐसा समझो कि एक मंदिर में तुम खड़े हो और आग लग जाए और तुम्हारा बेटा अभी मंदिर में है तो तुम मूर्ति बचाओगे कृष्ण की कि अपने बेटे को बचाओगे? मूर्ति-वूर्ति को तुम छोड़ जाओगे, भाग जाओगे, बेटे को लेकर बाहर निकल जाओगे। पता चल जाएगा वहां कि असलियत कहां थी। मूर्ति में इतना कोई लगाव थोड़े ही था। मूर्ति तो मूर्ति थी। बेटा असली था। वहां प्रेम है। वहां असली संगीत है प्रेम का। भक्त कहते हैं, इसी प्रेम के संगीत को ऊपर उठाना है। इसी को ऊर्ध्वगामी करना है। इसी को परमात्मा की तरफ लगाना है। शंखों की आवाज से काम नहीं होगा। हृदय की आवाज! अजान से काम नहीं होगा--यह जो प्रेम का तुम्हारे भीतर छोटा सा झरना है, इसी को बहाना है। यही बह-बह कर किसी दिन सागर तक पहुंचेगा।

"धृग जीवन है तोर, कंत बिन दिवस गंवाये।

गर्व गुमानी नारि फिरै, जोवन की माती।"

और फिर भी तुम कैसे पागल हो, बड़े अहंकार में अकड़े फिर रहे हो!

"गर्व गुमानी नारि फिरै, जोवन की माती।"

और अपने यौवन पर बड़े इतरा रहे हो! अपने बल पर, अपनी शक्ति पर, अपने सौंदर्य पर, अपने रूप पर, अपने रंग पर--बड़े अकड़ रहे हो! और तुम्हें यह पता नहीं है : चाला जात बसंत! यह तो चला, यह तो जा ही रहा है। यह तो तुम्हें पता ही नहीं चलेगा, सोए-सोए निकल जाएगा। यह कब हाथ से निकल जाएगा, तुम्हें पता नहीं चलेगा। इस पर तुम इतने गर्वाओ मत। इस क्षणभंगुर पर इतने मत अकड़ो।

"गर्व गुमानी नारि फिरै, जोवन की माती।"

भक्तों के लिए तो सभी स्त्रियां हैं; पुरुष तो एक परमात्मा है। इसलिए नारी। गर्व गुमानी नारि फिरै, जोवन की माती। तुम अपनी अकड़ में ही--यौवन की, सौंदर्य की अकड़, रूप की अकड़--इसमें ही मदमाते फिर रहे हो। यही शराब पी है, यही नशा तुम पर चढ़ा है।

"खसम रहा है रूठि, नहीं तू पठवै पाती।"

और इस अकड़ की वजह से तुम्हें एक बात दिखाई ही नहीं पड़ रही है कि तुम्हारा असली स्वामी रूठा बैठा है और उसे तुम अभी तक मना भी नहीं पाए। तुम्हारा यह गर्व बाधा बन रहा है। गर्व के कारण तुम परमात्मा को नहीं राजी कर पा रहे हो, मना पा रहे हो। गर्व के कारण तुम परमात्मा को नहीं बुला पा रहे हो। और बुलाओ, तो ही वह आए।

"खसम रहा है रूठि, नहीं तू पठवै पाती।"

थोड़ा सोचो तो, तुम परमात्मा को न लुभा पाए तो तुमने जो भी किया बेकार गया। उस प्यारे को लुभा लिया, उसकी आंख तुम्हारी आंख में पड़ गई, उसका हाथ तुम्हारे हाथ में आ गया, तो तुम सफल हुए। एक ही सफलता है, बस एकमात्र सफलता है जीवन में और एक ही धन्यता है--जिस दिन तुम सफल हो जाते हो परमात्मा को अपने भीतर बुलाने में। उसके पहले सब असफलता ही असफलता है। तुम लाख अपने को समझा लो कि धन मेरे पास है, देखो सफल हो गया; कि पद मेरे पास है, कि सफल हो गया। ये धोखे हैं। ये सब धोखे हैं मौत तोड़ देगी। जब वसंत जाएगा तब तुम अचानक पाओगे : सूख गई देह, झर गए हरे पत्ते, फूल अब नहीं खिलते, पक्षी अब डेरा भी नहीं डालते; अब न कोई गीत है, न कोई गान है। सब गया। अब बस मौत से ही पहचान है। इसके पहले कि मौत तुम में घर बना ले, तुम अमृत से संबंध जोड़ लो।

"गर्व गुमानी नारि फिरै, जोवन की माती।

खसम रहा है रूठि, नहीं तू पठवै पाती।।

लगै न तेरो चित्त, कंत को नाहिं मनावै।"

और तेरा चित्त भी नहीं लग रहा है, यह भी सच है। चित्त लगे भी कैसे, लगे भी तो कैसे लगे? सम्राट बैठेगा तो उसके योग्य आसन चाहिए। और तुम्हारा चित्त भी परमात्मा के पहले कहीं लग नहीं सकता। वहीं बैठता है बस। यह चित्त का पंछी वहीं बैठता है। और कोई जगह नहीं बैठता; इसे और कोई जगह सुहाती नहीं। कभी तुम कहते हो इस ढेर पर बैठ जा--धन का ढेर--मगर यह उसे कचरा है। कभी तुम कहते हो पद पर बैठ जा, यह भी उसके लिए कचरा है। तुम उसे लाख तरह के खिलौने देते हो, लेकिन वह हर खिलौने से ऊब जाता है और एक दिन हर खिलौने को छोड़ देता है। वह कहता है, असली लाओ। और इसलिए चित्त बेचैन है।

तुम शायद सोचते हो कि चित्त की बेचैनी कोई बीमारी है तो तुम गलत ख्याल में हो। मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि कुछ ऐसा करें कि हमारा चित्त शांत हो जाए। मैंने कहा, इसी अशांत चित्त में तो थोड़ी आशा है; अगर ये शांत हो गया तो तुम गए। इसका अशांत होना सौभाग्य है। यह अशांत चित्त यही कह रहा है कि यहां तुमने जहां-जहां शांति खोजनी चाही वहां शांति नहीं मिलेगी। और तुम चाहते हो चित्त शांत हो जाए। अगर तुम्हारा चित्त शांत हो जाए तो तुम संसार में ही रह जाओगे। इसलिए चित्त तो शांत होगा ही नहीं--जब तक तुम परमात्मा में प्रवेश न करो। तुम लाख उपाय करो, चित्त शांत नहीं होगा। कैसे होगा? जब तक परम धन न मिले तब तक तुम कैसे चित्त को समझाओगे? चित्त को लगता ही रहता है : मैं भिखारी, निर्धन, भूखा, क्षुधा-पीड़ित, तड़प रहा! और चित्त कंप रहा है। यह चित्त का कंपन तुम्हारा सौभाग्य है, इसे दुर्भाग्य मत समझो। यह कहीं नहीं लगता। क्योंकि यह कहता है : वहां ले चलो जहां मैं लग सकता हूं। और वहां तुम ले नहीं जाते। तुम अपने गर्व में अकड़े बैठे हो। तुम कहते हो, हम तुझे यहीं शांत कर लेंगे; और थोड़ा धन ले ले।

तुमने चित्त को कोई छोटा बच्चा समझा है, जिसको तुम समझा रहे हो कि चल और आइसक्रीम ले-ले, यह खिलौना ले-ले, चल बाजार से कुछ मिठाई दिलवा दें! तुम यह सब देते रहोगे और चित्त की बेचैनी न मिटेगी; बेचैनी बढ़ती जाएगी। क्योंकि जैसे-जैसे वसंत बीतने लगेगा वैसे-वैसे चित्त को लगेगा यह तो दिन भी गया, यह अवसर भी खोया जा रहा है। और इन खिलौनों से मैं कब तक उलझा रहूं!

इसलिए जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है वैसे-वैसे चित्त की अशांति बढ़ती है। बच्चे शांत मालूम होते हैं; बूढ़े अशांत हो जाते हैं। बूढ़े का वसंत चला गया, अवसर चला गया और कंत से मिलना न हुआ।

"लगै न तेरो चित्त. . ."।

लग सकता ही नहीं। लगाओ, लाख लगाओ, लग सकता ही नहीं। और यह सौभाग्य है कि चित्त तुम्हारा लगता नहीं; नहीं तो तुमने न मालूम किस कूड़े-करकट की ढेरी में इसको कभी का लगा दिया होता। यह तो चित्त की तुम पर कृपा है कि यह लगता नहीं। न मालूम तुमने कहां उलझा दिया होता, कहां के नकली सिक्के पकड़ लिए होते और जिंदगी भर छाती से लगाए बैठे रहते। मगर चित्त तुम्हें हर जगह से हटा देता है। वह कहता है : अब चलो आगे बढ़ो; यहां नहीं है कुछ, कहीं और खोजें।

चित्त की बेचैनी का अर्थ है कि खोजना कहीं और होगा। यह खोज ठीक जगह नहीं चल रही है। और जैसे ही तुम ठीक जगह खोजने लगोगे, तुम अचानक पाओगे चित्त शांत होने लगा।

लोग कहते हैं कि चित्त शांत हो जाए तो तुम परमात्मा में पहुंच जाओगे। मैं तुमसे कहता हूं : तुम परमात्मा की तरफ पहुंचने लगो तो चित्त शांत हो जाए। लोगों ने तुमसे कहा है कि चित्त को शांत कर लो तो तुम परमात्मा में पहुंच जाओगे। मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि तुम परमात्मा की तरफ चलने भर लगो और चित्त शांत होने लगेगा। चित्त शांत हो ही नहीं सकता परमात्मा की तरफ चले बिना। उसकी तरफ चलने से ही शीतलता बढ़ती है। उसकी तरफ चलने से ही बेचैनी अपने आप कम होने लगती है। उसकी तरफ चलने से ही भीतर भरोसा आने लगता है कि अब ठीक दिशा मिली, अब घर की तरफ चले।

"लगै न तेरो चित्त, कंत को नाहिं मनावै।"

इधर चित्त भी तेरा नहीं लग रहा है। किसका लग रहा है? तुमने किसी का संसार में चित्त को लगते देखा? जिनके पास बहुत धन है, जिनके पास बहुत पद है--तुम सोचते हो उनका चित्त लग रहा है? वे इतने ही उखड़े हैं जितने तुम उखड़े हो, शायद तुमसे ज्यादा उखड़े हैं। क्योंकि उन्होंने अपना सारा वसंत तो धन को इकट्ठा करने में लगा दिया और चित्त शांत नहीं हुआ है। अब उनकी बेचैनी तुम समझ न सकोगे। वे विक्षिप्त हुए जा रहे हैं। उनको कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि अब क्या करें, क्या न करें।

". . . कंत को नाहिं मनावै"।

लेकिन अकड़ के मारे तुम परमात्मा की तरफ भी नहीं जाते हो, चित्त भी बेचैन है। सब तरह की विक्षिप्तता इकट्ठी हो गई है। एक क्षण को रस नहीं है। एक क्षण को सुख की छाया नहीं मिलती। भागे जाते हो, धूप-ही-धूप, आपाधापी! महत्वाकांक्षा! और इकट्ठा, और इकट्ठा! इतना कर लिया, उससे कुछ नहीं मिला।

एक मित्र मेरे पास आए। वे कहने लगे कि जब मैं युवा था, तब मैंने तय किया था कि जिस दिन मेरे पास दस लाख रुपए हो जाएंगे उसी दिन सब आपाधापी छोड़-छाड़ कर शांति से बैठ रहूंगा। बस अब थोड़ी ही देर और है। पांच लाख मेरे पास हो गए हैं।

गरीब आदमी के घर पैदा हुए, पांच लाख बड़ी बात है उनको इकट्ठा कर लेना, बड़ी मुश्किल से इकट्ठे किए।

थोड़ी देर और है, एक दो-चार-पांच साल की बात है, अब पैसा मेरे पास है, पांच को दस करने में कठिनाई न होगी। ये पांच असली कठिन बात थी। अब पांच को दुगना लेना सरल पड़ेगा। बस फिर तो मैं भी संन्यस्त होकर बैठ जाऊंगा।

मैंने उनसे पूछा, एक बात तो मुझे कहो। पांच लाख मिले, आधी तो संपत्ति मिल गई जितने तुम चाहते थे। आधा चैन मिला? आधी शांति मिली?

वे कहने लगे : शांति! शांति मिलने की पूछते हैं? जो थी थोड़ी बहुत, वह भी चली गई।

तो मैंने कहा : यह भी तो सोचो कि दस के मिलते-मिलते यह जो थोड़ी बहुत समझ बची है मेरे पास आने की कि तुम यहां तक आ गए, यह भी चली जाएगी। पांच लाख मिलने में जो थोड़ी बहुत शांति थी, वह चली गई। दस लाख मिलते-मिलते तक होश रहेगा? पगला तो न जाओगे?

वे कुछ सोचने लगे और कहा कि आपकी बात ठीक मालूम पड़ती है; सोचता हूं तो ठीक मालूम पड़ती है। इतना पागल मैं पहले नहीं था। जब से ये पांच हो गए हैं तब से सो भी नहीं सकता। दिन-रात गिनती चल रही है। और वह दस का नशा चढ़ा हुआ है।

इसलिए भारत में हम धन के नशे को धन-मद कहते हैं; पद के नशे को पद-मद कहते हैं। मद यानी नशा, मदिरा। अंग्रेजी में जो शब्द है मैड, वह संस्कृत के "मद" शब्द से बना है। मद एकमात्र पागलपन है।

तो मैंने उनसे कहा, अभी तो तुम्हें थोड़ा होश है, चलो तुम यहां आ गए। पांच साल, दस साल बाद जब तुम्हारे पास दस लाख हो जाएंगे--तुम्हें मेरी याद रहेगी? तुम इस तरफ आओगे?

वे कहने लगे, पक्का नहीं कह सकता। हालत मेरी खराब है। सच तो यह है कि दस लाख होने तक मैं बच भी सकूंगा, यह भी मुझे संदेह लगता है। क्योंकि मैं बहुत परेशान हुआ जा रहा हूं।

तो फिर मैंने कहा, जब पांच से इतनी मुसीबत हो गई, तो अब इसको दस किसलिए करना चाहते हो! मगर गर्व? वे बोले कि नहीं, एक दफा तय कर लिया था कि दस तो करके रहूंगा, तो करके तो रहूंगा।

आदमी कभी-कभी ऐसी दिशाओं में भी चलता जाता है जिनमें कुछ भी नहीं पाता; लेकिन एक अहंकार. . .।

"लगै न तेरो चित्त, कंत को नाहिं मनावै।"

और फिर भी अकड़ कर बस. . . प्रभु को मनाने की तरफ कोई चेष्टा भी नहीं हो रही।

"कापर करै सिंगार. . ."।

सुनते हो : "कापर करै सिंगार, फूल की सेज बिछावै"। फिर किसके लिए शृंगार करती है? और फिर किसके लिए फूलों की सेज बिछाती है? जब परमात्मा को मनाने का ही, मनाने के लायक भी विनम्रता नहीं है, तो किसके लिए शृंगार और किसके लिए फूलों की सेज सजाती है? यह किसके लिए मंदिर बनाती है? यह किसके लिए दीप जलाती है?

"कापर करै सिंगार. . . . ."।

तुम किसके लिए सज रहे हो? हां, मंदिर जाने के लिए सज रहे हो तो ही तुम्हारे सजने का कोई मूल्य है। प्रभु को रिझाने चले हो तो ही तुम्हारा कोई मूल्य है।

मैंने सुना है, अकबर ने तानसेन को एक बार कहा कि तुम्हारा संगीत अपूर्व है। मैं सोच भी नहीं सकता कि इससे श्रेष्ठ संगीत कहीं हो सकता है। या कोई इससे श्रेष्ठ संगीत पैदा कर सकेगा। लेकिन एक प्रश्न मेरे मन में बार-बार उठ आता है कि तुमने किसी से सीखा होगा, तुम्हारा कोई गुरु होगा। अगर तुम्हारे गुरु जीवित हों तो एक बार उनका संगीत सुनना चाहता हूं, उन्हें दरबार में बुलाओ।

तानसेन ने कहा, यह जरा कठिन बात है। गुरु मेरे जीवित हैं, लेकिन उन्हें बुलाना मुश्किल है। वे फकीर आदमी हैं।

फकीर हरिदास उनके गुरु थे।

वे गाते हैं अपनी मौज से, बजाते हैं अपनी मौज से, क्योंकि वे आदमियों के लिए नहीं बजाते और आदमियों के लिए नहीं गाते। वे परमात्मा के लिए गाते और परमात्मा के लिए बजाते हैं। तो जब उनकी मौज होती है तब। और दरबार में तो उनको न लाया जा सकेगा। फरमाइश पर तो वे गाते ही नहीं, गा ही नहीं सकते। वे कहते हैं, परमात्मा करे फरमाइश तब मैं गाता हूं। इसलिए जरा मुश्किल है। आप चलने को राजी न होंगे, उन्हें लाया नहीं जा सकता। और यह भी कुछ पक्का नहीं है कि वे कब गाएं, रोज उनका कुछ बंधा हुआ नियम नहीं है।

प्रार्थना के कहीं बंधे हुए नियम हो सकते हैं! प्रेम के कहीं बंधे हुए नियम हो सकते हैं! प्रेम तो सब नियम तोड़ कर बहता है। प्रेम तो बाढ़ की तरह है--कूल-किनारे सब तोड़ देता है।

तो कभी वे दो बजे रात उठ आते हैं और गाते रहते हैं, गाते रहते हैं, घंटों बीत जाते हैं, सूरज निकल आता है, दोपहर हो जाती है और मस्त नाचते रहते हैं। और कभी दो-चार दिन सन्नाटा ही रहता है, उनके झोंपड़े पर कोई स्वर नहीं उठता। कभी शून्य का नैवेद्य चढ़ाते परमात्मा को, कभी संगीत का चढ़ाते हैं। मगर यह सब अनिश्चित है।

हरिदास स्वतंत्र वृत्ति के हैं; स्वच्छंद हैं; संन्यासी हैं।

संन्यासी का अर्थ ही होता है स्वच्छंद, जो अपने भीतर के छंद से जीता हो।

अकबर ने कहा कि तुमने मुझे और लुभा दिया। सुनना तो होगा ही, कुछ भी उपाय हो। तुम पता लगाओ। मैं आधी रात भी चलने को राजी हूं।

लेकिन तानसेन ने कहा, एक और आखिरी बात झंझट की है कि अगर कोई पहुंच जाए वे तत्क्षण रुक जाते हैं, चुप हो जाते हैं। तो चोरी से सुनना पड़ेगा। झोंपड़े के बाहर छिप कर सुनना पड़ेगा। हम जब उनके विद्यार्थी भी उनके पास थे तो छिप कर ही सुनते थे। हमें सिखाते थे, वह तो ठीक था। लेकिन जब वे खुद अपनी मस्ती में, अपनी रौ में आते थे तो हमें छिप कर सुनना पड़ता था। सामने पहुंच जाओ, वे रुक जाते। बात ही गई।

तो रात अकबर और तानसेन, दो बजे रात, छिप गए हरिदास के झोंपड़े के पास। वे आगरा में यमुना के किनारे रहते थे। तीन बजे रात वह अपूर्व संगीत शुरू हुआ हरिदास का। अकबर डोलने लगा। उसकी आंख से

आंसू ही बहे जाते। पांच बजे बंद हुआ संगीत। जब वे लौटने लगे महल की तरफ, तो अकबर बिल्कुल चुप रहा, कुछ बोला ही नहीं। यह बात कुछ ऐसी थी कि इसके संबंध में कुछ भी कहना छोटा होगा, ओछा होगा। यह इस जगत का संगीत न था। यह सेज परमात्मा के लिए बिछाई गई थी। यह शृंगार परमात्मा के लिए किया गया था। यह तो बात ही अलौकिक थी। यह अपार्थिव थी बात। यह स्वर्ग का संगीत था। इसके संबंध में क्या कहो! कुछ कहने को न था। एक सन्नाटा रहा।

जब महल आ गया और अकबर उतर कर महल की सीढ़ियां चढ़ने लगा और उसने तानसेन को विदा दी, तब उसने इतना ही कहा : तानसेन, अब तक मैं सोचता था तुम्हारा कोई मुकाबला नहीं है; आज मैं सोचता हूं तुम्हारे गुरु के सामने तुम तो कुछ भी नहीं हो। आज मैं बड़ी बेचैनी में पड़ गया हूं। अब तक सोचता था तुम्हारे सामने कोई भी कुछ नहीं है; आज बड़ी मुश्किल हो गई है। आज तुम्हें देखता हूं तो तुम्हारा संगीत तो साधारण मालूम होता है। तुम्हारे गुरु के सामने तो तुम कोई भी नहीं हो, कुछ भी नहीं हो। तुम्हारा उनसे क्या मुकाबला! अब तक सोचता था तुम्हारा कोई मुकाबला नहीं; अब सोचता हूं तुम्हारा उनसे क्या मुकाबला! इतना फर्क क्यों है? और जो तुम्हारे गुरु के जीवन में हो सका, तुम्हारे जीवन में क्यों नहीं हो पाया?

तानसेन ने कहा : कठिन नहीं है मामला, सीधा-साफ है। मैं बजाता हूं आपके लिए; मेरे गुरु बजाते हैं परमात्मा के लिए। मैं बजाता हूं कुछ पुरस्कार पाने के लिए। क्षुद्र पुरस्कार--धन, पद, प्रतिष्ठा। मेरे गुरु बजाते हैं अहोभाव से, किसी पुरस्कार को पाने के लिए नहीं। मैं बजाता हूं कुछ पाने के लिए; मेरे गुरु बजाते हैं क्योंकि उन्होंने कुछ पा लिया है। उस पाने से बजना उठता है। मैं तो भिखारी हूं, वे सम्राट हैं।

जिस दिन तुम परमात्मा के लिए शृंगार करोगे, उसके लिए फूलों की सेज सजाओगे, उसी दिन तुम्हारे जीवन में आनंद, उसी दिन तुम्हारे जीवन में संगीत, उसी दिन तुम्हारे जीवन में अर्थ. . . उसके पहले तो सब व्यर्थता है।

"कापर करै सिंगार, फूल की सेज बिछावै।"

और कहते पलटूदास कि लोगों को मैं देखता हूं--बड़ा शृंगार कर रहे हैं, बड़ी फूलों की सेज सजा रहे हैं, मकान बना रहे हैं, व्यवस्थाएं जुटा रहे हैं! . . . किसलिए? किसके लिए?

"कापर करै सिंगार, फूल की सेज बिछावै।"

किसको रिझाने के लिए यह आयोजन चल रहा है? और यहां हाथ से वसंत निकला जा रहा है।

"पलटू ऋतु भरि खेलि ले, फिर पछतावै अंत।

क्या सोवै तू बावरी, चाला जात बसंत।।"

"पलटू ऋतु भरि खेलि ले. . ."।

यह जो छोटा सा क्षण मिला है, यह जो जीवन मिला है, इसको रस से मदमत्त, प्रभु के प्रेम में मस्त, खेलि ले, नाच ले, क्रीड़ा कर ले। यह जिसने दिया है उसी के चरणों में समर्पित कर दे।

"पलटू ऋतु भरि खेलि ले, फिर पछतावै अंत।"

नहीं तो मृत्यु के समय पछतावा होगा कि प्रभु ने इतनी बड़ी भेंट दी थी, हमने उसे कुछ भी न लौटाया, हमने कोई उत्तर भी न दिया। और यह आ गई मौत और सब छीन कर ले चली। सूखने लगे फूल सेज के, शृंगार कुम्हलाने लगा। यह आई मौत और सब छीन कर ले चली! और जब हम दे सकते थे तब हमने प्रभु को भी देने में आनाकानी की। जो छिन ही जाएगा, जो छिन ही जाना है, उसे क्यों न तुम दान बना लो! और फिर अगर दान ही बनाना हो तो सबसे पहले तो उसी का ध्यान करना चाहिए जिसने दिया है, उसको हम लौटा दें! . . . तेरी वस्तु गोविंद तुझी को समर्पित। त्वदी यंवस्तु गोविंद, तुभ्यमेव समर्पये। और तो किसी को देने का कारण भी नहीं है।

है नींद सुहागिन वंदिनी
परदेशी पी की बांहों में
ओ मेरे सपनों के स्रष्टा
ओ मेरी जागृति के द्रष्टा
क्या ज्ञात नहीं, मेरी सीमित
साधे हैं तेरी चाहों में?
ओ मेरे मोहन परदेशी,
तेरी राधा वल्कल-वेशी
आशा का दीप लिए बैठी है
पल-छिन तेरी राहों में
इन श्वासों का ताना-बाना
रुक जाए नहीं आना-जाना
युग से पल बीत रहे मेरे
मैं डूब रही हूं आहों में
तेरी पद-रज कुंकुम रौली
तू था तो थी प्रतिदिन होली
तू तो तरु, मैं हूं लता
पुष्प पलती हूं तेरी छांओं में
ओ मेरे सपनों के स्रष्टा
ओ मेरी जागृति के द्रष्टा
क्या ज्ञात नहीं है, मेरी सीमित
साधे हैं तेरी चाहों में?
है नींद सुहागिन वंदिनी
परदेशी पी की बांहों में।

वह जो परदेसी पिया है, वह जो परमात्मा है, जो पता नहीं कहां छिपा है, हमारा सारे जीवन का आनंद उसकी बांहों में है। उसके आलिंगन में पड़ कर ही जीवन में संगति, सुरभि, संगीत का जन्म होता है।

संसार में सिर्फ दुख है, दुख यही है कि जो हम खोजते हैं वह वहां नहीं मिलता है। वह वहां नहीं मिलता है, क्योंकि वह वहां नहीं है। हमारी खोज ठीक, हमारी आकांक्षा ठीक, हमारी दिशा भ्रांत है।

लेकिन हम बड़े अकड़े हैं। हम बड़े गर्व से भरे हैं। हम कहते हैं : मैं, और मेरी दिशा कैसे गलत हो सकती है? सिद्ध करके रहूंगा! माना दूसरे हार गए होंगे, और सिकंदर हार गए होंगे; लेकिन मैं सिद्ध करके रहूंगा कि मिलता है।

सारी मनुष्य-जाति की कथा क्या है? जिन्होंने भी बाहर खोजा, अब तक कुछ भी नहीं पाया। जिन्होंने बाहर खोजा, खाली हाथ रहे, खाली हाथ गए। निरपवाद रूप से बाहर खोजने वाले थके, हारे, पराजित हुए। बाहर खोजने वालों में कोई कभी जिन और विजेता नहीं हुआ है। पराजय वहां भाग्य है। पराजय वहां नियति है। एक मनुष्य ने भी कभी बाहर खोज कर यह नहीं कहा कि मुझे मिला। इससे बड़ा और कोई वैज्ञानिक सत्य हो सकता है? निरपवाद।

किस बात को वैज्ञानिक कहते हो? वैज्ञानिक उस बात को कहते हैं जिसमें कोई अपवाद न हो। जब भी पानी गरम करो, सौ डिग्री पर ही भाप बने; कभी निन्यानवे पर बन जाए, कभी एक सौ एक डिग्री पर बने तो यह फिर विज्ञान का नियम न रहा। अपवाद आ जाए तो नियम टूट गया। सौ डिग्री पर ही बने, फिर चाहे तिब्बत में गरम करो, चाहे चीन में, चाहे मंगोलिया में, कहीं गरम करो, सौ डिग्री पर ही भाप बने--जब ये

हजारों प्रयोग करके देख लिए जाते हैं और पाया जाता है हर बार सौ डिग्री पर ही भाप बनता है, तो नियम निर्धारित हो जाता है। निरपवाद है तो नियम बन जाता है।

लेकिन इससे बड़ी निरपवाद कोई व्यवस्था नहीं है मनुष्य-जाति के इतिहास में। क्योंकि यह प्रयोग अरबों-खरबों लोगों ने किया है कि हम संसार में सुख पा लें--और नहीं मिलता। लेकिन फिर भी हर आदमी इस अहंकार से भरा हुआ पैदा होता है कि औरों को न मिला होगा, मैं निरपवाद, नियम को तोड़ कर बताऊंगा; मैं अपवाद होकर सिद्ध रहूंगा; मैं दिखाऊंगा कि मुझे मिलता है।

यह एक पहलू है।

दूसरा पहलू यह है कि जिन्होंने भी भीतर खोजा, उन सभी को मिला है। वह भी निरपवाद है। कोई महावीर, कोई मोहम्मद, कोई कृष्ण, कोई क्राइस्ट, कोई रैदास, कोई पलटू, कोई नानक, कोई कबीर--जो भी भीतर गया है, उसे मिला है। ऐसा कभी नहीं हुआ कि कोई भीतर गया हो और उसने कहा हो, मुझे नहीं मिला। यह दूसरा पहलू है उसी नियम का। यह तो दोनों तरफ से कसौटी हो चुकी है इस नियम की कि भीतर ही मिलता है, बाहर नहीं मिलता। लेकिन फिर भी आदमी का अहंकार अपूर्व रूप से अंधा है। वह कहता है, किसी को अब तक न मिला होगा, मैं एक कोशिश करके और देख लूं।

असंभव कोशिश हार ही जाती है। फिर हमारे हाथ में केवल अभिनय रह जाता है। सत्य तो हाथ में नहीं आता। संसार अभिनय है। फिर हम दिखावा करने लगते हैं जब नहीं मिलता। हंसी तो आती नहीं असली, तो फिर हम झूठी मुस्कुराहट अपने ओंठों पर चिपका लेते हैं। मन को समझाना तो होगा ही न! तो हम झूठी खुशियां, झूठे उत्सव मनाते रहते हैं। भीतर जलती रहती है आग और बाहर हम शीतलता दिखलाते रहते हैं। भीतर आंसुओं के ढेर लगे रहते हैं और बाहर हम हंसते चले जाते हैं।

तुम जरा लोगों का हंसना देखो--कैसा खाली, कैसा रिक्त, कैसा निर्जीव! तुम जरा लोगों की आंखों में झांको। दिखलाने की कोशिश वे यही करते हैं कि सब ठीक है! कुछ भी ठीक नहीं है। भीतर सिर्फ मौत आ रही है और वसंत जा रहा है और उनके पैर डगमगा रहे हैं, लेकिन किसी तरह अपने को सम्हाल कर खड़े हुए हैं, किसी को दिखने नहीं देते कि हमारे पैर डगमगा रहे हैं।

अभिनय करो
प्रणय का अभिनय करो
अभी नहीं बंद करो
एक बार, दो बार, तीन बार, नहीं-नहीं
नित्य ही अभिनय करो
नित्य ही अभिनय करो
बहुत भला लगता है
सांसों पर सरगम सा चलता है
क्या बुरा है यदि ऐसे ही
प्राणों को छला जाए,
यूं ही सहज सरल
जीवन-क्रम चलता चला जाए?

मगर क्या खाक सहज है यहां? क्या सरल है? फिर धीरे-धीरे अभिनय की शृंखला ही रह जाती है--बताते रहो जो नहीं है; भीतर निर्धन रहो, बाहर धन दिखलाते रहो; भीतर अज्ञानी रहो, बाहर ज्ञान दिखलाते रहो। भीतर संताप और बाहर दिखलाते रहो कि सब ठीक है, तुम बड़े प्रसन्न हो। ऐसा यह जगत अभिनय से भरा है। और इससे बड़ा खतरा होता है। कम-से-कम छोटे बच्चों को तो बड़ा धोखा हो जाता है। बच्चों को ही धोखा होता है। फिर बच्चे बड़े उम्र के भी हुए तो भी कुछ फर्क नहीं पड़ता। बच्चों को ही धोखा होता है। धोखा ही बच्चों को हो

सकता है। तुमको भी धोखा होता है कि सब लोग इतने प्रसन्न चले जा रहे हैं; देखो कितने लोग आनंदित हैं, मैं ही एक दुखी!

यह हरेक का अनुभव है। प्रत्येक ऐसा ही सोचता है कि मैं ही अकेला दुखी, हे प्रभु, मुझे ही क्यों दुखी बनाया है? सारी दुनिया इतनी खुश मालूम हो रही है, रंगरेलियां चल रही हैं, लोग हाथों में हाथ डाले जा रहे हैं; गीत गा रहे हैं, नाच रहे। सारी दुनिया इतनी प्रसन्न है, मैं ही क्यों दुखी हूं?

यह सभी का भीतरी अनुभव है कि मैं ही क्यों दुखी हूं। लेकिन दूसरे तो प्रसन्न दिखाई पड़ते हैं, तो ऐसा लगता है कोई अन्याय किया गया है तुम्हारे साथ। यहां कोई भी प्रसन्न नहीं है। यहां जितने तुम दुखी हो उतने ही सभी दुखी हैं। यहां ऊपर-ऊपर के भेद होंगे, भीतर की दुख की ढेरियां उतनी की उतनी हैं, कोई अंतर नहीं है।

मैंने एक कहानी सुनी है कि एक आदमी निरंतर रोता था जाकर मस्जिद में कि हे प्रभु, मुझे इतना दुखी क्यों बनाया? आखिर मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है? यह अन्याय हो रहा है। और मैं तो सुनता था : तू बड़ा न्यायी है, रहीम है, रहमान है, कृपालु है, महाकरुणावान है! मगर सब धोखे की बातें हैं। मुझे इतना दुख क्यों दिया है? सब मजे में हैं। सब आनंद कर रहे हैं। मैं ही दुख में सड़ा जा रहा हूं। कुछ कृपा कर! अगर सुख न दे सके तो कम से कम इतना तो कर कि किसी और का दुख मुझे दे दे, यह मेरा दुख किसी और को दे दो। इतना तो कर!

उसने एक रात सपना देखा कि कोई आवाज आकाश से कह रही है कि सब लोग अपने-अपने दुख लेकर मस्जिद पहुंच जाएं। वह तो बड़ी जल्दी तैयार हो गया। उसने जल्दी से अपना दुख बांधा, पोटली उठाई, भागा मस्जिद की तरफ। खुद भी भागा, उसने देखा, बड़ा हैरान हुआ कि पूरे गांव के लोग अपनी-अपनी पोटलियां लिए जा रहे हैं। वह तो सोचता था जिनके जीवन में कोई भी दुख नहीं है... राजा भी भागा जा रहा है! वजीर भी भागे जा रहे हैं। नेता भी भागे जा रहे हैं, पंडित-पुरोहित भी भागे जा रहे हैं! उसने मौलवी को भी देखा, वह भी अपना गट्ठर लिए चला जा रहा है। सबके गट्ठर हैं। और एक और बात हैरानी की मालूम हुई : किसी के पास छोटी-मोटी पोटली नहीं। क्योंकि वह सोचने लगा कि किससे बदलना है अगर बदलने का मौका आ जाए। मगर सब बड़ी-बड़ी पोटलियां लिए हुए हैं। ये तो पोटलियां कभी दिखाई भी नहीं पड़ी थीं उसको। अभिनय चलता है। मस्जिद में पहुंच गए। बड़ा उत्तेजित! सारे लोग उत्तेजित हैं कि कुछ होने वाला है। और फिर एक आवाज हुई कि सब लोग मस्जिद की खूंटियों पर अपनी-अपनी पोटलियां टांग दें। सबने जल्दी से टांग दीं। सभी छुटकारा पाना चाहते हैं। और फिर एक आवाज हुई कि अब जिसको जिसकी पोटली चुननी हो चुन लें, बदल लें। और वह आदमी भागा और सारे लोग भागे। मगर चकित होने की बात तो यह थी कि उस आदमी ने भाग कर अपनी पोटली फिर से उठा ली, कि कोई दूसरा न उठा ले। और यही हालत सबकी थी--सबने अपनी-अपनी उठा ली।

वह बड़ा हैरान हुआ, लेकिन अब बात उसके ख्याल में आ गई। उसने अपनी क्यों उठाई? सोचा कि अपने दुख कम से कम परिचित तो हैं; दूसरे का बड़ा पोटला है और पता नहीं, इसके भीतर क्या हो! अपने दुख कम से कम जाने-माने तो हैं, उनके साथ जीते तो रहे हैं जिंदगी भर, धीरे-धीरे अभ्यस्त भी हो गए हैं। और अब धीरे-धीरे उतना उनसे दुख भी नहीं होता।

कांटा गड़ता ही रहा हो, गड़ता ही रहा हो, गड़ता रहा हो तो धीरे-धीरे चमड़ी भी मजबूत हो जाती है; उस जगह कांटा गड़ते-गड़ते-गड़ते, फिर चमड़ी में उतना दर्द भी नहीं होता। सिरदर्द जिंदगी भर होता ही रहा तो धीरे-धीरे आदमी भूल ही जाता है; सिरदर्द और सिर में कोई फर्क ही नहीं रह जाता। एक अभ्यास हो जाता है।

और तब उसे समझ में आया कि सबने अपने-अपने उठा लिए; सब डर गए हैं कि कहीं दूसरे का न उठाना पड़े; पता नहीं दूसरे की अपरिचित पोटली, भीतर कौन से सांप-बिच्छू समाए हों! प्रत्येक ने अपनी-अपनी पोटलियां उठा लीं और सब बड़े खुश हैं कि अपनी पोटली वापस मिल गई। और सब अपने घर की तरफ भागे जा रहे हैं। सुबह जब उसकी नींद खुली, तब उसे सच्चाई समझ में आई : ऐसा ही है।

यहां सब दुखी हैं। मगर एक अभिनय चल रहा है।

इस अभिनय से जो जाग गया उसके जीवन में ही संन्यास का जन्म होता है। अभिनय से जाग जाना संन्यास है।

मुझसे लोग पूछते हैं : आपके संन्यास की परिभाषा क्या? मैं कहता हूं : अभिनय से जाग जाना संन्यास है। अब और अभिनय न करेंगे। अब और धोखा न देंगे। अब जीवन की सच्चाइयां परखेंगे। उन्हीं परखों से धीरे-धीरे तुम परम सत्य की तरफ संलग्न हो जाते हो।

"ज्यौं-ज्यौं सूखै ताल है, त्यौं-त्यौं मीन मलीन।"

वसंत बीतने लगा। अब तालाब सूखने लगा--जीवन का तालाब। समय की धारा धीरे-धीरे सूखने लगी, आदमी बूढ़ा होने लगा।

"ज्यौं-ज्यौं सूखै ताल है, त्यौं-त्यौं मीन मलीन।"

स्वभावतः वह जो मछली उस सागर के पानी में रहती थी, तालाब में रहती थी, अब तालाब तो सूखने लगा, वह मछली बड़ी दुखी होने लगी। इसलिए बूढ़ा आदमी दुखी होने लगता है।

तुम किसी बच्चे को शायद ही दुखी पाओ; तुम किसी बूढ़े को शायद ही सुखी पाओ। अगर बच्चा दुखी मिल जाए तो समझना कि पिछले जन्मों की कमाई है। और अगर बूढ़ा सुखी मिल जाए तो समझना इस जन्म की कमाई है। नहीं तो बच्चे सुखी होते हैं, क्योंकि बेहोश हैं; होश नहीं अभी तो दुख का पता क्या! अभी सीखा नहीं, अभी जीवन का कोई अनुभव नहीं। अभी जिंदगी के बाजार में गए नहीं, लुटे नहीं। अभी लुटेरे तैयारी कर रहे हैं; वे भी तैयार हो रहे हैं कि लुटने की तैयारी हो जाए, हो जाए।

और बूढ़े को तुम दुखी ही पाओगे क्योंकि लुट गया--बाजार में लूट लिया गया; कुछ नहीं बचा हाथ में। अगर बूढ़ा प्रसन्न मिल जाए, आनंदित मिल जाए तो समझना संत है। और बच्चा अगर दुखी मिल जाए तो समझना कि संत है। क्योंकि बच्चे के दुख का एक ही मतलब हो सकता है कि पिछले जन्मों का अनुभव नहीं भूला। और बूढ़े के सुख का एक ही मतलब हो सकता है कि परमात्मा से संबंध जुड़ गया।

"ज्यौं-ज्यौं सूखै ताल है, त्यौं-त्यौं मीन मलीन।"

मछली बड़ी दुखी हो रही है, तालाब सूखने लगा।

"त्यौं-त्यौं मीन मलीन, जेठ में सूख्यो पानी।"

और वह मौत आने लगी ज्येठ जैसी। ज्येठ का महीना आने लगा। घबड़ाहट बढ़ने लगी। तालाब का जल उड़ने लगा, वाष्पीभूत होने लगा। अभी था, रोज-रोज नहीं होने लगा। ऐसे ही तो उम्र एक दिन उड़ जाती है; पता भी नहीं चलता कब हाथ से निकल गई।

"त्यौं-त्यौं मीन मलीन, जेठ में सूख्यो पानी।

तीनों पन गए बीति, भजन का मरम न जानी।।"

बचपन बीता, जवानी बीती, अब यह बुढ़ापा भी बीतने लगा, या आखिरी जल की धार भी उड़ने लगी। अब मीन के मरने का क्षण आने लगा।

"तीनों पन गए बीति, भजन का मरम न जानी।"

और जीवन में जानने योग्य बस एक ही बात थी--भजन का मरम; भक्ति का अर्थ; भक्ति का अनुभव। क्योंकि मर्म जानने का और कोई उपाय नहीं है--मर्म जानना हो तो अनुभव में उतरना पड़े, भाव में उतरना पड़े। भक्ति तो शुद्ध अनुभव की बात है। . . . तो जीवन बीत गया और भजन आया नहीं। वसंत चला गया और तुम सोए रहे।

"क्या सोवै तू बावरी, चाला जात बसंत।

चाला जात बसंत, कंत ना घर में आये।।"

भजन का अर्थ है : कंत का आगमन शुरू हुआ, प्रार्थना उठने लगी, अर्चना जगने लगी। उपासना होने लगी धीरे-धीरे। अब संसार का ही रटन नहीं होता मन में, अब प्रभु की भी याद आने लगी; जिक्र शुरू हुआ; याद्दाश्त शुरू हुई; सुरति उठी।

"तीनों पन गए बीति, भजन का मरम न जानी।

कंवल गए कुम्हिलाय, हंस ने किया पयाना।"

और इंद्रियों के कमल--आंखें, कान--सब कुम्हलाने लगे। वे इंद्रियां, जिनको तुमने अब तक जीवन जाना था, वे कुम्हलाने लगीं।

"कंवल गए कुम्हिलाए, हंस ने किया पयाना।"

और अब हंस के उड़ने का क्षण आने लगा। यह जीव अब जाएगा--पता नहीं कहां, किस अंधकार में, किस लोक में! इसके जाने के लिए कोई तैयारी न की, क्योंकि भजन का मरम ही न जाना। भजन को जान लेते तो आगे की तैयारी हो जाती। मृत्यु के बाद की तैयारी भजन से ही होती है। प्रभु को याद किया होता, प्रभु से संबंध जुड़ जाता, तो मृत्यु में गुजरने की पीड़ा ही न झेलनी पड़ती। अमृत से जो जुड़ गया, फिर वह मरता नहीं। शरीर तो शांत हो जाता है, लेकिन अमृत से जुड़ गए व्यक्ति को मृत्यु की कोई पीड़ा नहीं होती।

"कंवल गए कुम्हिलाय, हंस ने किया पयाना।"

और हम क्या कर रहे हैं? हमें हंस की तो बिलकुल फिकर नहीं है। जो आज खिले और कल कुम्हला जाएंगे, इन कमलों की हम बड़ी फिकर कर रहे हैं। तुम्हें अपनी तो फिकर नहीं है; लेकिन देह, रंग-रूप, इसकी तुम बड़ी चिंता कर रहे हो। आंखों में काजल लगा रहे हो। ओंठों पर लिपिस्टिक लगा रहे हो, चेहरों पर रंग-रोगन पोत रहे हो। शरीर को सुंदर बनाने की हर तरह की चेष्टा कर रहे हो। हर तरह की चेष्टा चल रही है। हंस की कोई चिंता नहीं है। वह जो भीतर छिपा हंस है, जो आज नहीं कल उड़ जाएगा उसकी कोई चिंता नहीं है और यह सब देह, इसकी सब सजावटें, काजल और लिपिस्टिक और पावडर और देह और वस्त्र, रंग-रूप, सब पड़ा रह जाएगा--इस पर तुम सारा जीवन लगा रहे हो। सार की चिंता नहीं, असार के साथ जीवन व्यय कर रहे हो।

"कंवल गए कुम्हिलाय, हंस ने किया पयाना।

मीन लिया कोऊ मारि. . .।।"

और आज नहीं कल, मौत का जाल आएगा--कोई भी तो नहीं पहचानता मौत कौन है।

इसलिए कहते हैं पलटू : मीन लिया कोऊ मारि ... । कौन मार जाएगा, पता नहीं। कौन जाल फेंक देगा? कौन फांस लेगा? यह मौत कौन है, किसी को पता नहीं।

हम तो जीवन के रंग में ऐसे रंगे रहते हैं कि मौत का विचार ही कौन करता है!

"मीन लिया कोऊ मारि, ठांय ढेला चिहराना।"

और जो कभी तालाब हुआ करता था, अब सिर्फ मिट्टी के ढेले पड़े रह गए, सब सूख गया। फटी-पुरानी दरारें पड़ी मिट्टी रह गई। ". . . ठांय ढेला चिहराना"। जिसको तुमने घर समझा था, जिसको तुमने सब समझा था, वह जल तो उड़ गया। मछलियों को कोई मार कर ले गया। हंस ने प्रयाण कर दिया। अब वहां जल के नाम पर एक सूखी तलैया रह गई है, जो कभी तलैया थी। और जमीन ढेले रह गए--वे भी तिरके हुए, फटे हुए, दरारें पड़ीं।

ऐसी ही तो एक दिन देह पड़ी रह जाती है--मिट्टी का ढेला! डस्ट अनटू डस्ट। मिट्टी में मिट्टी गिर जाती है।

"मीन लिया कोऊ मारि, ठांय ढेला चिहराना।

ऐसी मानुष-देह, वृथा में जात अनारी।"

और यह जो मनुष्य की देह है, इसे तुम पागलों की तरह, मूढ़ों की तरह व्यर्थ ही गंवाए दे रहे हो। इसके पहले कि देह चली जाए व्यर्थ, तुम देह का सेतु बना लो, इस देह की सीढ़ी बना लो! इस देह की सीढ़ी पर चढ़ जाओ और परमात्मा से संबंध जोड़ लो।

"ऐसी मानुष-देह, वृथा में जात अनारी।

भूला कौल-करार, आपसे काम बिगारी।।"

यह बड़ा महत्त्वपूर्ण वचन है : भूला कौल-करार। पलटू यह कह रहे हैं कि परमात्मा से वचन देकर आया था कि याद रखूंगा तुम्हें और भूल ही गया सब आश्वासन। भूला कौल-करार! यहां आकर भूल ही गए। याद भी नहीं करते। जहां से आए हो वहां की याद भी नहीं करते। जो वचन दे आए हो उसकी याद भी नहीं करते। उस कौल को, उस करार को पूरा करने की कोई चेष्टा भी नहीं है। चेष्टा तो दूर याद ही नहीं रखी।

वचन दिया था, उसे भंग मत करो। यह बात बड़ी महत्त्वपूर्ण है। प्रत्येक व्यक्ति जब परमात्मा के मूलस्रोत से आता है तो इसी आश्वासन को देकर, इसी आश्वासन से भरा आता है कि मैं भटकूंगा नहीं; मैं संसार से अछूता लौट आऊंगा। यही तो कबीर ने कहा : ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया, खूब जतन से ओढ़ी रे कबीरा! कबीर ने कौल-करार याद रखा, उलझे नहीं। गुजर गए संसार से। यह काजल की कोठरी है। मगर अछूते गुजर गए। अपनी आंतरिक शुभ्रता को कायम रखते हुए गुजर गए। ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया!

करार याद भी नहीं है। हमें याद ही कुछ नहीं है। हम कहां से आए, यह याद नहीं है; हम कहां जा रहे हैं, यह याद नहीं है।

धर्म का इतना ही अर्थ होता है कि तुम्हें तुम्हारे जीवन के आश्वासनों का, वचनों का स्मरण दिलाया जाए।

"भूला कौल-करार, आपसे काम बिगारी।

पलटू बरस औ मास दिन, पहर घड़ी पल छीन।"

ज्यौं-ज्यौं सूखे ताल है, त्यौं-त्यौं मीन मलीन।।"

और देख, रोज-रोज दिन बीतने लगे--बरस और मास दिन; पहर घड़ी पल छीन--एक-एक क्षण बीता जाता, यह गागर रीती जाती है। जल्दी ही खाली शून्य रह जाएगा। ज्यौं-ज्यौं सूखे ताल है, त्यौं-त्यौं मीन मलीन। अब कुछ कर, इसके पहले कि अवसर बिलकुल ही चला जाए।

"पलटू ऋतु भरि खेलि ले, फिर पछतावै अंत।

क्या सोवै तू बावरी, चाला जात बसंत।।"

"पिय को खोजन मैं चली, आपुइ गई हिराय।

आपुइ गई हिराय, कवन अब कहै संदेसा।।"

यह तो पलटू ने तुम्हारी दशा कही इन दो पदों में। एक में कि यह वसंत सदा न रुकेगा, उपयोग करना हो तो कर लो; गीत बनाना हो तो बना लो; नाचना हो तो नाच लो। और अगर नाचो तो और किसी के सामने मत नाचना, प्रभु के सामने नाच लेना। अगर कुछ घर बनाना हो तो प्रभु के हृदय में बना लो। ये दो पद तुमसे कहे। यह भी कहा कि कल पर मत टालते जाना क्योंकि ताल रोज सूखता जा रहा है। और कब मछुआ आएगा मौत का और मछली को मार लेगा, तुम्हें पता भी नहीं चलेगा। फंस गए जाल में, फिर कुछ भी न होगा। फिर पछताए होत का, जब चिड़िया चुग गई खेत।

यह तीसरा पद अपने संबंध में कहते हैं :

"पिय को खोजन मैं चली, आपुइ गई हिराय।"

और कहते हैं कि एक अनूठी बात भी तुम्हें कह दें : मैं खोजने चला लेकिन खोजते-खोजते मैं खो गया। यह प्रेम की आखिरी घड़ी है। क्योंकि परमात्मा और तुम एक साथ नहीं हो सकते। एक ही हो सकता है, दो नहीं हो

सकते। तुम जब तक हो, परमात्मा नहीं। जिस दिन परमात्मा है, तुम नहीं। तो तुम नहीं हो जाओ तो परमात्मा के होने में सुगमता हो जाती है। इसी को कहते हैं निमंत्रण, भजन का मर्म। क्या है भजन का मर्म? कि तुम अपने को मिटा दो, गला दो। तुम कह दो कि मैं नहीं हूं, तू ही है, तू ही है, तू ही है! तुम धीरे-धीरे शून्य होते जाओ। इधर तुम मिटते हो उधर परमात्मा का अवतरण होने लगता है। इधर तुम बाहर गए उधर परमात्मा भीतर आया। जगह बहुत थोड़ी है भीतर।

प्रेम गली अति सांकरी, तामें दो न समाय।

तुम हटो तो परमात्मा आ जाए।

"पिय को खोजन मैं चली, आपुइ गई हिराय।

आपुइ गई हिराय, कवन अब कहै संदेसा।।"

पलटू कहते हैं : बड़ी मुश्किल हो गई है, बड़े संदेशे तय किए थे, बड़ा सोच रखा था, यह कहेंगे, यह कहेंगे, यह कहेंगे! अब कौन कहे? संदेशा कहने वाला भी नहीं बचा। इसलिए प्रार्थना आखिरी घड़ी में मौन हो जाती है, कहने को कुछ भी नहीं बचता।

"आपुइ गई हिराय, कवन अब कहै संदेसा।"

रोज ऐसा होता है। मेरे संन्यासी रोज आते सांझ मिलने। बड़ा तय करके आते हैं : यह कहेंगे, यह कहेंगे, यह कहेंगे . . .! फिर सामने बैठते हैं और कहते हैं कि भूल गए, कुछ कहने का याद नहीं आता। क्या हो जाता है उन्हें। जब तक दूरी हो तब तक कहने को कुछ होता है। जैसे ही निकटता बढ़ती है वैसे ही शब्द बीच में नहीं बचते। जैसे-जैसे निकटता बढ़ती है, शब्द हटते जाते हैं। आत्यंतिक निकटता में तो मौन ही बचता है।

रूदादे गमे उल्फत उनसे हम
क्या कहते, क्योंकर कहते
एक हर्फ न निकला ओंठों से
और आंख में आंसू आ भी गए।

प्रेम के दुखों की कहानी भी कहने की सोचता है भक्त कि कितना संसार में तड़पा, किस-किस तरह की विरह की पीड़ा थी, किस-किस तरह तुम्हें याद किया!

रूदादे गमे उल्फत उनसे हम

क्या कहते, क्योंकर कहते

कहना तो चाहा था, बहुत तय करके भी आए थे कि सब शिकायतें करेंगे कि क्यों संसार में भेजा, क्यों भटकाया, क्यों इतना परेशान किया. . .

रूदादे गमे उल्फत उनसे हम
क्या कहते, क्योंकर कहते
एक हर्फ न निकला ओंठों से
और आंख में आंसू आ भी गए।

आंसू ही बच रहते हैं--और आनंद के आंसू! भूल में मत पड़ना। प्रेम के जगत में दुख के आंसू घटते ही नहीं; आनंद के ही आंसू घटते हैं। प्रेम इतनी बड़ी कीमिया है कि दुख के आंसुओं को भी आनंद के आंसुओं में रूपांतरित कर देती है।

"पिय को खोजन मैं चली, आपुइ गई हिराय।

आपुइ गई हिराय, कवन अब कहै संदेसा।।

जेकर पिय में ध्यान, भई वह पिय के भेषा।"

प्यारा वचन है। हीरों से भी तौलो तो न तुले, ऐसा वचन है।

"जेकर पिय में ध्यान. . ."।

जिसने उस प्यारे के ध्यान में अपने को डुबाया. . . जेकर पिय के ध्यान, भई वह पिय के भेषा. . . वह प्यारा ही हो गया। वह प्यारे के साथ एक हो गया। जिसने उसका ध्यान किया, वह वही हो गया। प्रभु को जानते ही प्रभुमय हो जाते हैं। प्रभु को जानते ही प्रभु हो जाते हैं।

"जेकर पिय में ध्यान, भई वह पिय के भेषा।

आगि माहि जो परै, सोउ अगनी हवै जावै।"

स्वभावतः अग्नि में जो गिरेगा, वह अग्निरूप हो जाएगा। उसमें से भी लपट उठेगी, वह भी उसी रंग में रंग जाएगा।

"भृंगी कीट को भेंट, आपु सम लैइ बनावै।"

पतंगा आता है, गिर जाता है दीये की ज्योति पर, ज्योतिर्मय हो जाता है।

"भृंगी कीट को भेंट, आपु सम लैइ बनावै।

आगि माहि जो परै, सोउ अगनी हवै जावै।।

जेकर पिय में ध्यान, भई वह पिय के भेषा।

आपुइ गई हिराय, कवन अब कहै संदेसा।।"

पतंगा कितनी यात्रा करके आया था, कितने दूर अंधेरे कोनों से, कितनी आकांक्षाओं-अभिलाषाओं-अभीप्साओं को लेकर, कितनी प्रार्थनाएं थीं हृदय में, कितना क्या कुछ कहने को था; दीये की तलाश-तलाश चलती रही थी; जन्मों-जन्मों की तलाश के बाद आज दीये की ज्योति मिली थी--और पतंगा आकर उसमें गिर जाता है और ज्योतिरूप हो जाता है। संदेशा कहने को न समय मिलता न सुविधा मिलती। संदेशा कहने वाला ही नहीं बचता।

यह क्रांति गुरु के पास भी घटती है। अगर शिष्य सच में ही समर्पित है तो गुरु के पास भी आकर कुछ कहने को नहीं बचता। एक सन्नाटा रह जाता है। एक अपूर्व सन्नाटा। जीवंत! ज्योतिर्मय! चैतन्य-रूप! बड़ा चिन्मय! अहोभाव! आनंद-अश्रु! एक मग्नता! एक मस्ती! एक नाच। लेकिन कहने को कुछ भी नहीं बचता।

"सरिता बहिकै गई, सिंध में रही समाई।

सिव सक्ति के मिले, नहीं फिर सक्ति आई।।"

और जब एक बार इस प्रेमी से मिलना हो जाता है तो लौटना नहीं होता। फिर लौटना नहीं है।

"सरिता बहिकै गई, सिंध में रही समाई।"

खलील जिब्रान ने कहा है : जब नदी भी गिरने लगती है सागर में तो ठिठकती है; एक क्षण को अपने को रोकती है; पीछे लौट कर देखती है। वे सब घाट जहां से गुजरी, वे सब तीर्थ, वे सारे लोग जिनसे राह में मिलना हुआ, अच्छे-बुरे, हजार-हजार स्मृतियां, पहाड़ के उत्तुंग शिखर, मैदानों की गंदगी, वृक्षों की छायाएं, पक्षियों के गीत, आकाश में उड़ते बादल, चांद-तारे, उनकी झलक, उनके प्रतिफलन--लंबी कथा है। अब गंगा चलती है हिमालय से, सागर तक जाते-जाते हजारों मील की यात्रा है। हजारों अनुभव होते हैं।

जिब्रान ठीक कहता है कि सरिता भी सागर में गिरने के पहले एक क्षण ठिठक जाती है, लौट कर पीछे देखती है, याद करती है और डरती भी है। यह सागर सामने खड़ा है--विराट, असीम, कूलहीन, तटहीन--इसमें गए तो खो जाएंगे।

गुरु के पास पहुंच कर भी शिष्य घबड़ाता है, डरता है, कंपता है, बचना चाहता है। लेकिन गुरु में गिरना सीखना पड़े। गुरु में जो गिरना सीखे वही किसी दिन परमात्मा में गिर सकता है। गुरु में गिरना तो परमात्मा में गिरने का पूर्व अभ्यास है--क, ख, ग; पाठ का प्रारंभ, श्री गणेशाय नमः।

"सरिता बहिकै गई, सिंध में रही समाई।

सिव शक्ति के मिले, नहीं फिर सक्ति आई।।"

जैसे ही शिव और शक्ति का मिलन हो जाता है, फिर लौटना नहीं, फिर शक्ति वापस नहीं लौटती। जैसे प्रिय और प्रेयसी का मिलना हो गया, प्रेयसी खो गई। प्रेयसी यानी हम। प्रिय यानी परमात्मा।

"पलटू दिवाल कहकहा, मत कोउ झांकन जाय।

पिय को खोजन मैं चली, आपुइ गई हिराय।।"

"पलटू दिवाल कहकहा. . ."!

चीन की दीवाल की तरफ इशारा है। चीन की दीवाल के संबंध में यह कथा है कि चीन की दीवाल, पहले तो दुनिया की सबसे बड़ी दीवाल है, हजारों मील, पहाड़ों को पार करती, नदियों को पार करती, मैदानों को पार करती। ऐसी कोई दीवाल दुनिया में नहीं। बड़ी चौड़ी दीवाल है, पहाड़ जैसी दीवाल है। एक बैलगाड़ी चल सके दीवाल के ऊपर। बड़ी ऊंची दीवाल है, उसको पार करना मुश्किल है।

चीन की दीवाल के संबंध में एक लोकोक्ति है कि चीन की दीवाल में एक खतरा है। वह इस तरकीब से बनाई गई है कि अगर कोई उस पर चढ़ कर दूसरी तरफ देखे तो उसे एकदम कहकहा छूटता है, एकदम हंसी छूटती है। वह इतना मस्त हो जाता है, ऐसे नशे में डूब जाता है कि तत्क्षण छलांग लगा कर कूद जाता है उस तरफ और फिर खो जाता है, फिर कभी उसका पता नहीं चलता। यह जरूर चीन के बाहर से जो दुश्मन चीन पर हमला करने के लिए आते रहे होंगे, उन्हीं से बचने के लिए दीवाल बनाई गई थी। उनमें यह कहानी चल पड़ी होगी कि चीन की दीवाल एक तो चढ़ना मुश्किल और अगर चढ़ जाओ और अगर उस तरफ उतर गए तो फिर लौटना मुश्किल। सावधान, कोई चढ़ना मत और उस तरफ झांक कर देखना मत। उसमें बड़ा जादू है। जो झांक कर देखता है, उसका कूदने का मन हो जाता है।

उसी की तरफ इशारा है पलटू का। बड़ा प्यारा उपयोग किया।

"पलटू दिवाल कहकहा, मत कोउ झांकन जाय।"

पलटू कहते हैं : तुम्हें मैं पहले ही सावधान कर देता हूं, यह परमात्मा जो है--दीवाल कहकहा। फिर मुझ से मत कहना। मैं तुम्हें पहले ही बताए देता हूं। परमात्मा को खोजने चले हो, एक बात ख्याल रखना : परमात्मा को इस तरह न खोज पाओगे कि परमात्मा तुम्हारी मुट्ठी में बंद हो जाएगा। परमात्मा को खोजने बहुत लोग चलते हैं। उनका ख्याल, उनकी दृष्टि यही होती है जैसे धन को तिजोड़ी में बंद कर लिया है, एक दिन परमात्मा को भी तिजोड़ी में बंद कर देंगे। वे यही सोचते हैं कि परमात्मा का भी परिग्रह कर लेंगे। वह उनकी अकड़ की ही खोज है। वह असली खोज नहीं है। वह अहंकार की ही यात्रा है। वे कहते हैं हमने धन पाया, पद पाया, सब पाया; अब परमात्मा को पाकर रहेंगे।

मोरारजी देसाई जिस दिन प्रधानमंत्री बने, एक पत्रकार ने उनसे पूछा कि आपकी जीवन भर की जो खोज थी और आपके जीवन भर की जो आकांक्षा थी, वह पूरी हो गई, आप प्रसन्न होंगे? उन्होंने कहा : यह कुछ भी नहीं, अभी तो मुझे परमात्मा को खोजना है। सुनने वाले को लगेगा कि बड़ी धार्मिक बात है।

जरा भी धार्मिक नहीं है। परमात्मा को ही खोजना है तो दिल्ली से परमात्मा की तरफ जाने का कोई रास्ता अनिवार्य रूप से थोड़े ही गुजरता है! दिल्ली खोजने की क्या जरूरत, परमात्मा ही खोजना है अगर तो? जितनी मेहनत और जितना श्रम दिल्ली पहुंचने में लगता है, इससे बहुत कम श्रम और बहुत कम मेहनत से आदमी परमात्मा तक पहुंच सकता है। और सच तो यह है कि दिल्ली परमात्मा से ठीक विपरीत दिशा में है। जितना दिल्ली में चले गए उतना परमात्मा से दूर चले गए। लेकिन मोरारजी देसाई को ऐसा लगता है कि पहले प्रधानमंत्री होना, फिर परमात्मा को खोजना; जैसे कि परमात्मा की सीढ़ी प्रधानमंत्री के आगे है! जब तक प्रधानमंत्री की सीढ़ी न चढ़ेंगे, परमात्मा की सीढ़ी कैसे चढ़ेंगे!

यह अहंकार की ही खोज है। यह परमात्मा की बात भी अहंकार की ही बात है। यह सिर्फ इस बात की घोषणा है कि इससे हम कहां तृप्त होने वाले, यह तो ठीक है, करके दिखा दिया; अब वह भी करके दिखाना है--परमात्मा को भी पाना है। मगर जो आदमी इस तरह परमात्मा को खोजने चलेगा, वह कभी न पा सकेगा। परमात्मा को कोई पद, धन की तरह नहीं खोज सकता। परमात्मा को तो प्रेमी की तरह खोजना पड़ता है। प्रेमी का मतलब होता है जो खोने को तैयार है, मिटने को तैयार है। अपने को मिटा कर जो खोज सकता है, वही खोजता है; जैसे सरिता सागर में गिरती है।

इसलिए पलटू कहते हैं : सावधान कर देते हैं, भाई, हमारी बातों में मत आ जाना कि हमने कहा खोजो प्रेमी को और हमने कहा वसंत बीता जा रहा है और देखो यह तालाब सूखने लगा और मछली दुखी होने लगी, इसलिए खोजो परमात्मा को। हमारी बात में मत आ जाना। एक बात सावधानी से समझ लेना, यह शर्त ध्यान में रहे--

"पलटू दीवाल कहकहा... "।

एक बार अगर चढ़ गए ध्यान की दीवाल पर और उस तरफ झांक कर देखा तो फिर लौट न सकोगे। जाओ तो यह ख्याल रख कर जाना; फिर पीछे हमसे मत कहना, शिकायत मत करना कि यह भी खूब खोज पकड़ा दी जिसमें हम खुद ही खो गए! खोज तो ऐसी कि हम तो बचें और खोज हो जाए। यह परमात्मा की खोज ऐसी खोज नहीं है।

"पलटू दिवाल कहकहा, मत कोउ झांकन जाय।"

इसलिए सावधान किए देते हैं कि अगर अपने को बचा कर परमात्मा पाना हो, अगर अहंकार की ही एक यात्रा का हिस्सा हो परमात्मा का पाना, तो कृपा करके मत जाना। यह दीवाल कहकहा है, इसके उस तरफ झांका कि फिर कूदना ही पड़ता है। और जो कूद गया वह खो गया और फिर कभी लौट कर नहीं आ सकता।

"पिय को खोजन मैं चली, आपुइ गई हिराय।"

तो मैं प्रेमी को खोजने गया और खुद खो गया। लेकिन यह खो जाना धन्य भाग है।

तुम्हारा होना सिवाय पीड़ा और दुख के और क्या है? तुम्हारा होना सिवाय एक घाव के, और क्या है? तुम्हारे होने में है ही क्या? मनुष्य के होने में है ही क्या? इसे बचाने की कोशिश करोगे तो परमात्मा से वंचित रहोगे। इसे खोने की तैयारी चाहिए।

इसलिए जब तुम मंदिर में जाकर फूल चढ़ाते हो तो तुम धोखा देते हो। अपने को जिसने नहीं चढ़ाया, उसके सब चढ़ाए फूल बेकार हैं। या तुम धन चढ़ाते हो, तो भी तुम धोखा देते हो। तुम सोचते हो कि तुम्हारे धन को परमात्मा भी धन समझता होगा। तुमने अपने ही जैसा मूढ़ उसे भी समझ रखा है, तुम्हारे सिक्कों के धोखे में वह भी आएगा!

अगर चढ़ाना हो तो अपने को चढ़ाना। उसके अतिरिक्त और कोई चीज नहीं चढ़ाई जा सकती। आदमी ने सब चीजें चढ़ाई हैं। यहां तक कि उसकी समझ में आ गया कि धन तो अपना बनाया हुआ है, इसको क्या चढ़ाना--तो उसने पशु भी चढ़ाए, पशु-वध किए। यज्ञ किए--गाय चढ़ाओ घोड़ा चढ़ाओ। और यहां तक कि आदमी भी चढ़ाए, नरमेध यज्ञ भी किए।

बुद्ध के जीवन में उल्लेख है : एक गांव में यज्ञ हो रहा है और गांव का राजा एक बकरे को चढ़ा रहा है। बुद्ध गांव से गुजरे हैं, वे वहां पहुंच गए। और उन्होंने उस राजा को कहा कि यह क्या कर रहे हैं? इस बकरे को चढ़ा रहे हैं, किसलिए? तो उसने कहा कि इसके चढ़ाने से बड़ा पुण्य होता है। तो बुद्ध ने कहा, मुझे चढ़ा दो तो और भी ज्यादा पुण्य होगा। वह राजा थोड़ा डरा। बकरे को चढ़ाने में कोई हर्जा नहीं, लेकिन बुद्ध को चढ़ाना! उसके भी हाथ-पैर कंपे। और उसने कहा कि अगर सच में ही कोई, बुद्ध ने कहा : अगर सच में ही कोई लाभ करना हो तो अपने को चढ़ा दो। बकरा चढ़ाने से क्या होगा?

उस राजा ने कहा : ना, बकरे का कोई नुकसान नहीं है, स्वर्ग चला जाएगा। बुद्ध ने कहा : यह बहुत ही अच्छा है, मैं स्वर्ग की तलाश कर रहा हूं, तुम मुझे चढ़ा दो, तुम मुझे स्वर्ग भेज दो। और तुम अपने माता-पिता को क्यों नहीं भेजते स्वर्ग और खुद को क्यों रोके हुए हो? जब स्वर्ग जाने की ऐसी सरल तुम्हें सुगम तुम्हें तरकीब मिल गई है तो काट लो गर्दन। बकरे को बेचारे को क्यों भेज रहे हो जो शायद जाना भी न चाहता हो स्वर्ग? बकरे को खुद ही चुनने दो कहां उसे जाना है।

उस राजा को समझ आई। उसे बुद्ध की बात ख्याल में पड़ी। यह बड़ी सचोट बात थी।

आदमी ने सब चढ़ाया है--धन चढ़ाया, फूल चढ़ाए। फूल भी तुम्हारे नहीं--वे परमात्मा के हैं। वृक्षों पर चढ़े ही हुए थे। वृक्षों पर परमात्मा के चरणों में ही चढ़े थे। वृक्षों के ऊपर से उनको परमात्मा की यात्रा हो ही रही थी। वहीं तो जा रही थी वह सुगंध, और कहां जाती? तुमने उनको वृक्षों से तोड़ कर मुर्दा कर लिया। और फिर मुर्दा फूलों को जाकर मंदिर में चढ़ा आए। और समझे कि बड़ा काम कर आए। कि कभी धूप-दीप जलाए, कि कभी जानवर चढ़ाए, कि कभी आदमी भी चढ़ा दिए! अपने को कब चढ़ाओगे? और जो अपने को चढ़ाता है, वही उसे पाता है।

इसलिए पलटू ठीक कहते हैं--

"पलटू दिवाल कहकहा, मत कोउ झांकन जाय।"

पहले सावधान कर देते हैं, अगर जाना हो तो यह बात समझ कर जाना कि यह दीवाल कहकहा है। जो गया वह लौटा नहीं। जो गया वह खोया।

कबीर ने कहा है कि खोजने चला था, खुद खो गया। ऐसे खो गया जैसे बूंद सागर में खो जाती है। ऐसे खो गया जैसे कि सागर बूंद में खो जाता है। मगर यह खो जाना "खो जाना" नहीं है। तुम्हारा होना असली खो जाना है। और तुम्हारा खो जाना तुम्हारा असली होना है। क्योंकि जिस दिन सरिता सागर में उतर जाती है, एक तरफ से तो सच है बात कि सरिता खो गई; दूसरी तरफ भी देखो; सरिता सागर हो गई! क्षुद्र से छूटी, विराट से जुड़ी। ना-कुछ से छूटी, सब कुछ से जुड़ी। किनारे गए जरूर, लेकिन अनंत का किनारा मिला।

पलटू के इन वचनों को धीरे-धीरे पीना। ये शराब जैसे वचन हैं। इनको पीना, रस ले-ले कर पीना। चुस्की ले-ले कर पीना। एक-एक वचन तुम्हें तरंगित करेगा। एक-एक वचन तुम्हें हिलाएगा, डुलाएगा। तुम्हारे भीतर सोई हुई ऊर्जा धीरे-धीरे नृत्य-मग्न हो उठेगी। और तुम्हारे भीतर क्या-क्या नहीं छिपा है! लेकिन तुम तो बाहर खोजते हो, इसलिए भीतर का पता नहीं चलता है। और तुम्हारे भीतर क्या-क्या नहीं छिपा है! तुम्हारे भीतर पूरा परमात्मा बैठा है, लेकिन तुम उसे छोड़ कर और सब जगह भागे जाते हो। लौटो घर!

"क्या सोवै तू बावरी, चाला जात बसंत।।

चाला जात बसंत, कंत ना घर में आए।

धृग जीवन है तोर, कंत बिन दिवस गंवाये।।

गर्व गुमानी नारि फिरै, जोवन की माती।

खसम रहा है रूठि, नाहीं तू पठवै पाती।।

लगै न तेरो चित्त, कंत को नाहिं मनावै।

कापर करै सिंगार, फूल की सेज बिछावै।।

पलटू ऋतु भरि खेलि ले, फिर पछतावै अंत।

क्या सोवै तू बावरी, चाला जात बसंत।।"

जागते क्यों नहीं? सोने में ऐसा क्या मिल रहा है? सपने मिल रहे हैं। सुखद-दुखद सपनों का जाल चल रहा है। जागने से डरते क्यों हो? जागने से डर का कारण है : जागे कि मिटे। पलटू दिवाल कहकहा! जागे कि

मिटे। होश आया कि गए। जब तक बेहाशी है तब तक बने रहो, तब तक अभिनय चलेगा, तब तक यह नाटक चलेगा। जैसे ही जरा होश की किरण आई कि नाटक बंद हुआ। उससे डरे हुए हो। मगर तुम कितने ही डरे रहो, मौत आती है। मौत आ रही है।

"ज्यौं-ज्यौं सूखे ताल है, त्यौं-त्यौं मीन मलीन।।

त्यौं-त्यौं मीन मलीन, जेठ में सूख्यो पानी।

तीनों पन गए बीति, भजन का मरम न जानी।।

कंवल गए कुम्हिलाय, हंस ने किया पयाना।

मीन लिया कोऊ मारि, ठांय ढेला चिहराना।।

ऐसी मानुष-देह वृथा में जात अनारी।

भूला कौल-करार, आपसे काम बिगारी।।

पलटू बरस और मास दिन, पहर घड़ी पल छीन।

ज्यौं-ज्यौं सूखे ताल है, त्यौं-त्यौं मीन मलीन।।"

रोज-रोज तुम्हारा तालाब सूखता जा रहा है। तुम्हारे प्राणों की मछली रोज-रोज उदास होती जा रही है, म्लान होती जा रही, परेशान होती जा रही। मौत की छाया पड़ने लगी--पहले दिन से ही पड़ने लगती है। बच्चा पैदा हुआ कि मरने लगता है। एक दिन का बड़ा हुआ यानी एक दिन मर गया। पहली श्वास ली कि उसी के साथ अंतिम श्वास प्रविष्ट हो गई। अब मामला चला-चली का है। अब गए कि तब गए। जाना ही पड़ेगा। जाना तो पड़ेगा, तो जाना है ही निश्चित--मौत में जाओ, या "दीवाल कहकहा"। दो उपाय हैं जाने के। या तो मौत के जाल में फंसोगे, परवश खींचे जाओगे, फिर जीवन में फेंके जाओगे।

एक दूसरी राह भी है--समाधि की, संन्यास की। एक दूसरा उपाय भी है--खुद ही कूद जाओ परमात्मा में। इसके पहले कि मौत मारे, खुद मर जाओ। और जो खुद मर गया, स्वांतः सुखाय मर गया, उसके जीवन में अमृत का वास आ जाता है।

"पिय को खोजन मैं चली, आपुइ गई हिराय।।

आपुइ गई हिराय, कवन अब कहै संदेशा।

जेकर पिय में ध्यान, भई वह पिय के भेषा।।

आगि-माहि जो परै, सोउ अगनी हवै जावै।

भृंगी कीट को भेंट आपु सम लैइ बनावै।।

सरिता बहिकै गई, सिंध में रही समाई।

सिव सक्ति के मिले, नहीं फिर शक्ति आई।।

पलटू दिवाल कहकहा, मत कोउ झांकन जाय।

पिय को खोजन मैं चली, आपुइ गई हिराय।।"

मैं भी तुमसे कहता हूं कि जाओगे तो लौट न सकोगे। मगर जाओ। वही पलटू भी कह रहे हैं। जाओ--जरूर जाओ!

मिटो! मिटने से बड़ा धन्यभाग नहीं है।

स्वेच्छा से मिटो तो समाधि फल जाती है; स्वेच्छा से न मिटोगे तो मौत।

अपने हाथ से विसर्जन करोगे तो समाधि। कोई आकर मछली को पकड़ कर ले जाएगा, तो मृत्यु।

तुम्हारे हाथ में है मृत्यु को समाधि बना लेना या समाधि के अवसर को खो देना और फिर मृत्यु में मरना।

जो मृत्यु को समाधि बना लेता है, वही संन्यासी है।

जो मृत्यु को समाधि बना लेता है, वही समझदार है।

आज इतना ही।

छठवां प्रवचन

जानिये तो देव, नहीं तो पत्थर

पहला प्रश्नः कहावत है, मानिए तो देव, नहीं तो पत्थर। क्या सब मानने की ही बात है?

मैं कहावत को थोड़ा सा बदलना चाहूंगाः "जानिए तो देव, नहीं तो पत्थर।" मानने से तो पत्थर पत्थर ही रहता है; सिर्फ तुम्हारी आंखें भ्रम से भर जाती हैं; सिर्फ तुम पत्थर में देवता को देखने लगते हो, मानने से पत्थर में अंतर नहीं पड़ता मानने से तो सिर्फ तुम्हारी आंख का चश्मा बदल जाता है। तुमने रंगीन चश्मा आंख पर रख लिया तो सभी चीजें रंगीन दिखाई पड़ने लगती हैं; लेकिन सभी चीजें रंगीन हो नहीं गईं। तुम चश्मा उतार कर रख दोगे, चीजें फिर रंगहीन हो जाएंगी। चीजें तो जैसी हैं वैसी ही हैं। हिंदू मंदिर में गए; यदि तुम मुसलमान हो तो पत्थर पत्थर ही रहता है, क्योंकि तुम्हारी आंख पर हिंदू का चश्मा नहीं है। यदि तुम हिंदू हो तो पत्थर देवता मालूम होता है क्योंकि तुम्हारी आंख पर हिंदू का चश्मा है। अगर तुम जैन-मंदिर में गए तो महावीर की मूर्ति पत्थर ही बनी रहती है, देवत्व उसमें प्रकट नहीं होता; तुम्हारी आंख पर जैन का चश्मा नहीं है।

मानने से तो सिर्फ चश्मे बदलते हैं। मानने के धोखे में मत पड़ना। जानने की यात्रा करो। जानो तो निश्चित देव ही है, पत्थर तो है ही नहीं। मूर्तियों में ही नहीं, पहाड़ों में भी जो पत्थर है वहां भी देवता ही छिपा है। जानने पर तो परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ बचता ही नहीं है। जाना कि परमात्मा के द्वार खुले हैं--हर तरफ से, हर दिशा से, हर आयाम से। कंकड़-कंकड़ में वही। तृण-तृण में वही। पल-पल में वही। लेकिन जानने से।

विश्वास से शुरू मत करना; बोध से शुरू करो। विश्वास तो आत्मघात है। अगर मान ही लिया तो खोजोगे कैसे? और तुम्हारे मानने में सत्य कैसे हो सकता है? एक क्षण पहले तक तुम्हें पत्थर दिखाई पड़ता था, और अब तुमने मान लिया और देवता देखने लगे। यह देखने लगे चेष्टा करके, लेकिन भीतर किसी गहराई में तो तुम अब भी जानोगे न कि पत्थर है! उस भीतर की गहराई को कैसे बदलोगे? संदेह तो कहीं न कहीं छिपा ही रहेगा, बना ही रहेगा। इतना ही होगा कि ऊपर-ऊपर विश्वास हो जाएगा; संदेह गहरे में सरक जाएगा। यह तो और खतरा हो गया। संदेह ऊपर-ऊपर रहता, इतना हानिकर नहीं था। यह तो संदेह और भीतर चला गया, और प्राणों के रग-रेशे में समा गया। यह तो तुम्हारा अंतःकरण बन गया।

यही तो हुआ है। दुनिया में इतने लोग हैं, करोड़ों-करोड़ों लोग मंदिर जाते, मस्जिद जाते, गुरुद्वारा जाते, चर्च जाते और इनके भीतर गहरा संदेह भरा है। ईसाई और हिंदू और मुसलमान सब ऊपर-ऊपर हैं और भीतर संदेह की आग जल रही है। और वह संदेह ज्यादा सच्चा है, क्योंकि संदेह तुमने थोपा नहीं है। ज्यादा स्वाभाविक है। और तुम्हारा विश्वास थोपा हुआ है, आरोपित है। आरोपित विश्वास स्वाभाविक संदेह को कैसे मिटा सकेगा? आरोपित विश्वास तो नपुंसक है। स्वाभाविक संदेह अत्यंत ऊर्जावान है। फिर कौन मिटा सकता है स्वाभाविक संदेह को? स्वाभाविक श्रद्धा ही मिटा सकती है सत्य संदेह को। बलशाली संदेह को बलशाली श्रद्धा ही मिटा सकती है और श्रद्धा कब बलशाली होती है? तुम्हारे करने से नहीं होती; जानने से होती है, बोध से होती है। तुम देख लो कि परमात्मा है, तब श्रद्धा होती है। तुमने मान लिया, ये तो लचर बातें हैं; ये तो बैसाखियां हैं, जिनके सहारे तुम बहुत चल चुके।

तो जिन्होंने यह कहावत गढ़ी होगी, मानिए तो देव, नहीं तो पत्थर, उन्होंने सार की बात कही है। यही स्थिति है अधिक मनुष्यता की। मान-मान कर सब चल रहे हैं। अंधे ने मान लिया है कि रोशनी है। बस माना है; आंख खुली नहीं; खुली आंख ने देखा भी नहीं। यह भी हो सकता है कि अंधा आंख पर चश्मा लगा ले। लेकिन

अंधे की आंख पर चश्में का क्या मूल्य है? आंख हो तो चश्मा देखने में सहायता भला कर दे; आंख न हो तो चश्मा क्या करेगा? तो बहुत से अंधे चश्मे लगाए चल रहे है; फिर भी टकराते हैं। टकराएंगे ही। बहुत से अंधों ने चश्मा भी लगा लिया है, हाथ में लालटेनें भी ले रखी हैं ताकि रोशनी भी साथ रहे। मगर फिर भी टकराएंगे।

तुम्हारे शास्त्र तुम्हारे हाथ में लटकी हुई लालटेनों की तरह हैं। और तुम्हारे विश्वास तुम्हारी अंधी आंखों पर चढ़े हुए चश्मों की भांति हैं। इनका कोई मूल्य नहीं है दो कौड़ी मूल्य नहीं है। इनसे हानि है; लाभ तो जरा भी नहीं। इनके कारण आंख नहीं खुल पाती है। इनकी भ्रांति के कारण तुम कभी जानने की चेष्टा में संलग्न ही नहीं हो पाते।

मैं तुमसे कहता हूं : परमात्मा को मानना मत। मानने की जरूरत नहीं है। परमात्मा को मानोगे तो फिर जानोगे किसको? परमात्मा को मानने का मतलब तो यह हुआ कि तुमने जानने में हताशा प्रकट कर दी, तुम हार गए, तुमने अस्त्र-शस्त्र डाल दिए। तुमने कहा, खोज समाप्त हो गई; जानने को तो है नहीं, माने लेते हैं। सूरज को तो नहीं मानते हो, चांद को नहीं मानते हो; जानते हो। इस संसार को मानते तो नहीं, जानते हो। और परमात्मा को मानते हो? यह माना हुआ परमात्मा अगर तुम्हारे जाने हुए संसार के सामने बार-बार हार जाता है तो कोई आश्चर्य तो नहीं है। परमात्मा भी जाना हुआ होना चाहिए। जिस दिन परमात्मा जाना हुआ होता है उस दिन यह संसार फीका पड़ जाता है, माया हो जाता है, सपना हो जाता है।

अनुभव ही संपत्ति बनती है; थोथे विश्वास नहीं।

तो मैं इस कहावत में थोड़ा फर्क करता हूं। मैं कहता हूंः "जानिए तो देव, नहीं तो पत्थर।"

लेकिन जानने के लिए बड़ी यात्रा करनी आवश्यक है। जानने के लिए अपने भीतर बड़ी साधनाओं से गुजरना होगा। जानने के लिए आंख पर चढ़े हुए जालों को काटना होगा, गलाना होगा। जानने के लिए सबसे पहली तो बात है कि मानी हुई बातें छोड़ देनी पड़ेंगी--जो कि बहुत कष्टपूर्ण हैं। क्योंकि वही तुम्हारी संपदा है। उसी मानने को तुम सोचते हो तुम्हारा ज्ञान है। उस सारे ज्ञान को छोड़ देना होगा। एक बार तो तुम्हें निपट रूप से अज्ञानी हो जाना पड़ेगा। इसके पहले कि तुम सच में ज्ञान की किरण को पाओ, तुम्हें अज्ञान की रात से गुजरना होगा। एक बार तो तुम्हें बिलकुल निर्धन हो जाना पड़ेगा, क्योंकि अभी जिसे तुम धन कहते हो, वह है नहीं, सिर्फ ख्याल में है। मन के लड्डू! इन्हें तो छोड़ देना पड़ेगा। एक बार तो तुम्हें अपना भिखमंगापन देखना पड़ेगा; अपना अज्ञान, अपना अंधेरा, अपना अंधापन, अपनी नकारात्मक स्थिति, अपनी नास्तिकता को झेलना पड़ेगा। यह नास्तिकता का कांटा तुम्हारे प्राणों में चुभे, इसकी पीड़ा अनुभव हो, यह जरूरी है।

तुमने उपाय कर लिए हैं और तुम झूठे आस्तिक बन गए हो, और भीतर छिपा नास्तिक बैठा है। इतने आस्तिक हैं दुनिया में, जितने लोग सोचते हैं कि आस्तिक हैं? तो फिर यह दुनिया धार्मिक होती। तो यहां जगह-जगह परमात्मा की ऊर्जा उठती हुई दिखाई पड़ती। यहां हर आंख में परमात्मा की झलक होती, और हर पैर में परमात्मा का नाच होता और हर कंठ में परमात्मा के गीत होते। यहां प्रेम की बाढ़ आई होती, अगर इतने लोग आस्तिक होते। ये सौ आस्तिकों में कभी एकाध भी तो आस्तिक नहीं होता। फिर ये निन्यानबे कौन हैं?

ये नास्तिक हैं। और इन्होंने अपने को झूठा भुलावा दे लिया है कि हम आस्तिक हैं। ये नास्तिकों से बदतर हालत में हैं। नास्तिक कम से कम सच्चा तो है। इतना तो कहता है कि मुझे पता नहीं है और मैं नहीं मानता। जब तक पता नहीं तो कैसे मानूं? नास्तिक कम-से-कम ईमानदार तो है, प्रामाणिक तो है। जो नहीं जाना है, कहता है, नहीं मानता हूं। आस्तिक तो बेईमान है। जो नहीं जाना है उसको मानता है; जो जानता है उसको झुठलाता है; और जो नहीं जानता है उसे मानता है। आस्तिक तो बड़ी ही कशमकश में है, बड़ी परेशानी में है।

और सारे धर्म तुम्हें सिखाते हैं सत्य की बात, और सारे धर्मों को तुमने बुनियादी असत्यों में बदल लिया है। यह सबसे बड़ा असत्य है। जो नहीं जाना हो, उसे मान लेने से बड़ा असत्य और क्या हो सकता है?

तुम परमात्मा के साथ भी असत्य का संबंध जोड़े हुए हो। विश्वास का अर्थ होता है, परमात्मा से झूठ का संबंध; परमात्मा के सामने भी तुम झूठे हो।

और सब तरफ झूठ चलाओ, और तरफ सारे संसार में तुम बेईमानियां करो; कम-से-कम एक जगह तो छोड़ दो। कम-से-कम एक जगह तो अपनी प्रवंचना मत लाओ। एक जगह तो खड़े हो जाओ नग्न, जैसे हो, निर्वस्त्र। एक जगह तो कह दो कि जो है वही है, वैसा ही है; मैं इसको झुठलाऊंगा न, कुछ का कुछ न कहूंगा। तब तुम अचानक पाओगे कि तुम्हारी आस्तिकता बहने लगी और तुम्हारा नास्तिक उभरने लगा। मगर मैं कहता हूं, यह असली आस्तिकता के जन्म के पहले जरूरी है।

असली आस्तिकता के पहले झूठी आस्तिकता छोड़ देनी पड़ती है। असली आस्तिकता के पहले असली नास्तिकता का कदम अनिवार्य है। जिन्होंने भी परमात्मा के मंदिर की यात्रा की है वे नास्तिकता की सीढ़ियों से चढ़े हैं; उन्होंने नकार दिया है झूठ को। फिर अगर उस झूठ में उनकी आस्थाएं भी थीं, भरोसे भी थे, विश्वास भी थे, धारणाएं भी थीं, तो उनकी भी उन्होंने फिकर नहीं की, उनको भी नकार दिया है। अगर वेद बीच में आए और कुरान और गीता बीच में आई तो उन्होंने उन्हें भी हटा दिया है। उन्होंने सिर्फ एक बात पर नजर रखी कि जो हम जानेंगे, जो हमारा अनुभव होगा।

कानों सुनी सो झूठ सब, आंखों देखी सांच।

जो-जो कान से सुन लिया है वह विश्वास; जो आंख से देखा, वह श्रद्धा।

तुम्हारा ईश्वर कानों से सुना हुआ है या आंखों से देखा हुआ है? तुम्हारी प्रार्थना कानों से सुनी हुई है या आंखों से देखी हुई है? तुम्हारे सत्य, जिन पर तुमने अपने जीवन को दांव पर लगा रखा है, तुम्हारे अनुभव से निसृत हुए हैं, या उधार हैं, बासे हैं, दूसरों से लिए हैं? अगर दूसरों से लिए हैं तो जितनी जल्दी तुम उनसे छूट जाओ, उतना अच्छा है। क्योंकि उन्हीं के कारण तुम्हारे पैरों में जंजीरें पड़ी हैं, और तुम सत्य तक न जा सकोगे।

यही फर्क है श्रद्धा और विश्वास में। विश्वास होता है उधार, कानों सुना; सत्य होता है अपना, निजी। मैं तुम्हें किसी पर विश्वास करने को नहीं कहता हूं। मैं तो इतना ही कहता हूं कि परमात्मा है तो घबराते क्यों हो? खोजो, मिल जाएगा। इतने डरते क्यों हो आंख खोलने से? अगर है तो मिल ही जाएगा। और अगर नहीं है तो भी अच्छा होगा कि जाहिर तो हो जाए हमें कि नहीं है, तो हम इस झंझट से बचें।

सत्य हर हाल में कल्याणकारी है। इस तरफ हो या उस तरफ, लेकिन सत्य निर्णायक है।

तो मैं तुमसे कहूंगा, जानने की यात्रा पर निकलो। माने तो बहुत, कहां पहुंचे? कहीं के न रहे मान कर। जानने की यात्रा पर निकलो। तो पहली बात : तो छोड़ने पड़ेंगे सारे विश्वास। यह बात तुम्हें उलटी लगती है, अटपटी लगती है कि श्रद्धा पाने के लिए विश्वास छोड़ने पड़ेंगे। लेकिन यह तर्क बिलकुल साफ-सुथरा है। यह गणित बिलकुल सीधा है। इसे समझने के लिए कोई बहुत बुद्धिमता नहीं चाहिए।

अंधेरे में बैठे हो और सोचते हो रोशनी है, तो फिर दीया कैसे जलाओगे? अंधेरे को अंधेरे की तरह स्वीकार करो तो अंधेरे की स्वीकृति ही तुम्हारे भीतर दीया जलने की तड़फन बन जाएगी।

बैठे हो वासना में और ब्रह्मचर्य पर भरोसा करते हो। छोड़ो यह बकवास। यह बकवास सिर्फ वासना को छिपा लेने का उपाय है। आज तो तुम भी जानते हो कि वासना में भरे हो, लेकिन सोचते हो ब्रह्मचर्य कल होगा, परसों होगा, जल्दी ही ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाएंगे, इस सब वासना से छूट जाएंगे। भरोसा ब्रह्मचर्य में रखते हो; जीते वासना को हो। इससे तुम्हारे जीवन में द्वंद्व खड़ा होता है। इससे तुम दो टुकड़ो में टूट जाते; इससे तुम कभी अखंड नहीं हो पाते। और अखंड न हुए तो कैसी शांति? तुम्हारे भीतर कलह जारी रहेगी। निर्द्वंद न हुए तो कैसा सुख? तुम्हारे भीतर महाभारत छिड़ा रहेगा?

मानते ब्रह्मचर्य को हो, जानते वासना को हो--यह तुम्हारी अड़चन है। इसी ने तुम्हें विक्षिप्त किया है।

जानते धन को हो, मानते ध्यान को हो।

और स्वभावतः तुम्हारा जीवन तुम्हारे जानने से चलेगा, तुम्हारे मानने से नहीं चलेगा। इसलिए तुम अपनी मान्यताओं की लचर हालत देखते हो? ----काम नहीं आती हैं। बकवास करनी हो तो कर सकते हो; प्रवचन देना हो तो दे सकते हो; शास्त्र लिखना हो तो लिख सकते हो; किसी दूसरे अंधे को रास्ता बताना हो तो बता सकते हो। मगर तुम्हारे काम नहीं आती तुम्हारी जानकारियां। तुम्हारी जिंदगी तो आंदोलित होती है तुम्हारे ही अनुभव से। वे जो दूसरों से उधार जानकारियां ले ली हैं, विश्वास ले लिए हैं, उनसे क्या हुआ है? इस सत्य को देखो। तुम जिस ढंग से जी रहे हो, वही गवाह है कि तुम्हारी असली श्रद्धा कहां है।

सोचो, यहां धन की ढेरी लगी है और यहां ध्यान की ढेरी लगी है, और मैं तुमसे कहूं कि चुन लो। दोनों में से एक ही चुन सकते हो, और तुम कहते हो, मानता तो मैं ध्यान में हूं, मगर चुनूंगा धन को। तो क्या अर्थ होगा? अगर मानते ध्यान में हो तो फिर धन को क्यों चुन रहे हो? तुम कहते हो मानता तो ध्यान को हूं, लेकिन मैं कमजोर आदमी हूं, अभी बाल-बच्चे हैं, परिवार है, और ध्यान की अभी जल्दी क्या है, कर लेंगे, फिर कर लेंगे, बाद में कर लेंगे, धन तो अभी मिलता है, इसे तो उठा लें। फिर धन से मैं दान भी करूंगा, मंदिर भी बनवा दूंगा; पुरोहित रख दूंगा मंदिर में, पूजा करेगा; धार्मिक कृत्य करूंगा इस धन से, हालांकि मानता ध्यान में हूं।

तुम जो करते हो उससे ही पता चलता है कि तुम्हारी असली श्रद्धा कहां है; तुम जो कहते हो उससे कुछ पता नहीं चलता। तुम्हारा कृत्य ही तुम्हारी श्रद्धा का सूचक है, गवाह है। तो अपने कृत्यों को जांचो। तुम्हारे कृत्य ही बता देंगे तुम्हारा असली धर्म क्या है। कोई कहता है मेरा धर्म हिंदू है, कोई कहता है मेरा धर्म मुसलमान है, कोई कहता है मेरा धर्म जैन है और कोई कहता है मेरा धर्म बौद्ध है। इन आदमियों के कृत्य तो देखो। इन कृत्यों, इनके सब समान हैं। हिंदू भी धन के पीछे दौड़ा जा रहा है, मुसलमान भी धन के पीछे दौड़ रहा है, जैन भी दौड़ रहा है, बौद्ध भी दौड़ रहा है। और ये कहते हैं, हम में बड़ा मतभेद है, हमारे विश्वास बड़े अलग-अलग हैं। और चारों बाजार में दौड़े जा रहे हैं। इनके कृत्य को देखो और तुम पाओगे इन सबका धन ही धर्म है। मंदिर-मस्जिद से क्या फर्क पड़ता है? कुरान-बाइबिल से क्या फर्क पड़ता है?

असलियत तो इनकी जिंदगी है। इनकी जिंदगी की कहानी को परखो। इन सबका एक ही धर्म है; धन इनका धर्म है, पद इनका धर्म है। और बाकी सब बकवास है। बाकी तो ऐसे ही है जैसे एक ने एक रंग के कपड़े पहन रखे हैं, दूसरे ने दूसरे रंग के कपड़े पहन रखे हैं। यह तो कपड़ों का भेद हुआ। तुम्हारे भीतर तुम्हारी अंतरात्मा में कोई भेद है?

दुनिया में दो ही तरह के लोग होते हैं : आस्तिक और नास्तिक। मगर आस्तिक मैं उनको कहता हूं जिनकी जीवन-चर्या प्रमाण देती है कि वे आस्तिक हैं, जिनकी जीवन-चर्या ही जिनकी श्रद्धा की सूचक है। इसलिए मेरा जोर जानने पर है, मानने पर नहीं। तुम भगवान पर इतना कम भरोसा करते हो, इसलिए मान लेते हो। क्योंकि तुम जानते हो : अगर जानने गए, शायद मिले न मिले, मान ही लो, मान ही लेने में सार है। तुम्हें बहुत भरोसा भी नहीं है।

मैं तुमसे कहता हूं : जानो, क्योंकि डर की कोई बात नहीं है; परमात्मा है। तुम्हारे जानने से मिट नहीं जाएगा और तुम्हारे मानने से अगर न होगा तो हो नहीं जाएगा। जो नहीं है नहीं होगा, कितना ही मानो। और जो है, रहेगा; न मानो तो भी रहेगा, मानो तो भी रहेगा। जानो तो भी रहेगा, न जानो तो भी रहेगा। तुम्हारे जानने मानने, न मानने न जानने से कोई अंतर नहीं पड़ता है अस्तित्व में। परमात्मा है।

इसलिए मैं तुम्हें कमजोर नहीं बनाता और तुम्हें भयभीत नहीं करता। मैं तुमसे यह नहीं कहता कि अगर तुमने विश्वास खोया तो तुम भटक जाओगे। नहीं, मैं तुमसे कहता हूं : विश्वास के कारण तुम भटके हो।

ऐसा हुआ; यह घटना मैंने सुनी है। अमरीका में राष्ट्रपति कैनेडी के भाई की हत्या की गई--कैनेडी के बाद सिनेटर राबर्ट कैनेडी की हत्या की गई। जिस आदमी ने हत्या की--सिरहान ने--तो सारे अमरीका में क्या, सारी दुनिया में एक ही बात पूछी जा रही थी कि क्यों, क्यों हत्या की गई? कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता था। सिरहान पागल है, रुग्ण है, विक्षिप्त है? क्या मामला है? सिरहान का पिता तो दूर इ.जरायल में रहता है। पत्रकार वहां भी पहुंच गए और उन्होंने सिरहान के पिता से पूछा कि तुम तो अपने बेटे को भलीभांति जानते होओगे, तुमने इसे बचपन से बड़ा किया, क्यों, यह हत्या किसलिए की गई? क्या तुम्हें कुछ ख्याल में आता है कि इस बेटे में कुछ ऐसी बातें थीं, जिनके कारण यह हत्या हो गई हो? तुम वक्तव्य दो।

सिरहान के पिता ने कहा : आइ जस्ट डोंट नो। आइ एम कंफ्यूज्ड एंड क्रश्ड आइ टॉट माइ चिल्ड्रन टू फीयर गॉड। . . . मुझे कुछ पता नहीं। मैं तो खुद बड़े विभ्रम में पड़ गया हूं। मैं तो खुद बड़ा चिंतित हूं। मेरी तो समझ में नहीं आता; मेरा तो हृदय टूट गया। मैंने तो अपने हर बच्चे को ईश्वर से डरना सिखाया था। और यह मेरा बेटा ऐसा कैसे कर सका? मैं खुद ही यही पूछना चाहता हूं कि क्यों? मैंने तो अपने बेटों को, अपने बच्चों को ईश्वर से डरना सिखाया था। आइ टॉट माइ चिल्ड्रन टू फीयर गॉड।

अब अगर तुम मुझसे पूछो तो वह जो ईश्वर का डर सिखाया, वही उपद्रव की जड़ है, वही रोग का घर है; वहीं से बीमारी उठी। वे दो शब्द "भय और ईश्वर" उनमें सारी मनुष्य-जाति के पाप छिपे हैं। सिरहान का ही पाप नहीं, सभी मनुष्यों के पाप उसी में छिपे हैं वे दो शब्द बड़े खतरनाक हैं, और बड़े महंगे हैं।

एक तो भय, किसी का भी हो, मनुष्य को विकृत करता है। भय किसी का भी हो, मनुष्य को विकसित नहीं होने देता है। भय, आकाश में बैठे किसी परमात्मा का, तुम्हें संकुचित करता है, तुम्हें गुलाम करता है; तुम्हें अपना मालिक नहीं होने देता। और जिससे तुम भय करते हो उसे कभी प्रेम तो कर न पाओगे। भय से तो कभी प्रेम होता ही नहीं। और तुलसीदास ठीक उलटी बात कह गए हैं : भय बिनु होय न प्रीति। और मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि भय के साथ तो प्रीति कभी होती ही नहीं है। तुलसीदास सौ प्रतिशत गलत हैं। भय--और प्रेम! जिससे तुम्हें प्रेम है उससे तुम्हें कोई भय नहीं होता है। और जिससे तुम्हें भय है उससे तुम्हें घृणा होती है; प्रेम नहीं होता।

ईश्वर का भय सिखाया है मैंने अपने बेटों को, सिरहान के पिता ने कहा।

जब तुम भय सिखाते हो तो तुमने अनजाने घृणा सिखा दी। जब तुमने भय सिखाया तब तुमने अनजाने हिंसा सिखा दी। प्रेम सिखाओ, भय मत सिखाओ। पहली बात।

और तुम सभी को भय सिखाया गया है। भय के कारण तुम हिंदू हो; भय के कारण मुसलमान हो। भय के कारण तुम्हारा भगवान है। भय के कारण तुम कंप रहे हो। तुम्हारी प्रार्थनाओं में आनंद-उत्सव नहीं है सिर्फ भय का कंपन है। डरे हो नरकों से; प्रलोभित हो स्वर्गों से। मगर कंप रहे हो! तुम्हारे भीतर महाकंपन चल रहा है। ये भयभीत घुटने जो नमाजों में झुके हैं, ये भयभीत सिर, ये गुलामों के सिर जो मंदिर की मूर्तियों के सामने रखे हैं, यह मनुष्य-जाति का सबसे बड़ा अकल्याण है।

भय मनुष्य को आत्मवान नहीं होने देता है।

मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि जिंदगी में भय की कोई उपादेयता नहीं है। मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि मूढ़ की भांति भय को छोड़ दो। मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि भय जीवन की सुरक्षा का उपाय नहीं है। पर मैं तुमसे यह कह रहा हूं : भय, तथ्यों के आग जलाती है; आग से भयभीत होना स्वाभाविक है। इसको सिखाना नहीं पड़ता है। तुम अपने बच्चे को यह थोड़ी सिखाते हो कि आग से डरो। तुम बच्चे को इतना ही सिखाते हो कि आग जलाती है; अगर जलना हो तो आग के पास चले जाओ, न जलना हो तो पास मत जाओ। यह जीवन की सहज प्रक्रिया है।

अब एक सांढ सींग लेकर तुम्हारी तरफ भागा चला आ रहा है, तो मैं यह नहीं कहता कि तुम निर्भय होकर वहां खड़े रहो। कि बस का ड्राइवर हार्न बजाए जा रहा है, मैं तुमसे यह नहीं कहता कि तुम बीच सड़क

पर खड़े होकर ध्यान करो, सुनो ही मत, क्योंकि तुम भयभीत नहीं हो। यह मूढ़ता हो जाएगी। जहां जीवन के तथ्य घातक हैं, जहां जीवन के तथ्य गड्ढों में ले जाते हैं, वहां से जागो। इसलिए मैंने तुमसे कहा कि चौरासी करोड़ योनियों के भय से मैं तुम्हें नहीं छुड़वा सकता, क्योंकि वह तो आग जैसा भय है। तुम्हें जाना हो मजे से जाओ; न जाना हो तो समझो। लेकिन परमात्मा का भय? परमात्मा को तो तुम जानते ही नहीं। और परमात्मा आग थोड़े ही है। और परमात्मा कोई खाई-खड्ड थोड़े ही है। परमात्मा तो तुम्हारे जीवन की सर्वाधिक सुंदर, सर्वाधिक शुभ, सर्वाधिक ऊंची अवस्था है। परमात्मा से भय? परमात्मा तो तुम्हारे होने का सर्वश्रेष्ठ ढंग है। परमात्मा तो तुम्हारी आत्यंतिक अभिव्यक्ति है। परमात्मा से भय? और परमात्मा से भय बना दिया तो तुम कीड़े हो जाओगे, तुम जमीन पर सरकने लगोगे, फिर तुम उड़ न सकोगे; तुम्हारे पंख काट दिए।

सिरहान के बाप ने कहा, मैंने अपने बेटों को परमात्मा का भय सिखाया, इसलिए मैं बड़ा हैरान हूं कि ऐसा कैसे हुआ! इसीलिए हुआ, महाराज! काश, तुमने भय न सिखाया होता तो ऐसा नहीं होता। भय से घृणा उपजती है। भय से क्रोध उपजता। भय से हिंसा उपजती। प्रेम से करुणा उपजती।

लेकिन कठिनाई मैं समझता हूं। कठिनाई क्या है? धर्मगुरु भय सिखाते हैं, क्योंकि भय सिखाना आसान है। भय तो मानने से ही पैदा हो जाता है। प्रेम सिर्फ मानने से पैदा नहीं होता; प्रेम जानने से पैदा होता है। यह कठिनाई है। इसलिए सस्ती तरकीब धर्मगुरुओं ने पकड़ ली : आदमी को भयभीत कर दो, वह ईश्वर को मान लेगा, भय में मान लेगा। भीतर तो मानेगा भी नहीं; ऊपर-ऊपर कम से कम मानने का दिखावा करेगा। राम-नाम भीतर तो नहीं जाएगा, राम-नाम की चदरिया ओढ़ लेगा। सच में तो सिर नहीं झुकेगा भगवान के सामने, क्योंकि जिसको देखा नहीं, जिसके सौंदर्य का अनुभव नहीं किया, वहां सिर कैसे झुकेगा? जिससे कभी जीवन में कोई संबंध ही नहीं हुआ, जिससे कभी आंखें चार नहीं हुईं, वहां सिर कैसे झुकेगा? मगर भय के कारण घुटने कंप जाएंगे और आदमी गिर पड़ेगा।

भय--सस्ती तरकीब मिल गई। और सस्ती तरकीब के कारण सारी मनुष्यता को भयभीत कर दिया गया।

तो पहली तो बात, भय सिखाया सिरहान के बाप ने; वह सभी बापों ने सिखाया। सारी मनुष्य-जाति भय से पीड़ित है। इसी भय से फिर हिटलर पैदा होते हैं, चंगीज पैदा होते हैं, तैमूर पैदा होते हैं, सिकंदर पैदा होते हैं। इसी भय से छोटे हत्यारे, बड़े हत्यारे, चोर, बेईमान, राजनीतिज्ञ, सब इसी से पैदा होते हैं।

मनुष्य की छाती से भय का पत्थर हटना चाहिए; प्रेम का फूल खिलना चाहिए। लेकिन प्रेम के साथ एक अड़चन है। प्रेम तो तभी होता है जब आंखें चार हों। प्रेम तो जाने से होता है; माने से नहीं होता। प्रेम तो अनुभव से उपजता है; बिना अनुभव के नहीं उपजता।

और प्रेम का ही आत्यंतिक अनुभव परमात्मा है। इसलिए मैं तुमसे यह भी नहीं कहता कि परमात्मा को प्रेम करो; मैं तो तुमसे इतना ही कहता हूं तुम प्रेम करो और एक दिन तुम पाओगे प्रेम करते-करते-करते परमात्मा तुम्हारे द्वार पर आ गया। मैं तुमसे सिर्फ इतना ही कहता हूं : प्रेम करो! परमात्मा को प्रेम करो, यह तो मैं तुमसे कैसे कहूं? यह तो तुम्हारी कानों सुनी हो जाएगी।

कानों सुनी सो झूठ सब, आंखों देखी सांच।

मैं तुमसे इतना ही कहता हूं प्रेम करो--अपने बच्चे को, अपनी पत्नी को, अपने पति को, अपने मित्र को, अपने परिवार को, प्रियजनों को, मनुष्य को, पशुओं को, पक्षियों को, पौधों को, पहाड़ों को। जहां तक तुमसे बन सके, प्रेम को फैलाए चले जाओ, फैलाए चले जाओ। जैसे-जैसे तुम्हारा प्रेम फैलने लगेगा, वैसे-वैसे तुम पाओगे, परमात्मा की झलक आनी शुरू हो गई। धीरे-धीरे धीरे-धीरे जिस दिन प्रेम तुम्हारा विराट हो जाता है, तुम

प्रेममय हो जाते हो, उसी दिन तुम पाते हो परमात्मा उतर आया। इसलिए मैंने कहा, भक्ति प्रेम की ही आत्यंतिक उत्कर्ष दशा है।

परमात्मा को भूलो। तुम्हारा परमात्मा दो कौड़ी का है। तुम्हारा परमात्मा भय-जन्य है। तुम प्रेम को जीवन में उमगाओ। प्रेम स्वाभाविक है। थोड़ी सी किरण तो तुम्हारे पास है ही। इसी किरण का सहारा पकड़ कर बढ़ते चलो; सूरज तक पहुंच जाओगे। किरण है तो सूरज से आती होगी, सूरज भी कहीं होगा। आज न दिखे, कोई हर्जा नहीं; हजार मील दूर हो, कोई हर्जा नहीं। एक-एक कदम चल कर आदमी हजार मील की यात्रा कर लेता है। लेकिन शुरुआत वास्तविक से करो, यथार्थ से करो।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि हमें परिवार से बड़ा प्रेम है, इससे किसी तरह छुड़वाएं। मैं उनसे कहता हूं, इसे छुड़वाना किसको है--बढ़ाना है। तुम भाषा ही गलत बोलते हो : छुड़वाएं! यही तो कुल जमा आशा है। तुम्हारे हृदय में जलता हुआ यह छोटा सा दीया है कि तुम्हें परिवार से प्रेम है। और तुम्हारे तथाकथित धर्मगुरु और महात्मा तुम्हें सिखा रहे हैं : इसको छोड़ो, तब परमात्मा मिलेगा। इससे ही तो कुल आशा है; थोड़ी बहुत आशा इसी से है। अगर मिलेगा कभी परमात्मा तो इसी के सहारे बढ़ने से मिलेगा। यह बड़ी धीमी सी रोशनी है अभी, इसको बड़ा करो। तुम्हारा परिवार बड़ा होने दो।

इसलिए जीसस कहते हैं : अपने दुश्मन को भी प्रेम करो। क्योंकि जिस दिन तुमने दुश्मन को भी प्रेम किया, तुम्हारा परिवार बहुत बड़ा हो गया। मित्र तो रहे ही, दुश्मन भी सम्मिलित हो गए। पशुओं-पौधों को . . . .इसलिए महावीर कहते हैं, अहिंसा। पशु-पौधे, वे भी जीवंत हैं; उनको भी प्रेम करो। बुद्ध कहते हैं करुणा। ये सब प्रेम के ही नाम हैं। अलग-अलग ढंग के लोगों ने अलग-अलग नाम पसंद किए हैं। लेकिन ये सब प्रेम की ही अलग-अलग भाव-भंगिमाएं हैं। ये प्रेम के ही अलग-अलग रंग हैं। ये प्रेम की ही अलग-अलग आभाएं हैं। ये प्रेम के ही प्रतिबिंब है। महावीर में बना प्रतिबिंब, उन्होंने कहा अहिंसा। उन्होंने कहा, किसी को दुख मत दो। मगर दुख तुम तभी देने से रुकोगे जब प्रेम बढ़े; नहीं तो कैसे दुख देने से रुकोगे? बुद्ध ने कहा करुणा, फैलाओ करुणा को। जीसस ने कहा प्रेम।

जैसे-जैसे तुम्हारा प्रेम बढ़ता जाए वैसे-वैसे तुम्हारा और परमात्मा के बीच का फासला कम होता चला जाता है। इसलिए यह तो पूछना ही मत भूल कर भी मुझसे कभी आकर कि हमारा छोटा-मोटा प्रेम है, उसको हम कैसे मिटा दें? उसको मिटा दिया तो तुम्हारे तो जीवन की आशा का दीप ही बुझ गया; फिर तुम भटक गए रेगिस्तान में। वह जो छोटी सी सरिता थी तुम्हारे जीवन में झरने की तरह, वह भी सूख गई, अब तो कोई आशा न रही। मैं कहता हूं, इस सरिता को बड़ा करो; इस सरिता को बहाओ सागर की तरफ। और जितने झरने इससे आकर मिल जाते हों, सबको मिल जाने दो--मित्रों को भी, शत्रुओं को भी, मनुष्यों को भी, पक्षियों को भी, पौधों को भी, पहाड़ों को भी, सबको मिल जाने दो, सबको सम्मिलित हो जाने दो। बनने दो इसकी बड़ी गंगा। फिर यह पहुंच जाएगी सागर तक।

तुम जहां हो, जैसे हो, उसी के यथार्थ को पकड़ लो, और उसी यथार्थ के सहारे चल पड़ो यह छोटा सा धागा, यह छोटा सा सूत्र तुम्हें पहुंचा देगा। इसलिए तो संतों के इन वचनों को या उपनिषद की ऋचाओं को या कुरान की आयतों को सूत्र कहा जाता है। सूत्र का अर्थ होता है धागे की तरह हैं ये। बड़े महीन धागे हैं, लेकिन अगर पकड़ लिया तो पहुंच जाओगे।

मैंने सुना है, एक सम्राट अपने वजीर पर नाराज हो गया और उसने वजीर को क्रोध में आकर नगर के बाहर एक बड़ी मीनार पर कैद कर दिया। वजीर के घर के लोग बड़े दुखी थे, रो रहे थे। वजीर ने अपनी पत्नी को कहा, घबड़ा मत, जब मैं चला जाऊं और बंद कर दिया जाऊं, तो गांव में एक फकीर है, तू उसके पास जाना। जब भी कोई उलझन होती है मुझे--ऐसी जिसे मैं नहीं सुलझा पाता, जिसको बुद्धि नहीं सुलझा पाती, मैं उस

फकीर के पास जाता हूं। वह बुद्धि के आगे गया है। वह जरूर कोई रास्ता निकाल लेता है। वह जरूर कोई सूत्र तुझे बता देगा, कोई रास्ता बन जाएगा। तू घबड़ा मत, रो मत।

वजीर तो बंद कर दिया गया ऊंची मीनार पर, ताले जड़ दिए गए। भूखा मरेगा, तड़पेगा। कूदे तो जान निकल जाएगी। कोई पांच सौ फीट ऊंची मीनार है; कोई द्वार-दरवाजा नहीं है। सब दरवाजे बंद कर दिए गए; नीचे पहरा लगा दिया गया। पत्नी फकीर के पास गई। उसे बहुत आशा तो नहीं थी कि अब कोई रास्ता बन सकता है; कैसे निकालेगी पति को? फकीर ने कहा, कोई हर्जा नहीं। तेरे पति ने कहा था, मुझसे आकर सूत्र पूछ लेना, वह खुद ही बता गया है रास्ता। सूत्र में तो सारा सार है।

पत्नी ने कहा, मेरी कुछ समझ में नहीं आती, पहेलियां मत बुझाइए। मैं यहां कोई धर्म-चर्चा, अध्यात्म-चर्चा करने नहीं आई हूं। मेरा पति मरने के करीब है, भूखा वहां पड़ा है। आप कोई रास्ता बताइए।

उस फकीर ने कहा, तू ऐसा कर, भृंगी नाम का कीड़ा होता है, उसको पकड़ ले। उसकी मूंछों पर थोड़ी शहद लगा दे और उसकी पूंछ में एक पतला धागा बांध दे--रेशम का पतला धागा।

उस पत्नी ने कहा, इससे क्या होगा?

उसने कहा, इससे सब हो जाएगा। और जाकर मीनार पर उस भृंगी को छोड़ दे। शहद की गंध पाकर वह सरकना शुरू करेगा, बढ़ेगा आगे। और मूंछों पर शहद लगी है, इसलिए मिलने वाली तो है ही नहीं। ऐसी तो शहद लगी है मूंछों पर। संसार ऐसी ही शहद का नाम है जो तुम्हारी मूंछों पर लगी है। तुम भागते-फिरते हो, गंध आती चली जाती है। तुम भागते-फिरते हो। अब तुम्हारी मूंछें तुमसे आगे छलांग लगा जाती हैं। मिलना कभी नहीं होता; गंध आती रहती है। गंध आती रहती है, मिलना कभी नहीं होता। इसलिए तो ज्ञानियों ने इसे माया कहा है। मिलती है, मिलती है; अब मिली, अब मिली। मिलती कभी नहीं। पहुंचने के करीब सदा रहते हैं, लेकिन पहुंचते कभी नहीं हैं। मंजिल आती-आती लगती है, आती नहीं है। और इतने करीब मालूम पड़ती है कि रुक भी नहीं सकते। मर जाते हैं, थक जाते हैं, मगर रुक नहीं सकते। क्योंकि लगता है अब मिली; यह बिलकुल पास से आ रही है गंध।

उस भृंगी की दशा समझो। उसकी मूंछ पर बिठा दी है शहद। उसे गंध आई। दीवाना हो गया। शहद का रस, शहद का प्रेम उसे खींचने लगा, वह भागने लगा : पास ही है, गंध इतने करीब से आ रही है। और मूंछें आगे सरकने लगीं। और उसकी पूंछ में बंधा हुआ रेशम का धागा मीनार पर चढ़ने लगा। थोड़ी ही देर में वह मीनार पर पहुंच गया। पति ने उसको आते देखा, फिर उसकी पूंछ में बंधे हुए पतले धागे को देखा समझ गया, फकीर ने सूत्र दे दिया। धागे को धीरे-धीरे खींचा। धागे में फिर एक दूसरा मोटा धागा बंधा आया; फिर मोटे धागे में एक सुतली बंधी आई; फिर सुतली में एक मोटी रस्सी बंधी आई। और फिर उस रस्सी के सहारे वजीर मीनार से उतर कर भाग गया, मुक्त हो गया।

ऐसा ही है। एक सूत्र पकड़ लो। यह जो तुम्हारे जीवन में थोड़ी सी प्रेम की किरण है, इसे बुझा मत देना। इससे बड़ी आत्महत्या और कोई नहीं है। इसे बुझा मत देना। इसकी निंदा मत करना। यह मत कहना शारीरिक है; यह मत कहना कामुक है; यह मत कहना कि यह तो संसार की है। संसार में तुम हो तो कुछ संसार में होगा जो परमात्मा से जोड़े, नहीं तो फिर तो कोई उपाय ही नहीं है। कोई सूत्र होगा जो दोनों किनारों को जोड़ता होगा। कोई सेतु होगा। संसार में जरूर कोई एक बात होगी जो संसार की नहीं होगी।

इसे मैं दोहराऊं : परमात्मा को पाने की एक ही आशा है कि संसार में कुछ हो जो गैर-संसारी हो। नहीं तो फिर कैसे पाओगे? कुछ हो जो यहां आता हो और यहां का न हो; यहां तक आता हो जरूर और वहां का हो, पार का हो। तुम्हारे जीवन में प्रेम के अतिरिक्त ऐसी कोई और चीज नहीं है। यही भक्तों का निवेदन है।

प्रेम ही एकमात्र सूत्र है, जिसके सहारे तुम धीरे-धीरे-धीरे, कदम-कदम, रत्ती-रत्ती, बढ़ते-बढ़ते एक दिन परमात्मा में पहुंच जाओगे।

जानिए, मानिए मत। और जानना हो तो प्रेम के इस छोटे से धागे को पकड़िए।

सिरहान के बाप ने कहा कि मैंने तो ईश्वर का भय सिखाया था। वहीं चूक हो गई। तुम्हें भी भय सिखाया गया है। और भय के आधार पर विश्वास सिखाया गया है। तुम्हें पहले भयभीत किया जाता है; फिर जब तुम भयभीत हो जाते हो, तुम पूछते हो कोई सहारा चाहिए; तब तुम्हें ईश्वर की धारणा पकड़ा दी जाती है कि ये ईश्वर रहे, इनको पकड़े रखो। जब डर लगे तो हनुमान-चालीसा पढ़ना। जब भय आए तो ईश्वर को याद करना। पहले भय पैदा करवा देते हैं, फिर इलाज पकड़ा देते हैं। यह तो बड़ी जालसाजी हो गई। पंडित-पुरोहित, धर्मगुरु, राजनेता इस जालसाजी पर ही जीते रहे हैं।

तुम विश्वास से जागो। अगर कभी श्रद्धा के आकाश में उठना हो तो विश्वास को बिलकुल भ्रष्ट कर दो, नष्ट कर दो, जला डालो, आग कर दो, राख कर दो। पहले बहुत डर लगेगा, क्योंकि डर तुम्हें सिखाया गया है। जैसे ही तुम विश्वास छोड़ोगे, तुम्हारा सारा प्राण कंपने लगेगा कि अब मैं कैसे जीऊंगा ईश्वर के बिना सहारे। लेकिन धीरे-धीरे तुम पाओगे कि वह झूठा सिखाया हुआ भय है। भय की भी कोई जरूरत नहीं है। यह संसार हमारा है; हम इसके हैं। यह अस्तित्व हमारा है; हम इसके हैं। इस अस्तित्व से हम आए हैं; यह हमारा दुश्मन नहीं हो सकता। इसी अस्तित्व की हम उर्मियां हैं; इसी अस्तित्व की हम तरंगें हैं। यह सागर और हम लहरें हैं। इससे हमारा विरोध क्या हो सकता है? यह हमें मिटाने को उत्सुक क्यों हो सकता है? यह तो हमारा जीवन है। जो इससे आता है, शुभ है।

ऐसे सद्भाव से खोज में लग जाओ। और एक धागे को पकड़ लो। भक्तों ने प्रेम का धागा पकड़ा है, ज्ञानियों ने ध्यान का। मगर दोनों धागे एक ही धागे के दो नाम हैं। क्योंकि जब तुम प्रेमपूर्ण हो जाते हो तो तुम ध्यानपूर्ण हो जाते हो और जब तुम ध्यानपूर्ण हो जाते हो तो तुम प्रेमपूर्ण हो जाते हो। एक को बुलाओ, दूसरा अपने-आप आ जाता है; उसके साथ ही आता है। जैसे एक गाड़ी के दो चाक, ऐसे प्रेम और ध्यान।

मगर जानो; मानना छोड़ो।

दूसरा प्रश्न पहले से संबंधित है : कल आपने कहा, मिटो, स्वयं को मिटाओ और परमात्मा से मिलन हो जाएगा। लेकिन मुझे अपने को मिटाने में भय लगता है। आपके पास रह कर भी मुझे अपने को मिटाने में भय लगता है। कृपा करके समझाएं कि मैं अपना यह भय कैसे दूर करूं?

जब मैं कहता हूं अपने को मिटाओ तो तुम मुझे गलत मत समझ लेना। तुम यह मत समझ लेना कि तुम हो और तुम्हें अपने को मिटाना है। जब मैं कहता हूं अपने को मिटाओ तो मैं इतना कहता हूं : कृपा करके भर आंख अपने को देखो; तुम पाओगे तुम नहीं हो। यह है मेरा मतलब अपने को मिटाने का। अगर तुम हो तो तब तो कैसे मिटाओगे?

जो है उसे तो मिटाया नहीं जा सकता। अगर अंधेरा होता तो दीये के जलाने से कैसे मिट जाता? तुम दीया जलाते हो, कमरे का फर्नीचर तो नहीं मिट जाता; अंधेरा ही मिटता है सिर्फ। फर्नीचर तो अपनी जगह रहता है। सच तो यह है, अंधेरे में दिखाई नहीं पड़ता था, रोशनी में दिखाई पड़ता है; और हो जाता है, और प्रकट हो जाता है, और स्पष्ट हो जाता है। अंधेरा मिट जाता है; फर्नीचर तो नहीं मिटता, दीवाल-दरवाजे तो नहीं मिटते। अंधेरे में मिटे मालूम होते थे, रोशनी में और प्रकट हो जाते हैं, और साफ हो जाते है कि हैं; रोशनी में प्रामाणिक रूप से हो जाते हैं। तो दीये के जलने पर कौन मिटता है।

दीये के जलने पर वही मिटता है जो था ही नहीं। अब . . . अंधेरा मिटाया थोड़े ही जाता है; अगर मिटाना पड़ता होता तो मिटाना मुश्किल हो जाता। फिर तो अंधेरा भी झंझट खड़ी करता। दीया जला लेते और

अंधेरा कहता कि नहीं मिटते, संघर्ष लेंगे--झगड़ा होता, युद्ध मचता; कभी-कभी दीया भी बुझ जाता। अंधेरा बुझा देता दीये को; कभी शायद अंधेरा हार जाता और दीया बुझा देता मगर इतनी आसानी से न मिट जाता जैसे मिटता है। तुमने जलाया नहीं दीया कि अंधेरा कहां गया, पता नहीं। था ही नहीं।

तो जब मैं कहता हूं अपने को मिटाओ तो मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि तुम हो नहीं; जरा गौर से देखो। उस देखने में ही मिट जाओगे। और जैसे ही तुम्हें पता चला कि मैं नहीं हूं, वैसे ही तुम्हें पता चलेगा परमात्मा है। कोई परमात्मा हत्यारा थोड़े ही है कि तुम मिटोगे तब तुम्हें मिलेगा। यह कोई उसने शर्त थोड़े ही लगा रखी है। कोई ऐसा सौदा थोड़े ही है कि जब तक तुम न मिटोगे, जब तक तुम अपनी गर्दन न काटोगे, तब तक मैं तुम्हें न मिलूंगा। परमात्मा कोई ऐसा दुष्ट, ऐसा कोई हत्यारा तो नहीं है।

नहीं, अड़चन केवल इतनी ही है कि जब तक तुम सोचते हो मैं हूं, तुम्हारा यह सोचना कि मैं हूं, तुम्हारा यह मानना है कि मैं हूं तुम्हारी आंखों पर पर्दा बन जाता है। यह सिर्फ मान्यता है; हो तो तुम नहीं। यही तो होता है जब तुम ध्यान में शांत होकर बैठते हो और भीतर झांकते हो, तो तुम पाते हो कि मैं हूं ही नहीं; कभी भी नहीं था। सिर्फ एक भ्रांति थी, एक धारणा थी, एक भाव मात्र था कि मैं हूं। जो नहीं है वही ध्यान में मिट जाता है। जो नहीं है--वही प्रेम में भी मिट जाता है। जो नहीं है--वही मिटता है।

यह प्रश्न पूछा है प्रज्ञा ने।

पूछा है : "कल आपने कहा, मिटो, स्वयं को मिटाओ और परमात्मा से मिलन हो जाएगा।"

मेरी बात को ठीक से समझ लेना। मैं यही कह रहा हूं कि अपने को देखो ठीक से। कभी शांत बैठ कर निरीक्षण करो : कौन हूं मैं, कहां हूं मैं, क्या हूं मैं, और तुम कहीं भी न पाओगे। एकदम सन्नाटा छा जाएगा। "कौन हूं मैं", जैसे ही यह प्रश्न उठेगा, तुम पाओगे। सन्नाटा उठा। इसलिए रमण महर्षि अपने साधकों को कहते थे : एक ही प्रश्न पर्याप्त है, पूछो मैं कौन हूं! मैं कौन हूं! मैं कौन हूं! पूछते रहो सतत। जब भी सुविधा मिले, बैठ कर शांति से पूछते रहो। मैं कौन हूं! मैं कौन हूं!

रमण को जो लोग पढ़ते हैं, उनको भी बड़ी भ्रांति रहती है। वे सोचते हैं, ऐसा पूछने से पता चल जाएगा कि मैं कौन हूं। चूक गए तुम, बात समझे ही नहीं। ऐसा पूछने से एक दिन पता चलेगा, मैं हूं ही नहीं। रमण के भक्त भी कभी-कभी मेरे पास आ जाते हैं। वे कहते हैं : बहुत दिन हो गए पूछते-पूछते कि मैं कौन हूं, अभी तक पता नहीं चला है। मैंने कहा, तुम चूक ही गए; तुम बात का मतलब ही नहीं समझे। संतों की बात का मर्म समझ में सीधा-सीधा आता नहीं है। क्योंकि बात इतनी दूर की है; तुम्हारी भाषा में उसे कहा नहीं जा सकता। अब रमण ने यह नहीं कहा कि ऐसा पूछने से तुम्हें पता चल जाएगा कि तुम कौन हो। ऐसा पूछना तो सिर्फ तरकीब है तुम्हें जगाने के लिए। मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ऐसा पूछते हो, पूछते हो, खोजते हो, तलाशते हो कोना-कातर, अपने भीतर की चेतन-अचेतन पर्तें उघाड़ते हो, एक-एक पर्त को तोड़ते जाते हो जैसे कोई प्याज को छीलता हो--छीलते जाते हो : मैं कौन हूं! मैं कौन हूं! छीलते-छीलते-छीलते सब पर्तें समाप्त हो जाती हैं; शून्य हाथ में आता है। प्याज बची ही नहीं; शून्य मात्र रह गया। यही तुम हो और यही परमात्मा है; लेकिन तुम बचे नहीं। इस शून्य में तुम कहां? कहां रही प्रज्ञा? अगर प्रज्ञा खोजने चले तो एक दिन पाएगी कि नहीं बची। और जहां प्रज्ञा नहीं बची, वहीं प्रज्ञा का जन्म है; वहीं बोध का जन्म है; वहीं समाधि फलती है। वहीं परमात्मा उतरता है।

और यह स्वाभाविक है कि मिटने में डर लगे। मिटने की बात ही घबड़ाने वाली है। मिटने का शब्द ही भय पैदा करता है, कंपन पैदा कर देता है। लेकिन तुम हो ही नहीं। ऐसा सोचो, मिटने की बात ही क्या सोचनी? मिटोगे क्या खाक! होते तो मिट भी सकते थे। हो ही नहीं, फिर क्या भय है! हो ही नहीं। इस सत्य को खोजो।

मेरी बात मान मत लेना कि मान लिया कि चलो, अब आप कहते हैं तो चलो, नहीं है। मगर इससे कुछ भी न होगा। तुम बने ही रहोगे। मेरी बात को तो सिर्फ एक प्रेरणा समझो, एक चुनौती कि मैं ऐसा कह रहा हूं कि तुम नहीं हो तो मैं देखूं तो, जांच-पड़ताल तो करूं : हूं या नहीं? यह बात सच है या झूठ? मेरी बात पर भरोसा मत कर लेना, न विश्वास कर लेना। इसको परीक्षण की कसौटी पर कसना।

बोधिधर्म के पास ऐसा हुआ था। सम्राट वू ने कहा था कि मैं बड़ा चिंतित रहता हूं, बड़ा परेशान रहता हूं, मेरा मन शांत होता ही नहीं है। मैं कैसे शांत हो जाऊं? उसका कुछ उपाय बता दें।

बोधिधर्म ने कहा : तीन बजे रात आ जाओ। अकेले आना। दरबारियों इत्यादि को साथ मत ले आना। सिपाही, शरीर-रक्षक, कोई नहीं; अकेले आना बिलकुल।

मैं तीन बजे प्रतीक्षा करूंगा। और जब आओ तो ख्याल रखना, अपने इस "मैं" को ले आना, क्योंकि मैं शांत ही कर दूंगा इसे।

वू घबड़ाया कि आदमी पागल है। जब मैं आऊंगा तो मैं तो आ ही जाऊंगा; यह कह रहा है साथ ले आना। फिर बोधिधर्म की आंखें और बोधिधर्म का ढंग कहने का, और अकेले में तीन बजे रात बुलाना! और इस आदमी के बारे में हजारों अफवाहें आ रही थीं और इस आदमी के संबंध में न मालूम कैसी-कैसी किंवदतिंयां प्रचलित हो रही थीं कि यह बड़ा खतरनाक है। एक शिष्य से इसने, जब तक उसने अपना हाथ काट कर इसको न दिया, तब तक उसका शिष्यत्व स्वीकार नहीं किया। यह आदमी कुछ अजीब है और खतरनाक है। और रात अंधेरे में तीन बजे आना! और यह भी कहता है कि शांत कर ही दूंगा! उसने सोचा कि आना ठीक नहीं है, खतरे से खाली नहीं है। पर सो भी न सका।

अब तक उसने बहुत से साधुओं से, बहुत से महात्माओं से कहा था कि इस मेरे मैं को किसी तरह शांत कर दें। ये, इतना बड़ा साम्राज्य मिल गया, फिर भी शांत नहीं होता; बेचैनी मिटती ही नहीं, बेचैनी बनी ही रहती है, चैन का कोई पता नहीं है। किसी तरह मुझे शांति दें! किसी ने कभी नहीं कहा था कि शांत कर देता हूं, तू आ जा। उन्होंने बड़ी-बड़ी बातें कीं, लेकिन उन बातों से कुछ सार न हुआ। पहली दफा एक आदमी मिला है जिसने बात की ही नहीं है; जिसने कहा कि तू आ ही जा कल सुबह एकांत में, निपटारा कर ही देते हैं, कब तक तू परेशान रहेगा। इसको शांत ही कर देंगे। कहीं ऐसा न हो कि यह आदमी शांत करने की कला जानता हो और मैं न जाऊं! जाने में भी डर लगे कि यह आदमी कहीं पगला न जाए, लट्ठ न मार दे। लकड़ी रखे रहता था, बड़ा लट्ठ रखे रहता था बोधिधर्म अपने पास! और इसके बाबत कहानियां ऐसी हैं कि कौन जाने, यह व्यवहार कैसा करे! और एकांत में जाना!

मगर फिर सो भी न सका, रुक भी न सका। जाना कठिन था, तो भी गया। ऐसी प्रबल आकांक्षा खींचे ले गई। पहुंच गया तीन बजे रात। बोधिधर्म बैठा था अपना डंडा लिए, दीया जलाए। गांव के बाहर एक मंदिर में ठहरा था। उसने कहा : तो आ गए! मैं को ले आए कि नहीं?

सम्राट ने कहा : आप भी क्या बातें करते हैं! जब मैं आ गया तो अब और मैं को कहां... मैं मैं को छोड़ कर भी कैसे आ सकता हूं? यह बात आप दुबारा-दुबारा क्यों कहते हैं कि मैं को ले आए कि नहीं?

बोधिधर्म ने कहा कि मैं इसलिए कहता हूं कि मैं को लाओगे तो ही मैं शांत कर सकूंगा; नहीं, तुम घर रख आओ और तुम अकेले आ जाओ तो शांत किसको करूंगा? अच्छा बैठ जाओ, आंख बंद कर लो और खोजो कि यह मैं कहां है। और जैसे ही मिल जाए, पकड़ लेना, झपट कर वहीं पकड़ लेना, और मुझे बता देना। तो मैं उसको उसी वक्त शांत कर दूंगा। क्योंकि पहले तो पकड़ना पड़ेगा न! और तुम्हारे भीतर है तो मैं तो कैसे पकड़ूंगा, तुम्हीं पकड़ो।

सम्राट ने सोचा कि बेकार आना हुआ, यह आदमी कहां की बातें कर रहा है : झपट कर पकड़ लेना!

मगर अब आ ही गया था तो बैठा इसके सामने, आंख बंद की, खोज करना शुरू की, और सामने बैठा है बोधिधर्म लिए लट्ठ, कब सिर में मार दे और कहता जा रहा है : खोजो, सो मत जाना, झपकी मत खाना, मैं डंडा लिए बैठा हूं। तो आज इसको निपटारा ही कर देना है, कब तक तू इससे परेशान रहेगा! इसको शांत ही करके भेजेंगे। सुबह हो, तब तक यह खत्म ही कर देना है।

तो जितना खोजा वू ने उसके सामने, बोधिधर्म के बैठे, खोजा उसने। कभी भीतर देखा ही नहीं था। कौन देखता है! तुम बातें करते हो : मैं, अशांति, मन, फलां-ढिकां, बातचीत। तुम कभी खोजते थोड़े ही। खोजा तो बड़ा हैरान हुआ। पकड़ में ही नहीं आता। कौन मैं, कैसा मैं! इधर गया, उधर गया, भीतर की पर्त-पर्त छानी; कहीं किसी मैं को न पाया। धीरे-धीरे शांत होने लगा। इस खोज में ही शांत होने लगा। जब सुबह सूरज उग रहा था तो उसके चेहरे पर अपूर्व आभा थी।

बोधिधर्म ने कहा : अब बहुत हो गया। आंख खोलो और जवाब दो। पकड़ पाए या नहीं?

वू हंसने लगा। उसने कहा : नहीं पकड़ पाया, लेकिन आपकी महाकृपा कि आपने शांत कर दिया। मिलता ही नहीं है। है ही नहीं तो अशांति कैसी!

सारे ध्यान के प्रयोग, साक्षी के प्रयोग, इसी दिशा में गतिमान होते हैं।

तो प्रज्ञा को मैं कहूंगा : भय लगता है, यह तो स्वाभाविक है, क्योंकि तूने मान रखा है कि तू है और मिटना पड़ेगा। इधर हम कुछ बात ही और कह रहे हैं। इधर यह कहा जा रहा है कि तू है ही नहीं। इतना जानना है और मिटना हो गया। और जैसे ही मिटना हो जाता है वैसे ही परमात्मा प्रकट हो जाता है। इधर वू मिटा, उधर परमात्मा प्रकट हुआ। पर्दा हटा तो जो छिपा है वह प्रकट हो गया।

यह भय इसलिए लगता है कि अभी मन ऊबा भी नहीं है इस अशांति से, इस अहंकार से। अभी मन भरा भी नहीं है।

खुद झिझकता हूं कि दावा-ए-जुनूं क्या कीजे
कुछ गवारा भी है ये कैदे-दरोबाम अभी।

मैं डरता हूं, झिझकता हूं कि ईश्वर के उन्माद का दावा भी अभी कैसे करूं, कि प्रभु को पाने के लिए पागल हूं, यह भी अभी कैसे कहूं!

खुद झिझकता हूं कि दावा-ए-जुनूं क्या कीजे
कुछ गवारा भी है ये कैदे-दरोबाम अभी।

अभी दरवाजों और छतों से घिरा हुआ यह जो कारागृह है, इससे मुझे लगाव भी है। अभी दावा भी क्या करूं? स्वतंत्रता का दावा क्या करूं? अभी इस कारागृह से मुझे मोह है।

हम कहते हैं कि डर लगता है मिटने में, क्योंकि अभी अहंकार की यात्रा तृप्त नहीं हुई। अभी, अहंकार कहीं पहुंचाता नहीं, इस बात का अनुभव प्रगाढ़ नहीं हुआ। अभी, मैं कुछ कर गुजरूंगा, ऐसी नासमझी बनी है। अभी दुनिया को कुछ करके दिखा देंगे। अभी थोड़ी और कोशिश कर लें। इतनी जल्दी मैं को न मिटाएं। शायद कुछ आता ही हो, कौन जाने! अब तक नहीं आया, यह सच है; लेकिन कल आ जाए, कौन जाने! परसों आ जाए! तो थोड़ी और कोशिश कर लें, थोड़ी और कोशिश कर लें।

अभी कारागृह से तुम्हें मोह है। जिस दिन दिख जाता है कि यह कारागृह है, कौन किसको रोक सकता है? तुम्हीं पकड़े हो। अपने ही पिंजरे के सींखचों को पकड़े हो। तुम्हीं पकड़े हो। दरवाजा खुला है; जिस दिन तुम तय करो, उस दिन बाहर निकल जाओ। तुम्हारे भीतर परमात्मा मौजूद है, जिस दिन तय करो उस दिन जान लो।

मगर अभी तुम्हें इस मैं से आशाएं हैं। उन्हीं आशाओं के कारण अड़चन होती है। भय भी लगता है, जब तुम सुनते हो कि मिटना पड़ेगा। जब तुम सुनते हो कि पलटू कह रहे हैं--"पी को खोजन मैं चली, मैं ही गई हिराय"--तो घबराहट लगती है कि ऐसे प्रिय को खोजने क्या जाना?

अभी तुम्हारा अपने से प्रेम है; और कोई तुम्हारे जीवन में प्रेम नहीं है। अभी अगर तुम प्रेम इत्यादि की बातों में भी पड़ते हो तो वह भी अपने से ही प्रेम है। उपनिषद कहते हैं : कौन पति अपनी पत्नी को प्रेम करता है! पति अपने लिए ही पत्नी को प्रेम करता है। इस पत्नी से सुख मिलता है, मगर अपने लिए। कौन पत्नी पति को प्रेम करती है! इस पति से सुरक्षा मिलती है, प्रेम मिलता है, सुख मिलता है--मगर ध्यान तो अपने पर है। सब यहां अपने को प्रेम करते हैं। यहां सभी लोग अहंकार की पूजा में संलग्न हैं। यहां सभी मंदिरों में अहंकार की पूजा चल रही है। यहां तुमने अपनी ही मूर्ति बना ली है; उसी के सामने थाली सजाए हुए आरती उतार रहे हो। गौर से देखो। और इसलिए तो प्रेम नहीं घट पाता है, क्योंकि प्रेम घटे कैसे? इस अहंकार के कारण प्रेम कैसे घटे?

प्रेम का तो मतलब है : अब मैं नहीं, तू है। छोटे-छोटे प्रेम में भी यही है। जिस दिन प्रेमी अपनी प्रेयसी से कह पाता है, अब मैं नहीं, तू है, और जिस दिन प्रेयसी अपने प्रेमी से कह पाती है। अब मैं नहीं, तू है? कह ही नहीं पाते बल्कि ऐसी भावदशा हो जाती है--उस दिन प्रेम की किरण उतरती है। और उस दिन छोटे से प्रेम में भी परमात्मा का बोध होना शुरू हो जाता है।

तीसरा प्रश्न : आप और सभी संत यही कहते हैं कि मन से मुक्त हो जाने पर व्यक्ति को परमात्मा के नजदीक जाने में सरलता होती है। लेकिन मन से मुक्त होना असंभव सा लगता है। हमें पता भी नहीं चलता और मन बार-बार कई तरह की वासनाओं में भटकने लगता है। और बहुत सावधानी रख कर थोड़ा होश आता है कि फिर-फिर मन कल्पनाओं में बहने लगता है। कृपा करके इसे समझाएं।

पहली तो बात, ऐसा भूल कर भी मत कहना कि आप और सभी संत यही कहते हैं। मैं कुछ और बात कह रहा हूं। मैं तुमसे यह कह ही नहीं रहा हूं कि तुम वासनाओं को छोड़ कर उनके ऊपर उठ जाओ। मैं तुमसे यह कह रहा हूं, बिलकुल ही उलटी बात कह रहा हूं कि वासनाओं को भोग लो, तो ही उनसे उठ सकोगे। नहीं तो वासनाएं उठती ही रहेंगी, आती ही रहेंगी।

मेरा जीवन पर परम भरोसा है। यह जीवन जैसा है, इसमें से कुछ भी छोड़ने जैसा नहीं है; इसमें सब अनुभव करने जैसा है। इसके अनुभव से ही गति होती है। अब अगर तुम बैठ गए, ध्यान की चेष्टा करने लगे और वासनाएं अतृप्त पड़ी हैं और मन हजार-हजार वासनाओं को भोगने के लिए आतुर है--तो जब तुम ध्यान करने बैठोगे, मन वासनाएं उठाएगा। मन ऐसे ही थोड़े वासनाएं उठाता है। मन यह कह रहा है : कहां समय खराब कर रहे हो? अभी तो ये दिन थोड़ा सुख देख लेने के हैं। अभी तो ये दिन थोड़ा शरीर का रस देख लेने के हैं। अभी तो ये दिन थोड़े सौंदर्य में रमने के हैं। अभी तो गीत और नाच हो। अभी यहां कहां ध्यान लगाए बैठे हो? मन यह कह रहा है कि पहले संसार से तो मुक्त हो लो।

बहुत लोग कच्चे ही पक जाना चाहते हैं, यही अड़चन है। कच्चे ही पकने की कोशिश की, सड़ जाओगे, पकोगे नहीं। पकने दो। इतनी घबड़ाहट क्या है? इतनी जल्दी भी क्या है। यह प्रश्न भी प्रज्ञा ने पूछा है। और यहां प्रज्ञा बहुत दिन से है। युवा है अभी; लेकिन बड़ी दमित वासनाओं से भरी है। ठीक दूसरे किसी भी आश्रम में उसे धार्मिक समझा जाता; यहां सबसे ज्यादा अधार्मिक युवती वही है। दमित वासनाएं हैं। और वासनाओं के प्रति बड़ा विरोध है, दुश्मनी है। सभी चीज की निंदा है। वही अड़चन हो रही है।

अब यह प्रश्न उसी का है। वह पूछती है कि बार-बार कई तरह की वासनाओं में मन भटकने लगता है। भटकेगा नहीं तो क्या होगा? उन वासनाओं के प्रति बड़ा विरोध है। उन वासनाओं का अंगीकार नहीं है। और

बिना अंगीकार किए, बिना स्वीकार किए--उनकी समझ भी पैदा न होगी। वासनाएं व्यर्थ हैं, यह सच है। लेकिन व्यर्थता तुम्हें दिखाई पड़नी चाहिए; मेरे कहने से व्यर्थ नहीं हो जाएंगी। संतों ने कहा होगा कुछ। उनके कहने से कुछ भी नहीं हो जाएगा। उन्होंने जान कर कहा है। पलटूदास पलटे, जब उन्होंने जान लिया होगा। और प्रज्ञा पलटना चाहती है--बिना ही जाने! पलटूदास पलटे संसार के अनुभव से; देख लिया असार है। कानों से नहीं सुना, आंखों से देख लिया असार है। अनुभव से देख लिया कुछ सार नहीं है। जिस दिन यह पकान आ गई, यह परिपक्वता आ गई, उस दिन लौट पड़े। फिर लौट कर नहीं देखा। फिर क्या लौट कर देखना था : वहां कुछ था ही नहीं, लौट कर क्या देखना?

प्रज्ञा भी पलटू बनना चाहती है। मगर मन में अभी संसार में सार है। और जितना दबाओगे मन को उतना ही सार मालूम होगा। दमन से कोई कभी मुक्त नहीं होता; सिर्फ अनुभव से लोग मुक्त होते हैं।

तो यह दमित भाषा छोड़ो। यह धार्मिकपन छोड़ो। ये सुनी-सुनाई बातों और बकवास से मुक्त बनो। वह जो मन कह रहा है, उसकी भी सुनो। वह मन भी परमात्मा का है। वह मन यही कह रहा है कि अभी इन सीढ़ियों को पार करो। हां, उन्हीं सीढ़ियों पर अटके मत रह जाना, यह सच है।

दुनिया में दो तरह के नासमझ हैं। एक, सीढ़ियों पर डर के कारण चढ़ते ही नहीं, तो वे मंदिर तक नहीं पहुंच पाते हैं। सीढ़ियां ही नहीं चढ़ोगे, मंदिर तक कैसे पहुंचोगे? दूसरे, सीढ़ियों पर चढ़ जाते हैं तो सीढ़ियां छोड़ते ही नहीं, उन्हीं पर बैठे रह जाते हैं। वे भी मंदिर तक नहीं पहुंच पाते हैं। सीढ़ियां ही पकड़ लोगे तो मंदिर तक कैसे पहुंचोगे? सीढ़ियां चढ़ो भी, सीढ़िया छोड़ो भी। एक दिन पकड़ो, एक दिन छोड़ो। यह जीवन का संतुलन है। जीवन में सब जानने जैसा है। जीवन में कुछ भी ऐसा नहीं है जो जानो मत। और जानने में मुक्ति छिपी है।

तो प्रज्ञा से मैं यह कहना चाहूंगा कि तेरी वृत्ति बड़ी दमित है। तू पुराने ढर्रे की धार्मिक, रुग्ण ढर्रे की धार्मिक है। तू यहां आ गई, मेरी बातें तुझे प्रीतिकर लगती हैं; मगर तेरे मन का संयंत्र, तेरे मन का जो ढांचा है, वह बहुत ही जड़ सिद्धांतों से बना है। तू पूरे पक्षपात से भरी है। पहले से ही तेरे ख्याल में भरा हुआ है; हर चीज की निंदा है। हर चीज गलत है। संसार में पाप ही पाप है। तो संसार से बच कर निकल जाना है। और अभी उम्र तेरी कुछ भी नहीं है।

कम उम्र में भी लोग बच कर निकल जा सकते हैं; लेकिन बच कर नहीं निकल सकते। अनुभव से करके निकल सकते हैं। कम उम्र में भी निकल सकते हैं। अगर अनुभव बहुत बोधपूर्वक हो तो एक अनुभव काफी होता है एक चीज से मुक्त हो जाने के लिए। एक बार क्रोध कर लिया और अगर व्यक्ति में समझ हो पूरी, तो एक ही क्रोध पर्याप्त है, फिर दुबारा क्रोध न करेगा। फिर दुबारा क्या करना है, वही-वही क्या करना! देख लिया, जान लिया, कुछ पाया नहीं; बात खत्म हो गई।

मूढ़ आदमी पुनरुक्ति करता है। समझदार एक भी अनुभव से मुक्त हो जाता है। लेकिन इतना समझदार कोई भी कभी नहीं हुआ है कि बिना अनुभव के मुक्त हो जाए। इसे तू ख्याल में रख लेना। एक अनुभव से मुक्त हो जाए, ऐसे समझदार लोग हुए हैं। बहुत अनुभव से भी मुक्त न हो पाएं, ऐसे मूढ़ बहुत हैं। उन्हीं को पलटू गंवार कह रहे हैं--अजहूं चेत गंवार। पलटू यह नहीं कह रहे हैं कि पहले दिन ही चेत जाओ। पलटू कह रहे हैं, अब तो चेतो! इतने अनुभव के बाद अब तो चेतो! मगर अगर अनुभव ही न हुआ हो तो इतना बुद्धिमान कोई भी नहीं है कि चेत जाए। कम से कम एक अनुभव तो अनिवार्य है। असार को जानने के लिए भी असार का अनुभव अनिवार्य है।

तो मन से दमन की धारणाएं छोड़ो। मन को सहज और सरल बनाओ। नहीं तो यह विरोधाभास घटता है।

यहां जो लोग मेरे पास हैं, उनमें जो सर्वाधिक गतिमान हो रहे हैं, वे वे ही लोग हैं जिनके मन में कोई दमित धारणाएं नहीं है; जिनके मन में पाप का कोई ख्याल ही नहीं है कि यह पाप, यह पाप, यह पाप, ऐसा

किया तो पाप हो गया और अपराधभाव; जिनके मन में कोई पाप की धारणा नहीं है; जो बड़ी सरल-चित्तता से जीवन के अनुभव में उतरने को राजी हैं--बिना किसी पूर्व धारणा के, पूर्वाग्रह के। उनकी मुक्ति निकट है। वे बढ़ रहे हैं। और जो बहुत धारणाओं से भरे हुए हैं कि ऐसा किया तो गलत, वैसा किया तो गलत; पहले से ही मान कर बैठे हैं, जानते हैं नहीं कि क्या गलत, क्या सही, मगर धारणाएं मजबूत पकड़े बैठे हैं--ऐसे जिद्दी और हठी और दमित लोगों की मेरे पास कोई विकास की संभावना नहीं है।

तुम्हारे जीवन में यहां क्रांति घट सकती है, मगर एक शर्त तुम्हें पूरी करनी ही पड़ेगी। वह शर्त है : अपने कचरा सिद्धांतों को एक तरफ रखो। नहीं तो वही कचरा सिद्धांत तुम्हारे सिर को खाते रहेंगे। ध्यान करोगे और वासनाएं उठेंगी। इतना ही वासनाएं कह रही हैं कि पहले हमें पूरा तो करो। वे अपनी मांग मांग रही हैं। वे कहती हैं, पहले हमारा भी तो देना चुकाओ, हमारा ऋण तो पूरा करो। ऋण पूरा करके फिर चले जाना, ठीक। ऋण बिना ही चुकाए. . .।

और ख्याल रखना, जो व्यक्ति वासनाओं से गुजर कर वासनाओं से मुक्त होता है, उसके जीवन में एक समृद्धि होती है, और जो व्यक्ति वासनाओं से किसी तरह से बच कर निकलना चाहता है, उसके जीवन में एक दीनता होती है, डर होता है। डर तो रहेगा ही फिर, क्योंकि वह हमेशा भयभीत रहेगा कि फिर कोई वासना न पकड़ ले।

बुद्ध को... ज्योतिषियों ने बुद्ध के पिता को कहा था जन्म पर कि यह व्यक्ति संन्यासी हो जाएगा या चक्रवर्ती सम्राट। बुद्ध के पिता डर गए। और उन्होंने कहा कि कुछ रास्ता बताओ कि यह संन्यासी न हो पाए। पंडित थे, पुराने ढर्रे के पंडित रहे होंगे; उन्होंने कहा : ऐसा करो कि इसको मृत्यु का कोई अनुभव न हो, और इसके लिए जितनी सुंदरतम स्त्रियां मिल सकें, इसके पास इकट्ठी कर दो। बचपन से ही इसको राग-रंग में पलने दो। इसको बिलकुल सुख-वैभव में पलने दो। इसको दुख, होने ही मत दो। इसको पता ही मत चलने दो कि जीवन में दुख होता है, मौत होती है, कि कोई आदमी बूढ़ा होता है। यहां तक उन्होंने कहा कि इसके बगीचे में कोई फूल कुम्हलाए नहीं, नहीं तो यह सोचेगा कि फूल कुम्हला गया, क्यों? और कहीं उसी से संन्यास का भाव पैदा हो जाए! कोई पत्ता सूखा हुआ इसके बगीचे में न बचे। इसको छिपा कर रखो। इसके लिए सुंदरतम महल बनवाओ।

तो पिता ने वैसा ही किया। सुंदर महल बनवाए, अलग-अलग ऋतुओं के लिए अलग-अलग महल बनवाए। सारे राज्य की सुंदर युवतियां इकट्ठी कर दीं। बुद्ध बचपन से ही बड़े सुख में पाले गए। और वही संन्यास का कारण हो गया। उसी कारण संन्यस्त हुए, नहीं तो नहीं होते। अगर साधारण जीवन में गुजरे होते तो शायद न हो पाते; शायद और दो-चार जन्म लगते। मगर इतना घना सुख मिला--और सुख न मिला। सुंदरतम स्त्रियां मिलीं--और कुछ सौंदर्य का अनुभव न हुआ। जल्दी ही ऊब गए। वासना से गुजर गए, तेजी से गुजर गए। कुछ और रहा न वासना में; सब देख लिया। देखने योग्य सब देख लिया; कुछ पाया नहीं। सब सुख-वैभव देख लिए। जल्दी ही, जवान ही थे, तभी वैराग्य का उदय हुआ; तभी घर छोड़ कर जंगल चले गए।

अगर बुद्ध के पिता ने उन पंडितों से फिर पूछा होगा कि कहां भूल-चूक हो गई तो उन्होंने बताया होगा कि आप पूरी व्यवस्था नहीं कर पाए। यह रास्ते पर निकलता था, इसने एक बीमार आदमी देख लिया। ऐसी कहानी है ही। रास्ते पर निकलता था, इसने एक मुर्दे की लाश देख ली। यह नहीं होना था। इससे इसके मन में प्रश्न उठने लगे कि जीवन समाप्त हो जाएगा। इससे यह चला गया। आप पूरा इंतजाम नहीं कर पाए, जैसा हमने कहा था।

और मेरा मानना है कि उनके इंतजाम के कारण ही बुद्ध गए।

इसीलिए जीवन के सारे अनुभव से गुजर जाना मुक्ति का उपाय है। बुद्ध के बुद्धत्व में उन पंडितों का बड़ा हाथ रहा--अनजाने। बुद्ध के पिता का बड़ा हाथ रहा--अनजाने। उन्होंने तो कुछ और चाहा था; कुछ हो गया। सब देख लिया बुद्ध ने, जो संसार दे सकता था। जल्दी ही देख लिया। पच्चीस साल के हुए थे तभी सब सुख-भोग

देख लिए। जो आदमी पचहत्तर तक भी सोचता ही रहता है, वे पच्चीस में देख ही लिए, वे खत्म ही हो गए। अब कुछ बचा ही नहीं। पच्चीस में वृद्ध हो गए बुद्ध--उतने वृद्ध जितना आदमी पचहत्तर में होता है।

हिंदू कहते हैं, पचहत्तर साल में आदमी को संन्यासी होना चाहिए; बुद्ध पच्चीस साल में संन्यासी हो गए। क्योंकि साधारण जिंदगी में सुख इतने ज्यादा थोड़े ही मिलते हैं, इतने इकट्ठे थोड़े ही मिलते हैं, थोक थोड़े ही मिलते हैं, फुटकर-फुटकर आते हैं, पचहत्तर साल लग जाते हैं आते-आते। बुद्ध की जिंदगी में थोक आए; इकट्ठे गिर गए। पच्चीस साल में सब पूरा हो गया।

तुम मेरे आश्रम में हो तो ख्याल रखो, मैं दमन का पक्षपाती नहीं हूं। मैं अनुभव का पक्षपाती हूं। जो वासनाएं तुम्हारे मन में बार-बार उठ आती हों, उन्हें पूरा ही कर लो। कुछ वासना से इतना घबड़ाना क्या है? सीढ़ियां हैं, चढ़ जाओ। हां, सीढ़ियों की पकड़ में मत आ जाना। सीढ़ियां किसको पकड़ती हैं? तुम मत पकड़ना सीढ़ियों को, बस। सीढ़ियों ने किसी को कभी पकड़ा हो, ऐसा मैंने सुना नहीं। तो सीढ़ियों से क्या घबराना? रख लो पैर, चढ़ जाओ। गुजर जाओ। मंदिर में पहुंच जाओगे।

वासना की सीढ़ियों से चढ़ कर ही कोई प्रार्थना तक पहुंचता है। और विचार की सीढ़ियों से चढ़ कर ही कोई निर्विचार तक पहुंचता है। और संसार परमात्मा तक जाने का आयोजन है, चुनौती है।

छोड़ो विरोध। छोड़ो दमन। छोड़ो नकार।

पूछा है प्रज्ञा ने : "आप और सभी संत यही कहते हैं. . .।"

और सभी संतों का मुझे पता नहीं, क्योंकि तुम्हारे सभी संतों में बहुत तो संत हैं ही नहीं। तुम्हारे सौ संतों में एकाध संत होता है, निन्यानबे तो तुम जैसे ही रुग्ण और तुमसे भी ज्यादा महारुग्ण होते हैं। मगर उन निन्यानबे की भाषा तुम्हें समझ में आती है, क्योंकि वे तुम्हारे ही रोग की भाषा बोलते हैं। और वह जो एक है, उसकी भाषा तुम्हें समझ में नहीं आती। उन्हीं थोड़े से एक-एक संतों को चुन कर मैं बोल रहा हूं उनके ऊपर, ताकि तुम्हें छांट कर बता दूं कि कितने संत हैं। असंत तो बहुत हैं, इसलिए उनकी संख्या गिनना भी ठीक नहीं। संतों पर बोलता जा रहा हूं। संत बहुत ज्यादा नहीं हैं। तुम्हारे सभी संत संत नहीं हैं, और प्रज्ञा के सभी संत तो हो ही नहीं सकते। इसके तो सौ ही संत रुग्ण और विक्षिप्त होंगे। इसको तो वही लोग संत मालूम पड़ेंगे जो रुग्ण और विक्षिप्त होंगे। क्योंकि इसका चित्त, इसके सोचने का ढंग, इसकी विचार-पद्धति, इसके तर्क की शृंखला--दमन की है, शरीर-विरोधी है, संसार-विरोधी है।

"आप और सभी संत यही कहते हैं कि मन से मुक्त हो जाने पर व्यक्ति को परमात्मा के नजदीक जाने में सरलता होती है।"

मन से मुक्त हो जाने पर सरलता नहीं होती; मन से मुक्त हुए कि पहुंच गए। अब और क्या सरलता? अब क्या कठिनता बची? मन से मुक्त हुए कि जाना जाता है कि हम सदा से परमात्मा में ही थे। मन को पकड़ लिया था, इसलिए भूल-भटक हुई जा रही थी।

"लेकिन मन से मुक्त होना असंभव सा लगता है।"

असंभव रहेगा ही, प्रज्ञा। जिस ढंग से तू मुक्त होना चाहती है, हो नहीं पाएगी। जिस ढंग से तूने मुक्त होना चाहा है, कोई कभी नहीं मुक्त होता। जिस ढंग से तू मुक्त होना चाहती है उस तरह से लोग विक्षिप्त होते हैं, मुक्त नहीं होते। विमुक्ति का यह मार्ग नहीं है--विक्षिप्तता का मार्ग है।

मन से मुक्त होना असंभव है, अगर अनुभव न हो। मन को अनुभव करना ही होगा। मन के दुखों से गुजरना ही होगा। मन के सुखों को जांचना ही होगा। अंततः पाया जाता है कि मन में कोई सुख नहीं है; सब दुख ही दुख है। मगर यह तो अंततः पाया जाता है। यह पहली घड़ी नहीं है।

जिंदगी में ख्याल रखो, जिंदगी कुछ ऐसी नहीं है, कुंजी की किताब नहीं है, गणित की किताब नहीं है, जिसमें सामने प्रश्न लिखे होते हैं, उलटा कर देखो तो पीछे उत्तर लिखे होते हैं। छोटे-छोटे बच्चे ऐसा कर लेते हैं। जल्दी से देख लिया उत्तर; अब उत्तर भी मालूम है, प्रश्न भी मालूम है, मगर बीच की विधि मालूम नहीं है। अब बड़ी झंझट में पड़े। अब सब मालूम है उन्हें, जो भी जरूरी है। प्रश्न भी मालूम है, उत्तर भी मालूम है और बीच की विधि का कोई पता नहीं है। अब सीढ़ी लगाने की मुश्किल हो गई। ठीक उत्तर भी बेकार है। क्या करोगे इस उत्तर का?

यह उत्तर तुम्हारी ही विधि से आना चाहिए, तो ही उत्तर है। उत्तर चुराए नहीं जा सकते हैं। जिंदगी की इस पाठशाला में नकल नहीं की जा सकती।

तुम्हारे सामने कोई सदगुरु भी बैठा हो तो भी तुम उसके उत्तरों से काम नहीं चला सकते। तुम्हें अपने उत्तर खोजने ही पड़ेंगे। परमात्मा तुम्हारी निजता का समादर करता है। तुम जब तक न पाओगे तब तक पाए हुए न माने जाओगे।

तो ऐसे तो असंभव है, अगर डर-डर कर चलो और मन का जो कल्पना-जाल है उसका अनुभव न करो। अनुभव कर लो तो बिलकुल सरल है। असंभव कोई बात ही छोड़ो, बिलकुल सरल है। इससे सरल और कोई चीज नहीं है, क्योंकि मन के अनुभव कभी भी, कहीं भी सुख को तो लाते ही नहीं। इसलिए उलझ तो कोई सकता ही नहीं; देर अबेर बाहर निकल ही आता है आदमी। कितनी देर मृग-मरीचिका में उलझोगे, अगर सपना ही है तो जागना ही पड़ेगा। कितनी ही देर सपने को देखो, तृप्ति तो नहीं होगी।

ऐसा समझो कि एक आदमी रात सोया, उसे भूख लगी दिन में उपवास किया है, रात सोया, भूख लगी है और वह सपना देख रहा है कि राजमहल में निमंत्रण हुआ है, भोजन के लिए बैठा है, बड़े स्वादिष्ट भोजन बने हैं, खूब भोजन कर रहा है, करता ही जा रहा है! लेकिन इससे भी तो कोई तृप्ति तो होने वाली नहीं है। सुबह जब आंख खुलेगी तो पाएगा भूखा का भूखा है।

ऐसे मन के सुख हैं। जब आंख खुलती है तो पाया जाता है, बस ख्याली-पुलाव थे; कहीं कुछ सच्चाई न थी। उनसे न तृप्ति होती है न पोषण होता है। मगर उनसे गुजरना होता है। कुछ अनिवार्य प्रक्रिया है।

तीन सीढ़ियां हैं मनुष्य की : शरीर, मन, आत्मा। और तब चौथी दशा है : तुरीय। पलटू कहते हैं न कि तुरिया में चढ़ कर बैठ गया हूं और तुरिया को ही बेच रहा हूं अब! वह जो चौथी अवस्था है : परमात्मा। शरीर से अगर बच कर निकलना चाहा तो मुश्किल हो जाएगी; मन तक न पहुंच पाओगे। मन से अगर बच कर निकलना चाहा तो आत्मा तक न पहुंच पाओगे। और अगर आत्मा से बच कर निकलना चाहा तो परमात्मा तक न पहुंच पाओगे।

शरीर पर चढ़ो हिम्मत से; शरीर के मालिक बनो। शरीर से डरने की कोई जरूरत नहीं है। इस घोड़े पर लगाम लगाई जा सकती है। मगर डर कर बैठो ही मत घोड़े पर, तो तुम इसके कभी मालिक न बन सकोगे। शरीर पर चढ़ो। शरीर की सीढ़ी पर पैर रखो, मन की भी सीढ़ी पर पैर रखो। मन बहुत सी वासनाओं के जाल दिखाता है। उसमें चुन लो, बहुत सी वासनाएं नहीं हैं। अगर बहुत गौर से देखोगे तो उंगलियों पर गिनी जा सकें, ऐसी वासनाएं हैं। कितनी बहुत सी वासनाएं हैं? चूंकि दमन करते हो, इसलिए एक ही वासना हजार-हजार रूपों में प्रकट होती है? अगर उसको भोग ही लो, समाप्त हो जाती है।

मन से चढ़ो तो आत्मा मिलती है।

कुछ लोग शरीर में ही अटक गए हैं। उनकी सारी जीवनचर्या बस शरीर में ही अटकी है। इनमें से कई लोग धार्मिक समझे जाते हैं। अटके हैं शरीर में--उपवास करना, स्नान करना, जनेऊ, और यह और वह--और सब शरीर का ही गोरखधंधा है। गंगा जाएंगे और तीर्थयात्रा करेंगे; मगर शरीर से पार नहीं हैं। शूद्र छू देगा तो स्नान करना पड़ेगा। शरीर की ही बुद्धि है; जैसे शरीर ही सब कुछ है। खूब घिस-घिस कर शरीर धोते रहेंगे। मगर

इससे कुछ भीतर की स्वच्छता नहीं आती। अपना भोजन खुद ही बना कर करेंगे, क्योंकि दूसरे के छुए भोजन में कहीं कुछ अशुद्धि हो जाए! मगर भोजन शरीर में जाता है; शरीर के पार नहीं जाता।

कुछ लोग हैं जो मन में उलझे हैं। उनकी झंझट यही है कि वासना से कैसे छूटें, विचार से कैसे छूटें, वृत्ति से कैसे छूटें। क्योंकि पतंजलि तो कह गए, चित्तवृत्ति-निरोध, तो ही योग होगा। तो यह चित्तवृत्ति का निरोध कैसे हो? वे वहीं उलझे हैं। वे रुग्ण होते जाते हैं, विक्षिप्त होते जाते हैं, पगलाते जाते हैं। किसी तरह बाहर तो संयम बांधबूंध कर खड़ा कर लेते हैं, लेकिन भीतर आग जलती है असंयम की।

कुछ लोग वहां से भी पार हो जाते हैं तो आत्मा में अटक जाते हैं। तो मैं-भाव में अटक जाते हैं, अत्ता में अटक जाते हैं, अहंकार में अटक जाते हैं।

उससे भी जो पार होता है वह परमात्मा में पहुंचता है।

ये तीनों सीढ़ियां हैं जीवन की, इनके पार होना है। इन तीनों सीढ़ियों के पार प्रभु का मंदिर है। मगर अनुभव से ही पार हो सकता है कोई। चढ़ कर ही गुजर कर ही पार हो सकता है कोई।

भय मत करो--जीवन का भय मत करो। जीवन शुभ है। जीवन के सब रूप शुभ हैं। इन सभी रूपों में सजग भाव से गुजरो।

अब प्रज्ञा कहती है कि "बार-बार वासनाएं उठती हैं। और बहुत सावधानी रख कर थोड़ा होश आता है कि फिर-फिर मन कल्पनाओं में बहने लगता है।"

यह जो बहुत सावधानी रख कर थोड़ा होश आता है, यह जबरदस्ती लाया गया होश है। यह दो कौड़ी का है, इसका कोई मूल्य नहीं है। होश अनुभव से आना चाहिए। होश सहज होना चाहिए। कबीर कहते हैं : सहज समाधि भली। चेष्टा कर-करके किसी तरह लाए तो वह क्षण भर ही टिकेगा। वह ऐसा ही होगा जैसे कि मैं तुमसे कहूं कि फलां आदमी को प्रेम करो और तुम चेष्टा करके कर भी लो प्रेम, तो कितनी देर टिकने वाला है? जरा भूले कि फिर. . .।

प्रेम होगा तो टिकेगा। चेष्टा करने से कैसे आएगा? ऐसे ही प्रेम भी नहीं आता चेष्टा से, ऐसे ही ध्यान भी नहीं आता चेष्टा से। और यह चेष्टा भी भय के कारण चल रही है कि कहीं वासना न आ जाए, तो चेष्टा करके सावधानी रखो तो लड़ाई चल रही भीतर। वासना और ध्यान में लड़ाई चल रही है। वासना और ध्यान में अगर लड़ाई करवाओगे तो वासना जीतेगी, ध्यान नहीं जीत पाएगा।

यह ऐसा ही है जैसे कि कोई फूल और पत्थर में लड़ाई करवाए तो पत्थर जीतेगा, फूल नहीं जीत सकता। हालांकि फूल ऊंची अवस्था है और पत्थर नीची अवस्था है, लेकिन यह ख्याल रखना कि जब भी तुम नीचाई-ऊंचाई में लड़ाई करवाओगे, नीचाई जीतेगी, ऊंचाई नहीं जीतेगी। क्योंकि ऊंचाई कोमल होती है; फूल जैसी होती है।

जीवन में क्षुद्रताओं से विराटताओं को मत लड़वाना। लट्ठ लेकर सितार से मत जूझ जाना; नहीं तो लट्ठ जीतेगा, सितार हार जाएगा। और इसका यह मतलब नहीं है कि सितार कमजोर है। इसका इतना ही मतलब है कि सितार श्रेष्ठ है, ऊंचा है, सूक्ष्म है। सूक्ष्म के सामने स्थूल को मत लड़ाना। और यही लोग कर रहे हैं; स्थूल को लड़ा रहे हैं सूक्ष्म से। ध्यान को लड़ा रहे हैं वासना से। वासना पत्थर जैसी है; ध्यान फूल जैसा है। इसमें बार-बार ध्यान ही हारेगा। इसे खूब गांठ बांध कर रख लो।

कभी परमात्मा को संसार से मत लड़ाना, नहीं तो संसार जीतेगा और परमात्मा हारेगा। और इसमें परमात्मा का कोई कसूर नहीं है; तुमने परमात्मा को संसार से लड़ाया, यही भूल हो गई।

परमात्मा परम है, अति सूक्ष्म है, सुवास है, संगीत है, सौंदर्य है। संसार की स्थूलता से लड़ाओगे, खंड-खंड हो जाएगा, टूट जाएगा, बिखर जाएगा। परमात्मा को लड़ कर पाया ही नहीं जाता है। ध्यान भी लड़ कर नहीं पाया जाता। समझपूर्वक।

तो मैं तुमसे यह कहूंगा कि जब वासना उठे तो चेष्टा करके ध्यान मत लगाओ। जब वासना उठे तो वासना को समझो, क्या वासना का संदेश है? क्या तुम्हारा मन तुमसे कहना चाहता है? क्या मन तुम्हें बताना चाहता है? कहां ले जाना चाहता है? सुनो इसकी! तुम्हारा मन है, तुम न सुनोगे तो कौन सुनेगा? यह फरियाद भी करे तो कहां करे? आखिर इसकी भी इच्छाएं हैं। यह तुमसे न कहेगा तो किससे कहेगा? इसे प्यास लगी है और तुम अपना ध्यान लगाने की कोशिश कर रहे हो! इसे भूख लगी है और तुम ध्यान लगाने की कोशिश कर रहे हो! इसकी भी सुनो! कुछ बड़ी कठिन बातें नहीं मांग रहा है--प्यास है, भूख है, काम है, प्रेम है, छोटी-छोटी बातें हैं। इसे दो! और जागरूक रहो और देखते रहो कि इसको इतना भोजन देते हैं फिर भी यह तृप्त होता है या नहीं? इसे इतना प्रेम का अवसर मिलता है, फिर भी प्रेम से इसको रस आता है या नहीं? जब धीरे-धीरे तुम्हें एक बात पक जाएगी कि कितना ही दो, इसको रस नहीं आता, तो देने से कुछ हल होने वाला नहीं है।

मगर ख्याल रखना, जल्दी मत करना। यह पकने देना तुम्हारे ही भीतर। मेरी कही बात नहीं. . . कानों सुनी सो झूठ सब। जिस दिन तुम्हारे भीतर ही यह अनुभव का स्वर बजेगा कि यह मन तो अतृप्त ही रहेगा, अतृप्ति इसका स्वभाव है; दुष्पूर है वासना, यह पूरी नहीं होगी; जिस दिन तुम्हें ऐसा समझ में आ जाएगा--ख्याल रखना फिर दोहराता हूं, तुम्हें समझ आ जाएगा--उसी दिन तुम पाओगे मन गया। और तब एक अखंड चेतना जलने लगती है। एक दीया पैदा होता है, एक जागरूकता, जो लाई हुई नहीं है, जो सहज है। साधो, सहज समाधि भली।

आखिरी प्रश्न : जब आप अष्टावक्र, बुद्ध या लाओत्सु पर बोलते हैं, तब आपकी वाणी में बुद्धि और तर्क का अपूर्व तेज प्रवाहित होता है। लेकिन जब वही आप भक्ति-मार्गी संतों पर बोलते हैं, तब बातें अटपटी होने लगती हैं। ऐसा क्यों है?

ऐसा इसलिए है कि मैं नहीं हूं; क्योंकि मैं नहीं बोल रहा हूं।

जब अष्टावक्र बोलते हैं तो उनको ही बोलने देता हूं। जब बुद्ध बोलते हैं तो उनको ही बोलने देता हूं; फिर मैं बीच में नहीं आता। और जब पलटूदास बोलते हैं तो पलटूदास को ही बोलने देता हूं। मैं क्यों बीच में आऊं? जब दरिया को बोलने देता हूं तो दरिया को ही बोलने देता हूं। मैं केवल माध्यम हो जाता हूं।

मैं कोई व्याख्याकार नहीं हूं। ये कोई व्याख्याएं नहीं हैं; ये कोई भाष्य नहीं हो रहे हैं। मैं फिर एक मौका देता हूं कि पलटूदास, फिर से गा लो, फिर से कह लो। बहुत दिन हो गए, लोगों ने तुम्हारी बात नहीं सुनी, बहुत दिन हो गए लोग तुम्हें भूल ही गए। फिर से जी लो मेरे बहाने। मेरे निमित्त फिर से लोगों से बात कर लो।

मैं सिर्फ निमित्त बन जाता हूं।

तो मेरी व्याख्या ऐसी नहीं है जैसी लोकमान्य तिलक की व्याख्या है गीता पर, कि महात्मा गांधी की व्याख्या है गीता पर। उनकी अपनी धारणाएं हैं। वे अपनी धारणाओं को गीता में खोजते हैं। मेरी कोई धारणा नहीं है। मैं धारणा-शून्य हूं। मैं रिक्त, शून्य-भाव से, जिसकी कहता हूं उसको ही कहने देता हूं।

इसलिए जब बुद्ध पर बोलूंगा तो स्वभावतः बुद्ध की प्रखरता, बुद्ध की स्पष्टता, बुद्ध का तर्क झलकेगा। और जब दरिया पर बोलूंगा या पलटू पर या कबीर पर, तो उनकी अटपटी बातें, उनकी प्रेमपटी बातें, उनकी प्रेमपगी बातें, उनकी मस्ती झलकेगी। बुद्ध के साथ मैं बुद्ध हो जाता हूं, पलटू के साथ पलटू हो जाता हूं। अपनी धारणा नहीं डालता हूं। मेरी कोई धारणा नहीं है। मैं कोई दार्शनिक नहीं हूं।

इसलिए स्वभावतः तुम्हें बेचैनी मालूम पड़ती होगी कभी-कभी। कभी-कभी तुम्हें विरोधाभास दिखाई पड़ते होंगे, स्वाभाविक। क्योंकि बुद्ध एक ढंग से बोलते हैं, दरिया दूसरे ढंग से बोलते हैं, दादू तीसरे ढंग से

बोलते हैं। ऐसा प्रयोग पहले कभी पृथ्वी पर किया नहीं गया, इसलिए तुम्हारी अड़चन को मैं समझता हूं। यह पहली दफा हो रहा है। जैनों ने गीता पर टीका नहीं लिखी। क्यों लिखें? हिंदुओं ने महावीर के वचनों पर भाष्य नहीं किया; उल्लेख ही नहीं किया महावीर का, वचनों पर भाष्य तो अलग। हिंदुओं ने धम्मपद पर नजर नहीं डाली, न ही मुसलमानों ने वेद की चिंता की; न ही ईसाई कुरान पर बोलते हैं। सबकी अपनी बंधी लकीरें हैं। सबकी अपनी धारणाएं हैं। अपनी धारणाओं की सीमा के बाहर नहीं जाते।

मेरी कोई धारणा नहीं है; न मैं हिंदू हूं, न मुसलमान हूं, न जैन हूं, न ईसाई हूं। मेरा कोई छोटा-मोटा आंगन नहीं है; यह सारा आकाश मेरा है। इतने बड़े आकाश को जब तुम सुनोगे तो तुम घबड़ाओगे। छोटे-छोटे आंगन को समा लेने की तुम्हारी क्षमता है। इतना बड़ा आकाश तुम्हें मिटा ही जाएगा, तुम्हें पोंछ ही देगा। और वही चेष्टा चल रही है।

अगर मैं एक ही धारणा के सूत्रों पर बोलता रहूं... जैसे बुद्ध के ही वचनों पर बोलता रहूं या बुद्ध की परंपरा में आए हुए संतों पर बोलता रहूं--बुद्ध पर बोलूं, वसुबंधु पर बोलूं, नागार्जुन पर बोलूं, बोधिधर्म पर बोलूं, धर्मकीर्ति, चंद्रकीर्ति, बुद्ध की ही परंपरा में आए संतों पर बोलता रहूं--तो धीरे-धीरे मैं तुम्हारी बौद्धिक धारणा को निर्णीत कर दूंगा, एक आंगन बना दूंगा। तब तुम भी अगर मुझे सुनते ही रहे, सुनते ही रहे, सुनते ही रहे तो बौद्ध हो जाओगे। अगर मैं मुसलमान फकीरों पर ही बोलता रहूं, तो सुनते-सुनते, सुनते-सुनते तुम अगर मेरे साथ बंध गए तो मुसलमान हो जाओगे।

आज मुसलमान पर बोलता हूं, कल हिंदू पर बोलता हूं, परसों बौद्ध पर बोलता हूं। मैं तुम्हें भी टिकने नहीं देना चाहता, कहीं भी नहीं टिकने देना चाहता। इसके पहले कि तुम टिकने का इंतजाम करते हो, खूंटी इत्यादि गाड़ने लगते हो कि तंबू चढ़ा दें और अब सो जाएं, मैं कहता हूं : बस उठो, सुबह हो गई, चलना है। तुम नाराज भी होते हो कई बार कि जरा आराम तो कर लेने दें। बात जंच रही थी; आपने ही जंचा दी थी कि यह जगह बड़ी सुंदर है, यहां विश्राम करो। आपकी ही बात मान कर... । पहले तो आपकी बात मानने में झंझट थी, किसी तरह मान कर खूंटी इत्यादि गाड़ कर मैदान साफ करके बिस्तर इत्यादि लगा ही रहे थे, चूल्हा इत्यादि जला ही रहे थे कि चलने का वक्त आ गया।

कारण है।

गिरह हमारा सुन्न में, अनहद में विसराम!

कहीं टिकने न दूंगा। अनहद में विसराम। जहां तक हदें हैं, वहां तक नहीं टिकने दूंगा। जिस दिन तुम कहोगे अब आकाश ही हमारा तंबू, पृथ्वी ही हमारा बिछौना, सब धर्म हमारे और हम सब धर्मों के, जिस दिन तुम ऐसा कहोगे--उस दिन कहूंगा, अब मजे से सो जाओ, अनहद में विसराम आ गया। जब तक तुम्हें देखूंगा कि तुम आंगन बनाते हो, तुम जल्दी में हो बहुत--तुम बड़ी जल्दी करते हो; तुम एक बात पकड़ते हो, कहते हो बस ठीक आ गया घर--जैसे ही मुझे लगा कि आ गया घर, तुम्हें पकड़ में आ रहा है कि मैं तुम्हारे घर को तोड़ने में लग जाता हूं।

तो कभी बुद्धि की बात करता हूं और कभी बुद्धि-अतीत, कभी अटपटी बातें। कभी तर्क की और कभी अतर्क की। तुम्हें कहीं रुकने नहीं देना है।

यह प्रयोग पृथ्वी पर पहली बार हो रहा है। इसलिए तुम इससे अपरिचित हो। तुम्हारे अपरिचय के कारण तुम्हारी अड़चन आती है, परेशानी आती है। तुम किसी तरह जल्दी से कोई धारणा बना लेना चाहते हो। तुम कहते हो, कोई भी बात एक दफा ठीक से कह दें कि यह ठीक है, ताकि हम निश्चिंत हो जाएं। तुम तलैया बनना चाहते हो, और मैं चाहता हूं कि तुम सरिता बनो। बस यही मेरे और तुम्हारे बीच संघर्ष है। तुम कहते हो,

जल्दी से हमें बता दें कि यह जगह ठीक, आ गया ठीक स्थान, हम एक तलैया बन जाएं और मजे से रहें, फिर हमें सताओ मत; अब फिर यह कहो मत कि आगे बढ़ो, चलते ही चलो, चलते ही चलो।

मैं चाहता हूंः तुम सरिता बनो। क्योंकि सरिता तुम बनो--तो ही सागर मिले। तलैयों को कहीं सागर मिलता है! तलैयों में ही तो तुम पड़े हो और परेशान हो रहे हो। वही तो पलटू कहते हैं कि जैसे-जैसे पानी सूखता जाता है, मीन तड़पती है। तलैया सूखने लगती है, मछली को कोई मारने वाला पकड़ ले जाता है और तलैया के स्थान पर जहां कभी जल हुआ करता था, सिर्फ सूखी हुई मिट्टी पड़ी रह जाती है, मिट्टी के ढेले पड़े रह जाते हैं, फटी हुई जमीन पड़ी रह जाती है।

सरिता बनो! बहाव बनो! कहीं रुको मत! कोई जगह नहीं है जहां रुकना है। रुकना ही छोड़ दो। गति बनो गत्यात्मक बनो।

मेरा संन्यास गत्यात्मक है। मेरा शिष्य कहीं रुकेगा नहीं--अनहद के पहले नहीं रुकेगा। और अनहद में पहुंच गए, फिर क्या चलना है! सागर में पहुंच गए। इसलिए इन सारे पड़ावों की बात कर रहा हूं। ये सब घाट हैं गंगा के। मैं तुम्हें ले चला हूं पूरी गंगा की यात्रा पर। एक घाट आता है, तुम कहते हो बड़ा प्यारा घाट आ गया। मैं उस घाट की खूब प्रशंसा भी करता हूं। तुम कहने लगते हो, तब फिर नाव बांध दें, अब उतर जाएं, अब आ गई काशी? मैं कहता हूं अभी रुको, अभी कहां? यह घाट प्यारा है, मगर रुकना नहीं है। इस घाट का आनंद ले लो; जितनी देर गुजरते हो इस घाट पर से, अहोभाव से गुजरो। प्यारा घाट है। मगर पहुंचना है शून्य में, पहुंचना है अनहद में।

गिरह हमारा सुन्न में, अनहद में विसराम।

आज इतना ही।

सातवां प्रवचन

सहज आसिकी नाहिं

सीस उतारै हाथ से, सहज आसिकी नाहिं।।
सहज आसिकी नाहिं, खांड खाने को नाहीं।
झूठ आसिकी करै, मुलुक में जूती खाहीं।।
जीते जी मरि जाय, करै ना तन की आसा।
आसिक का दिन-रात, रहै सूली उपर बासा।।
मान बड़ाई खोय, नींद भर नाहीं सोना।
तिलभर रक्त न मांस, नहीं आसिक को रोना।।
पलटू बड़े बेकूफ वे, आसिक होने जाहिं।
सीस उतारै हाथ से, सहज आसिकी नाहिं।। 10।।

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।।
खाला का घर नाहिं, सीस जब धरै उतारी।
हाथ-पांव कटि जाय, करै ना संत करारी।।
ज्यौं-ज्यौं लागै घाव, तेहुं-तेहुं कदम चलावै।
सूरा रन पर जाय, बहुरि न जियता आवै।।
पलटू ऐसे घर महैं, बड़े मरद जे जाहिं।
यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।। 11।।

लगन-महूरत झूठ सब, और बिगाड़ैं काम।।
और बिगाड़ैं काम, साइत जनि सोधैं कोई।
एक भरोसा नाहिं, कुसल कहुवां से होई।।
जेकरे हाथै कुसल, ताहि को दिया बिसारी।
आपन इक चतुराई, बीच में करै अनारी।।
तिनका टूटै नाहिं, बिना सतगुरु की दाया।
अजहूं चेत गंवार, जगत है झूठी काया।।
पलटू सुभ दिन सुभ घड़ी, याद पड़ै जब नाम।
लगन-महूरत झूठ सब, और बिगाड़ै काम।। 12।।

जीसस ने कहा है : जो खोएगा वही पाएगा। जो बचाएगा, सब खो देगा।

प्रेम के शास्त्र का यह बुनियादी सिद्धांत है। कंजूस की वहां गति नहीं। पकड़ने वाले के लिए वहां उपाय नहीं। वहां खोने वाले की मालिकी है। वहां जो बचाते हैं, दीन और दरिद्र रह जाते हैं। वहां जो लुटाते हैं, वही पाते हैं।

प्रेम का जगत बड़ी उलटबांसी है।

संसार में एक गणित चलता है; प्रेम का गणित बिल्कुल उलटा है। संसार में बचाओगे तो बचेगा। प्रेम में लुटाओगे तो बचेगा। संसार में लुटाओगे तो दीन-दरिद्र हो जाओगे। प्रेम में न लुटाया तो दीन-दरिद्र हो जाओगे।

संसार से सत्य की दिशा बिलकुल उलटी है।

संसार परमात्मा की प्रतिछाया है। जैसे कभी किसी झील पर तुम खड़े हो और झील में झांक कर देखो, तो जमीन पर तो तुम्हारे पैर नीचे हैं और सिर ऊपर है; लेकिन झील में दिखाई पड़ेगा कि पैर ऊपर हैं और सिर नीचे है।

परमात्मा से संसार ठीक उलटा है। संसार के गणित को उलटा लो तो धर्म का गणित बन जाता है।

आज के सूत्र बड़े बहुमूल्य हैं। उनका मूल्य नहीं आंका जा सकता। धर्म के शास्त्र की जो बुनियादी भित्ति है, इन्हीं सूत्रों की ईंटों से बनी है। इन्हें खूब भाव से ग्रहण करना। इनके रस में डूबना।

"सीस उतारै हाथ से, सहज आसिकी नाहिं।"

तुमने सदा सुना है कि भक्ति का मार्ग बड़ा सरल है। बात सच भी है और झूठ भी है। सच इसलिए कि जिन्हें प्रेम आ जाए उनके लिए भक्ति से सरल और क्या! झूठ इसलिए कि प्रेम आना बड़ा कठिन है। प्रेम आ जाए तो सब सुगम। फिर तो प्रयास करना ही नहीं होता--प्रसाद में मिलता है। प्रभु की तरफ जाना ही नहीं पड़ता भक्त को, भगवान ही भक्त को खोजने आता है। हरि सुमिरण मेरा करैं! भक्त की स्मृति हरि को होने लगती है। भक्त तो भूल ही भाल जाता है। प्रेम में किसको याद रहती है! प्रेम की मस्ती में कौन हिसाब रखता है--मंत्र, पाठ-पूजा, प्रार्थना, उपासना! लेकिन परमात्मा स्मरण रखने लगता है। इधर भक्त का स्मरण भूलता है उधर परमात्मा में स्मरण जगता है। और मजा तो तभी है जब हरि तुम्हारा स्मरण करे। तुम्हीं स्मरण करते रहे तो कुछ खास मजा नहीं। जब आग दोनों तरफ से लगे तभी प्रेम के फल पकते हैं।

तो तुमने सुना है बहुत बार कि भक्ति बड़ी आसान है। तुमने यह भी सुना है कि कलियुग में तो भक्ति ही मार्ग है। सच्चाई है इसमें और सच्चाई नहीं भी। सच्चाई है अगर प्रेम कर पाओ। मगर प्रेम कर पाओगे? प्रश्न तो वहां खड़ा है।

"सीस उतारै हाथ से, सहज आसिकी नाहिं।"

पलटू कहते हैं : भूल कर भी यह मत सोचना कि प्रेम का रास्ता सरल है, कि आशिकी सहज है, कि सुगम है। हां, सुगम है किन्हीं के लिए। जो अपने सिर को अपने हाथ से उतार कर रख दें, उनके लिए जरा भी कठिन नहीं है। लेकिन जिन्होंने अपने को बचा-बचा कर चाहा कि पहुंच जाएं, उनके लिए महादुर्गम है यह पथ। वे कभी नहीं पहुंच पाएंगे। जिन्होंने सोचा कि हम अपने को भी बचा लें और परमात्मा को भी पा लें, वे भटकेंगे अनंत काल तक, कभी न पहुंच पाएंगे।

भक्ति के मार्ग पर अपने को बचाने का तो उपाय ही नहीं है। भक्ति के पहले ही कदम में अपने को गिरा देना है। समर्पण भक्ति की पहली किरण है। तपस्वी को अंतिम। तपस्वी तो अंत में गिराता है अपने अहंकार को; पहले शुद्ध करता है--उपवास से, तप से, व्रत से, योग से; शुद्ध करता है अपने अहंकार को; पहले अपने "मैं" की शुद्धि करता है। जब मैं बिलकुल शुद्ध हो जाता है तब आखिरी घड़ी में, उसे याद आती है बात कि और सब तो हो गया, अब यह शुद्ध मैं ही बाधा बन रहा है। झीना सा परदा रह गया, कोई भारी परदा नहीं रह गया। पारदर्शी परदा रह गया; जैसे शुद्ध कांच हो। दूर से देखो तो पता चलता है कि दरवाजा खुला ही है। पास आओगे, पास आओगे, तब पता चलेगा कि कांच का दरवाजा है, बंद है; यह कांच भी तोड़ना पड़ेगा। पारदर्शी था, इसलिए दूर से ऐसा लगता था खुला ही है, कोई दरवाजा नहीं है। अब पता चलता है कि कांच की दीवाल अभी बीच में खड़ी है। जब तक धूल जमी रहती है कांच पर तब तक तो पता चलता है कि कांच है; जब धूल बिलकुल साफ हो जाती है तो पता ही नहीं चलता कि कांच है। फिर तो जब निकलने लगोगे आखिरी घड़ी में, संसार से परमात्मा में प्रवेश होगा, तब सिर टकराएगा।

तो भक्त को तो पहले ही कदम पर वही करना होता है जो ज्ञानी और तपस्वी अंतिम कदम पर करता है। क्योंकि भक्ति की तो पहली शर्त यही है : सीस उतारै हाथ से। अपने ही हाथ से अपने सीस को उतार कर रख देना है। दूसरा उतारता है, तब भी हम नहीं चाहते हमारा सिर उतर जाए। तो अपने हाथ से उतारना तो बड़ा कठिन हो जाएगा। सहज आसिकी नाहिं। अपने ही हाथ से अपना ही सिर काटना है। और यह सिर ऐसा है कि दूसरे के काटे न कटेगा। दूसरा तुम्हारी देह के सिर को तो काट सकता है, मगर फिर उग आएगा, फिर नया जन्म हो जाएगा। जब तक तुम न काटोगे अपने अंतरतम के सिर को, अपने अहंकार को, तब तक जन्मों की यात्रा जारी रहेगी। दूसरा नहीं काट सकता। कोई भी नहीं काट सकता। कोई उपाय नहीं है। कोई इतना सूक्ष्म अस्त्र नहीं है कि तुम्हारे भीतर के अहंकार को बाहर से काटा जा सके।

गुरु भी कह सकता है, पुकार सकता है, तुम्हें प्यास से भर सकता है, चुनौती दे सकता है, मगर काट नहीं सकता तुम्हारे अहंकार को। वह काम तो तुम्हें ही करना पड़ेगा। इसलिए बात बड़ी कठिन हो जाती है : अपना ही सिर काटना!

जब तुम सुनते हो कि अहंकार को छोड़ देना है तो तुम्हें बात इतनी कठिन नहीं मालूम पड़ती। लेकिन जरा ख्याल करो। राह से निकलते हो, कोई हंस देता है, सह नहीं पाते। हंसी कांटे की तरह चुभ जाती है। कोई जरा सा अपमान कर देता है, आग की लपटें उठने लगती हैं। जरा सी कोई प्रशंसा कर देता है तो तुम फूल के कुप्पा हो जाते हो। यह अहंकार जो दूसरे की जरा सी चोट से तिलमिला जाता है और बदला और प्रतिशोध लेने को तैयार हो जाता है, इस अहंकार को तुम स्वयं ही काट पाओगे? अपने ही हाथ से काट पाओगे? और जब तक न काटो तब तक पहली शर्त ही पूरी नहीं होती; प्रेम के मंदिर में प्रवेश ही नहीं होता।

"सीस उतारै हाथ से, सहज आसिकी नाहिं।

सहज आसिकी नाहिं, खांड खाने को नाहीं।

झूठ आसिकी करै, मुलुक में जूती खाहीं।।"

यह कोई मिठाई नहीं है भक्ति। बड़ी मीठी है, सच; मगर मिठाई जैसी सस्ती नहीं है। अपने को गंवा कर खरीदनी पड़ती है। इतना दाम चुकाना पड़ता है। अपने को गंवा कर मिलती है। यह कोई सस्ती शक्कर नहीं है कि घोल ली और पी ली। यह तो जीवन का परम रस है। यह तो अमृत है। इसका मूल्य बिना चुकाए नहीं मिलती है।

"सहज आसिकी नाहिं, खांड खाने को नाहीं।

झूठ आसिकी करै, मुलुक में जूती खाहीं।।"

और सावधान रहना, कहीं झूठे आशिक मत बन जाना। दुनिया में बहुत लोग झूठे आशिक बन जाते हैं। झूठी आशिकी बड़ी सरल है। उसमें कोई कठिनाई भी नहीं है, क्योंकि वह तो सिर्फ आवरण है, अभिनय है, ऐक्टिंग। तुम भीतर से कुछ बदलते नहीं, ऊपर से एक वेश पहन लेते हो। झूठी आशिकी का अर्थ है अहंकार तो खोया नहीं और निअर्हंकारी होने का दावा करने लगे; समर्पण तो किया नहीं और कहने लगे आपके चरणों की धूल। शरीर को तो झुका दिया और भीतर अकड़े खड़े रहे। तो झूठी आशिकी अगर की. . . जो कि बिलकुल सरल है। यही तो झूठ की खूबी है कि झूठ बड़ा सरल है। इसलिए तो इतना प्रलोभन झूठ में है।

इसलिए तो लोग झूठ के जाल में पड़ जाते हैं, क्योंकि झूठ सरल है। सत्य कठिन मालूम पड़ता है। सत्य कीमत मांगता है, झूठ कीमत नहीं मांगता है। झूठ कहता है : जो चाहो मुझसे ले लो, मैं कोई कीमत मांगता ही नहीं, मैं तो तुम्हारे साथ हूं। सत्य कहता है : जो चाहो ले लो, मगर मेरी कीमत चुका दो। लेकिन सत्य को जब तुम कीमत चुका देते हो तो तुम्हें उत्तर में कुछ मिलता है। झूठ को तुम कीमत तो नहीं चुकाते; मिलता कुछ भी नहीं और झूठ बोलने के बाद तुम्हें हजार तरह से कीमत भी चुकानी पड़ती है। झूठ बोले कि फंसे। कीमत चुकानी पड़ेगी और मिलेगा कुछ भी नहीं। यह झूठ की तरकीब है; वह कहता है, कीमत कुछ भी नहीं, मुफ्त मिल रहा हूं।

यह गंगा बही जा रही है, हाथ धो लो। तुम क्यों खड़े हो? कुछ मांगता भी नहीं, ऐसे ही मुझे ले लो, अंगीकार कर लो। मैं तुम्हारा धन्यवादी रहूंगा। और इतना सरल है, सामने से गंगा बह रही है, क्यों नहीं धो लेते हाथ?

तुम्हें भी लगता है : चुकाना कुछ है नहीं, ले ही क्यों न लें? . . .ले कर फंसोगे। ऐसे फंसोगे जैसे मछली फंस जाती है आटे के मोह में कांटे से। मछली तो आटे के लिए ही आती है। जब कोई मछुआ बंसी लटका कर बैठ जाता है नदी-तट पर, तो कोई मछलियों को आटा खिलाने के लिए नहीं बैठता है, कांटा खिलाने के लिए बैठता है। लेकिन कोई कांटा मछली सीधा तो लीलेगी नहीं। कोई मछली इतनी मूढ़ नहीं है। तो आटे में छिपाना पड़ता है कांटे को। मछली तो आटा लीलेगी, वस्तुतः कांटा लील जाएगी। सोचेगी आटा मिल रहा है, मिलेगा कांटा।

ऐसे ही झूठ है। कहता है : कुछ भी खर्च नहीं करना पड़ेगा। तुम्हारा लगता क्या है? न हल्दी लगे न फिटकरी, रंग चोखा हो जाए। ऐसे ही हूं, मिल रहा हूं मुफ्त, ले लो।

तुम ले लेते हो। फिर खूब कीमत चुकानी पड़ती है। फिर जन्मों-जन्मों तक कीमत चुकानी पड़ती है। क्योंकि एक झूठ को बचाने के लिए दूसरा झूठ बोलना पड़ता है; दूसरे झूठ को बचाने के लिए तीसरा। फिर शृंखला लग जाती है। और जैसे-जैसे झूठों की कतार बढ़ती जाती है वैसे-वैसे फांसी लगती जाती है। अब सब तरफ से तुम उलझे। अब वह जो तुम बोल चुके हो उसको बचाने के लिए और बोलो और ध्यान रखना कि झूठ को सच से नहीं बचाया जा सकता; झूठ को सिर्फ झूठ से ही बचाया जा सकता है। असल में छोटे झूठ को बड़े झूठ से बचाया जा सकता है। इसलिए एक छोटा सा झूठ बोलो और देखो कि महीने भर के भीतर तुम बड़े झूठ बोलने लगे। उस एक छोटे से झूठ को बचाने के लिए और बड़ा घर बनाना पड़ा, और बड़ा घर। धीरे-धीरे तुम पाओगे तुम्हारी सारी जीवन की व्यवस्था झूठ हो गई; तुम असत्य हो गए। और तुम जब असत्य हो जाओगे तो तुम खो गए--बिना कुछ पाए मूल्य चुका दिया। अपनी संपदा भी गई और हाथ भी कुछ न लगा। यह बात समझ लेना।

झूठ कहता है : खर्च कुछ भी नहीं होगा, बस मुझे मुफ्त ले लो, ऐसे ही भेंट में आता हूं।

सत्य कहता है : खर्च बड़ा है, तुम्हें अपने से चुकाना होगा। और मुफ्त में नहीं मिलता हूं। लेकिन अगर तुम सत्य की कीमत चुकाओ तो सत्य जरूर मिलता है। यह विरोधाभास है।

झूठ बड़ा कुशल है; प्रलोभन देता है। सत्य सीधा-साफ है; साफ-साफ कह देता है, यह कीमत लगेगी। इस कीमत से कम में नहीं होगा।

"झूठ आसिकी करै, मुलुक में जूती खाहीं।"

तो इस संसार में भी जूते पड़ेंगे, अगर झूठा प्रेम किया। क्या मतलब है जूते पड़ने से? इस जीवन में भी दुख ही दुख रहेगा। यहां भी अगर झूठा प्रेम किया तो भी तुम्हारे जीवन में रसधार न बहेगी, फूल न खिलेंगे। तुम्हारे जीवन में कोयल न कूकेगी। कोई वीणा न बजेगी। तुम्हारा जीवन एक अंधकार का जीवन होगा, जहां कभी सूरज न उगेगा। इस जगत में भी और उस जगत में भी जूती खानी पड़ेगी। क्योंकि यहां ही प्रेम न कर पाए, साधारण मनुष्यों को, स्त्री-पुरुषों को प्रेम न कर पाए, तो परमात्मा को कैसे करोगे?

साधारण प्रेम में पूरा अहंकार मांगा भी नहीं जाता। साधारण प्रेम तो कहता है थोड़ी विनम्रता, थोड़े झुको। साधारण प्रेम पूरी आत्मा मांगता भी नहीं--मांग भी नहीं सकता। कोई पत्नी तुमसे पूरी आत्मा नहीं मांगती, न कोई पति मांगता है, न कोई मित्र मांगता है, न कोई बेटा, न कोई मां, न कोई पिता। पूरी आत्मा तो तुम से मांगी नहीं जा सकती।

इस संसार में तो थोड़े से झुको तो काफी रस तुम्हारी झोली में भर जाएगा। और थोड़े झुकोगे, रस भरेगा, और झुकने का ख्याल आएगा। और झुकोगे और रस भरेगा, तब तो सूत्र समझ में आ जाएगा कि अगर बिलकुल झुक जाओ तो पूरे रस से भर जाओ, फिर विरस समाप्त हो जाए। तब तुम्हारे जीवन का मरुस्थल गया, तुम उपवन बने। सूखे-साखे दिन गए, वर्षा के दिन आए। हरियाली आई, फूल खिले।

और इसी जीवन के झुकाव और झुकने की कला से धीरे-धीरे आदमी प्रार्थना का सूत्र समझ पाता है--पूरे झुकने का। लेकिन यहां भी हम धोखा देते हैं।

तुम ख्याल करना। तुम जिनसे कहते हो हमें तुमसे प्रेम है, उनसे तुम्हें प्रेम है? कभी तुमने इस पर सोचा है? तुमने यह सोचा है कि प्रेम का अर्थ क्या होता है? तुम कभी सच में झुके हो? तुम किसी के सामने झुके हो? या कि तुम अकड़े ही रहते हो? अगर तुम अकड़े ही रहते हो तो तुम खाली रहोगे। सूखते जाओगे। तुम्हारा जीवन-संगीत प्रकट ही न हो पाएगा। निश्चित दुख पाओगे बहुत, पीड़ा और कांटे, नरक में जीओगे।

प्रेम जहां नहीं वहां नरक है। प्रेम का अभाव नरक है। और अगर तुमने यहां धोखा दिया, घर में धोखा दिया तो ध्यान रखना तुम धोखेबाज, मंदिर में जाकर भी धोखा दोगे। तुमने अपनी पत्नी को कभी प्रेम नहीं किया, अपने पति को कभी प्रेम नहीं किया; वहां भी जालसाजी करते रहे। कहते रहे, बताते रहे, दिखाते रहे मगर कभी किया नहीं, क्योंकि करने में तो कुछ चुकाना पड़ता है। एक-दूसरे का शोषण करते हो और कहते हो प्रेम। एक-दूसरे को गुलाम बनाने की चेष्टा में लगे हो और कहते हो प्रेम। एक-दूसरे की छाती पर बैठ गए हो और कहते हो प्रेम। एक-दूसरे के लिए फांसी बन गए हो और कहते हो प्रेम। एक-दूसरे की स्वतंत्रता नष्ट कर दी है, एक-दूसरे का जीवन तुम्हारे कारण कारा में पड़ गया है और कहते हो प्रेम। फिर इसी प्रेम की भाषा को समझे-समझे एक दिन मंदिर जाते हो, वहां भी सिर झुकाते हो। वहां भी असली सिर नहीं झुकता। वहां भी सब पाखंड चलता है।

तुमने कभी देखा? अगर मंदिर में तुम जाओ और अकेले हो तो जल्दी पूजा खत्म हो जाती है, जल्दी प्रार्थना इत्यादि, कि कोई देखने वाला ही नहीं तो सार भी क्या है! परमात्मा से तो कुछ प्रार्थना हो नहीं रही। लेकिन जिस दिन मंदिर में जलसा हो और बहुत लोग आए हों, उस दिन आरती देर तक उतरती है। उस दिन बड़े तुम बड़े भाव-विभोर होकर प्रार्थना गाते हो। उस दिन तुम्हारी आंखों में आंसू बहते हैं--सब प्लास्टिक के आंसू! उस दिन तुम लोगों को दिखा रहे हो।

मैंने सुना है, इंग्लैंड की महारानी चर्च में गई। उसका जन्म-दिन था और जन्म-दिन पर वह चर्च में जाती। उस दिन वहां बड़ी भीड़ थी। हजारों लोग चर्च में आए थे। महारानी ने चर्च के प्रधान पुरोहित को कहा : लोगों की अभी भी धर्म में श्रद्धा है, इतने लोग आए हैं! चर्च का पुरोहित हंसा और उसने कहा : देवी, कभी बिना खबर किए आएं। ये कोई भी नहीं यहां आते। ये आपको देखने आए हैं। इनको परमात्मा से कुछ लेना-देना नहीं है।

आदमी मंदिर में भी जाता है तो उसके प्रयोजन होते हैं। मंदिर में भी निखालिस हृदय से नहीं जाता। हां, कभी जरूरत होती है तो जाता है कि पत्नी बीमार है, बेटा बीमार है तो प्रार्थना कर आता है। मगर मतलब होता है तब। और मतलब से कहीं मजहब का जन्म हुआ है? स्वार्थ से कहीं सत्य का जन्म हुआ है? हेतु से कहीं प्रेम जन्मा है? प्रेम तो अहेतुकी है।

तो तुम यहां भी झूठ, फिर धीरे-धीरे यही झूठ तुम्हारी प्रार्थनाओं में भी झलकता है, स्वाभाविक है। जो तुमने बाजार में किया है वही तो तुम मंदिर में करोगे! तुम तो तुम्हीं हो न! तुम अचानक बाजार से चलते हो, जूते उतारे मंदिर में दरवाजे पर तुम सोचते हो एकदम तुम जूते उतार कर हाथ-पैर धोकर मंदिर में जब प्रवेश करने लगते हो, तो तुम बदल जाते हो? तुम कैसे बदल जाओगे? तुम अखंड बह रहे हो। तुम वही हो।

गंगा उतरी पहाड़ से, चली बहती तो काशी पर आकर अचानक पवित्र थोड़े ही हो जाती है। कि काशी के घाट पर आई और पवित्र हो गई और काशी का घाट छूटा, फिर अपवित्र हो गई। या तो पवित्र रहती है पहले ही से और या फिर कभी पवित्र नहीं होती। जीवन में अचानक, अनायास, अकारण तो कुछ भी नहीं घटता। शृंखलाएं हैं।

तुम यहां आए, तुम आए न? तुम्हारे भीतर तुम्हारा सारा बाजार, तुम्हारा घर, तुम्हारे संबंध, तुम्हारे नाते-रिश्ते, तुम्हारा सारा अतीत तुम्हारे भीतर आकर बैठ गया है। तो तुमने जिस ढंग का जीवन जीया है उसी ढंग से तुम मुझे भी सुनोगे। यह स्वाभाविक भी है।

तो जिसने प्रेम में झूठ किया . . .। पलटू साफ कह देते हैं, . . .संत शिष्टाचार की बातों में नहीं पड़ते, औपचारिक बातों में नहीं पड़ते, साफ कह देते हैं :

"सहज आसिकी नाहिं, खांड खाने को नाहीं।

झूठ आसिकी करै, मुलुक में जूती खाहीं।।"

फिर जूते खाने हों तो तैयारी रखना, झूठ प्रेम करना। यहां भी जूते पड़ेंगे, वहां भी जूते पड़ेंगे। संसार में भी दुख पाओगे और दूसरे संसार में भी दुख पाओगे। सुख तुम पा ही न सकोगे।

कम-से-कम एक चीज तो सच रहने दो--कम-से-कम प्रेम को तो सच रहने दो!

"जीते-जी मरि जाय, करै ना तन की आसा।

आसिक का दिन-रात रहै सूली पर वासा।।"

"जीते-जी मरि जाय . . ."।

मरते तो सभी हैं। मरना तो सभी को है। कोई भी बच तो सकेगा नहीं। फिर आशिक में, प्रेमी में, भक्त में, और साधारण संसारी में क्या फर्क है? संसारी मजबूरी में मरता है। मारा जाता है, तब मरता है। मौत जब आकर घसीटती है, तब मरता है।

संसारियों ने जो कथाएं लिखी हैं मौत की, वह तुम समझ लेना। तुम्हारे पुराणों में जो लिखा है, वे पुराण किन्हीं ज्ञानियों ने नहीं लिखे होंगे। क्योंकि जो बात लिखी है वह अज्ञान की है। तुम्हारे पुराणों में लिखा है कि जब मौत आती है तो मौत का जो राजा है यमदूत, काला-कलूटा, भयंकर, भैंसे पर सवार होकर आता है। ज्ञानियों ने तो मौत में परमात्मा को ही देखा है आते; काला-कलूटा नहीं; यमदूत नहीं; भैंसे पर सवार नहीं। यह भैंसे पर सवार जो मौत तुम्हें दिखाई पड़ी है, यह तुम्हारी वासनाओं के कारण दिखाई पड़ी है, क्योंकि तुम्हें यह दुश्मन मालूम पड़ती है। तो तुम दुश्मन को काले रंग में रंगते हो; भैंसे पर बिठालते हो। यह तुम्हें अतिथि नहीं मालूम होती। इसके साथ तुम अतिथि का संबंध नहीं बनाते--शत्रु का; आ रही है और तुम्हें जिंदगी से जबरदस्ती ले जाएगी। तुम जबरदस्ती ले जाए जाते हो, इसलिए भैंसों की जरूरत पड़ती है; यमदूतों की जरूरत पड़ती है; तुम्हें घसीटा जाता है; तुम्हें जबरदस्ती खींचा जाता है। तुम इस किनारे को जोर से पकड़ते हो। तुम छोड़ते ही नहीं। मरते दम तक तुम छोड़ते नहीं; तुम देह को पकड़ते हो, मोह को पकड़ते हो, माया को पकड़ते हो। चूंकि तुम्हारी यह दृष्टि पकड़ने की है, इसलिए मौत तुम्हें लगती है छुड़ाने आ रही है। लेकिन जो खुद ही छोड़ चुका। जीते-जी मरि जाय... । जो मौत के आने के पहले मर गया, जो परमात्मा के चरणों में मर गया, जिसने अपने होने को शून्य कर दिया, जिसने कहा अब मैं नहीं हूं तू है--उसके लिए मौत यमदूत की तरह नहीं आती, भैंसे पर सवार होकर नहीं आती। उसके लिए तो मौत का भी मुंह बड़ा प्यारा है। वह भी परमात्मा की ही तस्वीर है। वह भी प्रभु का ही रूप है। प्रभु ही भेजता है। वही एक दिन लेकर आता है और ले जाता है। लेकिन यह तो तभी संभव है, मृत्यु में तुम्हें परमात्मा तभी दिखाई पड़ेगा, मृत्यु तुम्हारी समाधि जैसे आनंद से तभी भरेगी--जब तुम जीते जी मर जाओ।

यही फर्क है भक्त में और संसारी में। संसारी भी मरता है, भक्त भी मरता है। संसारी बे-मन से मरता है अनिच्छा से मरता है, मारा जाता है। संसारी की हत्या होती है। भक्त मौत से मरता है; स्वयं मर जाता है। वह कहता है : जो हाथ से छूट ही जाना है उसे मैं छोड़ ही क्यों न दूं। जब छूट ही जाना है तो पकड़ना क्या! फिर

यह पकड़ने की और व्यर्थ की झंझट क्यों करूं? जो मुझसे ले ही लिया जाएगा उसे देने का मजा क्यों न ले लूं? उसे बांट क्यों न दूं? उसे परमात्मा के चरणों में पहले ही क्यों न रख दूं कि जब तुम आओगे ही और ले ही लोगे तो इतना मौका मैं क्यों खोऊं कि तुम्हारे चरणों में खुद रख दिया? चढ़ा दिया, अर्पण कर दिया।

"जीते-जी मरि जाय, करै ना तन की आसा।"

तन की आशा हो तो फिर तो जीते जी कैसे मरोगे? फिर तो पकड़ोगे। मौत आ जाएगी तो भी धकाओगे; कहोगे, थोड़ी देर रुक जा। यमदूतों से डॉक्टरों को लड़वाओगे कि तुम जरा लड़ो, भैंसे को जरा हटाओ, मुझे थोड़ी देर और जी लेने दो। ऐसे बहुत से मरीज, जो वस्तुतः मर चुके हैं, जबरदस्ती जीते हैं। अस्पतालों में लटके हैं, टांगें उलटी-सीधी बंधी हैं। ऑक्सीजन दी जा रही है कि ग्लूकोस का इंजेक्शन दिया जा रहा है। होश भी नहीं है। महीनों से अटके हैं।

अमरीका में तो बड़ा विचार चलता है कि क्या करना? कुछ लोग तो ऐसे हैं कि महीनों, सालों इस तरह अटके रहते हैं। इनको मरने देना कि इनको बचाने की कोशिश रखना? और डॉक्टर यह भी कहते हैं कि इनको बचाने का कोई मतलब नहीं है। अब ये करीब-करीब मरे हुए हैं, जबरदस्ती इनको... , यमदूत को धकाए हुए खड़े हैं। बीच में लगा दी है ऑक्सीजन का सिलिंडर और ग्लूकोस के इंजेक्शन और दवाइयों की लंबी कतार, कि यमदूत अपने भैंसे को लेकर घुस नहीं पाते। और इनको बचाना कि मरने देना? क्योंकि ये जीवित भी नहीं हैं और मरे भी नहीं हैं।

आदमी का मोह ऐसा है जीवन से . . . तन की ऐसी आशा है . . . थोड़ी देर और जी लूं। एक दिन और सही। एक दिन ही सही तो भी और सही। एक क्षण ही सही तो और सही।

मरते वक्त अगर तुमसे पूछा जाए कि एक दिन अगर और जी सको तो क्या कहोगे? तुम कहोगे : फिर क्या बात है! एक दिन और जी लेने दें। और इतने दिन तुमने गंवाए और कभी कुछ नहीं पाया, अब एक दिन जी कर और क्या करोगे?

तुम्हें कभी जीवन के सत्य दिखाई पड़ते हैं या नहीं दिखाई पड़ते?

भक्त वही है जिसने देखा कि इस जीवन में कुछ मिल तो रहा नहीं है, ऐसे नाहक धक्का-धुक्की हो रही है। यहां से वहां फेंके जा रहे हैं, कहीं कुछ मिलता तो है नहीं। कोई मंजिल तो हाथ आती नहीं। इस जीवन को अपने ही हाथ से चढ़ा दें।

"जीते-जी मरि जाय, करै ना तन की आसा।

आसिक का दिन-रात रहे सूली पर बासा।।"

और आशिक तो वही है जो कहता है कि जब बुला लो . . . उसी वक्त तैयार हूं। क्षण भर देर न होगी। बोरिया-बिस्तर भी बांधने के लिए समय न मांगूंगा; तैयार ही रखा है।

रोज रात भक्त जब सोता है तो कह कर ही सोता है कि उठा लेना रात तो मैं तैयार हूं। सुबह जब उठता है तो चौंकता है कि आज भी नहीं उठाया। तो चलो आज दिन में जिंदगी में चलाते हो तो चल लूंगा। हर सुबह नई और हर सांझ सोच कर सोता है कि आखिरी रात आ गई। ऐसा भक्त का तो दिन-रात सूली पर वासा है। वह तो सूली को सिंहासन बना लेता है।

और यही तो जीवन की सबसे बड़ी कला है कि सूली सिंहासन हो जाए। अक्सर तो ऐसा होता है कि हम इससे उलटी कला जानते हैं। हम सिंहासन को भी सूली बना लेते हैं।

तुम देखो, सिंहासन पर बैठे लोग सूली पर लटके हुए मालूम पड़ेंगे। धन के ढेर पर बैठ जाते हैं और जीवन सिर्फ दुख है, घाव की तरह है। पद के बड़े ऊंचे सिंहासन पर बैठ जाते हैं, लेकिन उनकी हालत बड़ी खराब है। क्योंकि चारों तरफ से कोई उनकी टांग खींच रहा है, कोई उनका पैर खींच रहा है, कोई उन्हें धक्का लगा रहा है। क्योंकि दूसरों को भी बैठना है इसी सिंहासन पर। सूली लग जाती है। पद पर पहुंच कर ही लोगों को पता चलता है। पहले पता ही नहीं चलता। पद पर पहुंच कर ही पता चलता है कि यह तो बड़ी मुसीबत। इसी पद

पर पहुंचने के लिए जीवन भर कोशिश की, मेहनत की। पहुंच कर पता चलता है यह तो बड़ी झंझट हो गई। मगर अहंकार के वश यह भी नहीं कह सकते कि हम उतरे जाते हैं। अब जिंदगी भर इसी दांव पर लगाया था, अब उतरें भी कैसे! जिंदगी भर लड़े कि सिंहासन पर पहुंच जाएं। सिंहासन पर पहुंचते ही दूसरी लड़ाई शुरू होती है कि अब सिंहासन से न उतर जाएं, क्योंकि लोग खींच रहे हैं। दुश्मन तो खींचते ही हैं, मित्र भी खींचते हैं, क्योंकि मित्रों को भी बैठना वहीं है।

सिंहासन पर बैठा आदमी सूली पर लटक जाता है। यह तो संसारी की हालत है। लेकिन भक्त की हालत ठीक इससे उलटी है। भक्त को कुछ कला आती है। वह सूली पर लटक जाता है और सूली सिंहासन बन जाती है। जिसने मौत को अंगीकार कर लिया, उसके लिए इस जगत में दुख रह ही नहीं जाता; मौत रह ही नहीं जाती। मौत को अंगीकार किया कि मौत मिटी।

अमृत चाहिए हो तो मृत्यु को स्वीकार कर लेना।

"जीते-जी मरि जाय, करै ना तन की आसा।

आसिक का दिन-रात रहै सूली पर बासा।।"

उसे तो एक ही धुन लगी रहती है। उसे तो एक ही याद बनी रहती है। उसके भीतर तो एक ही जिक्र, एक ही स्मरण, एक ही सुरति चलती रहती है।

मेरे हर लफ्.ज में बेताब मेरा सोजे-दरूं

मेरी हर सांस मोहब्बत का धुआं है साकी।

मेरे हर लफ्ज में बेताब मेरा सोजे-दरूं। मेरे भीतर की आग मेरे हर शब्द में झलकती है, वही प्रकट होती है। भीतर की आग--प्रेम की आग। वह जो भीतर उसको परमात्मा से मिलने की अहर्निश पुकार चल रही है, वह कहता है मौत के द्वार से मिलते हो तो चलो मौत का द्वार; जहां से मिलते हो मैं वहीं से गुजरने को राजी हूं।

मेरे हर लफ्ज में बेताब मेरा सोजे-दरूं

मेरी हर सांस मोहब्बत का धुआं है साकी।

और उसकी श्वास-श्वास में बस एक ही जिक्र है : मोहब्बत! मोहब्बत! प्रेम के स्वर ही उसमें उठते हैं।

मोहब्बत इक तपिश-ए-नातमाम होती है

न सुबह होती है इसकी, न शाम होती है।

मोहब्बत इक तपिश-ए-नातमाम होती है। यह तो एक ऐसी आग है, यज्ञ, यज्ञ की अग्नि जो कभी समाप्त नहीं होती, जलती ही रहती है। न सुबह होती है इसकी, न शाम होती है।

भक्त को पता ही नहीं रह जाता धीरे-धीरे कि कब जवानी आई, कब गई; कब बुढ़ापा आया, कब गया; कब जिंदगी आई, कब मौत आई--कुछ पता नहीं रह जाता। उसे तो एक ही धुन रहती है। उसके भीतर तो एक ही इकतारा बजता रहता है--प्रभु के प्रेम का। जीवन से मिले तो जीवन, मौत से मिले तो मौत। सुख से मिले तो सुख, दुख से मिले तो दुख। उसका और कोई चुनाव नहीं है।

"मान बड़ाई खोय, नींद भर नाहिं सोना।

तिलभर रक्त न मांस, नहीं आसिक को रोना।।"

सूख जाए शरीर, हड्डी-हड्डी रह जाए, तो भी उसे पता नहीं चलता। उसके भीतर बस प्रभु का स्मरण चलता रहे, वही उसका जीवन है, वही उसकी एकमात्र आशा है।

"मान बड़ाई खोय . . ."।

वह सब मान-बड़ाई भी खो देता है। जब अहंकार ही चढ़ा दिया चरणों में तो अब उसे क्या फिकर!

मीरा ने कहा है : लोक-लाज खोई। नाचने लगी मीरा सड़कों पर। राज-घर से थी, राज-रानी थी। और मेवाड़ की! घूंघट से बाहर न निकली होगी कभी। किसी ने चेहरा न देखा होगा कभी। फिर नाचने लगी रास्तों

पर, पागलों की तरह दीवानी। लोक-लाज खोई। चिंता ही न रही। उसके चरणों में रख दिया सब, अब अपनी क्या चिंता रही! अब चिंता करे तो वही करे।

"मान बड़ाई खोय, नींद भर नाहिं सोना।"

भक्त को नींद कहां! शरीर सो जाए, भक्त के भीतर राम की धुन तो चलती ही रहती है। शरीर पड़ा रहे निद्रा में, थक जाता है तो सो जाता है; लेकिन भीतर भक्त की सुरति नहीं थकती। वहां तो सतत धार बहती रहती है।

ऐसा हुआ, रामतीर्थ अमरीका से वापस लौटे तो सरदार पूर्णसिंह उनके भक्त थे और उनके पास कुछ दिन रहे हिमालय में जाकर। एक रात सरदार पूर्णसिंह को नींद नहीं आ रही थी। कुछ चिंता में पड़ गए होंगे। रोज तो सो जाते थे तो एक चमत्कार देखने से वंचित रह गए। उस रात नींद नहीं आई तो बड़ी हैरानी हुई। पहाड़ पर एकांत में बना हुआ यह बंगला था। यहां आस-पास कोई आता भी नहीं, रात तो कोई आ भी नहीं सकता। रामतीर्थ हैं और पूर्णसिंह हैं, बस दोनों कमरे में हैं। और उन्हें सुनाई पड़ने लगा कि राम-राम की कोई धुन कर रहा है, राम-राम राम-राम का कोई पाठ कर रहा है। तो उठे, जाकर वरांडे में चक्कर लगा कर आए, बाहर देख कर आए कि कोई भी नहीं है। और जब बाहर गए तो हैरानी हुई कि बाहर गए कुछ आवाज धीमी हो गई और जब भीतर आए तो आवाज फिर बढ़ गई। तो वे थोड़े और चकित हुए। सोचा कि कहीं स्वामी रामतीर्थ तो राम-राम नहीं जप रहे हैं! तो पास जाकर देखा, पास गए तो आवाज और बढ़ गई। पास जाकर देखा तो वे सो रहे हैं। वे तो गहरी नींद में हैं। फिर यह आवाज कहां से हो रही है? सिर के पास गए, पैर के पास गए, हाथ के पास गए, कान लगा कर शरीर से देखा-सुना, तो समझ में आया, पूरा रोआं-रोआं राम-राम कह रहा है!

इस बात की संभावना है। यह घटना घट सकती है। अगर प्रभु के स्मरण में ऐसी डुबकी लग जाए कि तुम भूलो ही न, भूलो ही न, तो तुम्हारे अचेतन में भी गूंज चलती रहेगी। तुम्हें भी होती है यह घटना, तुम्हें ख्याल में नहीं रहती। अगर तुम रुपए की ही बात सोचते-सोचते सो जाओ तो रात रुपए का ही तो सपना देखते हो! रात तुम वही तो देखते हो तो दिन भर चलता रहा था मन में, वही तो व्यापार फैल जाता है। रात तुम भी तो बड़बड़ाते हो। तुम्हारी बड़बड़ाहट बता देगी कि तुम दिन भर क्या सोचते रहे थे। कोई झगड़ने लगता है रात की नींद में, गालियां बकने लगता है रात की नींद में। यह तो रोज घटता है।

तो दूसरी बात भी घट सकती है, जो चौबीस घंटे अहर्निश परमात्मा का स्मरण कर रहा हो, यह स्मरण इतना गहन हो जाए कि जब शरीर सो जाए तब भी भीतर गूंजता रहे।

मंत्र के, स्मरण के चार तल हैं। एक तल, जब तुम ओंठ का उपयोग करते हो, कहते हो राम। ओंठ का उपयोग किया तो यह शरीर से है--सबसे उथला तल, सबसे छिछला तल। पर यहां से शुरू करना पड़ता है, क्योंकि शुरुआत तो उथले से ही करनी होती है। फिर ओंठ तो बंद हैं और तुम भीतर कहते हो राम--सिर्फ मन में। यह पहले से थोड़ा से थोड़ा गहरा हुआ। लेकिन मन में भी कहते हो तो कहते तो हो ही, मन के यंत्र का उपयोग करते हो। पहले शरीर के यंत्र का उपयोग करते थे, अब मन के यंत्र का उपयोग करते हो। फिर तुम उसे भी छोड़ देते हो। तुम राम कहते नहीं; तुम राम को अपने-आप उठने देते हो, तुम नहीं कहते। शांत बैठ जाते हो। जिसने बहुत राम-राम जपा है, पहले ओंठ से जपा, फिर मन से जपा--वह अगर शांत बैठ जाए, जब भी शांत होगा तो अचानक पाएगा भीतर उसके कोई जप रहा है! राम, राम, राम! वह कह नहीं रहा। अपनी तरफ से कहने की अब कोई चेष्टा नहीं है। अब तो कोई जप रहा है, तुम सुनने वाले हो गए, कहने वाले न रहे। यह तीसरा तल है। और एक चौथा तल है। जब राम पूरा फूल की तरह खिल जाता है, तो तुम्हारा समस्त यंत्र, जीवन-यंत्र, शरीर, तन-मन, सब इकट्ठा उसी धुन से गूंजने लगते हैं।

ऐसी ही किसी घटना में पूर्णसिंह को सुनाई पड़ा होगा राम का, निद्रा में प्रभु-स्मरण।

"मान बड़ाई खोय, नींद भर नाहिं सोना।

तिल भर रक्त न मांस, नहीं आसिक को रोना।।"

आशिक को शिकायत तो होती नहीं, चाहे तिल भर रक्त-मांस न बचे। शिकायत आशिक जानता ही नहीं; धन्यवाद ही जानता है। भूल कर भी उसके भीतर शिकायत नहीं उठती, कोई शिकायत नहीं उठती। जैसा है बिलकुल ऐसा ही होना चाहिए। जैसा है ठीक है, तथाता-भाव होता है। दर्द भी होता है, पीड़ा भी होती है, तो भी वह कहता है : धन्यभाग मेरे, आज कल से बहुत कम है! वह धन्यवाद का रास्ता खोज लेता है।

उनके अल्ताफ का इतना ही फुसूं काफी है
कम है पहले से बहुत दर्दे-जिगर आज की रात।
उनकी कृपाओं का जादू इतना ही क्या कम है!
उनके अल्ताफ का इतना ही फुसूं काफी है
इतनी ही उनकी कृपा बहुत, इतना ही उनका जादू-चमत्कार बहुत।
कम है पहले से बहुत दर्दे-जिगर आज की रात।
पहले से दर्द बहुत कम है, धन्यवाद।

दुख में और पीड़ा में भी वह सुख का कोई सूत्र खोज लेता है। तुम उलटे हो। तुम्हें सुख भी मिलता हो तो तुम शिकायत का कोई न कोई कारण खोज लेते हो। तुम कहते हो : हां ठीक है, गुलाब का फूल तो है; लेकिन इतने कांटे हैं, इनके बाबत क्या? हां ठीक है, जिंदगी में कभी-कभी रोशनी भी आती है; लेकिन एक दिन और दोनों तरफ दो रात हैं, इसके बाबत क्या?

तुम कभी भी शिकायत से बच ही नहीं पाते--सुख भी मिले तो उसके पास भी शिकायत की बाढ़ खड़ी होती है।

आशिक का मतलब है : अब शिकायत क्या? जिसको प्रेम किया उससे गलत हो सकता है, यह बात ही क्या उठानी! उससे गलत हो ही नहीं सकता। प्रेमी जानता ही नहीं कि दुख हो सकता है। दुख में भी उसे सुख है।

"तिलभर रक्त न मांस, नहीं आसिक को रोना।
मान बड़ाई खोय, नींद भर नाहिं सोना।।"

इसलिए अपने रोने की कथाएं लेकर मंदिर मत जाना। मत जाना भूल कर मस्जिद-गुरुद्वारा शिकायत लेकर, अन्यथा तुम गए ही नहीं। शिकायत ही ले जानी थी तो जाना ही नहीं। जिस दिन कोई शिकायत न हो उस दिन जाना। जिस दिन मन में कोई शिकायत का भाव न हो, अपूर्व धन्यवाद उठ रहा हो, अहोभाव जग रहा हो, तुम्हारे मन में कृतज्ञता का भाव गहरा रहा हो--उस दिन जाना। उसी दिन पहुंचोगे।

"पलटू बड़े बेकूफ वे, आसिक होने जाहिं।
सीस उतारै हाथ से, सहज आसिकी नाहिं।।"

बड़ा अदभुत वचन है! पलटू कहते हैं, सुन लो पक्की बात। यह पागलों का काम है, बेवकूफों का काम है आशिकी में पड़ना--क्योंकि अपने को गंवाना पड़ता है। होशियार हो, इस तरफ चलना ही मत। चतुर-चालबाजों के लिए यह जगह नहीं है।

"पलटू बड़े बेकूफ वे . . ."।

जो बिलकुल बेवकूफ हैं, नादान हैं, नासमझ हैं, सरल हैं, भोले हैं, बच्चों जैसे हैं, पागलों जैसे हैं, जिन्हें होश-हवास नहीं, जिंदगी का गणित जिन्हें नहीं आता, उनके लिए है यह रास्ता।

"पलटू बड़े बेकूफ वे, आसिक होने जाहिं।"

बड़े पागल ही प्रेम के रास्ते पर चलते हैं। भोले-भाले, निर्दोष चित्त लोगों का यह मार्ग है। चतुर और चालाक, गणित में होशियार और दुकानदार, उनका यह मार्ग नहीं है। वे तो कहते हैं : अपने को गंवाओ तो फिर सार ही क्या पाने में! अपने को रहते कुछ मिले तो सार है।

बुद्ध के पास एक सम्राट आया और उस सम्राट ने कहा कि आप कहते हैं शून्य हो जाओ। यह भी कोई बात हुई? शून्य ही हो गए तो फिर सार क्या? जब हम ही न रहे तो मोक्ष का भी क्या करेंगे और निर्वाण का भी क्या करेंगे, जब हम ही न रहे?

तुम ही सोचो, तुम किसी सुख की तलाश में जाओ और कोई कहे कि हां, मिल सकता है, मगर पहले तुम मर जाओ। तो तुम कहोगे, फिर इससे फायदा क्या? सीधा गणित है।

उस सम्राट ने कहा कि आप कहते हैं शून्य हो जाओ, तब निर्वाण मिलेगा, मगर जब मैं ही न रहा तो उस निर्वाण का मैं करूंगा भी क्या? उससे तो संसार ही बेहतर, कम से कम मैं तो हूं!

ये सांसारिक गणित है।

लेकिन उस सम्राट को पता नहीं कि एक और गणित है--महागणित है। शून्य होने का मतलब मिट जाना थोड़े ही होता है। शून्य होने का मतलब शांत हो जाना होता है। शून्य होने का मतलब होता है तुम्हारे भीतर जो उपद्रव था वह मिट गया। वह अहंकार उपद्रव है, और कुछ भी नहीं, भीड़-भाड़, शोरगुल, बेचैनी, परेशानी, तनाव, संताप। तुम्हारे भीतर जो मैं है वह आंधी-अंधड़ है। जैसे सागर पर आंधी आई हुई है, तूफान आया हुआ है और बड़ी लहरें उठ रही हैं; जब ये लहरें मिट जाएंगी तो सागर थोड़े ही मिट जाएगा। ये लहरें जब मिट जाएंगी तभी सागर पूरा शांत होकर अपने में थिर हो पाएगा; अपने घर आएगा।

यह मैं तुम्हारा वास्तविक होना नहीं है।

इसलिए भक्त कहते हैं : सीस उतारै हाथ से, सहज आसिकी नाहिं। अपना सिर उतार कर रख देना पड़ता है, क्योंकि यह सिर्फ बोझ है। यह सिर बोझ है।

"पलटू बड़े बेकूफ वे, आसिक होने जाहिं।"

पागल हैं वे जो आशिक होने जाते हैं। जो पागल हों वही चलें इस रास्ते पर। पलटू कहते हैं पहले ही सावधान कर देते हैं, यह पागलों का मार्ग है।

"सीस उतारै हाथ से, सहज आसिकी नाहिं।"

मिट जाने की तैयारी हो तो इस दिशा में चलना। खो जाने की तैयारी हो तो इस मार्ग को पकड़ना। अपने को निछावर कर देने की तैयारी हो तो ही, तो ही भक्ति का द्वार खुलता है।

एक स्वर बोलो!
जीवन में आता सा
घूम कर जाता सा
विवश संकल्प में
जीवन जागता सा
दूर की हेला सा
फूलते बेला सा
एक स्वर बोलो
एक एक-स्वर बोलो
कोटि पंथों जगी
कोटि दीपों लगी
आग सी स्पष्ट वह
स्नेह बाती पगी
आ गई जलन को,
जीवन को बारती
देव-देव हर्ष उठे
बन गई आरती
ओंठ जरा खोलो

एक एकस्वर बोलो!

तुम्हारा जीवन आरती तभी बनेगा जब तुम जल उठो, भभक उठो।

कोटि पंथों जगी
कोटि दीपों लगी
आग सी स्पष्ट वह
स्नेह बाती पगी
आ गई जलन को,
जीवन को बारती
देव-देव हर्ष उठे
बन गई आरती!

तुम्हीं नहीं प्रसन्न होओगे जब तुम खो जाओगे; सारा जगत, सारा अस्तित्व प्रसन्न होता है। एक भक्त का जन्म और सारे अस्तित्व के लिए अपूर्व आनंद का अवसर है।

देव-देव हर्ष उठे!

सारा जगत, सारे देवता आनंद-विभोर हो उठ जाते हैं जब कोई एक हिम्मतवर आदमी अपने शीश को उतार कर रख देता है।

"यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।"

यह कोई तुम्हारी मौसी का घर नहीं है कि चले गए और आराम कर लिया, कि वहां कुछ करना भी नहीं पड़ता, मेहमान बन गए।

"यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।"

यह कोई रिश्तेदारी नहीं है, यह कोई मेहमानबाजी नहीं है। यह प्रेम का घर है। यहां मिट कर आना पड़ता है।

"खाला का घर नाहिं, सीस जब धरै उतारी।"

इसकी शर्त है और शर्त बड़ी अजीब है कि शीश को बाहर ही रख आओ। मंदिर में अगर शीश को लेकर आ गए तो तुम आए ही नहीं। शीश को बाहर ही रख आए, सीढ़ियों पर, तो ही आए।

"हाथ-पांव कटि जाय, करै ना संत करारी।

खाला का घर नाहिं, सीस जब धरै उतारी।

हाथ-पांव कटि जाय, करै ना संत करारी।।"

सब मिट जाए, शीश कट जाए, हाथ-पैर कट जाए, फिर बचता क्या है?

थोड़ा समझो। शीश का अर्थ होता है : चिंतन, विचार। वह जो तुम्हारे सिर में चलती रहती है अनंत धारा विचारों की, वह मिट जाए। और हाथ-पैर का क्या अर्थ है? वह जो करने की आतुरता कि कुछ करूं, कुछ करके दिखा दूं, कि कुछ बन जाऊं कि कुछ हो जाऊं। हाथ और पैर--तुम्हारी गति और कृत्य। तो कर्ता का भाव तुम्हारे हाथों में है। तुम्हारे जीवन की गति, तुम्हारे जीवन की दौड़, कुछ हो जाने का भाव, तुम्हारे पैरों में है। और तुम्हारे सिर में विचार--कैसे हो जाऊं, क्या हो जाऊं, कैसा आयोजन करूं, कैसा गणित बिठाऊं? इतने ही तो तुम हो। तुम्हारे जीवन की सारी कथा इतनी ही तो है। क्या तुम सोचते रहते हो? कैसे धन बढ़े? कैसे मकान बढ़े? कैसे प्रतिष्ठा बढ़े? तुम क्या सोचते हो, क्या करते हो?

संत तो वही है जिसका सिर भी कट जाए, हाथ-पैर भी कट जाएं। संत तो वही है जिसको कर्ता की कोई दृष्टि ही न रह जाए। कर्ता तो एक ही है परमात्मा। करता पुरुष! एक ही कर्ता है। हम नाहक ही यह दंभ करते हैं कि हम कर्ता हैं।

"हाथ-पांव कटि जाय, करै ना संत करारी।"

सब मिट जाए, होने की यह दौड़ मिट जाए, कुछ न बचे, शून्य हो जाए; लेकिन कोई करार नहीं पैदा होता, कोई कराह पैदा नहीं होती, न कोई इनकार पैदा होती है। जो भी हो, संत स्वीकार करता है; इनकार करता ही नहीं। वह कहता है : यही तेरी मरजी, यही हो, ऐसा ही हो!

दिल रहे या न रहे जख्म भरें या न भरें

चारा-साजों की खुशामद मुझे मंजूर नहीं।

दिल रहे या न रहे, यह बचूं या न बचूं, यह जिंदगी बचे या न बचे... "जख्म भरें या न भरें चारा-साजों की खुशामद मुझे मंजूर नहीं". . . लेकिन वैद्यों की खुशामद न करने जाऊंगा कि मुझे बचाओ, कि ये मेरे घाव भर दो। मैं कोई औषधियां न खोजूंगा जीवन को चलाए रखने की। मैं घावों के लिए कोई मलहम तलाश करने न जाऊंगा।

दिन रहे या न रहे, जख्म भरें या न भरें

चारा-साजों की खुशामद मुझे मंजूर नहीं।

जिसको आखिरी चारा-साज मिल गया, जिसको असली वैद्य मिल गया, जिसको परमात्मा मिल गया, अब तो उसके हाथ से लगे हुए घाव भी कमल के फूल हो जाते हैं।

"ज्यौं-ज्यौं लागै घाव, तेहुं-तेहुं कदम चलावै।

सूरा रन पर जाय, बहुरी न जियता आवै।।"

और जैसे-जैसे घाव बढ़ते हैं--यह तो उलटा गणित कह रहा हूं तुमसे--जैसे-जैसे घाव बढ़ते हैं. . ."ज्यौं-ज्यौं लागै घाव, तेहुं-तेहुं कदम चलावै". . . भक्त वैसे-वैसे और दौड़ कर बढ़ता है परमात्मा में, और गति से बढ़ता है। जैसे-जैसे घाव लगते हैं! तुम कहोगे, पागल हो? वह तो पलटू ने पहले ही स्वीकार कर लिया। "पलटू बड़े बेकूफ वे, आसिक होने जाहिं। सीस उतारै हाथ से, सहज आसिकी नाहिं।।" वह तो मान ही लिया पलटू ने कि हम तो पागल हैं, पागलों की बातें कर रहे हैं और पागल ही सुनें और पागल ही इस पर चलें। होशियारों का काम संसार में है। होशियार धन इकट्ठा करें, मकान बनाएं, परिवार बढ़ाएं। होशियार सब इकट्ठा करें और एक दिन मर जाएं और कुछ हाथ न लगे। पागल वे जो सब लुटा दें और सब पा लें। पागल यानी जुआरी; दुकानदार नहीं।

"ज्यौं-ज्यौं लागै घाव, तेहुं-तेहुं कदम चलावै।"

यह भी कोई बात हुई कि जैसे-जैसे घाव बढ़ते हैं, कदम और तेजी से पड़ने लगते हैं, क्योंकि हर घाव उसकी हर कृपा का सबूत है। हर घाव इतना ही कहता है कि वह तुम्हें शुद्ध करने को लग गया। हर घाव इतना ही कहता है कि उसने तुम्हें मिटाना शुरू कर दिया। हर घाव इतना ही कहता है कि तुम्हारे जीवन में जो कचरा है उसको वह जलाने लगा। हर घाव नया धन्यवाद पैदा कर जाता है।

"ज्यौं-ज्यौं लागै घाव, तेहुं-तेहुं कदम चलावै

सूरा रन पर जाय, बहुरि न जियता आवै।।"

जैसे शूरवीर जाता है युद्ध पर, तो गया। सब सेतु तोड़ कर आता है घर से। लौटने की तैयारी रख कर नहीं आता। लौटने की टिकट की तैयारी रख कर नहीं जाता। गया तो गया। जहां से जाता है, गया।

संसार में लौटने का भाव नहीं है भक्त का। भगवान मिटा दे, घाव मारे, तो भी ठीक। और संसार में प्रतिष्ठा मिले तो भी ठीक नहीं।

"सूरा रन पर जाय, बहुरि न जियता आवै।"

और यह कुछ ऐसा युद्ध है भक्त और भगवान के बीच... । संसार के युद्ध में, संसार के साधारण युद्धों में तो बहादुर भी कभी लौट आता है, जीत कर लौट आता है। हार कर तो कभी नहीं लौटा, मर जाएगा; मगर जीत जाएगा तब तो लौट आएगा। मगर यह जो भगवान और भक्त के बीच जो संघर्ष होता, इसमें भक्त कभी नहीं

लौटता--लौटता ही नहीं। गया तो गया। जैसे नदी उतर जाती है सागर में और खो जाती है, फिर लौट कर थोड़े ही आती है।

"सूरा रन पर जाय, बहुरि न जियता आवै।

पलटू ऐसे घर महैं बड़े मरद जे जाहिं।

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।।"

इसलिए पलटू कहते हैं, पागल होओ तो चलना, मर्द होओ तो चलना। हिम्मत हो, मौत को अंगीकार कर लेने का साहस हो तो चलना। बड़े मरद जे जाहिं! साधारणतः तुम सोचते हो, भक्ति कमजोरों की बात है। साधारणतः तुम सोचते हो कि यह तो कमजोर और काहिलों का मामला है। जिनसे कुछ नहीं बनता, जो जिंदगी में नहीं जूझ पाते, जिनकी जिंदगी में कोई पकड़ नहीं है, जिंदगी में हार गए हैं, पराजित हैं--ये मंदिरों में प्रार्थना करते हैं। यह कमजोर, काहिल, सुस्त, दीनों की बात है।

नहीं, भक्ति से बड़ा साहस और कुछ भी नहीं है, क्योंकि अपने को पूरा दांव पर लगाना पड़ता है। लौट कर आने का कोई मार्ग ही नहीं बचता। इस प्रेम की अग्नि में जो गया पतंगा, वह जल ही जाता है।

विश्व में सबसे वही हैं वीर
है जिन्होंने आप अपने को गढ़ा
और वे ज्ञानी अगम गंभीर
है जिन्होंने आप अपने से पढ़ा।

यह भक्ति तो तुम्हारे भीतर परमात्मा को गढ़ने की प्रक्रिया है। यह भक्ति तो तुम्हारे भीतर छिपे हुए परम शास्त्र को पढ़ने की प्रक्रिया है। यह बड़े साहसियों का काम है। कमजोर लोग उधार से काम चला लेते हैं; दूसरों की किताबें पढ़ लेते हैं, अपने भीतर छिपी पड़ी किताब को पढ़ते ही नहीं। दूसरों ने जो कहा है परमात्मा के संबंध में, मान लेते हैं। खुद देखने जाते ही नहीं। दरिया देखे जानिए . . .। और देख कर ही जानना चाहिए। जानना तभी जब अपनी आंख से देखा हो। फिर जो भी दांव पर लगे, लग जाए।

"सूरा रन पर जाय, बहुरि न जियता आवै

ज्यौं-ज्यौं लागै घाव, तेहुं-तेहुं कदम चलावै।।

पलटू ऐसे घर महैं, बड़े मरद जे जाहिं।"

यह जो परमात्मा का घर है, यह जो परमात्मा का मंदिर है, मर्दों के लिए है, दुस्साहसियों के लिए है।

"यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।"

ले चल, हां मझधार में ले चल, साहिल-साहिल क्या जाना

मेरी कुछ परवाह न कर, मैं खूंगर हूं तूफानों का।

भक्त तो कहता है कि किनारे-किनारे क्या नौका को लगा कर चलाना!

ले चल, हां मझधार में ले चल, साहिल-साहिल क्या जाना!

यह भी कोई जाना है--होशियारी-होशियारी और चतुराई और गणित और हिसाब! हिसाब-हिसाब में ही बंधे भी कोई जाना होता है!

ले चल, हां मंझधार में ले चल, साहिल-साहिल क्या जाना

मेरी कुछ परवाह न कर, मैं खूंगर हूं तूफानों का।

जिसने परमात्मा के तूफान को झेलने की तैयारी दिखला दी, अब सब तूफान छोटे हैं। अब तो मंझधार में नौका ले जाई जा सकती है। अब तो डूब जाने में भी मजा है। अब तो डूब जाने में ही मजा है।

"लगन-महूरत झूठ सब, और बिगाड़ैं काम।"

बड़ी प्यारी बातें पलटू कह रहे हैं। कहते हैं कि यह प्रेम के लिए कोई लग्न-मुहूर्त मत देखना, कोई ज्योतिषी से पूछने मत चले जाना कि कब करें प्रेम, कब करें प्रार्थना, कि ब्रह्ममुहूर्त में करें कि रात करें कि सांझ करें, कि संध्या कब होनी चाहिए, किस पंडित-पुरोहित को बुला कर करें, कौन सी पूजा करें; किस विधि से करें। विधि-विधान में मत पड़ जाना।

प्रेम की विधि एक ही हैः "सीस उतारै हाथ से, सहज आसिकी नाहिं।" एक ही, विधि है : "पलटू बड़े बेकूफ वे, आसिक होने जाहिं।" पागल होने की तैयारी चाहिए, और कोई विधि नहीं चाहिए।

"लगन-महूरत झूठ सब... "।

तो पंडित-पुजारियों के चक्कर में मत पड़ जाना। भक्ति का उससे कुछ लेना-देना नहीं है। तुम सोचते हो कि सत्यनारायण की कथा करा ली तो तुम भक्त हो गए! ये तो तरकीबें हैं। तुम तो भगवान को भी धोखा देने चले हो। जरा सोच कर चलनाः "झूठ आसिकी करै, मुलुक में जूती खाहिं।"

क्या कोई लग्न-मुहूर्त होता है? कोई विधि-विधान होता है?

"लगन महूरत झूठ सब, और बिगाड़ैं काम।

और बिगाड़ैं काम, साइत जनि सोधैं कोई।

और बिगाड़ैं काम, साइत जनि सोधैं कोई।"

और जो इन मुहूर्तों में पड़ा रहता है--शुभ मुहूर्त देखूं, शास्त्र के हिसाब से चलूं, विधि-विधान का पालन करूं, कैसे पूजा करना--इस सब में जो पड़ा रहता है, वह कभी प्रेम की दीवानगी में उतर ही नहीं पाता।

रामकृष्ण पुजारी हुए थे तो कभी पूजा करते, कभी न भी करते। और कभी करते तो दिन भर करते और कभी दो मिनट में निकल आते। और इसके पहले कि काली को भोग लगाते, खुद चख लेते। शिकायत हुई। मंदिर की जो कमेटी थी उसके सामने बुलाए गए कि यह कोई पूजा है कि किसी दिन दिन भर चलती है, फिर दो-चार दिन मंदिर बंद भी हो जाता है! फिर कभी दो मिनट में बाहर निकल आते हो। और हमने यह भी सुना है कि तुम भगवान को प्रसाद लगाने के पहले खुद चख लेते हो, वहीं मंदिर में खड़े होकर चखते हो! यह तो सब बात गड़बड़ है।

तो रामकृष्ण ने कहाः सम्हालो अपनी फिर यह पूजा, यह मुझसे न होगी। मेरी मां जब भी कुछ बनाती थी तो पहले खुद चखती थी, फिर मुझे देती थी। मैं बिना चखे दे ही नहीं सकता। क्योंकि पता नहीं देने योग्य हो भी कि न हो, मुझे पता कैसे चले! जब मैं चख लूं और पाऊं कि हां, स्वादिष्ट है, देने योग्य है तो लगा दूं।

अब यह कुछ और ही बात हो गई। यह शास्त्र के बिलकुल विपरीत हो गई। पहले भगवान को लगाओ, फिर अपना भोग लगा लेना। रामकृष्ण पहले अपने को लगाते। मगर उनकी बात में तो बड़ा बल है। और उन्होंने कहा कि जब दिल बैठ जाता है तो फिर कोई घड़ी-घंटों का हिसाब रहता है! जब बैठ गया दिल तो फिर बैठा रहता दिल; फिर दिन भर भी चलती है तो दिन भर भी चलती है। फिर कोई यह थोड़े ही है कि अब घंटे के हिसाब से... यह कोई स्कूल थोड़े ही है कि घंटा बजाया और क्लास शुरू; घंटा बजाया, क्लास बंद।

मेरे एक शिक्षक थे--विश्वविद्यालय में मेरे एक प्रोफेसर थे। बस एक ही शिक्षक जैसे शिक्षक थे वे। उनकी कक्षा में कोई भरती नहीं होता था। दो-चार सालों से उनकी कक्षा में कोई आया ही नहीं था। जब मैं पहली दफा उनकी कक्षा में गया तो उन्होंने कहा भाई तुम समझ लो, कि तीन-चार साल से तो कोई विद्यार्थी आया ही नहीं। झंझट यह है कि मैं घंटे से शुरू तो कर सकता हूं लेकिन खत्म नहीं कर सकता। तो जब घंटा बजता है कि ग्यारह बज गए तो मैं शुरू कर देता हूं। लेकिन ग्यारह बज कर चालीस मिनट पर खत्म नहीं कर सकता। क्योंकि जब तक मेरी बात पूरी न हो जाए मैं खत्म नहीं करता। कभी दो घंटे लगते हैं, कभी तीन घंटे लगते हैं। कभी पांच-दस मिनट में ही खत्म हो जाती है बात। तो अंत का कुछ पता नहीं है। इसलिए विद्यार्थी यहां आने में डरते हैं। तुम आ रहे हो तो ठीक। तुम घबड़ा जाओ तो तुम चले जाना। तुम परेशान हो जाओगे तीन घंटे हो गए सुनते-

सुनते, तो तुम चुपचाप खिसक जाना, मुझे बाधा मत डालना। तुम्हारी फिर मौज हो तो फिर घूम-फिर कर लौट आना।

बड़े अदभुत आदमी थे। ऐसा ही होता था। और मैं अकेला ही विद्यार्थी उनकी कक्षा में। मैं चला भी जाता कभी तो भी वे बोलते रहते। मैं लौट भी आता। वे मुझसे बड़े खुश थे। वे कहते थे : तुम बाधा नहीं डालते, यह बात ठीक है। मैं कभी सो भी जाता क्योंकि वे काफी लंबा बोलते। तो वे मुझे उठाते जब उनका बोलना खत्म हो जाता कि अब उठो भाई।

रामकृष्ण कहते थे, पूजा का कोई हिसाब तो नहीं हो सकता। तो कभी जमती तो जम जाती। कभी बैठ जाती बात तो बैठ जाती। कभी दिल से दिल बैठ जाता मिल जाता तो मिल जाता, तो फिर चलती है। कभी नहीं बैठता, तब कोई जबरदस्ती थोड़े ही हो सकती है। झूठ आसिकी करै, मुलुक में जूती खाहीं। तब झूठी पूजा कैसे करूं। हो ही नहीं रही, आज मन उठ ही नहीं रहा। और कभी-कभी तो मैं नाराज भी हो जाता हूं भगवान पर। तब नाराजगी में कैसे पूजा हो? जब नाराज हो जाता हूं तो ताला लगा कर बंद कर देता हूं कि पड़े रहो, अब पछताओगे! अब नहीं आऊंगा। फिर याद आने लगती है कि यह तो बात ठीक नहीं। फिर जाकर मना लेता हूं।

तो रामकृष्ण ने कहा, अगर तुम्हारी मरजी हो तो मुझे अलग कर दो, मगर मेरी पूजा तो ऐसी ही चलेगी, क्योंकि यह पूजा है।

"लगन-महूरत झूठ सब, और बिगाड़ैं काम।

और बिगाड़ैं काम, साइत जनि सोधैं कोई।

एक भरोसा नाहिं, कुसल कहुवां से होई।"

जमाने भर की विधि-विधानों का फिकर कर रहे हो और असली बात भीतर सोच ही नहीं रहे हो कि--एक भरोसा नाहिं, कुसल कहुवां से होई। उस परमात्मा पर भरोसा नहीं है, बस यह असली बात तो खो रही है। और सब इंतजाम किए ले रहे हो। विवाह का सब इंतजाम कर लिया है, बैंड-बाजे इकट्ठे कर लिए हैं, बराती इकट्ठे हो गए हैं और यह भूल ही गए कि वर कहां है! बरात निकलने की तैयारी होने लगी, तब याद आएगी कि वर तो है ही नहीं। असली बात तो एक है; बाकी बरातियों से कहीं बरात थोड़ी ही बनती है--वर चाहिए! भरोसा!

"एक भरोसा नाहिं, कुसल कहुवां से होई।"

कहां से तुम्हारी कुशलता होगी? तुम्हें उस एक पर भरोसा नहीं। तुम्हें एक भरोसा नहीं।

"जेकरे हाथै कुसल, ताहि को दिया बिसारी।

आपन इक चतुराई, बीच में करै अनारी।।"

"जेकरे हाथै कुसल... ।"

जिसके हाथ सारी कुशलता है, सारा कल्याण है, उसको तो भूल बैठे हो और पंडित-पुजारी और ज्योतिषी और विधि-विधान और हिसाब-किताब, इस सब में पड़े हो!

"जेकरे हाथै कुसल, ताहि को दिया बिसारी।

आपन इक चतुराई, बीच में करै अनारी।।"

बड़े मूढ़ हो तुम, अपनी चतुराई लगा रहे हो!

चतुर जो हैं वे परमात्मा में नहीं पहुंच पाते। उनकी चतुराई ही बाधा बन जाती है। वहां तो भोले सरल चित्त लोग चाहिए।

"पलटू बड़े बेकूफ वे, आसिक होने जाहिं।

सीस उतारै हाथ से, सहज आसिकी नाहिं।।"

"तिनका टूटै नाहिं बिना सतगुरु की दाया।

अजहूं चेत गंवार, जगत है झूठी काया।।"

"तिनका टूटै नाहिं बिना सतगुरु की दाया।"

बिना सतगुरु की दया के एक तिनका भी नहीं टूटता।

"अजहूं चेत गंवार, जगत है झूठी काया।" यह सारा जगत तो झूठ का फैलाव है। अब भी चेत। और कब तक सोया रहेगा?

सपनों के सारे शीशमहल फिर चकनाचूर हुए।

जब सांझ लगी घिरने, अपने साये भी दूर हुए।

जल्दी ही वक्त आ जाएगा, मौत करीब आने लगेगी। अपनी छाया भी दूर हो जाती है, दूसरों का तो कहना ही क्या! जगत है झूठी काया।

सपनों के सारे शीशमहल फिर चकनाचूर हुए।

ऐसा कितनी बार नहीं हो चुका है! कितनी बार जन्म और कितनी बार मौत! कितनी बार सपनों के शीशमहल चकनाचूर नहीं हुए!

सपनों के सारे शीशमहल फिर चकनाचूर हुए

जब सांझ लगी घिरने, अपने साए भी दूर हुए।

इसके पहले कि सांझ घिर जाए, जागो! अजहूं चेत गंवार!

ढल गया सूरज, उदासी छा गई

सांवरी सी सांझ सहसा आ गई

पंथ थे उन्मुक्त, क्यों कर रुक गए

क्यों धरा की ओर सहसा झुक गए

दृष्टि काली डोर से टकरा गई

सांवरी सी सांझ सहसा आ गई।

अनमनी धरती, गगन है अनमना

रह गया सपना कि जैसे अधबना

घिर गए बादल बहुत से सुरमई

सांवरी सी सांझ सहसा आ गई।

सूर्य के अंतिम किरण सर छूटते

और जल-दर्पण वहीं पर टूटते

टूटते ही बिंब लौ टूटे गई

सांवरी सी सांझ सहसा आ गई।

सुबह आई, सांझ भी आती ही होगी। सुबह के साथ ही आ गई। सुबह के साथ ही सांझ का आना शुरू हुआ। इसके पहले कि सांवरी सांझ आ जाए, रात घिरे मौत की और अंधकार छा जाए और तुम्हारे हाथ में करने को कुछ भी न बचे और जिसे जिंदगी भर बसाया था, सम्हाला था, बचाया था, वह सब छुड़ा लिया जाए--उसके पहले देने की कला सीख लेना। उसके पहले समर्पित होने की कला सीख लेना।

"तिनका टूटै नाहिं बिना सतगुरु की दाया।"

यही मतलब है इस सूत्र का। मैं कुछ कर सकूंगा, यही तो संसार की दृष्टि है। फिर धर्म में आते हो, तब भी कहते हो मैं कुछ कर सकूंगा, तो तुम्हारी वही पुरानी अकड़ जारी है। धर्म के जगत में तो तुम कहो : मैं कुछ भी नहीं कर पाया। इस "मैं" से कुछ होता ही नहीं।

सदगुरु के चरणों में रख दो इस मैं को। कहो कि अब जो तुझे करना हो कर।

सदगुरु का अर्थ होता है : तुमने ईश्वर तो देखा नहीं, पहचाना नहीं, भगवान से तुम्हारी कोई मुलाकात नहीं; जिसकी मुलाकात हो, उसके चरणों में रखो, वहां से शुरुआत करो। राजा से मिलना नहीं होता तो चलो वजीर से मिलो। वजीर से मिलना नहीं होता तो चलो चौकीदार से मिलो। मगर चौकीदार से भी मिल कर भी थोड़ा संबंध बनता है। तुम्हारी तो कोई पहचान ही नहीं है, चौकीदार की कम से कम पहचान है।

सदगुरु का इतना ही अर्थ होता है कि जिसकी मुलाकात हो गई है उससे तुम भी दोस्ती बांधो। इसी दोस्ती के सहारे तुम भी जुड़ जाओगे।

"तिनका टूटै नाहिं बिना सतगुरु की दाया।

अजहूं चेत गंवार, जगत है झूठी काया।।

पलटू सुभ दिन सुभ घड़ी, याद पड़ै जब नाम।

लगन-महूरत झूठ सब, और बिगाड़ैं काम।।"

पलटू कहते हैं : "पलटू सुभ दिन सुभ घड़ी, याद पड़ै जब नाम।" जब प्रभु की याद आ जाए वही घड़ी शुभ है। आधी रात आ जाए तो ब्रह्ममुहूर्त। भर दुपहरी में आ जाए तो ब्रह्ममुहूर्त। ब्रह्ममुहूर्त का अर्थ होता है : जब ब्रह्म की याद आ जाए।

"पलटू सुभ दिन सुभ घड़ी, याद पड़ै जब नाम।"

जब उसकी स्मृति तुम्हें झकझोरने लगे; जब उसकी पुकार तुम्हें खींचने लगे; जब उसका प्रेम तुम्हें डोर में बांधने लगे; जब तुम्हारे भीतर परमात्मा की स्मृति जगने लगे, सुगबुगाने लगे; जब तुम्हारे भीतर थोड़ा सा अंकुर फूटने लगे उसकी तरफ--कहो प्रार्थना, कहो ध्यान, कहो सुरति, शब्द, नाम, जो तुम्हें कहना हो; लेकिन जब तुम्हारे भीतर यह दिखाई पड़े कि संसार व्यर्थ है, संसार का अतिक्रमण करना है, बहुत देर हो गई, अब घर लौटना है। मालिक की याद आने लगी। साहिब की याद आने लगे।

"पलटू सुभ दिन सुभ घड़ी, याद पड़ै जब नाम।"

जब भी याद पड़ जाए नाम, वही घड़ी शुभ, वही दिन शुभ। फिर न पूछना पंडित-पुजारी-पुरोहित से, ज्योतिषी से। क्या पूछना किसी से! चौबीस घड़ियां शुभ हैं, लेकिन अशुभ हुई जा रही हैं, क्योंकि उसकी याद से नहीं जुड़ी हैं। हर पल, हर छिन शुभ है, लेकिन खाली जा रहे हैं, क्योंकि परमात्मा से नहीं जुड़ा है। जिस क्षण जोड़ बैठ जाए, सेतु बन जाए, उसी क्षण क्रांति घटनी शुरू हो जाती है; उसी क्षण तुम तुम न रहे, तुम महिमावान हो गए। इधर मिटे और महिमा आई।

"पलटू सुभ दिन सुभ घड़ी, याद पड़ै जब नाम।

लगन-महूरत झूठ सब, और बिगाड़ैं काम।।"

विधि-विधान में मत पड़ना। प्रेम की कोई विधि नहीं, कोई विधान नहीं। प्रेम तो पागलों की बात है, दीवानों का काम। प्रेम तो भाव की दशा है, विचार की नहीं। विचार में विधि-विधान होते हैं। हृदय की बात है। इसलिए तो सिर को उतार देना पहली शर्त है।

ये सूत्र प्रेम का पूरा शास्त्र है। ये तुम्हारे हृदय में बैठ जाएं। इनकी थोड़ी गंध तुम्हारे जीवन में आ जाए तो तुम अपूर्व आनंद से भर जाओगे।

जीवन में एक ही आनंद है, वह परमात्मा से मिलने का आनंद है। और भी जो आनंद कभी आनंद जैसे मालूम पड़ते हैं, जाने-अनजाने परमात्मा से मिलने के कारण ही होते हैं। सुबह सूरज उगता है; प्राची पर लाली फैल जाती है; पक्षी गीत गाते हैं, हवाओं में सुवास होती है, शीतलता होती है--तुम उठे, रात भर के सोए, ताजे और तुमने उगते सूरज को देखा और तुमने कहा कितना सुंदर! और यह पल, क्षण शुभ हो गया। मगर यह सूरज का सौंदर्य उसी का सौंदर्य है। यह उसी की तस्वीर का एक हिस्सा है। यह उसका ही एक अंग है। हिमालय के उत्तुंग शिखर देखे, कुंवारी बर्फ से जमे, जिन पर कोई कभी नहीं चला, उन पर चमकती सूरज की किरणें देखीं,

फैली चांदी देखी, सोना देखा पहाड़ों पर--उस अपूर्व दृश्य को देख कर तुम ठगे-ठगे अवाक रह गए। विचार क्षण भर को रुक गए। ऐसा तो कभी देखा नहीं था। इस अपूर्व ने तुम्हें अवाक कर दिया, आश्चर्य-विमुग्ध कर दिया। तुमने कहा : बड़ा सुंदर, बड़ा प्रीतिकर! परमात्मा को फिर देखा। पहाड़ पर उसकी छाया देखी।

कभी सागर के किनारे सागर की उठती लहरों को देख कर, उस तुमुल नाद को देख कर, उस विराट को फैले हुए देख कर, तुम्हारा छोटा सा मन गुपचुप हो गया। कहा, बड़ा सुंदर है! बड़ा सुख पाया। फिर परमात्मा की एक झलक मिली।

कभी किसी की आंखों में झांक कर, कभी किसी का हाथ हाथ में लेकर, प्रेम का थोड़ा सा झरना बहा और तुमने कहा, बड़ा सुंदर व्यक्ति है, कि बड़ा प्यारा व्यक्ति है, कि मनचीता मिल गया! फिर परमात्मा मिला। फिर उसका एक हिस्सा मिला।

और ये सब छोटे-छोटे खंड हैं। इन छोटे-छोटे खंडों को ज्यादा देर नहीं अनुभव किया जा सकता। ये झलकें हैं। जैसे चांद झलकता हो झील में, सुंदर है; झलक भी असली चांद की है, मगर झलक है।

जैसे तुम दर्पण के सामने खड़े होते हो और तुम्हारा चेहरा बनता दर्पण में, तुम कहते हो सुंदर है; मगर जो चेहरा दर्पण में बन रहा है, वह सच की ही नकल है, मगर सच नहीं है। झलक तो सच ही की ही है, मगर झलक स्वयं सच नहीं है। क्षणभंगुर है--आया, गया।

रोज-रोज ऐसे बहुत से क्षण तुम्हारे जीवन में आते हैं, जब परमात्मा की झलक कहीं से आती है, सुध आती है। ये छोटे-छोटे सुख, क्षणभंगुर सुख भी उसी के ही हैं। लेकिन ये आएंगे और जाएंगे। धीरे-धीरे जब तुम यह समझोगे कि सारा सुख उसका है, सारा आनंद उसका है, तब तुम खंड-खंड में न खोजोगे; तब तुम अखंड में खोजोगे। तब तुम ऐसे टुकड़े-टुकड़े से राजी न होओगे; तुम कहोगे अब तो पूरा चाहिए।

और पूरा मिलता है। पूरा मिला है। मैं तो रामरतन धन पाया! पूरा मिला है। पूरा मिल जाता है। मगर मिलता उन्हीं को है जो पूरा खोने को तैयार हैं। पूरे को पाने के लिए पूरे से चुकाना पड़ता है।

मैं इन सूत्रों को दोहराए देता हूं :

सीस उतारै हाथ से, सहज आसिकी नाहिं।।

सहज आसिकी नाहिं, खांड खाने को नाहीं।

झूठ आसिकी करै, मुलुक में जूती खाहीं।।

जीते-जी मरि जाय, करै ना तन की आसा।

आसिक का दिन-रात, रहै सूली पर बासा।।

मान बड़ाई खोय, नींद भर नाहीं सोना।

तिलभर रक्त न मांस, नहीं आसिक को रोना।।

पलटू बड़े बेकूफ वे, आसिक होने जाहिं।

सीस उतारै हाथ से, सहज आसिकी नाहिं।।

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।।

खाला का घर नाहिं, सीस जब धरै उतारी।।

हाथ-पांव कटि जाय, करै ना संत करारी।

ज्यौं-ज्यौं लागै घाव, तेहुं-तेहुं कदम चलावै।

सूरा रन पर जाय, बहुरि न जियता आवै।।

पलटू ऐसे घर महैं, बड़े मरद जे जाहिं।

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।।

लगन-महूरत झूठ सब, और बिगाड़ैं काम।।
और बिगाड़ैं काम, साइत जनि सोधैं कोई।
एक भरोसा नाहिं, कुसल कहुवां से होई।।
जेकरे हाथै कुसल, ताहि को दिया बिसारी।
आपन इक चतुराई, बीच में करै अनारी।।
तिनका टूटा नाहिं, बिना सतगुरु की दाया।
अजहूं चेत गंवार, जगत है झूठी काया।।
पलटू सुभ दिन सुभ घड़ी, याद पड़ै जब नाम।
लगन-महूरत झूठ सब, और बिगाड़ैं काम।।

आज इतना ही।

आठवां प्रवचन

धर्म का जन्म-- एकान्त में

पहला प्रश्नः ध्यान है एकाकी की उड़ान--एकाकी तक। भक्ति है एकाकी की उड़ान--परमात्मा तक। क्या ध्यान की तरह भक्ति भी एकाकीपन से ही शुरू होती है?

धर्म का जन्म ही एकांत में है, एकाकीपन में है। जहां तक भीड़ है, जहां तक भीड़ में लगाव है, जहां तक भीड़ के बिना रहना क्षण भर को कठिन है--वहां तक धर्म नहीं, संसार है।

और ध्यान रहे, भीड़ से भाग कर ही कोई भीड़ से नहीं भाग जाता है। भीड़ में होकर भी कोई एकांत में हो सकता है। भीड़ भीतर नहीं होनी चाहिए। और एकांत में होकर भी भीड़ में हो सकता है। दूर हिमालय की गुफा में बैठ कर भी तुम अगर चिंतन करो औरों का, मित्रों का, प्रियजनों का, शत्रुओं का, बाजार का, दुकान का--तो तुम भीड़ में हो।

तो भीड़ मनोवैज्ञानिक जरूरत जब तक है, जब तक ऐसा लगता है कि बिना भीड़ के मैं मिटा, बिना भीड़ के मैं न रह सकूंगा; चाहिए ही भीड़; बाहर हो तो ठीक, बाहर न हो तो भीतर मन की भीड़ खड़ी कर लूंगा--तब तक तुम संसार में हो।

संसार मन की इस रुग्ण दशा का नाम है कि दूसरों के बिना मैं नहीं हो सकता हूं; परनिर्भरता का नाम है, कि मेरा अस्तित्व दूसरों के होने पर ही निर्भर है; कि मेरा सुख दूसरे पर ही निर्भर है; अकेला मैं दुखी हूं; दूसरा मुझे सुख देगा। फिर पति हो, पत्नी हो, मां हो, पिता हो, भाई हो, मित्र हो--मगर कोई दूसरा मुझे सुख देगा! सुख दूसरे के पास है, मैं भिखारी हूं। यह संसार है।

सुख मेरा मेरे भीतर है, मैं सम्राट हूं--यह धर्म।

तो धर्म का जन्म ही एकांत में होता है। लेकिन एकांत का मतलब अकेलापन नहीं होता। भूल कर मत सोचना कि एकांत का मतलब अकेलापन होता है। अकेलापन तो एक नाकारात्मक दशा है।

जैसे सब घर के बाहर चले गए और तुम अकेले रह गए--यह एकांत नहीं है। घर में अकेले हो, मगर मन हजार दौड़ें भर रहा है। घर में अकेले हो, मगर अकेले होने में रस तो नहीं आ रहा; अकेले होने में छंद तो पैदा नहीं हो रहा; मगन तो नहीं हो; मस्त तो नहीं हो--उदास हो। सोचते हो कोई आ जाए, कोई मित्र ही द्वार खटका दे; कोई पड़ोसी बुला ले; कोई आ जाए! और अगर कोई न आए तो रेडियो चला लो, टेलीविजन देखने लगो, अखबार पढ़ो, उपन्यास पढ़ो--मगर खो जाओ कहीं!

अकेलापन तब--जब एकांत काटता हो। एकांत तब--जब अकेलेपन में रस की धार बहे।

तो एकांत और अकेलेपन का फर्क भी समझ लेना।

एकांत तब--जब तुम परम आनंदित हो; तुम्हें याद भी नहीं आती दूसरे की; क्षण भर को भी दूसरे का विकल्प खड़ा नहीं होता; दूसरे का विचार लहराता नहीं। तुम परम मस्ती में हो। तुम डोल रहे हो अपनी मस्ती में। तुम अपने को ही पी रहे हो। तुम्हारे भीतर से गीत उठ रहे हैं। तुम्हारे भीतर परम शांति है--नकारात्मक नहीं, मरघट की नहीं--ऐसी शांति जहां जीवन के फूल खिलते हैं; ऐसी शांति जहां परमात्मा की सुवास उठती है; जीवंत शांति; आह्लादित शांति इस फर्क को भी ख्याल में लेना। शांति मुर्दा भी होती है; मुर्दा का मतलब होता है उदासी की, निराश, हताश। शांति आह्लादित भी होती है, नाचती हुई भी होती है। और जब नाचती हुई होती है तो ही परमात्मा तक ले जाती है। जब उदास होती है तो तुम पत्थर के ढेले की तरह पड़े रह जाते हो

राह के किनारे; तुम्हारे जीवन में गति नहीं होती, गत्यात्मकता नहीं होती, सरित-प्रवाह नहीं होता। तुम बहते नहीं; सूखी तलैया हो जाते हो। और रोज-रोज पानी सूखता और मछली रोज-रोज तड़फती और दुखी होती और परेशान होती।

बहती हुई शांति!

कल-कल की ध्वनि से भरी हुई शांति!

पर, धर्म तो शुरू होता ही एकांत में है। फिर धर्म चाहे भक्ति का हो और चाहे ध्यान का; चाहे प्रेम का, चाहे ज्ञान का--इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता।

एकांत दो प्रकार का हो सकता है, क्योंकि मनुष्य-जाति दो भागों में बंटी है। एक, जिसको कार्ल गुस्ताव जुंग ने बहिर्मुखी व्यक्ति कहा है, ऐक्स्ट्रोवर्ट और एक, जिसको अंतर्मुखी व्यक्ति कहा है, इंट्रोवर्ट।

दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक, जिनके लिए आंख खोल कर देखना सहज है; जो अगर परमात्मा के सौंदर्य को देखना चाहेंगे तो इन वृक्षों की हरियाली में दिखाई पड़ेगा, चांद-तारों में दिखाई पड़ेगा, आकाश में मंडराते शुभ्र बादलों में दिखाई पड़ेगा, सूरज की किरणों में, सागर की लहरों में, हिमालय के उत्तुंग हिमाच्छादित शिखरों में, मनुष्यों की आंखों में, बच्चों की किलकिलाहट में।

बहिर्मुखी का अर्थ है, उसका परमात्मा खुली आंख से दिखेगा। अंतर्मुखी का अर्थ है, उसका परमात्मा बंद आंख से दिखेगा, अपने भीतर। वहां भी रोशनी है। वहां भी कुछ कम चांद-तारे नहीं हैं। कबीर ने कहा है हजार-हजार सूरज। भीतर भी हैं! इतने ही चांद-तारे, जितने बाहर हैं। इतनी ही हरियाली, जितनी बाहर है। इतना ही विराट भीतर भी मौजूद है, जितना बाहर है।

बाहर और भीतर संतुलित हैं, समान अनुपात में हैं। भूल कर यह मत सोचना कि तुम्हारी छोटी सी देह, इसमें इतना विराट कैसे समाएगा; यह विराट तो बहुत बड़ा है, बाहर विराट है, भीतर तो छोटा होगा! भूल कर ऐसा मत सोचना। तुमने अभी भीतर जाना नहीं। भीतर भी इतना ही विराट है--भीतर, और भीतर, और भीतर! उसका भी कोई अंत नहीं है। जैसे बाहर चलते जाओ और चलते जाओ, कभी सीमा न आएगी विश्व की--ऐसे ही भीतर डूबते जाओ, डूबते जाओ, डूबते जाओ, कभी सीमा नहीं आती अपनी भी। यह जगत सभी दिशाओं में अनंत है। इसलिए हम परमात्मा को अनंत कहते हैं; असीम कहते हैं, अनादि कहते हैं। सभी दिशाओं में!

महावीर ने ठीक शब्द उपयोग किया है। महावीर ने अस्तित्व को "अनंतानंत" कहा है। अकेले महावीर ने--और सब ने अनंत कहा है। लेकिन महावीर ने कहा, अनंतता भी अनंत प्रकार की है; एक प्रकार की नहीं है; एक ही दिशा में नहीं है; एक ही आयाम में नहीं है--बहुत आयाम में अनंत है, अनंतानंत! इधर भी अनंत है, उधर भी अनंत है! नीचे की तरफ जाओ तो भी अनंत है, ऊपर की तरफ जाओ तो भी अनंत! भीतर जाओ, बाहर जाओ--जहां जाओ वहां अनंत है। यह अनंतता एकांगी नहीं है, बहु रूपों में है। अनंत प्रकार से अनंत है--यह मतलब हुआ अनंतानंत का।

तो तुम्हारे भीतर भी उतना ही विराट बैठा है। अब या तो आंख खोलो--और देखो; या आंख बंद करो--और देखो! देखना तो दोनों हालत में पड़ेगा। द्रष्टा तो बनना ही पड़ेगा। चेतना तो पड़ेगा ही। चैतन्य को जगाना तो पड़ेगा। सोए-सोए काम न चलेगा।

बहुत लोग हैं जो आंख खोल कर सोए हुए हैं। और बहुत लोग हैं जो आंख बंद करके सो जाते हैं। सो जाने से काम न चलेगा; फिर तो आंख बंद है कि खुली है, बराबर है; तुम तो हो ही नहीं, देखने वाला तो है ही नहीं--तो न बाहर देखोगे न भीतर देखोगे। यह आंख बीच में है। पलक खुल जाए तो बाहर का विराट; पलक झप जाए तो भीतर का विराट।

बहिर्मुखी का अर्थ है : जिसे परमात्मा बाहर से आएगा। अंतर्मुखी का अर्थ है : जिसे परमात्मा भीतर से आएगा। अंतर्मुखी ध्यानी होगा; बहिर्मुखी, भक्त। इसलिए अंतर्मुखी परमात्मा की बात ही नहीं करेगा। परमात्मा

की कोई बात ही नहीं; परमात्मा तो "पर" हो गया। अंतर्मुखी तो आत्मा की बात करेगा। इसलिए महावीर ने, बुद्ध ने परमात्मा की बात नहीं की। वे परम अंतर्मुखी व्यक्ति हैं। और मीरा, चैतन्य, इन्होंने परमात्मा की बात की। ये परम बहिर्मुखी व्यक्ति हैं। अनुभव तो एक का ही है क्योंकि बाहर और भीतर जो है वह दो नहीं है; वह एक ही है। मगर तुम कहां से पहुंचोगे? बाहर से पहुंचोगे या भीतर से, इससे फर्क पड़ जाता है। इधर से कान पकड़ोगे या उधर से, इतना ही फर्क है। कान तो वही हाथ में आएगा। आता तो परमात्मा ही हाथ में है। जब भी कुछ हाथ में आता है, परमात्मा ही हाथ में आता है। और तो कुछ है ही नहीं हाथ में आने को। जिस हाथ में आता है वह हाथ भी परमात्मा है। परमात्मा ही परमात्मा के हाथ में आता है।

मगर बहिर्मुखी एक ढंग से यात्रा करता है, अंतर्मुखी दूसरे ढंग से। बहिर्मुखी मूर्ति रखेगा भगवान की, मंदिर बनाएगा, शृंगार लगाएगा भगवान को, नाचेगा मूर्ति के आस-पास। सूर्य को नमस्कार करेगा। चांद-तारों में देवताओं का निवास बनाएगा। ठीक है। जैसे भी हो, उस परम सौंदर्य की प्रतीति होनी चाहिए।

अंतर्मुखी मूर्ति इत्यादि हटा देगा; उसकी कोई जरूरत नहीं है। न साज-शृंगार करेगा परमात्मा का।

ऐसा हुआ : राबिया एक सूफी फकीर औरत, के घर दूसरा सूफी फकीर, हसन ठहरा हुआ था। सुबह हुई, अंधेरा कटा, सूरज निकला। हसन बाहर खड़ा था झोंपड़े के। इस अपूर्व सुबह को देख कर मगन हो उठा। भक्त था। नाचने लगा। और उसने आवाज दी राबिया को कि राबिया, तू भीतर बैठी क्या कर रही है? बाहर आ, बड़ी सुंदर सुबह निकली है! परमात्मा की ऐसी सुंदर सुबह है और तू भीतर बैठी क्या कर रही है? सूरज ने अपना जाल फैला दिया है। पक्षी गीत गा रहे हैं। सुबह की शीतल हवा है। रात का अंधेरा कट गया है। ये परम आनंद के क्षण हैं। तू भीतर बैठी क्या कर रही है?

और पता है राबिया ने क्या कहा? राबिया खिलखिला कर हंसी और उसने कहा, हसन, तुम्हीं भीतर आओ। क्योंकि बाहर तुम जिस सूरज को देख रहे हो, मैं उस सूरज बनाने वाले को अपने भीतर देख रही हूं।

उसने "भीतर" का मतलब बिलकुल गहरा लिया। उसने झोंपड़े के भीतर की बात ही नहीं की। उसने कहा, तुम जिसे देख रहे हो, बाहर, उसके बनाने वाले को मैं भीतर देख रही हूं। सूरज बाहर सुंदर है क्योंकि उसके हाथ की छाप है। जहां-जहां उसका हस्ताक्षर है, वहां-वहां सौंदर्य है, वहां-वहां धन्यता है, वहां-वहां प्रसाद है। लेकिन मैं उसी को देख रही हूं। तुम्हीं आंख बंद करो और भीतर आओ हसन, कब तक बाहर घूमते रहोगे?

यह भक्त और ज्ञानी का फर्क है। हसन भक्त है; राबिया ज्ञानी है। अगर तुम मुझसे पूछो तो न तो जो बाहर रस ले रहा है, उसे भीतर आने की जरूरत है; न भीतर जो रस ले रहा है, उसे बाहर आने की जरूरत है। जो जहां रस ले रहा है, उसी रस में डूबते-डूबते निमज्जित हो जाए, खो जाए।

तो न तो मैं हसन से कहूंगा, भीतर आओ। अगर मैं वहां होता तो हसन से कहता, तुम बाहर नाचो। और राबिया से कहता, तू भीतर नाच; न हसन को भीतर बुला। और न हसन, तू राबिया को बाहर बुला; क्योंकि राबिया को बाहर दिखाई न पड़ेगा--अंतर्मुखी है। और हसन को भीतर दिखाई न पड़ेगा--बहिर्मुखी है।

और ध्यान रखना, बहिर्मुखी और अंतर्मुखी में मैं कोई मूल्यांकन नहीं कर रहा हूं कि इनमें कौन अच्छा, कौन बुरा। कोई अच्छा-बुरा नहीं। जहां से प्रभु मिल जाए, प्रभु का मिलना अच्छा।

पूछा है तुमने : "ध्यान है एकाकी की उड़ान एकाकी तक। भक्ति है एकाकी की उड़ान परमात्मा तक। क्या ध्यान की तरह भक्ति भी एकाकीपन से शुरू होती है?"

निश्चित ही। दोनों एकाकीपन से ही शुरू होती हैं। दोनों ही भीड़ से मुक्त होकर शुरू होती हैं। लेकिन दोनों का स्वाद थोड़ा भिन्न होता है। प्रथम तो भिन्न होता है; अंततः एक हो जाता है। मार्ग शुरू में भिन्न होते हैं। नदी एक, घाट बहुतेरे। घाटों के ढंग अलग-अलग हैं। नदी एक है। अगर घाट पर ध्यान रखोगे तो भेद मालूम

पड़ेगा; अगर नदी पर ध्यान करोगे तो भेद मालूम नहीं पड़ेगा। जो जाना जाता है वह तो एक; जिसके द्वारा जाना जाता है, वह तो एक--लेकिन जिन विधियों से जाना जाता है, वे अनेक। घाट बहुतेरे।

भक्त का एकाकीपन अलग; ज्ञानी का एकाकीपन अलग--प्रथम चरण में। तुम बड़े हैरान होओगे कि एकाकीपन और एकाकीपन कैसे अलग हो सकते हैं! समझने की कोशिश करो। जब भक्त एकाकी होता है तो अपने को मिटाने लगता है; तभी एकाकी हो पाता है। जब परमात्मा बचता है और भक्त मिट जाता है--तो एकाकी। एक बचा। जब तक भक्त भी रहता है, तब तक दो। इसलिए भक्ति की सारी चेष्टा है : परमात्मा बचे, मैं मिट जाऊं। कबीर कहते हैं : प्रेम गली अति सांकरी, तामें दो न समाय। या तो मैं या तू। अगर यही मामला है तो मैं को मिटा दूंगा।

इसलिए तो कहा पलटू ने कि जो अपने हाथ से सीस काटने को तैयार हो वही इस मार्ग पर कदम बढ़ाए। इतना जो पागल हो, ऐसा जो मर्द हो, वही कदम बढ़ाए। अपने को मिटा डालना होगा, पोंछ डालना होगा। एक ही बचेगा। परमात्मा बचेगा।

ज्ञानी क्या करता है? ध्यानी क्या करता है? ध्यानी भीड़ को छोड़ता है, परमात्मा को भी छोड़ देता है। वह कहता है, जब तक यह परमात्मा है तब तक तो दूजा बचा है। इसलिए बौद्ध झेन फकीरों ने कहा है, अगर बुद्ध भी रास्ते पर मिल जाएं तो उठा कर तलवार दो टुकड़े कर देना, ताकि तुम अकेले बचो; दूसरा नहीं चाहिए। झेन फकीरों ने कहा है कि अगर बुद्ध का नाम भी स्मरण आ जाए तो कुल्ला करके मुंह साफ कर लेना।

ये बुद्ध के भक्त इस तरह कह रहे हैं। यह ज्ञान का मार्ग है। ये कहते हैं, दूसरे की जरा भी जगह नहीं है, एक ही बचना चाहिए। तुम्हारी चेतना मात्र बचे; कोई भी न बचे। चेतना में कोई दृश्य न बचे; कोई दिखाई पड़ने वाला न बचे। कोई भी बचा है दूसरा, भगवान भी बचा है दूसरा, तो अड़चन है।

रामकृष्ण के गुरु तोतापुरी ने रामकृष्ण को कहा था, जब तक यह तेरी काली बची है, तब तक तू अभी मुक्त नहीं हुआ। यह काली तो गिरानी पड़ेगी। यह काली तो हटानी पड़ेगी।

यह ज्ञानी बोल रहा है भक्त से। क्योंकि अभी कुछ तो बचा दूसरा; द्वि बची; द्वैत बचा। अद्वैत चाहिए। दर्पण बचे और दर्पण में किसी का भी प्रतिबिंब न बचे। पहले प्रतिबिंब बनता था लोगों का, अब नहीं बनता; लेकिन परमात्मा का बनने लगा। मगर परमात्मा भी तो "पर" है।

तो ज्ञानी कहता है, "पर" को बिलकुल भुला दो, "पर" को बिलकुल छोड़ दो। अकेले तुम ही बचो। राम का स्मरण भी न बचे। राम की प्रतिमा भी न बचे। शुद्ध निर्विकार, निर्विकल्प चैतन्य बचे। वहां पहुंच गए।

फर्क समझना। ध्यानी सब "पर" को छोड़ कर--"पर" में परमात्मा भी सम्मिलित है--जब अकेला बच जाता है, तो एकाकी। और भक्त सबको छोड़ कर परमात्मा को बचा लेता है। सब में स्वयं भी सम्मिलित है। सबको छोड़ कर परमात्मा को बचा लेता है। तब एकाकी।

मगर परमात्मा बचे या आत्मा बचे, जब एक ही बचता है तो उन दोनों का स्वाद एक ही हो जाता है। फिर उसके नाम का ही फर्क है। जिसको महावीर आत्मा कहते हैं, उसी को शंकर परमात्मा कहते हैं। फिर नाम का ही भेद है। फिर जरा भी फर्क नहीं रहा। जहां एक ही बचा, अब तो नाम की ही बात रही। तुम उसे क्या कहते हो--आत्मा कहो, परमात्मा कहो। ध्यानी आत्मा कहेगा, क्योंकि ध्यानी तो परमात्मा को छोड़ ही चुका, मिटा ही चुका। तो अब तो जो बची है, वह मेरा ही शुद्धतम रूप है। अहं ब्रह्मास्मि! मैं ही ब्रह्म हूं।

और भक्त तो यह कैसे कहेगा कि मैं ही ब्रह्म हूं! वह तो कहेगा : मैं तो गया, पहले ही जा चुका। वह तो कब का जा चुका। अब तो ब्रह्म मात्र है। अब तो तू ही है!

दोनों ही एकाकी से शुरू होते हैं, भीड़ को छोड़ कर और दोनों परम एकांत में पूर्ण होते हैं। शुरू में थोड़े-थोड़े भेद होंगे--अंतर्मुखता के, बहिर्मुखता के। अंतिम चरण में कोई भेद नहीं रह जाता; अभेद प्रकट होता है।

दूसरा प्रश्न : पलटूदास जी कहते हैं : लगन-महूरत झूठ सब, और बिगाड़ैं काम। और नक्षत्र-विज्ञान कहता है कि लग्न-मुहूर्त से काम बनने की संभावना बढ़ जाती है। ... ?

नक्षत्र-विज्ञान सांसारिक मन की ही दौड़ है। ज्योतिषियों के पास कोई आध्यात्मिक पुरुष थोड़े ही जाता है। ज्योतिषियों के पास तो संसारी आदमी जाता है। कहता है : भूमि-पूजा करनी है, नया मकान बनाना है, तो लग्न-मुहूर्त; कि नई दुकान खोलनी है, तो लग्न-मुहूर्त; कि नई फिल्म का उद्घाटन करना है, लग्न-मुहूर्त; कि शादी करनी है बेटे की, लग्न-मुहूर्त।

संसारी डरा हुआ है : कहीं गलत न हो जाए! और डर का कारण है, क्योंकि सभी तो गलत हो रहा है; इसलिए डर भी है कि और गलत न हो जाए! ऐसे ही तो फंसे हैं, और गलत न हो जाए!

संसारी भयभीत है। भय के कारण सब तरह सुरक्षा करवाने की कोशिश करता है। और जिससे सुरक्षा हो सकती है, उस एक को भूले हुए है। वही तो पलटू कहते हैं कि जिस एक के सहारे सब ठीक हो जाए, उसकी तो तू याद ही नहीं करता; और सब इंतजाम करता है : लग्न-मुहूर्त पूछता है। और एक विश्वास से, एक श्रद्धा से, उस एक को पकड़ लेने से सब सध जाए--लेकिन वह तू नहीं पकड़ता, क्योंकि वह महंगा धंधा है। उस एक को पकड़ने में स्वयं को छोड़ना पड़ता है; सिर काट कर रखना होता है।

इसलिए वह तो तुम नहीं कर सकते। तुम कहते हो : हम दूसरा इंतजाम करेंगे; सिर को भी बचाएंगे और लग्न-मुहूर्त पूछ लेंगे; सुरक्षा का और इंतजाम कर लेंगे; और व्यवस्था कर लेंगे; होशियारी से चलेंगे; गणित से चलेंगे; आंख खोल कर चलेंगे; संसार में सुख पाकर रहेंगे।

ज्योतिषी के पास सांसारिक आदमी जाता है। आध्यात्मिक आदमी को ज्योतिषी के पास जाने की क्या जरूरत! आध्यात्मिक व्यक्ति तो ज्योतिर्मय के पास जाएगा, कि ज्योतिषी के पास जाएगा? चांद-तारों के बनाने वाले के पास जाएगा कि चांद-तारों की गति का हिसाब रखने वालों के पास जाएगा?

और फिर आध्यात्मिक व्यक्ति को तो हर घड़ी शुभ है, हर पल शुभ है। क्योंकि हर पल का होना परमात्मा में है; अशुभ तो हो कैसे सकता है! कोई भी मुहूर्त अशुभ तो कैसे हो सकता है! यह समय की धारा उसी के प्राणों से तो प्रवाहित हो रही है। यह गंगा उसी से निकली है; उसी में बह रही है; उसी में जाकर पूर्ण होगी।

आध्यात्मिक व्यक्ति को तो सारा जगत पवित्र है, सब पल-छिन सब घड़ी-दिन शुभ है। ये तो गैर-आध्यात्मिक की झंझटें हैं। वह सोचता है : कोई भूल-चूक न हो जाए; ठीक समय में निकलूं; ठीक दिन में निकलूं; ठीक दिशा में निकलूं; मुहूर्त पूछ कर निकलूं।

किससे डरे हो? तुमने मित्र को अभी पहचाना ही नहीं; वह सब तरफ छिपा है। तुम कैसा इंतजाम कर रहे हो? और तुम्हारे इंतजाम किए कुछ इंतजाम हो पाएगा?

कितना तो सोच-सोच कर आदमी विवाह करता है और पाता क्या है? तुम कभी सोचते भी हो कि सब विवाह इस देश में लग्न-मुहूर्त से होते हैं और फिर फल क्या होता है? फिल्मों का फल छोड़ दो। जिंदगी का पूछ रहा हूं। फिल्में तो सब शादी हुई, शहनाई बजी. . . और खत्म हो जाती हैं, वहीं खत्म हो जाती हैं। शहनाई बजते-बजते ही फिल्म खत्म हो जाती है क्योंकि उसके आगे फिल्म को ले जाना खतरे से खाली नहीं है। सब कहानियां यहां समाप्त हो जाती हैं कि राजकुमारी और राजकुमार का विवाह हो गया और फिर वे सुख से रहने लगे। और उसके बाद फिर कोई सुख से रहता दिखाई पड़ता नहीं। असल में उसके बाद ही दुख शुरू होता है। मगर उसकी बात छेड़ना ठीक भी नहीं है।

इतने लग्न-मुहूर्त को देख कर तुम्हारा विवाह सुख लाता है? इतना लग्न-मुहूर्त देख कर चलते हो, जिंदगी में कभी रस आता है? इतना सब हिसाब बनाने के बाद भी आती तो हाथ में मौत है, जो सब छीन लेती है; जो

तुम्हें नग्न कर जाती है, दीन कर जाती है, दरिद्र कर जाती है। हाथ में क्या आता है इतने सारे आयोजन-होशियारी के बाद, इतनी चतुराई के बाद? पलटूदास कहते हैं कि अपनी चतुराई पकड़े हुए हो, मगर इस चतुराई का परिणाम क्या है? आखिरी हिसाब में तुम्हारे हाथ क्या लगता है?

सिकंदर भी खाली हाथ जाता है। यहां सभी हारते हैं। संसार में हार सुनिश्चित है। चाहे शुरू में कोई जीतता मालूम पड़े और हारता मालूम पड़े--अलग-अलग; लेकिन आखिर में सिर्फ हार ही हाथ लगती है। जीते हुओं के हाथ भी हार लगती है; और हारे हुओं के हाथ तो हार लगती ही है। यहां जो दरिद्र हैं वे तो दरिद्र रह ही जाते है, यहां जो धनी है वे भी तो अंततः दरिद्र सिद्ध होते हैं। यहां जिनको कोई नहीं जानता था, जिनका कोई नाम नहीं था, कोई प्रसिद्धि नहीं थी, कोई यश नहीं था--वे तो खो ही जाते हैं; लेकिन जिनको खूब जाना जाता था, बड़ी प्रसिद्धि थी--वे भी तो खो जाते हैं। मिट्टी सब को समा लेती है। चिता की लपटों में सभी समाहित हो जाता है। रेखा भी नहीं छूट जाती।

कितने-कितने लोग इस जमीन पर नहीं रह चुके हैं! तुम जहां बैठे हो, वैज्ञानिक कहते हैं, एक-एक जमीन के इंच पर कम-से-कम दस-दस आदमियों की लाशें गड़ी हैं। हम सब मरघट में बैठे हैं। जहां भी हो वहां मरघट है। पूरी जमीन पर मरघट कई दफे बन चुका, बिगड़ चुका। आज यहां बस्ती है, कभी मरघट था। आज जहां मरघट है, कभी बस्ती बन जाएगी। कितनी दफे उलट-फेर हो चुके हैं! यह जमीन कितनों को लील गई है! यह तुम्हें भी लील जाएगी। कितनों का नाम रह गया है? और नाम रह भी जाए तो कोई क्या रहता है! जब तुम ही न रहे तो नाम के रहने से भी क्या होता है?

लग्न-मुहूर्त पूछ कर पहुंचते कहां हो? इसका भी कभी हिसाब किया कि लग्न-मुहूर्त ही पूछते रहोगे? सांसारिक पूछता है लग्न-मुहूर्त। जितना सांसारिक आदमी हो, जितना महत्त्वाकांक्षी हो, उतना लग्न-मुहूर्त पूछता है। दिल्ली में तुम पाओगे, सब तरह के ज्योतिषी अड्डा जमाए बैठे हैं। चुनाव के समय उनकी खूब बन आती है। सभी राजनेता के अपने-अपने ज्योतिषी हैं। और वे ज्योतिषी उनको कहते हैं कि बस, इस मुहूर्त में खड़े हो जाओ; इस मुहूर्त में भर देना फार्म चुनाव का; इस मुहूर्त में ऐसा करना; यह ताबीज बांध लो, यह गंडा बांध लो; इस बार जीत निश्चित है।

मेरे एक मित्र हैं, ज्योतिष का धंधा करते हैं। और यह तो सब बेईमानी के धंधों में एक धंधा है। उन्होंने एक कारीगरी की, उससे खूब प्रसिद्ध हुए। राष्ट्रपति के चुनाव में दो व्यक्ति खड़े थे, दोनों को जाकर कह आए कि आपका होना निश्चित है। दोनों को कह आए।

दो में से एक तो कोई होगा ही।

जो हो गया उसके पास जाकर पहुंचे; उसने तो उनके चरण भी छूए और उनको लिखित सर्टिफिकेट भी दिया कि इनका ज्योतिष बड़ा सही है, ये कह कर गए थे मुझसे। दोनों को कह आए थे। जो हार गया, उसकी तो बात ही खत्म हो गई। अब उसके पास जाने की जरूरत ही नहीं है; उसको याद भी नहीं होगी कि कौन आया, कौन गया। मगर जो जीत गया, उसको याद दिलाने पहुंच गए, उससे सर्टिफिकेट ले आए।

जब वे सर्टिफिकेट लाए तो मैंने उनसे पूछा, मुझे पता है तुम्हारा ज्योतिष कितना, कैसा है! मुझे पता है कि ज्योतिष में कितना क्या। तुमने यह घोषणा कैसे की थी?

उन्होंने कहा कि अब आपसे क्या छुपाना! दोनों की घोषणा कर आए थे। एक तो जीतेगा ही न। जो जीतेगा उससे सर्टिफिकेट ले आएंगे।

उसका सर्टिफिकेट ले आए, फिर सारे अखबारों में सर्टिफिकेट छपवा दिया। राष्ट्रपति के साथ तस्वीर निकलवा कर छपा दी। तब से उनका धंधा खूब चल निकला। अब तो लोग उनके पास काफी आते हैं। और जब सौ आदमी आते हैं, तुम उनसे कहते ही चले जाओ कि यह होगा, वह होगा; उसमें से कुछ को तो होने वाला है; पचास को होने वाला है। जिनको हो जाएगा उनकी भीड़ बढ़ती जाती है। जिनको नहीं होता वे दूसरे ज्योतिषी

खोजते हैं; तुम नहीं जंचते उनको, बात खत्म हो गई; वे किसी और के चक्कर में पड़ेंगे। लेकिन तुम्हारे पास जिनको लाभ हो जाता है, वे आने लगते हैं; उनकी भीड़ बढ़ने लगती है; उनका शोरगुल बढ़ने लगता है। फिर जब नया आदमी आता है और वह देखता है कि इतने लोगों को लाभ हो रहा है तो जरूर लाभ होता होगा।

ये सब मनोवैज्ञानिक धंधे हैं। इनका मौलिक आधार सम्मोहन है। ये सब भ्रांति से चलते हैं और भ्रांति तब तक चलती है जब तक आदमी को यह भ्रम है कि संसार में कुछ पा लूंगा। डर तो लगता है कि मिलना मुश्किल है। किसको मिला! लेकिन उपाय कर लूं। तो फिर उपाय में कोई कमी न रह जाए। तो सभी उपाय कर लूं। इसमें अब मुहूर्त भी पूछ ही लूं, कौन जाने. . .!

मैंने सुना है एक बड़े वैज्ञानिक के संबंध में कि वह अपनी बैठक में--स्वीडन में रहता था--घोड़े का नाल लटकाए हुए था। एक अमरीकन पत्रकार उसे मिलने गया। उसने कहा कि आश्चर्य, आप इतने बड़े वैज्ञानिक, नोबल पुरस्कार के विजेता, और आप यह घोड़े का नाल लटकाए हुए हैं! स्वीडन में लोग लटकाते हैं। उससे लाभ होता है। घोड़े का नाल लटकाने से लोगों को लाभ होता है।

अलग-अलग धारणाएं हैं लोगों की लाभ की। . . . मगर आप! आप इस अंधविश्वास में पड़े हैं!

वह वैज्ञानिक हंसने लगा। उसने कहा कि मैं इसको बिलकुल नहीं मानता। यह बिलकुल अंधविश्वास है।

तो फिर उसने कहा : जब आप कहते ही हैं कि यह बिलकुल अंधविश्वास है और नहीं मानते, तो फिर अपनी बैठक में क्यों लटकाए हुए हैं?

उन्होंने कहा : जिस आदमी ने यह मुझे दिया, उसने कहा कि मानो या न मानो, लाभ तो होगा ही।

देखते हैं आदमी का लोभ कैसा है! मानो या न मानो, लाभ तो होगा ही!

तो मैंने सोचा देख ही लें लटका कर। मानता तो मैं नहीं हूं। है तो अंधविश्वास। लेकिन जिसने मुझे दिया है वह कहता है : मानो या न मानो, लाभ होगा ही।

लाभ की आकांक्षा है तो तुम फंसोगे कहीं न कहीं। लग्न-मुहूर्त देख कर कहीं न कहीं फंसोगे।

पलटू तो बड़ी गहरी बात कह रहे हैं। पलटू तो कह रहे हैं : आध्यात्म के खोजी को क्या लग्न-मुहूर्त? परमात्मा को पाने के लिए कोई विधि-विधान थोड़े ही करना पड़ता है! सब झूठ है, कहते हैं पलटू।

लगन-महूरत झूठ सब।

परमात्मा में जाना हो तो हर मुहूर्त मुहूर्त है। यही क्षण जा सकते हो। तुम्हारे ऊपर निर्भर है। परमात्मा रोक थोड़े ही रहा है। वह यह थोड़े ही कह रहा है कि ठीक समय पर आना।

और जिस क्षण बुद्ध को ज्ञान हुआ, वह मुहूर्त शुभ था या नहीं? लेकिन इस पूरी पृथ्वी पर अज्ञानी पड़े रहे और उनमें से तो किसी को न हुआ। मुहूर्त शुभ था। बुद्ध को हुआ। जिस क्षण मीरा को हुआ, मुहूर्त शुभ था? लेकिन और तो किसी को न हुआ।

तुम पर निर्भर है। मुहूर्त तो प्रतिपल शुभ है; तुम जब आंख खोल लोगे तब हो जाएगा।

पलटूदास यह कह रहे हैं अगर पकड़ना ही हो तो क्या छोटे-मोटे ज्योतिषियों को पकड़ते हो, उस ज्योतिर्धर को पकड़ो। जिसने समय बनाया, उसी की शरण गह लो। जिसने सब पल-छिन बनाए उसी की याद से भर जाओ . .। तो कहते हैं, जब राम की याद आ जाए, जब उसके नाम का स्मरण हो जाए, वही शुभ घड़ी है। जब याद करो तभी शुभ घड़ी है।

तीसरा प्रश्न : काम पकने पर उसमें रुचि क्षीण होने लगती है। प्रेम पकने पर क्या होता है?

जो भी पक जाएगा उसमें रुचि क्षीण हो जाती है। जिसमें पकान आ गई, हम उसके आगे बढ़ गए। पका फल वृक्ष से गिर जाता है। पका कि गिरा। कच्चा होता है, तब तक वृक्ष पर होता है। जब तक कच्चा होता है तब तक इसीलिए वृक्ष पर होता है कि अभी पकना है और वृक्ष के रस की जरूरत है। रस मिलेगा तो पकेगा। जब

पक गया तो गिर जाएगा, क्योंकि वृक्ष को और भी कच्चे फल हैं जिन पर ध्यान देना है। अब तुम पक गए, तुम गिर गए। इसलिए तो पके व्यक्ति फिर नहीं लौटते। बुद्ध फिर नहीं लौटते, पलटू फिर नहीं लौटते--पक गए। यह संसार के वृक्ष से उन्होंने जितना रस लेना था, ले लिया; गिर गए इस वृक्ष से।

जो पक जाता है जीवन में, उससे ही मुक्ति हो जाती है। तुम थोड़ा चौंकोगे। क्योंकि तुम सोचते थे कि काम पक जाएगा, काम की वासना पक जाएगी तो गिर जाएगी, फिर प्रेम का जन्म होगा। फिर प्रेम पकेगा, तब क्या होगा? जब प्रेम पकेगा तो प्रेम भी गिर जाएगा और प्रार्थना पैदा होगी। और जब प्रार्थना भी पक जाएगी तो प्रार्थना भी गिर जाती है। तब शून्य रह जाता है।

"गिरह हमारा सुन्न में, अनहद में विसराम"!

तब कुछ भी नहीं बचता।

काम गिरा--प्रेम आया। वही ऊर्जा जो काम में लगती थी, मुक्त होकर प्रेम बन जाती है। फिर प्रेम पका, प्रेम भी गिर गया; फिर वही ऊर्जा जो प्रेम को पकाती थी, प्रार्थना बन जाती है। फिर एक दिन प्रार्थना भी पक जाती है।

ऐसा थोड़े ही है कि बुद्ध अब भी कहीं किसी लोक में बैठे हुए ध्यान कर रहे हैं और मीरा किसी लोक में बैठी है और अभी भी नाच रही है। यह तो पागलपन हो जाएगा। हर चीज पक जाती है, हर चीज की पकान का क्षण आ जाता है; समाप्त हो जाती है। और जहां सब समाप्त हो जाता है, उसी को हम परमात्मा कहते हैं। जहां कुछ भी पकने को शेष न रहा, कुछ भी कच्चा न रहा, उसी घड़ी को हम परमात्मा की घड़ी कहते हैं। सब पक गया, सबसे मुक्ति हो गई। जो-जो कच्चा है उससे बंधन बना रहता है।

इसलिए तो मैं निरंतर तुमसे कहता हूं, किसी भी वासना को कच्ची मत रखना। पका ही लेना। डरना मत। भयभीत मत होना। अगर धन पाने की आकांक्षा हो तो पा ही लेना; बीच में मत लौट आना। मेरी सुन कर मत लौट आना। कोई कहता हो धन में कुछ भी नहीं है, उसकी सुन कर लौट मत आना। तुम्हें दिखना चाहिए कि कुछ भी नहीं है; दूसरे के दिखने से क्या होता है? मैंने पुकारा कि धन में कुछ भी नहीं है और तुम्हें अभी धन में बहुत कुछ दिखाई पड़ रहा था : तुम मेरे मोह में पड़ गए; तुम मेरी बात में पड़ गए; तुम्हें मेरी बात का तर्क समझ में आ गया। तर्क समझ में आ गया, लेकिन तर्क से कोई अनुभव तो बनता नहीं। मैंने तुम्हें चुप कर दिया; तुम मुझसे जूझ न पाए, विवाद न कर पाए। मैंने बड़े तर्कों से तुम्हें शांत कर दिया, तुम मेरे साथ चलने लगे। लेकिन तुम्हारा मन तो बाजार की तरफ दौड़ता रहेगा। तुम्हारी देह मेरे साथ हो जाएगी; तुम्हारा मन बाजार में ही दौड़ता रहेगा। तुम्हें धन अभी पाना था। अभी महत्त्वाकांक्षा भीतर बनी रहेगी। रात तुम सपने देखोगे। जब कभी ध्यान करने बैठोगे तो ध्यान तो न हो पाएगा, धन ही धन की याद आएगी तब तुम परेशान होओगे। तुम कहोगे कि क्या बात है; कि मैं ध्यान करने बैठता हूं और धन की याद क्यों आती है? कुछ भी अड़चन नहीं है, सीधी सी बात है कि धन अभी पका नहीं था। अभी तुमने अपने अनुभव से नहीं जाना था कि धन व्यर्थ है। तुम्हें तो लगता है अभी भी कि सार्थक है। मेरी बात सुन कर चले आए।

"कानों सुनी सो झूठ सब, आंखों देखी सांच"।

आंख पर भरोसा करना, कान पर नहीं।

इस देश में यह दुर्घटना बहुत घटी है। घटने का कारण कि इस देश का सौभाग्य कि यहां बहुत संत-पुरुष हुए। वह सौभाग्य हमने अपने दुर्भाग्य में बदल लिया। हमने संतों की अमृत वाणी सुनी। हमें उनकी बात जंची। न केवल उनका तर्क प्रबल था, उनके व्यक्तित्व का वजन भी प्रबल था। हमने उनके पास यह अनुभव किया कि वे जो कहते हैं, ठीक ही कहते होंगे। मगर ठीक ही कहते होंगे। ठीक ही है, ऐसा हमारे अनुभव से गवाही नहीं मिलती। उनके व्यक्तित्व की गरिमा ने, उनके ज्योतिर्मय रूप ने, उनकी चिंमय-धारा ने हमें आंदोलित किया, प्रभावित किया : हम पीछे चल पड़े और हमारा मन संसार में भटकता रहा। इससे इस देश में बड़ी दुर्गति हुई।

लोग कहने को धार्मिक हैं और भीतर इतने सांसारिक, जितने कि दुनिया में तुम कहीं न पाओगे। यहां लोग धन को गाली दिए जाते हैं और धन की जितनी पकड़ इस देश में है उतनी दुनिया में कहीं भी नहीं है। धन है भी नहीं पकड़ने को अब--पकड़ ही है। और धन को गाली भी दिए जाते हैं।

अक्सर तो ऐसा लगता है कि धन को इसलिए गाली दिए जाते हैं जैसे लोमड़ी ने अंगूरों को खट्टा कहा था। पहुंच नहीं सकी थी, छलांग बहुत मारी थी। मगर अंगूर के गुच्छे दूर थे। एक खरगोश छिपा देखता था। उसने पूछा : मौसी, क्या बात है, बड़ी थकी-मांदी कहां जा रही हो? अंगूर तक पहुंच नहीं सकी क्या?

लोमड़ी नाराज हुई। उसने कहा : नासमझ छोकरे! अंगूर खट्टे हैं।

आदमी का अहंकार ऐसा है कि जिसको न पा सके उसको खट्टा कहने लगता है। मगर पाने की वासना तो भीतर चलती रहेगी। यह लोमड़ी रात में भी सपना देखेगी और उछलेगी अंगूरों को पकड़ने के लिए और यह कल फिर आएगी जब कोई भी देखता न होगा। फिर प्रयास करेगी। परसों भी आएगी। और अगर यहां कोई लोग होंगे तो कुछ बहाना करके गुजर जाएगी। लेकिन आएगी बार-बार। हजार उपाय करेगी, सीढ़ी लगाने की चेष्टा करेगी, कोई मार्ग खोजेगी। अभ्यास करेगी ऊंची छलांग लगाने का। और कहती रहेगी कि अंगूर खट्टे हैं। ऐसे अहंकार को भी बचाएगी।

इस देश में ऐसा हो गया। जितनी धन पर पकड़ इस देश में है दुनिया में किसी देश में नहीं है। जिन देशों को तुम भौतिकवादी कहते हो--अमरीका या ऐसे देश--धन की इतनी पकड़ नहीं है। अमरीकी जितनी आसानी से धन छोड़ता है, हिंदुस्तानी छोड़ता ही नहीं है--एक पैसा नहीं छोड़ता।

इधर मुझे रोज का अनुभव है। यहां पश्चिम से इतने लोग आए हैं! धन पर उनकी कोई पकड़ ही नहीं है : कूड़ा-कर्कट है। ठीक, जैसा संतों ने कहा है, हाथ का मैल है, वैसा ही अनुभव करते हैं। लेकिन हिंदुस्तानियों की पकड़ भारी है। है भी नहीं, अंगूरों तक पहुंच भी नहीं पाए और अंगूर खट्टे हैं, यह भी दोहराए चले जाते हैं।

कैसे यह हुआ? यह दुर्घटना कैसे घटी? यह एक बड़े सौभाग्य के कारण घटी। यह बड़ा चमत्कार है, बड़ा विरोधाभास है। सौभाग्य यह कि परम संत इस देश में हुए। उन्होंने बड़े अनुभव की बात कही, उन्होंने अपने अनुभव की बात कही। उनके लिए तो पक गई थी बात। बुद्ध ने जब कहा कि धन में कुछ भी नहीं है तो जान कर कहा। तुमने जब मान लिया, तब तुमने बिना जाने मान लिया; बस वहीं भूल हो गई। तो तुम अड़चन में पड़ जाते हो।

एक मित्र ने पूछा है प्रश्न कि "आपने कहा कि कबीर को भोले-भाले लोग ही समझ पाए, पंडित वंचित रह गए। और आपको समझने के लिए तो केवल जिनके पास धन है वे ही आ सकते हैं; भोले-भाले सीधे-साधे गरीब नहीं आ सकते। इसका क्या कारण है?"

कई बातें समझ लेने जैसी हैं। एक : गरीब होने से कोई भोला-भाला और सीधा-सादा नहीं होता। इस भूल में मत पड़ना। यह तर्क हमारे मन में बड़ा गहरा है कि कोई गरीब ही है तो भोला-भाला है। गरीब होने से कोई भोला-भाला हो जाता है? गरीब होना पर्याप्त है भोला-भाला होने के लिए? जब भी हम भोले-भाले शब्द का उपयोग करते हैं, हम उसमें गरीब भी जोड़ देते हैं; जैसे कि गरीब होना कुछ भोले-भाले होने का प्रमाण-पत्र है! गरीब होने से यह कुछ पता नहीं चलता कि तुम भोले-भाले हो। इससे सिर्फ इतना ही पता चलता है कि तुम कुशल नहीं हो। दौड़ तो तुम्हारी भी है।

गरीब भी धन के पीछे उसी तरह दौड़ रहा है जिस तरह अमीर दौड़ रहा है। अमीर सफल हो गया है, गरीब सफल नहीं हुआ है। दौड़ में जरा भी फर्क नहीं है।

तो दुनिया में दो तरह के धनी लोग हैं : धनाढ्य और धनाकांक्षी। गरीब तो यहां कोई है ही नहीं। गरीब तो कभी कोई मुश्किल से होता है। जिस दिन बुद्ध ने छोड़ा राजमहल, उस दिन गरीब पैदा हुआ। गरीब का मतलब यह होता है : धन व्यर्थ है। मगर जिसके पास धन है ही नहीं, वह धन को व्यर्थ कैसे कहेगा? वह अंगूर खट्टे ही कह सकता है। बुद्ध को मैं गरीब कहता हूं।

जीसस का बड़ा प्रसिद्ध वचन है : ब्लैसिड ऑर दि पुअर इन स्पिरिट! (धन्य हैं वे, जो आत्मा से दरिद्र हैं।) क्या मतलब इसका? कौन की बातें कर रहे हो?

महावीर और बुद्ध की बात हो रही है। जिन्होंने अनुभव से जान लिया कि धन व्यर्थ है, इस व्यर्थता के बोध के कारण धन उनके हाथ से छूट गया। छोड़ा, ऐसा भी नहीं कहता। जो व्यर्थ है, वह छूट जाता है, छोड़ना नहीं पड़ता। त्यागा, ऐसा भी नहीं कहता। कूड़े-कर्कट को कोई त्यागता है? तुम रोज कूड़ा-कर्कट साफ करते हो घर में और कचरे घर में फेंक आते हो--तो तुम कोई जाकर अखबार के दफ्तर में खबर थोड़े ही करते हो कि आज फिर कूड़ा-कर्कट त्याग दिया, छाप देना खबर!

कूड़ा-कर्कट है तो बात खत्म हो गई, त्यागना क्या है?

बुद्ध और महावीर गरीब हैं--वही, उस अर्थ में गरीब जिस अर्थ में जीसस कह रहे हैं। लेकिन क्या तुम सोचते हो कि जिनको तुम गरीब कहते हो, वे इस अर्थ में गरीब हैं? उनकी दौड़ तो उतनी ही है, महत्वाकांक्षा उतनी ही है। सफल नहीं हो रहे हैं।

असफलता का नाम भोला-भालापन है? अकुशलता है। भोला-भालापन क्या है? तुम सोचते हो, गांव के आदमी भोले-भाले हैं? इस भ्रांति में मत पड़ना। गांव के लोग उतने ही दांव-पेंच में लगे हैं जितने दांव-पेंच में शहर के लोग लगे हैं। हां, गांव के दांव-पेंच अलग हैं, क्योंकि गांव की दुनिया अलग है। गांव में आदमी दांव-पेंच करता है कि उसके पास एक अच्छी बग्घी हो जाए। फिएट कार की कोशिश नहीं करता, यह बात सच है, क्योंकि फिएट कार गांव की दुनिया में नहीं है। मगर एक अच्छी बग्घी हो जाए और वह भी दिखला दे गांव के मालगुजार को कि तुझसे ज्यादा शानदार घोड़ा मेरे पास है, तुझसे ज्यादा शानदार बग्घी मेरे पास है! यह दौड़ उसकी भी है। यही छोटे नगर का आदमी फिएट के लिए कोशिश करता है कि यह देख, मेरे पास फिएट है, दिखा दूं गांव को! बंबई का आदमी होता है तो रॉल्सरायस की कोशिश करता है। मगर यह कोशिश एक ही है। ये अलग-अलग तल के लोग हैं, अलग-अलग वातावरण के लोग हैं, मगर इनकी दौड़ एक ही है। दौड़ में कुछ फर्क नहीं है।

सिर्फ गांव का होने से भोला-भाला मत कह देना। अक्सर लोग जब भी भोले-भाले शब्द का उपयोग करते हैं तो गरीब भी जोड़ देते हैं। गरीब होना सिर्फ इस बात का सबूत है कि तुम दूसरों से कम चालाक हो, बस। चालाक नहीं हो, इस बात का सबूत नहीं है। तुम दूसरों से कम चालाक हो। तुम्हारी कुशलता कम है। तुम ईमानदार हो, इस बात का सबूत नहीं है। बेईमानी में तुम्हारी निपुणता कम है, तुम दीक्षित कम हो। चाहते तो तुम भी वही हो, जो दूसरे कर रहे हैं या पाने की कोशिश में है या पा लिया है। मगर तुम उपाय नहीं खोज पाते हो।

गरीब से गरीब आदमी के मन में भी धन की वैसी ही आकांक्षा है--प्रबल आकांक्षा है--जैसी धनी आदमी के मन में है। कोई फर्क नहीं है। हर गरीब कोशिश में लगा है कि धनी हो जाए। तो कहां की दरिद्रता है? कौन सा भोला-भालापन है?

मेरे देखे कभी कोई धनी तो धन से मुक्त हो सकता है; गरीब धन से कभी मुक्त नहीं हो पाता। इसलिए यह आकस्मिक नहीं है. . . यह आकस्मिक नहीं है कि जो धन पाकर धन की व्यर्थता को देख लिए हैं, वे धर्म में उत्सुक हों। यह आकस्मिक नहीं है। यह बिलकुल गणित के अनुसार है। और अगर तुम कभी ऐसा भी पाओ कि कोई गरीब आदमी धर्म में वस्तुतः उत्सुक है तो उसका केवल इतना ही मतलब होता है कि पिछले जन्मों में धन की दौड़ देख चुका; और कुछ मतलब नहीं होता। आज की गरीबी के कारण उत्सुक नहीं हो रहा है : कल की बीती अमीरी के कारण उत्सुक हो रहा है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि कोई गरीब आदमी धार्मिक नहीं हो सकता। हो सकता है। पलटू गरीब ही रहे। कबीर गरीब ही रहे। दरिया गरीब ही रहे। लेकिन यह जन्मों-जन्मों में जो धन की दौड़ जानी है और धन की व्यर्थता जानी है, उसका ही संचित सार है। यह गरीबी से नहीं निकला है

अनुभव कि धन व्यर्थ है। कैसे निकलेगा? जिसके पास धन नहीं है; धन व्यर्थ है-- ऐसा अनुभव कैसे निकलेगा? धन व्यर्थ है, यह जानने के लिए धन का होना जरूरी है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि जिनके पास धन है, उन सभी को यह अनुभव निकल आएगा। लेकिन जिनको यह अनुभव निकलता है, उनके पास तो धन होना चाहिए।

जो कामवासना की दौड़ में दौड़े हैं, उनके जीवन से कामवासना की व्यर्थता साफ हो जाती है। जिन्होंने पद की दौड़ में भाग लिया है वे धीरे-धीरे पद की व्यर्थता को देखने लगते हैं। जो पद की दौड़ में हैं, धन की दौड़ में हैं, महत्त्वाकांक्षा की दौड़ में हैं, धन भी जिनके पास है, पद भी जिनके पास है और फिर भी उनको पद और धन की व्यर्थता नहीं दिखाई पड़ती--वे गंवार हैं; उनके पास बुद्धि नहीं है; वे बुद्धू हैं।

मेरे देखे, अगर कोई गरीब आदमी धर्म में उत्सुक हो जाए तो बड़ा बुद्धिमान है और अमीर आदमी धर्म में उत्सुक न हो तो बड़ा बुद्धू है। गरीब उत्सुक हो जाए तो वह यही बता रहा है कि उसके पास बड़ी प्रज्ञा की, बड़ी समझ है! समझ जन्मों-जन्मों में इकट्ठी की होगी; निचोड़ है उसके पास। गरीब रहते और धर्म में उत्सुक हो गया, इसके लिए बड़ी क्रांतिकारी समझ चाहिए। और धन होते हुए भी धन से जो मुक्त न हो, उसके लिए बड़ी जड़ बुद्धि चाहिए : सब है और उसको दिखाई नहीं पड़ता कि इसमें कुछ भी सार नहीं है। जब सब हो तो दिखाई पड़ना ही चाहिए कि इसमें कुछ भी नहीं है।

निरंतर, सदा ही, जब भी कोई देश धनी होता है, तब धार्मिक होता है। और जब कोई देश दरिद्र हो जाता है तो उसके पास एक ही धर्म बचता है; उसको कम्युनिज्म कहो, समाजवाद कहो या कुछ और नाम दो। गरीब देश के पास एक ही धर्म बचता है : साम्यवाद। केवल अमीर देश के पास ही धर्म होता है। यह बुद्ध और महावीर के समय इस देश में ऊंचाई देखी। स्वर्ण-शिखर देखे। यह देश सोने की चिड़िया थी। तब इसने धर्म की उड़ान ली।

आज यह देश गरीब है। आज इस गरीब देश के पास धर्म की केवल राख रह गई है, लाश रह गई है। इसका असली भाव तो आज कम्युनिज्म का है; असली भाव तो समाजवाद का है। इसलिए राजनेता कोई भी हो, पार्टी कोई भी बदले; लेकिन समाजवाद की तरफ दोनों को सिर झुकाना पड़ता है। गैर-समाजवादी को भी समाजवाद का नारा लगाना पड़ता है, तो ही वोट मिलता है। कोई समाजवादी हो या न हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन लोग एक बात जानते हैं कि जनता भूखी है; दीन है, दरिद्र है और एक ही भाषा समझ सकती है आज--वह भाषा है : कैसे अच्छा मकान मिले, कैसे अच्छे वस्त्र मिलें, कैसे अच्छा भोजन मिले, कैसी नौकरी मिले।

और यह बात ठीक भी है, इसमें कुछ बुराई भी नहीं है, कुछ गलती भी नहीं है। भूखा आदमी भोजन की भाषा समझता है। कितनी सदियों से हमने सुना है और कहा है : भूखे भजन न होहिं गोपाला! ठीक ही बात है। भूखे भजन नहीं हो सकते। भूख में कैसा भजन! भूख में भूख का ही भजन होता है, गोपाल की कैसे याद आए; गोपाल पर तो नाराजगी आती है।

तो यह कुछ आकस्मिक नहीं है कि जो समृद्ध हैं, वे धर्म में उत्सुक होते हैं। वे ही उत्सुक हो सकते हैं। गरीब अभी धन में उत्सुक होगा। और गरीब अगर जाए भी मंदिर, जाए भी मस्जिद, जाए भी गुरुद्वारा तो वह धन के ही मांगने के लिए जाता है, ध्यान मांगने के लिए नहीं जाता।

मेरे पास आ जाते हैं कभी ऐसे लोग, तो उनकी मांग बड़ी अजीब होती है। यहां मैं रोज देखता हूं। अगर पश्चिम से कोई आता है, समृद्ध देश से कोई आता है, तो उसके प्रश्न अलग होते हैं। वह पूछता है कि मन में चिंताएं हैं, इनसे कैसे छुटकारा हो? वह पूछता है कि मन उद्विग्न है, यह कैसे शांत हो? वह पूछता है कि जीवन में कोई अर्थ नहीं मालूम पड़ता, अर्थ कैसे आए?

इस देश से लोग आ जाते हैं, तो उनका सवाल अजीब ही होता है! कोई कहता है कि मेरे लड़के की तबीयत खराब है, आपकी कृपा हो जाए तो वह ठीक हो जाए; कि मेरे पति की नौकरी छूट गई है, आप कुछ आशीर्वाद दो! यह बड़ी दयाजनक स्थिति है। मेरे पास नौकरी के लिए आशीर्वाद मांगने आने का मतलब क्या होता है? और जो मेरे पास नौकरी के लिए आशीर्वाद मांगने आता है, उसकी धर्म में कोई रुचि हो सकती है? अभी तो संसार ही नहीं पका, अभी सत्य की तरफ उठना कैसे होगा?

जो जीवन के सब सुखद-दुखद अनुभवों से गुजरता है, जो जीवन के सब बुरे-भले अनुभवों को झेलता है और जिसकी प्रज्ञा प्रौढ़ हो जाती है--वही व्यक्ति धार्मिक हो पाता है।

तुमने पूछा है : "काम पकने पर उसमें रुचि क्षीण होने लगती है, प्रेम पकने पर क्या होता है?"

काम यानी शरीर। प्रेम यानी मन। प्रार्थना यानी आत्मा ये तीन तल हैं। जब काम से थक जाते हो तुम तो प्रेम का जन्म होता है। जब कामुकता थक जाती है तो प्रेम का सूत्रपात होता है। जब तक तुम कामुकता से भरे हो तब तक कैसा प्रेम? तब तक तो तुम केवल शरीर में उत्सुक होते हो; दूसरे व्यक्ति में तो उत्सुक होते ही नहीं। तुम शोषण करते हो। जब काम थक जाता है, और अनुभव में आ जाता है कि काम से कुछ मिलने को नहीं है, तब दूसरे व्यक्ति के भीतर शरीर ही नहीं दिखाई पड़ता; दूसरे के भीतर छिपा हुआ व्यक्ति अनुभव में आना शुरू होता है। एक नई दिशा खुलती है। तुम्हारे जीवन में प्रेम का सूत्रपात होता है। कोमल तंतु प्रेम के खुलते हैं।

जब प्रेम भी पक जाता है, तब तुम दूसरे व्यक्ति में व्यक्ति ही नहीं देखते; दूसरे व्यक्ति में तुम्हें आत्मा दिखाई पड़ती है, परमात्मा का आवास दिखाई पड़ता है--तब प्रार्थना शुरू होती है।

काम को ऐसे समझो कि कली--फूल की कली। प्रेम को ऐसे समझो कि कली खिल गई, फूल बन गया। और प्रार्थना को ऐसे समझो कि सुवास मुक्त हो गई फूल से; हवा गंध से भर गई। लेकिन जब प्रार्थना भी पक जाती है, तो वह भी शांत हो जाती है। जब काम भी गया, प्रेम भी गया, प्रार्थना भी गई, सब चला गया और मात्र शून्य रह गया भीतर; न कोई भाव उठते न कोई विचार उठते; न कोई संसार बचा, न कोई मोक्ष बचा; न पदार्थ बचा और न परमात्मा बचा; जहां अब कोई चीज बची ही नहीं--वहां तुम मूलस्रोत पर आ गए। यहीं क्रांति घटती है। यहीं समाधि फलित होती है। इस अवस्था को ही हमने निर्वाण कहा है। यह परम दशा है। फिर इससे गिरना नहीं होता। जो इसमें पहुंच गया, उसको बुद्ध ने कहा अनागामी हो गया; अब वह वापस न लौटेगा; अब उसका पुनः आगमन न होगा।

लेकिन ध्यान रखना, काम अगर पका न और तुमने जल्दबाजी की और भाग कर प्रेम पकड़ना चाहा, तो तुम्हारा प्रेम झूठा रहेगा। अगर प्रेम पका न और तुम प्रार्थना को बुला लाए, तो तुम पूरे हृदय से न बुला सकोगे; तुम्हारी प्रार्थना में छुपा हुआ प्रेम नीचे खींचता रहेगा। इसलिए हर सीढ़ी पर ठीक से पैर जमाओ और हर सीढ़ी को ठीक से अनुभव कर लो। और जब तक थोड़ा भी रस रहे, रुके रहना; जल्दी नहीं है, अनंत काल मौजूद है। कोई घबड़ाहट नहीं है। जब उस सीढ़ी से पूरी तरह छुटकारा हो जाए, जरा भी राग न रह जाए, जरा भी रस न रह जाए, जरा भी भाव न रह जाए--तब दूसरी सीढ़ी पर कदम रखना। तब तुम्हारे कदमों में एक मजबूती होगी और तुम जहां होओगे वहां पूरे-पूरे होओगे; अधूरे-अधूरे नहीं, खंड-खंड नहीं। नहीं तो एक पैर एक नाव में और दूसरा पैर दूसरी नाव में। तब बड़ी बेचैनी और बड़ी दुविधा पैदा होती है। दो घोड़ों पर सवार कभी मत बनना।

और यहां ऐसे लोग हैं जो तीन-तीन घोड़ों पर साथ सवार हैं। काम अभी चल ही रहा है। प्रेम का राग भी छेड़ दिया है। प्रेम का राग उठ ही रहा है। और प्रार्थना के लिए शांत होने की चेष्टा भी कर रहे हैं। तो कुछ भी नहीं हो पाता। काम के कारण प्रेम नहीं हो पाता और प्रेम के कारण प्रार्थना नहीं हो पाती। प्रार्थना के कारण ठीक से प्रेम भी नहीं हो पाता--और प्रेम के कारण ठीक से काम भी नहीं हो पाता। जीवन एक बिबूचन, एक विडंबना हो जाती है। लोग किंकर्तव्यविमूढ़ होकर खड़े हो जाते हैं। चौराहे पर खड़े हैं और चारों मार्गों पर जाने की चेष्टा कर रहे हैं; एक तरफ हाथ बढ़ा दिया है, एक तरफ पैर बढ़ा दिया है, एक तरफ सिर लगा दिया। तो तुम विक्षिप्त हो जाओगे।

चौथा प्रश्न : सब कुछ दांव पर लगा देने का क्या अर्थ है?

अर्थ तो सीधा-साफ है। सब कुछ यानी सब कुछ। अर्थ पूछते हो, कुछ बचाने का मन होगा। अर्थ पूछते हो, कोई तरकीब निकालना चाहते होओगे। सीधी सी बात है। इसकी व्याख्या करनी होगी?

अगर तुमसे कोई कहे कि सब वस्त्र उतार डालो, तो तुम पूछोगे कि सब वस्त्र उतार डालने का क्या अर्थ है? सब वस्त्र उतार डालने का मतलब सब वस्त्र।

कोई तुमसे कहे कि सब सामान यहीं रख दो, भीतर न ले जाओ, तो तुम पूछते हो कि सब सामान रखने का क्या अर्थ? सब सामान यानी सब सामान। इस पर पूछने जैसा क्या है?

सब कुछ दांव पर लगा देने का अर्थ है कि तुम्हारी अपनी बुद्धिमत्ता से तुम अब तक नहीं पहुंचे, अब अपनी बुद्धिमत्ता को चढ़ा दो। चालबाजियां न करो। होशियारियां न करो। लोग होशियारियां कर रहे हैं। इसलिए सदगुरु को मिल कर भी तुम नहीं मिल पाओगे। क्योंकि तुम सदगुरु के साथ भी चालबाजियां करते हो।

अब यहां लोग आ जाते हैं। एक सज्जन आ गए। संन्यास ले लिया। जब उन्होंने संन्यास लिया, तभी मुझे लगा। मैंने उनसे पूछा : आप काहे को संन्यास ले रहे हैं? किसलिए संन्यास ले रहे हैं? तो उन्होंने कहा अब आपने पूछ लिया तो कैसे छिपाऊं! इसलिए ले रहा हूं कि शायद संन्यास लेने से ध्यान लग जाए।

फिर मैंने उनसे पूछा कि और यहां से लौट कर घर ये गैरिक वस्त्र पहन सकेंगे? उन्होंने कहा कि अब आपने जब पूछ ही लिया तो अब कैसे छिपाऊं! यही सोचा कि चलो यहां तो ले लो, अब घर कौन आप देखने आने वाले हैं! ट्रेन में बदल लूंगा कपड़े। घर जाते वक्त अपने कपड़े फिर पहन लूंगा। लेकिन यहां तो ले लो। शायद यहां लेने से ध्यान में गति आ जाए।

यह चालबाजी है। अब तुम बेईमानी कर रहे हो। और बेईमानी से सोचते हो कि ध्यान में गति आ जाएगी! किसको धोखा दे रहे? अपने को ही धोखा दे रहे हो। तुमसे कहा किसने कि तुम संन्यास ले लो? तुम ध्यान करो। ध्यान करने से संन्यास आ सकता है; संन्यास लेने से कैसे ध्यान आ जाएगा? तुम ध्यान करो। कम से कम थोड़े निष्कपट यहां तो रहो! यहां भी तुम कपट और चाल कर रहे हो। यहां भी तुम यह सोच रहे हो कि यहां लेने में क्या हर्जा है, ले लो, यहां तो कोई देख भी नहीं रहा, किसी को घर पता भी नहीं चलेगा!

. . . अब दूर गोहाटी से आए हैं। गोहाटी कहां किसको खबर होने वाली है कि तुमने यहां गैरिक वस्त्र पहन लिए थे। या अगर पता भी चल जाएगा, तुम कह दोगे : वहां पहन लिए थे, वहां सब लोग पहने हुए थे; सोचा, सबके संग-साथ हो जाना अच्छा है; जैसा देश वैसा वेश; अपने घर अपने वस्त्रों में पहुंच जाएंगे।

मैं तो तुम्हारा पीछा नहीं करूंगा, गोहाटी नहीं आऊंगा--देखने कि अब तुम कपड़े पहने हुए हो कि नहीं पहने हुए हो। मगर तुम चूक गए मौका। यहां अगर आए थे पंद्रह-बीस दिन के लिए तो वे पंद्रह-बीस दिन भी खराब कर लिए; तुम अपनी बेईमानी यहां लेकर आ गए।

लोग चालबाजियां कर रहे हैं। लोग परमात्मा के साथ भी. . . मौका लगे तो उसकी भी जेब काट लें; मौका लग जाए तो उसको भी लूट लें।

सब दांव पर लगाने का अर्थ होता है : चालबाजियां अब और नहीं। अब तुम सब खोल कर ही रख दो। तुम कह दो : यह मैं हूं! बुरा-भला जैसा हूं, स्वीकार कर लें। बुराइयां नहीं हैं, ऐसा भी नहीं कहता। भलाइयां भलाइयां हैं, ऐसा दावा भी नहीं करता। यह हूं बुरा-भला, सब का जोड़-तोड़। इसे स्वीकार कर लें। अब आपके हाथ में हूं, अब जैसा बनाना चाहें बना लें।

पूछा है योग चिंमय ने। यह प्रश्न योग चिंमय का है। योग चिंमय में ऐसी बेईमानी है। प्रश्न अकारण नहीं उठा है। होशियारी है। करते भी हैं तो . . .अगर मैं कहूंगा तो कुछ करते भी हैं तो उतनी ही दूर तक करते हैं जहां

तक उनकी बुद्धि को जंचता; उससे एक इंच आगे नहीं जाते। होशियारी बरतते हैं। होशियारी बरतो, कोई हर्जा नहीं--मेरा कुछ हर्जा नहीं है; तुम ही चूक जाओगे। तो चूकते चले जा रहे हैं। यहां मेरे पास आने वाले प्राथमिक लोगों में से हैं और पिछड़ते जा रहे हैं। चूंकि सब दांव पर लगाने की हिम्मत नहीं है। अपनी बुद्धि को बचा कर लगाते हैं। वे कहते हैं : इत्ता तो हिसाब अपना रखना ही पड़ेगा। कल आप कहने लगो कि गड्ढे में कूद जाओ तो कैसे कूद जाऊंगा? देख लेता हूं कि ठीक है, नीचे मखमल बिछी है तो कूद जाता हूं। अब गड्ढे में पत्थर पड़े हों, तब तो मैं रुक जाऊंगा। जब तक मखमल बिछी है, तब तक कूदूंगा; जब गड्ढे में देखूंगा पत्थर पड़े हैं तो मैं कहूंगा कि अब नहीं कूद सकता।

. . . तो अपनी होशियारी को लेकर चलोगे--चूक जाओगे। फिर मुझे दोष मत देना। दोष तुम्हारा ही था। अपने को बेशर्त न छोड़ा।

और ऐसे बहुत मित्र हैं। और अगर चूकते हैं तो नाराज होंगे; सोचेंगे कि शायद उन पर मेरी कृपा कम है, शायद मैं पक्षपाती हूं। लेकिन कभी यह न देखेंगे कि क्यों चूक रहे हैं, किस कारण चूक रहे हैं।

मन चालबाज है।

मैंने सुना, एक आदमी ने अखबार में खबर दी : आवश्यकता है एक नौकर की। विज्ञापन पढ़ कर एक आदमी नौकरी के लिए आया। नौकरी की आशा से आने वाले उम्मीदवार ने पूछा कि मुझे वेतन क्या मिलेगा? उस आदमी ने कहा, जिसने विज्ञापन दिया था, कि वेतन कुछ नहीं मिलेगा, केवल खाना मिलेगा।

आदमी गरीब था। उसने कहा : चलो ठीक है, खाना ही सही। और काम? काम क्या होगा? नौकर ने पूछा।

उन सज्जन ने कहा : सबेरे-शाम दो वक्त गुरुद्वारा जाकर लंगर में खाना खा आओ और साथ ही हमारे लिए खाना बांध कर लेते आओ।

आदमी बड़ा बेईमान है! खूब तरकीब निकाली कि लंगर में खाना खा लेना, तुम भी खा लेना, तुम्हारा खाना भी हो गया, खत्म! तुम्हारी नौकरी भी चुक गई और मेरे लिए खाना लेते आना। यह तुम्हारा काम है। . . .तो मुफ्त में सब हो गया।

ऐसे ही लोग आध्यात्म भी बड़ी होशियारी से करना चाहते हैं--मुफ्त में कर लेना चाहते हैं : कुछ लगे ना, कुछ रेखा न खिंचे, कुछ दांव पर ना लगे! अपने को बचा कर घट जाए घटना। मुफ्त मिल जाए। कोई प्रयास न करना पड़े और कोई कठिनाई न झेलनी पड़े।

और जहां तुम्हारे अहंकार को चोट हो, जहां तुम्हारी बुद्धि को चोट हो--वहीं पीछे हट जाओगे। और वहीं कसौटी है।

इसलिए पलटू ठीक कहते हैं कि कोई मर्द हो तो बढ़े। मर्द ही नहीं--पागल हो, तो हिम्मत करे इतनी।

सब दांव पर लगा देने का अर्थ है : पागल की तरह दांव पर लगा देने का; फिर पीछे लौट कर देखना नहीं। अंधे की तरह दांव पर लगा देना; फिर पीछे लौट कर देखना नहीं। पहले दांव पर लगाने के लिए खूब सोच लो, विचार लो। कोई यह नहीं कह रहा है कि सोचो-विचारो मत। खूब सोचो, खूब विचारो, वर्षों बिताओ, चिंतन-मनन करो, सब तरफ से जांच-परख कर लो; लेकिन एक बार जब निर्णय कर लो कि ठीक है, ठीक आदमी के करीब आ गए, यही आदमी है--जब ऐसा लगे कि यही आदमी है तो फिर आगा-पाछा न सोचो। फिर सब चरणों में सर रख दो। फिर कहो कि ठीक है, अब तुम्हारे साथ चलता हूं : नरक जाओ तो नरक, स्वर्ग जाओ तो स्वर्ग; अब तुम जहां रहोगे वहीं मेरा स्वर्ग है। और तुम जैसे रखोगे वही मेरा स्वर्ग है।

अहंकार दांव पर लगा देने का अर्थ है।

तुम संन्यास भी लेते हो तो तुम अहंकार दांव पर नहीं लगाते।

दो तरह के लोग संन्यास लेते हैं। एक हैं, जो संन्यास सोच-विचार कर लेते हैं; जो कहते हैं, हम सोचेंगे-विचारेंगे, सब तरह का पक्ष-विपक्ष करेंगे, फिर अपना निर्णय लेंगे, फिर संन्यास लेंगे। दूसरे हैं, जो भाव से संन्यास लेते हैं, विचार से नहीं। बड़ा अन्य संन्यास है उनका। आंसुओं के माध्यम से संन्यास लेते हैं, तर्क के माध्यम से नहीं। रस-विभोर होकर संन्यास लेते हैं; निष्पत्ति से नहीं, निष्कर्ष से नहीं। बुद्धि को एक तरफ रख कर संन्यास लेते हैं। मेरे पास आते हैं, उनसे मैं पूछता हूं : कुछ सोच लो। वे कहते हैं : सोचना क्या! मैं उनसे कहता हूं : पहले विचार लो। वे कहते हैं : विचारना क्या! आपको देखा, बात हो गई। आप अगर अपात्र समझें तो न दें। आप अगर न दें तो आपकी मर्जी। मगर मैं लेने को हूं। और अब सोचना-विचारना नहीं है। सोच-विचार तो बहुत चुका और जिंदगी भर सोच-विचार में गंवा दी और कुछ हाथ में न लगा। अब एक काम तो मुझे कर लेने दें बिना सोच-विचार के। यह जो भाव से उठा संन्यास है।

चिंमय ने जब संन्यास लिया तो काफी सोच-विचार किया और अभी भी सोच-विचार चल रहा है। बड़ी सोच-विचार से, बड़ा हिसाब लगाया होगा भीतर! दिन बिताए। बड़ी झिझकते-झिझकते संन्यास में प्रवेश किया। और अभी भी प्रवेश हो नहीं पाया; अभी भी दरवाजे पर ही अटके हैं। अभी भी दरवाजे पर खड़े हैं। अभी भी उस सीमा पर खड़े हैं, जहां से वापस लौटना संभव है। उससे आगे नहीं बढ़ते हैं जहां से कि वापस लौटना कठिन हो जाए; जहां से कि वापस लौटा ही न जा सके, उस सीमा तक नहीं जाते। फिर चूकेंगे। चूक रहे हैं। और जब चूकेंगे तो दोष मुझे देंगे। यह भी मजा है। जब चूकोगे तो स्वभावतः कहीं तो दोष दोगे, किसी को तो दोष दोगे! . . . तो मुझे ही दोष दोगे।

एक स्त्री से कोई पूछ रहा था कि तेरी खिड़की का कांच कैसे टूट गया? उसने कहा : मुझसे मत पूछो, मेरे पति से पूछो। उन्होंने तोड़ा है। उसने पूछा : लेकिन तेरे पति को तो मैं अभी बाहर पूछा हूं। वे कहते हैं कि पत्नी से पूछो। पत्नी ने कहा : उन्हीं ने तोड़ा है। खड़े थे इस खिड़की के पास और जब मैंने उनकी तरफ बेलन फेंका तो नामर्द की तरह हट गए, तो कांच फूट गया। किसने तोड़ा? न हटते, न टूटता। उन्हीं से पूछो।

आदमी का मन सदा दूसरे को दोष देने की वृत्ति से भरा होता है। अगर तुम्हें न घटेगा तो तुम मुझ पर नाराज होओगे। और कभी तुम्हें भूल कर भी यह ख्याल न आएगा कि अगर नहीं घटा तो कहीं ऐसा तो नहीं था कि कुछ मैं चालबाजियां करता रहा। खूब समझ लेना। अगर तुम्हारी समझदारी इतनी ही तुम्हारे काम आ जाए कि तुम यह समझ पाओ कि समझदारी की यह बात नहीं है, यह काम दीवानों का है, यह काम मस्तों और पागलों का है--तो घटना घट जाएगी, सब दांव पर लग जाएगा।

कह न ठंढी सांस में
अब भूल वह जलती कहानी
आग हो उर में तभी
दृग में सजेगा आज पानी
हार भी तेरी बनेगी
मानिनी जय की पताका
राख क्षणिक पतंग की है
अमर दीपक की निशानी
वेध दो मेरा हृदय
माला बनूं, प्रतिकूल क्या है?
मैं तुम्हें पहचान लूं इस कूल
तो उस कूल क्या है?
शिष्य तो बिधने को तैयार है।
बेध दो मेरा हृदय
माला बनूं, प्रतिकूल क्या है?
बस माला का फूल बन जाऊं

बेध दो मेरा हृदय, छेद दो मेरा हृदय।

माला बनूं, प्रतिकूल क्या है?

तुम्हारे छेदने में कुछ दुश्मनी नहीं है। छेद दो, नहीं तो माला का हिस्सा नहीं बन पाऊंगा।

मैं तुम्हें पहचान लूं इस कूल

तो उस कूल क्या है?

कहीं भी पहचान हो जाए--इस कूल तो यहां, उस कूल तो वहां--जहां ले चलो। चलने को राजी हूं।

मैं तुम्हें पहचान लूं इस कूल

तो उस कूल क्या है?

कह न ठंढी सांस में

अब भूल वह जलती कहानी

आग हो उर में तभी

दृग में सजेगा आज पानी

हार भी तेरी बनेगी

मानिनी जय की पताका।

शिष्य जब हारता है तो ही विजेता होता है। गुरु से हार जाने से बड़ी और कोई विजय नहीं है। गुरु से जीतने की कोशिश तुम्हारी हारने की संभावना है। गुरु से जीतने की चेष्टा, अपने को बचाए रखने का प्रयास--तुम्हारी पराजय है। यह विरोधाभासी वचन ठीक से ख्याल में रखना। धन्यभागी हैं वे जो गुरु से हार जाएं, क्योंकि वहीं जीत गए।

हार भी तेरी बनेगी

मानिनी जय की पताका

राख क्षणिक पतंग की है

अमर दीपक की निशानी

बेध दो मेरा हृदय माला बनूं

प्रतिकूल क्या है?

मैं तुम्हें पहचान लूं इस कूल

तो उस कूल क्या है?

पांचवां प्रश्न : प्रबल जीवेषणा के होते हुए भी किस भांति भक्त को अपने हाथ से अपना सीस उतारना संभव होता है? कृपा करके समझाइए।

जब तक प्रबल जीवेषणा है, तब तक यह संभव नहीं होता।

जब तक प्रबल जीवेषणा है--लस्ट फॉर लाइफ--जब तक जीने की महान आकांक्षा है, तब तक तो तुम भक्त बनते ही नहीं, शिष्य बनते ही नहीं। जीवेषणा की पराजय. . . बहुत-बहुत तरह से जांच लेने के बाद जब तुम पाते हो कि जीवन में कुछ है ही नहीं; कुछ और चाहिए जो जीवन से ऊपर हो--तब।

बुद्ध ने राजमहल छोड़ा। उस रात. . . बड़ी मीठी कहानी बौद्धशास्त्रों में है। बुद्ध युवा थे। सब उनके पास था। सुंदर पत्नी थी। और उसी रात उनको बेटा हुआ था, बेटा जन्मा था। बुद्ध ने उसका नाम राहुल रखा। बड़ा सोच कर रखा। राहुल का मतलब होता है : राहु, जिसके चक्कर में कभी चांद पड़ जाता है, तो ग्रहण लग जाता है। तो बुद्ध ने कहा है कि यह और बेटा हो गया आज. . .। भागने का मैं विचार किए बैठा था, पत्नी रोकने को काफी थी, पिता रोकने को काफी थे; राजमहल, धन-दौलत, साम्राज्य, सब रोकने को काफी था--और राहुल भी आ गए हैं! यह राहु भी आ गया! अब यह इस बेटे का मोह मुझे रोकेगा।

इसलिए नाम राहुल रखा। और इस डर से कि अब कहीं यह बेटा मुझे न रोक ले, उसी रात भाग गए। जब महल से निकले, रथ पर सवार हुए, तो कहते हैं : देवताओं ने रास्तों पर फूल बिछा दिए, कमल के फूल बिछा दिए, कि घोड़ों के पैरों की आवाज न हो, कहीं राजमहल जग न जाए! नहीं तो एक, यह जो महाक्रांति का क्षण आया है एक आदमी के जीवन में, यह रुक जाएगा, अवरुद्ध हो जाएगा। सदियों में कभी कोई बुद्ध होता है। जगत प्रतीक्षा करता है सदगुरु की। यह मौका चूक न जाए. . .।

दरवाजे ऐसे थे नगर के, कि खुलते थे तो उनकी मीलों तक आवाज होती थी। तो देवताओं ने दरवाजे ऐसे खोले कि जरा भी आवाज न हो। सारे पहरेदार गहन निद्रा में सुला दिए। ज्योतिषियों ने कहा था बुद्ध के पिता को कि जिस दिन इसका बेटा पैदा होगा, उस दिन सावधान रहना। बेटा जब पैदा हुआ तो पहरे बहुत बढ़ा दिए गए थे, सब तरफ फौजें लगा दी गई थीं, कि बेटे के भागने की संभावना थी। सारे पहरेदार देवताओं ने सुला दिए।

ये देवता इतनी फिकर क्यों कर रहे हैं? यह कहानी बड़ी मीठी है--प्रतीकात्मक है। यह इतना ही कह रही है कि सारा अस्तित्व आह्लादित होता है जब कोई व्यक्ति सत्य की तरफ उन्मुख होता है। सब तरफ से सहारा मिलता है। सब तरफ से सहयोग मिलता है। जब कोई असत्य की तरफ जाता है तो सारा जगत तुम्हारा दुश्मन हो जाता है। और जब कोई सत्य की तरफ जाता है तो सारा जगत तुम्हारा साथी हो जाता है। बस तुम जाओ भर।

फिर जब महल छोड़ कर दूर वन में निकल आए और अपने सारथी से कहा कि अब तू लौटा ले जा रथ को, मेरे इस प्यारे घोड़े को, मुझे क्षमा कर, मैं चला जंगल, मैं सत्य की खोज पर निकला हूं--उस बूढ़े सारथी ने आंखों में आंसू भरे हुए कहा : आप यह क्या कर रहे हैं? यह सुंदर महल, यह सुंदर पत्नी, ये सब सुख-भोग आप छोड़ कर जा रहे हैं। और इसी को पाने के लिए तो हर आदमी तड़प रहा है। हर आदमी ऐसे ही महल चाहता है, ऐसा ही धन, ऐसी सुंदर पत्नी, ऐसा सुंदर बेटा चाहता है। आप इसको छोड़ कर जा रहे हैं? आप होश में हैं?

बुद्ध ने कहा : मैं पीछे लौट कर देखता हूं, मुझे तो महल नहीं दिखाई पड़ता है--केवल लपटें दिखाई पड़ती हैं। मुझे कोई पत्नी नहीं दिखाई पड़ती, कोई बेटा नहीं दिखाई पड़ता। सब तरफ आग लगी है। और जितने जल्दी मैं खोज लूं कि जीवन का सत्य क्या है, उतना ही अच्छा। इसके पहले कि मैं जल जाऊं इस आग में, इसके पहले कि यह जीवन मौत में परिणत हो जाए--मैं खोज लेना चाहता हूं; मैं सब दांव पर लगा देना चाहता हूं। सब दांव पर लगा देना चाहता हूं। जो कुछ मेरे पास है, सब छोड़ने को तैयार हूं। लेकिन यह मैं जानना चाहता हूं कि जीवन का सत्य क्या है!

बुद्ध ने जिस परिपूर्णता से यह बात कही, कहते हैं वह जो बूढ़ा सारथी था, उसकी भी समझ में आई। बात तो सच थी। जीवन उसने भी देख लिया था। पाया तो कुछ भी न था। लेकिन अभी तक उसे ख्याल न आया था कि जीवन के पार भी कोई जीवन हो सकता है! कहते हैं, वह भी उतरा और बुद्ध के पीछे जंगल में प्रविष्ट हो गया।

मगर यहां तक बात रुक गई होती तो भी ठीक थी। इतिहास नहीं है यह--यह पुराण है। कहते हैं, घोड़ा जब यह सुन रहा था, बुद्ध जब समझा रहे थे सारथी को, तो घोड़े ने भी सुना। घोड़े को भी बड़ा प्रेम था। बचपन से बुद्ध को लेकर घुमाने निकलता था यह घोड़ा। यह बुद्ध का प्यारा घोड़ा था। उसकी आंख से आंसू टपके। और जब बुद्ध और सारथी भी जंगल में चले गए, तो कहते हैं घोड़ा भी जंगल में चला गया।

यह बात मुझे बड़ी प्यारी लगती है कि घोड़ा भी जंगल में चला गया! उसे भी बात दिखाई पड़ी कि जब बुद्ध के जीवन में कुछ नहीं, जब मनुष्य के जीवन में कुछ नहीं है, तो मुझ घोड़े के जीवन में क्या रखा है! उसकी जीवेषणा बुझ गई। वह भी खोज पर निकल गया। उसने कहा : अगर बुद्ध सब दांव पर लगाते हैं तो मैं भी सब दांव पर लगा दूंगा।

बाद में किसी ने बुद्ध से पूछा है कि उस घोड़े का क्या हुआ। बुद्ध ने कहा कि वह सत्य को खोजते मर गया--भविष्य में कभी बुद्ध होगा।

सब दांव पर घोड़े ने भी लगा दिया! भाव चाहिए। अब घोड़े के पास विचार तो नहीं है, लेकिन घोड़ा भी रोता है। घोड़े के भी आंसू गिरते हैं। घोड़े के पास बहुत बुद्धि तो नहीं है। लेकिन प्रेम था इस आदमी से--इस बुद्ध से! और यह जब जाने लगा तो इसको भी चौंक आई, चेत आया, होश आया।

प्रबल जीवेषणा जब तक है, तब तक तो तुम शिष्य न बन सकोगे, भक्त न बन सकोगे। लेकिन प्रबल जीवेषणा ही तुम्हें उस घड़ी ले आती है, जहां जीवेषणा गिर जाती है। जीवेषणा में दौड़-दौड़ कर एक दिन पता चलता है : इस जीवन में कुछ भी नहीं है। जिस दिन यह पता चलता है कि इस जीवन में कुछ भी नहीं, उसी दिन पलट; उसी दिन पलटू का जन्म; उसी दिन तुम लौटे। उस दिन तुम्हारी नई खोज शुरू होती है। फिर तुम धन नहीं खोजते, ध्यान खोजते हो; संसार नहीं खोजते, संन्यास खोजते हो; बंधन नहीं खोजते, मोक्ष खोजते हो; वासना नहीं खोजते, प्रार्थना खोजते हो। जब ऐसी खोज शुरू हो जाती है, तो ही समर्पण होता है; तो ही कोई सीस को उतार कर रखने को राजी होता है।

आखिरी प्रश्न : संत पलटूदास उसे गंवार कहते हैं जो जगत की झूठी माया में फंसा है और उसे बेकूफ, जो प्रेम की ओर कदम बढ़ाता है। फिर बुद्धिमान कौन है?

गंवार उसे कहा उन्होंने, जो अभी संसार में उलझा है; इसे होश नहीं यह क्या कर रहा है। इसे गंवार कहा--उनकी तरफ से जिन्हें होश आ गया है, जो जाग गए हैं, उनकी तरफ से इसे गंवार कहा कि तू जाग। और फिर, जो परमात्मा के प्रेम में संलग्न हो रहा है, उसको बेकूफ, बेवकूफ, पागल कहा। यह किसकी तरफ से कहा? यह उनकी तरफ से कहा, जो सोए हुए हैं।

ये सापेक्ष शब्द हैं। ये दोनों शब्द दो अलग ढंग से कहे गए, दो तरफ से कहे गए। पहला तो पलटू ने अपनी तरफ से कहा : अजहूं चेत गंवार! अब जाग! बहुत हो गया। फिर दूसरा तो व्यंग्य में कहा, मजाक में कहा, हास्य में कहा। दूसरा कहा कि देख, सोच-समझ कर जागना, क्योंकि यह पागलों का काम है। दुनिया तुझे पागल कहेगी। दुनिया हंसेगी। दुनिया कहेगी : दिमाग खराब हुआ इसका। तेरी पद-प्रतिष्ठा जाएगी। तेरा सत्कार-सम्मान जाएगा। वे ही लोग जो कल तक कहते थे तू बुद्धिमान है, वे ही कहेंगे बेवकूफ। वे ही जो कल कहते थे, सलाह मांगने आते थे, वे ही तुझे सलाह देने आने लगेंगे कि यह क्या कर रहे हो, तुम्हारा दिमाग ठीक है? कुछ होश में हो? किसकी बातों में पड़े हो? कहां उलझ गए? अरे, बस यह संसार ही है--वे ही कहेंगे--खाओ-पीओ, मौज करो; इससे ज्यादा कुछ भी नहीं है। यह कहां का परमात्मा, किसकी बातों में पड़ रहे हो! कब किसको दिखा, कब किसको मिला?

तो पलटू मजाक में कह रहे हैं दूसरी बात। वे कह रहे हैं कि अगर पागल बनने की तैयारी हो... । क्योंकि दुनिया पागल कहेगी। अब ख्याल रखना, संत तो बहुत कम हैं जो तुमको गंवार कहें; ना के बराबर हैं। ऐसा आदमी कभी-कभार तुम्हें मिलेगा जो तुम्हें गंवार कहे। और तुम अगर उसके पास न जाओ तो तुम्हें सुनने का कोई सवाल भी न उठेगा। लेकिन यह संसार तो चारों तरफ है, जो तुम्हें पागल कहेगा।

तो अगर तुम्हें यह चुनना हो कि संतों के द्वारा गंवार कहे जाना चुनना, कि संसार के द्वारा पागल कहे जाना चुनना--तो तुम सोचोगे कि संत कितने हैं? कभी कोई बुद्ध, कभी कोई महावीर, कभी कोई नानक कह देगा गंवार, मगर इनसे मिलना भी कहां होना है! क्या फिकर पड़ी है इनकी! इनको झुठलाया जा सकता है। हम इनके पास ही न जाएंगे; पर न मारेंगे वहां। सुनेंगे नहीं इनकी बात। और इक्के-दुक्के आदमियों की बात का भरोसा

भी क्या? दुनिया तो बहुमत में मानती है। यह भीड़, इससे कहां जाओगे? यह पागल कहेगी। यह जगह-जगह उंगली उठाएगी। यह जगह-जगह कांटे बिछाएगी। जहां जाओगे वहां कहेगी तुम्हारा दिमाग खराब हो गया। और यह भीड़ परायों की नहीं है; अपने वाले भी कहेंगे। खुद की पत्नी हंसेगी। खुद के बेटे-बच्चे हंसेंगे। खुद के प्रियजन-परिजन मजाक उड़ाने लगेंगे। यह भीड़ बड़ी है।

पलटू दोनों शब्दों का उपयोग कर रहे हैं। वे कह रहे हैं कि अगर आना हो इस तरफ, चेतना हो, अगर गंवारी छोड़नी हो तो पागल होना पड़ेगा, क्योंकि सारी दुनिया तुम्हें पागल कहेगी। मगर, अगर तुम्हें एक संत पुरुष भी मिल जाए कहने को कि अब तुम गंवार न रहे, तो कहने दो सारी दुनिया को पागल, कुछ हर्जा नहीं है। एक संत का वक्तव्य पर्याप्त है। इस सारी दुनिया के वक्तव्यों का कोई मूल्य नहीं है। एक बुद्ध तुम्हें आशीष देने को मिल जाए तो सारी दुनिया को देने दो गालियां, इनकी गालियां कुछ न कर पाएंगी। एक बुद्ध का आशीष पर्याप्त होगा। वह आशीर्वाद नाव बन जाएगी। वह तुम्हें उस पार ले जाएगी।

और संसार तो गालियां देता है। संसार की कुछ खूबियां हैं। वह गाली देता है--कुछ कारणों से। पहला तो, जब कोई व्यक्ति कुछ अनूठे ढंग के काम करने लगता है, कि प्रार्थना करने लगा कि पूजा करने लगा कि नाचने लगा, कि गीत गुनगुनाने लगा, कि नाम स्मरण करने लगा--तो संसार के लोगों को बेचैनी होती है। यह बेचैनी स्वाभाविक है। यह बेचैनी इस बात की है कि इस आदमी की मौजूदगी से उन्हें अपने पर शक होने लगता है कि हम कहीं गलत तो नहीं कर रहे, कहीं हम भूल तो नहीं कर रहे! और यह बात खटकती है कि कोई आदमी हमें दिखा रहा है कि हम भूल कर रहे हैं। वे झपटते हैं--प्रतिरोध में, प्रतिशोध में, प्रतिक्रिया में। वे सिद्ध करना चाहते हैं कि तुम गलत हो। जरूर उन्हीं की भीड़ है। वे चारों तरफ से टूट पड़ते हैं इस आदमी पर कि तुम गलत हो।

मेरे एक मित्र, मेरे एक संन्यासी ने पटना से लिखा। संन्यास लेकर गए, बड़े आनंद-मग्न थे। जब मुझसे विदा लेने आए थे, तब भी मैंने उनसे कहा था कि थोड़ा सम्हालना इस आनंद-मग्नता को; इसको ज्यादा छलकने मत देना, क्योंकि लोग समझ न पाएंगे। लोग समझेंगे पागल हो गए।

पर वे बोले : रोक भी कैसे सकता हूं? यह छलक रही है। और जरूर वे मस्त थे, गहरी मस्ती में थे। और दस दिन बाद ही उनका पत्र आया कि आपने ठीक ही कहा था। मैं बड़ी झंझट में पड़ गया हूं। अस्पताल में भरती हूं। घर के लोग समझते हैं, मेरा दिमाग खराब हो गया है। क्योंकि घर के लोग कहते हैं कि बिना कारण तुम प्रसन्न क्यों हो? कभी तो नहीं थे पहले! तुम बिना कारण हंसते क्यों हो? अकेले बैठे-बैठे तुम हंसते क्यों हो? बीच रात में उठ कर क्यों बैठ जाते हो? आंख बंद करके क्या करते हो?

पत्नी-बच्चे, परिवार, सब ने मिल कर--उन्होंने लिखा कि--मुझे अस्पताल में भरती कर दिया। और यहां मैं हंसता हूं या भजन गाता हूं तो डॉक्टर कहता है कि भाई यह तुम बंद करो; नहीं तो इलेक्ट्रिक शॉक देने पड़ेंगे, दवाई से अगर नहीं माने। तो मुझे और हंसी आती है कि यह भी खूब हो रहा है। मैं जिंदगी भर दुखी रहा, कोई इलेक्ट्रिक शॉक देने न आया। मैं जिंदगी भर परेशान था, बेचैन था, चिंता में था--और किसी ने मुझे पागल न समझा, यह भी खूब हुई! जिंदगी में पहली दफा आनंद की थोड़ी सी गंध मिली--और मैं पागल हो गया! और मेरी पत्नी भी नहीं समझती; उसको मैं समझाता हूं, वह कहती है : तुम चुप रहो, तुम बिलकुल बोलो ही मत! तुम होश में नहीं हो। मैंने अपने बेटे को बुला कर कहा कि शायद तू पढ़ा-लिखा है, तू कुछ समझ जाए. . .। उसने कहा कि आप शांत ही रहिए; डॉक्टर ने बोलने की मनाही की है। आप बकवास करो ही मत। आप ज्ञान की बातें मत बघारो। आपका दिमाग खराब हो गया है।

अब इस आदमी से कोई भी नहीं पूछता कि यह आदमी को भीतर क्या हो रहा है! इसको तो लोग बोलने ही नहीं देते। और उनका लिखना भी ठीक है; वे कहते हैं, इससे मुझे और हंसी आ रही है। इससे मैं और यह जगत का खेल देख कर प्रसन्न हो रहा हूं। मगर मेरी प्रसन्नता उन्हें दिक्कत में डाले दे रही है।

पूछा है कि अब मुझे अस्पताल से बाहर निकलने मिलेगा कि नहीं? उनके घर के लोगों को लिखवाया। किसी तरह वे छूटे, आकर मिल कर गए। उनको बहुत समझा कर भेजा है कि अब प्रसन्नता अपनी भीतर सम्हालना। यह गगरी भर गई है, इसको छलकने मत देना। और यह जो हीरा भी मिल गया है, इसको गांठ बांध लो; इसको बार-बार खोल कर देखना मत। क्योंकि लोग जब तुम्हें देखेंगे कि तुम अपनी गांठ खोल कर बार-बार देखते हो, उनको तो हीरा दिखाई नहीं पड़ेगा, उनके पास तो आंखें नहीं हैं; वे कहेंगे : देखते क्या हो बार-बार खोल कर? है तो कुछ भी नहीं। हीरा तुम्हें दिखाई पड़ेगा, तो तुमको हंसी आएगी कि इन अंधों को, किसी को दिखाई नहीं पड़ता। और उनको दिखाई नहीं पड़ेगा; वे भी क्या करें, उनकी भी मजबूरी है।

इसलिए कहा पागल।

इसलिए पलटू सावधान कर रहे हैं। वे यह कह रहे हैं कि इस रास्ते पर आना हो, गंवारी से मुक्त होना हो, तो पागल होने की तैयारी रखना। क्योंकि जो पागल हैं, वे ही इस सूली पर चढ़ने जाते हैं।

यह जो सूली लगती है--सारी दुनिया को दिखाई पड़ने में--यह सिंहासन है। लेकिन सिंहासन तो उसको दिखाई पड़ेगा जो इस पर विराजमान हो जाता है; या उन थोड़े से लोगों को दिखाई पड़ेगा जो विराजमान हो गए हैं। उनकी संख्या अंगुलियों पर गिनी जा सकती है। मगर शेष, भीड़, बहुमत तो विक्षिप्त समझेगा, पागल समझेगा।

पश्चिम के पागलखानों में ऐसे बहुत से लोग बंद हैं, जो पागल नहीं हैं; जो पूरब में होते तो हम उन्हें परमहंस कहते।

पश्चिम में एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक है : आरडी.लैंग। उसने एक बड़ी क्रांति पैदा कर रखी है। उसने इन पागलों के लिए बड़े जोर से आंदोलन चलाया है कि ये पागल नहीं हैं; ये मस्त लोग हैं--जिनको सूफी मस्त कहते हैं, हिंदू परमहंस कहते हैं। ये मस्त हैं, इनको तुम पागलखानों में डाले हुए हो और इनको सता रहे हो और इनके हाथों में जंजीरें पहना दी हैं! और इनका कोई कसूर नहीं है; इनका सिर्फ कसूर इतना है कि ये प्रसन्न हैं, आनंदित हैं।

यह दुनिया इतनी दुखी है कि यहां आनंदित होना अपराध है। यह दुनिया इतनी... इतनी गंवार है कि यहां बुद्धिमान होना गंवारों की आंखों में पागल सिद्ध हो जाना है।

आज इतना ही।

नौवां प्रवचन

भक्ति--आंसुओं से उठी एक पुकार

सोई सती सराहिये, जरै पिया के साथ।।
जरै पिया के साथ, सोई है नारि सयानी।
रहै चरन चित लाय, एक से और न जानी।।
जगत करै उपहास, पिया का संग न छोड़ै।
प्रेम की सेज बिछाय, मेहर की चादर ओढ़ै।
ऐसी रहनी रहै, तजै जो भोग-विलासा।
मारै भूख-पियास याद संग चलती स्वासा।।
रैन-दिवस बेहोस, पिया के रंग में राती।
तन की सुधि है नाहिं, पिया संग बोलत जाती।।
पलटू गुरु परसाद से किया पिया को हाथ।
सोई सती सराहिए, जरै पिया के साथ।। 13।।

तुझे पराई क्या परी, अपनी आप निबेर।।
अपनी आप निबेर, छोड़ि गुड़ विस को खावै।
कूवां में तू परै, और को राह बतावै।।
औरन को उजियार, मसालची जाय अंधेरे।
त्यों ज्ञानी की बात, मया से रहते घेरे।।
बेचत फिरै कपूर, आप तो खारी खावै।
घर में लागी आग, दौड़ के घूर बुतावै।
पलटू यह सांची कहै, अपने मन का फेर।
तुझे पराई क्या परी, अपनी आप निबेर।। 14।।

पलटू नीच से ऊंच भा, नीच कहै ना कोय।।
नीच कहै ना कोय, गये जब से सरनाई।
नारा बहिके मिल्यो गंग में गंग कहाई।।
पारस के परसंग, लोह से कनक कहावै।
आगि मंहै जो परै, जरै आगइ होइ जावै।।
राम का घर है बड़ा, सकल ऐगुन छिप जाई।
जैसे तिल को तेल, फूल संग बास बसाई।।
भजन केर परताप तें, तन-मन निर्मल होय।
पलटू नीच से ऊंच भा, नीच कहै न कोय।। 15।।

गंधराज यहां कहां?
खुश्बू भर छाई है
हवा की लहरियों के संग तैर आई है।
फलों के संपुट में सधी नहीं
सीमा के घेरे में बंधी नहीं
दूर-दूर फैला अवकाश नाप लाई है
गंधराज यहां कहां? खुश्बू भर छाई है।

इस जगत में जो सौंदर्य है, वह असली सौंदर्य नहीं है--असली सौंदर्य की झलक मात्र है।

इस जगत में जो प्रेम है, वह असली प्रेम नहीं है--प्रेम का प्रतिबिंब मात्र।

इस जगत में जो उत्सव चल रहा है, वह असली उत्सव नहीं है--उत्सव की प्रतिध्वनि मात्र।

गंधराज यहां कहां?
खुश्बू भर छाई है
हवा की लहरियों के संग तैर आई है।

वह जो राजा है गंधों का, वह बहुत दूर है; लेकिन उस गंधराज की खुश्बू हवाओं के साथ तैरती यहां तक भी आ गई है। पदार्थ में भी परमात्मा का प्रतिबिंब पड़ रहा है। संसार में भी उसकी थोड़ी सी सुवास है। इस सुवास का सूत्र पकड़ कर उस परम प्यारे की तरफ बढ़ने का नाम ही भक्ति है।

संसार में प्रेम का पाठ जिसने पढ़ा उसने संसार का उपयोग कर लिया। यह पाठशाला है--प्राथमिक पाठशाला, जहां जीवन की परम संपदा का क ख ग सीखा जाता है। प्रिय से हो प्रेम, प्रेयसी से हो, मित्र से हो, बेटे से हो, पिता से हो, मां से हो, भाई से हो, बहन से हो--ये सब पाठ हैं। बड़ी दूर की खबर है। इन पाठों को जो ठीक से सीख लेता है, उसके जीवन में परमात्मा का प्रेम पैदा होता है। और जब तक वह प्रेम पैदा न हो जाए तब तक आदमी प्यासा ही रहता है। यह प्रेम, इस संसार के प्रेम, प्यास को और भड़काते हैं, जगाते हैं; बुझाते नहीं। इससे और अग्नि की लपटें प्रकट होती हैं। इससे भूख और स्पष्ट होती है। इससे क्षुधा गहरी होती है। इससे असंतोष और जगता है। इसलिए तो यहां का जितना पानी पीओगे, उतनी प्यास बढ़ती चली जाती है।

जीसस के जीवन में उल्लेख है। एक यात्रा पर आए हैं। एक गांव के बाहर रुके हैं। पानी भरती एक पनिहारिन से पानी पिलाने को कहा है। पनिहारिन ने जीसस को देखा। उसने कहा : मैं नीच कुल की हूं, शायद आपको पता नहीं। मेरे हाथ का पानी आप पीएंगे?

जीसस हंसे और जीसस ने कहा : तू फिकर मत कर। तू मुझे पानी पिला। तेरा पानी तो मेरी प्यास को थोड़ी बहुत देर को बुझाएगा। यह तो बहाना है तुझसे संबंध बनाने का। अगर तूने मुझे पानी पिलाया तो मैं तुझे ऐसा पानी पिलाऊंगा कि वह सदा के लिए प्यास को बुझा देता है। मैं तेरे कुएं पर आया हूं, ताकि तू मेरे कुएं पर आ जाए। तेरे पनघट पर आना मेरा प्रयोजन से हुआ है, ताकि मैं तुझे अपने पनघट पर बुला लूं।

उस स्त्री ने जीसस की आंखों में देखा। वहां परम तृप्ति थी। वहां अपूर्व आलोक था। जीसस की हवा में प्रसाद था। वह भागी गांव गई। उसने अपने गांव के लोगों को कहा कि तुम सब आ जाओ, पहली दफा किसी आदमी में मुझे ऐसा दिखाई पड़ा है कि परमात्मा झलक रहा है। पहली दफा किसी आदमी की मौजूदगी से मुझे परमात्मा का प्रमाण मिला है। और उसने एक शब्द भी नहीं कहा परमात्मा का। उसने इतना ही कहा है कि जो मेरे कुएं से पीएगा, उसकी प्यास सदा के लिए बुझ जाती है।

परमात्मा को पीए बिना प्यास सदा के लिए बुझती नहीं। संसार को तो पीओ, और पीओ और पीओ, जन्मों-जन्मों तक पीओ, क्षण भर को बुझती लगती है प्यास, बुझती नहीं फिर लग जाती है। एक प्यास दूसरी प्यास में ले जाती है; एक वासना दूसरी वासना में। एक इच्छा दूसरी इच्छा को जन्माती है। परमात्मा को पी कर सब प्यास बुझ जाती है।

परमात्मा यानी परम तृप्ति।

परमात्मा यानी आत्यंतिक परितोष। फिर उसके पार कुछ पाने को नहीं है। इसलिए उसको कहते हैं : परम प्यारा। और भक्ति तो उस परम प्यारे की तलाश है।

आज के सूत्र भक्ति की और गहराइयों में ले चलते हैं।

"सोई सती सराहिये, जरै पिया के साथ।"

"सोई सती सराहिये. . .।"

उस प्रेयसी की ही प्रशंसा करो, जो अपने प्यारे के साथ जलने को तैयार है; जल जाए।

सती की धारणा बड़ी अपूर्व है। सिर्फ इस देश में पैदा हुई। जब सती की धारणा अपने शुद्धतम रूप में थी, तो अपार्थिव थी; जैसे उस परम जगत की कोई बात हम इस जगत में उतार लाए थे! जो यहां नहीं घटती है, जो इस क्षणभंगुर में नहीं घटती है, वह हमने सती के माध्यम से यहां घटा कर बताया था। फिर जब विकृत हो गई तो, बड़ी विकृत हो गई। ब्रिटिश राज्य ने सती की जिस प्रथा को बंद किया; वह तो विकृत दशा थी; वह असली सती की धारणा बची ही न थी। सती की धारणा अति-मानवीय है। और जिस सती की प्रथा को अंग्रेजों ने बंद किया, वह अमानवीय हो गई थी।

मनुष्य कुछ ऐसा है कि श्रेष्ठतम भी इसके हाथ में पड़ता है तो देर-अबेर गंदा हो जाता है। शुद्धतम भी इसके हाथ में दो, जल्दी ही धूलभरा हो जाता है। आदमी कुछ ऐसा है कि सोना भी छूता है तो मिट्टी हो जाती है। इसलिए श्रेष्ठतम धारणाएं भी आदमी के हाथ में पड़ कर जंजीरों में ढल जाती हैं, विकृत हो जाती हैं। पुण्य भी पाप हो जाते हैं। नीति अनीति हो जाती है। धर्म अधर्म हो जाता है। आदमी की गंदगी ऐसी है।

सती की धारणा बड़ी अपूर्व धारणा है। सती का अर्थ है : एक को चाहा तो फिर उस चाहत को कहीं और न जाने दिया। फिर उस चाहत को एक में ही पूरा डुबा दिया। एक को चाहा तो अनेक को भुला दिया। और अगर अनेक भूल जाएं, तो फिर एक में ही परमात्मा का दर्शन शुरू हो जाता है। क्योंकि एक यानी परमात्मा।

इसे समझना।

एक यानी परमात्मा; अनेक यानी संसार। जब तक तुम्हारा प्रेम अनेक पर भटकता है--एक से दूसरे, दूसरे से तीसरे, तीसरे से चौथे; जब तक तुम्हारा प्रेम ऐसा भटकता है, भिखारी है, भिखमंगा है; जब तक तुम्हारा प्रेम अकंप होकर एक जगह नहीं बैठ गया है; जब तक तुम्हारे प्रेम ने समाधि नहीं साध ली है, किसी एक में ही डुबकी नहीं लगा ली है--तब तक संसार। और अगर प्रेम एक में ही डुबकी लगा ले, तो उसी एक से परमात्मा का द्वार खुल जाएगा। सांसारिक प्रेम में बड़ा छिपा है राज। काश, तुम एक को पूरी तरह प्रेम कर पाओ, तो सांसारिक प्रेम भी असांसारिक प्रेम में रूपांतरित हो जाता है!

सांसारिक और असांसारिक प्रेम में फर्क ही क्या है? अनेक का प्रेम : संसार। एक का प्रेम : असंसार। तो अगर तुम संसार में भी एक को प्रेम कर पाओ, और एक पर ही सब भांति निछावर हो जाओ--इस भांति निछावर हो जाओ कि उसी में तुम्हारा जीवन और उसी में तुम्हारी मृत्यु! अगर तुम्हारा प्यारा मर जाए तो तुम भी मर गए। उससे अलग तुमने जीवन न सोचा था, न जाना था; न उससे अलग जीवन की तुम कल्पना कर सकते हो। उसके बिना श्वास चलेगी ही नहीं। उसके कारण ही चलती थी। उसके संग-साथ चलती थी। उसके भीतर प्राण धड़कते थे तो तुम्हारे प्राण धड़कते थे। तुमने अपने दोनों के प्राण साझीदार बना लिए थे; एक में डूबा दिए थे। दो सिर्फ देहें रह गई थीं; प्राण एक हो गए थे। तो फिर एक मर जाए तो दूसरे को जीने का कोई अर्थ नहीं बचता।

यह तो अति-मानवीय धारणा थी। पुरुष इस ऊंचाई पर नहीं उठ सका। पुरुष ध्यान की तो ऊंचाइयों पर उठा, लेकिन प्रेम की ऊंचाइयों पर नहीं उठ सका। इसलिए स्त्रियां ही सती हुईं। भक्ति स्त्री के लिए सुगम है। भाव की बात है। हृदय की बात है।

बुद्ध हुए, महावीर हुए, पतंजलि हुए--ये सब ध्यानी हैं। लेकिन पुरुषों में एक भी अपनी प्रेयसी पर नहीं मरा--इतना डूबा नहीं एक में! पुरुष का चित्त चंचल होकर दौड़ता ही रहा। अनेक स्त्रियां एक पुरुष में डूब गईं; सती की ऊंचाई पर उपलब्ध हुईं।

पुरुषों में जो संत की दशा है, वही स्त्रियों में सती की दशा है। और दोनों शब्द बने हैं सत से। इसे स्मरण रखना। सती क्यों कहा? जो शब्द संत को बनाता है सत्, वही शब्द सती को बनाता है। सती यानी संत--प्रेम का संतत्व। एक में डूब गई। इस तरह डूब गई कि अपने जीवन का अलग होने का कोई प्रयोजन ही न बचा; अलग होने की कोई धारणा ही न बची, कोई विचार ही न बचा। तो जब प्रेमी गया तो प्रेमी के साथ चिता पर चढ़ गई। इसमें न तो आत्मघात है। इसमें न अपने साथ जबरदस्ती है। यहां तो प्रश्न ही नहीं बचा। दोनों एक ही हो गए थे। इसलिए न तो यह आत्मघात है और न यह स्त्री अपने शरीर की दुश्मन है। और न यह कोई हिंसा कर रही है। यह तो प्रेम की परम प्रतिष्ठा हो रही है।

यह तो जब सती की धारणा आकाश छू रही थी, तब की बात। फिर धीरे-धीरे यह विकृत हुई। फिर पुरुष के अहंकार ने इसको विकृत कियाः स्त्री के अहंकार ने इसको विकृत किया। फिर ऐसी स्त्रियां भी सती होने लगीं, जिनको पति से कुछ मतलब न था; लेकिन प्रतिष्ठा के लिए होने लगीं। अगर सती न हों तो लोग समझते हैं : पतिव्रता नहीं हो। मजबूरी से होने लगीं। कर्तव्य भाव से होने लगीं। जो प्रेम से घटती थी महान घटना, वह जब कर्तव्य हो गई तो फिर महान नहीं रही, क्षुद्र हो गई, साधारण हो गई। सोच-विचार कर मरने लगीं। लोग क्या कहेंगे, लोक-लाज से मरने लगीं।

और लोग भी ऐसे मूढ़ थे कि उन्होंने इसको नियम भी बना लिया। अगर कोई पति मरे, उसकी पत्नी उसके साथ न मरे, तो लोग कहने लगे : अरे, यह भ्रष्ट है। यह सती नहीं है। तो इतना अपमान और अनादर होने लगा कि उससे यही बेहतर था कि मर ही जाओ। इतना अनादर, इतना अपमान सहने से यही बेहतर था मर जाओ। लेकिन यह मर जाना दुखपूर्ण था; यह आत्मघात था। फिर हालत और भी बिगड़ी। फिर तो हालत यहां तक बिगड़ी कि जो स्त्रियां न मरें. . . क्योंकि कुछ स्त्रियां ऐसी भी थीं. . . और स्वाभाविक, क्योंकि जीवेषणा बड़ी प्रबल है, हजार में कोई एकाध सती हो सकती है। जब तुम नौ सौ निन्यानवे को भी उसके साथ डालने लगोगे तो झंझट आएगी। शायद नौ इसलिए सती हो जाएं कि लोक-लज्जा से मर जाना बेहतर है। लोक-लाज खोने से मरना बेहतर है। प्रतिष्ठा से मर जाना बेहतर है अप्रतिष्ठा से जीने की बजाय। तो शायद हजार में नौ इसलिए मर जाएं। मगर, वे जो नौ सौ नब्बे बचती हैं, उनके लिए क्या उपाय है? उनमें से नौ सौ नब्बे ने तो यही तय किया कि चाहे अप्रतिष्ठा से जीना हो, मगर जीएंगे। जीना इतना महत्त्वपूर्ण है! इसमें कुछ उन्होंने बुरा किया, ऐसा मैं कह भी नहीं रहा हूं। इसमें निंदा की कोई बात ही नहीं थी; यह बिलकुल स्वाभाविक है। जिन्होंने सती होना चुना--एक ने हजार में--उसने तो बड़ा अतिमानवीय कृत्य किया; उसने तो प्रार्थना का अपूर्व कृत्य किया। उसका तो जितना सम्मान हो, थोड़ा है।

"सोई सती सराहिए, जरै पिया के साथ।"

लेकिन जिन नौ ने प्रतिष्ठा खोने की बजाय मर जाना ठीक समझा, यह तो अहंकार की पूजा है; इसमें कुछ प्रेम की पूजा नहीं है; इनकी कोई सराहना नहीं हो सकती। सराहना की कोई जरूरत नहीं है। ये क्षुद्र अहंकार की बलिवेदी पर मिट गईं। और जिन नौ सौ ने तय किया न मरने का, यह उनका हक है। जो न मरना चाहे, उसे कोई जबरदस्ती मारे, तो यह हिंसा है। उनका कोई अपमान करने की जरूरत नहीं है। वे सामान्य जन हैं। लेकिन समाज ने उनको जबरदस्ती मारना शुरू कर दिया। फिर तो ऐसा इंतजाम हो गया कि जबरदस्ती स्त्रियों को ले जाने लगे मरघट, घसीट कर ले जाने लगे; स्त्रियां भाग रही हैं और उनको घसीट कर ले जाया जा रहा है। स्त्रियों को जबरदस्ती चिता पर फेंका जा रहा है। फिर इतना घी और इतना तेल उनके ऊपर फेंका जाता था, ताकि

आग जल्दी पकड़ जाए, वे जल्दी मर जाएं। फिर चारों तरफ पंडित-पुरोहित डंडे लेकर खड़े रहते थे कि अगर कोई स्त्री भागने लगे. . . क्योंकि मरना, जलना आग में जीते जी कोई साधारण तो बात नहीं। उन पंडितों में से भी कोई नहीं जलता था कभी। पुरुषों ने यह झंझट कभी ली नहीं थी। तो चारों तरफ मशालें लिए खड़े रहते लोग। जैसे कोई स्त्री उसमें से भागने लगती. . . आग में से कौन न भागना चाहेगा! जरा सा हाथ जल जाता है तो तुम्हें पीड़ा का पता है; जीते जी किसी को फेंकोगे तो वह भागेगी। तो डंडों से उसे वापस, मशालों से उसे वापस आग में गिरा देना. . .। और इतना धुआं करते थे घी फेंक कर कि किसी को यह दिखाई न पड़े कृत्य। यह सीधी हत्या थी--और बड़ी नृशंस हत्या!

अंग्रेजों ने इस व्यवस्था को बंद किया, ठीक किया, बंद किया। यह बात ही खो गई थी। असली बात तो खो ही गई थी। यह तो अमानुषिक अत्याचार चल रहा था।

मगर सती की धारणा तो बड़ी अदभुत है। कभी हजार में कोई एक!

पलटू कहते हैं : जैसे सती होती है, ऐसे ही भक्त भी होता है। भक्त का अपना कोई जीवन नहीं होता; परमात्मा का जीवन ही उसका जीवन होता है। उसकी श्वास, भक्त की श्वास। परमात्मा के साथ ही जीने में उसे रस होता है। परमात्मा से अलग होकर जीने में उसे रस नहीं होता। परमात्मा के साथ रह कर नरक भी मिले तो भक्त राजी होगा और परमात्मा के बिना बैकुंठ मिले तो वह लात मार देगा।

"सोई सती सराहिए, जरै पिया के साथ।।

जरै पिया के साथ, सोई है नारि सयानी।

रहै चरन चित लाय, एक से और न जानी।।"

जरै पिया के साथ, सोई है नारि सयानी।

वही स्त्री बुद्धिमान है, जो प्रेमी के प्रेम में जल जाए; जो प्रेम में मिट जाए; जो प्रेम में मर जाए; प्रेम जिसके लिए समाधि बन जाए। भक्त तो कहते हैं कि सभी हम नारी हैं, परमात्मा को अगर ध्यान में रखें। परमात्मा ही एकमात्र पुरुष है; शेष तो सब नारियां हैं।

नारी का अर्थ होता है, जिनके भीतर, परमात्मा के बिना रहने की सामर्थ्य नहीं है। वृक्ष पर बेल चढ़ती है। बेल वृक्ष के बिना नहीं रह सकती। वृक्ष बेल के बिना रह सकता है। इसलिए बेल नारी है। वृक्ष पुरुष है। हम परमात्मा के बिना नहीं रह सकते; परमात्मा हमारे बिना रह सकता है। इसलिए परमात्मा पुरुष है और सारा जगत नारी है।

वह जो कृष्ण का रास तुमने देखा हो या सुना हो, वह जो रास में नाचती हुई हजारों-हजारों सखियां और कृष्ण का बीच में बांसुरी बजाना, वह सारे जगत का चित्र है; वह ब्रह्मांड का चित्र है। कृष्ण यानी पुरुष; एक; परमात्मा। और वे सारी सखियां यानी सारा संसार।

मनुष्य अपने आप में पूरा नहीं है--स्त्रैण। परमात्मा अपने आप में पूरा है--पुरुष। मनुष्य निर्भर है, इसलिए स्त्रैण। मनुष्य को सहारा चाहिए--इसलिए स्त्रैण। पलटू कहते हैं : वही मनुष्य सयाना है, होशियार है, बुद्धिमान है, जो प्राण-प्यारे के साथ जलने को तैयार है। जिनको हम बुद्धिमान कहते हैं, उनको तो पलटू गंवार कहते हैं। हम बुद्धिमान उनको कहते हैं, जो परमात्मा को छोड़ कर संसार को पकड़ने में लगे हैं। पलटू उसे बुद्धिमान कहते हैं, जो सब छोड़ कर परमात्मा को पाने में लगता है; अपने को भी छोड़ कर जो परमात्मा को पाने में लगता है; अपने को भी मिटा कर परमात्मा को खरीदने चलता है।

"जरै पिया के साथ, सोई है नारि सयानी।"

"सोई सती सराहिए. . .।"

उसकी ही सराहना करो। उस भक्त की ही प्रशंसा के गीत गाओ।

अब तो प्रेम की वैसी अपूर्व धारणा न रही। और उस प्रेम की अपूर्व धारणा के खो जाने के कारण, प्रार्थना भी खो गई, भक्ति भी खो गई।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मुझसे एक दिन कह रही थी : सच पूछो तो बच्चों ने हमारा तलाक होते-होते रुकवा दिया।

मैंने पूछा : वह कैसे?

तो मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने कहा : तलाक के बाद बच्चों को पास रखने के लिए न मैं तैयार थी और न मुल्ला।

ऐसे ही संबंध रह गए हैं। औपचारिक हैं। व्यवस्थागत हैं। आर्थिक हैं, सामाजिक हैं। सुरक्षा के लिए हैं, सुविधा के लिए हैं। लेकिन आंतरिक ज्योति खो गई है। हार्दिक नहीं हैं। आर्थिक हैं, सामाजिक हैं, राजनैतिक हैं, लेकिन धार्मिक नहीं हैं। और जब इस जगत के सारे संबंध ही अधार्मिक हो जाते हैं तो उस परम संबंध की तरफ आंखें उठनी मुश्किल हो जाती हैं क्योंकि इन्हीं सीढ़ियों से तो चढ़ कर हम उसके मंदिर तक पहुंचते हैं।

जिन दिनों सती की परम धारणा जगत में थी, उन दिनों बहुत स्त्रियों ने परमात्मा को पाने का मौका पाया। यह आकस्मिक नहीं था कि मीरा हो सकी, कि राबिया हो सकी। आज मीरा और राबिया का होना कठिन है। इस बात की असंभावना है कि पश्चिम में मीरा हो सके; और आज नहीं कल पूरब में भी नहीं हो सकेगी। क्योंकि वह बात ही खो गई कि एक पर सब समर्पित कर दो। समर्पण का वह भाव ही खो गया। काम-चलाऊ संबंध हैं अब। जिससे बनती है दो दिन, ठीक। जब तक बनती है, तब तक ठीक। जब तक अपने हित में है, तब तक ठीक। जितना शोषण तुम कर सको दूसरे का, कर लो; और इस बीच जितना शोषण वह कर सके तुम्हारा, कर ले। सारे संबंध शोषण के हैं।

पत्नी पति के साथ बंधी रहती है, क्योंकि अब कहां छोड़े! इस उम्र में कौन दूसरा पति मिलेगा! बच्चे हैं, इनकी व्यवस्था क्या होगी! फिर धन कहां कमाएगी! जिंदगी भर बिना कमाने के रहने की आदत पड़ गई। अब बड़ी मुश्किल हो गई है। किसी तरह बने रहो, बनाए रहो। पति है, वह भी नहीं छोड़ता; सोचता है : अब कहां जाऊं, कहां खोजूं! फिर से सब शुरू करूं--अ, ब, स से। जिंदगी तो हाथ से बीत गई है। फिर बच्चे भी हैं। फिर समाज की प्रतिष्ठा की भी बात है। फिर लोग क्या कहेंगे! रुके रहो। मगर यह रुकना प्रेम का रुकना न रहा। यह विवाह तलाक से बहुत भिन्न नहीं है।

आज तो सौ में से निन्यानवे विवाह तलाक से बहुत भिन्न नहीं हैं। सिर्फ कानूनी हैं। जो संबंध है, वह कानून का है, कि कौन अदालत में जाए, अब कौन झंझट खड़ी करे, एक-दूसरे पर मुकदमा चलाए! ठीक है, खींचते रहो, किसी तरह सुविधा बनी है, बनाए रहो; चलाए जाओ, चार दिन की जिंदगी है, बीत ही जाएगी आज नहीं कल। इतने दिन बीत गए; और थोड़े बचे, वे भी बीत जाएंगे, लेकिन कोई पुलक नहीं साथ का। कोई आनंद नहीं। कोई रस नहीं बह रहा है।

जब सामान्य जीवन में ऐसा हो जाए, तो फिर हमारी आंखें उस असामान्य की तरफ कैसे उठें? इसलिए भक्ति खो गई है। लोग कहते हैं कि कलियुग में भक्ति ही एकमात्र मार्ग है; लेकिन मुझे जरा संदेह मालूम पड़ता है। जब प्रेम ही नहीं बचा तो भक्ति कैसे बच सकती है? जब प्रेम में ही अनन्य भाव नहीं रहा है कि एक से ही डुबकी लगा लेनी है, कि एक से ही पूरे-पूरे बंध जाना है, जनम-जनम के लिए; जब प्रेम में ही यह बात नहीं रही--तो तुम कहां से सीखोगे भक्ति का पाठ। यह तो प्रेम का ही गणित जब बहुत फैल जाता है तो भक्ति बनता है। यह तो प्रेम का ही आंगन फैलते-फैलते भक्ति का आकाश बनता है। आंगन ही न बचा तो आकाश तक तुम जाओगे कैसे?

इसलिए मुझे लगता नहीं, लोग भला कहते हों कि कलियुग में भक्ति ही एकमात्र उपाय है। दिखता नहीं। भक्ति के लिए भी उतना ही सतयुग चाहिए, जितना ज्ञान के लिए। असल में भक्ति और ज्ञान अलग-अलग युग

की बात नहीं है। जब परमात्मा की तरफ आदमी की आंख उठती है तो दोनों तरफ से उठ जाती है--या तो ध्यान से या प्रेम से।

किसको पाती लिखूं और किस परदेसी का पंथ निहारूं?

कैसे मन बहलाऊं? मेरी बगिया सूनी, आंगन सूना

मेरे साथी केवल दो हैं : प्यासी धरती, गगन उदासा

राह निहारें व्याकुल आंखें; मन भी प्यासा, तन भी प्यासा

लेकिन मेरा प्राण-पपीहा कैसे अपने पी को टेरे?

आशाओं के बादल बीते, सपनों का सावन सूना

चारों ओर पड़े हैं लाखों मिट्टी के बेजान खिलौने,

सारी रात बुलाते मुझको कितने ही बेशर्म बिछौने,

अक्सर माथे की बिंदिया रो-रो कर मुझको यूं कहती है--

किस पर मान करूं सखी, मेरे बिछुवे सूने कंगन सूना

है पूनम की रात मगर मैं कैसे पग में पायल बांधूं

किसकी मुरली की धुन सुन लूं, किस कान्हा पर तन-मन वारूं

यमुना के तट पर चिर-परिचित बंसी-वट भी मौन खड़ा है

कैसे रास रचाऊं, मेरी सांसों का वृंदावन सूना!

किसको पाती लिखूं और किस परदेसी का पंथ निहारूं?

कैसे मन बहलाऊं? मेरी बगिया सूनी, मेरा आंगन सूना

पुरवाई तन को झुलसाये, खिलता चांद देख अलसाऊं

लहरों का गीत सताये, हंसते फूल देख मुरझाऊं,

एकाकीपन से घबरा कर दोनों नयन मूंद लूं, लेकिन

किसका रूप निहारूं? मेरे अंतरतम का दर्पन सूना

किस पर मान करूं सखी, मेरे बिछुवे सूने, कंगन सूना

है पूनम की रात, मगर मैं कैसे पग में पायल बांधूं?

किसकी मुरली की धुन सुन लूं, किस कान्हा पर तन-मन वारूं?

यमुना के तट पर चिर-परिचित बंसी-वट भी मौन खड़ा है

कैसे रास रचाऊं, मेरी सांसों का वृंदावन सूना

किसका रूप निहारूं, मेरे अंतरतम का दर्पन सूना!

नहीं, अगर प्रेम खो जाए तो भक्ति भी बच न सकेगी। प्रेम बचे तो ही भक्ति की संभावना बचती है; क्योंकि प्रेम के ही पाठ भक्ति के शास्त्र की तरफ इंगित करते हैं। जब कोई व्यक्ति किसी एक व्यक्ति को अपूर्व भाव से प्रेम करता है, अनन्य भाव से प्रेम करता है--ऐसा प्रेम करता है कि अपना जीवन निछावर कर देने को तैयार है। तभी पहली दफा जीवन में एक घटना घटती है, अहंकार विसर्जित हो जाता है। जब मैं मिटने को तैयार हो जाता हूं किसी के प्रेम में तो फिर मेरा अहंकार बचता ही नहीं। अहंकार ही कहता है कि मिटो मत, अपने को वारो मत; दूसरे को चूस लो जितना चूसना हो अपने लाभ के लिए--लेकिन अपने को बचा कर।

प्रेम अहंकार की मृत्यु है। प्रेम की तलवार गिरती है अहंकार पर तो अहंकार का सिर कट ही जाता है। और जब अहंकार का सिर कट जाता है तो तुमने जिस एक को प्रेम किया था उसमें तुम्हें मनुष्य नहीं दिखाई पड़ेगा; जैसे ही अहंकार का पर्दा आंख से हटा कि तुम्हें उसमें परमात्मा दिखाई पड़ेगा। और एक में परमात्मा

दिख जाए तो फिर तुम्हारी आंख योग्य हो गई, कुशल हो गई। फिर तुम जहां देखोगे वहां परमात्मा दिखाई पड़ेगा--अपनों में भी, परायों में भी; मित्रों में भी, शत्रुओं में भी; पत्थर-पहाड़ में भी। फिर तुम्हारी आंख जहां देखेगी, वहां परमात्मा को ही निहारेगी। एक बार एक में तो दिख जाए, तो फिर अनेक में दिखाई पड़ जाएगा। लेकिन एक में ही न दिखाई पड़े तो अनेक में कैसे दिखाई पड़े?

इसलिए मैं संसार का विरोधी नहीं हूं--भक्त कभी नहीं रहे हैं। भक्तों ने संसार को छोड़ देने के लिए नहीं कहा। भक्तों ने कहा : सीढ़ी बना लो संसार की। इसी से धीरे-धीरे भक्ति की यात्रा शुरू होगी। इसी से धीरे-धीरे भक्ति की तरफ उठोगे।

"रहै चरन चित लाय, एक से और न जानी।

जरै पिया के साथ, सोई है नारि सयानी।।"

उस एक के ही चरणों में डूबी रहे। हृदय में उस एक के ही चरण विराजमान हो जाएं।

"रहे चरण चित लाय". . .।

बस उसकी स्मृति बनी रहे। एक से और न जानी। और एक परमात्मा के सिवाय हृदय में कोई और दूसरा भाव न हो।

अक्सर लोग परमात्मा खोजते भी हैं तो परमात्मा भी और बहुत सी वासनाओं में एक वासना होता है। धन भी खोज रहे हैं, पद भी खोज रहे हैं, प्रतिष्ठा भी खोज रहे हैं--और सोचते हैं : थोड़ा घड़ी आधा घड़ी परमात्मा में भी लगा दो, कौन जाने हो ही हो; शायद आखिर में पता चले कि है, मरने पर पता चले कि है, तो ऐसा न हो कि हमने कुछ भी न किया था। सब सम्हाल लो। दुकान भी चला लो, बाजार भी सम्हाल लो, पद की दौड़ भी दौड़ लो, क्योंकि कौन जाने परमात्मा इत्यादि हो ही न, सिर्फ बातचीत ही हो, तो कहीं हम संसार से न चूक जाएं। इसको तुम होशियारी कहते हो। इसको तुम समझदारी कहते हो। इसको तुम सयानापन कहते हो कि सब सम्हाल लो, दोनों हाथ लड्डू सम्हाल लो। यह भी सम्हाल लो, उसको भी सम्हाल लो. . .।

तो आदमी चौबीस घंटे में घड़ी भर मंदिर में चला जाता है, मस्जिद में चला जाता है, गुरुद्वारा चला जाता है। घड़ी भर बैठ कर पढ़ लेता है--जपुजी का पाठ कर लेता है, कि गीता पढ़ लेता है, कि कुरान की आयतें दोहरा लेता है। सोचता है : चलो भगवान से निपटे; अब संसार में लगें। तेईस घंटे संसार में दौड़ता है, एक घंटा परमात्मा को दे देता है। यह कोई भक्ति की बात नहीं।

भक्त तो चौबीस घंटे अहर्निश परमात्मा में डूबा है। और ऐसा भी नहीं कि भक्त संसार से भाग जाता है। संसार के सारे काम को करता रहता है; जैसे कोई अभिनेता करता हो नाटक में। उसने भेजा है, तो उसका काम तो पूरा कर देना है। लेकिन कर्ता-भाव नहीं लाता। मैं कर रहा हूं, ऐसा भाव पैदा नहीं करता। वह करवा रहा है तो करता जाता हूं। गृहस्थी दी तो गृहस्थी। बच्चे दिए तो बच्चे। दुकान चलवाता है तो दुकान चला लेते हैं। लेकिन भीतर अहर्निश चौबीस घंटे पाठ चल रहा है, स्मृति चल रही है, सुरति चल रही है। सोते-जागते याद उसकी ही बनी है। संसार की हर अवस्था में है, लेकिन याद उसकी तरफ लगी हुई है।

कबीर कहते हैं : जैसे पनिहारिन पानी भर कर घर की तरफ चलती है, सिर पर मटकी सम्हाले है, दो और तीन मटकियां सम्हाले है, हाथ भी नहीं लगाती मटकियों में, सहेलियों से बातें करती चलती है, गीत गाती चलती है, गपशप करती चलती है। यह सब गपशप भी चलती है, राह पर चलना भी पड़ता है, मटके सिर पर भी हैं, फिर भी उसका ध्यान तो मटको को सम्हाले रखता है। पूरे वक्त सुरति तो उसकी मटको में लगी रहती है। जैसे मां सोती है रात, तूफान उठे, आंधियां चलें, आकाश में बादलों की गर्जना हो, उसकी नींद नहीं टूटती। उसका छोटा सा बच्चा जरा सा कुनमुनाए, और उसकी नींद टूट जाती है। क्यों? एक सुरति बनी। रात की नींद में भी उसे याद है कि छोटा बच्चा है। रात की नींद में भी उसे याद है कि छोटे बच्चे की जरूरतें हैं। रात की नींद में भी प्रेम का धागा बंधा है। आंधी आती है तो नींद नहीं टूटती। बादल घुमड़ते हैं तो नींद नहीं टूटती। बिजली कड़कती है तो नींद नहीं टूटती। लेकिन यह छोटा सा बच्चा जरा कुनमुनाता है कि नींद टूट जाती है। एक सुरति

का धागा भीतर बंधा है। जैसे पनिहारिन अपनी मटकियों में ध्यान को रखती है--करती और सब काम है लेकिन ध्यान मटकी में लगा रहता है; जैसे मां अपने बच्चे में ध्यान को रखती है--ऐसा भक्त संसार में रहता है, लेकिन ध्यान परमात्मा में रखता है। ध्यान परमात्मा में रहता है, भक्त संसार में रहता है।

भक्ति की बड़ी अनूठी कीमिया है। संसार में भक्त रहता है, लेकिन संसार को अपने भीतर नहीं रखता; अपने भीतर तो परमात्मा को बसाए रखता है। दुकान पर बैठ कर दुकान भी चलाता है, ग्राहक आता है तो ग्राहक में भी राम को ही देखता है। राम की थोड़ी सेवा का मौका मिला है तो कर देता है। पर यहां भी राम है, वहां भी राम है। राम को क्षण भर को चूकता नहीं, भूलता नहीं।

"रहै चरण चित लाय, एक से और न जानी।

जगत करै उपहास, पिया का संग न छोड़े।"

और जगत तो निश्चित उपहास करता है, करेगा; क्योंकि यह तो जगत को पागलपन लगेगा। यह क्या बात है? किसकी याद में लगे हो? यह किसकी धुन बजा रहे हो? कैसा परमात्मा? कहां प्रमाण है? कुछ काम की बातें करो। कुछ और धन कमा लो। थोड़ा और पद बढ़ा लो। थोड़ा और बड़ा मकान बना लो। ये सब बातें, तो संसार कहता है, बिलकुल ठीक।

नानक को उनके पिता ने, बड़ी कोशिशें कीं--कुछ काम में लग जाए, कुछ धंधा कर ले। स्वभावतः प्रत्येक पिता चाहता है कि बेटा कुछ करे, कमाए। किसी ने सलाह दी कि इसको कुछ रुपए दे दो, खरीदने भेजो; कुछ सामान खरीद लाए, कुछ बेचे, लाए, ले जाए, व्यापार करे। कुछ लगेगा काम में तो ठीक, नहीं तो यह खराब हो जाएगा। यह धीरे-धीरे साधुओं के सत्संग में खराब हुआ जा रहा है।

कुछ रुपए देकर उन्हें भेजा। जाते वक्त कहा कि देख, लाभ का ख्याल रखना क्योंकि लाभ के बिना धंधे में कोई अर्थ नहीं है। नानक ने कहा : ठीक, ख्याल रखूंगा। वे दूसरे दिन घर वापस आ गए। खाली चले आ रहे थे और बड़े प्रसन्न थे। पिता ने पूछा : क्या हुआ, बड़ा प्रसन्न दिखाई पड़ता है! इत्ती जल्दी भी आ गया! और कुछ सामान इत्यादि कहां है?

उन्होंने कहा : सामान छोड़ो, लाभ कमा लाया हूं। कंबल खरीद कर ला रहे थे, राह में साधु मिल गए। वे सब नंगे बैठे थे। सर्दी के दिन थे, सबको बांट दिए। आपने कहा था न कि लाभ. . .!

पिता ने सिर ठोंक लिया होगा, कि इस लाभ के लिए थोड़े ही कहा था। कहां के लफंगों को, फिजूल के आदमियों को कंबल बांट आया! ऐसे कहीं धंधा होगा? लेकिन नानक ने कहा : आपने ही कहा था कि कुछ लाभ करके आना। अब मैंने देखा कि अगर कंबल लाकर बेचूंगा, दस-पचास रुपए का लाभ होगा; लेकिन इन परमात्मा के प्यारों को अगर बांट दिया तो बड़ा लाभ होगा।

फिर नौकरी पर लगा दिया। गांव के सूबेदार के घर नौकरी लगा दी। सीधा-सादा काम दिलवा दिया। काम था कि जो सिपाहियों को रोज भोजन दिया जाता था, वह उनको तौल कर दे देना। तो वह दिन भर तौलते रहते तराजू लेकर। एक दिन तौलते-तौलते समाधि लग गई। रस तो भीतर परमात्मा में लगा था। तौलते रहते थे, बैठे रहते थे दुकान पर, काम करवा रहे थे पिता तो करते थे; लेकिन भीतर तो याद परमात्मा की चल रही थी। उसी याद के कारण यह बड़ी क्रांतिकारी घटना घट गई। एक दिन तौलते-तौलते संख्या आई--सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह, बारह और तेरह--तो पंजाबी में तेरह तो नहीं है, तेरा है। तो तेरा शब्द उठते ही उसकी याद आ गई। वह याद तो भीतर चल ही रही थी। उस याद से सूत्र जुड़ गया। "तेरा" यानी परमात्मा का। फिर तो मस्त हो गए, फिर तो मगन हो गए। फिर तो तेरा से आगे बढ़े ही नहीं। फिर तो तौलते ही गए। जो आया, उसको ही तौलते गए--तेरा और तेरा! खबर पहुंच गई सूबेदार के पास कि इसका दिमाग खराब हो गया है। वे तेरा ही पर अटका है, और सभी को तौलता जा रहा है; और जितना जिसको जो ले जा रहा है, ले जा रहा है! दुकान लुटवा

देगा। पकड़ कर बुलवाया गया। वह बड़े मस्त थे। उनकी आंखों में बड़ी ज्योति थी। पूछा : यह तुम क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा : आखिरी संख्या आ गई, अब इसके आगे संख्या ही कहां? तेरा के आगे अब और जाने को जगह कहां है? बाकी तो मेरे का फैलाव है। तेरे की बात आ गई, खत्म हो गया मेरे का फैलाव; अब मुझे क्षमा करो, अब मुझे जाने दो। आज जो मजा पाया है तेरा कह कर, अब उसको चूकना नहीं चाहता। अब तो चौबीस घंटे तेरा ही तेरा करूंगा। उसका ही सब है। वही है। आज मेरा-मेरा गया। आज तो तेरा ही हो गया।

स्मरण जैसे-जैसे तुम्हारा सघन होगा, जगत तो उपहास करेगा। लोग तो हंसे। लोगों ने कहा : नानक पागल हो गए।

"जगत करे उपहास, पिया का संग न छोड़ै।

प्रेम की सेज बिछाय मेहर की चादर ओढ़ै।।"

दुनिया हंसी करे--करेगी ही--इसे स्वीकार कर लेना। इससे अन्यथा की आशा भी मत करना। ऐसा होता ही रहा सदा, ऐसा ही होगा--आज भी, कल भी। दुनिया उपहास न करे तो समझना कि कुछ भूल हो रही है।

लाओत्सु ने कहा है : जब मैं कुछ सत्य की बात कहता हूं तो लोग हंसते हैं, उपहास करते हैं; तब मैं निश्चित समझ जाता हूं कि जो मैंने कहा, वह सत्य ही होना चाहिए। अगर वह सत्य न होता तो लोग उपहास क्यों करते!

एक फकीर थे : महात्मा भगवानदीन। वे मुझसे बोले कि जब भी मैं लोगों को ताली बजाते सुनता हूं. . . बड़े प्यारे वक्ता थे. . . तो मैं दुखी हो जाता हूं। क्योंकि जब लोग ताली बजा रहे हैं तो मैंने जरूर कोई गलती बात कही होगी। जो लोगों की तक समझ में आ रही है, वह गलत ही होनी चाहिए। लोग इतने गलत हैं!

वे बड़े नाराज हो जाते थे, जब उनके बोलने में कोई ताली बजा दे। बड़े नाराज हो जाते थे कि मैंने कोई ऐसी गलती बात कही कि तुम ताली बजाते हो! लोग तो ताली बजा कर प्रसन्न होते हैं, सुन कर प्रसन्न होते हैं कि ताली बजाई जा रही है; वे बड़े नाराज हो जाते थे। वे कहते थे : मैं बोलूंगा ही नहीं, अगर ताली बजाई। तुमने ताली बजाई--मतलब कि कुछ गलती बात हो गई।

लाओत्सु ठीक कह रहा है कि अगर लोग उपहास न करते तो मैं समझ लेता कि यह सत्य होगा ही नहीं। सत्य का तो सदा उपहास होता है, क्योंकि लोग इतने असत्य हैं। लोग झूठ हैं, इसलिए सत्य पर हंसते हैं। हंस कर अपने को बचाते हैं। उनकी हंसी आत्मरक्षा है।

"जगत करै उपहास, पिया का संग न छोड़ै।

प्रेम की सेज बिछाय मेहर की चादर ओढ़ै।।"

फिकर ही मत करना संसार की; तुम तो अपनी प्रेम की सेज बिछा लेना और परमात्मा की याद करना कि तुम आओ, तुम्हारे लिए सेज तैयार कर रखी है।

"प्रेम की सेज बिछाय, मेहर की चादर ओढ़ै।"

और करुणा की चादर ओढ़ना। प्रेम का बिस्तर बनाना और करुणा की चादर बना लेना। संसार के प्रति करुणा रखना, परमात्मा के प्रति प्रेम रखना--बस ये दो चीजें सध जाएं। हंसने वालों के प्रति करुणा रखना, नाराजगी मत रखना। अगर नाराजगी रखी तो वे जीत जाएंगे। अगर करुणा रखी, तो ही तुम जीत पाओगे। वे हंसें, तो स्वीकार करना कि ठीक ही हंसते हैं। जहां वे खड़े हैं, वहां से उन्हें हंसी आती है हम पर, ठीक ही है। उनकी स्थिति में ऐसा ही होना स्वाभाविक है। उन पर करुणा रखना।

"ऐसी रहनी रहै, तजै जो भोग-विलासा।"

यह बड़ा अपूर्व सूत्र है। पलटू कहते हैं कि भक्त के प्रेम में और करुणा में, और परमात्मा के स्मरण में अपने आप भोग-विलास छूट जाता है।

"ऐसी रहनी रहै, तजै जो भोग-विलासा।"

भोग-विलास छोड़ना न पड़े, छूट जाए--ऐसी रहनी रहे। परमात्मा की स्मृति जिसके जीवन में भरी है, उसको कहां भोग-विलास की याद रह जाती है! वह तो परमभोग भोग रहा है; अब छोटे-मोटे भोग की बात ही कहां! हीरे बरस रहे हों तो कोई कंकड़-पत्थर बीनता है? अमृत बह रहा हो तो कोई नाली के गंदे पानी को भर कर घर लाता है? जहां फूलों की वर्षा हो रही हो, वहां कोई दुर्गंध समेटता है? जहां सच्चा सुख मिल रहा हो वहां क्षणभंगुर सुख की कौन चिंता करता है?

"ऐसी रहनी रहै, तजै जो भोग-विलासा।"

परमात्मा की मस्ती में रहे। परमात्मा के आनंद-भाव में रहे। परमात्मा के प्रेम में रहे और जगत के प्रति करुणा से भरा और सुरति की धारा बहे। बस फिर अपने आप ऐसी रहनी पैदा हो जाती है, जीवन का ऐसा ढंग, जीवन में ऐसी चर्या पैदा हो जाती है कि भोग-विलास अपने आप छूट जाते हैं। छोड़ने नहीं पड़ते, छोड़ने पड़ें, तो बात ही गलत हो रही है। छोड़ने पड़ें तो घाव रह जाएंगे; छूट जाएं तो बड़ा स्वास्थ्य और बड़ा सौंदर्य होता है। व्यर्थ को छोड़ना पड़े तो उसका अर्थ हुआ अभी कुछ सार्थकता दिखाई पड़ती थी, इसलिए चेष्टा करनी पड़ी, छोड़ना पड़ा। व्यर्थ व्यर्थ की भांति दिखाई पड़ जाए, तो फिर चेष्टा नहीं करनी पड़ती, हाथ खुल जाते हैं, व्यर्थ गिर जाता है। आदमी पीछे लौट कर भी नहीं देखता।

"ऐसी रहनी रहै, तजै जो भोग-विलासा।

मारै भूख-पियास, याद संग चलती स्वासा।।"

फिर तो भूख-प्यास तक की याद नहीं रह जाती, क्योंकि श्वास-श्वास में उसी की ही याद चलती है। कहां का भोग, कहां का विलास! कौन धन को इकट्ठे करने में पड़ता है! कौन पद की चिंता करता है! कौन आदर-समादर खोजता है! कौन सम्मान खोजता है! जिसको उस प्राण-प्यारे की तरफ से मान मिलने लगा, इस संसार में कोई मान अब अर्थ नहीं रखता। "मारै भूख-पियास, याद संग चलती स्वासा।" यह जो श्वास के साथ याद बहने लगती है, इससे भूख-प्यास तक मर जाती है।

एक तुमने बात कभी ख्याल की--बहुत मनोवैज्ञानिक है! जब तुम दुखी होते हो, तुम ज्यादा भूखे-प्यासे अनुभव करते हो। जब तम दुखी होते हो, तो तुम ज्यादा भोजन कर लेते हो। क्योंकि दुखी आदमी भीतर खाली-खाली मालूम पड़ता है--किसी से भी भर लो, किसी तरह भर लो भीतर का गड्ढा। सुखी आदमी कम भोजन करता है। परम सुख में तो भूख भूल ही जाती है। परम सुख में तुम ऐसे भरे मालूम पड़ते हो भीतर, कि कहां भूख, कहां प्यास!

जब भी सुख घटता है तो आदमी भर जाता है। जब भी जीवन में दुख होता है, तो आदमी जबरदस्ती अपने को भरने लगता है; खाली-खाली मालूम पड़ता है--चलो किसी भी चीज से भर लो।

सुखी आदमी खाली रह जाता है, क्योंकि सुख काफी भरा हुआ है। दुखी आदमी कैसे खाली रहे! मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जिनके जीवन में प्रेम है, उनके जीवन में ज्यादा भोजन का रोग नहीं होता। जिनके जीवन में प्रेम नहीं है, वे ज्यादा भोजन करने लगते हैं। वे प्रेम की कमी भूख से पूरी करने लगते हैं। जो प्रेम से मिलना चाहिए था, वह भोजन से ही पूरा करने लगते हैं। और इसके पीछे राज है। बच्चे का जो पहला अनुभव है जगत में, वह भूख का और प्रेम का एक साथ है, जुड़ा हुआ है। मां से ही उसको प्रेम मिलता है और मां से ही दूध मिलता है। तो पहला जो अनुभव है उसको, उसमें प्रेम और भोजन जुड़ा होता है, संयुक्त होता है। वह जोड़ इतना गहरा है कि फिर भूलता नहीं। इसलिए तो तुम जब किसी के प्रति प्रेम प्रकट करना चाहते हो, तो भोजन पर बुलाते हो! क्यों? आखिर प्रेम प्रकट करने के लिए भोजन पर बुलाने की क्या जरूरत है? जरूरत है, क्योंकि

भोजन और प्रेम दोनों साथ जुड़े हैं। जिसको तुम भोजन पर बुला लेते हो, वह प्रेमी हो जाता है, मित्र हो जाता है।

लोग अक्सर यह अनुभव करते हैं कि जब उन्हें किसी दूसरे से कुछ काम की बात निकलवानी हो तो उसे भोजन करने के लिए होटल ले गए या घर ले गए। जब दोनों भोजन करते होते हैं, बात करते होते हैं, तब आसान होता है मामला तय कर लेना। इसलिए दुकानदार, सेल्समैन, बीमा के एजेंट भोजन पर बुला लेते हैं कि चलो, कल हमारे साथ भोजन करो। वहां सुगमता पड़ जाती है। वहां आदमी हलका होता है, जिद्दी कम होता है।

तुमने यह देखा कि लोग रात को अक्सर, सोने के पहले, अगर एक गिलास गरम दूध पी लें तो नींद अच्छी आती है। क्यों? वह गरम दूध उन्हें फिर छोटा बच्चा बना देता है। दूध गरम, वह बचपन याद आ जाता है। मां से दूध पहली दफा मिला था, गरम-गरम दूध मिला था, और प्रेम भी मिला था। उस प्रेम और दूध से भर कर वह गहरी नींद सो जाता है।

भोजन और प्रेम का बड़ा गहरा संबंध है। तो जब तुम्हारे जीवन में भोजन बढ़ जाए बहुत तो समझना, कि कहीं प्रेम की कमी पड़ रही है, तो प्रेम की कमी तुम भोजन से पूरी कर रहे हो। अक्सर ऐसा होता है कि जो मां बच्चे को प्रेम करती है, वह बच्चा बहुत दूध नहीं पीता। वह हजार झंझटें खड़ी करता है दूध पीने में। समझाना पड़ता है, बुझाना पड़ता है, मां को बार-बार घेर कर लाना पड़ता है कि फिर पी ले, कुछ यहां-वहां की बात करनी पड़ती है। और वह दूध नहीं पीता, वह फिकर नहीं करता। जब प्रेम है तो उसे भरोसा है, कि जब चाहिए दूध मिल जाएगा। प्रेम में एक श्रद्धा है, भरोसा है। लेकिन अगर मां बच्चे को प्रेम न करती हो समझो, नर्स हो, मां न हो; जैसा कि बहुत सी मां नर्सें ही हैं, मां तो कभी-कभी कोई होती है; अगर मां बच्चे को प्रेम न करती हो, जबरदस्ती मान लिया अब यह हो गया पैदा तो ठीक है, किसी तरह खींच रहे हैं, चाहते तो नहीं थे, कहां की झंझट सिर पर आ गई--अगर ऐसी मां हो तो बच्चा उसका स्तन छोड़ता ही नहीं क्योंकि उसे डर लगता है कि अभी छोड़ दिया तो पीछे मिलेगा दूध कि नहीं मिलेगा, इसका कुछ पक्का भरोसा नहीं है, श्रद्धा नहीं पैदा होती।

अक्सर प्रेम की कमी होने के कारण बच्चे ज्यादा भोजन करने लगते हैं शुरू से ही। एक अनुपात है।

कहते हैं पलटूदास :

"ऐसी रहनी रहै, तजै जो भोग-विलासा।

मारै भूख-पियास याद संग चलती स्वासा।"

ऐसी रहनी रहै. .

ऐसी प्रभु की याद गूंजती रहे भीतर कि उससे ऐसा भरा-पूरा रहे कि भूख-प्यास मिट जाए। अब यह बड़ा फर्क हुआ। एक तो उपवास करना और एक उपवास का अपने आप हो जाना।

हमारे पास दो शब्द हैं, दोनों के अलग-अलग अर्थ हैं। लेकिन हमने इन दोनों को एक साथ जोड़ कर बड़ी खिचड़ी बना ली है। एक शब्द है अनशन और एक शब्द है उपवास। अनशन का मतलब होता है : चेष्टा से भोजन न करना। उपवास का अर्थ होता है : उसके पास बैठ जाना, परमात्मा के पास बैठ जाना; उप धन वास; उसके निकट हो जाना। उसके निकट होने से भूख-प्यास भूल जाए। उसकी याद इतने करीब हो, वह इतने करीब हो कि कौन फिकर करता है। जब तुम्हारा कोई प्रेमी घर आ जाता है, मित्र आ जाता है, उस दिन तुम कहते हो : छोड़ो भी अब, अभी पहले बातचीत हो ले; भोजन पीछे देखेंगे। रात तुम कहते हो कि अब रात भर बैठ कर गपशप कर लें; आज सोना जाए तो जाए, कोई हर्जा नहीं। आज दो प्रेमी मिल बैठे हैं; न भूख की फिकर है, न नींद की फिकर है। आज पुराने रस में डूब गए हैं।

परमात्मा के पास होने का तो मतलब है परम प्यारा मिल गया, जन्मों-जन्मों से खोया हुआ मिल गया; जिसे खोए अनंतकाल बीत चुका था और जिसको हम तलाशते रहे, तलाशते रहे, वह मिल गया--उसके मिल

जाने पर कहां भूख, कहां प्यास; कहां भोग, कहां विलास! वे सहज भूल जाते हैं। यह जो सहज जीवन में त्याग फलित होता है, इसकी महिमा अपार है।

"ऐसी रहनी रहै, तजै जो भोग-विलासा।

मारै भूख-पियास याद संग चलती स्वासा।।

रैन दिवस बेह्रोस, पिया के रंग में राती।"

दिन-रात बेहोश रहे, मस्ती में रहे, शराब में डूबा रहे--प्रभु के प्रेम की शराब पीता रहे।

"रैन दिवस बेह्रोस, पिया के रंग में राती।"

उसका रंग छाया रहे, उसका ढंग छाया रहे। उसका गीत गूंजता रहे। उसकी मस्ती में झूमे, नाचे। उसकी बांसुरी बजती रहे, उसकी बांसुरी के साथ तुम्हारे भीतर भी आनंद का कंपन चलता रहे।

"रैन दिवस बेह्रोस, पिया के रंग में राती।"

अब यह फर्क समझना। साधारणतः जिनको तुम त्यागी कहते हो, वे संसार का सुख तो छोड़ देते हैं और परमात्मा का सुख मिल नहीं रहा है। उनका जीवन बड़ा उदास हो जाता है। उनके जीवन में तुम उत्सव न पाओगे। तुम ऐसा न पाओगे कि कोई धुन बज रही है परम की। तुम ऐसा न पाओगे कि कोई वीणा बज रही है। संसार में थोड़ी बहुत जो भाग-दौड़ थी, वह भी चली गई; क्षणभंगुर था सुख, लेकिन था तो, क्षणभंगुर भी न रहा और शाश्वत मिला नहीं। ये धोबी के गधे हैं--घर के न घाट के! ये तुम्हारे तथाकथित महात्मा अक्सर ऐसी हालत में हैं।

पलटू कहते हैं : पहले परमात्मा के रस में डूबना सीख ले, फिर संसार से निकलने में कोई बाधा नहीं आती। पहले शाश्वत तो पा लो, क्षणभंगुर को छोड़ने में क्या रखा है, छूट जाएगा।

"रैन दिवस बेह्रोस, पिया के रंग में राती।"

उस प्यारे के रंग में डूबा रहे।

भक्ति तो भगवान को ऐसे पीती है जैसे पियक्कड़ शराब को पीता है। कहते हैं, जिस रात जीसस विदा हुए अपने शिष्यों से, उन्होंने दावत दी--आखिरी दावत। वह दावत बड़ी प्यारी है। उसमें उन्होंने हाथ से रोटी तोड़ी और अपने शिष्यों को बांटी। फिर अपने हाथ से शराब ढाली और अपने शिष्यों को बांटी। जब वे रोटी बांटते थे तो उन्होंने कहा : ख्याल रखना यह मेरा शरीर है। और जब उन्होंने शराब बांटी तो उन्होंने कहा : ख्याल रखना, यह मैं हूं।

यह प्रतीक की बात है।

परमात्मा को जो शराब की तरह पीने के लिए तत्पर है, वही भक्त है। भक्त यानी पियक्कड़। भक्तों का जो जमाव है, वह तो मधुशाला का जमाव है। आंख में मस्ती हो, पैर में नृत्य हो, हृदय में उत्सव हो।

"रैन दिवस बेह्रोस, पिया के रंग में राती।

तन की सुधि है नाहिं, पिया संग बोलत जाती।।"

और अपना तो होश ही नहीं रहा अब। अपना होश कहां, जब परमात्मा सामने खड़ा हो तो अपना होश कहां! तन की सुधि है नाहिं. . .। अब अपना तो कुछ होश ही नहीं : अपने तन का तो कुछ पता नहीं। पिया संग बोलत जाती। लेकिन उसकी याद पूरी है। उसके साथ बात चल रही है, प्रार्थना चल रही है, पूजा चल रही है, अर्चना चल रही है।

भक्त तो परमात्मा से ऐसे बात करता है, जैसे सामने परमात्मा खड़ा हो। उसके साथ परमात्मा का संवाद चलता है। अपने को तो भूल जाता है, परमात्मा ही सामने होता है।

"रैन दिवस बेह्रोस, पिया के रंग में राती।

तन की सुधि है नाहिं, पिया संग बोलत जाती।।

पलटू गुरु प्रसाद से किया पिया को हाथ।"

पलटू कहते हैं : गुरु की कृपा से परमात्मा को हाथ में कर लिया। किया पिया को हाथ।

"सोई सती सराहिए, जरै पिया के साथ।"

लेकिन उसे साथ करने का उपाय क्या है? उपाय एक ही है :

"सोई सती सराहिए, जरै पिया के साथ।"

बड़ा उलटा उपाय है। अपने को गंवा दो तो परमात्मा हाथ में आ जाता है। अपने को मिटा दो तो परमात्मा हाथ में आ जाता है। अपने को उसके चरणों में डाल दो तो तुम्हारे कब्जे में आ जाता है। भगवान भक्त के वश में है। मगर तुम अपने को मिटा दो। वह शर्त पूरी करनी होती है।

यह आना कोई आना है कि बस रसमन चले आए।

यह मिलना खाक मिलना है कि दिल से दिल नहीं मिलता।

तुम्हारी प्रार्थनाएं झूठी हैं। तुम्हारी पूजाएं झूठी हैं। क्योंकि दिल से दिल तो मिलता ही नहीं; तुम अपने को तो भूल ही नहीं पाते।

यह मिलना खाक मिलना है कि दिल से दिल नहीं मिलता! लेकिन दिल से दिल तो तभी मिले जब तुम अपनी सारी सुरक्षा के आयोजन छोड़ दो; तुम समर्पण करो; तुम सारे शस्त्र डाल दो। तुम कहो कि यह मैं तेरी शरण आया। बचाना हो बचा, मिटाना हो मिटा। तू जो भी करे, वही मेरा सौभाग्य। तेरी मरजी, मेरी मरजी। ऐसा जब भक्त कह पाता है परिपूर्ण हृदय से, समग्र हृदय से, उसी क्षण परमात्मा हाथ में हो जाता है।

"तुझे पराई क्या परी, अपनी आप निबेर।"

और पलटू कहते हैं : ये बातें सुन कर दूसरों के विचार में मत पड़ जाना कि अरे, दूसरों के जीवन में परमात्मा नहीं है; कि अरे बेचारों को कैसे परमात्मा दिलवाएं; कि दूसरों के जीवन में कैसे रोशनी लाएं! इस चिंता में मत पड़ जाना। यह भी तरकीब है--अपने को बचा लेने की। बहुत लोग हैं ऐसे।

अभी परसों एक युवक आया जर्मनी से। और उसने कहा : और सब तो ठीक है, मैं आपसे यह पूछने आया हूं कि दुनिया में इतनी गरीबी है, इतनी परेशानी है, लोग इतने दुख में हैं, इसके लिए मैं क्या कर सकता हूं?

मैंने उससे पूछा : पहले मैं एक सवाल तुझ से पूछूं? तू दुख के बाहर है? चिंता-परेशानी के बाहर है?

उसने कहा : मैं तो बाहर नहीं हूं।

तो मैंने कहा : पहले तू अपने को तो बाहर कर ले। यह तरकीब कि दुनिया दुख में है, दुनिया को कैसे मैं दुख के बाहर लाऊं--यह बड़ी तरकीब है। इससे अपने दुख और चिंताओं को भुलाने का उपाय मिल जाता है। इससे अपनी तरफ पीठ कर लेने की सुविधा हो जाती है।

लेकिन तू कैसे दूसरों के जीवन में रोशनी लाएगा--मैंने उससे कहा--अभी तेरे जीवन में रोशनी नहीं है। तू कैसे दूसरों के बुझे दीये जलाएगा, अभी तेरा दीया बुझा है। अभी तो खतरा यह है कि तू किसी के जलते दीये को बुझा मत आना। तू कृपा कर। तेरी बड़ी कृपा होगी, अभी तू दूसरों की चिंता मत कर। तू अपनी चिंता पहले कर ले।

घर से शुरुआत करो। अपने को बदलो। तुम बदल जाओगे तो तुम्हारे जीवन से ऐसी किरणें उठेंगी कि और लोग भी बदलेंगे। मगर दूसरों से शुरू मत करना। दूसरों से शुरू करने में बड़ा मजा मालूम होता है : अहंकार की तृप्ति कि देखो, मैं सेवा कर रहा हूं!

सेवक, सर्वोदयी, खतरनाक लोग हैं। इनसे सावधान रहना। ये अपने को भी धोखा दे रहे हैं, ये दूसरे को भी धोखे में डाल रहे हैं। पहले तो किरण अपने भीतर उतार लो।

पलटू कहते हैं : "तुझे पराई क्या परी, अपनी आप निबेर।" पहले अपनी सुलझा ले, अपनी तो निपटा ले। अपनी इतनी उलझन है, अपनी इतनी बीमारियां हैं, इनको लेकर तू दूसरों की बीमारी और सुलझाने चला जाएगा, और झंझट बढ़ा देगा।

दुनिया में जितना उपद्रव समाज-सेवकों के द्वारा हुआ है, किन्हीं और के द्वारा नहीं हुआ। यहां बीमार, लोगों की चिकित्सा करते घूम रहे हैं। यहां पागल, लोगों को मानसिक स्वास्थ्य देते घूम रहे हैं। यहां मुर्दे, लोगों को जीवन का दान देते हुए घूम रहे हैं।

"तुझे पराई क्या परी, अपनी आप निबेर।

अपनी आप निबेर, छोड़ि गुड़ विस को खावै।।"

अभी अपने जीवन में अमृत नहीं उतरा, और तू दूसरों की चिंता में पड़ रहा है! पहले परमात्मा को तो थोड़ा पचा; नहीं ये तो दूसरों की चिंताएं ही तेरा भोजन बन जाएंगी। . . . छोड़ि गुड़ विस को खावै। जहां बड़ी मिठास हो सकती थी परमात्मा को अपने भीतर ले लेने से, वहां लोगों की चिंताएं और दुखों का हिसाब लगा-लगा कर तू बड़ा खट्टा और कड़वा हो जाएगा, विष से भर जाएगा।

"कूवां में तू परै, और को राह बतावै।"

तू खुद कुएं में पड़ा है और दूसरों को राह बता रहा है! तेरी बातें खतरनाक हैं। तू दूसरों को भी कुएं में गिराने के लिए करीब ले आएगा। क्योंकि वही राह तू जानता है। और राह तू जानेगा भी कैसे! जो राह तू नहीं चला, उसे तू कैसे जानेगा?

कबीर ने कहा है : अंधा अंधा ठेलिया, दोनों कूप पड़ंत। अंधे ने अंधे को राह बताई, दोनों कुएं में गिर गए।

जीसस ने भी वही बात कही है कि पहले अपनी आंख खोलो; अभी अपनी आंख न खुली हो तो इस भ्रांति में मत पड़ो कि तुम किसी को मार्ग बता सकोगे।

कल मैं एक वचन पढ़ रहा था :

वहां कितनों को तख्तो-ताज का उर्मां है, क्या कहिए।

जहां साइल को अक्सर कासा-ए-साइल नहीं मिलता।

वहां कितनों को तख्तो-ताज का उर्मां है, क्या कहिए।

यहां कितने लोग सिंहासन पाने की कोशिश में लगे हैं, जबकि हालत यह है कि जहां साइल को अक्सर कासा-ए-साइल नहीं मिलता। यहां भिखारी को भिक्षापात्र भी नहीं मिलता है, और यहां सिंहासन पाने की दौड़ चल रही है! इस संसार में भिक्षापात्र भी नहीं मिलता, मिल नहीं सकता--और सिंहासन पाने की कोशिश चल रही है!

शिकस्ता-पा को मुज्दा, खस्तगाने-राह को मुज्दा

कि रहबर को सुरागे-जादहे-मंजिल नहीं मिलता।

शिथिल जनों को मंगल समाचार, रास्ते के थके हुओं को मंगल समाचार। शिकस्ता-पा को मुज्दा. . . शिथिल जनों को मंगल समाचार, एक शुभ संदेश! खस्तगाने-राह को मुज्दा. . . जो थक गए हैं चलते-चलते उनके लिए एक शुभ समाचार कि रहबर को सुरागे-जादहे-मंजिल नहीं मिलता। घबड़ाओ मत, जिसको तुम पथ-प्रदर्शक समझ रहे हो, नेता, उसको भी मंजिल नहीं मिली। बेफिकर रहो। चिंता में मत पड़ो कि तुमको मार्ग नहीं मिल रहा है और मंजिल नहीं मिल रही। तुम्हारे महात्मा को भी नहीं मिली है। बेफिकर हो जाओ। यह मंगल समाचार है। यह शुभ समाचार है कि तुम्हारे नेता को भी नहीं मिली। इस भ्रांति में मत पड़े रहो कि किसी को मिल गई है। तुम्हें जो ले चल रहे हैं, उनको भी नहीं मिली है।

पलटू महत्त्वपूर्ण बात कह रहे हैं :

"तुझे पराई क्या परी, अपनी आप निबेर,

अपनी आप निबेर, छोड़ि गुड़ विस को खावै।

कूवां में तू परै, और को राह बतावै।

औरन को उजियार, मसालची जाय अंधेरे।"

देखा न मशालची जब रात में चलता है मशाल लेकर, तो खुद तो अंधेरे में चलता है, क्योंकि मशाल की रोशनी तो पीछे होती है। कंधे पर रखे है मशाल, तो मशाल की रोशनी तो पीछे पड़ती है; जो पीछे आ रहे हैं उनको कुछ दिखाई भी पड़े, लेकिन मशालची अंधेरे में चल रहा है। अब यह बड़े मजे की बात है कि जिस मशालची को अंधेरे में चलना पड़ रहा है, वह कहां ले जाएगा! मशाल भी उसके हाथ में हो तो मशाल तो मशालची को नहीं चलाती; मशालची चल रहा है और मशाल को कंधे पर रखे हैं, और मशाल की रोशनी देख कर दूसरे लोग उसके पीछे चल रहे हैं। और मशालची खुद अंधेरे में चल रहा है।

"औरन को उजियार, मसालची जाय अंधेरे।

त्यों ज्ञानी की बात, मया से रहते घेरे।।"

ऐसे तुम्हारे तथाकथित पंडितों की बात है। मशालें बड़ी लिए हैं, शास्त्रों का बड़ा बोझ है। खुद माया से घिरे हैं; दूसरों को राह बता रहे हैं ब्रह्म तक जाने की।

"औरन को उजियार, मसालची जाय अंधेरे।

त्यों ज्ञानी की बात, मया से रहते घेरे।।

बेचत फिरै कपूर, आप तो खारी खावै।

खुद तो खड़िया मिट्टी खाते हैं और बाजार में कपूर बेचते हैं।"

"बेचत फिरै कपूर, आप तो खारी खावै।

घर में लागी आग, दौड़ के घूर बुतावै।।"

वह जो बाहर सड़क के किनार घूरा है, उसमें आग लग जाए तो दौड़ कर उसको बुझाते हैं और घर उनका जल रहा है।

"घर में लागी आग, दौड़ के घूर बुतावै।

बेचत फिरै कपूर, आप तो खारी खावै।।

पलटू यह सांची कहै, अपने मन का फेर।

तुझे पराई क्या परी, अपनी ओर निबेर।।"

पलटू कहते हैं : सच ही कहता हूं तुमसे। इसे याद रखना, भूल मत जाना।

"पलटू यह सांची कहै, अपने मन का फेर।"

यह बड़ी मन की तरकीब है। यह मन का बड़ा जाल है। यह मन की बड़ी होशियारी है। मन मिटना नहीं चाहता। तो वह तुम्हें अपनी परेशानियों से बचाना चाहता है। वह कहता है : तुम्हारी क्या परेशानी है; देखो दुनिया में इतना दुख है, पहले इनको तो साथ दो। और मन बड़े अच्छे तर्क खोजता है। मन कहता है : ध्यान, प्रार्थना, पूजा, ये सब तो स्वार्थ हैं।

मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैं : यह तो स्वार्थ है। दुनिया में इतना दुख है और हम ध्यान करें! समझ लो कि हम सुखी भी हो गए तो यह सुख तो बड़ा स्वार्थ है। दुनिया में इतना दुख है!

मैं उनसे पूछता हूं कि तुम अगर दुखी रहे, इससे दुनिया का दुख कुछ कम होगा? दुनिया में दुख क्यों है? क्योंकि तुम दुखी हो। तो तुम दुख की किरणें फैला रहे हो। तुम दुख का जाल फैला रहे हो। दुनिया में दुख क्यों है? क्योंकि अधिक लोग दुखी हैं, इसलिए दुख घना होता जाता है। अगर तुम एक आदमी भी सुखी हो जाओ तो तुमने दुनिया की बड़ी सेवा की; कम-से-कम दुनिया का एक हिस्सा तो सुख की किरणें फैलाएगा। एक तरफ से तो कम-से-कम सुख की सुवास उठेगी। फिर जिनको भी थोड़ी समझ है और जिनको भी सुख की तलाश है, वे तुम्हारी तरफ आने लगेंगे। तुम्हें जाना भी न पड़ेगा; प्यासे कुएं की तरफ आने लगते हैं। और जब कुआं प्यासे की तरफ जाए तो जरा सावधान रहना। अगर कुआं प्यासे की तरफ जाए तो बहुत खतरा है : यह प्यासे की प्यास

तो शायद ही बुझाए; प्यासे को कुएं में गिरा ले, इसी बात की संभावना है। प्यासा कहीं. . .। अगर प्यासे को प्यास है तो कुआं खोजेगा।

अगर लोग दुखी ही रहना चाहते हैं तो तुम कौन हो उन्हें सुखी बनाने वाले? और तुम कैसे बना सकोगे? अगर उन्होंने यही तय किया है कि उनको दुखी रहना है तो दुनिया में कोई उन्हें सुखी नहीं बना सकता। परमात्मा भी उन्हें सुखी नहीं बना सकता। नहीं तो परमात्मा ने अब तक सुखी बना ही दिया होता।

परमात्मा तुम्हारी स्वतंत्रता का बड़ा आदर करता है। अगर तुमने तय किया है दुखी होना, तो तुम्हारे तय के साथ है। तुमने जो तय किया, तुम्हारे साथ है। ठीक है, तुम दुखी रहो--तुम्हारा चुनाव, तुम्हारी मालकियत है। जब तुम सुखी होना चाहोगे, तभी सुखी हो सकोगे।

फिर लोग मुझसे कहते हैं कि ठीक, ध्यान तो करें, लेकिन हमें यह बात बेचैन करती रहती है कि दुनिया दुखी है। मैं उनसे पूछता हूं : दुनिया सदा से दुखी है, और तुम चले जाओगे, उसके बाद भी दुखी रहेगी, क्या तुम यह तय करके आए हो कि तुम्हारे जाने के बाद दुनिया को तुम सुख में छोड़ जाओगे या कि तुम छोड़ सकोगे? बुद्ध नहीं छोड़ गए, कृष्ण नहीं छोड़ गए, राम नहीं छोड़ गए, मोहम्मद नहीं छोड़ गए, क्राइस्ट नहीं छोड़ गए--तुम्हारे क्या इरादे हैं? ये सारे लोग स्वार्थी थे; परार्थी तुम पहली दफा पैदा हुए हो।

लेकिन मन के बड़े फेर हैं। मन बड़े तर्क खोजता है। मन कहता है : क्या ध्यान में पड़े हो! अरे दुनिया में इतना दुख है, पहले दुख तो अलग करो! बात जंचती भी है, तर्क समझ में भी आता है। इसी तर्क में पड़ कर तो लोग झंझटों में उलझ जाते हैं।

दुनिया में दुख है, इस दुख में तुम्हारा भी हाथ है। क्योंकि दुखी आदमी दुख फैलाता है। दुखी आदमी दुख ही दे सकता है। जो तुम्हारे पास है, वही तो दोगे। जो तुम्हारे पास नहीं है उसे कैसे दोगे? दुखी आदमी विवाह करेगा तो पत्नी को दुख देगा; बच्चे उसके होंगे तो बच्चों को दुख देगा। दुखी पत्नी पति को दुख देगी; बच्चों को दुख देगी। यह परिवार दुख का हो जाएगा। यह परिवार जिन-जिन से जुड़ेगा, उनको दुख देगा; यह पड़ोस को दुखी कर देगा। ऐसे दुख फैलता चला जाता है।

दुनिया में अगर सुख लाना हो, दीया जलाओ ध्यान का, प्रार्थना का, पूजा का, अर्चना का। इस स्वार्थ को पूरा करो। सबसे पहले अपनी सेवा करो, फिर तुमसे बड़ी सेवा हो सकेगी।

"पलटू यह सांची कहै, अपने मन का फेर।

तुझे पराई क्या परी, अपनी आप निबेर।।"

पहले अपनी तरफ तो आंख उठा। पहले ध्यान अपनी तरफ तो ले जा। फिर दूसरों में उलझना। और जो सुलझ गया, उससे दूसरे भी सुलझते हैं। यह सहज ही होता है फिर; यह कुछ करना नहीं पड़ता। उसकी मौजूदगी करती है। उसके आशीष करते हैं। उसके वचन करते हैं। उसका मौन करता है। उसकी उपस्थिति करने लगती है। फिर कुछ करना नहीं पड़ता। फिर वह सेवा करने नहीं निकलता--उससे सेवा होने लगती है।

पलटू कहते हैं : मेरी तरफ देख, मैं बड़े नीचे घर में पैदा हुआ, बड़े साधारण गरीब घर में पैदा हुआ, मेरी कोई ऊंचाई न थी, मेरी तरफ देखो! मैंने अपनी निबेर ली, तो बड़ी क्रांति हो गई। क्या हुआ?

"पलटू नीच से ऊंच भा. . .।"

जैसे ही मैंने अपने भीतर भक्ति का दीया जलाया, मैं अचानक नीचे से ऊंचा हो गया। कहां खड्डे में पड़ा था, कहां शिखर पर विराजमान हो गया। कहां अंधेरे में टटोलता फिरता था और राह न मिलती थी, और कहां बिजली चमक गई, रोशनी हो गई, और सारी राह खुल गई।

"पलटू नीच से ऊंच भा, नीच कहै ना कोय।"

अब मैं चकित हूं कि मुझ साधारण आदमी के लोग पैर आकर पड़ते हैं; मेरे पैरों पर सिर रखते हैं। बड़े-बड़े अमीर राजा, बड़े प्रतिष्ठित लोग मेरी सलाह लेने आते हैं, मुझे हैरानी होती है। क्योंकि मैं तो वही हूं पलटू--साधारण सा आदमी! मेरा इसमें क्या! यह महिमा परमात्मा की है। मेरे चरणों में थोड़े ही सिर झुकाते हैं वे--वे मेरे माध्यम से परमात्मा को सिर झुकाते हैं। और कल अगर मैं इनकी सहायता करने गया होता तो इनके द्वार से ही लौटा दिया गया होता; इनके द्वार पर भी मुझे प्रवेश नहीं मिल सकता था। सहायता तो दूर, ये मेरा शब्द भी सुनने को राजी न होते। आज क्या हो गया? कैसी महिमा!

"पलटू नीच से ऊंच भा, नीच कहै ना कोय।

नीच कहै ना कोय, गये जब से सरनाई।।"

और जब से प्रभु के शरण गए, जब से गये सरनाई, जब से उसके चरणों में सिर को रख दिया, तब से कोई मुझे नीच नहीं कहता। लोग मुझे भी ऊंचा कहने लगे। उस ऊंचे के साथ जुड़ कर मैं भी ऊंचा हो गया। उस आनंदित के साथ जुड़ कर मैं भी आनंदित हो गया। उस परम उत्सव के साथ जुड़ कर मेरे जीवन में भी नाच आ गया, सुगंध आ गई।

"नीच कहै ना कोई, गये जब से सरनाई।

नारा बहिके मिल्यो गंग में गंग कहाई।।"

मैं तो नाले जैसा था, गंदा नाला था, लेकिन गंगा में मिल गया और जब से गंगा में मिल गया, मेरी भी पूजा हो रही है। मिल्यो गंग में गंग कहाई। अब तो मुझे भी लोग गंगा कहते हैं। मुझे पक्का पता है कि मैं कौन हूं। मुझे पक्का पता है मैं कैसा था। मुझे वे सारे दुर्दिन पता हैं, वे सारी लंबी अंधेरे की यात्राएं, जन्मों-जन्मों के पापकर्म मुझे सब पता हैं। लेकिन सब क्षण में धुल गया।

". . .गये जब से सरनाई,

नारा बहि के मिल्यो गंग में गंग कहाई।।

पारस के परसंग, लोह से कनक कहावै।"

यह पारस का साथ हो गया, लोहा कंचन हो गया।

तुम परमात्मा का साथ खोज लो पहले।

"तुझे पराई क्या परी, अपनी आप निबेर।"

"पारस के परसंग, लोह से कनक कहावै।

आगि मंहै जो परै, जरै आगइ होइ जावै।।"

और जब से मैं उसमें जल गया, जब से मैं उसकी आग में उतर गया, जब से मैं उस प्यारे की अग्नि में समर्पित हो गया. . .।

"आगि मंहै जो परै, जरै आगइ होई जावै।"

तब से मैं आग ही हो गया। तब से पलटू नहीं रहा--परमात्मा ही है। वही बोलता, वही उठता, वही चलता। पलटू तो खो गया।

"सोइ सती सराहिये, जरै पिया के साथ।"

पलटू कहते हैं : मैं तो जल गया उस प्यारे के साथ। मैंने तो उस प्यारे की अग्नि में अपने को समर्पित कर दिया। मैं क्या जला, मेरी सब उलझनें भी जल गईं। मैं क्या जला, मेरी सब समस्याएं भी जल गईं। मैं क्या जला, मेरे सब पाप भी जल गए। मैं क्या जला, मेरा सब अतीत भी जल गया। मैं निष्कलंक, निष्कपट, निःशुद्ध, निर्विकार होकर प्रकट हुआ।

"पारस के परसंग, लोह से कनक कहावै।"

आगि मंहै जो परै, जरै आगइ होइ जावै।।

राम का घर है बड़ा सकल ऐगुन छिप जाई।

पलटू कहते हैं : यह तो जाना तब पता चला कि राम का घर इतना बड़ा है कि सब पाप छिप जाते हैं। राम की महिमा इतनी बड़ी है कि उसके साथ जुड़ते ही सब पाप मिट जाते हैं। आदमी अपनी समस्याओं को सुलझा नहीं सकता। आदमी सुलझाता है तो और समस्याएं उलझती चली जाती हैं। आदमी की समस्याएं सुलझती हैं सिर्फ उस पारस के साथ जुड़ जाने से।

"पलटू गुरु परसाद से किया पिया को हाथ।

सोई सती सराहिये, जरै पिया के साथ।।"

उसको भर हाथ कर लो, फिर अपने से सब हो जाता है।

जीसस ने कहा है : तुम प्रभु को खोज लो, फिर शेष सब अपने से आ जाता है। और उसे बिना खोजे, तुम कुछ भी खोजते रहो, कुछ भी हाथ न आएगा; सिर्फ जीवन गंवाओगे, अवसर गंवाओगे।

"राम का घर है बड़ा, सकल ऐगुन छिप जाई।

जैसे तिल को तेल, फूल संग बास बसाई।।"

देखते हैं न, फूल के पास तिल को रख दो तो फूल की बास तिल में समा जाती है, फिर तिल का तेल बन जाता है। तेल में भी बास आती है--मगर फूल के संग।

कहीं कोई खिला हुआ फूल हो, उसके संग हो जाओ, सत्संग कर लो, तुम में भी बास बस जाएगी। और फिर परमात्मा के परम फूल के साथ जब हो जाओगे

"पलटू गुरु परसाद से किया पिया को हाथ।"

तो फिर ऐसी सुवास बस जाएगी जो एक बार बस जाती है तो फिर जाती नहीं। फिर उड़ती नहीं। कितनी ही उड़े, बढ़ती ही जाती है। कितनी ही बंटे, बढ़ती ही चली जाती है। शाश्वत झरना मिल जाता है। जैसे तिल को तेल, फूल संग बास बसाई।

"भजन केर परताप तें, तन-मन निर्मल होय।

पलटू नीच से ऊंच भा, नीच कहै ना कोय।।"

"भजन केर परताप तें. . ."

सिर्फ भजन के प्रताप से! कुछ और किया नहीं; उसका गीत भर गाया है, कुछ और किया नहीं। सिर्फ उसके रंग में रंग कर नाचे हैं। कुछ और किया नहीं, सिर्फ उसकी मस्ती की शराब पी है।

"रैन दिवस बेहोस, पिया के रंग में राती।

तन की सुधि है नाहिं, पिया संग बोलत जाती।।"

भजन का अर्थ : अपना तो होश खो गया, सिर्फ परमात्मा की प्रार्थना का होश रहा है। भजन केर परताप तें. . .। और उस भजन के प्रताप से. . . तन-मन निर्मल होय. . .सब निर्मल हो गया है।

इसे समझना। ज्ञानी कहता है : निर्मल होना पड़ेगा, तब परमात्मा मिलेगा। भक्त कहता है : परमात्मा मिल जाए तो निर्मलता आ जाए। फर्क समझ लेना। ज्ञानी कहता है : चेष्टा करनी पड़ेगी, पाप काटने पड़ेंगे, कर्म-मल धोना पड़ेगा, रग-रग साबुन से घिस-घिस कर सफाई करनी पड़ेगी। जन्मों-जन्मों का कचरा है, काटना पड़ेगा, खुद ही काटना पड़ेगा। तब जब सब तरह से शुद्धि हो जाएगी, तो फिर प्रभु का मिलन है; तो फिर सत्य का दर्शन है।

भक्त कहता है : अपने किए से यह होगा? और भक्त ने बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया है : अपने किए से यह होगा? अपने किए से तो यह कचरा पैदा हुआ। अपने किए से तो यह जन्म-जन्म का दुख और पीड़ा और अंधकार पैदा हुआ। अपने किए से उजाला होगा? अपने किए से यह गंदगी कटेगी? जिस अहंकार के कारण यह गंदगी पैदा हुई, वही अहंकार साबुन बन सकेगी?

भक्त कहता है : भरोसा नहीं आता। भक्त कहता है : मैं अपने को भलीभांति जानता हूं। अगर मेरे किए ही मुक्ति होनी है, तो फिर मुक्ति होनी ही नहीं है। मुझे तो कोई उठा ले। मुझे तो कोई पिया का हाथ मिल जाए। इस गड्ढे में गिरने में तो मैं कुशल हूं; इससे निकल मैं सकूंगा अपने आप, यह मुझे भरोसा नहीं है। निकलने की कोशिश में और गिरता जाऊंगा।

भक्त कहता है : मैंने अपने पर श्रद्धा खो दी है, जन्मों-जन्मों का अनुभव साफ कर रहा है कि मैं अपने पर क्या श्रद्धा करूं? अब तो सिर्फ एक ही चमत्कार मुझे उठा सकता है : परमात्मा मुझे उठा ले। तो मैं क्या करूं-- इस गड्ढे में पड़ा हुआ? भक्त कहता है : भजन करूंगा, उसे पुकारूंगा। उसकी सहायता चाहिए।

"भजन केर परताप तें. . .।"

भजन का अर्थ होता है : मैं तो पापी। मैं तो बुरा। मैं तो दुर्जन! मेरे किए तो गलत ही हुआ। मेरे किए गलत ही होगा। बस तेरे से आशा जुड़ी है। तेरा आश्वासन है। तू उठाए तो उठ जाएं। तू खींचे तो खिंच जाएं। तो हम क्या करें--बस पुकारेंगे।

भक्त तो ऐसा है जैसे छोटा बच्चा, अपने झूले में पड़ा है, अपने से उठ ही नहीं सकता। अपने से उठे तो झूले से और गिरेगा, हाथ-पैर तोड़ लेगा। क्या कर सकता है? रो सकता है। चिल्ला सकता है। कहीं मां होगी तो सुन लेगी।

भजन का अर्थ होता है : अगर कहीं परमात्मा है तो सुन लेगा। हम पुकारे चले जाएंगे। हम रोएंगे। और हम क्या कर सकते हैं! आंसू बहाएंगे। गीत गुनगुनाएंगे। पुकारेंगे। अगर है परमात्मा कहीं, अगर इस अस्तित्व में कहीं भी करुणा है, अगर इस अस्तित्व में कहीं भी कोई धड़कता हुआ हृदय है--तो हम इसी के बेटे हैं, इसी अस्तित्व से आए हैं, तो कहीं कोई मां हमें खींच लेगी। बस इसी भरोसे. . .।

भक्त की सारी की सारी जीवन-पद्धति पुकारने की पद्धति है; स्मरण करने की पद्धति है; रोने की पद्धति है। भक्त का भरोसा आंसुओं पर है। भक्त का भरोसा अपने हाथों पर नहीं है। अपने हाथों का खेल तो जन्मों-जन्मों देख लिया। भक्त का भरोसा तो अब रुदन पर है, कि रोएंगे, अब तो पुकारेंगे। अगर अस्तित्व में कहीं भी कोई करुणा का सूत्र है तो जरूर करुणा आएगी और बचाएगी। अगर कहीं कोई अस्तित्व में सूत्र ही नहीं करुणा का तो ठीक है, यही गड्ढा है, इससे बाहर जाने का फिर कोई उपाय नहीं।

"भजन केर परताप तें, तन-मन निर्मल होय।"

भजन की अपरंपार महिमा, कि उसे पुकारते-पुकारते, जो करने से कभी न हुआ था, उसे पुकारने से होने लगा।

तुम जरा करो यह पुकार--और तुम चकित हो जाओगे। तुम जरा घड़ी भर बैठ कर रोओ, डोलो, पुकारो परमात्मा को! शुरू-शुरू में तुम्हें लगेगा, कि क्या पागलपन कर रहे हो! क्योंकि तुमने कभी पुकारा नहीं। तो तुम्हें इस पुकारने की कला का कुछ पता नहीं। कोई फिकर न करना; समझना कि चलो पागलपन ही सही। कभी पागलपन करके भी देख लेना चाहिए, कि शायद कुछ हो। एक प्रयोग तो कर लो! और तुम चकित होओगे अगर आधा घड़ी तुम रो लिए और तुम पुकारते रहे, तुम सिर्फ राम ही राम कहते रहे, अल्लाह-अल्लाह ही कहते रहे और डोलते रहे--तुम चकित होओगे घड़ी भर बाद, तुम्हारा हृदय ऐसा हलका हो गया जैसे कभी न हुआ था! तुम फिर से छोटे बच्चे जैसे निर्दोष हो गए। यह पुकार चमत्कार कर गई। और यह तो शुरुआत है। मगर एक झलक खुलेगी। भीतर कुछ खिल जाएगा। तुम हलके हो जाओगे। चलोगे तो पैर जमीन पर न पड़ते हुए मालूम पड़ेंगे। कुछ नया-नया! सब तरफ रंग कुछ साफ-साफ है। जिंदगी उदास नहीं। चारों तरफ जैसे एक गीत छाया है। सब तरफ जैसे कोई। एक रहस्य छिपा है। तुम आश्चर्य-चकित। तुम्हारी आंखों में पहली दफा आश्चर्य का भाव फिर से उठेगा। बचपन में कभी खो दिया था वह भाव, वह सरलता फिर आएगी। तुम अपने में फर्क होते देखने लगोगे। अगर तुम ऐसे आधा घंटा पुकारने के बाद आए हो और पत्नी ने तुमसे कुछ कहा--अगर कल कहा होता तो तुम नाराज हुए होते--आज तुम अचानक पाओगे नाराजगी नहीं आ रही। आज इतनी आधा घड़ी पुकार के

बाद तो तुम अगर घर के बाहर आओगे और भिखमंगे को द्वार पर पाओगे, तो तुम यह न कह सकोगे आगे जाओ। तुम फर्क पाओगे। तुम्हारा मन होगा कुछ दें। तुम्हें इतना मिला सिर्फ पुकारने से, यह भी पुकार रहा है! कौन जाने तुम्हारे हाथ से ही परमात्मा इसे कुछ देना चाहता है। तुम्हारा देने का मन आज सरल होगा, सहज होगा। तुम दुकान पर बैठ कर पाओगे कि ग्राहक को उतनी आसानी से नहीं लूट रहे हो, जैसे कल तक लूट रहे थे। रोज-रोज तुम फर्क पाओगे। दो-चार महीने में तुम पाओगे कि तुम्हारे कलुष धुल गए, जो तुम धो-धो कर नहीं धो सकते थे--सिर्फ पुकारने से धुल गए। आंसुओं से धुल जाती है आत्मा। प्रार्थना से धुल जाती है आत्मा।

"भजन केर परताप तें, तन-मन निर्मल होय।

पलटू नीच से ऊंच भा, नीच कहै ना कोय।।"

पलटू कहते हैं : खूब हुआ! मैंने कुछ किया भी नहीं। पुकारा भर। पुकार को भी कुछ किया, ऐसा तो नहीं कह सकते। मैंने तो कुछ किया नहीं। रोया भर। अब रोने को थोड़े ही कोई बड़ा कर्तृत्व कहते हैं! लेकिन नीचे से अचानक ऊंचा हो गया। किसी ने खींच लिया गड्ढों से, बिठा दिया शिखर पर। इस सूत्र को ख्याल में रखना।

"सोई सती सराहिये, जरै पिया के साथ।

जरै पिया के साथ, सोई है नारि सयानी।

रहै चरन चित लाय, एक से और न जानी।।

जगत करै उपहास, पिया का संग न छोड़ै

प्रेम की सेज बिछाय, मेहर की चादर ओढ़ै।

ऐसी रहनी रहै, तजै जो भोग-विलासा।

मारै भूख-पियास याद संग चलती स्वासा।।

रैन दिवस बेहोस, पिया के रंग में राती।

तन की सुधि है नाहिं, पिया संग बोलत जाती।।

पलटू गुरु परसाद से किया पिया को हाथ।

सोई सती सराहिये, जरै पिया के साथ।।"

इसमें आ गया प्रार्थना का सारा सूत्र। इसमें आ गया भजन का सारा सार। मस्ती, बेहाशी, मदमस्ती। प्रभु से चर्चा, बात, संवाद, पागलपन, दीवानापन।

और दूसरे की फिकर छोड़ो; नहीं तो प्रार्थना न कर पाओगे। और प्रार्थना हो जाए तो दूसरे की सेवा तुमसे अनायास हो सकेगी।

"तुझे पराई क्या परी, अपनी आप निबेर।

अपनी आप निबेर, छोड़ि गुड़ विस को खावै।

कुवां में तू परै, और को राह बतावै।।

औरन को उजियार, मसालची जाय अंधेरे।

त्यों ज्ञानी की बात, मया से रहते घेरे।।

बेचत फिरै कपूर, आप तो खारी खावै।

घर में लागी आग, दौड़ के घूर बुतावै।

पलटू यह सांची कहै, अपने मन का फेर।

तुझे पराई क्या परी, अपनी आप निबेर।।"

पहले तो अपने को जोड़ लो प्रभु से; फिर तुम सेतु बन जाओगे बहुतों के लिए। बहुत तुम्हारे सेतु से गुजरेंगे और प्रभु से जुड़ेंगे। पहले तुम आनंदित हो जाओ; फिर बहुतों को तुम से आनंद की किरण मिलेगी। पहले तुम नाचो; फिर बहुतों के जमे-थमे पैर, सड़ गए पैर पुनः नाच से भर जाएंगे, पुनः जीवंत हो जाएंगे।

पहले तुम उत्सव से भर जाओ, फिर तुम बहुतों की आंखों में उत्सव के दीये जला दोगे। बहुत प्राण तुम्हारे साथ नाचेंगे, रास रचाएंगे; लेकिन पहले तुम. . .। शुरुआत वहां से। और घबड़ाओ मत, यह मत सोचो कि मैं इतना नीचा आदमी, मैं ऐसा पापी आदमी, मुझ से क्या होगा! ठीक है, तुमसे कुछ होने वाला नहीं है; लेकिन तुम पुकार तो सकते। कितने ही गहरे गड्ढे में कोई गिरा हो, क्या पुकार भी नहीं सकता? और कितने ही पाप में कोई पड़ा हो, क्या रो भी नहीं सकते? आंख में आंसू तो हैं, पर्याप्त है। इतने से ही बात हो जाएगी।

"पलटू नीच से ऊंच भा, नीच कहै न कोय।

नीच कहै न कोय, गये जब से सरनाई।"

जिस गड्ढे में हो, उसी को मंदिर बना लो, वहीं सिर झुका लो। उसी गड्ढे में बिछा दो नमाज का कपड़ा, वहीं झुक जाओ।

"पलटू नीच से ऊंच भा, नीच कहै ना कोय।

नीच कहै ना कोय, गये जब से सरनाई

नारा बहिके मिल्यो गंग में गंग कहाई।।

पारस के परसंग, लोह से कनक कहावै।

आगि मंहै जो परै, जरै आगइ होइ जावै।।

राम का घर है बड़ा, सकल ऐगुन छिप जाई।

जैसे तिल को तेल, फूल संग बास बसाई।

भजन केर परताप तें, तन-मन निर्मल होय।

पलटू नीच से ऊंच भा, नीच कहै ना कोय।।"

यही घड़ी आज ही आ सकती है--पुकारो! यह बात आज ही घट सकती है--रोओ! यह बात अभी हो सकती है। कोई तुम्हें सीढ़ी नहीं लगानी; तुम जहां हो वहीं परमात्मा का हाथ पहुंच जाएगा। लेकिन तुम्हारे बिना पुकारे परमात्मा तुम्हारे जीवन में बाधा नहीं देता। तुम्हारी स्वतंत्रता की सुरक्षा रखता है। तुम्हारी स्वतंत्रता के प्रति बड़ा समादर है। तुम नरक जाने को स्वतंत्र हो; तुम स्वर्ग जाने को भी स्वतंत्र हो। नरक जाने में तुम्हें चेष्टा करनी पड़ती है। स्वर्ग जाने में तुम्हें निश्चेष्ट होकर पुकारना पड़ता है। वही है भजन का सार-सूत्रः निश्चेष्ट होकर पुकारो। अपने पर भरोसा छोड़ कर पुकारो। कहो कि मेरे किए तो जो भी हुआ गलत हुआ--अब तू आ!

आज इतना ही।

दसवां प्रवचन

अनंत भजनों का फलः सुरति

पहला प्रश्नः क्या भजन जब पूरा हो जाता है, तब जो शेष रह जाता है, वही सुरति है?

सुरति का अर्थ हैः अजपा जाप। सुरति का अर्थ हैः याद करनी न पड़े; याद रहे। जैसे श्वास चलती है, श्वास चलानी नहीं पड़ती। अपने-आप रहे, सहज रहे। कृत्य न हो। हमारी चेष्टा न हो। हम भुलाना भी चाहें तो भुला न सकें। हम विस्मरण भी करना चाहें तो कोई उपाय न मिले। श्वास-श्वास में समा जाए। हमारी सहज भाव-दशा बन जाए। ऐसा अर्थ है सुरति का।

सुरति शब्द आता है स्मृति से। बुद्ध ने स्मृति शब्द का उपयोग किया था, वही शब्द लोक-भाषा में प्रचलित होते-होते सुरति बन गया। याद। लेकिन ख्याल रहे, शब्दों में नहीं, भाषा में नहीं--प्राणों में। शब्द में जो याद रहेगी, वह तो कभी-कभी भूल जाएगी, उसकी धारा अखंड नहीं हो सकती। क्योंकि मन का एक नियम है कि एक साथ मन दो काम नहीं कर सकता। अगर धन की सोचोगे तो ध्यान चूक जाएगा। ध्यान की सोचोगे, धन भूल जाएगा। घर की सोचोगे, बाजार भूल जाएगा। बाजार की सोचोगे, घर भूल जाएगा। मन एक साथ दो काम नहीं कर सकता। तो मन तो हजार काम में उलझा हुआ है--एक काम से दूसरा, दूसरे से तीसरा। मन का तो बड़ा व्यापार है।

अगर मन से ही परमात्मा की याद की तो कभी-कभी हो सकेगी। और कभी-कभी की याद का कोई भरोसा नहीं। फिर तो तभी होगी जब जीवन में बड़ा दुख होगा। मतलब से होगी। हेतु होगा। जब दुख आएगा तो याद आ जाएगी। मगर दुख के कारण आएगी। और दुख के कारण जो याद आए, वह दो कौड़ी की है। वह तो स्वार्थ से भरी है। दुख के कारण जो याद आए, उसमें तो मतलब है। परमात्मा की याद नहीं है। परमात्मा से कुछ काम करा लेने के लिए है। परमात्मा को भी सेवक बना लेने का इरादा है उस याद में--कि मुझ पर दुख आया है, तुम बैठे वहां क्या कर रहे हो? लेकिन जब सुख आएगा तो बिलकुल भूल जाओगे।

और ध्यान रहे, जिसने सुख में याद किया उसी ने पाया। दुख की याद तो झूठी है, व्यवसायिक है, सांसारिक है। जिसने सुख में याद किया. . .। लेकिन सुख में तो मन इतनी तरंगों से भरा होता है, सुख में तो मन ऐसा उड़ा-उड़ा होता है कि कौन फिकर करता है परमात्मा की! सुख में तो मन इतना उलझा होता है हजार बातों में कि उनसे निकलना मुश्किल। दुख में तो इसलिए याद करना संभव हो जाता है, क्योंकि दुख में उलझना मुश्किल है।

दुख की एक खूबी है कि आदमी उससे बाहर निकलना चाहता है; उसमें भीतर नहीं जाना चाहता। चूंकि दुख से बाहर निकलना चाहता है, दुख में उलझना नहीं चाहता, दुख से बचना चाहता है--इसलिए शायद परमात्मा की थोड़ी याद कर ले। लेकिन सुख में तो आदमी जाना चाहता है। सुख से तो बचना नहीं चाहता। सुख को तो जोर से पकड़ लेना चाहता है। सुख को तो छाती में समा लेना चाहता है। सुख तो सदा के लिए थिर हो जाए, ऐसी वासना से भरा है मन। तो सुख को तो छोड़ नहीं सकता, एक क्षण को छोड़ा, कहीं छूट ही न जाए, हाथ से धागा न निकल जाए, डोर न निकल जाए. . .। तो फिर सुख में परमात्मा की याद नहीं आती।

फिर, मन को हजार काम हैं। मन प्रक्रिया है संसार में जीने की, तो हजार काम उसके लिए रहेंगे ही। साईकिल चलाओगे तो पैडल की याद रखोगे, राह की याद रखोगे--चलते लोगों की, पुलिसमैन की, हजार बातों की। परमात्मा की याद तो चूक-चूक जाएगी। कभी-कभार आ सकती है, किसी खाली क्षण में; लेकिन सतत अखंड धारा न हो तो सुरति नहीं।

सुरति का अर्थ होता है अखंड धारा हो। भक्तों ने उदाहरण लिया है कि जैसे पानी को हम डालते हैं एक बर्तन से दूसरे बर्तन में, तो उसकी अखंड धारा नहीं होती, टूट-टूट जाती है; तेल को उंडेलते हैं एक बर्तन से दूसरे बर्तन में, उसकी अखंड धारा होती है। सुरति तेल की धार... । चौबीस घंटे पर समा जाए। जागते तो बनी ही रहे, नींद में भी बनी रहे। शरीर सो जाए, मन सो जाए, लेकिन सुरति न सोए। अखंड।

तो पहली तो बात, मन से यह काम न हो सकेगा। मन में तो कुछ भी अखंड नहीं होता; सब खंड-खंड होता है। यह बात तो मन के पार ही होकर हो सकेगी। जहां मन विसर्जित होगा, वहीं सुरति का जन्म होगा। जहां मन गया, वहीं प्रभु आया। तो सुरति कोई मनन नहीं है, क्योंकि मनन तो मन की प्रक्रिया है। यह कोई चिंतन नहीं है, क्योंकि चिंतन भी मन की ही प्रक्रिया है। सुरति बड़ी अपूर्व घटना है।

तुमने पूछा है कि "जहां भजन पूरा हो जाता है". . . ठीक पूछा है। जहां भजन पूरा हो जाता है। जहां करने योग्य किया जा चुका।

भजन में कृत्य है। सुरति में कृत्य नहीं है। जहां तुम जो कर सकते थे, प्रार्थना कर सकते थे, पूजा कर सकते थे, अर्चना कर सकते थे, भजन कर सकते थे, नाच सकते थे, तुम जो कर सकते थे, सब तुमने कर लिया, लेकिन तुमने इतना किया, इतना किया, इतना किया, कि धीरे-धीरे. . .जैसा कल पलटू ने कहा कि तिल के दानों के पास सुगंधित फूल रख दो तो तिल के दाने सुगंधित फूल की सुवास से भर जाते हैं। इसलिए तो तेल में गंध आ जाती है। तेल में गंध तिल की नहीं है--पास रखे गए फूल की है। ऐसे ही अगर तुम मन से जो कुछ हो सकता था, वह किया तुमने, सब कर डाला, जो मन कर सकता था सब किया--इस करने में ही फूल करीब आया। बहुत बार परमात्मा को याद किया चेष्टा से। तुम्हारे भीतर इसकी सुवास भरने लगी, एक दिन ऐसा आ जाएगा : मन ने भजन छोड़ दिया। भजन तो गया, लेकिन सुरति जगती रही। फूल तो चला गया, लेकिन सुवास तिल के दानों में रह गई। तो भजन की लंबी प्रक्रिया के बाद ही सुरति फलती है। भजन जहां पूर्ण हो जाता है, वहां सुरति फलती है।

सुरति निचोड़ है। सार। इत्र। भजन फूलों जैसा है। एक फूल, दो फूल, तीन फूल। मगर सब कुम्हला जाते हैं। कुम्हला ही जाएंगे। आदमी के कृत्य की कितनी गति है! थोड़ी दूर चल सकता है। क्षणभंगुर आदमी, क्षणभंगुर आदमी का कृत्य शाश्वत तक कैसे जाएगा! थोड़ी सी झलक दे सकता है शाश्वत की। क्षण भर को जब होता है, सुबह फूल जब खिलता है बगिया में, तो कौन भरोसा कर सकता है कि अभी सांझ आएगी नहीं और फूल मिट्टी में मिल जाएगा। सुबह जब फूल अपनी मस्ती में खिला होता है और सुवास को बिखेरता है, चांद-तारों से टक्कर लेने की तैयारी रखता है, सूरज से मुलाकात करता है, हवाओं के झोंकों को झेल जाता है; ऐसा आनंदित होता है कि लगता है सदा रहेगा, सदा रहेगा। इसके आनंद को देख कर लगता है कि यह कभी मिटेगा? कभी नहीं मिटेगा। लेकिन सांझ आती है, फूल गिर जाता है, बिखर जाता है। मिट्टी में खो गया। सुबह जब जीवंत था तो कितना बलशाली मालूम होता था! और कितना सुंदर! कैसी शाश्वत की झलक मारता था! सांझ पता चला : समय के भीतर कुछ भी शाश्वत नहीं है।

ऐसे ही जब भक्त भजन करता है तो ऐसा लगेगा : हो गई बात, घट गई बात। मगर भजन फूल जैसा है। सुरति इत्र जैसी है। फूल तो कुम्हला जाएंगे, लेकिन इत्र बच सकता है। तो एक-एक भजन से इत्र को निचोड़ते जाना है। शब्द को भूलते जाना है; भाव को निचोड़ते जाना है। कृत्य को भूलते जाना है; समर्पण को पकड़ते जाना है। एक दिन ऐसी घड़ी आ जाती है जब तुमने हजार-हजार भजन किए, उन सबका निचोड़ इकट्ठा हो गया है, इत्र इकट्ठा हो गया। अब भजन करने की भी जरूरत न रही--अब तुम भजन हो गए।

सुरति का अर्थ है : जब भक्त भजन हो गया। अब अभ्यास नहीं है। इसलिए कबीर ने कहा है : उठूं-बैठूं सो परिक्रमा। अब मंदिर नहीं जाता परिक्रमा करने। अब तो उठ जाता हूं, बैठ जाता हूं, तो भी परमात्मा की ही

परिक्रमा चल रही है। खाऊं-पीऊं सो सेवा। अब मंदिर में जाकर भगवान को भोग नहीं लगाता; न मंदिर की घंटियां बजाता हूं; न पूजा का थाल सजाता हूं। खाऊं-पीऊं सो सेवा। अब तो मैं खुद भी जो खाता-पीता हूं, वह भी उसी की सेवा है, क्योंकि वही भीतर भी विराजमान है; वही बाहर भी विराजमान है। इसको कबीर ने कहा है : साधो, सहज समाधि भली।

मगर यह सहज समाधि ऐसे ही नहीं घट जाती। इस सहज के पीछे बड़ी प्रक्रियाएं हैं; वर्षों की, जन्मों की प्रक्रियाएं हैं। इसलिए सहज का मतलब यह मत समझ लेना कि जो बिना कुछ किए घट जाती है। नहीं, जब घटती है तो कुछ नहीं करना पड़ता। लेकिन घटने के पहले बहुत कुछ करना पड़ता है। हजारों-हजारों भजनों के बाद कहीं एक बूंद इत्र। हजारों फूलों से निचोड़ कर कहीं एक बूंद इत्र। इसलिए तो इत्र की कीमत होती है।

सुरति है इत्र। तुम्हारे करने की बात नहीं। तुम तो भजन करो, तुम तो प्रार्थना करो, पूजा करो, ध्यान करो, नाचो, उत्सव मनाओ। प्रभु को अनेक-अनेक अंगों में याद करो। अभी तो कृत्य होगा यह। अभी तो तुम्हारे करने से ही होगा। अभी तो तुम्हें बहुत पैडल मारने पड़ेंगे। अभी तो तुम्हें हाथ-पैर बहुत तड़फड़ाने पड़ेंगे। अभी तुम तैराक नहीं हो। जब तुम बिलकुल तैराक हो जाओगे तो हाथ-पैर भी नहीं हिलाने पड़ेंगे; जल की धार पर पड़े रहोगे। जरा भी न हिलोगे-डुलोगे; जल की धार ही तुम्हें सम्हाले रहेगी। मगर वह तैरने की आखिरी अवस्था है। सुरति आखिरी बात है। नानक ने उसे अजपा जाप कहा है--जब जाप किया नहीं जाता, होता है। तुम्हारे भीतर होता है। तुम उसे सुनते हो तुम करोगे तो जाप तुमसे नीचा होगा। तुम्हारा किया हुआ तुमसे बड़ा नहीं हो सकता। तुम जब सुनोगे, तुम्हारे भीतर जब गूंज उठेगी--तुम्हारे किए से नहीं, गूंज उठ रही है, तुम तो द्रष्टा हो जाओगे, तुम देखोगे कि यह क्या हो रहा है, यह गूंज उठ रही है। यह तुम्हारे रोएं-रोएं में भरी है। यह किसी अज्ञात लोक से तुममें प्रवेश कर रही है। तुम तो इससे डोल रहे हो। तुम पर यह वर्षा हो रही है। जिस दिन तुम द्रष्टा मात्र रह जाओगे, कर्ता नहीं, उस दिन सुरति।

लेकिन, सुरति की एक बूंद, करोड़ों-करोड़ों भजनों का फल है। भजन से शुरू करो, सुरति पर पहुंचना है। सुरति का स्मरण रखो। ऐसी स्थिति की कामना रखो, ऐसी स्थिति की अभीप्सा रखो--जहां भजन करना न पड़े, हो। तुम उठो, तुम बैठो, तुम चलो, तुम आंख खोलो, आंख बंद करो--तुम्हारा प्रत्येक कृत्य परमात्मा की स्मृति से भरा हो। तुम्हारा प्रत्येक कृत्य उसकी अर्चना हो। वृक्ष को देखो तो वृक्ष में वह दिखाई पड़े। पहाड़ को देखो तो पहाड़ में वह छुपा मालूम पड़े। मनुष्यों को देखो तो मनुष्यों में बैठे हुए उसी का दीया जलता हुआ मालूम पड़े। आंख बंद करो तो भीतर उसे पाओ। आंख खोलो तो बाहर उसे पाओ। जागो तो उसमें जागो। सोओ तो उसमें सोओ।

मगर यह बात आज तो न हो सकेगी; अभी तो न हो सकेगी। सुरति तो अनंत-अनंत भजनों का फल है। भजन अभ्यास है; सुरति स्वभाव है।

दूसरा प्रश्न : रामकृष्ण परमहंस अपने संन्यासियों को कामिनी और कांचन से दूर रहने के लिए सतत चेताते रहते थे। आप अपने संन्यासियों को संसार को प्रगाढ़ता से भोगने को कहते हैं। इस फर्क का कारण क्या है?

फर्क है ही नहीं, इसलिए कारण का कोई सवाल नहीं है। रामकृष्ण की भाषा और मेरी भाषा में फर्क है। रामकृष्ण की भाषा पुराने ढब की है। रामकृष्ण की भाषा योग की भाषा है, मेरी भाषा तंत्र की भाषा है। लेकिन फर्क जरा भी नहीं है।

रामकृष्ण चेताते हैं कि कामिनी-कांचन से बचो। मैं तुम्हें चेताता नहीं। मैं कहता हूं : ठीक से संसार में उतर जाओ--कामिनी में भी और कांचन में भी--और तुम बच जाओगे। लेकिन बचाने की दृष्टि तो है ही। मेरे देखे

तुम पूरी तरह उतर जाओगे, तो बचोगे। तुम अगर पूरी तरह न उतरे, तो न बच सकोगे। कितने ही चेतो, चेत-चेत कर फिर गिरोगे। होश सम्हाल-सम्हाल कर फिर-फिर छूट जाएगा।

योग की भाषा है : दमन। योग कहता है कि जो गलत है उसे काट कर गिरा दो। तंत्र की भाषा है स्वीकार। तंत्र कहता है : जो गलत है, उसे अंगीकार करके उससे ऊपर उठ जाओ। मगर अंगीकार से उठो ऊपर।

तंत्र योग से बहुत ज्यादा महिमाशाली है। योग तो मनुष्य की साधारण बुद्धि की समझ में आ जाता है। योग की बात तो समझ में आती है। योग तो ऐसा है जैसे कि हाथ खराब है तो हाथ काट दो; पैर खराब है तो पैर काट दो। जो खराब है उसे काट कर फेंक दो। लेकिन ऐसे खराब को काट-काट कर फेंकोगे तो तुम अपंग ही हो जाओगे। शायद ही कुछ बचे जो ठीक है।

योग की भाषा ऐसी है कि अगर हाथ ने चोरी की तो हाथ काट दो। लेकिन फिर दान कैसे दोगे? दान भी हाथ से ही दिया जाता है--उसी हाथ से, जिससे चोरी की जाती है। तो अगर चोरी करने के कारण हाथ काट कर फेंक दिया तो फिर दान . . . फिर दान की असंभावना हो गई। और चोरी न की, इतने से ही काम अगर होता होता तो भी ठीक था; जब तक जीवन में दान न आए तब तक कुछ भी न होगा। चोरी न करना पर्याप्त नहीं है; उचित है, अच्छा है, लेकिन जब जीवन दान बने तभी परिपूर्णता होती है।

क्रोध न किया, यह तो हो सकता है। क्रोध को दबा दो, काट डालो; अपने को क्रोध से बिलकुल रोक लो, नियंत्रण कर लो--लेकिन जब क्रोध दब जाएगा तो करुणा कहां से आएगी? क्योंकि यह क्रोध की ऊर्जा ही करुणा बनती है। काम को काट डालो, काम कट तो जाएगा, लेकिन ब्रह्मचर्य कहां से आएगा? क्योंकि ब्रह्मचर्य काम की ही ऊर्जा का रूपांतरण है। काम का दमन किया तो प्रेम से वंचित रह जाओगे। और प्रेम से वंचित रहे तो भक्ति कैसे उठेगी?

तो योग तो बहुत सामान्य भाषा बोलता है; साधारण सांसारिक आदमी की समझ में आ जाती है भाषा। तंत्र की भाषा बड़ी वैज्ञानिक है। तंत्र कहता है : जहर का भी उपयोग किया जा सकता है औषधि की तरह। फेंको मत, जहर को भी फेंको मत। तंत्र की गुणवत्ता यही है कि तंत्र कहता है : यहां कुछ गलत तो हो ही नहीं सकता। अगर गलत हो रहा है तो हमारी कुछ भूल-चूक है।

घर में वीणा रखी है, तुम्हें बजाना नहीं आता; और तुम सोचते हो वीणा फेंक दें, क्योंकि इससे शोरगुल पैदा होता है। तंत्र कहता है : बजाना सीखो। इस वीणा में बड़े सुर पड़े हैं। इस वीणा में बड़ा संगीत सोया है। इस वीणा में बड़े आह्लाद की संभावना है। इसे फेंक मत दो। लेकिन यह बात सच है कि तुम आज ही इससे तार छेड़ने लगोगे तो सिर्फ नींद खराब होगी--तुम्हारी, पास-पड़ोसियों की। पुलिस में खबर जाएगी। लंबा अभ्यास करना होगा। इन तारों के साथ दोस्ती करनी होगी। इन तारों को पहचानना होगा। इन तारों का विज्ञान समझना होगा। इन तारों के भीतर बड़ा छिपा हुआ राज है। जिस दिन तुम कलावान हो जाओगे, जिस दिन तुम समझ लोगे सरगम--इनमें छिपे स्वरों का रहस्य, इनके स्वरों की भाषा--उस दिन इससे अपूर्व संगीत पैदा कर सकोगे। अंगुलियां तुम्हारे पास हैं, सितार तुम्हारे पास है; लेकिन इससे ही तो संगीत पैदा नहीं होता, बीच में अभ्यास होना चाहिए, बीच में लंबा अभ्यास होना चाहिए।

किसी ने एक बहुत बड़े सितारवादक को पूछा--जगत-प्रसिद्ध सितारवादक--कि अब तो आपको अभ्यास न करना पड़ता होगा। उसने कहा कि नहीं, क्षमा करें, अगर मैं एक दिन अभ्यास नहीं करता तो मुझे पता चल जाता है कि कुछ कमी रह गई। अगर मैं दो दिन अभ्यास नहीं करता तो मेरे जो आलोचक हैं, उनको पता चल जाता है कि कुछ कमी है। और अगर मैं तीन दिन अभ्यास नहीं करता तो सामान्य जनता को भी पता चल जाता है कि कुछ कमी है। अभ्यास सतत चलता है। ऐसी घड़ी भी आती है जब अभ्यास के पार हो जाता है आदमी।

तभी समझो कि पूर्ण मंजिल मिली--जब सितारवादक को वीणा की भी जरूरत न रह जाए; वह वीणा को छोड़ दे; उसका संगीत उससे ही पैदा होने लगे। वैसी घड़ी भी आती है। लेकिन वह घड़ी तो आखिर में आती है। उसके पहले तो सितार के साथ बहुत दिन की दोस्ती बांधनी पड़ेगी।

तंत्र बड़ा अपूर्व है। योग साधारण है। योग भोगी को भी समझ में आ जाता है, क्योंकि योग भोगी की ही भाषा बोलता है। भोगी भी जानता है कि काम दुख लाता है; और योग कहता है : छोड़ो।

रामकृष्ण कहते हैं : कामिनी-कांचन से बचो। यह सभी को समझ में आ जाता है। सभी को पता है कि कामिनी से दुख मिला, पीड़ा मिली। सभी को पता है कि जितना कांचन के पीछे दौड़े, धन के पीछे दौड़े, उतना पागलपन आया, हाथ तो कुछ न लगा। यह तो भोगी को भी पता है। योग भोग की भाषा बोलता है। तुम्हें बहुत अजीब लगेगी बात। तुम सोचते हो : योग उलटा है भोग से। योग बिलकुल नहीं है उलटा भोग से। असली उलटी चीज तो तंत्र है। योग तो बिलकुल वही भाषा बोल रहा है, जो तुम बोलते हो; जरा भी अंतर नहीं है। इसलिए तो योग का इतना प्रभाव पड़ा भोगियों पर। तंत्र को तो कोई जगह न मिली, क्योंकि तंत्र को समझने की बड़ी और भाषा चाहिए।

तंत्र कहता है : अंगीकार कर लो, स्वीकार कर लो। परमात्मा ने जो दिया है, उसमें कुछ न कुछ रहस्य होगा। काटो मत, फेंको मत। रुको, जल्दबाजी न करो।

योग कहता है : हटाओ! यह गोबर यहां इकट्ठा कर रखा है, इससे दुर्गंध उठ रही है।

तंत्र कहता है : इसकी खाद बनाएंगे। इसको फूलों की जड़ों में डालेंगे। यही गोबर, यह उठती हुई दुर्गंध, फूलों में से सुगंध बन कर प्रकट होगी। जरा रुको।

तंत्र तो माली का काम करता है। योग कहता है : हटा दो, यहां इस घर में बदबू फैल रही है। यह कहां इकट्ठा कर रखा है कूड़ा-कबाड़!

योग कहता है : हटाओ यह कीचड़।

तंत्र कहता है : जरा रुको, इसमें कमल के बीच बोए हैं; जल्दी ही इस कीचड़ से कमल उठेंगे।

संस्कृत में कमल का नाम है : पंकज। पंकज का अर्थ होता है--पंक से; कीचड़ से, कीचड़ से जो पैदा होता।

तुमने यह रहस्य देखा, कमल जैसा कोई फूल नहीं! और कमल गंदगी से पैदा होता है। हमने बुद्ध को कमल पर बिठाया है और हमने विष्णु की नाभी से कमल उगाया है। और समस्त ज्ञानियों ने कहा कि सातवें चक्र में जब ऊर्जा पहुंचती है तो सहस्रदल कमल खुलता है, सहस्रार खुलता है। जो भी श्रेष्ठ है इस जगत में, हमने उसकी उपमा कमल से दी है। और कमल पैदा कीचड़ में होता है। योग कहता है : कीचड़ को फेंको, सफाई करो। सफाई तो हो जाएगी, लेकिन कमल फिर पैदा नहीं होंगे।

तंत्र कहता है : कीचड़ है, इससे कमल हो सकते हैं : जरा धैर्य रखो, धीरज रखो। कला सीखो। कमल पैदा हो सकते हैं। और कमल पैदा हो जाएं, तभी कुछ खूबी है। कमल पैदा हो जाएं, तभी कुछ बुद्धिमानी है।

मैं तंत्र की भाषा बोलता हूं। मैं तुमसे कहता हूं : काम से ही प्रेम पैदा होता है। काम में ही छिपा पड़ा है प्रेम। काम ही प्रेम नहीं है। कीचड़ ही कमल नहीं है। लेकिन कमल कीचड़ में छिपा पड़ा है। छांटो! प्रेम को बचा लो। कहीं काम को काटने में प्रेम को भी मत काट देना। यही होता है। तुम्हारे तथाकथित महात्मा कामवासना को काट देते हैं; उनके जीवन से प्रेम भी कट जाता है। फिर बैठे हैं वे--उदास, मुर्दे की भांति! उनके जीवन में प्रेम के कमल नहीं खिलते, प्रेम के स्वर भी नहीं उठते। यह तो बात बड़ी गड़बड़ हो गई। बुराई से तो छुटकारा मिल गया, भलाई पैदा नहीं हुई। क्यों नहीं पैदा हुई? क्योंकि बुराई की जो ऊर्जा थी, उससे भी छुटकारा होता है। वही ऊर्जा भलाई बनने वाली थी।

तुम्हारे भीतर जो भी ऊर्जाएं हैं, वे विकसित होने को हैं, काटने को नहीं हैं। उनकी सीढ़ियां बनानी हैं।

तो तंत्र कहता है : संसार में जाओ। सब तरह के अनुभव में जाओ। काम से प्रेम पैदा होगा। फिर प्रेम में भी अगर खोजबीन जारी रखी, और छांटा, और खोजा, और गहरे गए--तो भक्ति पैदा होगी। भक्ति पैदा हो जाए, तब तक रुकना मत। और जिस दिन भक्ति पैदा हो जाएगी, उस दिन तुम अचानक पाओगे : आज काम का तो कहीं भी स्वर नहीं रहा। जिस दिन कमल पैदा हो गया, कमल में तुम कीचड़ खोज पाओगे! कीचड़ की तो बात

छोड़ो, कमल को पानी भी नहीं छूता। कीचड़ की तो बात ही छोड़ दो, पानी भी नहीं छूता कमल को। इसलिए सारे ज्ञानियों ने कमल की उपमा ली है।

संन्यासी कमलवत होना चाहिए। पानी में हो और पानी छुए न। संसार में हो और संसार छुए न। संसार से भाग कर अगर संसार न छुआ तो इसमें कोई महिमा नहीं है। संसार से भाग गए, फिर संसार न छुआ तो इसमें महिमा क्या है? लौट कर आओ, पता चल जाएगा कि अभी भी छूता है। इसलिए भगोड़े संन्यासी डरे रहते हैं कि कहीं वापस संसार में जाना न पड़े; घबड़ाए रहते हैं। यह कोई मुक्ति हुई? ऐसी घबड़ाहट से भरी हुई मुक्ति दो कौड़ी की है।

तो रामकृष्ण जो कहते हैं कामिनी-कांचन से सावधान, वही मैं भी कहता हूं। लेकिन रामकृष्ण योग की भाषा बोलते हैं; मैं तंत्र की भाषा बोलता हूं। मैं कहता हूं, रामकृष्ण जैसा ही कहता हूं कि पार तो जाना है; लेकिन काट कर नहीं, जीकर, अनुभव से। निचोड़ना है जीवन से परमात्मा को। परमात्मा यहां छिपा है। जैसे सोना पड़ा है खादान में, मिट्टी में मिला। मिट्टी को निकाल कर अलग कर देना है, सोने को बचा लेना है।

कामवासना से जीवन पैदा होता है, यह तो तुम देखते ही हो। कामवासना से सिर्फ संसार के बंधन ही पैदा होते हैं, इतनी ही बात देखते हो? दूसरी बात नहीं देखते कि कामवासना से तुम पैदा हुए? सारा जीवन कामवासना से पैदा होता है। तो कामवासना से दो चीजें पैदा हो रही हैं--दो पहलू हैं : एक तरफ संसार पैदा हो रहा है और एक तरफ जीवन का आविर्भाव हो रहा है। ये फूल सब कामवासना के खिले हैं। ये पक्षी जो गुनगुनाहट कर रहे हैं, यह सब कामवासना की है। यह पुकार चल रही है प्रेम की। यह अपनी प्रेयसी और प्रेमी की तलाश चल रही है। वह जो मोर पंख फैला कर नाचता है, वह क्या तुम सोचते हो भजन कर रहा है? या कोयल जो कुहू-कुहू की पुकार करती है, क्या तुम सोचते हो पागल हो गई है? वह सब प्रेम की ही गुहार है। वे काम के ही रूप हैं।

अगर तुम गौर से देखो तो सारे जगत में तुम्हें काम ही दिखाई पड़ेगा। वैज्ञानिक कहते हैं कि फूलों से जो गंध उठती है, वह भी काम है। गंध के माध्यम से फूल अपने वीर्याणुओं को भेज रहे हैं--दूसरे फूलों के पास--जहां मिल कर नए जवीन की शुरुआत हो जाएगी।

यह सारा जगत अगर तुम देखोगे तो काम का विस्तार है। इसमें जो भी जीवंत है, वह काम है। इतने जीवन का जहां से स्रोत है, उसी स्रोत में कहीं परमात्मा को खोजना होगा।

तो मैं तुमसे कहता हूं : जो भी जीवन लाए, घबड़ाओ मत, होशपूर्वक जाओ। बस इतना ही ख्याल रखो कि होश कायम रहे और जाओ। होश जरूर कायम रहे, ताकि तुम देख सको : क्या क्या है! कहां क्या है! और अनुभव निचोड़ सको। जिस दिन तुम्हारे जीवन में सारे अनुभव हो जाएंगे, तुम उनके पार भी हो जाओगे।

पार तो निश्चित होना है--कामिनी-कांचन के पार जाना है। लेकिन पार जाने का रास्ता कामिनी-कांचन से होकर गुजरता है। बच कर जाने का कोई रास्ता नहीं है। बाजार से अगर मुक्त होना हो तो बाजार से ही गुजर कर जाता है रास्ता। ऐसे बाजार के बाहर से भागने की कोशिश मत करना, अन्यथा तुम गैर-अनुभवी रह जाओगे। पहाड़ पर बैठ जाओगे, लेकिन बाजार तुम्हारे भीतर गूंजता रहेगा। जिसका तुम्हें अनुभव नहीं हुआ, उससे कभी छुटकारा नहीं होता। अनुभव मुक्ति लाता है।

देखने देखने की बात है। कल मैं एक कविता पढ़ रहा था :

रास्ते में कुछ मिला

एक ने कहा : ओह, यह कला है।

दूसरे ने कहा : उफ यह बला है।

तीसरे ने ध्यान से देखा और कहा : छीः, यह तो जूते का तला है :

तुम जीवन को गौर से देखो। यहां जो-जो व्यर्थ है, वह दिख जाएगा। जैसे ही दिख जाएगा, वैसे ही छूट जाओगे। पहले शरीर में सौंदर्य दिखाई पड़ता है; जब तुम गौर से देखोगे तो कहोगे : छीः, यह तो जूते का तला

है। फिर मन में सौंदर्य दिखाई पड़ेगा। एक दिन तुम वहां भी पाओगे, यहां भी कुछ नहीं है। फिर आत्मा में सौंदर्य दिखाई पड़ेगा। तुम गहरे होने लगे। फिर एक दिन तुम पाओगे : यहां भी कुछ नहीं। तब परमात्मा का सौंदर्य दिखाई पड़ता है। परमात्मा का सौंदर्य आखिरी गहराई है--अतल गहराई है। लेकिन चलना तो धीरे-धीरे ही पड़ता है--उथले से गहरे की तरफ।

अनुभव के अतिरिक्त कोई मुक्ति नहीं है। और जब अनुभव पूरा हो जाता है तो अपूर्व घटना घटती है।

बुद्ध के जीवन में एक उल्लेख है। बुद्ध को जिस रात संबोधि लगी, समाधि लगी, उस रात छः वर्ष तक अथक मेहनत करने के बाद उन्होंने सब मेहनत छोड़ दी थी। छः वर्ष तक उन्होंने बड़ी तपश्चर्या की, बड़ा योग साधा। शरीर को गला डाला, हड्डी-हड्डी रह गए। कहते हैं पेट पीठ से लग गया, चमड़ी सूख गई, सारा जीवन-रस सूख गया; सिर्फ आंखें रह गई थीं। बुद्ध ने कहा है कि मेरी आंखें ऐसी रह गई थीं, जैसे गरमी के दिनों में किसी गहरे कुएं में तुम देखो, थोड़ा सा जल रह जाता है, गहरे अंधेरे में, ऐसे मेरी आंखें हो गई थीं गड्ढों में। जरा सी चमक रह गई थी। बस अब गया तब गया जैसी हालत थी। उस दिन स्नान करके निरंजना नदी से बाहर निकलते थे, इतने कमजोर हो गए थे कि निकल न सके। एक वृक्ष की जड़ पकड़ कर अपने को रोका, नहीं तो निरंजना उनको बहा ले जाए। उस जड़ से लटके हुए उन्हें ख्याल आया कि यह मैं क्या कर रहा हूं; यह मैंने शरीर गला लिया; यह सब तरह का योग करके मैंने अपने को नष्ट कर लिया। मेरी हालत यह हो गई है कि यह छोटी सी क्षीण धारा निरंजना की, यह मैं पार नहीं कर सकता और भवसागर पार करने की सोच रहा हूं!

इससे उन्हें बड़ा बोध हुआ। बिजली कौंध गई। उन्होंने कहा : यह मैंने क्या कर लिया! यह तो मेरी आत्मघात की प्रक्रिया हो गई। मैं निरंजना नदी पार करने में असमर्थ हो गया, तो यह भवसागर मैं कैसे पार करूंगा! यह तो मुझसे कुछ गलती हो गई।

उस सांझ उन्होंने सब छोड़ दिया। घर तो पहले ही छोड़ चुके थे, संसार पहले ही छोड़ चुके थे, राज-पाट सब पहले ही छोड़ चुके थे--उस संध्या उन्होंने त्याग, योग सब छोड़ दिया। भोग पहले छूट गया था, आज त्याग भी छोड़ दिया। उनके पांच शिष्य थे, वे पांचों उनको छोड़ कर चले गए--जब गुरु ने त्याग छोड़ दिया। और एक स्त्री जिसके कुल का, वंश का कुछ पता नहीं और पूरी संभावना है कि वह अछूत रही होगी, क्योंकि उसका नाम था : सुजाता।

अक्सर ऐसा होता है कि अगर किसी स्त्री का नाम सुंदरबाई हो तो इतनी बात समझ लेना कि वह सुंदर न होगी--वे नाम से धोखा दे रहे हैं; जो असलियत में नहीं है अब नाम लगा कर धोखा दे रहे हैं। सुजाता का अर्थ है : ठीक घर में पैदा हुई। ठीक घर में पैदा होती तो यह नाम दिया ही नहीं जाता। वह तो अछूत घर में पैदा हुई होगी। कुछ पक्का नहीं है, लेकिन नाम से लगता है कि अछूत घर में पैदा हुई होगी।

तुमने देखा है न कि आंख के अंधे नाम नयनसुख। सुजाता से लगता है कि कहीं दंश रहा होगा मन में बाप के, कि मेरी बेटी अच्छे कुल में पैदा नहीं हुई है, तो नाम से पूर्ति कर ली होगी।

शिष्यों ने छोड़ दिया बुद्ध को। उन्होंने कहा : एक तो त्याग छोड़ दिया और इस न मालूम अजान कुल-कन्या के, किस कुल से आई, कहां से आई, कौन है . . .। उस सुजाता ने मनौती मनाई थी कि पूर्णिमा की रात फलां-फलां वृक्ष को--जहां वह सोचती थी देवता का वास है, गांव के लोग सोचते थे--खीर चढ़ाएगी। जब वह वहां पहुंची तो उसने बुद्ध को वहां बैठे देखा। उसने तो समझा कि वृक्ष का देवता प्रकट हुआ है। उसने खीर बुद्ध को चढ़ा दी। वह तो बड़ी धन्यभागी समझी अपने को। उसने तो वृक्ष के देवता को खीर चढ़ाई, लेकिन बुद्ध तो सब त्याग कर चुके थे तो उन्होंने खीर स्वीकार कर ली। और कोई दिन होता तो वे स्वीकार भी न करते। शिष्य उन्हें छोड़ कर चले गए। उन्होंने कहा : यह गौतम भ्रष्ट हो गया। उस रात बड़े निश्चिंत सोए बुद्ध। पहली दफा निश्चिंत सोए। न संसार बचा न मोक्ष बचा। कुछ पाना ही नहीं था तो अब चिंता क्या थी! चिंता तो पाने से पैदा होती है। जब पाना हो तो चिंता पैदा होती है।

तुमने देखा न, कभी रात अगर पाने का कुछ ख्याल पकड़ा रहे मन में, कि एक मकान खरीदना है, कि एक नया धंधा करना है, कि यह करना है, कि लॉटरी का नंबर कल खुलने वाला है--कुछ मन में लगा रहे, दौड़ बनी रहे, तो चिंता होती है।

उस रात तो कोई चिंता नहीं रही। मोक्ष की भी चिंता नहीं रही। बात ही छोड़ दी। बुद्ध ने कहा : यह सब फिजूल है। न यहां कुछ पाने को है, न वहां कुछ पाने को है। पाने को कुछ है ही नहीं। मैं नाहक ही दौड़ में परेशान हो रहा हूं। अब मैं चुपचाप सब यात्रा छोड़ देता हूं। निश्चिंत सोए। उस रात उन्होंने अपने जीवन को जीवन की धारा के साथ समर्पित कर दिया। धारा के साथ बहे; जैसे कोई आदमी तैरे न, और नदी में हाथ-पैर छोड़ दे और नदी बहा ले चले। खूब गहरी नींद थी। सुबह आंख खुली और पाया कि समाधिस्थ हो गए।

लेकिन तब जो घटना मैं तुमसे कहना चाहता हूं, वह घटी। रात वह जो सुजाता, मिट्टी के पात्र में . . . गरीब घर की लड़की रही होगी। मिट्टी के पात्रों में गरीब घर के लोग ही खाना खाते हैं। वह मिट्टी के पात्र में खीर छोड़ गई थी। वह पात्र पड़ा था। बड़ी मीठी कथा है। बुद्ध ने वह पात्र उठाया। वह निरंजना में गए नदी के किनारे। उन्होंने कहा, कि अगर यह सच है, जैसा मुझे लगता है कि समाधि फलित हो गई है, पहली दफा मुझे ज्ञान हुआ है, मैं अपूर्व ज्योति से भरा हूं, मेरे सब दुख मिट गए, मुझे कोई चिंता नहीं रही, मुझे कोई तनाव नहीं रहा, मैं ही नहीं रहा, मैं समाप्त हो गया हूं, मुझे तो पक्का अनुभव हो रहा है कि मैंने पा लिया, जो पाने योग्य है मिल गया! यह करोड़ों-करोड़ों वर्षों में मिलने वाली समाधि मेरी खिल गई। मगर मैं सबूत चाहता हूं। मैं अस्तित्व से सबूत चाहता हूं कि ऐसा मुझे तो लग रहा है कि मिल गई, लेकिन प्रमाण क्या है! अस्तित्व से क्या प्रमाण है?

तो उन्होंने वह पात्र निरंजना में छोड़ा, और कहा : अगर यह पात्र नीचे की तरफ न जाकर नदी में ऊपर की तरफ बहने लगे, तो मैं मान लूंगा कि मुझे हो गया। और बुद्ध ने देखा और नदी के किनारे जो मछुए मछली मार रहे थे, उन्होंने चौंक कर देखा, वह पात्र नदी के ऊपर की तरफ बहने लगा! तेजी से बहने लगा! और जल्दी ही आंखों से ओझल हो गया।

यह कहानी बड़ी मीठी है और बड़ी प्रतीकात्मक है और बड़ी अर्थपूर्ण है। रात बुद्ध ने अपने को छोड़ दिया नदी की धारा में बहने को। जब पूरा छोड़ दिया नदी की धारा में बहने को, तो दूसरे दिन नदी ने भी प्रमाण दिया कि अब तुम ऊपर की धारा में भी जा सकते हो। तुम तो क्या, तुम्हारे हाथ से छोड़ा हुआ पात्र भी ऊर्ध्वगामी हो जाएगा।

यह तंत्र है। यह तंत्र का मूल आधार है। तुम उतर जाओ संसार में--पूरे भाव से, समग्र भाव से, सब छोड़ कर। झगड़ा नहीं, झंझट नहीं, कलह नहीं--सिर्फ होश रखते हुए जीवन को उतर जाओ। और तुम अचानक एक दिन पाओगे कि तुमने तो नीचे जाने के लिए समर्पण किया था, तुम ऊपर जाने लगे। न केवल तुम, तुम्हारे हाथ के छोड़े हुए पात्र भी जीवन की धारा में ऊपर की तरफ यात्रा करने लगेंगे।

तो मैं तो तंत्र की भाषा बोलता हूं। लेकिन परिणाम वही है। रामकृष्ण कहते हैं : कामिनी-कांचन से दूर रहो। मैं कहता हूं : कामिनी-कांचन से दूर हो जाओगे, संसार में ठीक से उतरो। अलग-अलग बातें हैं। कहने के ही ढंग में भेद हैं। सत्य तो एक ही है।

ऐसा हुआ, सड़क के किनारे दो व्यक्ति लड़ रहे थे। एक के हाथ में बड़ा डंडा था और दूसरे के हाथ में एक लंबा चाकू था और दोनों मारने-मरने पर उतारू थे, और अनेक लोग समझा रहे थे कि भाई, लड़ो मत, क्या फायदा। तुम्हारे बाल बच्चे हैं, उसकी भी पत्नी है, घर द्वार है। तुम्हारे बूढ़े मां-बाप हैं। यह तुम क्या कर रहे हो? कोई मर-मरा गया तो क्या होगा? बड़ी भीड़ समझा रही थी, लेकिन जितना लोग समझा रहे थे उतना ही उनका जोश बढ़ता जा रहा था।

असल में भीड़ अगर न समझाए तो शायद जोश भी कम हो जाए। मगर जब भीड़ समझाने आ जाती है तो फिर जोश कम होता ही नहीं। अगर भीड़ खड़ी न हो तो शायद वे अपने-आप चुपचाप घर चले जाएं। लेकिन अब जब इतनी भीड़ देखने वालों की इकट्ठी हो जाती है तो अहंकार और बल मारता है।

तभी एक आदमी अचानक भीड़ में से बाहर आया और उसने दोनों आदमियों के हाथ में एक-एक पर्चा दिया और पर्चा देकर वह तो भीड़ में नदारद भी हो गया। उन दोनों ने एक साथ पर्चा पढ़ा। पर्चे पर लिखा था : भाइयों, मेरे दवाखाने में गहरे से गहरे जख्म की मरहम-पट्टी का सुंदर प्रबंध है और मेरा दवाखाना यहां से चंद कदम ही दूर है, जरूरत हो तो चले आना। लेकिन उसका यह पर्चा पढ़ते ही दोनों शांत हो गए। कुछ अपूर्व घटना घटी। दोनों ने सोचा होगा : यह भी हद हो गई, हमारी यहां जान जोखिम में है, कोई अपने दवाखाने का विज्ञापन कर रहा है! उन दोनों ने पर्चे गिरा दिए और अपने-अपने रास्ते घर चले गए वापस। समझाने वालों से न समझे, लेकिन इस आदमी के दवाखाने के पर्चे ने काम कर दिया।

जब मैं तुमसे कहता हूं कि संसार में जाओ, तब मैं यह थोड़े ही कह रहा हूं कि संसार में कुछ है। मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि खूब घाव मिलेंगे, खूब दुख भोगना पड़ेगा। लेकिन जब तक तुम संसार का दुख न भोगोगे, तब तक तुम संसार से मुक्त नहीं हो सकते। संसार का दुख भोग कर ही तो तुम्हें समझ में आएगा कि व्यर्थ है यह दौड़, यहां कुछ भी पाने योग्य नहीं। अन्यथा कैसे समझ में आएगा? मेरे कहने से अगर तुम समझते होते, तब तो बात बड़ी सुगम हो जाती। लेकिन तब सत्य उधार मिलता। अच्छा ही है कि तुम्हें दूसरे की बात समझ में नहीं आती। नहीं तो बुद्ध पुरुष तो सदा हुए और सदा कहते रहे कि संसार में कुछ भी नहीं है, फिर भी तुम जाते हो। तुम्हें लगता है कुछ है। तो असली सवाल यह है कि तुम्हें कैसे लगे कि कुछ नहीं है? मेरे कहने से कैसे लगेगा? रामकृष्ण कहते रहें, इससे कैसे लगेगा? और रामकृष्ण ठीक ही कहते हैं कि कुछ भी नहीं है भाई। रामकृष्ण ने देखा है। लेकिन तुमने अभी देखा नहीं। और कानों सुनी सो झूठ सब, आंखों देखी सांच। अब रामकृष्ण कहते हैं, पता नहीं क्या मामला है, दिमाग भी खराब हो सकता है, कुछ धोखाधड़ी कर रहे हो! कुछ इनका मतलब हो, कौन जाने! या न धोखाधड़ी करते हों, न पागल हों, भ्रम में पड़ गए हों! सारा संसार तो जा रहा है कामिनी-कांचन की तरफ, यह एक सज्जन खड़े कह रहे हैं कि सावधान कामिनी-कांचन की तरफ मत जाना! यह अपवाद मालूम होते हैं। इतनी बड़ी भीड़ की मानें कि इनकी मानें। और जहां इतने लोग चले जा रहे हैं, बुद्धिमान-बुद्धू सब जा रहे हैं, वहां एक आदमी भीड़ के बाहर खड़े होकर चिल्ला रहा है। यह तो नक्कारखाने में तूती की आवाज है।

मैं तुमसे यह नहीं कहता। मैं कहता हूं : जरा तेजी से दौड़ो। जिंदगी को जल्दी देख लो, कहीं ऐसा न हो कि जिंदगी देखते-देखते मौत आ जाए। इतनी जल्दी देख लो जिंदगी को, उतना अच्छा। जितने पहले तुम जिंदगी में देख कर थक जाओ, अनुभव तुम्हें दिखा दे कि यहां कुछ भी नहीं है, यह मृग-मरीचिका है--तो तुम मुक्त हो जाओगे।

लेकिन मेरी भाषा तंत्र की भाषा है। जीवन का विरोध नहीं है; जीवन को जानना है। और जानने के लिए निर्विरोध भाव से जाना जरूरी है। जिसे भी जानना हो, उसके प्रति पहले से पक्षपात मत बना लेना।

तुम चकित होओगे कि मनुष्य-जाति उस घटना के करीब आ रही है, जहां बड़े पैमाने पर लोग संसार से मुक्त हो सकते हैं। अब तक ऐसा इक्का-दुक्का होता था, कभी-कभार होता था। लेकिन इस सदी के पूरे होते-होते कम से कम पश्चिम के मुल्कों में तो निश्चित ही बहुत लोग संसार से मुक्त हो जाएंगे। क्योंकि संसार को देखने के, संसार को जीने के इतने उपाय खोज लिए गए हैं कि जिस जीवन को देखने के लिए कई जन्म लगते थे, वह एक ही जीवन में देखा जा सकता है। अब समझो कि एक आदमी आज से हजार साल पहले पूरब में पैदा हुआ होता या अभी-अभी पूरब के गांव में पैदा हुआ है। एक दफे विवाह हो गया, हो गया। अब जिंदगी भर एक ही औरत को देख पाओगे? और यह शक तो बना ही रहेगा कि इस औरत से तो नहीं मिला सुख, लेकिन और किसी औरत

से मिल सकता था। इसका संदेह तो बना ही रहेगा। इतनी सुंदर स्त्रियां हैं, अभिनेत्रियां हैं; परदों पर उनकी रंगीन तस्वीरें हैं। तो तुम्हें अपनी पत्नी से नहीं मिल सका सुख, इसने खूब दुख दिया; यह कामिनी तो खतरनाक सिद्ध हुई। रामकृष्ण इसके बाबत तो सच कहते हैं, मगर और के बाबत, हेमामालिनी के संबंध में क्या कहते हैं? वह जो तस्वीर पर्दे पर बनती है, लुभावनी सारी व्यवस्थाओं से--उसका आकर्षण पकड़ता है। इससे तुम कैसे छूटोगे? कई जन्म लगेंगे।

आधुनिक सभ्यता कई जन्मों की जरूरत को समाप्त किए दे रही है।

पश्चिम में एक आदमी अपनी जिंदगी में आठ या दस बार शादी कर लेता है। तुम एक स्त्री से धोखा खाते हो; वह दस स्त्रियों से धोखा खाता है। तुम एक पति से धोखा खाते; पश्चिम की स्त्री दस पतियों से, बीस पतियों से धोखा खा लेती है। कितनी बार तुम झुठलाओगे? इस बार कहोगे कि चलो यह आदमी ठीक नहीं मिला, यह दूसरा आदमी ठीक है; अब इससे विवाह कर लें। उससे विवाह करते हो, पाते हो फिर वही चक्कर। दो-चार-दस दिन के बाद हनीमून समाप्त हुआ और चक्कर वही का वही है। कुछ फर्क नहीं पड़ता। आदमियों की शक्लें अलग हैं; ऊपर के रंग-ढंग अलग हैं--भीतर से वही बीमारियां निकलती हैं, वही क्रोध, वही ईर्ष्या, वही वैमनस्य, वही घृणा, वही सब उपद्रव। दस-पांच बार, पुरुष बदल लेने के बाद, दस-पांच बार स्त्रियां बदल लेने के बाद क्या तुम्हें यह विचार मन में नहीं उठने लगेगा कि यह बात भ्रांत ही मालूम पड़ती है, ये सब मृग-मरीचिकाएं हैं?

यह कुछ आश्चर्यजनक नहीं है कि पश्चिम के लोग धर्म में उत्सुक हो रहे हैं। उत्सुक होने का कारण हैं। पूरब के लोग धर्म में उत्सुक नहीं रहे हैं। अगर पूरब के लोगों की तरफ गौर से देखो तो उनकी सारी उत्सुकता पश्चिम में है--और अच्छी मशीनें कैसे ले आएं; एटम बम कैसे बना लें; विज्ञान की नई-नई कलाएं कैसे सीख लें। पश्चिम की तरफ भाग रही है पूरब की मनीषा। पश्चिम की मनीषा पूरब की तरफ आ रही है, पश्चिम से लोग खोज करने आ रहे हैं--ध्यान क्या है; भक्ति क्या है; प्रार्थना क्या है। यह तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता कि मामला क्या हो रहा है? ऐसा क्यों हो रहा है? पूरब का आदमी धन से परेशान है; धन नहीं मिला। सुंदर स्त्री नहीं मिली, सुंदर मकान नहीं मिला। मिला नहीं तो अनुभव नहीं हुआ। अनुभव नहीं हुआ तो छुटकारा नहीं होता। पश्चिम के आदमी के पास सब है। सुंदर से सुंदर कार है; सुंदर से सुंदर मकान है; सुंदर से सुंदर पत्नी, पति, बच्चे। और सब खाली हाथ, कोरे के कोरे! राख हाथ में मुंह में राख का स्वाद। इसका बड़ा क्रांतिकारी परिणाम हो रहा है। पश्चिम का आदमी उत्सुक हो रहा है बुद्ध की बातों में, क्राइस्ट की बातों में। एक नया जागरण पैदा हुआ है।

यहां तुम चकित होओगे। पश्चिम से आए हुए मेरे संन्यासियों में कोई वैज्ञानिक है, कोई डॉक्टर है, कोई इंजीनियर है, कोई प्रोफेसर है, कोई चर्च का पादरी है। ये सारे लोग वहां जीवन को देख कर आ रहे हैं। और यहां पूरब के लोग इन पर हंसते हैं!

स्वभावत; जिसके पास जो नहीं है उसी की मांग होती है।

ऐसा हुआ, सम्राट अकबर एक फकीर से मिलने जाया करता था। कभी-कभी फकीर भी सम्राट को मिलने आता था। आखिर सम्राट से रहा न गया। एक दिन उसने पूछा . . . एकांत था, दोनों बैठे थे . . . उसने पूछा : एक बात पूछूं? आप जब भी आते हैं तो पैसे की मांग करते हैं। मैं जब भी आता हूं तो परमात्मा की बात करता आता हूं। यह कैसी फकीरी आपकी? आपसे तो मैं ज्यादा धार्मिक; मैं जब भी आता हूं तो परमात्मा की बात करने आता हूं। और आप जब भी कभी आते हैं मेरे पास तो कुछ रुपए की मांग करते हैं धन की मांग करते हैं।

वह फकीर हंसने लगा। उसने कहा कि यह तो सीधा-साफ है, इसमें मामला क्या? तुम्हारे पास धन है, इसलिए तुमसे धन मांगता हूं। मेरे पास परमात्मा है, इसलिए तुम परमात्मा मांगते हो। मेरे पास धन नहीं है, इसलिए मैं धन मांगता हूं। तुम्हारे पास परमात्मा नहीं है, इसलिए तुम परमात्मा मांगते हो। जिसके पास जो नहीं है, वही आदमी मांगता है।

यह बात मुझे जंची। इस फकीर ने बड़ी गहरी बात कही है : जिसके पास जो नहीं है, वही आदमी मांगता है।

पूरब धन मांग रहा है; धन नहीं; रोटी, रोजी, कपड़ा, मकान . . .। पश्चिम कुछ और बातें मांग रहा है; रोटी, रोजी, कपड़ा, मकान की बात तो खत्म हो गई; वह तो मिल गया। और उसे पाकर कुछ भी नहीं पाया। पश्चिम के आदमी को रामकृष्ण की बात में हैरानी होती है कि ये इतना क्यों दोहराते हो कि कामिनी-कांचन छोड़ो! यह तो छूट ही रहा है; इसमें दोहराने की बात ही क्या है?

तुम यह जान कर हैरान होओगे कि यहां मेरे पास भारत के संन्यासी हैं . . .। पैंसठ साल के एक बूढ़े ने आठ-दस दिन पहले मुझे आकर कहा कि और तो सब ठीक है, ध्यान से बड़े लाभ हो रहे हैं; मगर यह कामवासना नहीं जाती। मन भी शांत हुआ है। धन में भी उतनी आकांक्षा नहीं रह गई। उतनी बेचैनी भी नहीं है।

आंख से आंसू गिर रहे हैं, दुख में कह रहे हैं वे; क्योंकि पैंसठ साल उम्र हो गई है, वे खुद भी समझते हैं कि अब यह मेरी उम्र भी हो गई, अब यह बात भी क्या है? मगर यह छूटता नहीं, पीछा नहीं छूटता। भले, सीधे-साफ आदमी हैं; धोखा नहीं दे रहे हैं। पत्नी को भी साथ लाए थे, पत्नी की आंख से भी आंसू गिर रहे हैं। कहते हैं कि क्या करूं? शरीर भी कमजोर हो गया है, लेकिन यह वासना अभी भी बल मारती है; यह सिर उठाती ही रहती है।

और संयोग की बात कि उसी दिन एक अमरीकन युवक ने, जिसकी उम्र केवल तेईस साल है, उनके बाद वह मुझे मिलने आया और उसने कहा कि मुझे कोई उत्सुकता स्त्रियों में नहीं है, क्योंकि जब मैं पंद्रह साल का था तब से मैं न मालूम कितनी लड़कियों के साथ रह चुका। मेरा खत्म हो गया रस। मुझे रस ही नहीं है स्त्रियों में कोई। इसमें कुछ गलती तो नहीं हो रही है? उसने मुझसे पूछा--क्योंकि आप कहते हैं : जाओ, संसार को अनुभव करो। और मुझे इसमें कुछ रस नहीं मालूम होता। तो क्या मुझे जबरदस्ती जाना चाहिए, जबकि मुझे स्त्रियों में रस ही नहीं है। और अभी मैं केवल तेईस साल का हूं, और आपकी बात सुनता हूं तो मुझको भी लगता है कि मुझे कुछ गड़बड़ी तो नहीं है? मेरी कुछ हालत तो खराब नहीं है? क्योंकि अभी तो रस होना चाहिए, अभी तो मैं जवान हूं।

अब एक बूढ़ा आदमी है, वह कहता है : जरूर कुछ गड़बड़ है, क्योंकि अब तो मैं बूढ़ा हो गया, अब रस जाना चाहिए। और एक जवान आदमी है, वह कहता है कि रस अभी होना चाहिए, जरूर कुछ न कुछ गड़बड़ है मेरे भीतर, क्योंकि मेरा रस बिलकुल चला गया, मुझे कोई उत्सुकता ही नहीं है स्त्रियों में।

क्या हो रहा है? यह बूढ़ा आदमी जीवन भर दमन करता रहा। यह बूढ़ा आदमी जिंदगी भर रामकृष्ण की बात मान कर चलता रहा : कामिनी-कांचन से सावधान! सावधानी बरत-बरत कर गड्ढे में गिरा। यह जो जवान लड़का है, यह तंत्र की भाषा समझ पा रहा है। इसने अभी ज्यादा दिन नहीं हुए, सात-आठ साल में इतना देख लिया जितना कि बूढ़ा आदमी पैंसठ साल में नहीं देख पाया। यह बहुत लड़कियों के साथ रह लिया, बहुत लड़कियों को भोग लिया--देख लिया : कुछ सार नहीं है। व्यर्थ की बकवास है। टूट गया सपना। टूट गया भ्रम। भ्रम टूटते ही अनुभव से हैं।

मैं जो कह रहा हूं, उसमें और रामकृष्ण की बात में निष्कर्ष में कोई भेद नहीं है; लेकिन मेरी प्रक्रिया तंत्र की है। मेरी प्रक्रिया आधुनिक है। मेरी प्रक्रिया भविष्य के लिए है।

रामकृष्ण पुरानी बात बोल रहे थे। रामकृष्ण रूढ़ि, परंपरा की बात बोल रहे थे। रामकृष्ण योग की भाषा का उपयोग कर रहे थे। और रामकृष्ण की बात सुन . . .अगर तुम रामकृष्ण के वचन पढ़ो, वचनामृत रामकृष्ण के, तो तुम भी थोड़े हैरान हो जाओगे। ऐसा कोई दिन ही नहीं जाता जिस दिन वे समझाते नहीं अपने भक्तों को, कि कामिनी-कांचन छोड़ो, कामिनी-कांचन छोड़ो, कामिनी-कांचन छोड़ो! इससे पश्चिम में तो रामकृष्ण पर शक

पैदा होता है। पश्चिम के मनोवैज्ञानिकों ने ये वक्तव्य दिए हैं कि रामकृष्ण कुछ परेशान मालूम होते हैं कामिनी-कांचन से। क्यों, क्यों चौबीस घंटे लगा रखा है राग : कामिनी-कांचन छोड़ो!

मैं जानता हूं : रामकृष्ण परेशान नहीं हैं। रामकृष्ण तो बाहर हो गए हैं। लेकिन रामकृष्ण जिनके बीच बैठे थे, वे सब परेशान हैं; वे उनको समझा रहे हैं कि छोड़ो। वे उनको समझा रहे हैं, क्योंकि इस भारत का मन सदियों से इतना दमित हो गया है कि इसकी पकड़ ही बस दो चीजों पर है : स्त्री और धन।

जार्ज माइक्स, पश्चिम का एक लेखक, दिल्ली आया। उसने अपने संस्मरणों में लिखा है कि एक सरदारजी ने दिल्ली स्टेशन पर हाथ पकड़ लिया और कहा कि मैं ज्योतिषी हूं और मैं आपका हाथ देख कर आपका भविष्य बता सकता हूं। जार्ज माइक्स ने कहा : लेकिन मुझे भविष्य में कोई उत्सुकता नहीं है। वर्तमान काफी है। आप क्षमा करें। आपकी बड़ी कृपा। लेकिन वह सुने ही नहीं। सरदार तो सरदार! उन्होंने सुना ही नहीं। वह तो अपना बताने ही लगे हाथ खोल कर भविष्य। सिर्फ शिष्टाचारवश--माइक्स ने लिखा है कि मैंने कहा, कि भाई अब तो यह मानता ही नहीं, बताता है तो मैंने सुन लिया। दो मिनट बाद मैंने कहा कि अब मुझे जाने दें, मुझे उत्सुकता नहीं है भविष्य में कोई, कि आपको धन मिलेगा, कि पत्नी मिलेगी, कि मकान मिलेगा। उसने कहा : मेरे पास सब है, मुझे अब कोई मिलने की जरूरत नहीं है। इनसे छूटूं कैसे, इसके लिए भारत आया हूं। आप कृपा करो, सरदारजी! मैं छूटने के लिए आया हूं; और तुम मिलने का बता रहे हो।

तो सरदारजी ने कहा : लेकिन मेरी पांच रुपए फीस। उस आदमी ने पांच रुपए निकाल कर दे दिए। हालांकि यह बात ज्यादती की है, क्योंकि वह पूछना ही नहीं चाहता; इनकार कर रहा है; जबरदस्ती तुम बता रहे हो और फीस मांग रहे हो! उसने फिर भी पांच रुपए फीस दे दिए कि कोई तरह झंझट छूटे, क्योंकि सरदारजी मजबूत आदमी, जोर से उसका हाथ पकड़े हैं, छोड़ भी नहीं रहे। मगर जैसे उसने पांच रुपए दिए कि सरदारजी फिर बताने लगे--और आगे की बातें। उसने कहा : भाई तुम रुको, नहीं तो तुम फिर पांच रुपए फीस मांगोगे, अब तुम बोलो ही मत। मगर सरदारजी बोले ही जा रहे हैं। और आखिर में उन्होंने फिर पांच रुपए मांगे।

माइक्स ने कहा कि यह जरा ज्यादती हो गई। शिष्टाचार की भी एक सीमा है। मैंने पांच रुपए पहले दे दिए--सिर्फ इसलिए कि झंझट छूटे। यद्यपि मुझे वे भी देने नहीं थे। क्योंकि मैंने तुमसे मांगा नहीं था कि मुझे बताओ, मैंने तुम्हें चाहा नहीं था कि बताओ। तुमने अपने मन से चाहा, जबरदस्ती बताया। जबरदस्ती तुम मेरा हाथ पकड़े खड़े हो। फिर मैंने दुबारा तो तुमको कह भी दिया कि अब मैं तुम्हें पैसा नहीं दूंगा; अब तुम्हें बताना हो तो बताते रहो, मैं सुनने में उत्सुक नहीं हूं। फिर भी तुम बोलते गए। अब तुम पांच रुपए मांगते हो।

तो पता है, सरदारजी ने क्या कहा? हाथ जोर से छोड़ कर कहा कि अरे धनलोलुप, पदार्थवादी, मैटीरियलिस्ट!

इसमें कौन पदार्थवादी है? जार्ज माइक्स ने अपनी डायरी में लिखा है कि मैं चकित हुआ, इसमें पदार्थवादी कौन है? मैं उत्सुक नहीं भविष्य में--मैं पदार्थवादी! मुझे भविष्य में मिलने वाली स्त्रियां और धन में कोई रस नहीं--मैं पदार्थवादी! मुझसे जबरदस्ती यह आदमी पांच रुपए ले लिया है--मैं धनलोलुप! और यह दुबारा और पांच रुपए मांग रहा है, चूंकि मैं नहीं दे रहा हूं, इसलिए मुझे गालियां दे रहा है कि तुम पदार्थवादी!

तुम जरा गौर से देखना। पश्चिम को भारत में लोग कहते हैं कि पदार्थवादी। लेकिन भारत से ज्यादा पदार्थवादी, मैटीरियलिस्ट मुल्क खोजना कठिन है।

मैं रामकृष्ण की भाषा नहीं बोल सकता। वह भाषा पिट चुकी। वह भाषा मनोवैज्ञानिक रूप से गलत है। रामकृष्ण ठीक हों, तो भी उनकी भाषा मनोवैज्ञानिक रूप से गलत है। वह भाषा बैलगाड़ी के दिनों की भाषा है। अब आदमी आकाश में उड़ रहा है। अब आदमी चांद-तारों पर चल रहा है। सारी चीजें बदल गई हैं। आज के अनुकूल भाषा तंत्र की भाषा है; इसलिए मेरा जोर तंत्र पर है।

मैं तुमसे कहता नहीं कि धन छोड़ो। मैं कहता हूं : धन को जी लो, भोग लो, छूट जाएगा। छूट जाना चाहिए। अगर ठीक से भोगा तो कैसे यह संभव है कि न छूटे! मैं तुमसे यह नहीं कहता कि स्त्रियों से बचते फिरो। मैं कहता हूं कि तुम ठीक से स्त्रियों के बीच से गुजर जाओ, धीरे-धीरे तुम पाओगे बात समाप्त हो गई।

तुम्हें जिस चीज से डर हो, उससे भागना मत। भगोड़े कायर होते हैं। तुम्हें जिस चीज से डर हो, उसी चीज से गुजर जाना। उसको अंगीकार कर लेना, चुनौती बना लेना कि इससे गुजर कर रहूंगा, इसे देख कर रहूंगा। फिर सारी जिंदगी भी लग जाए उसमें दांव पर लगाने में, तो लगा देना। तुम जरूर जीत कर लौटोगे।

भगोड़े जीतते नहीं। और परमात्मा को विजेता पसंद आते हैं; हारे हुए लोग पसंद नहीं आते। यह संसार है ही इसलिए कि तुम इसे जीतो। यह संसार एक चुनौती है--एक आवाहन कि आओ, जीतो। इस संसार में इतने जो प्रलोभन हैं, ये तुम्हारे लिए जीतने के उपाय हैं। यह तो तुम्हारी हालत ऐसी है कि इंतजाम किया है सब खेल का, मैदान में हाकियां आ गई हैं, खिलाड़ी खड़े हैं--और तुम भाग खड़े हुए! तुम भाग खड़े हुए कि इसमें क्या सार है!

यह जो संसार है, एक खेल है। इसलिए तो हमने इसे लीला कहा है। एक खेल है। इस खेल में कुछ पाठ छिपे हैं। खेलोगे तो पाठ सीख लोगे। पाठ सीख लोगे तो संसार में दुबारा न आना पड़ेगा। अनागामी हो जाओगे। अगर पाठ न सीखे, फिर-फिर आना पड़ेगा।

तो व्यर्थ की बातों में मत पड़ना। उतना ही तुम्हारा है, जितना तुमने अपनी आंख से देखा। आंखों देखा सांच। जितना तुमने अनुभव किया, उतना ही सत्य है, उससे रत्ती भर ज्यादा सत्य मत मान लेना।

रामकृष्ण का सत्य रामकृष्ण का सत्य है। वे बेचारे अपना सत्य दोहरा रहे हैं। वे कामिनी-कांचन के पार चले गए हैं। वे तुमसे कह रहे हैं कि तुम भी पार हो जाओ।

यह ऐसे ही है जैसे एक बूढ़ा आदमी बच्चों को कह रहा है कि भाई कामवासना के पार हो जाओ। यह बूढ़ा ठीक बोल रहा है। मगर किनसे बोल रहा है? इसे यह ख्याल ही नहीं है कि ये जो बच्चे हैं, ये अभी कैसे बाहर हो जाएंगे? पहले इन्हें भीतर तो होने दो। इसके पहले कि बाहर होने को कहो, कम-से-कम भीतर तो जाने दो। यह जो सरकस चल रहा है संसार का, इसमें थोड़ा बहुत तो इनको देख लेने दो। तुम तो बाहर हो गए, तुम तो बूढ़े हो गए, तुम इन्हें अभी से तो बूढ़े मत कर दो।

मैं किसी चीज के विरोध में नहीं हूं। मेरा स्वीकार समग्र है। क्योंकि मेरा भरोसा इस बात पर है कि अगर परमात्मा का ही संसार है, तो संसार भी जरूर शिक्षण के लिए होगा; और तो कोई कारण नहीं हो सकता। अगर परमात्मा का ही संसार है, तो संसार का प्रयोजन होगा।

गुरजिएफ कहा करता था कि ऐसा मालूम होता है तुम्हारे महात्मा परमात्मा के विपरीत हैं। यह बात ठीक लगती है। तुम्हारे महात्मा परमात्मा के विपरीत मालूम पड़ते हैं, क्योंकि परमात्मा संसार को बनाता है, और तुम्हारे महात्मा समझाते हैं भागो। अगर परमात्मा ही संसार के विपरीत है तो बनाए क्यों? अगर परमात्मा ही संसार के विपरीत है, समझो भूल-चूक में पहली दफा बना भी गया होगा, तो अब तो बंद कर दे। मगर थकता ही नहीं। रोज नए लोग आते-जाते हैं। रोज नए बीज अंकुरित होते हैं। रोज नए फूल खिलते हैं। रोज नए पक्षी, नए मनुष्य। संसार चलता ही जाता है। परमात्मा थकता ही नहीं। परमात्मा निराश नहीं हुआ है।

रवींद्रनाथ ने अपनी एक कविता में कहा है कि आश्चर्य, कि परमात्मा अब तक आदमी से निराश नहीं हुआ, अब भी बच्चे पैदा करता है। आदमी कितनी ही गलतियां करता है, फिर भी परमात्मा निराश नहीं है; फिर भी उसकी आशा है। एक दफा हारते हो दुबारा भेजता है, दुबारा हारते हो, तिबारा भेजता है। भेजता ही चला जाता है। जब तक तुम प्रमाणपत्र लेकर न जाओगे इस संसार से कि तुमने जान लिया, और पा लिया कि यहां कुछ भी नहीं, तब तक तुम्हें वापस भेजा जाएगा।

यह पुनरागमन होता क्यों है? तुम्हें वापस बार-बार संसार में क्यों भेजा जाता है, इस पर तुमने कभी सोचा? और तुमने इस पर कभी सोचा कि हम क्यों कहते हैं कि बुद्ध, नानक, कबीर, पलटू फिर नहीं आए क्यों? जान लिया, जो विद्यार्थी उत्तीर्ण होकर आ गया विश्वविद्यालय से, फिर वापस नहीं जाता। फिर क्या जरूरत रही? जो असफल होकर आ गए हैं, उनको वापस जाना पड़ता है; उसी कक्षा में फिर जाना पड़ता है।

संसार में वापस लौटना पड़ेगा अगर ठीक से न जाना। उधार बातें मत मान लेना। रामकृष्ण ठीक कहते हैं। रामकृष्ण अनुभव से कहते हैं। तुम भी अपना अनुभव करो। तुम भी अनुभव करोगे तो तुम भी पाओगे कि यही बात सच है। लेकिन अनुभव से पाओगे। किसी की सुनी-सुनाई बात से काम होने का नहीं है।

तीसरा प्रश्न : जहां ज्ञानी स्वतंत्रता, मुक्ति या मोक्ष की महिमा बखानते हैं, वहां भक्त उत्सव और आनंद के गीत गाते हैं। ऐसा क्यों है?

ज्ञान का लक्ष्य मुक्ति है। ध्यान का लक्ष्य मुक्ति है। प्रेम का लक्ष्य उत्सव है। प्रेम का लक्ष्य आनंद है, यद्यपि मुक्ति और आनंद एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जिसको मुक्ति मिली, उसे आनंद भी मिलता है। और जिसे आनंद मिला, उसे मुक्ति भी मिलती है। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। वे अलग-अलग नहीं हैं। लेकिन चूंकि ज्ञानी ध्यान की ही बात करता है और ध्यान के रास्ते से चलते-चलते धीरे-धीरे अपने को मुक्त करता है, जब मोक्ष का क्षण आता है तो वह महिमा मोक्ष की बखानेगा। स्वभावतः, उसके लिए आनंद गौण है, छाया की तरह है।

तुम्हारा मित्र तुम्हारे घर आया, तो तुम मित्र की अगवानी करते हो; उसकी छाया की नहीं। छाया भी आई; जैसा मित्र आया वैसे छाया भी आई, लेकिन तुम छाया की अगवानी नहीं करते। तुम फूल-हार मित्र को पहनाते हो, छाया को नहीं। तुम मित्र का स्वागत करते हो, बंदनवार लगाते--छाया के लिए नहीं। यद्यपि छाया भी साथ आ रही है।

जिसने ध्यान की खोज की है, उसने चाहा है मोक्ष आ जाए, मुक्ति आ जाए। मुक्ति उसकी आकांक्षा है तो जिस पर आकांक्षा लगी है, जिस पर ध्यान अटका है, जब वह घटना घटेगी तो वह मोक्ष की ही प्रशंसा के, महिमा के वचन बोलेगा। आनंद उसके पीछे चला आया है--छाया की तरह। लेकिन आनंद की वह बात न करेगा।

बुद्ध ने आनंद शब्द का भी उपयोग नहीं किया। अगर लोगों ने बहुत आग्रह भी किया, तो उन्होंने इतना ही कहा कि वहां दुख-निरोध हो जाता है। दुख नहीं होता वहां, इतना ही कहा। इतना नहीं कहा कि आनंद होता है। यह भाषा ज्ञानी की है। उसके कारण हैं। उसकी भाषा में भी अर्थ है। जब भी कुछ ज्ञानी या भक्त बोलते हैं तो अकारण तो नहीं बोलते। बुद्ध ने क्यों नहीं कहा कि आनंद है? क्या उनको पता नहीं चल रहा आनंद? और किसको पता चलेगा? बुद्ध से ज्यादा आनंदित आदमी और कहां खोजोगे? लेकिन फिर बोलते क्यों हैं वे कि सिर्फ दुख-निरोध?

लोग कई तरह से प्रश्न पूछे हैं जिंदगी भर बुद्ध को। इधर से कुरेदा, उधर से कुरेदा--कहीं से भी आनंद निकाल लें। लेकिन बुद्ध सदा इतना ही कहते हैं : वहां दुख नहीं है। आनंद के बाबत चुप रह जाते हैं। क्यों? क्योंकि बुद्ध देखते हैं कि लोगों की आकांक्षा बड़ी विकृत है। अगर उनसे आनंद की बात कहो, तो वे यह तो समझ ही नहीं पाते कि आनंद क्या है; वे यही समझते हैं कि अपना ही सुख बड़ा होकर होगा। आनंद का अर्थ समझते हैं : सुख की ही और बड़ी राशि, महासुख। कोई गुणात्मक भेद नहीं समझ पाते; परिमाण का भेद समझते हैं। तो समझो आनंद अपने पास तिल भर है और वहां आकाशभर--बहुत होगा, लेकिन यही। तो भ्रांति हो जाएगी।

बुद्ध कहते हैं : तुम्हारा जीवन में जो दुख है, वह वहां नहीं होगा। जो वहां होगा उसका तो तुम्हें कोई अनुभव नहीं है। इसलिए मैं कोई भी शब्द ऐसा उपयोग न करूंगा, जिससे तुम्हारे जीवन में और अड़चन आ

जाए। आनंद तो तुम जानते नहीं, तो मैं कैसे कहूं? दुख तुम जानते हो; इसलिए दुख के बहाने, कहता हूं कि दुख वहां नहीं है।

समझो। एक आदमी ने रोशनी नहीं देखी। फिर कोई आदमी रोशनी देख कर आया। और यह आदमी जो सदा अंधेरे में रहा है जिसने रोशनी नहीं देखी, यह पूछता है : वहां क्या है? तो यह जो रोशनी देख कर आया है, यह अगर कहे वहां रोशनी है, तो बेकार की बात है। क्योंकि यह आदमी तो कभी रोशनी देखा नहीं है, इसलिए यह शब्द बेकार है। यह देख कर आने वाला कहता है : वहां अंधेरा नहीं है। यह बात सार्थक है। वह अंधेरे में रहने वाला आदमी कितनी ही जिद्द करे, वह कहे कि यह तो मैं समझ गया अंधेरा नहीं है, मगर वहां है क्या? नहीं क्या है, यह तो तुमने बता दिया; मगर है क्या, यह तो बताओ! वह कहेगा : तुम जाओ और देखो : कुछ है, लेकिन वह शब्द के बाहर, अनिर्वचनीय, शब्दातीत, भाषा में न कहा जा सके, अव्याख्य।

बुद्ध जब किसी गांव में आते थे तो डुंडी पिटवा देते थे कि मुझसे ग्यारह प्रश्न कोई न पूछे। उन ग्यारह प्रश्नों में उन्होंने वे सब बातें जोड़ दी थीं, जिनकी व्याख्या नहीं हो सकती--अनिर्वचनीय। जिनको जानो तो ही जान सकते हो। दरिया देखे जानिए। जिनको देखो तो ही जान सकते हो। जिनको बताने का कोई उपाय नहीं। और बताने से भूल की पूरी संभावना है। क्योंकि कुछ का कुछ समझ जाओगे।

तो बुद्ध ने तो आनंद शब्द का उपयोग नहीं किया। इसका यह अर्थ नहीं कि वहां आनंद नहीं होता। और कबीर और दादू और रैदास आनंद की महिमा बखानते हैं; आनंद के गीत गाते हैं। अनहद बाजे बांसुरी! बांसुरी की बात करते हैं कि वहां बड़ी अनहद की बांसुरी बज रही है, कि अमृत की वर्षा हो रही है! अमीरस बरसे! कि मेघ घिरे। सारा आकाश आनंद से आंदोलित है। हजार-हजार सूरज निकले हैं। हजार-हजार कमल खिले हैं।

मस्त-मगन होकर, मस्ती में डूब कर भक्त गाता है। भक्त की भाषा अलग। भक्त की खोज उत्सव है, आनंद है। स्वतंत्रता नहीं, मोक्ष नहीं। भक्त तो कहता है : मोक्ष तुम अपने पास रखो, मुझे चाहिए नहीं; मुझे तो तुम्हारे दर्शन मिल जाएं। हरिदर्शन की प्यासी अखियां! बस मैं तो तुम्हारे दर्शन पा लूं। दरस-परस हो जाए। इससे ज्यादा मुझे कुछ चाहिए नहीं। तुम्हारा मोक्ष तुम जानो। मुझे तो तुम्हारे प्रेम का बंधन पर्याप्त है। तुम मुझे हजार-हजार बंधनों में बांधे रहो। तुम्हारी बाहें मुझे घेरे रहें। मैं तुम्हारे आलिंगन में रहूं। मैं तुम्हारे चरणों को पकड़े रहूं। ये चरण मुझ से मत छीनना। बस मेरे लिए पर्याप्त है।

भक्त की खोज बड़ी और है--प्रेम की खोज है; आनंद की खोज है; महोत्सव की खोज है। तो जब भक्त के जीवन में वह घटना घटती है, वह घटना एक ही है; मगर जब भक्त के जीवन में घटती है तो उसे पहले दिखाई पड़ता है आनंद। स्वतंत्रता आती है, छाया की तरह। स्वतंत्रता आती है, पीछे-पीछे सरकती आनंद के। आती ही है--वे दोनों साथ हैं; एक ही ऊर्जा के दो नाम हैं। मगर तुम्हारे देखने से फर्क पड़ जाता है।

तुम इसे ऐसा समझो कि तुम कुछ मित्रों को इस बगीचे में ले आओ। कोई लकड़हारा आ जाए; वह झाड़ को देखेगा; उसी झाड़ को जिसको तुम देख रहे, मगर वह सिर्फ लकड़ी देखता है। वह सोचता है कि ईंधन के काम आ जाएगी, कि फर्नीचर बन सकता है, कि बाजार में दाम कितने मिल जाएंगे। उसे और कुछ नहीं दिखाई पड़ता; उसे सिर्फ लकड़ी दिखाई पड़ रही है। और एक चित्रकार वहीं खड़ा हो, चित्रकार को हरियाली दिखाई पड़ती है; फूल दिखाई पड़ते है। लकड़ी नहीं दिखाई पड़ती इस वृक्ष में सौंदर्य दिखाई पड़ता है। और ध्यान रखना, चित्रकार को जैसे रंग दिखाई पड़ते हैं, वैसे तुम्हें दिखाई नहीं पड़ते। क्योंकि चित्रकार की बड़ी पकड़ रंग पर होती है। तुम्हें तो ऐसा दिखाई पड़ता है, सब वृक्ष हरे हैं। उसे एक-एक वृक्ष अलग ढंग से हरा दिखाई पड़ता है। हजार ढंग के हरे रंग हैं। हरे रंग में भी हरे रंग हैं। मगर उसके लिए तो निष्णात आंख चाहिए--चित्रकार की। उसे पत्ती-पत्ती अलग रंग की दिखाई पड़ती है। उसे रंगों का बड़ा विस्तार दिखाई पड़ता है। इंद्रधनुष तना है। रंगों का बड़ा खेल है। मगर उसके लिए रंग की पहचान चाहिए।

और अगर तुम किसी संगीतज्ञ को भी ले आए हो, तो उसे रंग नहीं दिखाई पड़ेंगे, क्योंकि उसकी पकड़ कान से है, उसकी पकड़ आंख से नहीं है। इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है, अंधे आदमी अच्छे संगीतज्ञ हो जाते

हैं, क्योंकि संगीतज्ञ की सारी पकड़ कान से है; आंख से कुछ लेना-देना नहीं है। रंग का सवाल ही नहीं है--ध्वनि का सवाल है। इसी वृक्ष के पास खड़े होकर, यह देखते हैं हवा की आवाज! यह हवा की सरसराहट! यह हवा का वृक्षों से गुजर जाना! ये चित्रकार को दिखाई ही नहीं पड़े, कि यह दिखाई पड़ने की बात ही नहीं है। लेकिन यह संगीतज्ञ को सुनाई पड़ेगा।

अगर तुम एक वैज्ञानिक को ले आओ, वनस्पतिशास्त्री को, तो उसे ये कुछ बातें नहीं पता चलेंगी। वह देखेगा : किस जाति का पेड़ है? किस देश से आया है? कितनी उम्र होगी? उसके कुछ प्रश्न और ही होंगे। और ये सारे लोग एक ही बगीचे में खड़े हैं। एक छोटे बच्चे को ले आओ। वह शायद इस वृक्ष में उत्सुक न हो, लेकिन इस वृक्ष पर बैठी तितली में दीवाना हो जाएगा। अलग-अलग लोग, अलग-अलग उनके ढांचे हैं। अलग-अलग पहचान के ढंग।

ध्यानी मोक्ष के संबंध में वर्षों तक चिंतन किया है। वही सोचा, वही विचारा, वही ध्याना। उसके रग-रग रोएं-रोएं में बस एक ही पुकार है : स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! जब परमात्मा के निकट आता है तो उसे जो उसने चाहा है, वह मिलता है। दूसरी बात भी मिलती है भेंट-स्वरूप, साथ-साथ; लेकिन जो उसने चाहा वह उसे दिखाई पड़ता है। आ गई स्वतंत्रता!

भक्त चाहा था प्रेम, आनंद, उत्सव। भक्त चाहा था मस्ती। भक्त चाहा था कि प्रभु शराब बन कर उतर जाए मेरे कंठ में, कि मैं नाचूं, मगन होकर नाचूं! पद घुंघरू बांध मीरा नाची। कितने दिन से पदों में घुंघरू बांध कर भक्त बैठा था कि कब तेरा मिलन हो और मैं नाचूं। नाचने की घड़ी की प्रतीक्षा करते-करते जनम-जनम बीत गए थे। फिर जब परमात्मा आता है तो भक्त नाच उठता है। मीरा नाची। बुद्ध बिलकुल मूर्ति की तरह रह गए--शांत। अब हम सोच भी नहीं सकते बुद्ध को नाचता हुआ। वह उनके व्यक्तित्व का ढंग नहीं है। बुद्ध की ही प्रतिमाएं बनीं सबसे पहले, क्योंकि बुद्ध पहले प्रतिमा जैसे आदमी थे। बिलकुल संगमरमर की प्रतिमा ही थे वे। जब उनको परम घटना घटी तो हिले भी नहीं, डुले भी नहीं। सात दिन तक कहते हैं, हिले नहीं, डुले नहीं, बैठे ही रहे। देवता भी डर गए कि यह क्या इसी तरह समाप्त हो जाएंगे! देवताओं ने आकर चरण छुए, हिलाया-डुलाया और कहा कि महाराज, आप कुछ बोलें। इतनी-इतनी सदियों के बाद कभी कोई आदमी बुद्धत्व को उपलब्ध होता है, अनेक लोगों को लाभ होगा, आप कुछ बोलें, आप चुप क्यों बैठे हैं? सात दिन से हम प्रतीक्षा कर रहे हैं।

बुद्ध का मन बोलने का भी न था। बोलने में भी हलन-चलन हो जाएगा, थोड़ी गति हो जाएगी। बुद्ध तो मस्त बैठे थे। वह मस्ती चुप्पी की थी, वह मस्ती हलचल-शून्य थी, कंपन-रहित थी।

और मीरा को जब यही घटना घटी, तो वह नाची, खूब नाची। अब तुम कहोगे : क्या इन दोनों को अलग-अलग घटनाएं घटीं? नहीं, ये दो अलग ढंग के व्यक्ति थे, घटना तो एक ही घटी। इन दोनों के ढांचे, झेलने वाले ढांचे अलग थे। एक ध्यानी का मन था और एक भक्त का, प्रेमी का मन था।

और ख्याल रखना : ये दो ही विशेष भेद हैं। और अपना भेद साफ कर लेना। नहीं तो कई दफा बड़ी अड़चन चलती जाती है। लोभी मत बनना। दोनों मार्गों पर चलने की कोशिश मत करना।

कई दफा लोभी लोग मेरे पास आ जाते हैं। वे कहते हैं कि थोड़ी भक्ति करें और थोड़ा ध्यान, तो कुछ हर्जा तो नहीं है! हर्जा तो कुछ भी नहीं है। मगर तुम पहुंच न पाओगे। जैसे कोई आदमी सुबह एक रास्ते पर चले और सांझ दूसरे रास्ते पर चले तो पहुंच कहीं नहीं पाएगा। तफरी हो जाएगी, घूम-फिर आए थोड़ा, फिर अपने घर आ गए। फिर घूम-फिर आए थोड़ा, फिर घर आ गए; लेकिन यात्रा न हो सकेगी। यात्रा तो एक ही रास्ते पर होगी। सारे जीवन को समर्पित कर देना होगा एक ही रास्ते पर।

दोनों रास्ते सही हैं। तुम चाहो प्रेम के रास्ते पर चलो। अपने भीतर जरा सोचो। अपने भीतर जरा झांको। तुम्हें कौन सी बात रुचती है? स्वतंत्रता की तुम्हारे भीतर पुकार है या आनंद की पुकार है? क्या तुम चाहते हो?

तुम चाहते हो एक नाच से भरा हुआ जीवन जिसमें फूल खिले हों, सुगंध हो? ऐसा जीवन चाहते हो? या ऐसा जीवन चाहते हो, शांत, जिसमें कंपन भी न हो? अगर निष्कंप जीवन चाहते हो, तो ध्यान से चलो। अगर नृत्य, मदमस्त जीवन चाहते हो, तो भक्ति से चलो।

इसलिए दोनों--भक्तों और ज्ञानियों--के वचनों में भेद है। मगर जिसको दिखाई पड़ता है, वह उन दोनों के वचनों में एक ही स्वर पाता है। बांसुरियां अलग हैं, लेकिन बांसुरियों में बजने वाला संगीत एक है।

तैरते तिनके झुलाती धार है
डूबता कंकड़ बहुत लाचार है
कौन भारी और हलका कौन है
तौलना ही लहर का व्यापार है
एक काली डोर में अंबर घिरा
बंधनों में जीर्ण है सारी धरा
पांखुरी ने तो बहुत बांधा मगर
गंध ने माना नहीं यह दायरा।
पांखुरी ने तो बहुत बांधा मगर . . .।
सुवास जब पैदा होती है फूल में, तो कली तो उसे बांध कर रखती है।
पांखुरी ने तो बहुत बांधा मगर, गंध ने माना नहीं यह दायरा।
लेकिन गंध दायरे को मानती नहीं। खोल देगी पंखुरियों को, उड़ जाएगी।

ध्यानी तो पांखुरी है बंद--कली की तरह होता है। कली का भी अपना मजा है। और भक्त फूल की तरह खिला हुआ होता है। फूल का भी अपना मजा है। अलग-अलग पसंदगियां हैं। कुछ लोग कलियों का ही गजरा पसंद करते हैं। कुछ लोग फूलों का गजरा पसंद करते हैं। दोनों की खूबियां हैं।

कलियों के गजरे की एक खूबी है; जैसे दूज के चांद की होती है। कुछ होने-होने को है, अभी हुआ नहीं। कुछ होने-होने को है। गंध उड़ती-उड़ती सी है, बंद है। जरा-जरा आती है, कभी-कभी आती है। और देर तक आएगी। तुम कलियों पर भरोसा कर सकते हो; दो-चार दिन भी घर में रहेंगी तो गंध रहेगी। फूल की तो गई, उड़ गई; अभी है अभी गई। जल्दी ही हवाएं उसे लूट लेंगी।

कहते हैं, एक मुसलमान बादशाह ने अपने राजदूत को भारत भेजा। औरंगजेब के जमाने की बात है। राजदूत जब भारत आया तो उसने औरंगजेब को कहा, कि आप पूर्णिमा के चांद हैं। यह खबर उस मुसलमान बादशाह को भारत के बाहर पहुंची, कि पूर्णिमा का चांद कहा, हिंदुस्तान के बादशाह को! इससे बड़ी हैरानी हुई। ईरान का बादशाह था वह। उसे बड़ी हैरानी हुई। उसने कहा : अब मेरे लिए क्या कहेगा? क्योंकि पूर्णिमा के चांद के आगे तो कोई होता नहीं।

लौट कर जब राजदूत वापस आया, तो दरबारियों ने उसको खूब समझा कर रखा था इस राजदूत के खिलाफ, जैसा दरबारों में चलता है--कि इसने आपका अपमान कर दिया, पूर्णिमा का चांद कह दिया, अब आपको क्या कहेगा? इससे पहले बात यही पूछना कि अगर हिंदुस्तान का बादशाह पूर्णिमा का चांद है तो मैं कौन हूं? इससे ही पता चल जाएगी इसकी वफादारी। यह आदमी बेईमान है। इससे सावधान। इसने चापलूसी की और आपका अपमान हो गया।

राजदूत के आते ही राजदूत को पकड़ लिया गया, दरबार में लाया गया। पूछा उससे बादशाह ने कि तूने हिंदुस्तान के बादशाह को पूर्णिमा का चांद कहा, अब मुझे क्या कहेगा? उसने कहा : आप, आप दूज के चांद हैं। ईरान का बादशाह तो बहुत नाराज हुआ। उसने कहा : दूज का चांद! जरा सा दूज का चांद और पूर्णिमा इतना बड़ा चांद!

उस राजदूत ने कहा : आप परेशान न हों। पूर्णिमा के चांद के आगे अब कुछ नहीं है, अब सिवाय मौत के। अब मरेगा। अब अंधेरी रात आती है। दूज के चांद के लिए बहुत संभावना है। अभी तुम्हारी बड़ी संभावना है। हिंदुस्तान का बादशाह मुर्दा है। उसको मुर्दा कहा मैंने। आप समझे ही नहीं। उसको यह कहा कि खत्म तुम्हारे दिन; आते हमारे दिन। तुम गए-गुजरे। रहा होगा तुम्हारा अतीत। पूर्णिमा के चांद का तो अतीत होता है; दूज के चांद का भविष्य होता है। क्या चाहते हो तुम?

उस राजदूत ने कहा : भविष्य चाहते हो या अतीत चाहते हो?

बात तो अर्थ की थी। दूज के चांद की भी अपनी खूबी है। हिंदू पूर्णिमा के चांद को पूजते हैं; मुसलमान दूज के चांद को पूजते हैं। दोनों की अपनी खूबियां हैं। पूर्णिमा का चांद पूरा हो गया; वह पूर्णता का प्रतीक है। दूज का चांद विकास का, गति का, गत्यात्मकता का प्रतीक है।

ऐसी ही कली और फूल। कली दूज का चांद है। अभी बहुत संभावना है। अभी खिली नहीं, खिलेगी। अभी गंध बंद है। अभी मुट्ठी बंद है। और कहते हैं न, बंद मुट्ठी लाख की, खुली तो खाक की! अभी रहस्यपूर्ण है सब। पंखुरियों में रहस्य दबा है।

बुद्ध की मूर्ति देखी! वे बंद है पंखुरियां। सब बंद है। सब भीतर समाया है।

ध्यानी भीतर लिए बैठा है अडिग, भरे बैठा है, लबालब; छलकता नहीं; उसके जाम से कुछ छलकता नहीं। यह तो उसकी खूबी है। भक्त फूल जैसा है। सब छलका दिया, सब बांट दिया है। भक्त की भी अपनी खूबी है। वह पूर्णिमा जैसा है। वह पूरा हो गया। भक्त कंजूस नहीं है, कृपणता नहीं है। और भक्त जानता है : जितने यह सुवास दी है, और देगा। कंजूसी क्या करनी है! बांटने में डरना क्या है! बांटो, क्योंकि यह कुछ ऐसी चीज है कि बांटने से बढ़ती है, घटती नहीं। जितना गाओ, उतने नए गीत पैदा होते हैं। जितना नाचो उतने नए नृत्य चले आते हैं। यह सिलसिला अखंड है।

भक्त की अपनी खूबियां हैं। फूल की अपनी खूबियां हैं। दोनों अवस्थाएं बड़ी प्यारी हैं। और दोनों के भीतर जो सुवास छिपी है वह एक ही है। फूल की प्रकट होकर फैल रही है; पंखुरी की अपने भीतर बंद है। लेकिन सुवास तो एक ही है। परमात्मा एक ही है। अनुभव एक ही है। समाधि एक ही है। भक्त में नाचती है समाधि; ध्यानी में विश्राम करती है। फिर दोहरा दूं। भक्त में नाचती है समाधि। भक्त में परमात्मा नाचता है। और ध्यानी में विश्राम करता है। विश्राम भी तो करना पड़ेगा न कहीं! नाचते ही तो न रहोगे। फिर विश्राम ही करते रहोगे, यह भी तो ठीक नहीं है--कभी तो नाचो, कहीं तो नाचो! तो भगवान कहीं नाचता है, और कहीं विश्राम करता है। बुद्ध में विश्राम करता है; मीरा में नाचता है। दोनों उसके ही पहलू हैं।

आखिरी प्रश्न : आपने कहा तुम जो भी करोगे, गलत ही करोगे, क्योंकि तुम गलत हो। हम जो करते हैं, वह गलत हो जाता है। ऐसी स्थिति में आप हमें साफ-साफ क्यों नहीं बताते कि हम क्या करें?

फिर भी पूछते हो : क्या करें! फिर तुम जो करोगे, गलत ही होगा। तुम समझोगे कब? यह करने की बात नहीं है--यह करना छोड़ने की बात है। परमात्मा को करने दो। तुम मत करो, तुम्हारी बड़ी कृपा होगी। तुम काफी कर लिए, कर-करके तुमने सब खराब कर दिया। तुम कर्ता मत बनो। कर्ता वही है। कर्ता-पुरुष! वह एकमात्र कर्ता है। तुम उसे करने दो। तुम उसके वाहन बनो। तुम उसकी बांसुरी बनो; उसे गीत गाने दो।

यही तो मैं कह रहा तुमसे बार-बार कि मैं कुछ कहता हूं, तुम कुछ समझते हो। मैंने तुम से कहा : तुम जो भी करोगे गलत ही करोगे, क्योंकि तुम गलत हो। जब मैं कहता हूं तुम गलत हो, तो इसका क्या मतलब होता है? इसका मतलब है कि तुम हो, इसलिए तुम गलत हो। तुम्हारा होना, तुम्हारा अहंकार--तुम्हारी गलती है।

तुम मिटो, तुम सही हो जाओगे। मिटे कि सही, और रहे कि गलत। तुम कुछ उलटा समझते हो। तुम सोचते हो : चलो मैं गलत हूं, तो ठीक कैसे हो जाऊं? मगर तुम रहना चाहते हो, मिटना नहीं चाहते। तुम कहते हो : चलो कोई गलती होगी, उसको निकाल देंगे, ठीक को ओढ़ लेंगे। यह चादर ठीक नहीं, दूसरी चादर ओढ़ने को तैयार हैं। मगर तुम भीतर वही रहोगे; चादर बदल लोगे : कपड़े बदल लोगे, वेष बदल लोगे। तुम सब बदलने को तैयार हो; एक चीज भर नहीं बदलना चाहते--वह जो भीतर अहंकार है मैं। वह भर रहा है। उसको सजाते चले जाते हो। तुम कहते हो : चलो, ये गहने ठीक नहीं, दूसरे गहने पहन लेते हैं।

तुम मिटोगे कब? मैं भी समझता हूं। तुम्हारी तकलीफ भी मैं समझता हूं। तुम्हारे पास एक जड़ भाषा है। तुम्हारी जिंदगी के अनुभव से बनी एक भाषा है। उस भाषा में जब मेरे शब्द पड़ते हैं तो उनकी ध्वनि विकृत हो जाती है।

मैंने सुना है, दीवाल से कान लगाए खड़े एक गधे ने दूसरे गधे से पूछा : यहां क्यों खड़े हो? यहां क्या कर रहे हो? पहले गधे ने जवाब दिया : मेरा बच्चा खो गया है। इस घर से लड़ने की आवाज आ रही है। एक कहता है तू गधे का बच्चा है। और दूसरा कहता है तू गधे का बच्चा है। सोचता हूं, कब लड़ाई खत्म हो, मेरा बच्चा घर से बाहर निकले, तो लेकर जाऊं!

गधा अपने बच्चे की तलाश में है। उसे क्या पता कि यह आदमी, जो एक-दूसरे को गधा कह रहे हैं, गधा नहीं हैं। उसे क्या पता कि इनके गधे कहने का अर्थ बड़ा और है। उसे क्या पता कि ये सिर्फ गालियां दे रहे हैं। ये किसी तथ्य की घोषणा नहीं कर रहे हैं। मगर गधे को कैसे पता चले? गधा तो अपने बच्चे की तलाश में निकला है। वह सोचा है कि यह भी खूब रही, इस घर के भीतर मेरा... गधे का बच्चा है, अब निकल आए तो ठीक है, ले जाऊं। झगड़ा खत्म हो तो मैं ले जाऊं।

मैं जब तुमसे बोल रहा हूं तो निरंतर ऐसा होगा। मैं कहूंगा कुछ, तुम समझोगे कुछ। मैंने कहा तुम जो भी करोगे, गलत होगा, क्योंकि तुम गलत हो, क्योंकि तुम्हारा होना ही गलती है। तुम्हारे न होने में सब ठीक हो जाएगा। तुम नहीं हुए कि परमात्मा हुआ। तुम जब तक हो, परमात्मा नहीं है। और जब तुम नहीं रहोगे, तब परमात्मा हो सकता है। परमात्मा ठीक है और तुम गलत हो। तुम तो ठीक हो ही नहीं सकते और परमात्मा गलत नहीं हो सकता। ऐसा गणित है। तुमने अपने को जरा भी बचाया तो गलती जारी रहेगी; तुम बेसुरा सुर पैदा करते रहोगे। तुम तो विदा हो जाओ।

इसीलिए तो कहा पलटू ने कि मर्दों का काम है। जो मिटने को तैयार हो, जो अपनी गर्दन अपने हाथ से उतार कर रखने को तैयार हो--वही, केवल वही दुस्साहसी उस परमप्रिय अवस्था को पाने के लिए योग्य हो पाता है; उस परम प्यारे के द्वार में प्रवेश कर पाता है।

तुम पूछते हो : "साफ-साफ क्यों नहीं बताते हैं कि हम क्या करें?" तुम सोचते हो कि जितना साफ-साफ मैं बताता हूं, इससे और ज्यादा साफ-साफ बताया जा सकता है? साफ-साफ ही बताता हूं। रोज वही-वही फिर-फिर बताता हूं। कुछ नई बात कहने को नहीं है। बात तो एक ही कहने को है। संदेश तो छोटा सा है; एक पोस्टकार्ड पर लिखा जा सकता है। और ऐसे तो दुनिया के सारे शास्त्र भी लिख-लिख कर उसे पूरा नहीं कह पाते हैं। संदेश तो इतना ही है कि तुम शून्य हो जाओ, तो तुम्हारे शून्य में परमात्मा उतर आता है। तुम हुए शून्य कि हुए पूर्ण। बूंद खोई सागर में कि हो गई सागर।

मगर तुम साफ-साफ नहीं समझ पाते, यह मैं समझता हूं। तुम कह रहे हो मुझसे कि "आप साफ-साफ क्यों नहीं बताते?" इतना ही कहो कि हम साफ-साफ क्यों नहीं समझ पाते हैं? वहां तक ठीक है। मेरी तरफ से बिलकुल साफ-साफ बता रहा हूं। इससे ज्यादा साफ-साफ न कभी बताया गया है और न बताया जा सकेगा। और क्या साफ-साफ हो सकता है? एक-एक ताना-बाना खोल कर तुम्हारे सामने रख दिया है। कुछ छिपाया नहीं है। कुछ रहस्य नहीं है। सब पत्ते तुम्हारे सामने खोल कर रख दिए हैं।

हां, तुम्हें साफ-साफ नहीं हो रहा है, यह मैं समझता हूं। क्योंकि तुम समझने को उत्सुक ही नहीं हो। तुम तो जल्दी से कुछ करने को उत्सुक हो, तुम्हारी पकड़ ही गलत है। तुम मुझे सुनते वक्त यह भीतर गणित्री बिठालते रहते हो कि इसमें क्या-क्या करने योग्य मिल जाए तो करके दिखा दें। उसी करने की आकांक्षा के कारण तुम समझना भी चूक जाते हो।

एक डॉक्टर यहां आते थे। उनको मैं देखता कि वे जल्दी, मैं कुछ बोलता, वे जल्दी से अपनी जेब से नोट-बुक निकाल कर नोट करते हैं। फिर मैंने उनको कहा कि जब मैं समझा रहा हूं, तब समझोगे नहीं, फिर यह नोट-बुक से कैसे समझोगे? वह बोले कि मैं काम की बातें जल्दी से लिख लेता हूं, कभी काम पड़ेंगी। मैंने कहा : पहले तुम समझ तो लो, तभी काम पड़ सकती हैं। समझ लो तो अभी काम पड़ गईं। और अगर न समझे, नोट-बुक में लिख लीं, तो क्या होगा? कितने तो शास्त्र तैयार हैं दुनिया में, अब तुम और क्या नोट-बुक बना रहे हो? सब तो लिखा है गीता में, सब तो लिखा है कुरान में, सब तो लिखा है गुरुग्रंथ में--तुम क्या और नोट-बुक बना रहे हो! तुम्हारी नोट-बुक कुछ ज्यादा काम की नहीं होगी।

जब मैंने उनको कहा, तो उन्होंने कहा : बात तो आप ठीक कहते हैं। इसी से मैं गड़बड़ में भी पड़ जाता हूं, क्योंकि जितनी देर मैं लिखता हूं, उतनी देर आप क्या बोले, वह चूक जाता है। फिर जब मैं लिखना बंद करके आपको सुनता हूं तो खंडन हो गया, वह बीच में इतने हिस्से चूक गए, इसको मैं ठीक से पकड़ नहीं पाता; फिर जब तक पकड़ने का रास्ता बनता है, तब तक फिर आप कुछ ऐसी बात बोल देते हैं कि लिखना पड़ता है।

तो मैंने कहा कि तुम अपनी अड़चन तुम कर रहे हो। वह मुझसे कह गए कि अब ऐसा नहीं करूंगा। मैंने देखा कि वह बड़ी मुश्किल में पड़े हुए हैं। उनको मैं कभी-कभी देख लेता तो पहले वह सामने बैठते थे, फिर यहां किनारे बैठने लगे। फिर मैंने एक दिन किनारे देखा तो वह चोरी से अपनी नोट-बुक निकाल कर लिख रहे हैं। मैंने उनको फिर बुलवाया, कि इससे तो तुम कम से कम साहूकार की तरह लिखते थे, वही अच्छा था। यह चोर! अब और एक चोरी का पाप मुझको भी लगेगा कि मैंने तुमको चोर बना दिया!

मैं किसी को अपराधी नहीं बनाना चाहता। तुम मजे से सामने ही लिखो; अब लिखने से बच ही नहीं सकते, तुम्हारी मौज।

वह बोले कि बस गड़बड़ हो जाती है। नहीं लिखता हूं तो ऐसा लगता है, चूक गए, पता नहीं फिर याद रहे न रहे।

जो समझ गए वह भूलोगे कैसे? कोई समझी बात कभी भूला है? जो समझे नहीं, वही भूलता है। जो समझ ही गए, वह तो रग-रेशे में समा गया। वह तो तुम्हारा चैतन्य बन गया। उसे कभी कोई नहीं भूलता। मगर समझने की फिकर नहीं है।

वह बोले : लेकिन ऐसा है कि कभी, काम पड़ जाए, किसी जिंदगी में जरूरत आ जाए, कब समय पर काम आ जाए, कौन सी परिस्थिति . . .। तो मैं नोट करके रखता हूं।

तुम चाहे किसी नोट-बुक में नोट न भी करते होओ, लेकिन स्मृति में तुम भी करते हो, इसमें बहुत भेद नहीं है। इधर मैं बोल रहा हूं, तुम उधर भीतर स्मृति में लिखते चले जाते कि हां, यह बात काम की है, यह करके देखेंगे। मगर करके देखने पर तुम्हारा जोर है। समझ अभी हो सकती है। करना तो कल होगा। करना तो अभी नहीं हो सकता। करना तो जब परिस्थिति बनेगी तब होगा। करना तो टाल दिया भविष्य पर। समझ वर्तमान में होती है, करना भविष्य में होता है। भविष्य कभी आता नहीं। जो आता है वह वर्तमान है।

तुम समझो, मैं तो साफ-साफ कह रहा हूं। मेरी मुट्ठी बिलकुल खुली है। लेकिन तुम समझने की तैयारी में नहीं हो, तुम करने की उत्सुकता में हो, करना अहंकार का रोग है : कुछ करूं! और समझने से अहंकार बचना चाहता है, क्योंकि अगर समझ में आ जाए तो अहंकार को मरना पड़ता है। समझना अहंकार की आत्महत्या है।

समझदार बचता नहीं। समझदार शीश उतार कर रख देता है। उतर ही जाता है। समझ ही तलवार का काम करती है।

फिर, यह सुन-सुन कर तुम समझदार हो जाते हो। बिना समझे! सुन-सुन कर! स्मृति में नोट करते गए, करते गए, तुम्हारा शास्त्र बड़ा हो गया, फिर तुम समझदार हो गए। रोज-रोज तुम मुझे सुनते हो, रोज-रोज तुम समझदार होते जाते हो। तुम्हारी स्मृति बड़ी होती जाती है। और रोज-रोज तुम्हारी समझ मुश्किल पड़ती जाती है। समझना असंभव होने लगता है। क्योंकि वह तुमने जो कल इकट्ठा कर लिया है स्मृति में, उसके पर्दे पर पर्दे पड़ जाते हैं।

समझदारों को समझाना बहुत कठिन काम हो जाता है। पंडितों को जगाना बहुत कठिन काम हो जाता है। जो सोचते हैं कि हम जानते ही हैं, उनको जनाना बहुत कठिन काम हो जाता है।

तो यही तुम्हारी अड़चन है। एक तो तुम समझते नहीं। समझने के नाम पर झूठी स्मृति में टिप्पणियां लिखते चले जाते हो, नोट करते चले जाते हो। फिर वह स्मृति की दस्तावेज मेरे और तुम्हारे बीच पड़ जाती है। फिर तुम मुझे सुनते हो, लेकिन बीच में बड़ी भीड़ विचारों की रहती है!

मुल्ला नसरुद्दीन बीमार था। और उसके डॉक्टर ने कहा--पुरानी कहावत है--कि एक सेव रोज खाओ तो डॉक्टर पास नहीं आता। तो उसके डॉक्टर ने कहा कि मुल्ला, अगर एक सेव रोज खाओ . . .वन एपल ए डे, कीप्स दि डॉक्टर अवे। तो मुल्ला ने कहा : अरे इसमें क्या रखा है! मुझे इससे भी बड़ी बात मालूम है!

ज्ञानी आदमी, पंडित, मौलवी! डॉक्टर ने कहा : तुम्हें क्या मालूम इससे ज्यादा? मुल्ला ने कहा कि एक लहसुन रोज खाओ, डॉक्टर का तो क्या, मोहल्ले भर के लोगों को दूर रखता है।

अब यह इस... जिनको जानने का ख्याल है, उनके साथ बड़ी झंझट हो जाती है। वह डॉक्टर भी चौंक कर खड़ा रह गया कि बात तो बड़ी ऊंची कह रहा है वह। लहसुन रोज खाओ! और अगर तुम्हें इसका अनुभव पूछना हो तो मैत्रेयजी से . . .मैत्रेयजी लहसुन के प्रेमी हैं। सारी दुनिया को दूर रखता है लहसुन। कोई पास ही नहीं फड़कता। त्यागियों और संन्यासियों के लिए... लहसुन खाना चाहिए। उससे संसार दूर-दूर रहता है। कोई पास ही नहीं आए। कामिनी-कांचन से दूर रखने की जरूरत नहीं है, कामिनी-कांचन खुद ही दूर भागे!

तो एक तो समझते नहीं, कुछ का कुछ समझ लेते हो, उस कुछ के कुछ को इकट्ठा करते चले जाते हो, संग्रह बनाते जाते हो। वह तुम्हारा शास्त्र बन गया। इस शास्त्र को आग को दे दो। इस शास्त्र को आग में डाल दो।

चीजें बिलकुल साफ हैं। यहां कुछ भी छिपाया नहीं जा रहा है। किसी बात को गुप्त रखने पर मेरा भरोसा नहीं है। सत्य को प्रकट होना चाहिए--नग्न। और मैं नग्न सत्य तुम्हें दे रहा हूं। उन पर वस्त्र भी नहीं हैं। उन्हें सजाया-संवारा भी नहीं गया है। उन्हें वैसा का वैसा तुम्हें दे रहा हूं, जैसे एक खालिस खदान से निकलते हैं। तुम्हारी समझ में न आएं तो तुम कुछ अड़चन डाल रहे हो। अपनी अड़चनें दूर करो।

आज इतना ही।

ग्यारहवां प्रवचन

मन मिहीन कर लीजिए

मन मिहीन कर लीजिए, जब पिउ लागै हाथ।।

जब पिउ लागै हाथ, नीच ह्वै सब से रहना।

पच्छापच्छी त्याग उंच बानी नहिं कहना।।

मान-बड़ाई खोय खाक में जीते मिलना।

गारी कोउ दै जाय छिमा करि चुपके रहना।।

सबकी करै तारीफ, आपको छोटा जानै।

पहिले हाथ उठाय सीस पर सबकी आनै।।

पलटू सोइ सुहागनी, हीरा झलकै माथ।

मन मिहीन कर लीजिए, जब पिउ लागै हाथ।। 16।।

पानी काको देइ प्यास से मुवा मुसाफिर।।

मुवा मुसाफिर प्यास, डोर ओ लुटिया पासै।

बैठ कुवां की जगत, जतन बिनु कौन निकासै।।

आगै भोजन धरा थारि में खाता नाहीं।

भूख-भूख करै सोर, कौन डारै मुखमाहीं।।

दीया-बाती तेल आगि है नाहिं जरावै।

खसम खोया है पास, खसम को खोजन जावै।।

पलटू डगरा सूध, अटकिकै परता गिर-गिर।

पानी काको देइ प्यास से मुवा मुसाफिर।। 17।।

संत-चरन को छोड़िकै, पूजत भूत-बैताल।।

पूजत भूत-बैताल, मुए पर भूतइ होई।

जेकर जहवां जीव, अंत को होवै सोई।।

देव-पितर सब झूठ, सकल यह मन की भ्रमना।

यही भरम में पड़ा, लगा है जीवन-मरना।।

देई-देवा सेव परम-पद केहिने पावा।

भैरों दुर्गा सीव बांधिकै नरक पठावा।।

पलटू अंत घसीटिहैं, चोटी धरि-धरि काल।

संत-चरन को छोड़िकै, पूजत भूत-बैताल।। 18।।

प्यार करना तो बहुत आसान, प्रेयसी,

अंत तक उसका निभाना ही कठिन है,

है बहुत आसान ठुकराना किसी को,

है मुश्किल भूल भी जाना किसी को,
प्राण दीपक बीच सांसों की हवा में
याद की बाती जलाना ही कठिन है
प्यार करना तो बहुत आसान, प्रेयसी,
अंत तक उसका निभाना ही कठिन है।
स्वप्न बन क्षण भर किसी स्वप्निल मयन के
ध्यान मंदिर में किसी मीरा मगन के
देवता बनना नहीं मुश्किल, मगर
सब भार पूजा का उठाना ही कठिन है
प्यार करना तो बहुत आसान, प्रेयसी,
अंत तक उसका निभाना ही कठिन है
चीख चिल्लाते सुनाते विश्व भर को
पार कर लेते सभी बीहड़ डगर को,
विष-बुझे पंथ पर कटु कंटकों की
हर चुभन पर मुस्कराना ही कठिन है
प्यार करना तो बहुत आसान, प्रेयसी,
अंत तक उसका निभाना ही कठिन है।
छोड़ नैया वायु-धारा के सहारे
हैं सभी ही सहज लग जाते किनारे
धार के विपरीत लेकिन नाव खे कर
हर लहर को तट बनाना ही कठिन है
प्यार करना तो बहुत आसान, प्रेयसी,
अंत तक उसका निभाना ही कठिन है।

प्रेम तो कौन नहीं करना चाहता है! ऐसा कौन है जो प्रेम में नहीं डूबना चाहता है! लेकिन लोग डूबते नहीं। और ऐसा भी नहीं कि प्रेम की सरिता तुम्हारे घर के पास से नहीं बहती। तुम्हारी आंख के सामने बहती है। लेकिन कुछ कारण है कि पैर तट पर गड़े रह जाते हैं; सरिता में उतरते नहीं।

प्रेम चाह कर भी प्रेम हो नहीं पाता। कोई पीछे खींचता है। प्रेम की अपार चुनौती है। प्रेम सब तरफ से बुलाता है। लेकिन हम अपने में बंद, अपने कारागृह में डूबे रह जाते हैं, अपने अंधेरे में डूबे रह जाते हैं। चुनौती नहीं सुनाई पड़ती, ऐसा भी नहीं। प्रेम के शिखरों से आती आवाज हमारे कानों तक नहीं पहुंचती, ऐसा भी नहीं है। लेकिन कुछ कठिनाई है। उस कठिनाई को समझ लेना जरूरी है।

प्रेम में जाने से हम रुक-रुक जाते हैं। क्योंकि प्रेम में जाने का अर्थ मृत्यु में जाना है। प्रेम में जाने का अर्थ है मिटना। प्रेम तो हम करना चाहते हैं; लेकिन अपने को बचा कर करना चाहते हैं। बस वहीं अड़चन हो जाती है। जो अपने को बचा कर प्रेम करना चाहेगा, वह कभी प्रेम न कर सकेगा।

अहंकार की मौजूदगी में प्रेम खिलता ही नहीं। अहंकार है तो प्रेम होता ही नहीं। और हम इसी असंभव को करने की कोशिश में जन्मों-जन्मों से लगे हैं। हम चाहते हैं यह हो जाए : किसी तरह दो-दो, चार न हों, पांच हो जाएं। हम चेष्टा में लगे हैं। हमारी चेष्टा हर बार हार जाती है। लेकिन आशा नहीं हारती। हम सोचते हैं : आज हार गए, कल सफल हो जाएंगे। अपने को बचा कर प्रेम करना है।

या तो अपने को बचा लो या प्रेम कर लो। ये दोनों बातें साथ नहीं होती। अपने को मिटाओ, तो ही प्रेम होता है। तुम्हारी कब्र पर ही खिलता है प्रेम का फूल। यही अड़चन है। यही कठिनाई है।

इसलिए चाह कर भी, खूब चाह कर भी नहीं हो पाता। तड़फते हैं बिना प्रेम के। और प्रेम चारों तरफ मौजूद है, क्योंकि परमात्मा चारों तरफ मौजूद है। रोशनी के लिए चिल्लाते हैं, शोर मचाते हैं; लेकिन आंखें बंद

रखते हैं। क्योंकि आंख खुलते ही स्वयं को मिट जाना पड़ेगा। अपनी मृत्यु की तैयारी नहीं है और प्रेम की मांग है। और बिना मरे प्रेम होता नहीं। मीरा ने कहा है : सूली ऊपर सेज पिया की। सेज तो है, पिया भी है--लेकिन सूली ऊपर। सिंहासन तो है, लेकिन सूली से बिना गुजरे नहीं। परमात्मा तो मिल सकता है--जिस दिन भी तुम अपने को खोने को तैयार हो जाओगे। उतनी कीमत चुकानी पड़ेगी। उससे कम कीमत से न चलेगा। तुम और बहुत सी चीजें छोड़ने को तैयार हो जाते हो। तुम कहते हो : घर छोड़ दूंगा, पत्नी-बच्चे छोड़ दूंगा, दुकान छोड़ दूंगा, धन छोड़ दूंगा, पद-प्रतिष्ठा छोड़ दूंगा, पहाड़ पर चला जाऊंगा। सब छोड़ने को तुम तैयार हो जाते हो, लेकिन अपने को छोड़ने को तैयार नहीं होते। और जिसने अपने को नहीं छोड़ा उसने कुछ भी नहीं छोड़ा। और जिसने अपने को छोड़ा, कुछ भी न छोड़ा हो, तो भी सब छोड़ा। एक ही त्याग है--मैं का त्याग। इसे तुम गांठ बांध कर रख लो।

अक्सर तुम्हारे मन में होता है, संसार छोड़ दें। संसार छोड़ने से क्या होगा?

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं : आप अपने संन्यासी को संसार छोड़ने को क्यों नहीं कहते? मैं उनसे कहता हूं : संसार छोड़ने से होगा क्या? मैं अपने संन्यासी को मैं-भाव छोड़ने को कहता हूं। वही असली संसार है। संसार छोड़ने को तो लोग तैयार हो जाते हैं; मैं को छोड़ने को तैयार नहीं होते। वही कसौटी है। वही चुनौती है। वही परीक्षा है।

संसार तो लोग छोड़ने को तैयार अपने-आप ही हो जाते हैं। संसार ही उन्हें तैयार कर देता है। कौन पत्नी को छोड़ कर भाग नहीं जाना चाहता। रुके हो, यही चमत्कार है। कौन बच्चों की झंझट से छूट नहीं जाना चाहता! किसी तरह झेल रहे हो, यही चमत्कार है। बाजार से कौन नहीं ऊब गया है! यह चौबीस घंटे के उपद्रव से कौन परेशान नहीं है, कौन पागल नहीं हुआ जा रहा है। इससे तो कोई भी छूटना चाहता है। कोई भी मिल जाए बताने वाला, तो तुम छोड़ने को तैयार हो जाओगे। और मजा है इसके छोड़ने में। मजा यह है कि तुम संसार भी छोड़ देते हो--और कुछ भी नहीं बदलता। तुम भीतर अछूते के अछूते रह जाते हो। इतना ही नहीं, तुम्हारा अहंकार और थोड़ी सजावट कर लेता है। तुम त्यागी हो जाते हो। भोगी थे, त्यागी हो गए। पहले तो अहंकार थोड़ा पिटा-पिटा था, अब तो बिलकुल ही सिर पताका लगा कर खड़ा हो गया है। अब तो झंडा ऊंचा कर लिया। अब तो भोगी तुम्हारे चरण छुएंगे। अब तो जो संसार तुम्हें दो कौड़ी का समझता था, वही संसार तुम्हारी प्रशंसा करने आएगा।

यह सौदा परमात्मा को पाने का नहीं है। यह सौदा तो तुम और गंवा बैठे। और संसार से तो ऊबे थे; यह त्याग से ऊबोगे भी नहीं, क्योंकि यह त्याग बड़ी तृप्ति देगा। तृप्ति--अहंकार को।

ध्यान रहे, लोहे की जंजीरें हाथ में पड़ी हों तो आदमी छूटना चाहता है। फिर सोने की जंजीरें पड़ जाएं, फिर कौन छूटना चाहता है! फिर सोने की जंजीरों पर हीरे-जवाहरात भी जड़े हों, फिर तो कौन छूटना चाहता है! और लोग आकर जंजीरों को जंजीर न कहते हों--कहते हों आभूषण। और कहते हों : धन्यभाग आपके, ऐसे आभूषण हमें कब मिलेंगे! तब तो कौन छूटना चाहता है! कारागृह को जब तुम महल समझने लगो, फिर कौन छूटना चाहता है।

भोग की जंजीरें लोहे की हैं--वजनी, कुरूप, जंग खाई हुईं। उन्हें ढोते-ढोते तुम थक गए हो। त्याग की जंजीरें हलकी हैं, सुंदर हैं, प्यारी हैं, रत्न-मंडित हैं। उन जंजीरों को आभूषण की तरह सम्हाल कर रखोगे तुम।

भोग से तो आदमी छूट जाता है, त्याग से नहीं छूटता। और जब तक भोग-त्याग दोनों से न छूट जाए, तब तक छूटता ही नहीं। लेकिन भोग और त्याग को छोड़ने से कोई नहीं छूटता। भोग को छोड़ोगे, त्यागी हो जाओगे। त्याग को छोड़ोगे, भोगी हो जाओगे। इस द्वंद्व को ख्याल में रखना। इनमें से एक को छोड़ोगे तो दूसरा अपने आप हो जाता है। ये दोनों कब छूटेंगे? ये दोनों तब छूटते हैं, जब तुम नहीं होते। तुम रहे तो एक तो रहेगा ही। जब

तुम मिट जाते हो, मैं-भाव नहीं बचता--फिर न भोगी, न त्यागी; तब प्रेमी पैदा होता है। वह प्रेमी बड़ी अलौकिक घटना है। भक्त पैदा होता है। भक्त न भोगी है, न त्यागी है। भक्त भोग में भी त्याग करता है और त्याग में भी भोग करता है। भक्त बड़ी अपूर्व घटना है।

उपनिषद कहते हैं : तेन त्यक्तेन भुंजीथाः! बड़ा अपूर्व वचन है। जिन्होंने त्यागा, उन्होंने ही भोगा, तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। जिन्होंने त्यागा, जिन्होंने छोड़ा, उन्हीं ने भोगा। या उन्हीं ने भोगा जिन्होंने त्यागा। यह बड़ी उलटी बात है। यह किसके बाबत कही जा रही है।

तुम त्यागी को भी पा लोगे, तुम भोगी को भी पा लोगे। भोगी को तुम त्याग का मजा लेते न पाओगे और त्यागी को तुम भोग का मजा न लेते पाओगे। दोनों आधे-आधे हैं, अधूरे हैं, खंडित हैं। भक्त होता है अखंड। भक्त को न भोग की चिंता है, न त्याग की। भोग मिलता है तो भोग लेता है; त्याग मिलता है तो त्याग लेता है। परमात्मा जो देता है, उसे अंगीकार कर लेता है। क्योंकि भक्त कहता है : मैं हूं ही नहीं; कौन इनकार करे! कौन चुनाव करे! भक्त रहता है चुनाव-रहितता में। भक्त कहता है : जो तू देगा, वही ठीक। यहां तो इतना भी मैं नहीं बचा हूं कि ठीक कहूं कि यह ठीक, वह ठीक, मांग करूं, चुनाव करूं, शिकायत करूं, प्रार्थना करूं। इतना भी नहीं बचा है। यहां तो कोई है ही नहीं। यहां तो घर सूना है। गिरह हमारा सुन्न में! हमारा घर शून्य में है।

शून्य में! जब तक तुम हो, शून्य नहीं हो पाता, क्योंकि तुम खूब अपने शून्य को भरे हुए हो। तुम गए कि शून्य बनता है। और जहां शून्य बन जाता है, वहीं प्रेम है। प्रेम शून्य में उमगता है। प्रेम शून्य में खिलता है। प्रेम अहंकार के विसर्जित हो जाने पर ही तुम्हारे भीतर प्रवेश करता है।

इसलिए प्यार करना तो बहुत आसान, प्रेयसी,

अंत तक उसका निभाना ही कठिन है।

बड़ी कठिनाई यही है कि प्रेम को लोग निभा नहीं पाते हैं। निभाने की अड़चन है। और निभा नहीं पाते, क्योंकि इस मैं को निभाने में लगे रहते हैं। या तो मैं को निभाओ या प्रेम को निभाओ। इन दोनों नावों पर साथ-साथ सवार होओगे तो बड़ी अड़चन में पड़ोगे। और कहीं पहुंचोगे भी नहीं। ये दोनों नावें बड़ी विपरीत दिशाओं में जा रही हैं--एक पूरब, एक पश्चिम। इन पर अगर खड़े हुए तो बड़े खिंच जाओगे। तन जाओगे। बड़ा तनाव पैदा होगा। बड़ी चिंता आएगी।

और जिंदगी में दो ही विकल्प हैं : या तो मैं-भाव से जीओ या प्रेम-भाव से जीओ। जिंदगी को जीने के दो ही ढंग हैं। या तो मैं के आधार पर जीओ, मैं का गणित फैलाओ; और या मैं का गणित समेट लो। या तो मैं की दुकान फैलाओ या मैं की दुकान बंद कर दो।

मैं की दुकान फैलती है तो परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। मैं की दुकान बंद होती है तो परमात्मा दिखाई पड़ता है।

संसार और परमात्मा दो नहीं हैं। इसे मुझे दोहराने दें। क्योंकि तुम्हें सदियों से यही कहा गया है कि संसार और परमात्मा दो हैं। संसार और परमात्मा दो नहीं हैं। स्रष्टा और सृष्टि एक है; लेकिन तुम्हें दो जैसे दिखाई पड़ते हैं। अगर तुमने मैं की दुकान को खूब फैलाया, तो संसार दिखाई पड़ता है, परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। तब परमात्मा कल्पना-मात्र मालूम होती है, सिद्धांत मात्र, बातचीत, अंध-विश्वास। अगर तुमने मैं की दुकान सिकोड़ ली, बिलकुल सिकोड़ ली, मैं-भाव बिलकुल जाने दिया, तब परमात्मा दिखाई पड़ता है; तब संसार नहीं दिखाई पड़ता। तब संसार माया मालूम होती है। यह जो ज्ञानियों ने संसार को माया कहा है, इसका अर्थ समझते हो?

इसका अर्थ यह होता है : जब परमात्मा दिखाई पड़ता है तो संसार नहीं दिखाई पड़ता; संसार तत्क्षण खो जाता है। क्योंकि परमात्मा ही है चारों तरफ। ये वृक्ष, ये पक्षी, ये पशु, ये पुरुष, ये स्त्रियां, ये पत्थर, ये पहाड़, ये चांद-तारे--ये तुम्हें अभी संसार मालूम हो रहे हैं, क्योंकि तुम्हारे भीतर मैं-भाव खड़ा है। यह मैं-भाव से देखा गया परमात्मा। जब मैं-भाव से परमात्मा को देखते हो तो संसार जैसा प्रतीत होता है। यह तुम्हारी प्रतीति है। है

तो यह परमात्मा ही। जिस दिन तुमने अपनी आंख का चश्मा बदला, यह मैं का चश्मा उतार कर रखा, उस दिन तुम चौंक जाओगे! यहां न तो वृक्ष हैं, न पहाड़ हैं, न पत्थर हैं, न पशु हैं, न पक्षी हैं, न मनुष्य हैं, न स्त्रियां हैं--यहां एक ही अनंत-अनंत रूपों में नाच रहा है। यह रास चल रहा है। यहां एक ही स्वर है। यहां एक ही अस्तित्व है। यहां एक ही गीत है।

लेकिन मैं हटे तो। तत्क्षण रूपांतरण होता है। तुम एक नई दृष्टि को उपलब्ध होते हो। दृष्टि बदली कि सृष्टि बदली।

सूनी-सूनी सांस की सितार पर
गीले-गीले आंसुओं के तार पर
एक गीत सुन रही है जिंदगी
एक गीत गा रही है जिंदगी
चढ़ रहा है सूर्य उधर, चांद इधर ढल रहा
झर रही है रात यहां, प्रात वहां खिल रहा
जी रही है एक सांस, एक सांस मर रही
बुझ रहा है एक दीप, एक दीप जल रहा
इसलिए मिलन-विरह के विहान में,
एक दीया जला रही है जिंदगी, एक दीया बुझा रही है जिंदगी।
रोज फूल कर रहा है धूल के लिए सिंगार
और डालती है रोज धूल फूल पर अंगार
कूल के लिए लहर-लहर विकल मचल रही
किंतु कर रहा है कूल बूंद-बूंद पर प्रहार,
इसलिए घृणा-विदग्ध प्रीति को
एक क्षण हंसा रही है जिंदगी, एक क्षण रुला रही है जिंदगी।
एक दीप के लिए पतंग कोटि मिट रहे
एक मीत के लिए असंग मीत छूट रहे,
एक बूंद के लिए गले ढले हजार मेघ
एक अश्रु से सजी सौ सपन लिपट रहे,
इसलिए सृजन विनाश संधि पर
एक घर बसा रही है जिंदगी, एक घर मिटा रही है जिंदगी।
सो रहा है आसमान, रात रो रही खड़ी
जल रही बहार कली नींद में जड़ी पड़ी
धर रही है उम्र की उमंग कामना शरीर
टूट कर बिखर रही है यह सांस की लड़ी-लड़ी
इसलिए चिंता की धूप-छांह में
एक पल सुला रही है जिंदगी, एक पल जगा रही है जिंदगी।

जिंदगी के दो पैर हैं, दो पंख हैं। जिंदगी को देखने के दो ढंग हैं। एक तरफ से देखो तो मिटता हुआ दिखता है; और दूसरी तरफ से देखो तो जन्म होता हुआ दिखता है। बीज मरता है तो वृक्ष पैदा होता है। अगर बीज जिद्द करे कि मैं रहूंगा, मैं क्यों मिटूं, मिटने से क्या सार है, मैं तो रहूंगा, मैं अपने को बचाऊंगा--अगर बीज अपने को बचाए तो मिट जाएगा, सड़ेगा। लेकिन बीज मिट जाता है और अपने को बचा लेता है। इस उलटबांसी को समझ लेना। बीज मिट जाता है तो अपने को बचा लेता है, वृक्ष पैदा हो जाता है। और वृक्ष में करोड़ों बीज

लगेंगे। एक बीज अनंत हो जाता है। अगर बीज अपने को बचा ले तो कंकड़ की तरह पड़ा रह जाएगा, सड़ जाएगा।

जीसस का वचन है : जो अपने को बचाएंगे, वे नष्ट हो जाएंगे। और जो अपने को नष्ट करने को तैयार हैं, उन्हें कोई नष्ट नहीं कर सकता।

समस्त धर्मों की कथा इस छोटे से सूत्र के ऊपर ही निर्धारित है : जो मिटेगा वह बच जाएगा; जो बचाएगा अपने को, वह मिट जाएगा।

यह मैं बचना चाहता है। जब तक यह मैं बचना चाहता है, तब तक प्रेम नहीं घट पाता। जिस दिन यह मैं समझता है कि मेरे होने में पीड़ा है, मेरे होने में बंधन है, मेरे होने में ही नरक है--और मिटने को राजी हो जाता है स्वेच्छा से. . .। इसलिए मैं संन्यास को आत्मघात कहता हूं--स्वेच्छा से मरने को तैयार हो जाता है। इधर बीज मिटा, इधर अहंकार मिटा, वहां परमात्मा की रोशनी उतरने लगती है।

आज के सूत्र इसी अपूर्व क्रांति के सूत्र हैं।

"मन मिहिन कर लीजिए, जब पिउ लागै हाथ।"

अगर उस प्यारे को पाना हो तो मन को सूक्ष्म करो, सूक्ष्म करो--इतना सूक्ष्म करो कि मन मिट जाए।

मन मिहिन कर लीजिए!

मन को महीन करते जाओ, मन को सूक्ष्म करते जाओ। मैं-भाव जितना क्षीण हो जाए उतना प्यारा पास दिखाई पड़ने लगेगा। यह जो मैं का पर्दा है, यह जो मन का पर्दा है, यह पर्दा जितना मखमल से मलमल का होने लगे, महीन होने लगे, उतना ही झलक परमात्मा की दिखाई पड़ने लगेगी।

"मन मिहिन कर लीजिए, जब पिउ लागै हाथ।"

अगर परमात्मा को पाना है, तो उसी मात्रा में परमात्मा मिलता है जिस मात्रा में, जिस अनुपात में मन सूक्ष्म होने लगता है, नहीं होने लगता है। सूक्ष्म यानी नहीं होने की यात्रा, मिटने की यात्रा। और जिस दिन मन पूरा शून्य हो जाता है, उस दिन तुम परमात्मा हो। फिर प्रेमी में और प्यारे में फर्क नहीं रह जाता। फिर भक्त और भगवान में फर्क नहीं रह जाता। फर्क ही एक झीने से पर्दे का है। मगर साधारणतः हम बड़ा मोटा पर्दा डाले हुए हैं। लोहे का पर्दा डाले हुए हैं। उस पर्दे में ही कैद हैं और चिल्लाते हैं कि ईश्वर कहां है।

लोग पूछते हैं, ईश्वर कहां है? ईश्वर का प्रमाण क्या है? और आंख खोलते नहीं। और ईश्वर का प्रमाण सब तरफ है। उसी-उसी का प्रमाण है। अगर यहां किसी चीज का कोई प्रमाण है तो सिर्फ ईश्वर का प्रमाण है; और तो किसी चीज का कोई प्रमाण नहीं है।

एक युवक ने मुझसे आकर पूछा : ईश्वर का क्या प्रमाण है? मैंने कहा : बजाय तुम ईश्वर का प्रमाण खोजने के, इस चिंता में लगो कि तुम्हारे होने का क्या प्रमाण है। खोजो कि तुम हो? जिस दिन तुम पा लोगे कि तुम नहीं हो, उसी दिन ईश्वर है और जब तक तुम्हें लगता है कि मैं हूं, तब तक ईश्वर नहीं है। ये दोनों बातें एक साथ नहीं होने वाली हैं। भक्त रहे तो भगवान नहीं। भक्त मिटे तो भगवान। जब भक्त अपने से भरा होता है, तो जगह कहां भीतर भगवान को आने के लिए! जब भक्त अपने भीतर खाली होता है तो उस महाअतिथि को आने के लिए जगह बनती है।

जगह खाली करो! सारी साधना जगह खाली करने का उपाय है। अपने भीतर स्थान खाली करो। कचरा-कूड़ा, फर्नीचर फेंको बाहर। मन यानी फर्नीचर--विचार, वासनाएं, वृत्तियां, संस्कार, स्मृतियां, कल्पनाएं, योजनाएं। इनकी इतनी भीड़ मची है भीतर। यही बाजार है।

तुम सोचते हो बाजार बाहर है? बाजार यही है, जो तुम्हारे भीतर है। यह जो कोलाहल भीतर चल रहा है, यह बाजार का कोलाहल है। इस कोलाहल को शांत करो। इस कोलाहल को जाने दो। जैसे ही यह कोलाहल शांत होने लगेगा, तुम पाओगे : मन महीन होने लगा।

पलटू कहते हैं : मन मिहिन कर लीजिए, जब पिउ लागै हाथ।

अगर उस परम प्यारे को पाना है तो तुम धीरे-धीरे सूक्ष्म होते-होते खो जाओ।

ऐसा समझो कि बर्फ का एक ढेला है। यह बड़ा ठोस है; पत्थर जैसा है। इसलिए तो इसे पत्थर का बर्फ कहते हैं। पानी के बर्फ को पत्थर का बर्फ कहते हैं। फिर यह महीन होता है तो जल बन जाता है--पिघला; जल बना। फिर और भी पिघला तो भाप बन जाता है। फिर बड़ा सूक्ष्म हो जाता है। बर्फ था तो पत्थर जैसा था; किसी के सिर पर मार देते तो सिर टूट जाता। पानी बन गया तो फिर किसी के सिर पर मार कर सिर को नहीं तोड़ सकते थे; फिर इससे हिंसा नहीं हो सकती थी। फिर भाप बन गया, अब तो इसे देख भी नहीं सकते। अब तो यह विलुप्त होने लगा। अब तो यह विसर्जित होने लगा परम में। अब तो यह शून्य में खोने लगा।

सूक्ष्म का अर्थ होता है : धीरे-धीरे शून्य की यात्रा। शून्य की यात्रा पर जो जा रहा है, वही तीर्थयात्रा पर जा रहा है। काशी जाने से कुछ भी न होगा, और न गिरनार जाने से। मक्का और मदीना और जेरुसलेम कुछ साथ न आएंगे। असली तीर्थयात्रा--शून्य की, सूक्ष्म की, महासूक्ष्म की।

हम बड़े स्थूल हैं। हमारी स्थूलता कई तरह की है। पहली तो हमारी स्थूलता यह है कि हमारे भीतर तीनों मौजूद हैं : बर्फ, पानी, भाप। बर्फ जैसी तो हमारी देह है--स्थूल, बहुत स्थूल। पानी जैसा हमारा मन है--बड़ा तरल, बहा-बहा। इसलिए तो मन को पकड़ नहीं पाते; इतना तरल है, मुट्ठी नहीं बंधती। और हमारी आत्मा भाप जैसी है--दिखाई ही नहीं पड़ती। अब इन तीनों में तुम जिसके साथ संबंध बांधोगे, वैसे ही हो जाओगे। अगर तुमने सोचा मैं देह हूं तो तुम बहुत स्थूल हो गए। तुम्हारी मान्यता ही तो तुम्हारा व्यक्तित्व बन जाती है। तुमने सोचा मैं देह हूं, शरीर हूं, तो तुम शरीर हो गए। तुमने माना कि तुम वही हो गए। अब तुम्हारी धारणा ने तुम्हें पत्थर से जोड़ दिया। अब तुम बड़े स्थूल हो गए। अब तुम्हारा जीवन-व्यवहार ही स्थूल हो जाएगा। अब जो आदमी सोचता है मैं शरीर हूं, यह मौत से बहुत डरेगा। क्योंकि यह देखता है रोज शरीरों को मरते। यह मौत से डरेगा तो धन को खूब पकड़ेगा। बैंक में बैलेंस इकट्ठा करेगा, क्योंकि लगता है धन से शायद सुरक्षा हो। अगर यह मौत से डरेगा तो यह बड़े भय से जीने लगेगा। यह अगर भगवान की पूजा भी करेगा तो भय के कारण करेगा। और भय से कहीं पूजा हुई? भय के जहर से कहीं पूजा का अमृत निकलता है? अगर यह मंदिर भी जाएगा तो सिर्फ भय के कारण, कि मौत आ रही है, भगवान बचाए! यह नरक से डरेगा, इसलिए दान भी करेगा। लेकिन डर से किसी ने दान किया? दान कैसे होगा?

दान तो प्रेम से होता है। दान तो आनंद से होता है। भय की गंदगी से दान नहीं निकलता है। दान की गंगाएं भय की गंदी नालियों से नहीं निकलतीं; गंगोत्री चाहिए। सहज, सरल आनंद का भाव चाहिए। प्रार्थना भी तभी पैदा होती है, जब प्रेम आंदोलित होता है; जब हृदय तरंगित होता है प्रेम से। भय से डरे जा रहे हैं, तो भगवान भी झूठा होगा। भय से निर्धारित भगवान, भय का ही विस्तार है।

यह जो आदमी है, जो इतना भयभीत है मौत से, यह जिंदगी में कभी भी कोई उत्सव न मना सकेगा। उत्सव कहां जहां मौत चारों तरफ घिरी हो! जहां आज मरे कल मरे, उत्सव कहां! और जो उत्सव न मना सकेगा, वह धन्यवाद किस बात के लिए दे? भगवान को धन्यवाद भी करना चाहे तो किस बात के लिए धन्यवाद दे? धन्यवाद जैसा कुछ जाना नहीं। न कोई रंग था, न कोई गंध थी जीवन में, न कोई संगीत था, न कोई नृत्य था। पैरों में कभी घूंघर ही न बंधे। कभी मुक्त हृदय से जीवन का अनुभव भी न हुआ। धन्यवाद किस बात का? स्वाद ही न मिला, तो धन्यवाद किस बात का। यह भयभीत आदमी उत्सव तो मना न सकेगा, यह तो सिकुड़ा जा रहा है भय के कारण। यह तो सड़ा जा रहा है भय के कारण। और देह तो रोज जवान है तो बूढ़ी हो रही है; बूढ़ी हो तो मौत की तरफ सरक रही है। शरीर तो रोज मर रहा है। जिस दिन से शरीर पैदा हुआ है, उस दिन से मरना शुरू हो गया है। पहले दिन का बच्चा भी एक दिन मर चुका। जिनको तुम जन्म-दिन कहते हो उनको मृत्यु-दिन कहना चाहिए, जन्म-दिन नहीं। पचास साल हो गए। तुम कहते हो पचासवां जन्म-दिन आ

गया। मौत पचास साल करीब आ गई। अगर सत्तर साल में मरना है तो बीस ही साल और बचे। इसको जन्म-दिन कहते हो, जो मौत को करीब ला रहा है?

समय की धारा मौत को करीब ला रही है। इसलिए तो हमने इस देश में समय को और मृत्यु को एक ही नाम दिया--काल। समय को भी कहते हैं काल और मृत्यु को भी कहते हैं काल। समय ही मृत्यु है। यह जो भयभीत आदमी है, इसका कारण क्या है? यह शरीर से बहुत अपने को एक समझ लिया है।

इस स्थूलता के कारण परमात्मा तो दूर हो गए, इसे चारों तरफ यमदूत दिखाई पड़ते हैं। फिर इससे थोड़ा सूक्ष्म आदमी है जो शरीर से अपने को एक नहीं करता, मन से अपने को एक समझता है--वह थोड़ा सूक्ष्म है। उसके जीवन में धन की बजाय काव्य को जगह होगी। सुरक्षा की बजाय संगीत में उसे रस होगा। बैंक में धन ज्यादा इकट्ठा हो या न हो, यह उसकी बहुत चिंता न होगी। मित्र हो, संगीत हो, काव्य हो, उसकी रुचि थोड़ी परिष्कृत होगी। वह थोड़ा अभिजात्य, थोड़ा एरिस्टोक्रेटिक होगा। वह कुछ ऐसी चीजों में रस लेगा जिनमें शरीरवादी को कोई रस नहीं समझ में आता। शरीरवादी कहता है : क्या फिजूल की बातें कर रहे हो? कविता में क्या रखा है? शरीरवादी कहता है : इससे तो बेहतर थोड़ी शराब पी लो। इससे तो बेहतर भोजन कर लो। कविता में क्या रखा है? यह कविता सुनने में क्या है? संगीत में क्या सार है?

शरीरवादी की अपनी भाषा है--बड़ी स्थूल। उसे एक ही संगीत समझ में आता है, जब नगद रुपयों को कोई खनखनाता है; बस वह एक ही संगीत जानता है। उससे तुम कहो वीणा बजती है सुंदर, वह कहेगा : क्या रखा है?

मैंने सुना है, दो आदमी एक रास्ते से गुजर रहे थे। बड़ा बाजार था, बड़ी भीड़-भाड़ थी। लोग शोरगुल कर रहे थे। दुकानें चल रही थीं। ग्राहक खरीद रहे थे। शायद बंबई का शेयर-मार्केट हो। "फली" बैठे हैं, उनसे पूछ सकते हैं। बड़ा शोरगुल मचा था। तभी एक पास के मंदिर में घंटियां बजने लगीं। उस बाजार की भीड़ में किसको मंदिर की घंटियां सुनाई पड़तीं! लेकिन उन चलते दो आदमियों में से एक ने कहा कि सुनते हो, कितनी प्यारी घंटियां बज रही हैं! उस आदमी ने कहा : जरा जोर से कहो, क्या कह रहे हो? तो उसने जोर से कहा : सुनते हो, मंदिर की घंटियां कितनी प्यारी लग रही हैं! पर उस दूसरे आदमी ने कहा : आश्चर्य, तुम्हें यहां मंदिर की घंटियां सुनाई पड़ती हैं--इस उपद्रव में, इस कोलाहल में! यह संभव कैसे हुआ कि तुम्हें मंदिर की घंटियां सुनाई पड़ गईं! यहां ट्रैफिक का शोरगुल मचा है, इतना उपद्रव चल रहा है। यहां कहां मंदिर की घंटियां! तुमने सुना कैसे?

उस आदमी ने क्या किया, पता है? उसने अपने खीसे से एक रुपया निकाला। पुराने दिन की बात है जब चांदी के सिक्के हुआ करते थे। और उसने जोर से सड़क के किनारे पत्थर पर उस रुपए को पटका। खनाखन की आवाज हुई। कोई पच्चीस आदमी, जो इधर-उधर दुकान पर काम कर रहे थे, कोई अपना बात कर रहा था, कोई खरीद-फरोख्त कर रहा था, कोई बेच रहा था--वे एकदम भाग कर आ गए। उन्होंने कहा : किसी का रुपया गिरा? उस आदमी ने कहा : देखते हो! मंदिर की घंटियां किसी को सुनाई नहीं पड़ रही हैं! रुपए की आवाज. . .!

हम वही सुनते हैं, जिसकी हमें चाहत हो। हम हर कुछ थोड़े ही सुनते हैं। हम एक ही रास्ते से गुजरते हैं; अलग-अलग चीजें देखते हैं। जिसकी हमें चाहत होती है वही हम देखते हैं। जिसको हम देखने निकले हैं, वही हमें दिखाई पड़ता है। और वही हमें सुनाई पड़ता है जिसको हम सुनने निकले हैं। अब जो रुपए के पीछे दीवाना है, वह रुपए की आवाज सुन लेगा नींद में भी।

मैं कुछ वर्षों तक सागर में था। वहां एक मिठाईवाला है। वैसी गुजिया बनाने वाला पूरे मुल्क में कहीं भी नहीं है। उसकी गुजिया बड़ी प्रसिद्ध हैं। बहुत लोगों ने कोशिश की है वैसी गुजिया बनाने की, कोई बना नहीं सका। उसकी कला अनूठी है। उसके संबंध में कहा जाता है कि अगर रात दो बजे भी तुम्हें गुजिया चाहिए हो, तो दरवाजा खटखटाने की जरूरत नहीं, सिर्फ उसके दरवाजे पर रुपया खनखना दो, सोया हो कितनी ही गहरी

नींद में, एकदम खोल कर आ जाता है कि भाई, क्या चाहिए! दरवाजा खटखटाओ तो सुनाई नहीं पड़ता उसको। चिल्लाओ तो सुनाई नहीं पड़ता। लेकिन रुपए की आवाज वह नींद में भी सुन लेता है। गहरी से गहरी प्रसुप्ति में भी। जहां स्वप्न भी न हों, वहां भी रुपए की आवाज पहुंच जाती है।

हम वही सुन पाते हैं, जो हम खोज रहे हैं। जो परमात्मा को खोज रहा है वह परमात्मा को देख पाता है। यही है अस्तित्व। यहां तुम्हें वही दिख जाता है जो तुम खोज रहे हो। तो जिसको रुपए में संगीत मालूम पड़ता है, उसे रविशंकर के सितार में रस नहीं आएगा। वह कहेगाः क्या फिजूल समय खराब कर रहे हो! शास्त्रीय संगीत में ले जाओगे तो वह कहेगा कि यह क्या आ ऽ ऽ आ ऽ ऽ आ ऽ ऽ ... लगा रखी है!

मुल्ला नसरुद्दीन गया था एक बार। और जब संगीतज्ञ काफी देर तक आ ऽ ऽ आ ऽ ऽ. . . करता रहा तो उसकी आंख से आंसू गिरने लगे, मुल्ला की। उसके पड़ोसी ने पूछा कि नसरुद्दीन रो रहे हो! मैंने कभी सोचा नहीं था कि तुम्हें शास्त्रीय संगीत से इतना रस है।

उसने कहा : शास्त्रीय संगीत! कहां का शास्त्रीय संगीत! मैं रो रहा हूं, क्योंकि यही हालत मेरे बकरे की हो गई थी, जब वह मरा। यह आदमी मरेगा। यह कहां का शास्त्रीय संगीत हो रहा है! इसको... जल्दी से किसी डाक्टर को या वैद्य को बुलाओ। यही मेरे बकरे की हालत हो गई थी। मुझे उसकी याद आ गई है--बकरे की--कि जब वह मरा तो करीब घंटे भर तक आ ऽ ऽ आ ऽ ऽ आ ऽ ऽ... करता रहा। मैं कुछ समझा नहीं। तब मुझे पता नहीं था। मैं तब यही समझा कि शास्त्रीय संगीत कर रहा है। तो पीछे पता चला जब मर गया। यह आदमी मरेगा।

अपनी-अपनी पकड़ है। अपनी-अपनी तौल है।

जिसने अपने को शरीर से बांध रखा है, वह बड़ा स्थूल हो जाता है। उसकी सारी पकड़ स्थूल हो जाती है। उसे जीवन में कहीं काव्य दिखाई नहीं पड़ता। वृक्षों से गुजरते हुए हवा के झोंकों में उसे संगीत सुनाई नहीं पड़ता। पक्षियों के कंठ से निकलने वाले परमात्मा के स्वर में उसे कोई. . . कोई अर्थ नहीं है--निरर्थक, व्यर्थ का शोरगुल है।

जो शरीर से बंध कर जीता है, उससे मन के साथ जीने वाला थोड़ा बेहतर है। मन के साथ जीने वाला थोड़ा तो आंख ऊपर उठाता है; थोड़ा तरल होता है। अधिक से अधिक लोग संसार में मन तक पहुंच पाते हैं। जो शरीर में रहते हैं, उनके जीवन में न तो कोई संस्कृति होती है, न कोई सभ्यता होती है, न कोई अभिजात्य होता है, न कोई संगीत, न कोई गीत, न कोई नृत्य। उनके जीवन में दर्शन की कोई झलक नहीं पड़ती। छाया नहीं पड़ती। खाने-पीने पर उनका जीवन समाप्त हो जाता है।

लेकिन मन के साथ संबंध जोड़ने वाला थोड़ा सा सूक्ष्म होता है। पर वहीं रुक जाना उचित नहीं है, क्योंकि और भी सूक्ष्म होने का उपाय है। जो अपने को आत्मा से जोड़ लेता है, उसका काव्य काव्य ही नहीं रह जाता, भजन हो जाता है। उसका नृत्य नर्तकी का नृत्य नहीं रह जाता, मीरा का नृत्य हो जाता है। दोनों में बड़ा फर्क है। नर्तकी नाचती है--या तो देह से बंध कर नाचती होगी तो, तो बहुत कामुक होगा नृत्य; तब तुम्हारे भीतर वासना को जगाएगा। क्योंकि स्थूल की चोट स्थूल पर पड़ती है।

इसलिए पश्चिम में बहुत से नृत्य पैदा हुए हैं--आधुनिक नृत्य--वे सिर्फ वासना को जगाते हैं; वे तुम्हारे भीतर पड़ी वासना को प्रज्वलित करते हैं; वासना में घी का काम करते हैं। कैबरे इत्यादि। होटलों में लोग नग्न स्त्रियों को नचा रहे हैं। उनकी वासना क्षीण हो गई है; टूटी-फूटी हो गई है। उसमें किसी तरह घी डाल कर उसको फिर से उभारने की कोशिश चल रही है। नर्तकी नाचती है तो या तो उसका शरीर से संबंध होगा; तो तुम्हारे भीतर वह वासना को जगाएगी। अगर शरीर से संबंध न हो उसका, अगर मन से संबंध हो, तो तुम्हारे भीतर संगीत को जगाएगी, काव्य को जगाएगी; तुम्हारे भीतर मन को आंदोलित करेगी। तुम थोड़ी देर के लिए शरीर की स्थूलता से मुक्त हो जाओगे और मन के आकाश में उड़ोगे। और अगर नर्तकी मीरा हो या चैतन्य, तो तुम थोड़ी देर के लिए परम आकाश में, महाकाश में प्रविष्ट हो जाओगे समाधि बरसेगी।

मीरा के नृत्य में आत्मा के साथ उसका संबंध है। तो थोड़ी देर को उसका नृत्य देखते-देखते तुम्हारा भी संबंध जुड़ जाएगा।

हम सत्संग से बड़े आंदोलित होते हैं। अपने मित्र बहुत सोच-समझ कर चुनना। क्योंकि तुम्हारे मित्र अंततः तुम्हारे जीवन के निर्णायक हो जाते हैं। अगर नाच ही देखना हो तो मीरा को खोजना। अगर गीत ही सुनना हो तो किसी पलटू, दरिया, कबीर का सुनना। जब ऊंचा मिल सकता हो तो क्यों नीचे को पकड़ते हो? जब गंगाजल मिल सकता हो तो तुम क्यों किसी गंदी नाली का जल पीते हो?

पलटू कहते हैं : मन मिहिन कर लीजिए, जब पिउ लागै हाथ।

ऐसे धीरे-धीरे महीन होते जाओ। शरीर से छूटो, मन से छूटो--आत्मा से भी छूटो एक दिन! तब परमात्मा से जुड़ते हो। इन तीनों सीढ़ियों को जो पार कर जाता है और चौथे में प्रवेश कर जाता है--शरीर से छूटा, मन से छूटा, आत्मा से भी छूटा। आत्मा से छूटा मतलब मैं-भाव पूरी तरह समाप्त हो गया। आत्मा शब्द का अर्थ होता है : मैं, मैं-भाव।

इसलिए बुद्ध ने कहा है : जो परमदशा है वह अनात्मा की है। वहां आत्मा भी नहीं बचती। वहां मैं हूं, यह भाव ही नहीं बचता। अनत्ता। अत्ता चली जाती है। मैं-भाव चला जाता है। शून्य रह जाता है। उसी शून्य में परमात्म-भाव या भागवत-भाव पैदा होता है।

"जब पिउ लागै हाथ, नीच ह्वै सब से रहना।

पच्छापच्छी त्याग उंच बानी नहिं कहना।।"

और जब प्रिय को हाथ पाने की सच में ही आकांक्षा पैदा हो गई हो तो नीच ह्वै सबसे रहना। सबसे नीचे होकर रहना, सबसे पीछे होकर रहना। आगे की भाग-दौड़ में मत पड़ना। दूसरों से आगे हो जाऊं, यह चेष्टा, यह महत्वाकांक्षा ही संसार की जन्मदात्री है।

इसलिए जीसस ने कहा है : जो सबसे पीछे हैं इस जगत में, वे मेरे परमात्मा के जगत में सबसे पहले होंगे। और जो यहां सबसे आगे हैं, वे वहां सबसे पीछे हो जाएंगे। आगे की दौड़ राजनीति। सबसे आगे हो जाऊं! पंक्ति में सबसे आगे खड़ा हो जाऊं!

आगे खड़े होने की आकांक्षा अहंकार की आकांक्षा है। मैं और पीछे कैसे हो सकता हूं! मुझे तो प्रथम होना चहिए। यह प्रथम होने का जो रोग है, यह सारी राजनीति को जन्माता है।

हम छोटे-छोटे बच्चों का मन भी जहर से भर देते हैं। छोटा सा बच्चा स्कूल जा रहा है, पांच-छः साल का बच्चा है, बस्ता इत्यादि लटकाए स्कूल जा रहा है, उसको हम जहर पिलाना शुरू कर देते हैं, कि प्रथम आना, कक्षा में प्रथम आना! तीस बच्चों को पछाड़ कर आगे निकल जाना! तो ही तुम्हारी कुछ कीमत है। फिर अगर यही बच्चे जिंदगी भर आगे होने में लगे रहते हैं, कोई धन में आगे होने में लगा है, कोई पद में आगे होने में लगा है, कोई किसी तरह, कोई किसी तरह, येन केन प्रकारेण, फिर कुछ भी हो, कुछ भी साधन अखत्यार करना पड़े--लेकिन किसी तरह आगे होना है! क्योंकि आगे हुए बिना कोई कीमत नहीं, कोई मूल्य नहीं। मूल्य है एक बात का कि तुम कहां हो, कितने लोग तुम्हारे पीछे हैं। जितने लोगों को तुम पीछे कर दो, उतने मूल्यवान हो।

लेकिन ध्यान रखना, जब तुम एक आदमी को पीछे करते हो, तुम उतने कठोर हो गए। दो को किया, और ज्यादा कठोर हो गए। तीन को किया, और ज्यादा कठोर हो गए।

महत्वाकांक्षी पत्थर हो जाएगा, बड़ा स्थूल हो जाएगा। इसलिए राजनीतिज्ञ से ज्यादा स्थूल व्यक्ति संसार में दूसरा नहीं होता। राजनीतिज्ञ से ज्यादा धर्म के विपरीत दूसरा आदमी नहीं होता। यहां वेश्याएं भी धार्मिक हो सकती हैं। यहां पापी भी धार्मिक हो सकते हैं। लेकिन राजनीतिज्ञ का धार्मिक होना बहुत कठिन हो जाता है। कारण? उसकी दौड़ ही धर्म के बिलकुल विपरीत है। जीसस कहते हैं : जो यहां प्रथम है, वह अंतिम हो जाता है मेरे राज्य में; और जो अंतिम है वह प्रथम हो जाता है। तो यहां तो प्रथम राजनीतिज्ञ हैं। यह जो प्रथम होने की दौड़ है, यह अहंकार की ही उद्घोषणा है। और अहंकार परमात्मा से तोड़ता है।

"जब पिउ लागै हाथ, नीच ह्वै सबसे रहना।"

तो बिलकुल पीछे हो जाना, नीचे हो जाना। गड्ढे जैसे हो जाना, पहाड़ के शिखर जैसे नहीं।

देखते हो, जब वर्षा होती है, पहाड़ पर भी होती है; लेकिन पहाड़ पर कुछ बचता नहीं, सब बह जाता है, सब गड्ढों में पहुंच जाता है! झीलें भर जाती हैं। झीलें--जो खाली थीं--भर जाती हैं! और पहाड़--जो भरे थे--खाली रह जाते हैं!

यहां जो भरा है वह खाली रह जाएगा। जो खाली है, भर जाएगा। इस सूत्र को जिसने समझ लिया, उसे समझने को कुछ और बचता नहीं।

"जब पिउ लागै हाथ, नीच ह्वै सब से रहना।

पच्छापच्छी त्याग उंच बानी नहिं कहना।।"

और पक्ष-विपक्ष वाद-विवाद छोड़ देना। पच्छापच्छी त्याग. . . क्योंकि वह सब विवाद भी अहंकार के ही विवाद हैं। हिंदू कहता है : मेरा धर्म ठीक। वह यह थोड़े ही कह रहा है मेरा धर्म ठीक--वह यह कह रहा है मैं ठीक। अगर उसकी बात को ठीक से सुनो, धर्म से उसको क्या लेना-देना है! और धर्म हिंदू का और मुसलमान का अलग कैसे हो सकता है? आग को चाहे हिंदुस्तान में जलाओ और चाहे अरब में--जलाती है। आग का धर्म एक है, चाहे हिंदू घर में जले और चाहे मुसलमान घर में जले। पानी को गरम करो, सौ डिग्री पर भाप बन जाता है, चाहे हिंदुस्तान में, चाहे तिब्बत में, चाहे चीन में। नियम में तो कोई फर्क नहीं पड़ता। टी.बी. हो जाए--हिंदू को, मुसलमान को, जैन को--तो एक ही इलाज काम करता है। जैन यह नहीं कह सकता कि मैं जैन हूं, यह टी.बी. जैन है; यह मुसलमानों को चलने वाला इलाज इस पर नहीं चलेगा। यह टी.बी. शाकाहारी है; यह मांसाहारियों पर चलने वाला इलाज काम नहीं आएगा।

लेकिन वही दवा काम करती है।

अगर विज्ञान एक है तो धर्म दो कैसे हो सकते हैं? विज्ञान है स्थूल का धर्म। और धर्म है सूक्ष्म का विज्ञान। विज्ञान सार्वभौम होता है, युनिवर्सल होता है। कोई अपवाद नहीं होते। वैसा ही धर्म तो परम विज्ञान है। वहां कैसे अपवाद हो सकते हैं! कोई अपवाद नहीं होते।

इसलिए पच्छापच्छी त्याग--पक्ष-विपक्ष में मत पड़ना। यह कहना ही मत कि मैं हिंदू, कि मैं मुसलमान, कि मैं ईसाई, कि मैं बौद्ध, कि मैं सिक्ख। ये तो पक्ष हैं; ये धर्म नहीं हैं। ये संप्रदाय हैं। धार्मिक व्यक्ति का तो कोई पक्ष नहीं होता। धार्मिक व्यक्ति का तो कोई सिद्धांत भी नहीं होता, कोई शास्त्र भी नहीं होता। धार्मिक व्यक्ति का तो कोई मन ही नहीं बचता, तो कहां सिद्धांत, कहां शास्त्र! कोई विचार ही उसका नहीं होता। निर्विचार स्थिति धर्म की स्थिति है। तो ये तो सब विचार की बातें हैं। तुम कहते हो : कुरान मेरा शास्त्र, कि बाइबिल कि गीता। कुरान, बाइबिल और गीता तो मन तक ही जा सकते हैं; मन के पार तो नहीं जा सकते। और मन तक तो धर्म आता ही नहीं। मन जहां समाप्त होता है, वहां धर्म शुरू होता है। अ-मन, नो-माइंड जहां से शुरू होता है--जिसको कबीर ने उनमनी दशा कहा है--मन-रहित दशा--वहां से धर्म शुरू होता है।

यह तो आत्यंतिक रूप से समझ लेने जैसी बात है कि जो अभी कुरान और गीता में पड़ा है, वह अभी धर्म में नहीं पहुंचा है। जो धर्म में पहुंच गया है वह कुरान, गीता से मुक्त हो गया है। और मजा यह है कि जो धर्म में पहुंच गया है, वही समझेगा कि कुरान में क्या है और गीता में क्या है। और जो अभी धर्म में नहीं पहुंचा है, वह लाख सिर पटके, कुरान और गीता को लेकर, वह कुछ भी नहीं समझेगा। समझ तो भीतर की ऊंचाई से आती है; भीतर के अनुभव से आती है; भीतर की गहराई से आती है; भीतर की प्रतीति और साक्षात्कार से आती है।

तो ठीक कहते हैं पलटूः

"पच्छापच्छी त्याग उंच बानी नहिं कहना।"

एक तो पक्ष-विपक्ष छोड़ देना, विवाद छोड़ देना, शास्त्रार्थ में मत पड़ना। क्योंकि सब शास्त्रार्थ गहरे में अहंकार को ही सिद्ध करने की चेष्टा है। तुम्हें कुछ मतलब थोड़े ही होता है सत्य से। सत्य का तुम्हें पता ही नहीं, सत्य से मतलब क्या खाक होगा? जब तुम कहते हो कि जो मैं कह रहा हूं यह ठीक है, तो तुम यह थोड़े ही कहते हो कि जो मैं कह रहा हूं यह ठीक है--तुम यह कहते हो कि मैं कह रहा हूं, इसलिए कैसे गलत हो सकता है?

गौर से जांचना : क्यों तुम इतने उद्विग्न हो जाते हो, जब कोई तुम्हारी बात को गलत कहता है? क्या इसलिए कि तुम्हें बात में बड़ा रस है? बात से तुम्हें क्या लेना-देना है? तुम उद्विग्न हो जाते हो क्योंकि तुम्हारी बात को गलत कह रहा है; तुमको गलत कह रहा है।

धन की तो बात ही छोड़ दो, व्यर्थ की बातों में भी आदमी आग्रहपूर्वक होता है। ऐसी बातों में भी आग्रहपूर्वक होता है जिनमें कुछ सार नहीं है। अगर उनमें भी कोई तुम्हारी बात को गलत कहता है तो तुम अच्छा नहीं मानते; तुम्हें सुख नहीं होता। तुम्हें परेशानी हो जाती है। तुम्हारी भूल भी कोई बताए तो तुम नाराज होते हो। तुम भूल बताने वाले को क्षमा नहीं कर पाते हो। हालांकि उसने भूल ही बताई है, लेकिन तुम्हारे अहंकार को चोट लगती है, क्योंकि तुम यह मान ही नहीं सकते कि तुम से और भूल हो सकती है! और किसी ने भूल बता दी। तो जिसने भूल बता दी, तुम अगर मान भी लो कि यह भूल है तो भी तुम इस आदमी को क्षमा न कर पाओगे। किसी न किसी दिन तलाश में रहोगे कि मैं भी इसकी भूल बता दूं, तब बराबरी हो जाए।

तो सत्य के बाबत हम जो दावे करते हैं कि मेरी किताब सही, मेरा देश सही, मेरी जाति सही, मेरा धर्म, मेरा मंदिर--इन सब में आकांक्षा मैं. . . इन सब के पीछे मैं का खेल चल रहा है।

"पच्छापच्छी त्याग. . ."।

और भी कारण हैं। पक्ष-विपक्ष छोड़ोगे तभी मन के पार जा सकोगे। मन में पक्ष-विपक्ष होते हैं। जहां तक मन होता है, वहां तक विकल्प होते हैं : ऐसा मानूं, वैसा मानूं। जहां तक मन है, वहां तक द्वंद्व है। वहां हर चीज दो तरह से आती है : ईश्वर है या ईश्वर नहीं है? नास्तिक या आस्तिक?

जहां तक मन है वहां तक चुनाव है। तुम अगर कहो कि मैं आस्तिक हूं, तो भी तुम मन के भीतर हो। जो आदमी मन के पार चला गया, वह कहेगा कि कैसे कहूं कि आस्तिक, कैसे कहूं कि नास्तिक, क्योंकि परमात्मा हां और ना के पार है। इसलिए बुद्ध चुप रह गए। जब कोई उनसे पूछता है, ईश्वर है? तो वे चुप रह जाते हैं। वे कहते : मैं कुछ भी कहूंगा तो गलत होगा। क्योंकि जो भी कहा जाएगा, वह द्वंद्व की भाषा में कहा जाएगा। अगर मैं कहूं परमात्मा प्रकाश है, तो फिर अंधेरे का क्या होगा? अंधेरा भी वही है। अगर मैं कहूं कि परमात्मा अंधेरा है, तो प्रकाश का क्या होगा? क्योंकि प्रकाश भी वही है। और अगर मैं कहूं परमात्मा दोनों है, तो कुछ कहा नहीं कहा, बराबर हो गया, क्योंकि उससे कुछ हल न हुआ। जीवन भी वही, मृत्यु भी वही। तुम चाहते थे, कुछ निर्णय हो जाए। तो निर्णय तो हुआ नहीं; बात वहीं के वहीं रही। तुम चाहते थे कि पक्का हो जाए कि परमात्मा कैसा है।

बुद्ध कहते हैं : जो भी कहा जाएगा, गलत होगा। लाओत्सु ने भी वही कहा है। सत्य कहा नहीं कि गलत हुआ नहीं। इधर कहा उधर गलत हुआ। चुप रह जाना। परम मौन में ही सत्य के संबंध में कुछ कहे जाने की संभावना है।

सत्य के संबंध में आज तक कुछ भी नहीं कहा जा सका है। जो भी कहा गया है, वह सत्य तक कैसे पहुंचो, इस संबंध में कहा गया है। कैसे सूक्ष्म हो जाओ, कैसे सूक्ष्म होते-होते, होते-होते, होते-होते खो जाओ, विलीन हो जाओ। फिर जो बच रहता है, उसके बाबत कौन क्या कह सका है! वाणी चुप है। शब्द मौन हैं। मन ही गया। बोलने वाला ही न बचा। जो बोलने में कुशल था, उसका कोई अब उसकी कोई गति नहीं रही। उसका अब कुछ चलता नहीं। उसका बस नहीं है। कुछ इतना बड़ा घटा है, जो शब्दों में नहीं समाता है।

"पच्छापच्छी त्याग उंच बानी नहिं कहना"

और ऐसा तो कहना ही मत भूल कर, कि मैं सही हूं। और ऐसा भी मत कहना कि तू गलत है। जब तुम किसी को कहते हो तू गलत है, तो भी वही खेल चल रहा है। वह मैं सही और तू गलत का खेल चल रहा है। यह भी मत कहना।

महावीर ने कहा है : मैं उपदेश देता हूं, आदेश नहीं। किसी ने पूछा कि आदेश नहीं कहने का क्या अर्थ है? तो उन्होंने कहा कि मैं किसी से यह नहीं कहता कि तुम ऐसा करो! मैं कौन? मैं कौन कहने वाला कि तुम ऐसा करो! मैं इतना ही कहता हूं मैंने ऐसा किया और ऐसा पाया। सुन लो। तुम्हारी मर्जी। ठीक लग जाए, करना; न ठीक लगे, न करना। करोगे तो तुमने अपने ही निर्णय से किया; नहीं करोगे तो अपने निर्णय से किया। तुम करो तो मैं प्रसन्न हूं; तुम न करो तो मैं प्रसन्न हूं। मैं आदेश नहीं देता। मैं सिर्फ उपदेश देता हूं।

उपदेश और आदेश का यही फर्क है। उपदेश का अर्थ होता है अपनी कहे देता हूं। तुम इसे मानो, ऐसा कोई आग्रह नहीं है। तुम सिर्फ सुन लो तो अनुग्रह तुम्हारा, धन्यवाद। बस उस पर बात समाप्त हो गई। फिर ऐसा नहीं है कि कल मैंने जो तुमसे कहा था, अगर उसके अनुसार तुम न चले तो मैं नाराज होऊंगा; और अगर उसके अनुसार चले, तो मैं प्रसन्न होऊंगा।

आदेश का मतलब होता है : ऊंची वाणी। मैं जानता हूं, तुम नहीं जानते। मैं जो कहता हूं, उसे मान कर करो। मैं ज्ञानी, तुम अज्ञानी। यह ऊंची वाणी।

पलटू कहते हैं : न तो पक्ष-विपक्ष रखना, न ऊंची बात कहना।

"मान-बड़ाई खोय खाक में जीते मिलना।
गारी कोउ दै जाय छिमा करि चुपके रहना।।
मान-बड़ाई खोय खाक में जीते मिलना।"

सारी मान-बड़ाई का भाव छोड़ दो, सारी महत्वाकांक्षा छोड़ दो। मैं को खूब सजाया, खूब दुख भोग लिया; अब मैं को और न सजाओ। अब मैं से सब आभूषण छीन लो। अब मैं को और भोजन मत दो। अब इस मैं को मर जाने दो।

मान-बड़ाई खोय खाक में जीते मिलना।

और जीते जी मौत घट जाए, तो ही समझो, परमात्मा से मिलन हो पाएगा। शरीर जीए, मैं न जीए। जीते जी मौत घट जाए। अभी तो क्या होता है--शरीर मरता है जब मौत घटती है; मैं फिर भी जीता है। तो एक शरीर से छलांग ली और दूसरी देह में प्रवेश कर जाता है। इधर एक शरीर से छूटा भी नहीं, क्षण भी नहीं लगते, पल भी नहीं लगते, इधर तुम मरे और उधर तुमने गर्भ धारण किया। मैं तो जारी रहता है, शरीर बदलते रहते हो। मैं भीतर बना रहता है।

यह साधारण मृत्यु की घटना है; इसमें शरीर मरता है, मैं नहीं मरता। और जिसको हम महामृत्यु कहते हैं, समाधि कहते हैं, उसमें मैं मर जाता है, शरीर बना रहता है। मैं मर जाए शरीर के रहते, तो फिर दुबारा जन्म नहीं होता। क्योंकि फिर किसका जन्म? वह मैं ही है जो यात्रा करवाता था; जो चाहता था मैं रहूं, मैं रहूं, और-और रूपों में रहूं, और-और ढंग में रहूं। अभी तो बहुत कुछ बाकी रह गया है भोगने को, उसे भोगना है। हर जिंदगी के बाद बाकी रह जाता है।

उपनिषदों में कथा है ययाति की। वह सौ साल का हुआ, उसकी मौत आई। वह बड़ा सम्राट था। मौत ने आकर उसे कहा : अब आप चलें। वह तो बहुत चौंका। उसने कहा : यह भी कोई बात हुई? अभी तो मैं कुछ भोग ही नहीं पाया। थोड़े दिन और मुझे दे दो। कई बातें अधूरी रह गई हैं।

मौत हंसी। उसने कहा : वे कभी पूरी नहीं होंगी। लेकिन ययाति ने कहा : एक मौका दो, मैं जल्दी पूरी कर लूंगा। सौ साल मुझे और दे दो।

तो मौत ने कहा : मुझे किसी को ले जाना तो पड़ेगा। तेरे सौ बेटे हैं, इनमें से किसी एक को जाने के लिए तैयार कर ले, तो मैं तुझे छोड़ जाऊं।

ययाति ने अपने बेटों को बुलाया। उसमें कोई अस्सी साल का था, कोई पचहत्तर साल का, कोई सत्तर साल का। वे भी कई बूढ़े हो गए थे। वे तो सब चुपके बैठे रह गए। वे एक-दूसरे का मुंह देखने लगे। सबसे छोटा बेटा उठ कर खड़ा हुआ। उसकी उम्र तो कोई बीस साल से ज्यादा न थी। मौत ने उसके बेटे को कहा नासमझ, ये तेरे बड़े भाई कोई जाने को राजी नहीं हैं, तू क्यों फंस रहा है?

उस बेटे ने कहा : बड़े भाइयों की बड़े भाई जानें। उनसे पूछ लें आप।

बड़े भाइयों ने कहा : हम क्यों जाएं? जब पिता का सौ साल में जीवन का रस पूरा नहीं हुआ, तो हम तो अभी सत्तर साल ही जीए हैं, कोई साठ ही साल जीया, हमारा रस कैसे पूरा हो जाए? और जब पिता जाने को तैयार नहीं हैं, तो हम क्यों जाने को तैयार हों? अगर जीवन से उनका मोह है तो हमारा भी है। हमारा तो और भी अधूरा रह गया अभी। यह तो हम से कम से कम तीस साल, बीस साल ज्यादा जी लिए हैं। हम क्यों छोड़ें? हम भी पूरा भोगना चाहते हैं।

उस छोटे बेटे ने कहा : यह देख कर कि पिता सौ साल में नहीं भोग पाए, मैं सोचता हूं : रहने से भी क्या सार है! अस्सी साल और धक्के खाने से क्या प्रयोजन है! जाना तो पड़ेगा। तुम सौ साल बाद आओगे। और पिता सौ साल में भी नहीं भोग पाए और रोते हैं, आंसू बह रहे हैं, तो हंसते हुए मैं क्यों न चला जाऊं? मुझे ले चलो। यह बात खत्म हो गई।

अब एक ही घटना थी, लेकिन दो दृष्टियां हो गईं। यही धार्मिक-अधार्मिक आदमी का फर्क है। वे बड़े भाइयों ने कहा कि हम क्यों जाएं, जब यह बूढ़ा जाने को तैयार नहीं है? जब बाप मरने को तैयार नहीं तो बेटा क्यों मरे?

और उनकी बात में तर्क है; संसार का सीधा गणित है। लेकिन दूसरे बेटे की भी बात में बड़ा गणित है; वह परमात्मा का गणित है। वह यह कहता है कि जब सौ साल में इनका काम पूरा नहीं हुआ, तो अब मैं ही और अस्सी साल धक्के क्यों खाऊं? यह काम तो पूरा होने वाला नहीं है, मेरी समझ में आ गया, मुझे ले चलो, बात खत्म हो गई।

कहते हैं, बेटे को मौत लेकर चली गई। सौ साल बाद जब आई, जब तक ययाति फिर भूल चुका था। सौ साल लंबा वक्त था कि मौत फिर आएगी। जब मौत आई तो वह फिर कंपने लगा, फिर उसकी आंख से आंसू बहने लगे। मौत ने कहा : अब बहुत हो गया, अब चलो। उसने कहा : लेकिन अभी कुछ भी पूरा नहीं हुआ!

ऐसी कहानी चलती है। ऐसा दस बार होता है। और हर बार ययाति का कोई बेटा मौत ले जाती है। और जब हजार साल पूरे हो गए, दस बार यह घटना घटी और मौत आई और ययाति फिर रोने लगा, तो मौत ने कहा : अब तो समझो! तुम जिन वासनाओं को पूरा करना चाहते हो, वे स्वभाव से दुष्पूर हैं। तुम्हारी समझ में कब आएगा? तुम बूढ़े होकर भी बचकाने ही बने हुए हो! जिसे तुम पूरा करने चले हो, वह पूरा होता ही नहीं; अधूरा होना उसका स्वभाव है; अधूरा रहना उसका स्वभाव है।

तुमने कोई चीज जीवन में पूरी की? सब अधूरा रहता है; अटका रहता है। कितना ही पूरा करो, अटका रहता है। धन इकट्ठा करो, कितना ही इकट्ठा करो, वासना बनी ही रहती है कि और थोड़ा हो जाता। कितना ही उपाय करो, कुछ कम रहता ही है, भरता नहीं। यह पात्र भरने वाला नहीं है।

तो जो यह जीवन के सत्य को देख कर मौत के आने के पहले मर जाने को तैयार है. . . साधारणतः तो मौत के आने पर भी लोग ययाति का व्यवहार करते हैं; मरने को तैयार नहीं होते। मौत तो सीख गई बहुत कुछ। यह कहानी जब घटी तो मौत भोली-भाली रही होगी; राजी हो गई। उसने कहा कि चलो ठीक है, और सौ साल जी लो, और सौ साल सही, और सौ साल सही। एक हजार साल तक मौत आती रही और जाती रही। यह उस जमाने की बात होगी, जब मौत बड़ी भोली रही होगी। तो मौत तो बहुत सीख गई : अब तुम लाख सिर पटको, वह जाती नहीं। वह कहती है : छोड़ो बकवास, यह हम बहुत देख चुके। लेकिन आदमी कुछ नहीं सीखा। ययाति की घटना से मौत तो कुछ सीख गई है। अब मानती नहीं किसी का; किसी के बेटे-वेटे को ले जाने को राजी नहीं होती। लेकिन आदमी कुछ भी नहीं सीखा। आदमी वहीं के वहीं हैं।

कल मैं स्टिफिन जुंग का एक वक्तव्य पढ़ रहा था। वक्तव्य महत्वपूर्ण है। वक्तव्य उसका यह कि ऐसा मालूम होता है, मनुष्य की चेतना में कोई विकास नहीं होता। अगर हम बुरे आदमियों को देखें तो भी कोई विकास नहीं हुआ है। चंगीज खां और अडोल्फ हिटलर में कौन सा विकास हुआ है? चंगीज खां इतना ही बुरा आदमी था जितना अडोल्फ हिटलर। यह दो हजार साल का फासला कुछ फर्क नहीं लाता। अगर हम भले आदमियों में देखें, तो भी कोई फर्क नहीं हुआ है। बुद्ध में और रामकृष्ण में, महावीर में और रमण में. . .। कुछ ऐसा थोड़े है कि रमण महावीर से आगे चले गए; या रामकृष्ण बुद्ध से आगे चले गए, क्योंकि दो हजार साल का, ढाई हजार साल का फासला है। बुरे आदमी भी वहीं के वहीं हैं; भले आदमी भी वहीं के वहीं हैं।

स्टिफिन जुंग का यह वक्तव्य महत्वपूर्ण है कि ऐसा लगता है जीवन में कोई विकास नहीं होता। विकास की धारणा गलत है। चीजों में फर्क हुआ है। अगर हम दस हजार साल पीछे लौटें और किसी को मारना हो तो पत्थर उठा कर उसके सिर पर पटकना पड़ता था। वह फर्क हो गया। अब हम आधा मील आकाश में से बम गिरा सकते हैं। लेकिन यह गिराने वाला आदमी और यह मारने वाला आदमी और यह मरने वाला आदमी, इनमें कोई फर्क नहीं हुआ है। बम गिराओ कि पत्थर गिराओ, छूरा भोंक दो कि तीर चलाओ, कि गोली चलाओ, इससे कोई फर्क नहीं पड़ा। कि मृत्यु की किरण बना लो और सिर्फ किरण भेज दो हजारों मील के फासले से और आदमी मर जाए। मगर यह मारने वाला मन वहीं के वहीं है। तो न तो बुरा आदमी कुछ ज्यादा बुरा हो गया है और न भला आदमी कुछ ज्यादा भला हो गया है। विकास कुछ हुआ नहीं। सब चीजें वहीं के वहीं हैं।

मौत सीख गई होगी; आदमी ने कुछ नहीं सीखा। आदमी के सीखने का सबूत तब मिलता है जब आदमी जीवन के ढर्रे को देख कर मौत के आने के पहले मर जाए; मौत के बिना मर जाए; मौत को कष्ट ही न दे कि तू काहे को आती है, हम खुद ही मरे जाते हैं।

यह जो मैं का मर जाना है. . .। मौत तो फिर भी आएगी, देह को तो ले जाने उसे आना ही पड़ेगा। लेकिन फिर तुम्हें लेने नहीं आना पड़ेगा; तुम तो पहले ही उड़ गए। हंसा जाई अकेला! उसे मौत को नहीं ले जाना पड़ता; वह अकेला ही चला जाता है। वह खुद ही उड़ जाता है। क्या मौत के सहारे जाना! क्या घसीटा जाना पसंद करेगा कोई जिसमें थोड़ी भी समझ है? मौत खींच रही है और तुम पकड़ रहे हो ययाति की तरह किनारे को और तुम कहते हो : अभी नहीं, जरा और, थोड़ा और समय दे दो! एक ही दिन सही! कई काम अधूरे रह गए हैं। बेटी की शादी होनी थी। बेटी को बच्चा होने वाला था। दुकान पर कल ग्राहक आने वाले थे। एक जमीन खरीदी थी; उसका दाम चुकाना है। एक मकान बेचा है; उसके दाम लेने हैं। कुछ तो पूरा कर लेने दो। ऐसा बीच में तो मत ले जाओ।

लेकिन आदमी हमेशा बीच में ही जाता है। हमेशा बीच में जाता है। तुमने कभी किसी ऐसे आदमी की खबर सुनी, जो मरने के पहले सब हिसाब-किताब पूरा कर दिया हो और फिर बैठ गया हो; उसने कहा कि अब ठीक है, अब कुछ करने को नहीं रहा, अब आ जाओ। ऐसी तुमने कोई खबर सुनी? ऐसी कोई कहानी भी सुनी?

ऐसा हुआ ही नहीं; नहीं तो कहानी भी नहीं बन सकती। कहानियां झूठ बनती हैं, लेकिन इतनी झूठ भी नहीं बन सकतीं, क्योंकि ऐसा हुआ ही नहीं।

"मान-बड़ाई खोय खाक में जीते मिलना।

गारी कोउ दै जाय छिमा करि चुपके रहना।।"

जो मौत को स्वीकार कर लेता है, फिर उसको किसी चीज से पीड़ा नहीं होती, फिर कोई गाली दे जाए तो क्या मिटा जाता है? जिसने अहंकार गिरा दिया, उसे गाली लगती नहीं। क्योंकि गाली तो लगती अहंकार में है। गाली के कारण थोड़े ही दुख होता है। एक आदमी जा रहा है रास्ते से, उसने तुम्हें गाली दे दी; उसकी गाली से थोड़े ही दुख होता है, दुख तुम्हें तुम्हारे अहंकार से होता है। तुम आशा कर रहे थे, फूलमाला पहनाएगा और ये सज्जन आ गए और इन्होंने गाली दे दी। तुम कम से कम इतनी तो आशा करते थे कि नमस्कार करेगा; चलो नहीं करेगा नमस्कार तो गाली नहीं देगा, इतनी तो अपेक्षा थी ही! वह जो अहंकार भीतर बैठा है, प्रतीक्षा कर रहा था सम्मान की, और मिला अपमान। आशा करते थे पहाड़ पर बैठेंगे, गिर गए खड्ड में। पहाड़ पर बैठने की आकांक्षा के कारण गड्ढा अखरता है। अगर तुम पहाड़ पर बैठने की आकांक्षा ही न करते तो गड्ढे में गिरने की भी कोई पीड़ा, कोई तनाव, कुछ चिंता नहीं पैदा होती। तुम कहते : ठीक, इस आदमी को गाली देनी थी, यह गाली दे गया। और इस आदमी को फूलमाला पहनानी थी, यह फूलमाला पहना गया। न हम फूलमाला पहनने को बैठे थे, न हम गाली लेने को बैठे थे। अब इनकी मरजी।

गाली देने वाला तुम्हें कुछ भी नहीं दे रहा है; सिर्फ अपने भीतर के पागलपन को प्रकट कर रहा है। तुमसे उसका क्या लेना-देना? तुम अछूते खड़े रह जाओगे। तुम अस्पर्शित रह जाओगे। मगर मैं मर जाए तो। अगर मैं न मरे तो कठिनाई हो जाती है। तो जितना बड़ा मैं होगा, उतनी ही गाली चोट करेगी--उसी मात्रा में। तो जिसका जितना बड़ा मैं, उतना अपमान चोट करता है। जितने मान की आकांक्षा, उतना अपमान चोट करता है। जितनी मान की आकांक्षा कम, उतना अपमान चोट नहीं करता। जिस दिन मान की आकांक्षा बिलकुल तिरोहित हो जाती है, अपमान का कोई अर्थ ही नहीं होता।

बुद्ध को किन्हीं ने गालियां दी हैं और बुद्ध खड़े सुनते रहे हैं। और जब वे गाली दे चुके तो बुद्ध ने कहा : अब मैं जाऊं? मुझे दूसरे गांव जाना है और दूसरे गांव में लोग मेरी प्रतीक्षा करते हैं। तुम्हारी बात पूरी हो गई हो तो मैं जाऊं?

उन्होंने कहा : यह बात! यह बात नहीं है--गालियां हैं। तुम्हें गालियां समझ में आती हैं कि नहीं?

बुद्ध ने कहा कि समझ में तो आती हैं, लेकिन तुम जरा देर करके आए। अगर तुम इनका उत्तर चाहते थे तो दस साल पहले आना था। तब मेरा अहंकार जीता-जागता था। अब तुम एक मरे हुए आदमी को गालियां दे रहे हो। एक मुर्दा को गाली दोगे, उत्तर की तो आशा नहीं रख सकते। तो मैं जाऊं, अगर तुम्हारी बात पूरी हो गई हो? अगर फिर भी कुछ बचा हो तो मैं जब लौटूंगा दुबारा इसी राह से, तब तुम पूरी कर लेना।

मगर बुद्ध कहते हैं : दस साल पहले आना था, अगर उत्तर चाहते थे। अब तो उत्तर देने वाला जा चुका। अब तो मुझे तुम पर दया आती है।

किसी ने पूछा : दया! आपको हम पर दया आती है? उन्होंने कहा : हां, दया आती है; क्योंकि पिछले गांव में ऐसा हुआ, कि कुछ लोग लाए थे मिठाइयां थालियां भर कर। और मैंने कहा कि मेरा तो पेट भरा है और मैं इन मिठाइयों को कहां ढोता फिरूंगा! तुम ले जाओ वापस। तो वे वापस ले गए। मैं तुमसे पूछता हूं : उन्होंने क्या किया होगा?

तो किसी ने भीड़ में से कहा : क्या किया होगा! गांव में बांट दी होंगी।

बुद्ध ने कहा : इसलिए मुझे दया आती है। अब तुम क्या करोगे? तुम गालियों का थाल सजा कर आए; मैं कहता हूं, मैं तो लेता नहीं। तो तुम पर मुझे दया आती है। गांव में बांटोगे? घर ले जाओगे? क्या करोगे? तुम बड़ी झंझट में पड़ गए। तुम जानो। तुम्हें जो करना हो करो। तुम देते हो सही, मगर मैं लेता नहीं। और जब तक मैं न लूं, तब तक गाली लग कैसे सकती है? गाली कोई एकतरफा थोड़े ही है। देने वाले पर ही तो निर्भर नहीं है। लेने वाले को भी लेने की तैयारी चाहिए।

तुम जरा ख्याल करना। जब कोई गाली देता है, तुम कितनी तत्परता से ले लेते हो--हाथ फैला कर, झोली फैला कर कि लाओ महाराज, राह देखते थे! इतनी क्या उत्सुकता है? इतनी क्या जल्दबाजी है?

कई दफे तो ऐसा होता है, दूसरा गाली देता भी नहीं और तुम सोचते हो कि उसने दी। कई दफे कोई किसी और बात पर हंसता है, तुम सोचते हो मेरे लिए ही हंस रहा है। राह के किनारे दो आदमी खड़े हों, खुस-पुस करते हों, तुम सोचते हो : अरे, मेरे ही संबंध में बात कर रहे हैं, कि जरूर मेरे ही खिलाफ बात कर रहे होंगे। नहीं तो खुस-पुस क्यों कर रहे हैं? जोर से क्यों नहीं बोलते? दी नहीं है गाली, मगर तुमने ले ली। ऐसे लोग हैं जो दी गई गाली नहीं लेते। और ऐसे लोग हैं, जो नहीं दी गाली ले लेते हैं। सब तुम पर निर्भर है। सब तुम्हारा खेल है।

"गारी कोउ दै जाय छिमा करि चुपके रहना।"

पर यह बात बड़ी महत्वपूर्ण है। पलटू यह कहते हैं कि क्षमा तो कर ही देना, मगर क्षमा को भी कहते मत फिरना, कि देखो क्षमा कर दिया; कि देखो फलां आदमी गाली दे गया था, बिलकुल क्षमा कर दिया, जरा नहीं लिया। यह कहते मत फिरना, नहीं तो सब खराब कर लिया; बनी-बनाई बिगाड़ ली। क्योंकि क्षमा कहने की बात ... नहीं, नहीं तो फिर अहंकार आ गया--क्षमा के पीछे से आ गया। अगर क्षमा कहने लगे कि मैंने क्षमा कर दिया, तो कुछ बहुत फर्क न हुआ। पहले अहंकार गाली से विक्षुब्ध हो जाता था, अब अहंकार ने नई तरकीब खोज ली अपने को सजाने की--अब अहंकार कहता है : देखो मुझे, मुझे देखो! लोग गाली दे जाते हैं और मैं क्षमा कर देता हूं। चुपके रहना। बात खत्म हो गई। तुम्हारा क्या लेना-देना? चुपके रहना। कोई दे गया, वह जाने; ले गया, वह जाने। न तुमने लिया, न तुमने दिया। तुम चुप ही रहना।

"सबकी करै तारीफ, आपको छोटा जानै।"

और पलटू कहते हैं : जिसे परमात्मा को पाना हो, वह यह चारों तरफ परमात्मा को देखेगा; वह सब में परमात्मा को देखेगा। वह चोर में भी परमात्मा को देखेगा और पापी में भी परमात्मा को देखेगा। है तो पापी में भी परमात्मा; चलो थोड़ा उलटा खड़ा है। है तो चोर में भी परमात्मा; चलो थोड़ा राह से उतर गया है। जब कोई गाड़ी राह से उतर जाती है, तब क्या तुम उसे गाड़ी नहीं कहते? तब भी गाड़ी तो गाड़ी है। राह से उतर गई तो राह पर चढ़ा लेंगे। इससे गाड़ी होने के गाड़ीपन में तो फर्क नहीं पड़ता।

कोई आदमी पापी हो गया, इससे क्या फर्क पड़ता है? थोड़ा परमात्मा का विस्मरण हो गया है, उसे याद दिला देंगे। यह याद कभी न कभी आ जाएगी।

परमात्मा को हम भूल ही सकते हैं; खो नहीं सकते हैं।

"सबकी करै तारीफ, आपको छोटा जानै।

पहिले हाथ उठाय सीस पर सबकी आनै।।"

और सदा हाथ उठा कर नमस्कार करता रहे। इसके पहले कि कोई नमस्कार करे, हाथ उठा ले और नमस्कार करे।

"पहिले हाथ उठाय सीस पर सबकी आनै।"

और सब के लिए सिर झुकाए, क्योंकि सब में बैठा तो एक ही है।

"पलटू सोइ सुहागनी. . .।"

यह वचन याद रखना। यह वचन हीरे जैसा है।

"पलटू सोइ सुहागनी, हीरा झलकै माथ।

मन मिहीन कर लीजिए, जब पिउ लागै हाथ।।"

पलटू कहते हैंः उसी को मिला प्यारा, वही है सुहागिनी, उसी का सुहाग भरा है... । स्त्रियां, देखते हैं न, माथे पर बिंदी लगाती हैं। वह प्रतीक है। वह जो बिंदी का स्थान है वह तीसरी आंख का स्थान; तृतीय नेत्र का स्थान है। मगर यह बिंदी तो ऊपर से लगाई गई है, इससे क्या होने वाला है!

जो व्यक्ति, पलटू कहते हैं, मन को सूक्ष्म करते-करते, अति सूक्ष्म करते-करते शून्य हो जाता है. . . पलटू सोइ सुहागनी, हीरा झलकै माथ। उसकी तीसरी आंख पर हीरा झलकने लगता है; लगाना नहीं पड़ता, ऊपर से कोई बिंदी इत्यादि नहीं लगानी पड़ती। ... उसकी तीसरी आंख से ज्योति झलकने लगती है। उसकी तीसरी आंख हीरे की तरह झलकने लगती है। जिनके भी पास देखने की आंख हैं, उन्हें उस आदमी की तीसरी आंख दिखाई पड़ने लगती है।

"पलटू सोई सुहागनी". . .।

ऐसे टीके इत्यादि लगाने से सुहाग भर लिया, ऐसा मत समझ लेना। देखते हैं न कि जिस स्त्री का विवाह हो जाता है, वह टीका लगाती है। सुहाग का प्रतीक है। पलटू कहते हैंः यह भी क्या? सब ऊपर-ऊपर का है। असली सुहाग तो तभी जब परमात्मा मिले--असली प्यारा मिले। और तब ऊपर के टीके नहीं लगाने पड़ते--भीतर से टीका प्रगट होता है; हीरे की तरह प्रगट होता है।

"पलटू सोई सुहागनी, हीरा झलकै माथ।

मन मिहीन कर लीजिए, जब पिउ लागै हाथ।।"

और यह प्यारा दूर नहीं। दूर होता तो तुम क्षम्य थे।

"पानी काको देइ प्यास से मुवा मुसाफिर।"

अब मरे हुए यात्री को पानी देने से क्या होगा? तुम देखते हो न, जब लोग मरते हैं तो उनको गंगाजल पिलाते हैं। उसकी याद दिला रहे हैं हम। वे यह कह रहे हैं कि मर गया, उसकी जीभ लटक गई, उसको पानी डाल रहे हैं उसके मुंह में। वह पानी भी भीतर नहीं ले जा सकता; पानी भी बह रहा है उसका मुंह से। जब मर गए, तब गंगाजल डाल रहे हो! अरे गंगा को बुलाना था तो जीते जी बुलाते! मर गया, उसके कान में हरिनाम बोल रहे हैं। देखते हैं न जब मुर्दे को ले जाते हैं, राम-राम बोलते हैं, हरि-हरि बोलते हैं--हरि बोल, हरि बोल; राम-नाम सत्य है! हद कर रहे हो! मुर्दे से कह रहे हो : राम-नाम सत्य है! और तुम भी नहीं सुन रहे। अभी तुम जिंदा हो, मगर तुम सुन नहीं रहे। वे जो ले जा रहे हैं कंधा देकर मुर्दे को, कह रहे हैं राम-नाम सत्य है, वे भी नहीं सुन रहे हैं कि क्या कह रहे हैं। यह तो जिंदगी में जानने की बात है कि राम का नाम सत्य है; और कुछ भी सत्य नहीं है। और तो सब व्यर्थ है। और तो सब असार है। बस एक राम का नाम सार है।

"पानी काको देइ प्यास से मुवा मुसाफिर।"

यह यात्री मर गया, अब इसको पानी दे रहे हो!

"मुवा मुसाफिर प्यास, डोर ओ लुटिया पासै।"

और यह क्षमायोग्य भी नहीं है, क्योंकि यह मुसाफिर देखो, इसके आस-पास डोर भी है, इसके पास लुटिया भी है। यह पानी भर कर पी सकता था।

समझना।

"मुवा मुसाफिर प्यास डोर ओ लुटिया पासै।"

पास में डोर भी थी, लोटा भी था।

"बैठ कुवां की जगत. . .।"

और यह कुएं की जगत पर बैठा है। "... जतन बिनु कौन निकासै।" लेकिन जरा सा भी, इत्ता सा यत्न न कर सका कि डोर को लुटिया में बांध लेता, लुटिया से बांध लेता, कुएं में लटका देता, पानी खींच लेता, पी लेता। इतना सा जतन करना था। जरा सा जतन करना था।

"मुवा मुसाफिर प्यास, डोर ओ लुटिया पासै।"

इस पागल की देखो तो हालत! मर गया प्यास से--जब कुएं पर बैठा था, कुएं के पाट पर बैठा था। पास में लुटिया थी, डोर भी थी, कुएं में पानी भरा था। जरा सा जतन करना था। सब मौजूद था, कुछ चूक नहीं रहा था। मगर इतना सा भी जतन न हो सका!

"आगै भोजन धरा थारि में खाता नाहीं।"

परमात्मा ऐसे है जैसे थाली सामने लगी हो और तुम नहीं परमात्मा को पी रहे और तुम नहीं परमात्मा को भोजन कर रहे और तुम नहीं परमात्मा को पचा रहे।

"भूख-भूख करै सोर, कौन डारै मुखमांही।"

सामने थाली सजी है, शोर बहुत मचाता है कि भूख लगी है, भूख लगी है। यह क्या चाहता है? कोई दूसरा इसके मुंह में डाले?

और ध्यान रखो, भोजन तो कोई दूसरा तुम्हारे मुंह में डाल दे, परमात्मा कोई तुम्हारे मुंह में नहीं डाल सकता। परमात्मा उधार मिलता ही नहीं। स्वयं से ही खोजना पड़ता है। उतना तो जतन तो करना ही पड़ता है। थोड़ा सा ही जतन है, कुछ बड़ी बात नहीं। प्रभु के स्मरण में कोई बहुत बड़ी बात है? ऐसे भी खोपड़ी चौबीस घंटे चलती ही रहती है। कुछ चलने की कमी भी नहीं है। इसी चलती हुई यात्रा में थोड़ा प्रभु का स्मरण भी समा जाए। दौड़-धूप तो चल ही रही है। दौड़ते तो वैसे ही हो, थोड़े मंदिर की तरफ दौड़ कर लो। हाथ-पैर चलते तो हैं ही, थोड़ी ठीक दिशा में जोड़ देने की बात है।

"दीया बाती तेल आगि है नाहिं जरावै।"

दीया रखा, बाती लगी, तेल भरा--जरा सी माचिस को जलाने की बात है, और दीये में ज्योति आ जाएगी। सब तुम्हारे पास है। जो तुम्हें चाहिए, तुम्हारे पास है; सिर्फ संयोग बिठाने की बात है।

मैंने सुना है, एक सूफी फकीर ने एक सम्राट को संदेश भेजा। सम्राट ने पूछवाया था, पत्र लिखा था कि परमात्मा को कैसे खोजूं? जानते हैं, संदेश क्या भेजा! एक पोटली में थोड़ा सा आटा, घी, नमक, पोटली के साथ जल--यह सब भेज दिया उसने। सम्राट भी बड़ा हैरान हुआ कि यह पागल तो नहीं है! यह किसलिए भेजा है? यह पोटली में आटा, यह नमक, यह घी, यह जल! मैंने परमात्मा के बाबत पूछा था।

फिर खबर भेजी तो उसने कहा : मैंने वही खबर भेजी है, संदेश भेजा है कि सब तुम्हारे पास है। जैसे कि आदमी के पास आटा रखा हो, घी रखा हो, नमक रखा हो, पानी रखा हो--अब जरा सा हाथ चलाओ, आटे में पानी को मिलाओ, नमक डालो, घी डालो, रोटी पका लो।

परमात्मा मौजूद है। ऐसे मौजूद है जैसे तुम्हारे घर में वीणा रखी हो और तुमने कभी उसके तार नहीं छुए। थोड़ा अभ्यास करो, वीणा के तार पर हाथ फेरो। थोड़ा सरगम सीखो। महा संगीत पैदा हो जाएगा।

"भूख-भूख करै सोर, कौन डारै मुखमाहीं।
आगै भोजन धरा थारि में खाता नाहीं।
दीया-बाती तेल आगि है नाहिं जरावै।
खसम खोया है पास, खसम को खोजन जावै।"

और वह प्यारा पास ही खोया है--और तू उसको दूर खोजने चला जाता है। कोई चले हिमालय, कोई चले मक्का-मदीना, कोई चले कैलास। खसम खोया है पास। वह तेरे बिलकुल पास बैठा है; जरा आंख मोड़ने की बात है। वह तेरे हाथ में हाथ दिए बैठा है; जरा हाथ को जीवंत करने की बात है।

"खसम को खोजन जावै।"

ईश्वर को खोजने की जरा भी जरूरत नहीं है; अपने को खोने की जरूरत है। और ईश्वर मिल जाता है। मगर हम उलटे हैं, हम ईश्वर को खोजने जाते हैं।

"पलटू डगरा सूध अटकिकै परता गिर-गिर।"

पलटू कहते हैं : मैं बड़ा हैरान हो रहा हूं, रास्ता इतना साफ सीधा है। पलटू डगरा सूध। डगर इतनी सीधी, इतनी साफ। अटकिकै परता गिर-गिर! और तू गिर-गिर पड़ता है--ऐसे साफ रास्ते पर जहां कुछ उपद्रव दिखाई नहीं पड़ता।

"पलटू डगरा सूध, अटकिकै परता गिर-गिर।

पानी काको देइ प्यास से मुवा मुसाफिर।।"

प्यास से मरे जा रहे हो, पानी-पानी चिल्लाते हो। भूख का शोर मचाते हो। भोजन की थाली सामने रखी है। परमात्मा को खोजने दूर जाते हो, परमात्मा तुम्हारे अंतरतम में बैठा है। लेकिन यह दिखाई नहीं पड़ता परमात्मा। सुन भी लेते हैं हम कि . . .

"खसम खोया है पास, खसम को खोजन जावै।

दीया-बाती तेल आगि है नहिं जरावै।।"

. . . सुन लेते हैं, समझ भी लेते हैं कि परमात्मा पास है; लेकिन बात सुन भी लेते हैं, समझ में नहीं आती; कहां है? चारों तरफ देख भी लेते हैं, दिखाई भी नहीं पड़ता। ... तो उसका सूत्र देते हैं :

"संत-चरन को छोड़ि कै पूजत भूत-बैताल।"

अगर परमात्मा पास है, ऐसा जानना हो, तो किसी संत-चरण में खोजना। किसी जीवंत संत के सान्निध्य में खोजना। भूत-प्रेत की पूजा से नहीं होगा। मुर्दों की पूजा से नहीं होगा। अतीत की पूजा से नहीं होगा। वर्तमान में जीवित किसी संत के चरण से मन का लगाव लग जाए।

परमात्मा तो तुम्हें दूर मालूम होता है. . . दूर क्या; है भी, यह भी संदिग्ध है; है भी कहीं, दूर भी है, यह भी तय नहीं मालूम होता। कहीं कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाए, जिसमें तुम्हें परमात्मा की एक छोटी सी किरण भी दिखाई पड़ती हो। सूरज का तो हमें पता नहीं, छोड़ो सूरज की बात, उसकी बात भी क्या करनी। कहीं कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाए, जिसमें सूरज की एक किरण का भी अस्तित्व मालूम पड़ता हो--तो उस एक किरण का सहारा पकड़ लेना।

संत का अर्थ होता है--जिसने जाना है; जिसने जीया है; जिसने भोजन किया है; जिसने अपने दीये की बाती जला ली है; जिसने खसम को पा लिया है; जिसने उस प्यारे को उपलब्ध कर लिया है। तुम अगर उसके पास बैठोगे, अगर तुम थोड़े उसके सान्निध्य में रहोगे तो कैसे बच सकते हो? चोर के पास बैठते हो, चोर हो जाते हो। बीमार के पास बैठते हो, बीमार हो जाते हो। जिसने प्यारे को पा लिया, उसके पास बैठोगे तो थोड़ी न बहुत मस्ती तुम में छाने लगेगी। शराबी के पास बैठते हो तो शराबी हो जाते हो। सत्संगी के पास बैठोगे तो सत्संगी हो जाओगे।

संत के सान्निध्य का इतना ही अर्थ है : जो पीए बैठा है, जरा उसकी दोस्ती बांधो। शायद उसकी दोस्ती से रास्ता साफ होने लगे।

"संत-चरन को छोड़िकै पूजत भूत-बैताल।"

और तुम पूजते फिरते हो। कोई भूत को पूज रहा है, कोई किसी की मजार को पूज रहा है, कोई किसी पत्थर की मूर्ति को पूज रहा है।

"पूजत भूत-बैताल, मुए पर भूतइ होई।

पलटू कहते हैं : फिर समझ लेना, अगर ऐसे भूत-वूत पूजते रहोगे तो मर कर भूत ही होओगे। क्योंकि जो पूजोगे, वही हो जाओगे। बात तो काम की कह रहे हैं। हम जो पूजते हैं वही हो जाते हैं। अगर दुनिया में पत्थर की मूर्तियां पूजने वाले लोगों के दिल पथरीले हो गए हैं, तो कुछ आश्चर्य नहीं। पत्थर पूजोगे, पत्थर हो जाओगे। मंदिर-मस्जिदों को पूजने वाले लोगों ने जितना खून बहाया है, उतना किसी ने भी नहीं बहाया। पत्थर को पूजेंगे, पत्थर हो जाएंगे। जिसको पूजोगे वही हो जाओगे। पूजने में जरा सावधानी बरतना। जरा पूजना हो तो कुछ ऐसे को पूजना कि उस जैसे हो जाओ तो पछताना न पड़े। जरा देख कर चुनना। मरे-मराए महात्माओं को मत चुन लेना। भूत-प्रेत ही समझो उनको। वे जिंदा हैं ही नहीं। उदास बैठे हैं। तुम उनको पूजोगे, तुम उदास हो जाओगे। ऐसे ही जिंदगी में बहुत दुख था, और महात्मा मिल गए। दुबले और दो आषाढ़! और मुसीबत हो गई। एक ही आषाढ़ झेलना मुश्किल था, ऐसे ही मरे जा रहे थे बीमारियों से, और आषाढ़ दो हो गए।

कहीं जागते, जीवंत, नृत्य करते परमात्मा की कोई छवि मिलती हो, तो फिर चूकना मत। फिर हजार बहाने खोज कर और तर्क खोज कर बचने की कोशिश मत कर लेना। क्योंकि बचने को तुम्हारे पास कुछ है नहीं, बचाने को तुम्हारे पास कुछ है नहीं। है क्या जिसे तुम खो दोगे?

कई दफे बड़ी हैरानी होती है। लोग बड़े डर-डर कर चलते हैं, जैसे उनके पास कुछ खोने को है। कुछ है नहीं पास खोने को। पास नहीं है कुछ खोने को, यही तो दुख है। पास कुछ खोने को होता. . . कुछ होता पास तो जीवन में सुख होता, शांति होती, आनंद होता, अहोभाव होता। कुछ भी तो नहीं है।

कल "प्रीति" रात मुझसे बात कर रही थी। डरती है। यहां आने से भी डरती है। मेरी संन्यासिनी है और यहां आने से डरती है। ध्यान करने से भी डरती है। एनकाउंटर और दूसरे तरह की प्रक्रियाओं में जाने को मैंने कहा, उससे भी घबड़ाती है। मैंने उससे पूछाः तेरे पास खोने को क्या है? घबड़ाती किस बात से है?

खोने को तो कुछ भी नहीं है। इतना तो समझो कि खोने को कुछ भी नहीं है हमारे पास। हम वैसे ही लुटे हुए खड़े हैं, अब और क्या लुटेंगे! लुटेरे भी तुम्हें देख कर दया खाएंगे। है क्या तुम्हारे पास?

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन के घर में चोर घुसा, तो चोर तो बड़ा सम्हल कर अंदर गया था। मुल्ला जल्दी से उठा और लालटेन जला कर उसके पास खड़ा हो गया और कहा कि मैं भी साथ दूंगा। तो चोर बहुत घबड़ाया कि यह किस तरह का आदमी है! कभी... और भी चोरी... जिंदगी हो गई करते, यह लालटेन लेकर साथ!

उसने कहाः आपका मतलब?

उसने कहाः मतलब बिल्कुल साफ है कि तीस साल से इस मकान में रह रहा हूं, मुझे कुछ नहीं मिला; अब हो सकता है तुम्हारे संग-साथ में शायद कुछ मिल जाए, तो आधा-आधा कर लेंगे।

तुम्हारे पास है क्या? यह घर खाली पड़ा है।

एक बार और ऐसी घटना घटी, मुल्ला के घर चोर घुसा। वह पड़ोस से कुछ सामान चुरा लाया था। वह पोटली रख गया। अंदर मुल्ला के पूरे मकान में खोज लिया, कुछ मिला नहीं। जब वह पोटली लेकर चलने लगा तो मुल्ला भी अपना कंबल, जिस पर वह लेटा हुआ था, उठा कर उसके साथ हो लिया। दस-पांच कदम रास्ते पर चलने के बाद उस चोर ने पूछा कि महानुभाव, आप मेरे साथ क्यों आ रहे हैं? तो मुल्ला ने कहा : अब और कहां जाएं? अरे भाई, सामान तुम ले ही चले, घर बदलने की हम सोच ही रहे थे, अब कंबल और हम ही रहे, हम भी चलते हैं।

वह आदमी बोला कि कुछ तो शरम खाओ! यह सामान मैं दूसरे के घर से लाया हूं। इस पर तुम अपना कब्जा जता रहे हो! और अगर ऐसा ही है तो यह सामान भी तुम ले लो, मुझे क्षमा करो। तुमको और घर कौन ले जाए! तुम यह सामान रख लो। मुझ पर कृपा करो और अपने घर जाओ।

तुम्हारे पास है क्या? कुछ भी नहीं है, मगर डर बड़ा है कि कहीं कुछ खो न जाए। जिनके पास है वे डरते नहीं। क्योंकि जिनके पास है, उन्हें पता चल जाता है कि जो है, वह खो नहीं सकता। यह कुछ धन ऐसा है कि खोता नहीं। और जिनके पास नहीं है, वे बहुत डरते हैं। जिनके पास नहीं है, वे डरते हैं कि कहीं खो न जाए; और जिनके पास है वे डरते नहीं, क्योंकि यह खोता ही नहीं। यह तो जितना बांटो, उतना बढ़ने वाला धन है। जब होता है तो बांटने से बढ़ता है; और जब नहीं होता है तो खोने का डर लगता है। ऐसी उलटी स्थिति है।

"संत-चरन को छोड़िकै पूजत भूत-बैताल।

पूजत भूत-बैताल मुए पर भूतइ होई।"

जो पूजोगे, वही हो जाओगे। इसलिए जिन चरणों को पकड़ो, बहुत-बहुत बोध-से--जहां कुछ जीवंत किरण हो, जहां प्रेम का कोई फूल खिला हो, जहां समाधि की कुछ सुंगध हो!

"जेकर जहवां जीव, अंत को होवै सोई।"

जिसके पास रहोगे, अंत में वैसे ही हो जाओगे।

"देव-पितर सब झूठ, सकल यह मन की भ्रमना।"

और यह देव-पितर और पितर की पूजा और चल रहा है पितर-पक्ष और पुरषोत्तम मास और पर्युषण पर्व और रम.जान और जमाने भर के उपद्रव--इनसे कुछ भी सार नहीं है।

"देव-पितर सब झूठ, सकल यह मन की भ्रमना।

यही भ्रम में पड़ा, लगा है जीवन-मरना।।"

और ऐसे ही तो जीते रहे, मरते रहे, मरते रहे, जीते रहे--कुछ पाया नहीं, कुछ हाथ लगा नहीं, बस एक भ्रम में डोलते रहे।

"देई-देवा सेव परम-पद केहिने पावा।

भैरों दुर्गा सीव बांधिकै नरक पठावा।।"

बड़ी हिम्मत का वचन है, बड़ी क्रांति का वचन है। कहते हैं कि देई-देवा सेव परम-पद केहिने पावा। किसने, कब पाया है देवी-देवताओं की पूजा करने से परम पद? किसने कब पाया है?

"भैरों दुर्गा सीव बांधिकै नरक पठावा।"

तुम्हारे भैरव, दुर्गा, शिव, सब तुम्हें नरक ले जाएंगे। क्यों? परमात्मा का भरोसा तो किसी जीवंत से ही आ सकता है। मंदिर की मूर्तियों से नहीं; जहां चिन्मय-रूप उतरा हो, वहां। मुर्दों से नहीं; जहां परमात्मा अभी श्वास ले रहा हो, वहां।

लेकिन हमारी अजीब हालत है! जब बुद्ध मौजूद होते हैं, तब हम उनसे बचते हैं। जब बुद्ध जा चुके होते हैं, जब उजड़ चुका, जब उजड़ चुकी बहार, जब वसंत जा चुका, जब फूल विदा हो गए और सिर्फ सूखे पत्ते पड़े रह जाते हैं, पतझड़ आ गया, तब हम पूजा शुरू करते हैं। उन सूखे पत्तों में अब कुछ भी नहीं है। हां, कभी वे पत्ते हरे थे और कभी उन पत्तों पर हवाओं ने नाच नाचा था, सूरज की किरणों ने गीत रचे थे और कभी पक्षी आए थे और उन्होंने आनंद मनाया था। मगर अब वे पत्ते सिर्फ सूखे हैं; अब तो तुम्हें फिर कहीं और वसंत खोजना पड़ेगा।

बुद्ध पुरुष सदा होते हैं; जैसे वसंत सदा आता है। लेकिन पतझड़ की पूजा बंद करो। जो गया, गया। अब शिव मौजूद नहीं हैं, अब बुद्ध मौजूद नहीं हैं, अब मोहम्मद मौजूद नहीं हैं। वे गए। उनमें जो मौजूद हुआ था, वह अब भी कहीं मौजूद होगा। तुम रूप से मत जकड़े जाओ। तुम दीयों को मत पकड़ो, रोशनी का ख्याल करो।

नहीं तो होता क्या है? बुद्ध का दीया, उसके नीचे कई लोगों को रोशनी मिली। फिर ज्योति तो उड़ गई, फिर मुर्दा दीया पड़ा रह गया। अब उसकी पूजा चल रही है। अब तुम कहते हो : इस दीये से कई को ज्ञान मिला था, तो हम तो इसी की पूजा करेंगे, हम कैसे छोड़ दें? हजारों को इससे ज्ञान मिला था, हम कैसे छोड़ दें?

तुम ठीक कहते हो। तुम गलत भी नहीं कहते। मगर जरा गौर से तो देखो, ज्योति उड़ गई। अब ज्योति किसी और दीये पर उतरी है। अब ज्योति किसी मोहम्मद पर उतर गई है, कि ज्योति किसी जीसस पर उतर गई है, कि ज्योति किसी कृष्णमूर्ति पर उतर गई है, कि किसी रमण पर, रामकृष्ण पर उतर गई है। ज्योति अब कहीं और उतर गई है। तुम ज्योति की फिकर करो। ज्योति से ज्ञान मिला था; दीये से थोड़े ही मिला था! दीये को पकड़े बैठे रहोगे, उससे क्या होगा? बुद्ध के वचन को पकड़ कर बैठे रहोगे, क्या होगा? बुद्ध के वचनों में जो शून्य बोला था, वह तो अब वहां नहीं है। अब तो शास्त्र रह गया।

सदा जीवित गुरु को खोजो।

"पलटू अंत घसीटिहैं चोटी धरि-धरि काल।

संत चरन को छोड़िकै, पूजै भूत-बैताल।।"

और समय रहते जीवन का ठीक उपयोग कर लो। कोई संत-चरण गह लो। परमात्मा का तो तुम्हें पता नहीं है। लेकिन कोई परमात्मा जैसा, थोड़ा मात्रा में भी परमात्मा जैसा तुम्हें लग जाए, तो निस्संकोच भाव से उसका साथ गह लो। एक बार तुम्हारे जीवन में थोड़ी-थोड़ी अनुभूति की झलक आने लगे, थोड़ा स्वाद लग जाए, तो फिर परमात्मा दूर नहीं है। परमात्मा बहुत पास है। ऐसा न हो कि समय बीत जाए।

पलटू कहते हैं : चाला जात बसंत, कंत न घर में आए। यह वसंत बीता चला जाता है और प्रभु तुम्हारे घर में अभी तक नहीं आ पाए। प्यारा तुम्हारे घर में अभी तक नहीं उतरा। तो फिर जिसके जीवन में अभी वसंत हो, उससे दोस्ती बांध लो। सीधे तो परमात्मा से तुम अभी संबंधित नहीं हो सकते, तो जिसका संबंध हो, कम से कम उसका हाथ तो पकड़ लो! उसका सेतु बना लो।

सदगुरु का इतना ही अर्थ होता है : तुम्हारे और अज्ञात के बीच सेतु। सदगुरु का एक हाथ परमात्मा के हाथ में है, एक हाथ तुम्हारे हाथ में। सदगुरु से दोस्ती बन सकती है, क्योंकि सदगुरु कुछ-कुछ तुम जैसा और कुछ-कुछ तुम जैसा नहीं। कुछ-कुछ परमात्मा जैसा और कुछ-कुछ तुम जैसा। सदगुरु आदमी है और आदमी के साथ-साथ कुछ, आदमी के पार है। दीया और ज्योति।

सदगुरु का चरण गह लो, तो ज्यादा देर न लगेगी। यह बात समझने में, कि परमात्मा निकट है। दूर तभी तक है जब तक दिखाई नहीं पड़ा। जैसे ही दिखाई पड़ा, निकट है। निकट से भी निकट है। निकट कहना भी ठीक नहीं। परमात्मा तुम्हारे भीतर विराजमान है। तुम परमात्मा हो!

आज इतना ही।

बारहवां प्रवचन

स्वच्छन्दता और सर्व-स्वीकार का संगीत

पहला प्रश्नः कभी आप कहते हैं, "भीतर के भाव से जीओ" और कभी कहते हैं, "जीवन जो कुछ लाए उसके साथ तथाता में जीओ, सर्व-स्वीकार के साथ जीओ।" भीतर का छंद और बाहर की स्थिति दोनों हमेशा एक कैसे रह सकते हैं? कृपा पूर्वक मार्गदर्शन करें।

अस्तित्व एक है; बाहर-भीतर में कोई भेद नहीं है। जिसे तुम बाहर कहते हो, भीतर से जुड़ा है--अखंड। जिसे तुम भीतर कहते हो, बाहर से जुड़ा है। ऐसे ही जैसे तुम्हारे घर का दरवाजा है; घर के भीतर का आकाश है और घर के बाहर का आकाश है--पर दोनों अलग नहीं। और तुमने जो दीवालें उठा कर अलग कर रखा है, वे दीवालें तुम्हारी बनाई हुई हैं। और उन दीवालों से आकाश खंडित नहीं होता।

आकाश को काटने का उपाय नहीं है; न तलवार से कटता है, न दीवाल से कटता है। खंड आकाश के किए नहीं जा सकते। जैसा आकाश है, ऐसी ही आत्मा है। बाहर और भीतर--एक ही। यह तो देह की दीवाल है, जिससे बाहर और भीतर का हमें सवाल उठता है। मगर देह की दीवाल से कुछ खंडन नहीं होता।

तो ख्याल रखो, जब मैं कहता हूं भीतर के छंद से जीओ और जब मैं कहता हूं बाहर की परिस्थिति को स्वीकार करके जीओ, अस्वीकार न करो--तो दोनों में कुछ विरोध नहीं है। और अगर समझोगे तो दोनों ही बातों में जो मैं कह रहा हूं वह एक ही बात कह रहा हूं। वह बात यह है : अहंकार से मत जीओ। मैं अलग हूं, इस भाव से मत जीओ। मैं अलग हूं, यह भाव गिर जाए, तो फिर भीतर और बाहर में क्या भेद! मैं गया कि दीवाल गई। मैं गया कि सीमा गई। यह मैं की ही सीमा है जो हमने खींच रखी है।

मगर हम सीमाओं में बड़ा भरोसा करते हैं। हिंदुस्तान की सीमा पाकिस्तान की सीमा हमने खींच रखी है; जमीन पर कहीं भी नहीं है, नक्शे पर है। नक्शे झूठे हैं। आदमी के बनाए हुए हैं। लेकिन नक्शों पर हमारा बड़ा भरोसा है। नक्शों के लिए हम मरते हैं, मारते हैं; जमीन की तरफ नहीं देखते। जमीन की तो छोड़ दो, आकाश भी बांटा हुआ है। हिंदुस्तान का आकाश अलग, पाकिस्तान का आकाश अलग।

जैसे नक्शे पर हमने जमीन बांट ली है, ऐसे ही हमने विचार में परमात्मा को बांट लिया है--मेरा, तेरा; बाहर का, भीतर का। लेकिन ये सारे विभाजन और रेखाएं जो हमने खींची हैं, झूठी हैं। इन रेखाओं का झूठ दिखाई पड़ जाए तो यह खो जाती हैं। तब तुम हंसोगे। कौन बाहर, कौन भीतर! एक ही विराजा है।

तो या तो बाहर से शुरू करो या भीतर से। यह तो शुरू करने के लिए दो बातें मैं तुमसे कहता हूं। क्योंकि कुछ लोग बहिर्मुखी हैं। भीतर की बात उनकी समझ में नहीं पड़ती। भीतर यानी क्या? भीतर का द्वार ही भूल गए हैं। अपने घर के बाहर इतने दिन रह लिए हैं कि घर के भीतर भी जा सकते हैं, इसकी उन्हें याद नहीं रही, विस्मरण हो गया है। उनके लिए बाहर का कहता हूं। उनसे कहता हूं : बाहर जो परिस्थिति हो, उसके साथ तथाता। बहिर्मुखी, जिसको जुंग ने एक्सट्रोवर्ट कहा है, उसके लिए बाहर के साथ तथाता। बाहर भी परमात्मा है। उसके साथ एकात्मभाव, संतोष; जो आए स्वीकार; जैसा आए वैसा स्वीकार। जो परमात्मा दे, धन्यवाद; जो न दे, उसके लिए धन्यवाद। बाहर के साथ परम एकरसता। यह बहिर्मुखी के लिए परमात्मा में पहुंचने की बात है।

कुछ हैं, जो अंतर्मुखी लोग हैं; जो मुश्किल से ही आंख खोल पाते हैं; जिनका जगत वस्तुतः भीतर है। वे तभी मस्त होते हैं, जब आंख बंद होती है। ये जो अंतर्मुखी लोग हैं, इनसे अगर बाहर की बात कहो, इन्हें समझ में न आएगी। वह भाषा इनके लिए अपरिचित है। तो ये भीतर डूबें हैं। इसलिए दोनों बातें कहता हूं। भीतर के छंद में डूब जाओ या बाहर के छंद से एक हो जाओ।

तुमने सुना होगा तो तुम्हें अड़चन हुई होगी कि ये दोनों बातें एक साथ कैसे हो सकती हैं। बाहर की परिस्थिति और भीतर का छंद साथ-साथ चलेगा कैसे? कभी हो सकता है, भीतर का छंद कहीं जाए और बाहर की परिस्थिति कहीं जाए, तो तनाव पैदा हो जाएगा। ऐसा कभी हुआ ही नहीं है। बाहर और भीतर में कोई विरोध नहीं है। यह तो तुम हो, तुम्हारी मौजूदगी है, जो विरोध खड़ा कर रही है। जगत परम आनंद से भरपूर है। यह तो तुम हो, जो दुखी हो। दुख तुम्हारी साधना से पैदा हो रहा है। तुम बड़ी साधना कर रहे हो दुख पैदा करने के लिए।

मेरी बात सुनोगे तो तुम चौंकोगे, क्योंकि मैं निरंतर यही कहता हूं : आनंद स्वभाव है; दुख को पैदा करना पड़ता है। बीमारी लानी पड़ती है; स्वास्थ्य है। जब तुम स्वस्थ होते हो तब तुम डॉक्टर के पास नहीं जाते--पूछने कि मैं स्वस्थ क्यों हूं? क्यों का प्रश्न नहीं उठाते। यह भी नहीं पूछते कि स्वास्थ्य किसका मुझे लग गया है? यह कहां से आ गया? तुम स्वास्थ्य को स्वीकार करते हो, कि स्वास्थ्य प्राकृतिक अवस्था है; न तो किसी से लगता, न कहीं से आता--है। वही शब्द का अर्थ भी होता है--स्वास्थ्य का। स्वास्थ्य का अर्थ होता है : स्व में स्थित। अपने भीतर मौजूद है। यह शब्द बड़ा बहुमूल्य है। बीमारी बाहर से। बीमारी विजातीय है। बीमारी परदेसी है। बीमारी कीटाणुओं के सहारे आती है। बीमारी की संक्रामकता होती है। स्वास्थ्य! स्वास्थ्य है। रोग आता है, नीरोगता आती नहीं।

ठीक ऐसा ही आनंद और दुख। जो आनंदित है, वह नहीं पूछता कि मैं आनंदित क्यों हूं? तुमने कभी पूछा यह प्रश्न? जब तुम आनंदित होते हो, क्या तुम पूछते हो मैं आनंदित क्यों हूं? यह प्रश्न असंगत होगा। यह अर्थहीन होगा। न तुम पूछते हो, न तुम सोचते हो। जब तुम आनंदित हो, तब तुम सहज स्वीकार करते हो। प्रश्न तो तब उठता है जब तुम दुखी हो। तब तुम पूछते हो : मैं दुखी क्यों हूं? प्रश्न इसलिए उठता है कि कुछ घट रहा है जो नहीं घटना चाहिए। प्रश्न इसीलिए उठता है कि कुछ अघट घट रहा है। प्रश्न की सार्थकता यही है कि कुछ अस्वाभाविक घट रहा है। प्रश्न हम अस्वाभाविक के संबंध में पूछते हैं; स्वाभाविक के संबंध में नहीं पूछते।

सुबह सूरज उगता है, हम नहीं पूछते : क्यों? सांझ सूरज डूबता है, हम नहीं पूछतेः क्यों? एक रात, आधी रात में सूरज उग आए तो हम जरूर पूछेंगे : क्यों? एक दिन भर दोपहरी में सूरज डूब जाए तो हम जरूर पूछेंगेः क्यों? क्यों का प्रश्न ही तब उठता है जब कुछ घटता है जो नहीं घटना चाहिए था।

आनंद सहज दशा है। यह सारा जगत आनंद से भरा है। तुम दुख पैदा करते हो। और तुम्हारे दुख पैदा करने का जो पहला आधार है, वह अहंकार है। मैं हूं--बस तुम सिकुड़े। मैं हूं कि तुम छोटे बने। कहां विराट थे, जब मैं का भाव नहीं होता, तब यह सारा अस्तित्व तुम्हारा है; यह सारा आकाश तुम्हारा है। जैसे ही मैं-भाव आया, तुम छोटे हो गए, दीन हो गए, क्षुद्र हो गए। इस छोटी सी देह में बंध गए। देह में भी जिनको लगता है काफी बड़े हैं, वह छोटी सी खोपड़ी में समा गए हैं। बस उनकी खोपड़ी में ही उनका मैं रहने लगा। इतनी छोटी जगह में इतने विराट को समाने की कोशिश करोगे, दुख न पैदा होगा तो क्या होगा? असंभव को करने की कोशिश कर रहे हो। फिर शिकायतें उठती हैं।

कल मैं एक गीत पढ़ता था :

क्या मिला तुमको बना मुझको अनाश्रित दीन यों,
चाटते अरमान अपना ही लहू रहते सदा
आमरण जैसे विषम संघर्ष ही संपूर्ण है
एक क्षण का भी नहीं विश्राम प्राणों को बदा

क्या विफलता ही हुई साकार मेरे जन्म में?
व्यर्थता ही व्यर्थता मेरी समूची संपदा?
क्या मिला तुमको भला देकर मुझे इतनी जलन?
जो अभावों से भरा जीवन जलाए जा रही
क्यों बना दी जिंदगी मेरी दहकती मरुधरा?
एक जल की क्षीण धारा भी नहीं जिसमें बही
स्वप्न तो इतने दिए, जिनकी पूरन की बात क्या
बात भी जिनके दहन की थी कभी वश की नहीं
क्या मिला मुझको बना निरुपाय निःसंबंध निपट?
एक भी विश्वास मेरा जी न पाया दो घड़ी,
एक पल भी राही न जीवन के कठिन पथ पर मिला
दृष्टि जिसकी ठोकरों से तर-बतर मुझ पर पड़ी
क्या मिला तुमको समय की रेत पर जो रह गयी,
लाश मेरी चिर-उपेक्षित साधना की अध-घड़ी?
क्या विफलता ही हुई साकार मेरे जन्म में?
व्यर्थता ही व्यर्थता मेरी समूची संपदा?
क्या मिला तुमको? क्या मिला मुझको? अनाश्रित दीन यों मुझको बना!

यह जो सभी के मन में यह भाव उठता है कि परमात्मा को क्या मिला, जो हमें ऐसा दुखी बना दिया? क्यों इतना दीन? कितना असहाय! क्यों ऐसी अंधेरी रात हमारे चारों तरफ पैदा कर दी? यह अमावस हमारे प्राणों में क्यों रख दी? क्या मिला? . . . लेकिन स्मरण रहे, यह शिकायत भ्रांत है। यह अमावस तुम्हारी पैदा की हुई है। परमात्मा ने तो जलता सूरज तुम्हारे भीतर रखा है। यह अमावस तुमने बड़ी मेहनत से इकट्ठी की है; जन्मों-जन्मों की साधना इसमें लगी है।

जन्मों-जन्मों में गलत को, गलत को करते-करते जीते-जीते तुम अंधेरे को किसी तरह पैदा कर पाए हो। अंधेरे को पैदा करना तुम्हारी बड़ी सफलता है।

इसलिए संतों ने कहा है : तुम जिस दिन असफल हो जाओगे, उसी दिन दुख के बाहर होओगे। तुम्हें जब तक सफलता मिल रही है तब तक दुख रहेगा; क्योंकि हर सफलता तुम्हारे अहंकार को और मजबूत कर जाती है। थोड़ा और धन आ गया, अहंकार और अकड़ गया। थोड़े और बड़े पद पर पहुंच गए, अहंकार और अकड़ गया। थोड़ा और यश मिल गया, अहंकार और अकड़ गया। तुम्हारी हर सफलता तुम्हारी विफलता है।

तुम हारो! तुम पूर्ण रूप से हारो तो दुख समाप्त हो जाए। क्योंकि तुम्हारी हार में ही अहंकार गिर सकता है। हार में ही अहंकार विसर्जित हो सकता है। तुम्हारी जीत में तो तुम कैसे अहंकार को विसर्जित करोगे? जीतते आदमी को तो धर्म में रस नहीं होता। जीतते आदमी को परमात्मा में रस नहीं होता। जीतते आदमी को प्रार्थना में रस नहीं होता। जीतते आदमी को ध्यान की तरफ कोई रुचि पैदा नहीं होती। जीत रहा है! हां, जब हारने लगता है, पैर डगमगाने लगते हैं, जब मौत करीब आने लगती है और लगता है अब गया तब गया, तब सोचता है हारा हुआ आदमी।

हार तुम्हारा सौभाग्य है। जितनी जल्दी हार जाओ, उतना तुम्हारा सौभाग्य। क्योंकि हार से एक नई यात्रा शुरू होती है।

हार का अर्थ है : मेरे किए कुछ भी नहीं हो रहा। थक कर गिर जाते हैं। जिस क्षण तुम थक कर गिरते हो, उसी क्षण तुम चकित हो जाते हो, चौंक कर अवाक रह जाते हो। क्योंकि तुम्हारे किए जो हो रहा था, या नहीं हो रहा था, वह दुख ही था। हार कर गिरते ही तुम पाते हो परम आनंद है। हार में बड़ा गहरा विश्राम है।

हारे को हरिनाम! जैसे ही आदमी हारा कि हरिनाम पैदा होता है। यह उक्ति बड़ी अपूर्व है : हारे को हरिनाम! किस हार की बात है? इस अहंकार के हार की बात है। यह अहंकार है, जो बाहर और भीतर को अलग कर रहा है। थोड़ी देर को सोचो। थोड़ी देर को विमर्ष करो। थोड़ी देर को शांत बैठ कर सोचो मैं नहीं, फिर कौन बाहर कौन भीतर! फिर कैसे विभाजन करोगे? फिर तुम कहां हो, जो विभाजन करे? फिर तो घर गिर गया, खंडहर हो गया। फिर तो आकाश बाहर-भीतर का मिल गया। फिर तो ऐसा समझो कि घड़ा था मिट्टी का, फूट गया, तो जल बाहर था, जल भीतर था--एक हो गया।

इस एकता को लाने के दो उपाय हैं; या तो घड़े को बाहर से तोड़ो या घड़े को भीतर से तोड़ो। दो ही उपाय हो सकते हैं। या तो बाहर से चोट करो घड़े पर। अगर बहिर्मुखी हो तो बाहर से चोट करो। अगर अंतर्मुखी हो तो भीतर से चोट करो। कहीं से भी चोट करो, घड़ा टूटना चाहिए। घड़ा बनाने की जो कला है, वही घड़ा तोड़ने की भी कला है।

तुमने कभी कुम्हार को देखा घड़े को बनाते? चाक पर घड़े को चढ़ा देता है, फिर क्या करता है? एक हाथ को भीतर रखता है घड़े के, एक हाथ को बाहर रखता है घड़े के। इन दो हाथों की चोट से घड़े को बनाता है। भीतर के हाथ से सम्हालता है, बाहर के हाथ से थपकारता है--ऐसे घड़े की दीवाल उठती है। जो घड़े को बनाने की प्रक्रिया है, वही घड़े को तोड़ने की भी प्रक्रिया है। या तो बाहर से तोड़ो या भीतर से तोड़ो।

जो लोग भीतर की बात नहीं समझ पाते, वे बाहर परमात्मा को देखें--इन वृक्षों में, चांद-तारों में, आकाश में, बादलों में! इतना सुंदर जगत चारों तरफ फैला है! इससे थोड़ी मुलाकात करो। इससे थोड़े संबंध बनाओ। इसके संग थोड़े बहो, नाचो, गुनगुनाओ। जब पक्षी गाते हों, तुम भी गाओ। और जब वृक्ष हवाओं में नाचने लगें तो तुम भी नाचो। और जब नदी उमंग से भरी सागर की तरफ जाती हो, तब तुम भी थोड़े बहो। इस बाहर के परमात्मा से थोड़ा संग-साथ करो। यहां से भी घड़ा टूट जाएगा। जिस दिन संग-साथ हो जाएगा. . . कभी-कभी आ जाएगी घड़ी अचानक तुम पाओगे : देखते-देखते, सूरज को उगते, कुछ तुम्हारे भीतर भी उग गया। देखते-देखते धारा को बहते, कुछ तुम्हारे भीतर से बह गया, देखते-देखते आकाश में शुभ्र बादल को बिखरते, कुछ तुम्हारे भीतर बिखर गया। क्षण भर को झलक मिलेगी; कौंध जाएगी रोशनी, बिजली कौंधेगी। क्षण भर को लगेगा : कोई सीमा नहीं है--सब असीम है; विराट है, विभु है; न मैं हूं, न तू है। स्वाद आएगा। एक बूंद अमृत की टपकी। रास्ता बना। फिर बड़े घूंट आते ही हैं। फिर जल्दी ही वर्षा भी होगी।

अगर बाहर अड़चन मालूम पड़ती है तो कुछ उदास होने की जरूरत नहीं है--भीतर। स्त्रियों के लिए, जिनके पास स्त्रैण चित्त है, उनके लिए, जिनके पास निष्क्रिय चेतना है, उनके लिए आंख बंद करके भीतर ही खोजना उचित है। जिनके पास पुरुष चित्त है, आक्रामक, जो बाहर को विजय करने निकले हैं, उन्हें बाहर ही खोजना उचित है।

पश्चिम के तीनों धर्म--यहूदी, ईसाइयत, इस्लाम--तीनों बहिर्मुखी हैं। पूरब के तीन बड़े धर्म--हिंदू, बौद्ध, जैन--तीनों अंतर्मुखी हैं। पश्चिम बहिर्मुखी है। इसलिए तो पश्चिम ने विज्ञान का इतना विकास किया। इतने सुंदर मकान बनाए, इतने यंत्र बनाए, इतनी सुख-संपदा पैदा की। बाहर का खूब विकास किया। पूरब ने बाहर को तो दरिद्र छोड़ दिया, बाहर में तो कुछ विकास हुआ नहीं; लेकिन भीतर बड़े फूल खिले। अब वे फूल ऐसे हैं कि बाहर से तो दिखाई भी नहीं पड़ते। अगर कोई सौ मंजिल ऊंचा मकान खड़ा कर देता है तो दुनिया को दिखाई पड़ेगा।

हमने बुद्ध खड़े किए हैं; देखने वाले को ही दिखाई पड़ेगा, दुनिया को दिखाई नहीं पड़ सकता। जो बुद्ध के अंतरतम में प्रवेश कर सकेंगे, उनको दिखाई पड़ेगा। यह भी शिखर है--आकाश को छूने वाला शिखर है। मगर यह आंतरिक है। यह ज्योतिर्मय है। यह सूक्ष्म है; स्थूल नहीं है। इसे बाहर से टटोल कर नहीं देखा जा सकता। जो बाहर से देखेंगे, उन्हें तो सौ मंजिल का मकान दिखाई पड़ेगा। बुद्ध तो दरिद्र-भिखारी मालूम पड़ेंगे। जो भीतर से देखेंगें, वे पाएंगे कि सौ मंजिल के मकान के भीतर जो रह रहे हैं, सब दरिद्र हैं--सौ मंजिल के मकान में रहो कि दो सौ मंजिल के मकान में रहो। वह तुम्हारे दो सौ मंजिल का मकान सिवाय कबूतरों के छोटे-छोटे डबरों के और कुछ भी नहीं है। रहने वाला आदमी दरिद्र है। उसे बुद्ध में दिखाई पड़ेगी अपूर्व संपदा।

पूरब अंतर्मुखी है; स्त्रैण है। पश्चिम बहिर्मुखी है; पौरुषेय है। मगर पूरब में भी पुरुष हैं। और पश्चिम में भी स्त्रियां हैं। और पूरब में भी वे लोग हैं जो दौड़ कर पाना चाहते हैं। और पश्चिम में भी वे लोग हैं जो बैठ कर पाना चाहते हैं।

जीसस का वचन हैः खोजो--और मिलेगा। खटखटाओ--और द्वार खुलेंगे।

लाओत्सु का वचन है : खोजा--खो जाएगा। मांगा--फिर न मिलेगा। रुको, ठहर जाओ। बैठ जाओ। आंख बंद कर लो। विश्राम में डूब जाओ। जिसने नहीं खोजा, उसे मिला। जो खो गया, उसे मिला।

यह अंतर्मुखता की बात है। कुछ करने से नहीं मिलेगा--अकर्म में उतर जाने से मिलेगा। शून्य भाव में बैठ जाने से मिलेगा।

मैं दोनों ही बातें कहता हूं, क्योंकि दोनों ही तरह के लोग यहां हैं। तुम चुन लो। परिणाम एक है। अंततः सिद्धि एक है। ये दो द्वार हैं परमात्मा के। जहां से मौज हो, वहां से प्रवेश कर जाओ। और एक से प्रवेश किए तो दूसरा अपने-आप हो जाने वाला है। क्योंकि जिस भवन में प्रवेश करोगे, वह वही है। कैसे तुम आए--दौड़ कर आए कि रुक कर आए; पुरुष की तरह आए कि स्त्री की तरह आए; प्रार्थना करते आए कि ध्यान करते आए; आंख खोल कर आए कि आंख बंद करके आए--इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता।

आ गए, तब स्वाद एक है। और एक सध जाए तो दूसरे को तुम पाओगे अनायास सध रहा है। भीतर के छंद में डूब जाओ, तो तुम हैरान हो जाओगे, चमत्कृत हो जाओगे कि जैसे तुम भीतर के छंद से जीने लगे, बाहर की परिस्थितियां उसके अनुकूल होने लगीं। यह सारा जगत तुम्हें साथ देने को तत्पर है।

देखो, तुम जब दुखी होना चाहते हो, तब भी यह साथ देता है। कहते हैं न, तुम जब दुख चाहते हो तो सब तरफ तुम्हें कांटे दिखाई पड़ने लगते हैं और तुम जब सुख चाहते हो और सुखी होना चाहते हो, तब सब तरफ फूल खिल जाते हैं। तुम्हारी दृष्टि बदलती है और यह सारा जगत रूपांतरित हो जाता है।

जिस आदमी को दुख खोजना है, वह दुख खोज लेगा। खूब अवसर हैं दुख खोज लेने के। वह हर सुख के अवसर में से भी दुख को निचोड़ लेगा। और जिसे सुख खोजना है, वह भी. . . खूब अवसर हैं उसे भी. . . वह हर अवसर में से सुख निचोड़ लेगा--दुख में से भी सुख निचोड़ लेगा। उनकी दृष्टियां अलग होती हैं। पहले तरह का आदमी जाकर खड़ा होता है गुलाब की झाड़ी के पास, कांटे गिनता है; उसे दुख खोजना है। कांटे भी हैं। दूसरा आदमी जाता है गुलाब की झाड़ी के पास, फूल गिनता है; फूल भी हैं। गुलाब की झाड़ी में सब है। परमात्मा बाहर भीतर दोनों तरह है। तुम उसे जिस रंग में देखना चाहोगे, तुम उसे जिस ढंग में देखना चाहोगे, उसी ढंग में दिखाई पड़ जाएगा। अगर तुम दुख की तरह ही जगत को लेना चाहते हो, तो खूब दुख पाओगे। और फिर तुम रोओगे, चिल्लाओगे। तुम फिर कहोगेः

क्या मिला तुझको बना मुझको अनाश्रित दीन यों
चाटते अरमान अपना ही लहू रहते सदा,
आमरण जैसे विषम संघर्ष ही संपूर्ण हैं
एक क्षण का भी नहीं विश्राम प्राणों को बदा!
क्या विफलता ही हुई साकार मेरे जन्म में

व्यर्थता ही व्यर्थता मेरी समूची संपदा!

कांटे गिनते हो, फिर रोते हो कि इतने कांटे देकर तुझे क्या मिला! और पास ही कांटों के खिला था फूल, वह नहीं देखा। जिसने बहुत कांटे गिन लिए, उसकी आंखों पर कांटों की छाया इतनी हो जाती है कि फूल दिखाई नहीं पड़ते। जिसने फूल बहुत गिने, उसमें ऐसी फूलों की मस्ती छा जाती है, ऐसी फूलों की शराब उसे घेर लेती है कि फिर कांटे कहां!

फूल देखने वाले को कांटे भी फूल हो जाते हैं। कांटे गिनने वाले को फूल भी कांटे हो जाते हैं। सारी बात दृष्टि की है।

तो जैसे ही तुम भीतर अपने छंद में डूबोगे, उसके साथ एकरस हो जाओगे। स्वाभाविक रूप से जीने लगोगे। जरा भी अस्वाभाविक होने की चेष्टा न करोगे। जो भीतर कहेगा, अंतर की जो वाणी होगी, उसके साथ ही चलोगे। सब दांव पर लगा दो। तुम अचानक पाओगे : सारा जगत तुम्हारे साथ हो गया।

कहते हैं, जब बुद्ध को ज्ञान हुआ, तो वृक्षों में असमय फूल खिल गए; सूखे वृक्ष हरे हो गए। यह कथा प्रीतिकर है। यह इतना ही कहती है कि जब तुम्हारे भीतर परमज्ञान की घटना घटेगी तो तुम्हारे लिए सूखा वृक्ष कैसे रह जाएगा! सूखे वृक्ष में हरे पत्ते आए या नहीं, इसमें मुझे बहुत जिद्द नहीं है; मगर इस काव्य के संकेत को समझना चाहिए। कुछ मूढ़ हैं, जो यह जिद्द करते हैं कि यह कैसे हो सकता है! बुद्ध को ज्ञान हुआ, इससे सूखे वृक्ष में, ठूंठ में कैसे पत्ते आ जाएंगे? बुद्ध के लिए आ गए। तुम्हारे लिए तो हरा वृक्ष भी ठूंठ है। तुमने तो हरे वृक्ष में भी पत्ते कब देखे हैं! तुम्हें याद है, कब से तुमने हरे वृक्ष नहीं देखे! तुम हरियाली देखना भूल गए हो। हरियाली की भाषा विस्मृत हो गई है। तुम्हें तो ठूंठों की भाषा रह गई है याद। तुम्हें रेगिस्तान ही रेगिस्तान दिखाई पड़ते हैं। तुम्हारी आंखें अंधी हो गई हैं सौंदर्य को देखने में। तुमने संवेदनशीलता खो दी है।

तो मैं नहीं कहता कि यह कोई वैज्ञानिक तथ्य है, कि ठूंठ हरे हो गए। मगर यह हो कैसे सकता है! जब बुद्ध ने आंखें खोली होंगी परम छंद में डूबने के बाद, सामने खड़े हुए ठूंठ में अगर हरे पत्ते दिखाई पड़े हों, तो मुझे कुछ आश्चर्य नहीं है; और अगर असमय उन्हें फूल खिले दिखाई पड़े हों तो कुछ आश्चर्य नहीं। तुम भी तो एक तरह की घटना जानते हो। फूल खिले रहते हैं और तुम्हें दिखाई नहीं पड़ते। तो इससे उलटा भी हो सकता है कि फूल न खिले हों और किसी को दिखाई पड़ जाएं। इस पर ख्याल करो।

तुम निकल जाते हो, वृक्ष में फूल खिले हैं, कहां दिखाई पड़ते हैं! कहां फुर्सत! कहां सुविधा तुम्हें देखने की! तुम्हारे मन में इतने उपद्रव चल रहे हैं कि इनके साथ फूलों की संगति नहीं बैठती। फूल कहना भी चाहें कुछ तो तुम्हारे भीतर इतना कोलाहल है कि फूलों की वह फुसफुसी बातें, गुफ्तगू तुम्हें कैसे सुनाई पड़ेगी! वह धीमे-धीमे स्वर खो जाएंगे तुम्हारे नक्कारखाने में। तुम गुजर जाओगे। तुम्हारी आंखें फूल को देखेंगी और फिर भी तुम फूलों को नहीं देखोगे।

मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि जब किसी के भीतर बुद्धत्व पैदा होता है, तो उसे वहां भी फूल दिखाई पड़ते हैं, जहां अभी फूल नहीं हैं--आने को होंगे; आते होंगे; आ ही रहे हैं। उसे भविष्य भी दिखाई पड़ता है। जहां फूल थे, वे भी उसे दिखाई पड़ते हैं; उसे अतीत भी दिखाई पड़ता है। इसलिए हमने कहा है कि बुद्धपुरुषों को तीनों काल दिखाई पड़ते हैं--त्रिकालज्ञ। मैं इसका जैसा अर्थ लेता हूं, वह यही है। जो फूल नहीं थे, वे भी दिखाई पड़ रहे हैं; जो होंगे और वे भी दिखाई पड़ रहे हैं; जो समय की धारा में खो गए हैं--कभी थे। फूल ही फूल से जगत भर जाता है। सुगंध ही सुगंध से जगत भर जाता है।

बुद्ध ने कहा है कि जिस दिन मैं ज्ञान को उपलब्ध हुआ, मेरे साथ सारा जगत समाधि को उपलब्ध हो गया। इस वक्तव्य की बड़ी महिमा है : मेरे साथ सारा जगत समाधि को उपलब्ध हो गया! निश्चित ही यह वक्तव्य तथ्यगत नहीं है, क्योंकि तुम अभी बैठे हो। तुम कहोगे कि यह बात तो सरासर झूठ है। और कोई हुआ हो न हुआ हो, लेकिन एक बात तो पक्की है कि मैं नहीं हुआ, अभी मैं कहां संबुद्ध हुआ, अभी मुझे कहां बोधि फली!

तो बुद्ध की बात असिद्ध करने को मैं अकेला ही काफी प्रमाण हूं। और बुद्ध कहते हैं कि मेरे साथ सारा जगत बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया।

और बुद्ध ठीक कहते हैं। और अच्छा हो कि तुम जिद्द मत करो। बुद्ध बिलकुल ठीक कहते हैं। मगर यह भाषा बड़ी ऊंचाइयों की है। बुद्ध यह कह रहे हैं कि जिस क्षण मैं जागा, मैंने उस दिन देखा कि सभी जागरण को अपने भीतर लिए बैठे हैं। सबके भीतर दीया जला है; उन्हें पता हो या न पता हो। तुम बुद्ध हो; तुम्हें पता हो या न पता हो। बुद्ध को तो पता है।

ऐसा ही समझो कि तुम यहां बैठे हो, तुम्हें नहीं दिखाई पड़ता कि तुम्हारी जेब में हीरा पड़ा है, मुझे दिखाई पड़ता है। तुम तो कहते हो कि मैं भिखमंगा, मैं दीन-दरिद्र और मैं कहता हूं : जब से मैंने अपना हीरा देखा, तब से तुम्हारी जेब में पड़ा हीरा भी मुझे दिखाई पड़ने लगा। हीरा अपने भीतर क्या देखा, अब जहां भी कहीं हो वहीं दिखाई पड़ने लगा। अब मैं हीरे की भाषा समझने लगा। तुम कहते हो : मेरे पास हीरा! आप भी कहां की बातें कर रहे हैं! मेरे पास कुछ नहीं है; मैं भीख मांगने निकला हूं, मैं भिखमंगा हूं!

यह हीरा ऐसा है कि इसे देखने के लिए पारखी की आंख चाहिए। बुद्ध ठीक कहते हैं कि मेरे साथ सारा अस्तित्व बोध को उपलब्ध हो गया है। उस घड़ी मैंने जाना कि सभी बुद्ध हैं--कुछ सोए हुए, कुछ जागे हुए; कुछ को पता चल गया, कुछ को पता नहीं है।

पर इससे क्या फर्क पड़ता है? अमीर आदमी सोया हो तो भी अमीर होता है; जागा हो तो भी अमीर होता है। सम्राट सो जाए तो भी सम्राट होता है; जागा हो तो भी सम्राट होता है। हालांकि यह हो सकता है कि सम्राट सो कर, हो सकता है, भिखारी का सपना देख रहा हो; लेकिन इससे भिखारी नहीं हो जाता।

तुम्हारे भीतर जब छंद जम जाता है. . . देखा न, संगीतज्ञ साज को बिठाते हैं, ठोंक-ठाक करते हैं, तबला, तार कसते हैं--ऐसे ही जब तुम्हारे भीतर तुम अपने तबलों को ठोंक-ठाक कर, तार को कस कर, साज को बिठा लेते हो; जब तुम्हारे भीतर संगीत का जन्म होने लगता है; जब तुम भीतर नाचने लगते हो, मगन हो जाते हो, मस्त हो जाते हो--तब तुम्हें अचानक दिखाई पड़ता है कि सारा जगत तुम्हारे साथ देने को तत्पर खड़ा है। सब तरफ से हाथ आ गए।

हमने इस देश में परमात्मा के हजार हाथ बनाए हैं--इसीलिए। बड़ी प्यारी धारणा है। दो हाथ का परमात्मा किस-किस को सहारा देगा! इतनों को सहारे की जरूरत है! उसके हमने हजार हाथ बनाए हैं। हजार तो प्रतीक है। उसका मतलब अनंत, अनगिनत। और हजार से ज्यादा बनाना भी कठिन था--चित्रों में, मूर्तियों में। मगर अर्थ साफ है। हम यह कह रहे हैं कि तुम एक बार जागो भर कि हजार हाथों से परमात्मा तुम्हें साथ देता है। हर तरफ से उसका हाथ तुम्हारे पास आ जाता है। उसका हाथ पास आना ही चाह रहा है; तुम भागे जा रहे हो। तुम बचते हो। तुम परमात्मा से बचाव कर रहे हो। जिस दिन तुम हाथ बढ़ाओगे, तुम अचानक पाओगे, उसका हाथ सदा से तुम्हें टटोलता था, खोजता था। तुम्हीं छिटके-छिटके, तुम्हीं भागे-भागे थे।

भीतर का छंद बैठ जाए तो बाहर से परमात्मा के हजार हाथ तुम्हें तत्क्षण उठा लेते हैं। या बाहर के जगत से छंद बैठ जाए, तथाता-भाव आ जाए, सब स्वीकार हो जाए, संतोष की दशा बन जाए--नहीं चाहिए कुछ और; जैसा है काफी है; जैसा है शुभ है; जैसा है पूर्ण है; इससे अन्यथा की कोई मांग नहीं है। जैसे हो, वैसे ही होने से परमभाव तैयार बन रहा है, बनता ही जा रहा है।

हमारे मन में हमेशा दौड़ हैः धन थोड़ा ज्यादा हो जाए; पद थोड़ा बड़ा हो जाए; शरीर थोड़ा स्वस्थ हो जाए, चेहरा थोड़ा सुंदर हो जाए--कुछ न कुछ दौड़ है। कुछ हो! जैसा है काफी नहीं। कुछ और चाहिए। कुछ कमी काटती है। यह जो कमी काटती है, यही तुम्हें बाहर से नहीं जुड़ने देती है, तथाता-भाव पैदा नहीं होने देती है।

तथाता-भाव का अर्थ है : कोई कमी नहीं। और मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि कमी नहीं है। कमियां हैं, लेकिन जिसको तथाता-भाव साधना आ गया, उसके लिए कोई कमी नहीं रह जाती। अगर वह भूखा रहता है तो परमात्मा से कहता है : आज मेरी जरूरत भूखे रहने की थी। तूने मुझे भूखा रखा, तेरा धन्यवाद! अगर वह फांसी पर भी चढ़ता है तो वह धन्यवाद देता फांसी पर चढ़ता है। वह कहता है : जरूर मेरी जरूरत थी कि मेरी गरदन कटे। तेरी बड़ी कृपा कि सूली पर चढ़ा दिया। तेरी बिना कृपा के यह होता भी कैसे!

जीसस परमात्मा को धन्यवाद देते हुए सूली पर मरते हैं। मंसूर खिल-खिला कर हंसता है आकाश की तरफ देख कर। कोई पूछता है कि मंसूर, तुम हंस क्यों रहे हो? क्या पागल हो गए हो? तुम्हारे हाथ-पैर काट दिए गए हैं और तुम आकाश की तरफ देख कर क्यों हंसते हो?

और मंसूर कहता है : मैं हंसता हूं, क्योंकि मैं परमात्मा को यह कहना चाहता हूं, तू किसी भी शक्ल में आ, मैं तुझे पहचान लेता हूं। आज तू हत्यारों की शक्ल में आया है, लेकिन मुझे धोखा न दे पाएगा। मैं तुझे पहचानता हूं। ये जो लोग मेरे हाथ-पैर काट रहे हैं, तू ही है। इसलिए हंस कर मैं खबर कर रहा हूं उसे कि देख, मंसूर को तू धोखा न दे पाएगा। इस बार प्यारे तू इस ढंग से आया है कि कोई भी धोखा खा जाए, लेकिन मैं धोखा खाने वाला नहीं। मैं हंसता हूं। मैं तुझे कह देना चाहता हूं कि तेरी तरकीब काम नहीं आई। और मैं इसके पहले कि मेरी जबान काट दी जाए, कह देना चाहता हूं, इसलिए मैं हंसा हूं।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तथाता-भाव से जीने वाले आदमी को कोई कमी नहीं होगी। दूसरों को दिखाई पड़े भला, उसे दिखाई नहीं पड़ेगी। भिखमंगा होकर भी वह सम्राट होगा। कांटों में पड़ा होकर भी वह फूलों की सेज पर होगा। सूली पर भी सिंहासन पर होगा।

तथाता-भाव का यह अर्थ होता है कि अब जो भी होता है वही ठीक है। वही होना चाहिए था, वही हो रहा है।

तो अगर इतनी बाहर परितोष की भावदशा बन जाए, तो क्या तुम सोचते हो भीतर का छंद अप्रकट रह जाएगा! ऐसे संतोष की दशा में भीतर का संगीत फूट न पड़ेगा? हजार-हजार झरनों में फूट पड़ेगा! भीतर का संगीत फूटे तो परमात्मा हजार हाथ फैला देता है। और तुम परमात्मा के हाथों से राजी हो जाओ बाहर, तो भीतर का संगीत फूट पड़ता है। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। वे एक ही घटना के दो हिस्से हैं।

दूसरा प्रश्नः मैं प्रार्थना नहीं कर पाता हूं, जैसे कोई रोक लेता है। आप मार्ग दर्शन दें।

कौन रोकेगा? तुम्हारे अतिरिक्त और कोई रोकने वाला नहीं है। तुम प्रार्थना नहीं कर पाते, क्योंकि तुम झुकने को राजी नहीं हो। तुम प्रार्थना नहीं कर पाते क्योंकि सिर को सीधा रखने की जड़ आदत बन गई है।

झुकना सीखना पड़ेगा। कोई और नहीं रोकता; तुम्हारा अहंकार ही तुम्हें खींच लेता है। झिझक तुम्हारे अहंकार से आ रही है। ऐसा मत सोचो कि कोई और रोकता है। हमारी आदत है सदा किसी दूसरे पर दोष टाल देने की--कोई रोकता है, कोई शैतान रोक रहा है। कोई शैतान नहीं है।

तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारा न कोई दुश्मन है और न तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारा कोई मित्र है--बुद्ध ने यही कहा है। मनुष्य ही अपना मित्र और मनुष्य ही अपना शत्रु। शत्रु--जब तुम झुकने से अपने को रोक लेते हो; मित्र--जब तुम झुकने में सहयोगी बन जाते हो।

कौन तुम्हें रोकेगा? लेकिन जिंदगी भर अगर अहंकार को साधा है, तो अचानक जाकर मंदिर में झुक न पाओगे। झुकने का तुम्हें अभ्यास नहीं है। हर जगह अकड़ कर खड़े रहे। हर जगह लड़ते रहे, संघर्ष किया।

पी जा हर अपमान, और कुछ चारा भी तो नहीं

तूने स्वाभिमान से जीना चाहा, यही गलत था

कहां पक्ष में तेरे किसी समझ वाले का मत था
केवल तेरे ही अधरों पर कड़वा स्वाद नहीं है,
सब के अहंकार टूटे हैं, तू अपवाद नहीं है।
तेरा असफल हो जाना तो पहले से ही तय था
तूने कोई समझौता स्वीकारा भी तो नहीं
कैसे तू रहनुमा बनेगा इन पागल भीड़ों का
तेरे पास लुभाने वाला नारा भी तो नहीं,
माथे से हर शिकन पोंछ दे, आंखों से हर आंसू
पूरी बाजी देख, अभी तू हारा भी तो नहीं।

यह अहंकार हारता है, हारता है; फिर भी तुमसे कहता जाता है : माथे से हर शिकन पोंछ दे, आंखों से हर आंसू। पूरी बाजी देख, अभी तू हारा भी तो नहीं। अभी कहां पूरी हार हुई है? अभी रास्ता है, अभी उपाय है; और लड़ ले। एक और दांव। एक और बाजी। शायद जीत जाए।

अहंकार आशा को फुसलाए चला जाता है।

और अपमान क्यों होता है जीवन में? क्योंकि सम्मान की आकांक्षा है।

पी जा हर अपमान, और कुछ चारा भी तो नहीं।

तुम अपने को समझाए चले जाते हो कि पी लो, क्या करोगे, मजबूरी है! मजबूरी जरा भी नहीं है। अपमान पीने की कोई भी जरूरत नहीं है। अगर तुम सम्मान की आकांक्षा छोड़ दो फिर कैसा अपमान? सम्मान की आकांक्षा चली जाए तो फिर कोई अपमान नहीं कर सकता।

लाओत्सु ने कहा है : मुझे कोई हरा नहीं सकता, क्योंकि मैं हारा ही हुआ हूं। मुझे कुछ और पीछे धकेलने का उपाय नहीं, क्योंकि मैं पहले से ही पीछे खड़ा हूं।

लाओत्सु कभी किसी सभा में जाता, बैठक में जाता, तो वहां बैठता जहां लोग जूते उतारते हैं। उसे लोग बुलाते भी कि आप भीतर आ जाएं, यहां आ जाएं। वह कहता कि नहीं, यहां मैं भला, क्योंकि यहां से मुझे हटाया न जा सकेगा। यह आखिरी जगह है। यहां शांति से बैठ सकूंगा।

यह उसकी पूरी जीवन-दृष्टि है; यह उसका पूरा जीवन-दर्शन है। इस आदमी को कैसे तुम अपमानित करोगे? जिस आदमी ने सम्मान नहीं मांगा, वह अपमान की संभावना से मुक्त हो गया। लेकिन अहंकार कहे चला जाता है कि रुको अभी, अभी प्रार्थना करने का समय कहां आया? अभी और संघर्ष कर लो। अरे, हार गए क्या?

अहंकार कहता है : तुम और झुकने जा रहे हो? यह तो तुम्हारी आदत नहीं है। यह तो कमजोरों, कायरों की बात है--यह प्रार्थना! यह तो दीन-हीनों की बात है प्रार्थना। तुम तो ऐसे नहीं। तुम तो अभी और लड़ो। तुम तो अभी और संघर्ष करो। अभी पूरी बाजी भी कहां हारे! एक टक्कर और सही। जरा रुको।

यही तुम्हें रोक लेता होगा भाव। प्रार्थना का मतलब होता है : झुकना। समर्पण, समग्र भाव से समर्पण।

चाहे कितनी तपन सहे तन, चाहे कितनी घुटन सहे मन
किंतु दर्द को ओठों पर आ जाने का अधिकार नहीं है
कण-कण में फागुनवा नाचे, खेत-खेत में सरसों फूली
अमराई में कूके कोयल, पछवा डोले भूली-भूली,
मैं हूं ऐसा फूल कि जिसको सांझ सताए, भोर रुलाए
मधुऋतु में भी मुझको तो खिल पाने का अधिकार नहीं है।
पहले तो जीना चाहा, पर जीने का आधार छिन गया,

अब तो तिल-तिल कर जलना ही सांसों का व्यापार बन गया
बहका-बहका घूम रहा है तुमसे दूर पतंगा मन का
इसको मनचाही लौ पर जल जाने का अधिकार नहीं है।
झुलसी जाती कंचन काया, धूप उम्र की बढ़ती जाती
मुरझे जाते फूल थाल के, बुझती जाती वंदन-बाती,
मंदिर का दरवाजा मूंदे, कब से तुम रूठे बैठे हो,
मेरे हाथों को सांकल खटकाने का अधिकार नहीं है।

अपने ही हिसाब से तुमने शर्तें बना ली हैं कि तुम्हें रोने का अधिकार नहीं, कि तुम्हें सांकल खटकाने का अधिकार नहीं है! किसने तुम्हें कहा? कुछ न कर सको, कम से कम रो तो सकते ही हो! प्रार्थना नहीं आती, रोना भी भूल गए? रो तो सकते हो! आंसू तो गिर सकते हैं आंखों से झर-झर! हो जाएगी प्रार्थना।

कभी घड़ी भर बैठ कर समग्र के समक्ष रो लेना।

मैं तुमसे कुछ यह भी नहीं कहता कि कोई बंधी हुई औपचारिक प्रार्थना करो--कि हिंदुओं की, कि मुसलमानों की, कि ईसाइयों की कोई प्रार्थना दोहराओ। जो प्रार्थनाएं कंठस्थ करके दोहराई जाती हैं, उनका कोई मूल्य ही नहीं है। क्योंकि वे हृदय से आती ही नहीं, कंठ से आती हैं। जो प्रार्थनाएं शब्दों में अटकी हैं, उनका कोई मूल्य नहीं है। निःशब्द-भाव की जरूरत है। यंत्रवत दोहराओ मत। वैसे तो की न की बराबर हो गई। भाव से उमगने दो।

कभी मौन ही बैठ जाओ। कुछ प्रार्थना कहने की ही बात नहीं है कि कुछ कहना ही है। कहने को क्या है। कभी सिर्फ उसके सामने मौन से बैठ जाओ। और सामने का मतलब नहीं कि काबा की तरफ मुंह करोगे, तब सामना। जहां भी मुंह किए हो, उसी के सामने हो। बस कभी बैठ जाओ। दैनंदिन उपद्रवों को थोड़ी देर को छोड़ कर बैठ जाओ। थोड़ी देर आंख बंद कर लो। थोड़ी देर हार्दिक बनो। थोड़ी देर हवा के झोंकों में झूलो। आंसू बहने लगें, बहने दो। चुप्पी रहे, ठीक। या कि कोई गीत फूट पड़े, तो गीत फूटने दो। जरूरी नहीं कि कोई महाकवि का लिखा हुआ हो, तुम्हारा अपना ही गीत फूटने दो। उसी को तो मैं कहता हूं स्वच्छंद। चलो तुतलाहट ही रहेगी तुम्हारी कविता में कोई बहुत बड़ा काव्य नहीं होगा। लेकिन तुतलाते-तुतलाते ही प्रार्थना जम जाती है।

देखते हैं यह पलटू निर्गुण बनिया! यह बेचारा तराजू ही तौलते-तौलते-तौलते, ऐसे अपूर्व वचन कह गया। कहता है : मैं तो राम का मोदी! मैं तो राम का बनिया हूं। मगर गहरी पते की बातें कह गया। कहते-कहते कहते-कहते बात जम गई। सभी बच्चे तुतलाने से ही शुरू करते हैं। सभी प्रार्थनाएं तुतलाहट से शुरू होती हैं। परमात्मा के सामने हम छोटे बच्चे हैं।

तुम बड़ी कुशलता मत दिखाओ। तुम कुछ बड़े विशेषज्ञ होकर प्रार्थना करने मत बैठ जाओ। तुतला तो सकते हो। परमात्मा यानी तुम्हारी मां। उसके सामने गिर भी गए, घुटने भी चल लिए, तो हर्ज तो नहीं। धूल-धूसरित, नग्न भी उसके सामने खड़े हुए तो कुछ हर्ज नहीं। तुम जैसे हो, वैसे हो, ऐसा उसे पता ही है। छिपाने की कोई बात भी नहीं है। बेसुरा सुर निकले, निकलने दो। तुम उसी के हो, वह तुम्हारे स्वर को भी स्वीकार करेगा। उसके सामने कुछ बनावट भी तो नहीं करनी है। कोई साज-शृंगार भी तो नहीं करना। रूखा-सूखा जो भी निवेदन हो, कर दो। इसमें बहुत ज्यादा गणित, ज्ञान जुटाने की जरूरत नहीं है।

तुम पूछते होः "मैं प्रार्थना नहीं कर पाता हूं, जैसे कोई रोक लेता है।"

तुम ही रोक लेते होओगे। तुम ऐसी प्रार्थना करना चाहते हो जैसी मीरा ने की? तुम ऐसी प्रार्थना करना चाहते हो जैसी पलटू ने की? शुरू से तो कोई भी ऐसी प्रार्थना नहीं कर सकता। छोटा बच्चा जो अभी झूले में पड़ा है, तुम जैसा नहीं चल सकता। चलते-चलते चलेगा। कई बार गिरेगा। तुम्हारा दंभ प्रार्थना में भी समाविष्ट हो जाता है कि कुछ ऊंची चीज, कोई ऊंचा स्वर निकले। तुम परमात्मा के सामने भी प्रदर्शन करने की इच्छा रखे हो। वहां तो छोड़ो। वहां तो नाटक न करो। वहां तो सहज सरल जैसे हो. . .। तुतलाहट तो तुतलाहट।

लड़खड़ाना तो लड़खड़ाना। घुटनो के बल सरकना तो घुटनो के बल सरकना। उसके सामने तो अपने को बिलकुल असहाय छोड़ दो; क्योंकि तुम जब असहाय होते हो, तभी उसी का सहारा मिलता है, उसके पहले नहीं मिलता। तुम जब बिलकुल असहाय होते हो, तभी उसका सहारा मिलता है। जैसे ही उसे लगा कि तुम खुद ही अपने पैर पर खड़े हो, तुम खुद ही अपने दंभ में अड़े हो उसका सहारा हट जाता है। जरूरत ही नहीं तुम्हें। सिर्फ जरूरत का निवेदन है।

और यह निवेदन भी भाषा में प्रकट करने की जरूरत नहीं, क्योंकि भगवान तुम्हारी भाषा नहीं समझता; सिर्फ एक ही भाषा समझता है, वह भाव की भाषा है।

तुमने यह बात ख्याल की? दुनिया के किसी कोने में कोई हो, जब प्रेम किसी के हृदय में उमगता है तो आंखों में एक ही झलक आती है! फिर वह चाहे हिंदी बोले, चाहे चीनी बोले, चाहे जर्मन बोले। प्रेम की एक ही भाषा है। जब कोई शांत हो जाता है तो उसके चेहरे पर एक ही तरह की ज्योति प्रकट होती है। वह इकहार्ट हो कि कबीर हो, कि लाओत्सु हो, कि मोहम्मद हो--इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता।

आदमी से आदमी जब बोलता है तो हमारे पास बहुत भाषाएं हैं, हजारों भाषाएं हैं। परमात्मा से जब आदमी बोलता है, तो इन भाषाओं में से कोई भाषा काम नहीं आती। न तो संस्कृत उसकी भाषा है और न अरबी और न लैटिन और न ग्रीक। छोड़ो यह बकवास कि संस्कृत देव-भाषा है। कोई भाषा देव-भाषा नहीं है। मौन देव-भाषा है। तुम जब मौन में हो, तब उससे जुड़ते हो।

तो प्रार्थना तो मौन हो सकती है। कुछ कहने की बात नहीं है। लेकिन आदमी ऐसा बेईमान है और आदमी ऐसा लोभी है प्रदर्शन का, कि जैसे अदालत में भी जाता है तो वकील को रखता है कि मेरी तरफ से बोलो, क्योंकि मैं इतना निष्णात नहीं बोलने में, यह कानून की भाषा मुझे आती नहीं, तो तुम मेरी तरफ से बोलो--तो वकील से बुलवाता है; मंदिर में जाता है तो पुजारी से बुलवाता है। घर भी लोग पंडित को बुला लेते हैं कि तुम मेरी तरफ से प्रार्थना कर दो, क्योंकि तुम विशेषज्ञ, तुम शुद्ध संस्कृत में करोगे; मुझे संस्कृत आती नहीं। और परमात्मा जैसे संस्कृत ही जानता है! . . .तो तुम कर दो। तो तुमने दलाल रख लिए हैं--बिचवइए, मध्यस्थ। कम से कम परमात्मा और अपने बीच तो किसी को मत लाओ। वहां तो उठने दो तुम्हारे हृदय की पुकार।

कोई और नहीं रोक रहा है; तुम ही रोक लेते हो। शायद तुम्हें जीवन में सिखाया गया हो, क्योंकि प्रश्न किसी पुरुष ने पूछा है। शायद तुम्हें सिखाया गया हो कि रोना पुरुष के योग्य नहीं। सारी दुनिया में यह नासमझी सिखाई गई है। स्त्रियां रोएं, क्षमा कर दो, स्त्रियां हैं। पुरुष को रोना नहीं सोहता। पुरुष तो मर्द है। मर्द बच्चे को रोना नहीं सोहता। आंख में आंसू आ जाएं, यह बात जमती नहीं पुरुष को।

तो शायद तुम्हारे आंसू सूख गए हैं अभ्यास से; तुमने उनको रोक लिया है, दमन कर लिया है। लेकिन मैं तुमसे एक बात कह दूं : प्रकृति ने पुरुष की आंखों में उतनी ही आंसू की ग्रंथियां बनाई हैं जितनी स्त्री की आंखों में। उसमें जरा भी फर्क नहीं है। तुम जाकर आंख के विशेषज्ञ से पूछ लेना। आंसू की उतनी ही ग्रंथियां पुरुषों की आंखों में हैं, जितनी स्त्री की आंखों में। इसलिए प्रकृति ने दोनों के लिए रोने का उपाय बराबर रखा है।

प्रार्थना का मतलब होता है : थोड़े गीले होओ। रूखे-रूखे, सूखे-सूखे, ध्यान तो हो जाए, प्रार्थना नहीं हो सकती। प्रार्थना में थोड़ी आर्द्रता चाहिए। थोड़ा जल बरसाओ।

आंसू तुम्हारे हृदय का जल है। इससे आंख ही नहीं धुलती, इससे हृदय का कल्मष भी धुल जाता है। और जो तुम और किसी तरह नहीं कह सकते, वह आंसुओं से कह देते हो। तुम जरा रोओ और तुम बड़े हलके हो जाओगे।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं : स्त्रियां कम पागल होती हैं, क्योंकि रो लेती हैं। स्त्रियां कम आत्मघात करती हैं, क्योंकि रो लेती हैं। दोगुने पुरुष आत्महत्या करते हैं। और दो गुने पुरुष पागल होते हैं। और तुमने देखा, पुरुष कम जीते हैं, स्त्रियां ज्यादा जीती हैं; पांच साल ज्यादा जीती हैं। पुरुष अगर सत्तर साल में मरते हैं तो स्त्रियां

पचहत्तर-अस्सी तक जीती हैं। ज्यादा जीती हैं। स्त्रियों में बीमारी को सहने की क्षमता भी ज्यादा होती है; रोग के बाबत बड़ी प्रतिरोधक शक्ति होती है--रेसिस्टेंस होता है; पुरुष में नहीं होता है।

पुरुष नाहक ही अकड़ा फिरता है कि मैं बलशाली हूं। वैज्ञानिकों से पूछो। वैज्ञानिक कहते हैं : स्त्री ज्यादा बलशाली है। वह बल मसल का नहीं है, यह बात सच है। लेकिन वह बल ज्यादा गहरा है।

तुम जरा सोचो कि पुरुष हो तुम, एकाध बच्चे को भी जन्म देते तो कभी के खतम हो गए होते। नौ महीने एक बच्चे को जरा अपने पेट में लेकर चलने की तो सोचो! फिर नौ महीने के बाद उस बच्चे को पालने की जरा सोचो! या तो तुम अपनी आत्महत्या कर लेते या बच्चे की गरदन दबा देते। तुम सह न पाते। स्त्री की सहिष्णुता बड़ी प्रगाढ़ है।

और मनोवैज्ञानिक कहते हैंः सारी सहिष्णुता के पीछे जो सब से बड़े राज की बात है, वह यह है कि स्त्री भावों को दबाती नहीं, प्रकट कर देती है। जब नाराज होती है तो नाराज हो लेती है। और जब प्रसन्न होती है तो प्रसन्न हो लेती है। सरल है। स्त्री में थोड़ा सा बच्चों जैसा भाव कायम रहता है। इसलिए स्त्रियों के चेहरे पर थोड़े बालपन की झलक बनी रहती है। स्त्री के चेहरे पर थोड़ा सा निर्दोष भाव कायम रहता है। वही उसका सौंदर्य है। मगर उस सौंदर्य का भीतरी राज प्रसाधन के साधनों में नहीं है। उस सौंदर्य का भीतरी राज भावों के बहाव में है।

पुरुष बहुत जड़ हो गया है। न कभी तुम दिल खोल कर हंसते हो, क्योंकि कहीं अशिष्टता न हो जाए! न तुम कभी दिल खोल कर रोते हो, क्योंकि यह तो तुम्हारे मर्द होने के विपरीत हो गया। न तुम ठीक से नाराज हो सकते हो, क्योंकि यह भी तुम्हारे अहंकार के विपरीत जाता है कि तुम जैसा सज्जन और ज्ञानी नाराज हो--कि तुम चीखो-चिल्लाओ, कि पैर पटको। यह भी तुम से नहीं हो सकता। तुम इन सारे भावों को इकट्ठा करते जाते हो। और जो भाव प्रकट नहीं होते, वे घाव बन जाते हैं। उनसे ही नासूर पैदा होते हैं। इस बात की पूरी-पूरी संभावना है; वैज्ञानिक इस संदेह को धीरे-धीरे करने लगे हैं कि कैंसर का कारण भावों का दमन है। इसलिए कैंसर का शारीरिक इलाज नहीं हो पाता। क्योंकि उसका जन्म कहीं मन की गहराइयों में हो रहा है।

तुम कहते हो : "मैं प्रार्थना नहीं कर पाता हूं।" इसका मतलब इतना ही हुआ कि तुम भाव-प्रवण नहीं हो पाते हो। कोई और नहीं रोक रहा है--तुम्हारे ही संस्कार रोक रहे हैं। तुम्हें अब तक जन्म से लेकर जो सिखाया गया है, वही तुम्हें अवरुद्ध कर रहा है। छोड़ो यह सब। ये संस्कार हटाओ। शुरू-शुरू में अड़चन आएगी। धीरे-धीरे बंधन खुल जाएंगे।

प्रार्थना में उतर सको तो वैसा ही अनुभव होता है... जैसा प्रेम में मन के तल पर होता है, वैसा ही प्रार्थना में आत्मा के तल पर होता है।

प्रकृति ने सींचा पुरुष को फिर सुरभि-धन से,
शरण अशरण को मिली तन मुक्त बंधन से!

ये पंक्तियां तो प्रेम के लिए लिखी गई हैं। लेकिन ये पंक्तियां प्रार्थना के लिए भी उतनी ही सच हैं, सिर्फ तल बदल जाएगा।

प्रकृति ने सींचा पुरुष को फिर सुरभि धन से,
शरण अशरण को मिली तन-मुक्त बंधन से!
दिग-दिगंतों में दिखे फिर इंद्रधनुषी रंग,
मलय-गंधा रेणु उड़ती फिर पवन के संग;
ज्योत्स्ना चर्चित निशा की किंकिणी बजती,
रतिश्रांता देह-प्रतिमा तोड़ती अंग-अंग
हेम शिखरा वर्तिका के किरणवाही कण,
कर रहे हैं फिर रस-प्लावित स्नेह-वर्षण से।
तन मुक्त बंधन से. . .!!

प्रणयमुखरा सजल वाणी फिर लगी कंपने,
स्वप्न-चालित पलक-पाटल फिर लगे झंपने
भुवन जेता मदन-मादन कर रहा परवश,
संयोगिता श्वास-सरि में फिर तिरे सपने;
संपुटित शब्दार्थ जैसे परिमिता बाहें,
बांधती आकाश अभिमंत्रित समर्पण से!
तन मुक्त बंधन से. . .!!
जैसे प्रेम में तन मुक्त हो जाता है बंधन से. . .

तुमने अगर अपने प्रेमी को अपनी बांहों में ले लिया, तुम अगर अपने प्रेमी की बांहों में गिर पड़े, तो कैसा अनुभव होता है? जैसे सारे बंधन शरीर के खुल गए! जैसे सारी गांठें अचानक खुली गईं! जैसे सब गांठें शिथिल हो गईं! अपनी प्रेयसी या अपने प्रेमी के आलिंगन में बद्ध होकर तुम्हें कैसा लगता है? जैसे शरीर हलका हो गया, बोझ से मुक्त हो गया।

ठीक ऐसी ही घटना प्रार्थना में घटती है--और गहरे तल पर। प्रार्थना यानी परमात्मा की बांहों में अपने को गिरा देना। प्रार्थना यानी परमात्मा को आलिंगन कर लेना। प्रार्थना यानी अदृश्य प्रेमी के साथ थोड़ी देर के लिए एकात्मता में बंध जाना।

यह अपूर्व अनुभव है। और तन ही शिथिल नहीं होता, मन ही शिथिल नहीं होता, प्रार्थना में आत्मा भी शून्य हो जाती है, शांत हो जाती है। तुम होते ही नहीं प्रार्थना में। इस अपूर्व अनुभव से वंचित मत रखो अपने को। अपने शत्रु मत बनो। शुरू करो। इस जगत में जो सर्वश्रेष्ठ है, जानने योग्य है, वह प्रार्थना है। कितना ही धन इकट्ठा कर लो, निर्धन रहोगे; अगर प्रार्थना का कण भी मिल गया तो धनी हो गए। कितना ही इस जगत में तुम्हारा नाम हो जाए, तुम खाली और कोरे के कोरे रहोगे; तुम्हारे भीतर की किताब पर कुछ भी नहीं उतरेगा। और प्रार्थना की थोड़ी सी लड़खड़ाती पंक्तियां तुम्हारे भीतर की किताब पर उतर आएं, वेद का जन्म हो गया; तुम्हारे भीतर उठने लगीं कुरान की सुंदर आयतें।

और मैंने देखा कि गंवार से गंवार, अज्ञानी से अज्ञानी भी जब प्रार्थना में डूब कर, रस-प्लावित होता है, तो उसके भीतर से ऐसे अपूर्व शब्द उठते हैं कि बड़े से बड़े कवि भी झेंपें। ऐसा ही तो हुआ कबीर में। ऐसा ही हुआ पलटू में। ये कोई बड़े कवि तो न थे। इन्होंने काव्य का कभी कोई अभ्यास न किया था। इन्हें काव्य की मात्रा, छंद का कुछ पता न था। लेकिन जब भीतर का छंद खुला, जब भीतर स्वच्छंद हुए, जब सारे बंधन गिरे, जब वह परम आलिंगन हुआ--तो बह उठी। सरिता बही।

ऐसा ही तो हुआ मीरा को। नृत्य का कोई अभ्यास न था; लेकिन जब उतरा परमात्मा प्रार्थना के क्षण में, तो नाच भी उसके साथ उतर आया।

अपने को नाहक वंचित मत रखो, और कोई और नहीं रोक रहा है। इस धोखे को भी खड़ा मत करो कि कोई और तुम्हें रोक रहा है। क्योंकि कोई और रोक रहा है, यह बहाना है। तुम ही रोक रहे हो। यह तुम्हारे ही अभी तक के संस्कार रोक रहे हैं।

और यहां मेरे पास रह कर भी अगर तुम अपने संस्कारों को न गिरा सको तो कहां गिराओगे? यहां तो सारे संस्कारों को जला देने की आयोजना है। यहां तो संस्कार-मुक्त हो जाने की चेष्टा चल रही है। उसी को मैं संन्यासी कहता हूं, जो संस्कारों से मुक्त है; जो सरलता से जीता है। व्यवस्था से नहीं। अनुशासन से नहीं जीता। अंतर-प्रेरणा से जीता है। जिसके ऊपर से कोई नियम नहीं है, कोई मर्यादा नहीं है। जिसकी सारी मर्यादा और सारे नियम उसके अंतर-बोध से ही निकलते हैं।

मुझसे संन्यासी कहते हैं कि आप हमें कुछ नियम दें, जीवन की व्यवस्था दें; हम कैसे उठें, कैसे बैठें; क्या खाएं, क्या पीएं--आप हमें सब व्यवस्था से समझा दें। उनका पूछना स्वाभाविक है क्योंकि सदियों से ऐसा ही किया गया है।

बौद्ध भिक्षुओं के लिए तैंतीस हजार नियम हैं। उनको याद ही रखना मुश्किल है। बड़े-बड़े शास्त्र भरे पड़े हैं--नियम पर नियम, नियम पर नियम। और स्वभावतः जब एक नियम बनाओ तो उसके पीछे दस बनाने पड़ते हैं, क्योंकि फिर उस नियम में दिखते हैं कि दस छिद्र रह गए; जैसा कि कानून बनता है। कानून बढ़ते चले जाते हैं रोज--इसलिए बढ़ते चले जाते हैं कि एक कानून बनाया; फिर दिखता है कि इस कानून से बचने के लिए लोगों ने तरकीब निकाल ली। तो उस तरकीब को रोकने के लिए और दस कानून बनाओ। और हर कानून दस और कानून लाता है। धीरे-धीरे कानूनों का जंगल खड़ा हो जाता है। फिर उसमें सामान्य आदमी तो प्रवेश ही नहीं कर सकता। विशेषज्ञ भी खो जाते हैं। क्षुद्र सी बातों को फिर इतना बढ़ावा मिल जाता है।

तुमने देखा, कभी किसी वकील का पत्र देखा? समझ में ही नहीं आता कि वह क्या कह रहा है। कोई छोटी-मोटी बात कहने के लिए भी वह इतनी तरकीबें लगाता है, इतना गोल-गोल जाता है; क्योंकि उसे सारे के सारे नियम के हिसाब से चलना पड़ता है।

तैंतीस हजार नियम--संन्यासी के लिए! यह तो गृहस्थ से भी बुरी दशा हो जाएगी। यह तो चौबीस घंटे नियम की ही याद रखेगा। इसको फुर्सत ही और कहां रहेगी, प्रार्थना की, कि ध्यान की?

नहीं, मैं अपने संन्यासी को कोई नियम नहीं दे रहा हूं। मैं कहता हूं : तुम्हारी सहजता से जो निकले, तुम्हारी सरलता से जो निकले, वही ठीक है तुम्हारे लिए। और, अगर ठीक न होगा तो दुख पाओगे। दुख से जाग जाना। और ऐसा करना, जिससे दुख न हो। कसौटि दे रहा हूं; नियम नहीं दे रहा हूं। जिससे दुख मिले मत करना; क्योंकि कौन चाहता है दुख को! और जिससे सुख मिले, करना। जैसे सर्राफ की दुकान पर पत्थर रखा होता है, जिस पर वह सोने को कस लेता है--ऐसे ही कसौटी दे रहा हूं तुम्हें।

फिर यह भी है संभव कि जिससे तुम्हें सुख मिले, दूसरे को सुख न मिले। नियम जड़ होते हैं। यह भी हो सकता है, जिससे तुम्हें दुख मिला, दूसरे को दुख न मिले। लोग इतने भिन्न हैं! और यह प्यारा है जगत, क्योंकि लोग इतने भिन्न हैं। एक ही जैसे हों तो जगत में सारा सौंदर्य नष्ट हो जाए। लोग भिन्न-भिन्न हैं, इसलिए बड़ा संपन्न है जगत। नहीं तो बड़ा ऊब पैदा करने वाला हो जाए।

तो मैं सिर्फ कसौटी देता हूं कि जिससे तुम्हें सुख मिले, वही धर्म और जिससे तुम्हें दुख मिले, वही अधर्म। और मैंने यह अनुभव किया है कि जिससे तुम्हें दुख मिलता है, उससे दूसरों को भी दुख मिलता है। और जिससे तुम्हें सुख मिलता है, उससे दूसरों को भी सुख मिलता है। सुखी आदमी सुख देता है। दुखी आदमी दुख देता है। क्योंकि हम वही देते हैं जो हमारे पास है।

प्रार्थना के लिए कोई नियम नहीं है। प्रार्थना सरल सहज भाव-दशा है। तुम सिर्फ शुरू करो। और आज ही परिपूर्णता की अपेक्षा मत रखो। उसके कारण ही बाधा पड़ रही है। आज तो लड़खड़ाओगे, ठीक है। परमात्मा की दिशा में लड़खड़ा कर चलना भी शुभ है और संसार की दिशा में बड़ी व्यवस्था से चलना भी शुभ नहीं है। संसार में जीतना भी अशुभ है और परमात्मा में हारना भी शुभ है।

तीसरा प्रश्नः आप गुणों में साहस को सर्वाधिक महिमा देते हैं। लगता है, धर्म का एकमात्र वाहन साहस है। लेकिन साहस से ही तो डाका, हत्या और युद्ध भी निष्पन्न होते हैं। सिकंदर और नेपोलियन, रॉबिन हुड और मानसिंह, हिटलर और माओ क्या कम साहसी लोग थे? या साहस और साहस में भी फर्क है?

धर्म तो साहस से पैदा होता है, इसलिए निश्चित ही अधर्म भी साहस से ही पैदा होगा। साहस जब ठीक दिशा में गति करता है तो धर्म पैदा होता है। और साहस जब गलत दिशा में गति करता है तो अधर्म पैदा होता है। साहस जब अहंकार से रहित होकर यात्रा करता है तो परमात्मा तक पहुंचा देता है। और साहस जब अहंकार के साथ यात्रा करता है तो नरक तक पहुंचा देता है।

निश्चित ही, बुरा काम करने के लिए भी साहस चाहिए। और इसलिए अक्सर एक अपूर्व घटना घटती है, अचंभे की घटना घटती है कि कभी-कभी पापी और अपराधी क्षण भर में धार्मिक हो जाते हैं। क्योंकि उनके पास एक चीज तो तैयार है--साहस। इसलिए बाल्या भील वाल्मीकि हो गया। इसलिए अंगुलिमाल हत्यारा एकक्षण में ब्राह्मण हो गया। देर न लगी। एक बात तो तैयार थी--साहस तैयार था। अब अंगुलिमाल ने एक हजार लोगों की हत्या करने का निर्णय किया था तो उसने नौ सौ निन्यानबे लोग मार डाले। अकेला आदमी, सारा देश थर-थर कांपता था! जिस पहाड़ पर रहता था, उस पर जाना लोगों ने बंद कर दिया। उसके आस-पास के रास्ते बंद हो गए। लोग दस-पचास मील का चक्कर लगा कर जाते, मगर उस पहाड़ के पास से नहीं गुजरते थे। सम्राट घबड़ाते थे। बिंबिसार के राज्य में था अंगुलिमाल। बिंबिसार उसका नाम सुन कर घबड़ाता था। यह आदमी अपूर्व हत्यारा था और अकारण हत्या कर रहा था! सिर्फ निर्णय लिया था उसने कि एक हजार आदमियों को मार कर उनकी अंगुलियों की माला बनाऊंगा। उसने नौ सौ निन्यानबे आदमियों को मार कर उनकी अंगुलियों की माला पहन रखी थी। नाराज था समाज से और उसका बदला ले रहा था।

उसकी मां कभी-कभी उसके पास जाती थी, लेकिन जब एक ही आदमी मारने को बचा तो उसकी मां ने भी जाना बंद कर दिया। लोगों ने पूछा तो उसकी मां ने कहा कि अब खतरा है; अब वह बिलकुल दीवाना हुआ जा रहा है। वह एक आदमी की तलाश करता है। पिछली बार उसने मुझ से भी कह दिया है कि अब तू सोच-समझ कर आना, क्योंकि अगर कोई मुझे नहीं मिला तो मैं तेरी हत्या कर दूंगा। मगर मुझे एक हजार की संख्या पूरी करनी है।

ऐसा आदमी--और एक क्षण में रूपांतरित हो गया! साहस तो था। साहस अहंकार से जुड़ा था। बुद्ध ने उसे कैसे बदला? बुद्ध ने उसके अहंकार को तोड़ दिया। वह जो घटना घटी बुद्ध के द्वारा बदलने की, वह समझने की है। बुद्ध ने बस इतना ही काम किया कि उसके अहंकार तो तोड़ दिया। साहस को तो बचा लिया। साहस तो चाहिए। क्या किया बुद्ध ने?

जब बुद्ध गए, उस पहाड़ के पास से गुजरे, तो लोगों ने कहा : मत जाओ। यहां अंगुलिमाल है। वह मार डालोगा। वह यह भी फिकर नहीं करेगा कि आप परम ज्ञानी हैं। वह संतों की भी चिंता नहीं करता। उसने कई फकीर पहले मार डाले हैं। यहां से कुछ मुनि निकलते थे, उसने हत्या कर दी। तो वह आपको भी छोड़ेगा नहीं। वह यह नहीं सोचे कि ये गौतम बुद्ध हैं, भगवान हैं। वह कुछ नहीं सोचेगा; वह तो मार ही डालेगा।

बुद्ध ने कहा : अगर मुझे पता न होता तो शायद मैं दूसरे रास्ते से भी चला जाता, लेकिन अब तो कैसे जाऊं! उसको मेरी जरूरत है। और वह आदमी हिम्मतवर है। उसके जीवन में कुछ हो सकता है। उसे मुझसे डरना चाहिए या मैं उससे डरूं?

यह बात बड़ी अपूर्व बुद्ध ने कही कि उसे मुझ से डरना चाहिए या मैं उससे डरूं? वह मुझे मारेगा, मैं भी उसे मार सकता हूं। और मेरा मारना ज्यादा गहरा है। वह मेरे शरीर को काट सकता है; मैं उसके अहंकार को काट सकता हूं। और वह गहरी हत्या है। मैं भी हत्यारा हूं।

बुद्ध कहते हैं : मैं भी मारता हूं।

बुद्ध गए। जो भिक्षु सदा साथ चलते थे, वे धीरे-धीरे पीछे सरक गए। बुद्ध अकेले ही गए। जब पहाड़ के करीब पहुंचे तो बिलकुल अकेले ही थे। लौट कर पीछे देखा : जो सदा होड़ लगाए रखते थे कि साथ रहेंगे, वे कोई भी नहीं थे; वे सब धीरे-धीरे गांव में सरक गए थे। उन्होंने कहा, यह खतरा कौन मोल ले!

जब अंगुलिमाल ने बुद्ध को देखा तो उसे बड़ी दया आई। जीवन में पहली दफा दया आई। दया इसलिए आई कि यह पीत वस्त्रों में आता हुआ संन्यासी इतना शांत था. . .। उसने कुछ मुनि मारे थे, वे मुनि न रहे होंगे।

यह इतना शांत था, इसके आस-पास की हवा ऐसी शांत थी कि उसे डर लगने लगा। उसने दूर से ही चिल्ला कर कहा कि हे भिक्षु, तू लौट जा! देख मैं आदमी खतरनाक हूं। देखता है मेरा फरसा, मैं धार रख रहा हूं। मुझे एक आदमी की जरूरत है, मैं तुझे मार डालूंगा। तू लौट जा। एक कदम आगे मत बढ़।

लेकिन बुद्ध बढ़ते ही रहे। वह फिर चिल्लाया। वह बहुत घबड़ा गया। उसे बड़ा डर लगने लगा। उसे डर यह लगा कि यह आदमी ऐसा है कि कहीं मेरा फरसा काटने में झिझक न जाए। पहली दफा यह आदमी काटने जैसा नहीं लगता। वह चाहता है : यह लौट जाए, झंझट टले; कहीं ऐसा न हो कि मेरा जो हत्यारे का गर्व है, वह खंडित हो जाए! मैंने किसी आदमी की चिंता नहीं की। मैंने आदमी ऐसे काट दिए, जैसे आदमी घास काटता है। मुझे आदमियों में दो कौड़ी का मूल्य नहीं मालूम पड़ता।

सच तो यह है कि उन आदमियों में मूल्य था भी नहीं। घास-पात ही थे, आदमी तो नाममात्र को थे; अभी आदमी का जन्म नहीं हुआ था। यह आदमी आ रहा था, जिसमें आदमी का जन्म हुआ था। इसकी आभा, इसका लावण्य, इसका प्रसाद!

वह डरने लगा। उसकी आंखें आर्द्र होने लगीं। ऐसा आदमी उसने देखा नहीं था। वह जो कहता है कि तू चला जा, लौट जा--वह इसलिए नहीं कह रहा है कि उसे बुद्ध को बचाना है; वह इसलिए कह रहा है कि उसे खुद को बचाना है। इसलिए इस आदमी के सामने कुछ गड़बड़ हो सकती है। इस आदमी से वह कंप रहा है।

दो साहसी आदमी सामने हैं। एक साहसी बुद्ध और एक साहसी अंगुलिमाल। मगर अंगुलिमाल में एक अड़चन है कि वहां अहंकार है; उतनी खोट है। बुद्ध में वह खोट नहीं है। बुद्ध खालिस सोना है; खोट बिलकुल नहीं है। अंगुलिमाल--मोरारजी गोल्ड; उसमें काफी खोट है। चौदह कैरेट। है तो सोना ही, लेकिन कुछ और भी मिला है। वह अहंकार भी मिला है। आदमी तो साहसी है; सम्राटों को कंपा दिया है; सारा जगत कंप रहा है।

लेकिन बुद्ध बढ़े ही जाते हैं। उसने कहा : भिक्षु, तुम सुनते नहीं? बहरे हो? बुद्ध ने कहा : नहीं, सुनता हूं। लेकिन मैं तुझ से एक बात कहना चाहता हूं कि मैंने तो चलना बहुत समय हुआ बंद कर दिया, मैं अब चलता ही नहीं। मैं तो रुका ही हुआ हूं। चल तो तू रहा है।

हंसने लगा अंगुलिमाल। उसने कहा कि तुम पागल भी हो। मैं बैठा हूं, मुझ बैठे को चलता हुआ कहते हो! तुम चल रहे हो और चलते हुए को कहते हो, मैंने चलना छोड़ दिया!

बुद्ध ने कहा : तू समझने की कोशिश कर। जिस दिन से मन नहीं चलता, उस दिन से मेरे चलने न चलने से क्या फर्क पड़ता है! भीतर सब बैठ गया है। भीतर कोई गति नहीं है, कंपन नहीं है, हलन-चलन नहीं है। भीतर की लौ बिलकुल थिर हो गई है। जैसे कोई दीये को जलाए ऐसे भवन में जहां हवा का झोंका न आए, निर्वात भवन में जैसे दीया जलता है, ऐसे मेरे भीतर सब ठहर गया है। यह देह का चलना तो ठीक और हालांकि तू बैठा है, मगर कहां बैठा है, तेरा मन कितना दौड़ रहा है! तू जरा मन की देख।

बात तो अंगुलिमाल को जंची; आदमी पागल नहीं है। बात तो सच ही कहता है। बात तो ठीक ही कहता है।

यह सीधा-सादा हत्यारा था अंगुलिमाल, कपटी नहीं था। कपटी होता तो राजनीतिज्ञ हो गया होता; हत्यारे होने की क्या जरूरत थी; डाकू बनने की क्या जरूरत थी? डाकू बनने के ज्यादा कुशल उपाय है। सीधा-सादा आदमी था। बुद्ध सामने आकर खड़े हो गए। अंगुलिमाल ने कहाः ठीक है। तो मुझे तुम्हारी हत्या करने का पाप भी लेना ही पड़ेगा।

बुद्ध ने कहा : इसके पहले कि तू मुझे मार, मरते हुए आदमी की एक छोटी आकांक्षा पूरा करेगा, अंगुलिमाल?

अंगुलिमाल ने कहा : कोई भी आकांक्षा पूरी कर दूंगा। क्या आकांक्षा है?

बुद्ध ने कहा : यह जो वृक्ष है सामने, इसके कुछ पत्ते तोड़ दे। अंगुलिमाल ने वहीं खड़े-खड़े फरसे से एक पूरी शाख काट दी।

बुद्ध ने कहा : यह आधी इच्छा मेरी पूरी हो गई; आधी और पूरी कर दे, इसे वापस जोड़ दे। फिर तू मुझे मार डाल।

अंगुलिमाल ने कहा कि आप होश में हैं? टूटी हुई डाल को कौन जोड़ सकता है?

तो बुद्ध ने कहा : तोड़ना तो बच्चे भी कर सकते हैं अंगुलिमाल, यह कोई बड़ी भारी साहस की बात है? जोड़ने की बात है असली। तू भी क्या बचकाने काम में लगा है--तोड़ना! तोड़ना! इतनी आदमियों की गरदन तोड़ी, कभी तूने यह सोचा एकाध गरदन जोड़ सकता है? और जब जोड़ न सके तो तोड़ना उचित नहीं है। अगर कुछ सीखनी थी कला, अगर कुछ हिम्मत थी, अगर कुछ करने का ही ख्याल था, तो जोड़ने की कला सीखनी थी। अब तू मुझे मार डाल।

लेकिन अब मारना मुश्किल हो गया। उसका फरसा हाथ से नीचे गिर गया। उसने कहा : मैं पहले ही से डर रहा था। तुम्हें नीचे देखा, तब से ही मैं डर रहा था। ये मेरा फरसा, मेरा हाथ कंपता है। यह फरसा मेरा नीचे गिर गया। तुम ठीक कहते हो। तुमने मेरा अहंकार खंडित कर दिया। यह तो बच्चा भी कर सकता है। इसमें क्या खूबी है! और मैं यही करता रहा, मैंने सारा जीवन तोड़ने में बिता दिया। लेकिन मुझ से किसी ने कहा भी नहीं कि मेरी शक्ति जोड़ने में काम आ सकती है; मेरी शक्ति सृजनात्मक बन सकती है। तुम मुझे सम्हालो।

वह उनके चरणों में गिर पड़ा। जानते हैं, बुद्ध ने जब उसे अपने चरणों से उठाया तो क्या कहा? कहा : ब्राह्मण उठ! शब्द जो उपयोग किया, वह ब्राह्मण। अंगुलिमाल ने कहा : मुझे ब्राह्मण कहते हैं! मुझ हत्यारे को ब्राह्मण कहते हैं!

बुद्ध ने कहा : अब तू हत्यारा नहीं रहा। वह बात गई, वह सपना टूट गया, वह दुख-स्वप्न समाप्त हो गया। तू ब्राह्मण है।

खबर फैल गई सारे देश में कि बुद्ध ने अंगुलिमाल को रूपांतरित कर लिया है, अंगुलिमाल भिक्षु हो गया है। सम्राट बिंबिसार बुद्ध को मिलने आया। उसे भरोसा नहीं आया इस बात पर। वह अपनी आंख से देखना चाहता था। अंगुलिमाल रूपांतरित हो जाएगा, यह आखिरी संभावना है। यह बात झूठ है। शायद भिक्षुओं ने प्रचार के लिए उड़ा रखी है कि हमारे भगवान ने अंगुलिमाल को रूपांतरित कर लिया। तो बिंबिसार मिलने आया है। बुद्ध के सामने बैठ कर उसने कहा कि मैंने सुना है भंते कि अंगुलिमाल हत्यारा, वह जघन्य हत्यारा, वह महापापी आपका भिक्षु हो गया है। इस पर मुझे भरोसा नहीं आता। मैं आपसे ही पूछने आया हूं; आपके मुंह से ही सुनना चाहता हूं। दूसरे की बात पर मुझे भरोसा नहीं आता। यह हो नहीं सकता। यह चमत्कार है।

बुद्ध ने कहा : मुझ से क्या पूछते हैं, यह पास में अंगुलिमाल बैठा है। वह बुद्ध के पास ही बैठा था--पीत वस्त्र पहने। यह सुन कर कि अंगुलिमाल बुद्ध के पास बैठा है, बिंबिसार ने तो अपनी तलवार निकाल ली थी। वह तो घबड़ा गया। उसने कहा कि यह आदमी यहीं बैठा है, झपट पड़े कुछ. . . यह कोई ढंग का आदमी है! नौ सौ निन्यानबे आदमी सिर्फ इसलिए मारे कि उनकी अंगुली की माला बनानी है।

लेकिन बुद्ध ने कहा : तलवार तुम अपनी म्यान में रखो, बिंबिसार। वह अंगुलिमाल अब नहीं है, जिससे तुम डर रहे हो। यह ब्राह्मण अंगुलिमाल है। इसने कभी किसी को नहीं मारा। वह तो गया। वह दुख-स्वप्न गया। यह बड़ा निष्कलुष व्यक्ति है। इस जैसे पवित्र व्यक्ति बहुत कम हैं।

यह जो अंगुलिमाल में रूपांतरण हो गया, यह कैसे हो गया? साहस तो था। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं : इस जगत के जो महानतम अपराधी हैं, उनके भीतर महानतम संत होने की संभावना है। जो बड़े से बड़ा पापी है, उसके बड़े से बड़े संत होने की संभावना है। असली कठिनाई तो उनकी है, जिनमें साहस नहीं है। किसी तरह का साहस नहीं है। जिनको तुम सज्जन कहते हो, वे अक्सर नपुंसक लोग हैं, जिनमें साहस नहीं है। जिनको तुम कहते हो यह आदमी बड़ा भला है, चोरी नहीं करता है--मगर इसकी चोरी न करने का कारण यह नहीं है कि

इसके जीवन में अचौर्य फला है। इसकी चोरी न करने का कुल कारण इतना है कि यह पुलिस से डरता है, कि अदालत से डरता है, कि फंस न जाए। अगर इसको पक्का भरोसा दिला दो कि नहीं फंसेगा, तो यह चोरी करेगा। इसे चोरी में जरा भी एतराज नहीं है; इसे फंसने का डर है। यह भय के कारण चोरी नहीं कर रहा है। या हो सकता है, नरक का भय हो; या भगवान नाराज न हो जाए! मगर भय ही इसके आधार में है। भय के कारण जो सज्जन है, उसकी सज्जनता बहुत गहरी नहीं है--ऊपर ऊपर है; छिलके की तरह है; उसके हार्द में, उसकी आत्मा में नहीं है।

इसलिए तथाकथित सज्जन, जिनको रिस्पेक्टेबल, सम्मानित जन कहा जाता है--गांव के पंच, मुखिया, मेयर इत्यादि, जिनको सम्मानित लोग कहा जाता है--पद्मभूषण, भारत-रत्न इत्यादि; जिनको सम्मानित कहा जाता है, क्योंकि इनके जीवन में कुछ बुराई नहीं दिखाई पड़ती--इनके जीवन में इतनी आसानी से क्रांति नहीं होती। इनके जीवन में क्रांति करने वाला मौलिक तत्त्व नहीं है। इनके पास अहंकार तो खूब है और साहस बिलकुल नहीं।

इस कीमिया को समझ लो। साहस हो, अहंकार हो--तो अहंकार तोड़ा जा सकता है बहुत आसानी से। जितना साहस हो, उतनी ही आसानी से तोड़ा जा सकता है। वही साहस अहंकार के विपरीत लड़ाया जा सकता है और अहंकार टूट जाएगा। लेकिन जिनके जीवन में अहंकार तो खूब हो और साहस बिलकुल न हो, उनको बदलना बहुत कठिन है। क्योंकि उनके पास साहस न होने से अहंकार को तोड़ने के उपाय नहीं हैं, व्यवस्था नहीं है; अहंकार की अग्नि नहीं है; साहस की अग्नि नहीं है कि अहंकार को जला दे। राख है साहस के नाम पर।

इसलिए मैं तुमसे यह बात कहना चाहूंगा : साहस बहुत निर्णायक है। अगर तुम बुरे आदमी हो और साहस है, तो संभावना है। तुम भले आदमी हो और साहस है, तो भी संभावना है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि सभी भले आदमियों में साहस नहीं होता। असल में भलाई करने के लिए भी साहस होता है; साहस की जरूरत होती है। जो आदमी झूठ नहीं बोलता, चाहे कुछ भी दांव पर लग जाए, उसके लिए भी साहस चाहिए। आदमी झूठ साहस की कमी से ही बोलता है। सोचता है फंस जाऊंगा, तो झूठ बोल दूं। साहसी आदमी झूठ नहीं बोलता।

फर्क समझ लेना। एक तो सज्जन है, जो भय के कारण सज्जन है। और एक संत है, जो साहस के कारण संत है। वह कहता है : चाहे नरक जाना पड़े, लेकिन झूठ नहीं बोलूंगा, चाहे कुछ भी परिणाम हो जाए झूठ नहीं बोलूंगा, चोरी नहीं करूंगा। भय के कारण नहीं कर रहा है। अगर उलटी भी हालत आ जाए. . . समझ लो कि परमात्मा का दिमाग खराब हो जाए और वह नियम बदल दे. . . वह तो कहते हैं न कि सर्वशक्तिमान है, नियम बदल दे--कि अब जो-जो चोरी करेंगे वे स्वर्ग जाएंगे और जो-जो अचौर्य-व्रत का पालन करेंगे, वे-वे नरक जाएंगे--तो यह जो सज्जन हैं, यह चोरी करेगा। इसे स्वर्ग जाना है, नरक से बचना है। और वह जो संत है, वह चोरी नहीं करेगा और नरक जाने की तत्परता रखेगा। वह कहेगा कि ठीक है। नरक और स्वर्ग का कोई मूल्य नहीं है। परिणाम का कोई मूल्य नहीं है। परिणाम भयभीत आदमी के लिए मूल्यवान मालूम होता है। साहसी व्यक्ति को कृत्य का मूल्य है, फल का नहीं।

इसलिए कृष्ण ने अर्जुन को कहा है : सारी फलाकांक्षा छोड़ कर... क्योंकि फल की आकांक्षा ही भयभीत आदमी को होती है। साहसी व्यक्ति तो कृत्य करता है जो कृत्य सामने आ जाए, उसे समग्रता से कर लेता है। फिर परिणाम जो हो। उसे अच्छा अच्छा लगता है तो अच्छा करता है। और उसे बुरा अच्छा लगता है तो बुरा करता है--परिणाम कुछ भी हो।

तो जिसको हम पापी कहते हैं, वह भी परिणाम की फिकर नहीं करता है; और जिसको हम संत कहते हैं, वह भी परिणाम की फिकर नहीं करता। दोनों साहसी होते हैं; फर्क थोड़ा सा है। पापी का अहंकार खोट की तरह मौजूद है। संत की खोट भी चली गई है; संत खालिस सोना है। लेकिन पापी भी सोना है, मौका आ जाए तो रूपांतरण हो सकता है।

लेकिन वे जो बीच में खड़े हैं, जिनमें साहस है ही नहीं, जिनमें रीढ़ है ही नहीं; जो बिलकुल ही निष्प्राण जी रहे हैं; जो सिर्फ डरे-डरे जी रहे हैं; बस हवा में कंपते हुए पत्ते की तरह चौबीस घंटे कंप रहे हैं--यह न हो जाए, यह न हो जाए, हर चीज से भयभीत हैं; जिनका जीवन भय की एक लंबी कथा है; बुराई नहीं करते तो, भय के कारण; और अगर भलाई करते हैं, तो भी भय के कारण; जिनका सारा आधारभूत जीवन भय है--ऐसे व्यक्ति के जीवन में धर्म की क्रांति नहीं हो पाती।

ऐसा ही समझो, वीणा है : अगर बजाना आ जाए तो परम संगीत पैदा होता है; बजाना न आए तो बड़े बेसुरे राग वीणा से निकलते हैं। साहस को ठीक से जीना आ जाए तो संत पैदा होता है। साहस को ठीक से जीना न आए, तो पापी पैदा हो जाता है। मगर वीणा वही है।

जिसको कहते हैं नालाए बरहम साज में वह सदा भी होती है।

जिसको क्रुद्ध आर्तनाद कहते हैं. . .

जिसको कहते हैं नालाए बरहम साज में वह सदा भी होती है।

वह भी छिपी है वीणा में।

साहस में अधर्म भी छिपा है, धर्म भी छिपा है; दोनों छिपे हैं। दोनों पहलू हैं दो। यह तुम पर निर्भर होगा कि साहस का तुम कैसे उपयोग कर पाओगे।

सिकंदर में साहस है निश्चित, लेकिन उतना नहीं जितना डायोजनीज में है। सिकंदर में साहस है निश्चित; सारी दुनिया को जीतने चला है। डायोजनीज में भी साहस है। दोनों समसामयिक थे। इसलिए दोनों का उल्लेख कर लेना ठीक होगा। दोनों साहसी हैं। सिकंदर का साहस है : दूसरों को जीतने चला है। डायोजनीज का साहस है : अपने को जीतने चला है। सब छोड़ दिया डायोजनीज ने, क्योंकि उसे लगा कि जितना सामान हो, उतना बंधन होता है; जितना सामान हो उतनी चिंता होती है। जितना सामान हो, उतनी ही फिकर रखनी पड़ती है : चोरी न चला जाए; कहीं कोई छीन न ले; कहीं खो न जाए।

तो उसने सब छोड़ दिया, वस्त्र भी छोड़ दिए, नग्न हो गया; सिर्फ एक पात्र रखता था हाथ में--वह भी पानी पीने के लिए। एक दिन प्यासा नदी की तरफ जा रहा था--पानी भरने पात्र में। उसके साथ ही साथ भागता हुआ एक कुत्ता गया; उससे पहले नदी में पहुंच कर उसने जल्दी से पानी पी लिया। उसे बड़ी हैरानी हुई। उसने कुत्ते को नमस्कार किया। उसने कहा : तूने खूब पाठ दिया! बिना ही पात्र के! पात्र भी नहीं तेरे पास! तू हमसे भी आगे गया! उसने पात्र को वहीं नदी में बहा दिया। उसने कहा : जब कुत्ता बिना पात्र के जी लेता है तो मैं तो आदमी हूं, मैं बिना ही पात्र के... अब यह एक पात्र भी क्यों लिए फिरता हूं? इसकी भी फिकर लगी रहती है; रात सो जाओ तो ख्याल रखना पड़ता है, एक-दो दफा टटोल कर देखना पड़ता है कि कोई ले तो नहीं गया।

भिखमंगा आदमी है डायोजनीज, नग्न रहता है; कुछ और तो पास नहीं है। पात्र भी बहा दिया। एक तरफ सिकंदर है; सारी दुनिया को जीतने चला है। एक तरफ डायोजनीज है; पात्र था, वह भी बहा दिया, सब खो दिया। दोनों के लिए साहस चाहिए।

और तुम चकित होओगे जान कर कि सिकंदर तक भी खबरें पहुंचने लगी थीं डायोजनीज की। जब सिकंदर भारत आता था तो डायोजनीज को मिलने गया। चमत्कृत था। सिकंदर को भी लगता था कि आदमी तो गजब का है। होना तो मुझे भी ऐसा चाहिए कि क्या रखा है दुनिया में, जीत कर भी करूंगा क्या? जीत-जीत कर भी मिलेगा क्या? इतना तो जीत लिया, इससे कुछ मिला नहीं; पूरी दुनिया भी जीत लूंगा तो क्या मिलेगा? आदमी अगर हो तो डायोजनीज जैसा हो।

ऐसे मन में उसके भी भाव तो उठते ही रहे होंगे। तभी तो मिलने गया; नहीं तो मिलने भी क्यों जाता? जब मिलने गया, डायोजनीज नदी के तट पर लेटा था। सुबह की सूरज की किरणों में, सूर्य-स्नान ले रहा था--नग्न। सिकंदर ने देखी उसकी मस्ती। बहुत लोग देखे थे। सिकंदर के पास सुंदरतम लोग थे, शूरवीर थे, सेनापति थे, सैनिक थे; मगर ऐसी देह और ऐसी मस्ती, ऐसी कंचन जैसी काया--उसने नहीं देखी थी! जैसे कभी किसी

हरिण के पास होती है, ऐसी काया थी! नग्न! और डायोजनीज लेटा था मस्त जैसे दुनिया में कोई फिकर ही नहीं; जैसे दुनिया में कोई चिंता होती नहीं! चेहरे पर एक शिकन नहीं।

सिकंदर थोड़ी देर खड़ा रहा और उसने कहा कि मेरे मन में तुमसे ईर्ष्या होती है। मेरे मन में तुम ईर्ष्या जगाते हो। इतनी शांति, इतने प्रसन्न, इतने आनंदित--और पास तुम्हारे कुछ भी नहीं! और मेरे पास सब है और मैं बड़ा अशांत हूं। अगर दुबारा मुझे जगत में आने का मौका मिला तो भगवान से मैं कहूंगा, मुझे डायोजनीज बनाओ, सिकंदर नहीं।

एक साहसी आदमी दूसरे आदमी के महासाहस को देख रहा है, समझ रहा है। डायोजनीज हंसने लगा। उसने कहा कि दुबारा जन्म होगा कि नहीं होगा, भगवान है या नहीं--किसको पता! फिर तुम्हें याद रह जाएगी कहने की वहां तक, भूल तो न जाओगे? अच्छा तो यह हो कि इसी जिंदगी में क्यों डायोजनीज नहीं हो जाते? अभी क्यों नहीं हो जाते? कौन तुम्हें रोकता है। देखते हो, यह नदी किनारा खाली पड़ा है, यहां काफी जगह है, मैं कुछ सारी जगह रोके नहीं हूं; बस यह छः फुट जमीन मैं रोके हुए हूं, पूरा घाट पड़ा है--तुम भी लेट जाओ, फेंक दो कपड़े, जैसे मैं मस्त हूं, तुम भी हो जाओ। अभी क्यों नहीं हो जाते? आगे सोचते हो कि दुबारा जब जन्म मिलेगा. . .। कौन जाने दुबारा होता जन्म कि नहीं! फिर, परमात्मा है या नहीं? फिर, तुम जब दुबारा जन्म लेने जाओगे तो याद रहेगी? यह बात याद रह जाएगी? इस झंझट में न पड़ो। यह घाट काफी बड़ा है--हम दो के लिए पर्याप्त है; और भी दो हजार आ जाएं, उसके लिए भी पर्याप्त है। तुम अभी ही क्यों नहीं हो जाते?

यह एक दूसरे किस्म के साहस ने चुनौती दी। डायोजनीज ने चुनौती दी। सिकंदर थोड़ा शरमाया होगा, झेंपा होगा। उसने कहा कि कहते तो ठीक हो। तुम्हारे तर्क का जवाब तो नहीं। मगर अभी यह न कर सकूंगा। अभी तो दुनिया जीतने निकला हूं और आधा ही काम हुआ है। जब तक यह काम पूरा न हो जाए।

डायोजनीज फिर हंसा। उसने कहा : यह काम कभी पूरा नहीं होगा, क्योंकि दुनिया में कभी कोई काम पूरा नहीं होता है। यह अधूरा रहेगा और तुम मरोगे। और याद रखना मरते वक्त मेरी बात।

यहां कोई काम कभी पूरा होता है? और यही हुआ। जब सिकंदर मरा तो पूरी दुनिया नहीं जीत पाया था। और मरते वक्त उसके मन में अगर कोई याद थी तो वह जीते हुए साम्राज्यों की नहीं, स्वर्ण-महलों की नहीं, राज्य-सिंहासनों की नहीं, पत्नी-बच्चों की नहीं, मित्र-शत्रुओं की नहीं--डायोजनीज की याद थी। वह नंगा फकीर ठीक ही कहता था कि यहां सब अधूरा रह जाता था। जितना बड़ा काम हो उतना ही अधूरा रह जाता है।

सिकंदर ने कहा कि धन्यवाद तुमने जो कहा उस बात का मैं जवाब नहीं दे सकता। और यह भी बात ठीक ही मालूम पड़ती है कि काम पूरे नहीं होते; लेकिन अभी तो चल पड़ा हूं, तो अभी तो न आ सकूंगा। इतना अगर तुम्हारे लिए कुछ कर सकूं तो मुझे कहो। मैं जरूर खुशी से करना चाहूंगा। कुछ करना चाहता हूं तुम्हारे लिए। मैं तुमसे प्रभावित हूं। मुझे अपना भक्त गिनो।

डायोजनीज ने कहाः तो इतना ही करो कि जरा धूप छोड़ कर खड़े हो जाओ; क्योंकि तुम जब से आए हो मेरे शरीर पर छाया पड़ रही है। नाहक तुमने मेरी धूप छीन ली। और तो क्या कर सकते हो? और तो सब है। और तो कोई अड़चन नहीं; सब पूरा है।

एक साहस है--डायोजनीज जैसा, महावीर जैसा। एक साहस है सिकंदर जैसा, हिटलर जैसा। लेकिन सिकंदर डायोजनीज बन सकता है। आकांक्षा तो है उसके भीतर; वह कहता है अगले जन्म में। अभी हिम्मत नहीं है, लेकिन अगले जन्म में। प्रभावित तो है।

पापी संत बन सकता है। लेकिन सज्जन; सज्जन तो पापी भी नहीं बन सकते, संत बनने की तो बड़ी दूर की बात है। सज्जन होने से सावधान रहना। बनना हो तो संत। सज्जन मत बन जाना। सज्जन यानी झूठा सिक्का। दिखते सज्जन और भीतर बड़ा दुर्जन भरा हुआ है। ऊपर-ऊपर सुंदर, भीतर-भीतर बहुत कुरूप। दो ढंग का जीवन। दोहरी भाषा। पाखंड।

साहस एकमात्र मूल्य है और साहस एकमात्र ऊर्जा हैः अहंकार-शून्य हो जाए तो परमात्मा से मिला देती है; अहंकार-पूर्ण हो जाए तो अतल गर्त में गिरा देती है।

आज इतना ही।

तेरहवां प्रवचन

आत्मदेव की पूजा

जैसे नद्दी एक है, बहुतेरे हैं घाट।।
बहुतेरे हैं घाट, भेद भक्तन में नाना।
जो जेहि संगत परा, ताहि के हाथ बिकाना।।
चाहे जैसी करै भक्ति, सब नामहिं केरी।
जाकी जैसी बूझ, मारग सो तैसी हेरी।।
फेर खाय इक गये, एक ठौ गये सिताबी।
आखिर पहुंचे राह, दिना दस भई खराबी।।
पलटू एकै टेक ना, जेतिक भेस तै बाट।
जैसे नद्दी एक है, बहुतेरे हैं घाट।। 19।।

लेहु परोसिनि झोंपड़ा, नित उठि बाढ़त रार।।
नित उठि बाढ़त रार, काहिको सरबरि कीजै।
तजिये ऐसा संग, देस चलि दूसर लीजै।।
जीवन है दिन चारि, काहे को कीजै रोसा।
तजिये सब जंजाल, नाम कै करौ भरोसा।।
भीख मांग बरु खाय, खटपटी नीक न लागै।
भरी गौन गुड़ तजै, तहां से सांझै भागै।।
पलटू ऐसन बुझि के, डारि दिहा सिर भार।
लेहु परोसिनि झोंपड़ा, नित उठ बाढ़त रार।। 20।।

जल पषान को छोड़िकै, पूजौ आतमदेव।।
पूजौ आतमदेव, खाय औ बोलै भाई।
छाती दैकै पांव पथर की मुरत बनाई।।
ताहि धोय अन्हवाय विजन लै भोग लगाई।
साक्षात भगवान द्वार से भूखा जाई।।
काह लिये बैराग, झूठ कै बांधै बाना।
भाव-भक्ति को मरम कोइ है बिरलै जाना।।
पलटू दोउ कर जोरिकै गुरु संतन को सेव।
जल पषान को छोड़िकै पूजौ आतमदेव।। 21।।

वेद कहते हैंः सत्य एक है; लेकिन उसकी अभिव्यक्तियां अनेक। प्रभु तो एक है; लेकिन उसे प्रकट करने के लिए बनाई गई मूर्तियां अनेक।

इस वक्तव्य में बहुत अर्थ है। सत्य एक है; सिद्धांत अनेक। सत्य एक है; शास्त्र अनेक। सत्य एक है; संप्रदाय अनेक। ऐसा क्यों? ऐसा कैसे हो जाता है?

जिन्होंने जाना, उन्होंने एक को ही जाना है। लेकिन जब कहा, तो भेद हो गए। क्योंकि जानते समय तो मन शून्य हो जाता है; कहते समय मन को फिर वापस लाना होता है। जब जाना जाता है तब तो मन में कोई तरंग नहीं होती। इसलिए भेद का कोई उपाय नहीं होता। मन में तरंग ही नहीं होती। मन शून्य और शांत होता है। मन होता ही नहीं।

जाना तो जाता है समाधि में; लेकिन जैसे ही बोले, कहने गए, बताने गए, मन को वापस लाना होता है। विचार-तरंगें फिर लौटती हैं। मन में उठती तरंगों के कारण वक्तव्य भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। फिर, हर व्यक्ति के मन में अलग-अलग ढंग की तरंगें उठती हैं।

हमारी आत्मा तो एक है, लेकिन हमारे मन एक नहीं हैं। जैसे हमारी आत्मा तो एक है, हमारी देह एक नहीं है। मेरे पास एक देह है, तुम्हारे पास एक देह है, किसी के पास और ढंग की देह है। इन देहों के कारण भेद पड़ेगा। इन मनों के कारण भेद पड़ेगा। जब मीरा देखेगी प्रभु को तो फर्क पड़ जाएगा; जब बुद्ध देखेंगे तो फर्क पड़ जाएगा। बुद्ध का एक व्यक्तित्व है; उस व्यक्तित्व में जैसे ही सत्य प्रवेश होगा, उस व्यक्तित्व का ढांचा ले लेगा, उस व्यक्तित्व का रूप-रंग ले लेगा। जैसे पानी को ढालो मटकी में तो मटकी का रूप ले लेता है; थाली में ढालो तो थाली का रूप ले लेता है; गिलास में भरो तो गिलास का रूप ले लेता है; फर्श पर बिखेर दो तो फर्श का रूप ले लेता है।

सत्य ऐसा ही है--अत्यंत तरल। उसका अपना कोई आकार, अपना कोई रूप, अपना कोई वर्ण नहीं है। तो जिस पात्र में गिरता है, उसी रूप-रंग का हो जाता है। गिरने के एक क्षण पहले तक एक ही होता है; गिरते ही भिन्न हो जाता है। आकाश से जल बरसता है--नदी में बरसता है तो नदी बन जाता है, बहने लगता है; और तलैया में गिरता है तो तलैया बन जाता है, रुक जाता है; सागर में गिरता है तो सागर हो जाता है--जहां गिरता है वैसा हो जाता है। गंदी कीचड़ में गिरता है तो गंदा हो जाता है। शुद्ध पात्र में गिरता है तो शुद्ध हो जाता है।

सत्य तो एक है, लेकिन फिर पात्रों के अनुसार भेद पड़ेंगे। इसलिए वेद ठीक कहते हैं कि जिन्होंने जाना उन्होंने तो एक को ही जाना; लेकिन जैसे ही जाना, जैसे ही यह बात यह प्रत्यभिज्ञा हुई कि मैंने जाना, जैसे ही मैं आया वैसे ही भेद हो गया। और फिर जब कहा तो और भी भेद हो गए।

हम सभी सुबह उठ कर सागर के तट पर जाएं, सूरज को उगते देखें, सागर के सौंदर्य को देखें, फिर लौट कर घर आएं और हम सभी को कहा जाए कि वक्तव्य दो जो देखा--तो हमारे वक्तव्य बड़े भिन्न हो जाएंगे। कोई चित्रकार होगा तो शायद चित्र बना कर बताएगा कि यह देखा; रंग फैला देगा कैनवस पर। कोई कवि होगा तो एक गीत गुनगुनाएगा; कहेगा, यह देखा। फर्क पड़ेगा। कोई नर्तक होगा तो नाच कर कहेगा कि इस तरह तरंगों में रोष था, कि इस तरह तांडव नृत्य था सागर में। नाच कर बताएगा। और इन्होंने एक ही सुबह और एक ही सागर की तरंगें देखी हैं। लेकिन इन सब की अभिव्यक्तियां भिन्न हो जाएंगी।

अभिव्यक्तियां व्यक्तियों पर निर्भर होती हैं। सत्य तो अव्यक्ति है। सत्य तो विराट है। लेकिन जब व्यक्ति के छोटे से मन में उतरती है छाया, प्रतिबिंब बनता है, तो भिन्न हो जाता है। फिर जब कहने चलते हैं तो और भिन्न हो जाता है। और जो कहा गया है, उस पर संप्रदाय बन गए हैं। इसलिए संप्रदाय बहुत हैं। कोई तीन सौ धर्म हैं दुनिया में। इनको धर्म नहीं कहना चाहिए; ये संप्रदाय हैं। ये सत्य की अभिव्यक्तियों पर निर्भर धारणाएं हैं।

धर्म तो एक है। उसका कोई नाम नहीं हो सकता। उसका कोई विशेषण नहीं हो सकता। धर्म को हिंदू नहीं कह सकते, न मुसलमान कह सकते, न ईसाई कह सकते, न जैन कह सकते हैं। धर्म पर कैसे विशेषण लगाओगे? धर्म तो विशेषण-शून्य है। लेकिन संप्रदाय पर विशेषण है। हिंदुओं की अभिव्यक्ति है। उन्होंने अपने मंदिर में मूर्तियां रखीं; वह भी एक अभिव्यक्ति है। जिन्होंने परमात्मा को जाना और प्रकट करने चले, उन्होंने मूर्तियां

बनाईं। उन्होंने मूर्तियों में सब तरह से कोशिश की, कि कुछ परमात्मा का समा जाए। और हिंदुओं ने बड़ी प्यारी मूर्तियां बनाईं। कृष्ण की मूर्ति--बांसुरी को बजाते हुए, मोरमुकुट बांधे हुए, सुंदर पीत वस्त्रों में--कुछ कहा! कहने का मतलब ऐसा नहीं कि परमात्मा ऐसा है। ये तो प्रतीक हैं। इन प्रतीकों से जकड़ मत जाना। कहा कि परमात्मा के ओंठों पर बांसुरी है। कहा कि परमात्मा का व्यक्तित्व संगीत से बना है। किस बात को कहने के लिए बांसुरी रखी कृष्ण के हाथों में। बांसुरी को मत पकड़ लेना। प्रतीक को पकड़ कर जड़ मत हो जाना। इशारा समझो। यह कहा कि परमात्मा परम संगीत से भरा है; कि परमात्मा नाद है--अनाहत नाद है। कि वहां सतत बांसुरी बज रही है। अनहद बाजे बांसुरी! रुकती ही नहीं; बजती ही चलती चली जाती है।

इस अस्तित्व का संगठन संगीत से हुआ है; ध्वनि से हुआ है; ओंकार से हुआ है। इस बात को कहने के लिए बांसुरी।

फिर, कृष्ण को बांधे मोरमुकुट. . . तो यह कहा कि यह जगत जो है, सब परमात्मा के मोरमुकुट है। यहां मोर भी नाचता है तो परमात्मा ही नाच रहा है। और यहां कोयल कुहुकती है तो भी परमात्मा ही कुहुक रहा है। ये सारे रंग उसी के हैं। यह सारा सौंदर्य उसी का है।

इसलिए संसार का निषेध मत करना। संसार के निषेध में उसी का निषेध हो जाएगा। संसार को छोड़ कर मत भागना; क्योंकि जिसे तुम छोड़ कर भाग रहे हो, उसमें परमात्मा छिपा था। संसार में गहरे झांकना, आंख गहराना--तो तुम वहीं परमात्मा को पाओगे।

सुंदर पीत वस्त्र पहनाए हैं कृष्ण को। पैरों में पायल है। आभूषण से उनको सुंदर बनाया है। वक्तव्य हैं ये--और गहरे वक्तव्य हैं। परमात्मा सुंदर है! सत्य और सौंदर्य भिन्न नहीं हैं।

रवींद्रनाथ कहते थे : सौंदर्य ही सत्य है। यह काव्य की अभिव्यक्ति है।

फिर, मुसलमानों ने अपनी मस्जिद में मूर्ति नहीं रखी। यह भी अभिव्यक्ति है। मुसलमानों ने कहा : उसे किसी भी रूप में रखेंगे तो संकोच हो जाएगा। वह विराट है। कितनी ही सुंदर मूर्ति बनाओ, वह सीमित हो जाएगी। वह असीम है। उसे बांधने के सब उपाय गलत हैं, वह बंधता नहीं वह परिभाषा में अंटता नहीं। इसलिए कोई मूर्ति मत बनाओ। अमूर्त को अमूर्त ही रहने दो।

तो मुसलमान जब जाता है मस्जिद में, तो झुकता है। किसके सामने? अमूर्त के सामने। जिसका कोई रूप नहीं, कोई रंग नहीं, वर्ण नहीं--अनिर्वचनीय के सामने। यह भी एक अभिव्यक्ति है और यह भी सही है। जरा भी गलती नहीं है।

गलती तो वहां शुरू होती है जहां हिंदू कहता है कि मंदिर में मूर्ति है तो मस्जिद में भी होनी चाहिए; तो ही मस्जिद मंदिर है। गलती तो वहां होती है जहां मुसलमान कहता है मस्जिद में मूर्ति नहीं है तो मंदिर में भी नहीं होनी चाहिए; तभी यह असली मंदिर होगा। जब मुसलमान मूर्ति तोड़ने लग जाता है या हिंदू मस्जिद में मूर्ति रखने लग जाता है--तब भूल हो जाती है। तब तुम प्रतीकों को जरूरत से ज्यादा पकड़ लिए। दोनों प्रतीक प्यारे थे। अलग-अलग ढंग के लोगों के थे।

सबको स्वतंत्रता है। सबको अपने ढंग से परमात्मा को पूजने की स्वतंत्रता है। सबको परमात्मा को अपने ढंग से, अपने हृदय के अनुकूल बना लेने की स्वतंत्रता है। सबको परमात्मा को अपनी भाषा में पुकारने की स्वतंत्रता है। सौंदर्य की भाषा भी उसे पुकारती है; निराकार की भाषा भी उसे पुकारती है। जो सौंदर्य का प्रेमी है वह उसे आकार में रखेगा; क्योंकि आकार के बिना सौंदर्य नहीं बनता। रूप चाहिए, रंग चाहिए, तो ही सौंदर्य को पकड़ा जा सकता है। निराकार में न तो सौंदर्य रह जाता है, न तो कुरूपता रह जाती है। निराकार सूना-सूना लगता है। मस्जिद सूनी-सूनी लगती है; मंदिर भरा-भरा। लेकिन सूनेपन का भी सौंदर्य है। होना तो शून्य ही है। तो कहीं ऐसा न हो कि मंदिर में तुमने जो मूर्तियां रख ली हैं, वैसे ही मूर्तियां तुम्हारे भीतर भी भर जाएं! तुम्हारे मन-मंदिर में भी मूर्तियों का वास हो जाए, तो तुम शून्य कब होओगे? तब तुम निराकार के साथ दोस्ती कब करोगे? निराकार से कब बंधोगे?

मगर दोनों ढंग सही हैं।

फिर, जैन हैं, बौद्ध हैं; उनके पास परमात्मा की कोई धारणा ही नहीं है। वे मुसलमानों से भी आगे गए हैं। मुसलमान कहते हैं : परमात्मा निराकार है। लेकिन जब तुम कहते हो निराकार है, जैसे ही तुमने कहा "है", सीमा हो गई। है कहते ही सीमा हो जाती है। है ही सीमा लाता है। इसलिए जैन और बौद्ध तो परमात्मा है, ऐसा भी नहीं कहते; वे बात ही नहीं उठाते। वे कहते हैं, है कहा कि सीमा हो जाएगी। चुप ही रह जाते हैं। यह और भी निराकार की अभिव्यक्ति है। बोलना ही नहीं।

बुद्ध ने परमात्मा के संबंध में कोई वक्तव्य न दिया, क्योंकि जो भी वक्तव्य होगा... अगर यह भी कहो कि उसके संबंध में कोई वक्तव्य नहीं हो सकता, तो भी कुछ वक्तव्य तो हो ही गया न! इतना तो कह ही दिया! कोई कहे कि ईश्वर के संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता, तो भी उसने अपने वक्तव्य का खंडन कर दिया, क्योंकि इतना तो कह दिया! यह ईश्वर के संबंध में ही कहा न कि कुछ भी नहीं कहा जा सकता! अगर यह बात सच ही है कि ईश्वर के संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता, तो चुप ही रह जाना था। फिर ईश्वर है, ऐसा भी नहीं कहना था। इतना कहना भी, सीमा आ जाती है, आकार आ जाता है।

तो बौद्धों और जैनों के पास परमात्मा की कोई धारणा ही नहीं है, क्योंकि धारणा मात्र सीमित है। यह भी एक रंग है। यह भी एक ढंग है। यह भी विराट की तरफ चलने का एक उपाय है। ऐसे अलग-अलग अभिव्यक्तियां हैं।

सभी अभिव्यक्तियां अपने तईं सुंदर हैं; उनमें कोई विरोध नहीं है! कोई अभिव्यक्ति एक-दूसरे के विरोध में नहीं है।

सत्य एक है और संप्रदाय अनेक हैं। सच तो यह है कि उतने ही संप्रदाय हैं दुनिया में जितने यहां लोग हैं। दो हिंदू भी कहां बिलकुल एक जैसे होते हैं! दो हिंदुओं में भी तो बड़े भेद हैं। कोई काली का भक्त है, कोई राम का भक्त है। फिर दो राम के भक्त भी कहां एक जैसे होते हैं! दो राम के भक्तों में भी फर्क है। अगर तुम गौर से खोज-बीन करोगे तो तुम पाओगेः हर आदमी का अपना संप्रदाय है। हर आदमी का परमात्मा को देखने का अपना ढंग है। होगा ही। अपनी आंख है। मैं अपनी आंख से देखूंगा, तुम अपनी आंख से देखोगे। न मैं तुम्हें अपनी आंख उधार दे सकता, न तुम्हारी आंख मैं उधार ले सकता। जो परमात्मा मेरी आंख में बनेगा, वह मेरी आंख के कारण बनेगा। तुम्हारा परमात्मा तुम्हारी आंख में बनेगा, तुम्हारी आंख के कारण बनेगा।

तो संप्रदाय तो उतने ही हैं जितनी चेतनाएं हैं। यह बात समझ में आ जाए तो समभाव पैदा होता है। तो फिर धर्मों की जो क्षुद्र विवाद की मनोदशा है, विलीन हो जाती है। फिर धर्मों के जो छोटे-छोटे संघर्ष हैं, कड़वी एक-दूसरे के प्रति भावदशाएं, वृत्तियां हैं, वे समाप्त हो जाती हैं। और जब तक ऐसा न हो जाए, तब तक तुम धार्मिक व्यक्ति नहीं हो। अगर धार्मिक व्यक्ति को मस्जिद और मंदिर और गुरुद्वारे में एक ही दिखाई न पड़ने लगे, तो अभी समझना कि वह धार्मिक व्यक्ति नहीं है। अभी धर्म के नाम पर संप्रदाय से बंधा है और संप्रदाय के नाम पर किसी गहरी राजनीति में उलझा होगा। ये राजनीतियों के नाम हैं। हिंदू, मुसलमान, ईसाई--ये राजनीतियों के नाम हैं। ये बड़ी धोखे-धड़ी से भरी राजनीतियां हैं। इनके पीछे बड़ा जाल है। इनके पीछे वास्तविक मर्म नहीं है--भक्ति का, भाव का, प्रेम का, ध्यान का।

आज के सूत्र महत्वपूर्ण हैं।

कहते हैं पलटूः

"जैसे नद्दी एक है, बहुतेरे हैं घाट।"

नदी तो एक, लेकिन घाट तो बहुतेरे बन जाते हैं नदी पर। जिन-जिन गांवों के पास से गुजरेगी नदी, वहां-वहां घाट बनेंगे। फिर बड़े नगरों के पास से गुजरेगी तो एक ही नगर में कई घाट बनेंगे। काशी में तो घाट ही घाट हैं न! अब गंगा कहां से चलती है--दूर गंगोत्री से गंगा सागर तक हजारों मील की यात्रा है! कितने घाट बनाती चलती है! यह प्रतीक समझने जैसा है।

"जैसे नद्दी एक है, बहुतेरे हैं घाट।"

ऐसे ही धर्म एक है, घाट बहुत हैं। घाट के लिए संस्कृत शब्द है तीर्थ। इसलिए तो तुम हिंदू पवित्र स्थानों को तीर्थ कहते हो, क्योंकि वे घाट हैं। और इसलिए तो जैनों ने अपने अवतारी पुरुषों को, तीर्थंकर कहा है। तीर्थंकर का अर्थ होता है घाट को बनाने वाले। जहां नदी थी, कोई घाट न था, उतरना कठिन था; जहां नाव लगानी कठिन थी, क्योंकि घाट चाहिए; सीढ़ियां नहीं थीं, क्योंकि लोग उतरें, नदी तक आ जाएं नाव में बैठें, पार उतर जाएं--जिन्होंने घाट बनाए नदी पार करने को, उनको तीर्थंकर कहा है। यह शब्द बड़ा प्यारा है; तीर्थ को बनाने वाले। जब भी कोई व्यक्ति इस जगत में सत्य को उपलब्ध होगा तो तीर्थ बनेगा; उसके आस-पास तीर्थ बन जाएगा। कहो न कहो, समझो न समझो, लेकिन तीर्थ बन ही जाएगा। क्योंकि जिस घाट से वह व्यक्ति उतरा है, उस घाट से उसके पीछे और लोग उतरने लगेंगे, धीरे-धीरे सीढ़ियां बनेंगी, पत्थर लगेंगे, घाट निर्मित हो जाएगा। और घाट में कोई खराबी भी नहीं; लेकिन घाट को नदी मत समझ लेना। घाट नदी नहीं है। कहां नदी, कहां घाट! घाट पत्थरों से बनता है। नदी है जल का सरितप्रवाह। घाट रुका रहता है। घाट मुर्दा है। नदी बहती है; नदी है जीवंत। यद्यपि नदी पर घाट बनते हैं, लेकिन घाट नदी नहीं है और नदी घाट नहीं है। इतना स्मरण रहे तो घाट का उपयोग करो, मजे से उपयोग करो। जिस घाट से उतरना हो, उससे उतरो। लेकिन ख्याल रखना, घाट से बहुत मोह मत बनाना, क्योंकि घाट तो छोड़ ही देना है--अगर उस पार जाना है।

अब यह तुम सोचो। जिन व्यक्तियों को धार्मिक होना है। उन्हें जैन धर्म छोड़ ही देना पड़ेगा। जिन्हें धार्मिक होना है, उन्हें हिंदू धर्म छोड़ ही देना पड़ेगा। क्योंकि हिंदू और जैन और बौद्ध और ईसाई, और सिक्ख--ये तो घाट हैं।

तुमने कभी सोचा, अगर तुम घाट को जोर से पकड़ लो तो उस पार कैसे जाओगे? उस पार जाना है तो घाट छोड़ना होगा। घाट से बंधी नाव को खोलना होगा। घाट से जंजीरों से बंधी नाव है। जब नाव को तैराना है, तो जंजीर हटा लेनी पड़ेगी; पतवार लगाने पड़ेंगे और घाट से दूर हटना पड़ेगा। जैसे-जैसे इस घाट से दूर हटोगे वैसे-वैसे उस पार पहुंचोगे।

जिसे प्रभु की तरफ जाना है, उसे संप्रदायों से दूर हटते जाना होगा--रोज, प्रतिपल। और जितने तुम दूर होते जाओ उतने तुम धन्यभागी हो। घाट का प्रयोजन ही यही था कि उसका उपयोग कर लेना, उतर जाना सीढ़ियां। नदी तक पहुंचा दे, घाट का इतना प्रयोजन था। लेकिन घाट तुम्हारा घर न बन जाए। वहीं बैठ कर मत रह जाना। वहीं कीलें ठोक कर मत रुक जाना। वहीं तंबू गाढ़ कर ठहर मत जाना। घाट कोई ठहरने की जगह नहीं है। उस पार जाना है।

घाट को पकड़ना भी मत। घाट से मोह भी मत बसाना। और मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि घाट से कुछ शत्रुता बना लेना। क्योंकि घाट बेचारे का क्या कसूर है; शत्रुता का तो कोई कारण नहीं है। घाट तो मित्र है। तुम्हें उतरने में सहयोग दे रहा है। तुम्हें नाव तक पहुंचने में साथी बन रहा है, संगी बन रहा है। तो न तो घाट से कुछ बंधने की जरूरत है और न घाट से शत्रुता की कोई जरूरत है।

दूसरी बात भी ख्याल रखना। कुछ लोग घाटों से बंधे हैं और कुछ लोग अगर किसी दिन घाटों से मुक्त होते हैं तो घाटों के शत्रु हो जाते हैं। मगर मित्र रहो कि शत्रु, दोनों ही हालत में तुम घाट से बंधे रह जाते हो। घाट से मुक्त होना है। मित्रता-शत्रुता, दोनों ही बांध लेती हैं।

एक सज्जन मेरे पास आते थे। कई वर्षों से आते थे। बड़े भक्त थे काली के। मेरी बातें सुन-सुन कर, सुन-सुन कर उनको लगा कि यह सब बेकार है। कोई तीन-तीन घंटे सुबह पूजा करते थे : जयकाली! जयकाली! एक दिन उन्हें जोश चढ़ गया। मेरी बात सुन कर गए, जाकर काली को उठा कर पोटली बांध कर कुएं में फेंक आए। फिर रात भर सो न सके। घबड़ाहट भी लगी कि यह मैंने क्या कर दिया! कहीं काली नाराज न हो जाएं! आदमी का मन। चिंता पकड़ने लगी। सुबह-सुबह मेरे पास भागे आए और कहा कि आप क्या कहते हैं? मैं बड़ी विडंबना में

पड़ गया हूं। यह बात तो मुझे समझ में आ गई धीरे-धीरे सुनते-सुनते कि इस पूजा-पाठ में कुछ भी नहीं, पत्थर में क्या रखा है! तो कल रात मैंने जाकर काली को कुएं में फेंक दिया। अब मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा हूं। अब निकालूं तो मोहल्ले वालों को पता चल जाएगा कि इसने काली को कुएं में फेंका। अब निकाल भी नहीं सकता। और मुझे यह भी लगता है कि कहीं काली नाराज न हो जाए। वर्षों का भक्त हूं। आप क्या कहते हैं? मुझे सांत्वना दें।

मैंने कहा : मैंने तुमसे कहा कब था कि तुम काली को कुएं में फेंक आओ। काली जहां थी भली थी। तुम अपना मोह छोड़ लेते, उतना काफी था। तुम जरा जरूरत से ज्यादा चले गए। एक अति से दूसरी अति पहुंच गए। तीन-तीन घंटे सिर पटकते थे पत्थर पर। सिर पटकने को मना किया था। काली को कुएं में पटकने को किसने कहा था?

मगर आदमी ऐसा है कि या तो तुम गीता को सिर पर रखे फिरोगे और या अगर किसी दिन बात समझ में आ गई तो फौरन आग लगा दोगे। मगर दोनों बातें मूढ़तापूर्ण हैं। तुम मूढ़ता से कब छूटोगे? गीता भली है, प्यारी है। कुरान भला है, प्यारा है। सिर पर ढोने की कोई जरूरत नहीं है। उपयोग कर लो।

घाट भले हैं। घाट मित्र हैं। उनसे पार हो जाओ। उन्हें धन्यवाद दे देना। जब पार होओ, नमस्कार कर लेना। उनसे कहना कि तुम्हारी बड़ी कृपा!

महावीर की मृत्यु के समय ऐसी घटना घटीः उनका सबसे प्रधान शिष्य, गौतम दूसरे गांव प्रवचन के लिए गया था और महावीर का शरीर छूट गया। जब वह गांव की तरफ वापस लौट रहा था तो राहगीरों ने खबर दीः गौतम तू भी कैसा अभागा है! आज के दिन तू गया और भगवान ने देह छोड़ दी! तो वह रोने लगा। जीवन भर छाया की तरह उनके साथ चलता रहा और आज आखिरी घड़ी में साथ न जोड़ पाया। और रोने का और भी कारण था। वह छाती पीटने लगा। और उसने कहा कि मेरा क्या होगा? उनके रहते-रहते भी मैं अभी मुक्त नहीं हुआ। मेरा कल्मष अभी पूरा नहीं धुला। मेरा अंधेरा अभी रोशन नहीं हुआ। अभी मेरी जंजीरें कायम थीं। और उनके रहते-रहते भी न हो पाया तो अब मेरा क्या होगा? उनके बिना मेरा क्या होगा?

फिर उसने अपने आंसू पोंछे और उसने पूछा कि मेरे लिए कोई संदेश छोड़ गए है? तो उन्होंने कहा : हां, आखिरी संदेश तुम्हारे लिए ही छोड़ गए हैं। अंत में उन्होंने आंख खोली और कहा : गौतम को यह शब्द कह देना, यह मैं उसके लिए कहे जा रहा हूं। आज गौतम यहां नहीं है, ये शब्द उसके लिए छोड़े जाता हूं। क्या कहा उन्होंने, गौतम पूछने लगा।

उन्होंने कहा : हम कुछ समझे नहीं। जो कहा, वे शब्द हम दोहरा देते हैं। लेकिन हम समझे नहीं कि मतलब क्या है? उन्होंने इतना ही कहा कि गौतम, तूने सब छोड़ दिया, अब मुझे क्यों पकड़े है? ये बड़े अदभुत शब्द हैं : तूने सब छोड़ दिया, अब मुझे क्यों पकड़े है? मुझे भी छोड़ और मुक्त हो जा।

और कहते हैं, उसी क्षण गौतम को ज्ञान हुआ। उसी क्षण ये शब्द सुन कर ज्ञान हुआ। उसे समझ में आ गई बात कि उसकी झंझट कहां रह गई थी। सब तो छोड़ दिया था उसने, लेकिन महावीर को पकड़ लिया था। संसार छोड़ दिया था, घाट पकड़ लिया था, तीर्थंकर को पकड़ लिया था।

सदगुरु वही है, जो पहले तुमसे सारा संसार छुड़ा दे और फिर स्वयं से भी तुमको छुड़ा दे। महावीर निश्चित सदगुरु थे, ऐसा वचन साधारण गुरु से नहीं निकल सकता। साधारण गुरु तो फिकर करते हैं : कहीं चले मत जाना, किसी और के पास मत पहुंच जाना, मुझे छोड़ मत देना। साधारण गुरु तो सब तरह से जकड़ते हैं। साधारण गुरु तो घबड़ाया रहता है कि शिष्य कहीं छोड़ न दे।

सदगुरु पूरी चेष्टा करता है कि पहले सब छोड़ दो, फिर अंततः मुझे भी छोड़ देना। ऐसे जैसे दीया जलता है, तुमने देखा? तो पहले तो ज्योति तेल को जलाती है; सारा तेल चुक जाता है। फिर ज्योति बाती को जलाती है; फिर बाती चुक जाती है। फिर ज्योति बुझ जाती है। फिर ज्योति स्वयं को जला लेती है। पहले तेल जला देती

है, फिर बाती जला देती है, फिर स्वयं को जला लेती है। फिर परम शून्य हो जाता है। ऐसा सदगुरु। पहले संसार से छुड़ाता है। संसार से छुड़ाने के लिए नये-नये सिद्धांत देता है; ध्यान देता है; विचार देता है। फिर जब संसार छूट जाता है, तो इन सिद्धांतों और विचारों को छीनने लगता है; फिर विधि-विधान छीनने लगता है। जब विधि-विधान भी छूट जाता है--तेल भी जल गया, बाती भी जल गई--तो आखिरी संदेश वही है जो महावीर का, कि अब मुझे भी छोड़ दे। अब ज्योति अपने को जला लेती है और महाशून्य में लीन हो जाती है।

घाट तो छोड़ने ही पड़ेंगे। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि घाट बुरे हैं। तुम्हारे मन में यह सवाल उठता है कि घाट छोड़ने पड़ेंगे तो उनमें कुछ खराबी है। घाट में कोई खराबी नहीं; तुम्हारे पकड़ने में खराबी है।

बुद्ध कहते थे : कुछ लोग नदी पार किए। मूढ़ थे। यह तो मूढ़ कहो या पंडित कहो--दोनों का मतलब एक ही होता है। बुद्ध ने तो कहा है : मूढ़ पंडित थे, बकवासी थे, विवादी थे, शास्त्रार्थ करने में बड़े कुशल थे। जब पांचों ने नदी पार की तो उन्होंने सोचा कि इस नाव ने हम पर बड़ी कृपा की, अगर उस पार हम रह जाते और नाव न मिली होती तो जंगली जानवर हमें खा जाते। इस नाव का हम पर बड़ा उपकार है। इस नाव को हम ऐसे ही नहीं छोड़ सकते।

तो उन्होंने, नाव को सिर पर उठा लिया और बाजार में पहुंचे। जब लोगों ने देखा इन आदमियों को, सिर पर नाव को लिए तो भीड़ इकट्ठी हो गई। उन्होंने पूछा कि भाई माजरा क्या है, मामला क्या है? नाव में तो बैठे लोग बहुत देखे, लेकिन नाव लोगों पर बैठी पहले दफे देखी। बात क्या है।

यह समाचार हो गया होगा। सारा गांव इकट्ठा हो गया। बर्नार्ड शॉ ने यही तो परिभाषा की है समाचार की। किसी ने पूछा कि समाचार क्या है? समाचार का क्या अर्थ होता है? तो बर्नार्ड शॉ ने कहा कि अगर कुत्ता आदमी को काटे तो यह कोई समाचार नहीं; आदमी कुत्ते को काटे तो यह समाचार है।

तो नाव पर तो लोग देखे थे बहुत, पहली दफा नाव लोगों पर देखी--तो समाचार ही हो गया। सारा गांव इकट्ठा हो गया। लोग पूछने लगे : बात क्या है? उन पांच मूढ़ पंडितों ने कहा : बात क्या है! इस नाव की हम पर बड़ी कृपा है। धन्यवाद-स्वरूप अब हम इसे सदा अपने सिर पर रखेंगे। जंगली जानवर थे दूसरी तरफ, अगर यह नाव हमें न मिलती तो हम खत्म हो गए होते। हमारा जीवन इसी के कारण बचा है। अब तो जीवन इसी की सेवा में लगा देंगे।

यह बात तो बड़ी ऊंची मालूम पड़ती है, मगर मूढ़तापूर्ण है। बुद्ध अपने शिष्यों को कहते थे : मुझे नाव समझो। मुझ से पार हो जाओ। लेकिन मुझे सिर पर ढोने की कोई जरूरत नहीं है।

घाट का अर्थ होता है : जो हमें नदी से जोड़ दे। साधारणतः नदी और हमारे बीच फासला होता है। हो सकता है, कोई पहाड़ बीच में खड़ा हो, उत्तुंग कगारें हों, उनसे उतरना मुश्किल हो, नदी तक पहुंचना मुश्किल हो--घाट सुविधा बना देता है। पत्थर का पटा हुआ घाट, सीढ़ियां व्यवस्थित, तुम्हें नदी तक पहुंचा देता है। लेकिन घाट नदी नहीं है।

संप्रदाय धर्म तक पहुंचा देते हैं। लेकिन संप्रदाय धर्म नहीं हैं। फिर जिसे नदी में यात्रा करनी है, जिसे धर्म में जाना है, वह धीरे-धीरे संप्रदाय से मुक्त होने लगता है। और भूल कर भी ख्याल मत करना कि वह दुश्मन हो जाता है। अनुग्रह तो बना ही रहता है। जिस घाट ने उतारा, उसका अनुग्रह तो रहेगा ही। उस घाट के बिना तो नदी से मिल न सकते थे। मगर अनुग्रह का यह अर्थ नहीं कि नाव को सिर पर ढोओ। और अनुग्रह का यह भी अर्थ नहीं कि अब उस घाट को छाती से पकड़ कर रुक जाओ। जाना तो पार है।

लक्ष्य को मत भूलो। साध्य को मत भूलो। साधन को साध्य मत बना लो। धर्म है साध्य, संप्रदाय उस साध्य तक पहुंचाने के लिए छोटा सा मार्ग है। संप्रदाय का अर्थ होता है मार्ग, पगडंडी--जो प्रभु से जोड़ देती है। लेकिन जो जोड़ती है वही तोड़ भी सकती है--अगर तुम उसे जोर से पकड़ लो।

गुरु पहुंचाता है, गुरु अटका भी सकता है--अगर तुम गुरु को जोर से पकड़ लो। ऐसा ही समझो कि सीढ़ी पर चढ़ते हो, चढ़ते हो तो ऊपर पहुंच जाओगे; लेकिन अगर सीढ़ी पर ही बैठ कर रह जाओ और कहो कि इस सीढ़ी को मैं कैसे छोड़ सकता हूं--तो तुम कैसे ऊपर पहुंचोगे? चढ़े न चढ़े, बराबर हो गया। घाट पर ही बैठ रहे तो घाट पर पहुंचे न पहुंचे बराबर हो गया। घाट पर पहुंचने की सार्थकता तो तभी थी, जब घाट छूट जाता, नाव छूट जाती; उस पार की यात्रा पर निकल जाते।

"जैसे नद्दी एक है, बहुतेरे हैं घाट।"

इसमें कई बातें छिपी हैं। एक--कि घाट बहुत हो सकते हैं; नदी एक है। दो--घाट मुर्दा हैं। अपनी जगह पड़े रहते हैं। नदी बही चली जाती है। नदी सागर की तरफ जा रही है। नदी विराट की तरफ जा रही है। नदी प्रतिपल विराट में डूबती जा रही है। नदी गत्यात्मक है। घाट पत्थर के हैं; जड़; उनमें कोई गति नहीं है।

धर्म में बहाव है। धर्म शाश्वत प्रवाह है। और संप्रदाय जड़ होते हैं। रुक जाते हैं। जहां के तहां रह जाते हैं। महावीर जहां छोड़ गए थे अपने तीर्थ को, वह वहीं है। वह इंच भर नहीं सरका। और कहीं कोई उसे सरका न दे थोड़ा यहां-वहां, जैनियों ने व्यवस्था कर रखी है कि अब कोई पच्चीसवां तीर्थंकर नहीं हो सकता। कोई और घाट न बना दे। घाट का इतना मोह है कि पच्चीसवें तीर्थंकर को रोको; कहीं पच्चीसवां तीर्थंकर हो जाए तो फिर घाट का क्या होगा!

सिक्ख दस गुरुओं पर रुक गए, ग्यारहवें से डरे हुए हैं कि अगर ग्यारहवां आ जाए और कुछ हेर-फेर कर दे. . .।

ईसाई कहते हैं जीसस अकेले ही बेटे हैं परमात्मा के; और कोई परमात्मा का बेटा नहीं है--ताकि कोई सुधार न कर सके, कोई तरमीन न हो सके, कोई संशोधन न हो जाए। घाट में कोई फर्क न कर दे, इधर-उधर सीढ़ियां न लगा दे, नई व्यवस्था न कर दे, घाट को बड़ा न कर दे, यहां से उखाड़ कर नई जगह न ले जाएं--कहे कि नई जगह ज्यादा सुविधा है, जल थोड़ा है, उतरना ज्यादा आसान है; यहां तो नाव लगती है, वहां तो नाव की भी जरूरत नहीं होगी; लोग पैदल भी उतर जा सकते हैं; घुटने-घुटने पानी है; जो तैरना नहीं जान सकते वे भी उतर सकते हैं--कोई घाट को बदल न दे!

और कई दफा ऐसा हो जाता है कि नदी तो रास्ता बदल लेती है और घाट अपनी जगह पड़े रह जाते हैं। घाट तो रास्ता नहीं बदल सकते हैं। नदियां अक्सर रास्ता बदल लेती हैं। कभी वहां से नदी बहती थी, जहां घाट है। अब वहां से नदी नहीं बहती, तो भी जो घाट को पकड़े बैठे हैं, वे वहीं बैठे हैं। वे यह भी नहीं देखते कि नदी कब की जा चुकी; नदी यहां है ही नहीं। जब महावीर ने जैन धर्म का घाट बनाया, तब नदी वहां से बहती थी, अब नहीं बहती। पच्चीस सौ साल में नदी बहुत सरक गई। जहां कृष्ण घाट बना गए थे, नदी अब वहां से नहीं बहती। नदी अब वहां से बहती है जहां मैं तुमसे कह रहा हूं। पच्चीस सौ साल बाद वहां भी नहीं बहेगी। क्योंकि नदी का क्या भरोसा! नदी रूपांतरित होती रहती है।

यह जगत रूपांतरण है। यहां परिवर्तन के सिवाय और कोई चीज स्थिर नहीं है। सिर्फ परिवर्तन ही परिवर्तित नहीं होता, और सब चीजें बदल जाती हैं। यहां अगर कोई एक तत्त्व शाश्वत है, तो वह है परिवर्तन। सतत परिवर्तन! यहां कोई चीज ठहरी नहीं रहती। सब बहाव है। जहां जीसस छोड़ गए थे नदी को वहां नदी नहीं है।

अभी जीसस भी लौट कर अगर आएं और कहें कि अब मैं दूसरा घाट बनाता हूं, तो ईसाई राजी न होंगे। वे कहेंगे : यह हम कैसे मान सकते हैं? हम तो जो बन गया घाट, उसी को पूजेंगे। लोग घाट की पूजा में इतने तल्लीन हो जाते हैं कि पीछे लौट कर भी नहीं देखते कि नदी वहां बहती है या नहीं। सांप निकल जाता है, उसकी केंचुली पड़ी रह गई, उसी को लोग पूजते चले जाते हैं।

इस्लाम कहता है : आखिरी किताब आ गई कुरान में, अब इसके बाद कोई किताब नहीं आएगी। क्यों? डर! अगर इसके बाद की जगह रखो कि कोई किताब आ सकती है, तो फिर कोई दावेदार किताब ले आएगा, तो अड़चन खड़ी होगी। हो सकता है, वह किताब कुरान के विपरीत जाए, कुरान से भिन्न हो! होगी ही। विपरीत न भी जाए, तो भी भिन्न तो होगी ही, क्योंकि चौदह सौ साल में दुनिया बदल गई, सब हवा बदल गई, लोगों के मन बदल गए, लोगों के ढंग बदल गए, जीवन ने नए रूप ले लिए। लेकिन मुसलमान वहीं अटका है, जहां कुरान रुक गई थी। हिंदू वहां अटके हैं जहां वेद रुक गए थे। बौद्ध वहां अटके हैं जहां बुद्ध रुक गए थे। और इस बीच दुनिया बदलती चली जाती है।

घाट का मोह खतरनाक है। नदी के लिए घाट है; घाट के लिए नदी नहीं है। और ध्यान रखना, फिर दोहरा दूं : घाट जड़ है। घाट जा नहीं सकता, नदी के पीछे भाग नहीं सकता, कि जहां नदी जाए, वहीं घाट चला जाए। और नदी जीवंत है; कहीं भी जा सकती है। घाट तो खूंटी जैसा है। खूंटी से गाय बंधी है। लेकिन गाय जीवंत है; सरक भी जा सकती है।

मैंने सुना, एक आदमी शराब पीए हुए रात एक मिठाई के दुकानदार से कुछ मिठाई खरीदा। उसे भूख लगी थी। उसने एक रुपया दिया, आठ आने की मिठाई ली, मिठाई खाई। दुकानदार ने कहा कि भाई फुटकर पैसे नहीं हैं, तुम कल सुबह ले लेना। शराबी ने सोचा कि यह बड़ी झंझट की बात हुई। अब यह कल सुबह अगर बदल जाए या मैं ही भूल जाऊं कि कौन, किस दुकान से. . .। तो कुछ ऐसा उपाय कर लेना चाहिए कि जिसका इसको तो पता ही न हो, नहीं तो यह उपाय बदल दे। तो उसने चारों तरफ गौर से देखा, देखा एक सांढ दुकान के सामने बैठा है, तो उसने कहा कि बिलकुल ठीक है, जिस दुकान के सामने सांढ बैठा है, वही दुकान से मुझे आठ आने कल सुबह लेने हैं। ऐसा खड़े होकर उसने कई दफे दोहरा लिया, मंत्र-पाठ कर लिया, ताकि याद रह जाए। सांढ को भी गौर से देख लिया, कि ठीक है, किस तरह का सांढ है, काला-चिट्टा इसकी पीठ पर है, इस तरह का सांढ--कि चारों तरफ घूम कर देख लिया।

दूसरे दिन सुबह जब वह पहुंचा तो सांढ एक नाईवाड़े के सामने बैठा था। उसने जाकर एकदम नाई को गरदन से पकड़ लिया। उसने कहा : हद हो गई! आठ आने के पीछे, धंधा बदल दिया! दुकान बदल दी! पेशा बदल दिया! जाति बदल दी! अरे शरम खाओ, आठ आने रखने थे रख लेते।

वह नाई तो कुछ समझा नहीं कि मामला क्या है। यह तो बहुत मुश्किल से समझ में आया कि मामला क्या है।

अब सांढ का कोई भरोसा थोड़े ही है! यह सांढ कोई शंकरजी के सामने बैठे पत्थर के नंदी थोड़े ही हैं कि वहीं के वहीं बैठे हैं; शंकरजी भी चले जाएं तो भी वहीं बैठे रहेंगे। जीवंत!

नदी और घाट में फर्क समझ लेना। नदी तो जीवंत प्रवाह है--अस्तित्व का। यह रोज नए रूप लेती है, नई तरंगें उठती हैं, नए ढंग उठते हैं। घाट जड़ है।

कभी काम के होते हैं, कभी बेकाम हो जाते हैं। कभी अर्थ के होते हैं, कभी अनर्थ के हो जाते हैं।

"जैसे नद्दी एक है, बहुतेरे हैं घाट।

बहुतेरे हैं घाट, भेद भक्तन में नाना।"

और भक्तों में बड़े भेद हैं। कोई ऐसे पूजता, कोई वैसे पूजता। पलटू कहते हैं : कोई भगवान को देखता है पति के रूप में; जैसे मीरा ने देखा कृष्ण के रूप में, कि भगवान पति है, तो पुकारती है, कि सेज बिछाई है, फूल बिछाए हैं, तुम आओ मेरी सेज खाली है। कोई भगवान को देखता है बेटे के रूप में, छोटे बच्चे के रूप में, वात्सल्य-भाव से; जैसा सूरदास देखते हैं। वह पैरों में घूंघर बांधे हुए, पैंजनियां बांधे हुए, कृष्ण का रूप--वह भी ठीक है।

सूफी उलटा ही कर लिए हैं। सूफी स्वयं को मानते हैं पति और परमात्मा को मानते हैं प्रेयसी। इसलिए उर्दू में जैसा प्रेम का काव्य पैदा हुआ, किसी भाषा में पैदा नहीं हो सका; क्योंकि जब परमात्मा को प्रेयसी मान लिया तो बड़ी सुविधा हो गई काव्य के पैदा होने की; तो सारा शृंगार सहजता से चला आया। सूफी परमात्मा को कहते हैं प्रेयसी; स्वयं को मानते हैं प्रेमी। यह भी ठीक है। किस भांति प्रेम सधे, बात उतनी है। असली बात प्रेम है--किस घाट से तुम उतरते हों; पति की तरह, पत्नी की तरह. . .।

फिर रामकृष्ण हैं, वह भगवान को मां की तरह मानते हैं। सूरदास स्वयं तो मां की जगह हैं या पिता की जगह हैं; कृष्ण उनके छोटे से पैंजनियां बांधे नाचते फिरते हैं। सूरदास के कृष्ण कभी बड़े नहीं होते; वे छोटे रहते हैं। ठीक उन्हें उससे ही समाधि लग गई। रामकृष्ण के परमात्मा मां के रूप में प्रकट हुए हैं। उन्हें उससे समाधि लग गई।

सूफी फकीरों ने परमात्मा में प्रेयसी को देखा। मजनू और लैला की कहानी सूफी कहानी है। वह प्रतीक है। मंजनू यानी परमात्मा का खोजी। लैला यानी वह छिपा हुआ परमात्मा, जो मिलता नहीं, मिलता नहीं; मिलता नहीं; खोजो और खोजो, और अनंत यात्रा करनी पड़ती है, तब कहीं मिलता है। बड़ी मुश्किल से मिलता है। बड़ी विरह की यात्रा है। बड़े विरह के आंसू रोने पड़ते हैं।

"बहुतेरे हैं घाट, भेद भक्तन में नाना।

जो जेहि संगत परा, ताहि के हाथ बिकाना।।"

बड़ा प्यारा वचन है। यह इस पर निर्भर करता है कि तुम किसकी संगत पड़ गए। महावीर से मिलना हो गया तो महावीर का घाट तुम्हें जंच जाएगा और बुद्ध से मिलना हो गया तो बुद्ध का घाट तुम्हें जंच जाएगा। और कृष्ण से मिलना हो गया तो कृष्ण का घाट तुम्हें जंच जाएगा। किसी ऐसे व्यक्ति से मिलना हो गया है, जिसने पा लिया है, तो उसकी मौजूदगी, वह जो भी कहता है, उसकी सच्चाई का प्रमाण बन जाएगी।

"जो जेहि संगत परा, ताहि के हाथ बिकाना।"

शिष्य का यही अर्थ होता है : किसी के हाथ बिक गए; किसी के हाथ में समर्पित हो गए। किसी को कह दिया कि तुम पकड़ो यह हाथ अब मेरा। अपनी तरफ से बहुत कर चुका। अपनी तरफ से जो भी किया गलत हुआ। अपनी तरफ से जहां गया, गलत जगह पहुंचा। अपनी तरफ से कुछ हल होता नहीं। अब तो मेरा हाथ पकड़ो। अपनी बुद्धि को तुम्हारे चरणों में रखता हूं और तुम्हारी बुद्धि से चलूंगा।

शिष्य का अर्थ होता है : अब गुरु की छाया बनूंगा, अब गुरु को अपने अंतरतम में उतारूंगा।

और मजा यह है कि अगर तुम बुद्ध के पास होते तो बुद्ध की बात जंच जाती और कृष्ण के पास होते कृष्ण की बात जंच जाती। क्योंकि दोनों की बात ही सच है। क्योंकि बात के पीछे खड़ी हुई जो ज्योति है, सच्चाई का प्रमाण उसमें है। बात में कुछ नहीं रखा है।

अगर तुम सूफियों की संगत में पड़ गए तो परमात्मा प्रेयसी की तरह दिखाई पड़ने लगेगा। और अगर तुम भक्तों की संगत में पड़ गए तो तुम प्रेयसी हो जाओगे और परमात्मा पति-रूप हो जाएगा। ये तो भाषा के भेद हैं। ये तो भक्तों के भेद हैं। और सब भेदों में एक ही अभेद है, छिपा हुआ है।

"जो जेहि संगत परा, ताहि के हाथ बिकाना।

चाहे जैसी करै भक्ति, सब नामहिं केरी।"

फिर भक्ति तुम कैसी ही करो, है तो उसी एक की--उस एक नाम की। उस एक की ही भक्ति है। इसलिए सवाल यह नहीं है तुम कैसे करते। तुम्हारी विधि क्या है, यह सवाल नहीं है। तुम्हारा हृदय विधि में होना चाहिए, बस। तुम परमात्मा को इस तरह पुकारो कि वह मेरा पति है--लेकिन पुकार सच्ची हो। पति कह कर पुकारते हो कि परमात्मा को पत्नी कह कर पुकारते हो, कोई फर्क नहीं पड़ता। फर्क इस बात से पड़ता है कि पुकारते हो या ऐसे ही ऊपर-ऊपर आवाज लगा रहे हो और भीतर-भीतर बचना चाहते हो? पुकार उठी है,

हार्दिक है? तुम्हारे हृदय की धड़कन तुम्हारी पुकार में है? तुम्हारी पुकार तुम्हारी प्यास है? कुतूहल तो नहीं है? मात्र जिज्ञासा तो नहीं है? मुमुक्षा है? तुम दांव पर लगाना चाहते हो सब कुछ? अगर परमात्मा कहे कि मैं तैयार हूं, मिलने को, लेकिन एक शर्त है मेरी कि तू अपने को खोने को तैयार है, तो तुम खोने को तैयार होओगे? या तुम बहाने करोगे? तुम कहोगे कि बात तो ठीक है, मैं आऊंगा कल, जरा सोच लूं, पत्नी-बच्चों को भी पूछ लूं। फिर और भी पच्चीस धंधे हैं, उनको निबटा आऊं।

जीसस से किसी ने पूछा कि आप परमात्मा के राज्य की सदा बात करते हैं, यह क्या है परमात्मा का राज्य? यह कैसा है परमात्मा का राज्य?

जीसस ने कहाः ऐसा... ऐसा है परमात्मा का राज्य, जैसे एक धनी आदमी ने, अपनी बेटी की शादी के उत्सव में, एक भोज दिया। उसने नगर के जो भी प्रतिष्ठित लोग थे, सभी को निमंत्रित किया। उसने भोज की बड़ी तैयारियां कीं। बड़े सुस्वादु भोजन बनाए। उसकी एक ही बेटी थी। और वह सच में ही उस भोज को एक महोत्सव बनाना चाहता था--ऐसा कि याद्दास्त रह जाए गांव में। लेकिन जब संदेशवाहक वापस लौटा और उसने पूछा कि अतिथि अब तक आए नहीं, बात क्या है? तो संदेशवाहक ने कहा : मैं दुखी हूं, क्षमा करें। गांव का जो सबसे धनी आदमी है, उसने कहा कि असंभव है मेरा आना, क्योंकि आज ही मेरे घर मेहमान आ गए हैं और मैं उनकी सेवा में उलझा हूं।

दूसरे अतिथि को, जिसको आपने बुलवाया था, उसने कहा कि मुझे क्षमा करें, कल अदालत में मेरा मुकदमा है और मैं उसकी तैयारी में लगा हूं। और मुकदमा भारी है। जीत-हार पर मेरी जिंदगी निर्भर है। अभी मैं उत्सव मनाने की भाव-दशा में नहीं हूं। मेरा आना ठीक नहीं होगा। मेरा चित्त आ भी जाऊंगा तो वहां नहीं होगा।

तीसरे ने कहा कि मैं अपने खेत में उलझा हूं, फसल काटने का समय है और अभी एक दिन की भी देरी हो जाएगी तो फसल सड़ जाएगी। मैं नहीं आ सकता हूं। रात-दिन काम चल रहा है। और मैं यहां से दो-चार घंटे को भी जाऊं तो मजदूर रुक जाते हैं; काम बंद हो जाता है। अभी कहां सोना, अभी कहां खाना, अभी कैसा उत्सव!

ऐसे ही सभी अतिथियों ने अनेक-अनेक कारण बताए हैं और आने से क्षमा मांगी है। वह धनी आदमी तो बहुत दुखी हुआ। उसने कहा : फिर क्या होगा? भोज तैयार हो गया है, टेबल पर थालियां लगा दी गई हैं। क्या मैं बिना अतिथियों के इस उत्सव को मनाऊं? तब तुम जाओ, राह पर जो भी तुम्हें मिल जाएं, उन्हीं को पकड़ लाओ। जो मिल जाए, उन्हें पकड़ लाओ। अब इसकी फिकर मत करो कि वे खास व्यक्ति हों। राहगीर हों, अजनबी हों, भिखमंगे हों--जो मिल जाएं उन्हें ले आओ।

जीसस ने कहा : कोई भी लोग पकड़ कर बुला लिए गए, भोज तो हुआ। जीसस ने कहा कि ऐसा ही है परमात्मा का राज्य। परमात्मा तुम्हें संदेश भेजता है; लेकिन तुम बहाने कर जाते हो। कभी तुम कहते हो, आज यह उलझन है; कभी तुम कहते हो, कल वह उलझन है। परमात्मा के संदेश तुम सुनते नहीं। और अक्सर ऐसा हो जाता है कि जिन्हें बुलाया जाता है वे नहीं पहुंचते, और जिन्हें नहीं बुलाया गया था, वे पहुंच जाते हैं। अक्सर ऐसा हो जाता है।

तो जीसस कहते थे : इस बार मत चूकना। मैं फिर आया हूं, उसी परमात्मा की तरफ से संदेश लेकर, कि भोज तैयार है, उत्सव होने को है। मैं तुम्हें बुलाने आया हूं, मैं भोज का निमंत्रण देने आया हूं; तुम बहाने मत करना। भोज तो होकर रहेगा। कोई न कोई सम्मिलित होगा। तुम्हारे न आने से भोज नहीं रुकेगा, याद रखना। लेकिन तुम अगर बहाने किए तो तुम वंचित रह जाओगे।

"चाहे जैसी करै भक्ति, सब नामहिं केरी।"

फर्क तो नाम के ही हैं। कोई राम पुकारता है, कोई अल्लाह पुकारता है। मगर जिसको हम पुकारते हैं राम और अल्लाह से, वह एक ही है। इसलिए भक्त उसको नाम-स्मरण कहते हैं।

तुमने इस पर कभी ख्याल किया? नाम-स्मरण! क्यों भक्त कहते हैं नाम-स्मरण? नहीं कहते हैं कि राम-स्मरण। नहीं कहते अल्लाह-स्मरण। कहते हैं नाम-स्मरण। क्योंकि नाम में सब नाम आ गए।

हिंदुओं के शास्त्र विष्णु-सहस्त्र नाम में एक हजार नाम हैं। वे सब आ गए। मुसलमानों में सैकड़ों नाम हैं परमात्मा के, वे सब आ गए--ईसाइयों के, यहूदियों के।

दुनिया में कितने नामों से परमात्मा को नहीं पुकारा गया है! भक्त कहते हैं नाम-स्मरण। यह बड़ी खूबी की बात है। अगर कहे राम-स्मरण, तो सीमित हो गई बात; तो फिर उन्होंने एक नाम चुन लिया। फिर और नाम इनकार कर दिए। भक्त कहते हैं नाम-स्मरण; सब नाम उसके हैं। किसी नाम से पुकारो, किसी भांति पुकारो। पुकार सच्ची होनी चाहिए। इसलिए तो कहते हैं वाल्मीकि भूल गए और राम-राम न जप कर मरा-मरा जपते रहे और मरा-मरा जप कर ही उस परम गति को पा गए। क्या जपते हो, इससे फर्क नहीं पड़ता--कैसे जपते हो, गुण क्या है तुम्हारे जपने का? तुम्हारा जप, तुम्हारे प्राणों के अंतरतम से प्रकट होता है? प्लास्टिक का फूल तो नहीं है--ऊपर से चिपका दिया? असली गुलाब का फूल है--जड़ों से आता है? रस लेता है पृथ्वी से? ऐसे तुम्हारा जब नाम-स्मरण हृदय से रस लेकर आता है, असली होता है, तुम में खिलता है, उधार नहीं होता। राम-नाम की चदरिया ओढ़ने की बात नहीं है। जब तक राम तुम्हारी आत्मा से न उठे. . .।

"चाहे जैसी करै भक्ति. . .।

इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता, जैसी मरजी हो करना। अपना ढंग खोज लेना। भक्ति का कोई स्टैंडर्ड ढंग नहीं है, कोई सरकारी ढंग नहीं है कि इसी ढंग से करोगे, तो ही भक्ति पूरी होगी। तुम्हारी जैसी मौज हो। इसलिए तो कोई पत्थर के किनारे बैठ कर, राह के किनारे, रखे पत्थर के पास बैठ कर भक्ति कर लेता है। यह पत्थर ही है--औरों के लिए; लेकिन जिसने भक्ति-भाव से उस पर दो फूल चढ़ा दिए, उसके लिए भगवान है।

हिंदू इसमें बड़े कुशल हैं। कोई भी पत्थर को, अनगढ़ पत्थर को, पोत देते हैं सिंदूर से--वे हनुमानजी हो गए। पश्चिम के लोग चकित होते हैं कि बड़ी हैरानी की बात है! अभी यह पत्थर था, इन्होंने इसको लाल रंग से पोत दिया, दो फूल चढ़ा दिए, न आंख-कान का कुछ पता, न हाथ का कुछ पता--भगवान हो गए?

मगर समझो हिंदुओं की बात। वे कहते हैं : भगवान आंख, कान, हाथ में थोड़े ही है। कोई बड़ा मूर्तिकार इस पत्थर को बताएगा, तब यह भगवान बनेंगे, तुम समझते हो? नहीं, भगवान बनते हैं भाव से। मूर्तिकार मूर्ति बना देगा, भगवान थोड़े ही बना सकता है। अगर मूर्तिकार का भाव ही न हो. . .।

एक गांव में मैं ठहरा। उस गांव में एक मंदिर बन रहा था। अक्सर जैसा होता है, संगमरमर के कारीगर अक्सर मुसलमान होते हैं, तो मुसलमान उस मंदिर को बना रहे थे। मंदिर में मूर्ति खोदी जा रही थी, वह भी मुसलमान कारीगर खोद रहे थे। मंदिर को बनाने वाले के घर में मेहमान था। वह मुझे लेकर दिखाने गया कि जरा आप देख लें। मैंने उससे पूछा कि तुम एक बात समझते हो? जो लोग इस मंदिर की मूर्ति बना रहे हैं, उनका कोई भाव तो है नहीं। ये मुसलमान हैं। इन्हें मौका मिले तो यही तोड़ जाएंगे आकर इस मूर्ति को। इनका कोई भाव तो है नहीं। तुमने इनसे कभी पूछा? ये मूर्ति तो बना देंगे, यह सच है; मगर भाव कहां से डालोगे?

वह थोड़े हैरान हुए। उन्होंने कहा : बात तो आप ठीक कहते हैं। यह तो हमने सोचा ही नहीं। लाखों रुपए लगा दिए इस मंदिर पर। यह तो पूरा ही मंदिर मुसलमानों ने बनाया है। ये, सभी कारीगर यहां मुसलमान हैं। इसमें तो पत्थर-पत्थर इन्होंने लगाया है। यह तो बड़ी भूल-चूक हो गई। आपने बड़ी देर से कहा।

हिंदुओं का ढंग ज्यादा सरल-सुगम है। वे कहते हैं : भाव से पत्थर भगवान हो जाता है। और भाव न हो तो भगवान पुनः पत्थर हो जाता है। कैसे तुम करते हो भक्ति, तुम्हारे विधि-विधान में कुछ अर्थ नहीं है। तुम जिसमें भी परिपूर्ण रस से डूब जाओ, वही भक्ति है।

मो.ज.ज एक जंगल से गुजरते हैं और एक आदमी को प्रार्थना करते देखते हैं। एक गड़रिया गरीब आदमी, फटे चीथड़े पहने हुए भगवान से प्रार्थना कर रहा है। महीनों से नहाया नहीं होगा, ऐसी दुर्गंध आ रही है। अब

भेड़ों के पास रहना हो तो नहा-धोकर रह भी नहीं सकते। दुर्गंध का अभ्यास करना होता है। बड़ी दुर्गंध आ रही हैं। उस आदमी से--भेड़ की दुर्गंध आ रही है। चारों तरफ भेड़ें मिमिया रही हैं। और वह बैठा वहीं प्रार्थना कर रहा है। वह क्या कह रहा है, वह भी बड़े मजे की बात है। मो.ज.ज ने खड़े होकर सुना। वह बहुत हैरान हुए। उन्होंने बहुत प्रार्थना करने वाले देखे थे, ऐसा आदमी नहीं देखा। वह भगवान से कह रहा है कि हे भगवान, तू एक दफे मुझे बुला ले। ऐसी तेरी सेवा करूंगा कि तू भी खुश हो जाएगा। पांव दबाने में मेरा कोई सानी नहीं। पैर तो मैं ऐसे दबाता हूं तेरा भी दिल बाग-बाग हो जाए। और तुझे घिस-घिस कर नहलाऊंगा और तेरे सिर में जुएं पड़ गए होंगे तो उनकी भी सफाई कर दूंगा।

अब उसके बेचारे के सिर में पड़े होंगे, तो स्वभावतः आदमी अपनी ही धारणा तो भगवान से सोचेगा।

तेरे जुएं पड़ गए होंगे, वे भी बीन दूंगा। पिस्सू इत्यादि तेरे शरीर पर चढ़ जाते होंगे, पता नहीं कोई फिकर तेरी करता है कि नहीं करता. . .।

मो.ज.ज के लिए तो बरदाश्त के बाहर हो गया कि यह आदमी क्या कह रहा है! और कहा कि मैं रोटी भी अच्छी बनाता हूं, शाक-सब्जी भी अच्छी बनाता हूं। रोज भोजन भी बना दूंगा। थका-मांदा आएगा, पैर भी दाब दूंगा, नहला भी दूंगा। तू एक दफा मुझे मौका तो दे।

मो.ज.ज के बरदाश्त के बाहर हो गया, जब उसने कहा कि जुएं तेरे बीन दूंगा और तेरे शरीर पर गंदगी जम गई होगी, घिस-घिस कर साफ कर दूंगा और पिस्सू इत्यादि पड़ ही जाते हैं, पता नहीं कोई तेरी वहां फिकर करता है कि नहीं. . .। मो.ज.ज ने कहा : चुप! चुप शैतान! तू क्या बातें कर रहा है? तू किससे बातें कर रहा है? भगवान से?

और उस आदमी की आंख से आंसू बह गए। वह आदमी तो डर गया। उससे कहा कि मुझे क्षमा करें। कोई गलती बात कही?

मो.ज.ज ने कहा : गलती बात! और क्या गलती हो सकती है--भगवान को जुएं पड़ गए, पिस्सू हो गए! उसका कोई पैर दबाने वाला नहीं! उसका कोई भोजन बनाने वाला नहीं! तू भोजन बनाएगा? और तू उसे घिस-घिस कर धोएगा? तूने बात क्या समझी है? भगवान कोई गड़रिया है?

वह गड़रिया रोने लगा। उसने मो.ज.ज के पैर पकड़ लिए। उसने कहा : मुझे क्षमा करो! मुझे क्या पता, मैं तो बेपढ़ा-लिखा गंवार हूं। शास्त्र का कोई ज्ञान नहीं है, अक्षर सीखा नहीं कभी, यहीं पहाड़ पर इसी जंगल में भेड़ों के साथ ही रहा हूं, भेड़िया हूं, मुझे क्षमा कर दो! अब कभी ऐसी भूल न करूंगा। मगर मुझे ठीक-ठीक प्रार्थना समझा दो।

तो मो.ज.ज ने उसे ठीक-ठीक प्रार्थना समझाई। वह आदमी कहने लगा : यह तो बहुत कठिन है। यह तो मैं भूल ही जाउंगा। यह तो मैं याद ही न रख सकूंगा। फिर से दोहरा दो।

फिर से मो.ज.ज ने दोहरा दी। वे बड़े प्रसन्न हो रहे थे मन में कि एक आदमी को राह पर ले आए--भटके हुए को। वह आदमी फिर बोला कि एक दफा और दोहरा दो। वह भी दोहरा दी। और फिर जब मो.ज.ज जंगल की तरफ अपने रास्ते पर जाने लगे, बड़े प्रसन्न भाव से, तो उन्होंने बड़े जोर की आवाज में गर्जना सुनी आकाश में और भगवान की आवाज आई कि मो.ज.ज, मैंने तुझे दुनिया में भेजा था कि तू मुझे लोगों से जोड़ना, तूने तो तोड़ना शुरू कर दिया!

अभी गड़रिए की घबड़ाने की बात थी, अब मो.ज.ज घबड़ा कर बैठ गया, हाथ-पैर कांपने लगे। उन्होंने कहा : क्या कह रहे हैं आप, मैंने तोड़ दिया! मैंने उसे ठीक-ठीक प्रार्थना समझाई।

परमात्मा ने कहा : ठीक-ठीक प्रार्थना का क्या अर्थ होता है? ठीक शब्द? ठीक उच्चारण? ठीक भाषा? ठीक प्रार्थना का अर्थ होता है : हार्दिक। वह आदमी अब कभी ठीक प्रार्थना न कर पाएगा। तूने उसके लिए सदा के लिए तोड़ दिया उसकी प्रार्थना से मैं बड़ा खुश था। वह आदमी बड़ा सच्चा था। वह आदमी बड़े हृदय से ये बातें कहता था, रोज कहता था। मैं उसकी प्रतीक्षा करता था रोज कि कब गड़रिया प्रार्थना करेगा। ऐसे तो तेरे

जैसे बहुत लोग प्रार्थना करते हैं। उनकी प्रार्थना की मैं प्रतीक्षा नहीं करता। वे तो बंधी-बंधाई, पिटी-पिटाई बातें हैं। वे रोज वही-वही कहते रहते हैं। यह आदमी हृदय से कहता था। यह आदमी ऐसे कहता था जैसा प्रेमी कहता है। और फिर बेचारा गड़रिया है, तो गड़रिए की भाषा बोलता है। तू वापस जा, उससे क्षमा मांग। उसके पैर छू, और उसे राजी कर कि वह जैसा करता था वैसा ही करे। तेरी प्रार्थना वापस ले।

यह यहूदी कथा बड़ी प्यारी है। इससे फर्क नहीं पड़ता कि तुम्हारे शब्द क्या हैं। इससे ही फर्क पड़ता है कि तुम क्या हो। तुम्हारे आंसू सम्मिलित होने चाहिए तुम्हारे शब्दों में। जब तुम्हारे शब्द तुम्हारे आंसुओं से गीले होते हैं, तब उनमें हजार-हजार फूल खिल जाते हैं।

"चाहे जैसी करै भक्ति, सब नामहिं केरी।

जाकी जैसी बूझ, मारग से तैसी हेरी।।"

और जिसकी जैसी समझ, वह वैसा मार्ग खोज लेता है। अपने-अपने देखने के ढंग हैं।

इश्क फानी न हुस्न फानी है
इनका हर लम्हा जाविदानी है
देख रिन्दों पर इतना तअन न कर
देख रुत किस कदर सुहानी है।
न तो प्रेम क्षणभंगुर है और न सौंदर्य क्षणभंगुर है।
इश्क फानी न हुस्न फानी है
इनका हर लम्हा जाविदानी है।

प्रेम का और सौंदर्य का हर क्षण शाश्वत है, सनातन है, अमर है। यह एक देखने का ढंग है। एक देखने का ढंग है कि सौंदर्य क्षणभंगुर और एक देखने का ढंग यह भी है कि सौंदर्य शाश्वत। एक देखने का ढंग है कि प्रेम में क्या रखा है--राग! और एक देखने का ढंग है कि प्रेम में प्रार्थना छुपी है; परमात्मा छिपा है। यह सब ढंग की बात है। अलग-अलग बूझ।

देख रिन्दों पर इतना तअन न कर

और शराबियों को इतना बुरा मत कह, क्योंकि शराबें भी बहुत तरह की हैं--तरह-तरह की हैं। रिन्ंद भी तरह-तरह के हैं। कोई परमात्मा को पी कर रिन्द हो जाता है, शराबी हो जाता है। कोई प्रार्थना में डूब कर शराब में डूब जाता है।

देख रिन्दों पर इतना तअन न कर

रिन्दों का इतना विरोध मत कर, इतनी निंदा मत कर, इतना व्यंग्य मत कर।

देख रुत किस कदर सुहानी है!

उसके भीतक झांक। किस कदर वसंत उसके भीतर आया है! देखने की बात है। सदा स्मरण रखना, यह जो मो.ज.ज ने इस गड़रिए को रोक दिया, वे गड़रिए के जूतों में पैर डाल कर खड़े न हो सके, वे गड़रिए के हृदय में प्रविष्ट होकर न देख सके। उन्होंने अपनी बूझ का उपयोग किया; उस आदमी की आंख के पीछे जाकर न देखा; उस आदमी में न झांका।

दूसरे की न तो निंदा करना, न दूसरे का खंडन करना। कौन जाने... मो.ज.ज से भूल हो सकती है। मो.ज.ज जैसे आदमी से भूल हो सकती है, तो साधारण आदमी की तो बात ही क्या? राह पर डोलते शराबी की भी निंदा मत करना; कौन जाने उसने अंगूरों से ढलने वाली शराब न पी हो, उसने आत्मा से बहने वाली शराब पी ली हो! सूफी भी उसी मस्ती में चलते हैं जैसे शराबी चलता है। और कोई अगर किसी स्त्री का सौंदर्य देख कर ठिठक कर खड़ा हो जाए, तो ऐसा ही मत समझ लेना कि पापी है। क्योंकि ऐसे लोग भी हुए हैं, जिन्होंने हर सौंदर्य में परमात्मा का सौंदर्य देखा है; जिन्होंने हर रूप में उसी का रूप देखा; जिसने हर मुस्कुराहट में उसी की मुस्कुराहट देखी है। तो तुम दूसरे का निर्णय मत करना।

"जाकी जैसी बूझ, मारग सो तैसी हेरी।"

फिर जिसकी जैसी बूझ हो, जैसी समझ हो, वैसा अपना मार्ग खोज लेता है। फर्क क्या पड़ सकता है? बहुत-से-बहुत इतना ही फर्क पड़ सकता है :

"फेर खाय इक गये, एक ठौ गये सिताबी।"

कोई जल्दी पहुंच गया, कोई थोड़ा चक्कर के रास्ते से गया, इतना ही फर्क पड़ सकता है। यह प्यारा वचन सुनते हो! पलटू कहते हैं : भेद ही क्या पड़ने वाला है! कोई जरा जल्दी चला जाएगा, बहुत से बहुत इतना ही हो सकता है; कोई जरा देर से गया।

मेरे एक मित्र हैं; वह कभी हवाई जहाज से नहीं चलते हैं। बहुत पैसे वाले हैं, लेकिन हवाई जहाज से नहीं चलते हैं। हवाई जहाज की तो बात दूसरी, वह मेल और एक्सप्रेस ट्रेन से भी नहीं चलते। वह बिलकुल बैलगाड़ी सी चलने वाली ढंग की पैसेंजर गाड़ी खोजते हैं। एक दफा मेरे साथ दिल्ली तक यात्रा की तो तीन दिन लग गए पहुंचने में। वह कहने लगे : एक दफा मेरे ढंग से भी तो चलो!

और मुझे उनका ढंग भी समझ में आया। बात तो मेरी समझ में आई कि बात ठीक कहते हैं। वह कहते हैं : हवाई जहाज पर उड़े, नागपुर से सीधे दिल्ली पहुंच गए, तो बीच की यात्रा का मजा ही नहीं मिला। बीच में कितने वृक्ष आए, कितनी नदियां आईं, कितने पहाड़ आए, कितने लोग गुजरे, कितनी स्टेशनें गुजरीं--उनका सब मजा चुक गया।

वह कहते हैं : एक्सप्रेस गाड़ी भी अपने को नहीं जमती। ऐसी क्या आपा-धापी! हम कोई गरीब थोड़े ही हैं, उन्होंने मुझसे कहा। यह बात मुझे जंची। वह कहने लगे : हम कोई गरीब थोड़े ही हैं। समय की कोई इतनी गरीबी कि बस एक दिन में ही पहुंच जाएं। सुविधा से चलेंगे। आप मेरे साथ एक दफा मेरे ढंग से चलो।

मैं उनके साथ गया। और वह यात्रा अनूठी थी। हर स्टेशन पर उनकी पहचान थी, क्योंकि वह उसी पैसेंजर से चलते हैं। किसी स्टॉल, किसी दुकान से भजिए खरीद लाते, कहीं से दूध खरीद लाए। उन्हें पता था कि किस स्टेशन पर सबसे अच्छा दूध, किस स्टेशन पर सबसे अच्छे भजिए, किस स्टेशन पर अच्छा केला. . . कहां क्या मिलता है, उनको सब पता था। वह उनका जैसे घर ही था। वहां से पूरी यात्रा और गाड़ी खड़ी है घंटों और वह बात कर रहे हैं और चाय पी रहे हैं। मुझे लगा कि उनकी बात में भी सच्चाई है। वह भी एक ढंग है।

मंजिल पर पहुंचने में कुछ लोग उत्सुक होते हैं, कुछ लोग यात्रा में भी उत्सुक होते हैं। कहते हैं न कि मिलने में तो मजा है, इंतजार में भी है।

पलटू कहते हैंः "फेर खाय इक गये". . .।

ज्यादा से ज्यादा फर्क क्या पड़ेगा, थोड़ी देर से कोई जाएगा! कान इधर से पकड़ा कि उधर से पकड़ा। तुम किसी की छेड़खानी मत करो। तुम किसी का खंडन मत करो। तुम किसी को जबरदस्ती अपने घाट पर लाने की चेष्टा मत करो। चलो उसके घाट से पाट थोड़ा बड़ा है नदी का, थोड़ी देर से जाएगी नाव; लेकिन अगर उसे यही मौज है तो जाने दो, शाश्वत है समय पड़ा, कोई जल्दी नहीं है, कोई हड़बड़ाहट नहीं है।

"फेर खाय इक गये, एक ठौ गए सिताबी।"

कोई जल्दी पहुंच गया, कोई जरा देर से पहुंचा। पहुंच गए। असली बात पहुंचना है।

"आखिर पहुंचे राह, दिना दस भई खराबी।"

पलटू कहते हैं कि बहुत से बहुत यही होगी कि दस दिन, किसी को ज्यादा संसार में रहना पड़ा और कोई दस दिन पहले पहुंच गया। दस दिन किसी को ज्यादा चक्कर काटना पड़ा, कोई दस दिन जल्दी पहुंच गया।

"पलटू एकै टेक ना, जेतिक भेष तै बाट।"

इसलिए पलटू कहते हैं : अपने संप्रदाय की जिद्द मत करना, आग्रह मत करना। पलटू एकै टेक ना. . .। इसलिए सांप्रदायिक वृत्ति मत रखना। . . . जेतिक भेष तै बाट। जितने लोग हैं, जितने वेष हैं, उतने घाट हैं। जैसे नद्दी एक है, बहुतेरे हैं घाट।

"लेहु परोसिनि झोंपड़ा, नित उठ बाढ़त रार।"

तो पहले तो कहा सांप्रदायिक वृत्ति मत रखना; अपने ही ढंग से सारी दुनिया को चलाने की चेष्टा में मत पड़ना। वह भी अहंकार है। और अहंकार से उपद्रव पैदा होते हैं। अहंकार छूटे तो बहुत उपद्रव छूटने शुरू हो जाते हैं।

अब दूसरा सूत्र।

वह कहते हैंः और उपद्रव भी छोड़ो। संप्रदाय की अस्मिता छोड़ी, अहंकार छोड़ा; और उपद्रव भी छोड़ो।

"लेहु परोसिनि झोपड़ा, नित उठ बाढ़त रार।"

इस वचन का अर्थ जीसस के वचन में है--इसका अर्थ, इसकी व्याख्या। जीसस कहते हैं : कोई अगर तुम्हारा कोट छीने तो उसे कमीज भी दे दो। खूब मजे की बात जीसस ने कही है। और कोई तुमसे कहे एक मील मेरा बोझ ढोओ, तो दो मील उसके साथ चले जाना। और कोई तुम्हारे बायें गाल पर चांटा मारे तो दायां भी उसके सामने कर देना। झगड़ा खड़ा मत करो। उसको मजा आ रहा है चांटा मारने में, एक गाल पर मार लिया, दूसरा भी कर देना कि भई तू दूसरे पर भी मार ले। कोट तो तूने ले लिया, कहीं संकोचवश कमीज न मांगता हो, यह कमीज भी ले ले। मगर झगड़ा खड़ा मत करना।

"लेहु परोसिनि झोंपड़ा"...

पलटू कहते हैंः पड़ोसी अगर झंझट करते हों तो उनसे कहना कि यह मेरा झोंपड़ा भी तुम्हीं सम्हाल लो।

"लेहु परोसिनि झोंपड़ा, नित उठ बाढ़त रार।"

ऐसे घर में क्या रहना, जहां सुबह रोज-रोज उठ कर झगड़ा खड़ा होता हो। यह घर तुम्हीं सम्हाल लो। यह पड़ोसियों को ही दे देना।

"नित उठि बाढ़त रार, काहिको सरबरि कीजै।"

यह रोज की झंझट कौन ले! यह रोज का झगड़ा कौन ले! प्रतिस्पर्धा हम न करेंगे।

... "काहे को सरबरि कीजै।"

हम क्यों किसी की बराबरी करें! हम क्यों स्पर्धा करें, क्यों तुलना करें, क्यों संघर्ष लें! इस संसार में सभी छिन जाना है, तो पकड़ने का इतना आग्रह क्यों करें! और जिसका पकड़ने का आग्रह चला गया, उसके सारे झगड़े चले गए।

झगड़ा ही क्या है? जर, जोरु, जमीन। झगड़ा क्या है? पकड़ने में! मेरा! जहां मेरा आया वहां झगड़ा आया। जहां मेरा आया, वहां संसार आया।

पलटू कहते हैंः इसमें कुछ सार नहीं है; यहां तो सब छिन ही जाएगा। मौत आज नहीं कल आएगी, सब छीन लेगी।

"नित उठि बाढ़त रार, काहि को सरबरि कीजै।

तजिए ऐसा संग, देस चलि दूसर लीजै।।"

ऐसा संग-साथ छोड़ दो, दूसरा देश खोज लो। दूसरे जीवन का ढंग खोज लो। दूसरे आयाम पर जीओ। वह जो दूसरा देश है, वही संन्यास है। एक संसारी का ढंग है : लड़ो, जूझो, स्पर्धा करो। एक संन्यासी का ढंग है : लड़ना नहीं, जूझना नहीं, स्पर्धा नहीं। संघर्ष के जो बाहर हो गया, जो कहता है मेरा कोई द्वंद्व नहीं, निर्द्वंद्व जो हो गया--वही है दूसरा देश।

ए अहलेकरम नहीं मैं साइल,
रस्ते पर यूं ही खड़ा हुआ हूं
अब शिकवा-ए-संगो खिश्त कैसा
जब तेरी गली में आ गया हूं।
ए अहलेकरम नहीं मैं साइल!

संन्यासी को लोग भिखमंगा समझ लेते हैं। सोचते हैं, इसके पास कुछ भी नहीं है। बात उलटी है। संसारी भिखमंगा है; उसके पास कुछ भी नहीं है। और जो भी है, वह भी छिन जाएगा। आज नहीं कल, आज नहीं कल, छिन ही जाने वाला है। थोड़ी देर की मालकियत है। किसी की अमानत है, वह वापस ले लेगा, तुम नाहक ही गरूर में इतरा रहे हो।

संन्यासी भिखमंगा नहीं है।

यह पंक्ति अच्छी हैः ए अहलेकरम, नहीं मैं साइल!

हे दयालु पुरुषों, मैं कोई भिखारी नहीं हूं। रस्ते पर यूं ही खड़ा हुआ हूं।

रास्ते पर यूं ही खड़ा हुआ हूं, आप नाहक मुझ पर दया करने की कोशिश न करें।

अब शिकवा-ए-संगो खिश्त कैसा
जब तेरी गली में आ गया हूं।

और संन्यासी कहता है : अब किससे मांगना है, कैसा शिकवा, कैसी शिकायत जब परमात्मा की गली में आकर खड़ा हो गया हूं, तो अब छोटी-मोटी बातों का मांगने का कोई सवाल ही नहीं है। ईंट-पत्थर की कौन शिकायत करता है अब! अब उसका आसमान ऊपर, उसकी जमीन नीचे। अब तो जहां हूं, उसी की गली है। प्यारे की गली में आ गया हूं।

"तजिए ऐसा संग, देश चलि दूसर लीजै।"

ख्याल रखना, देश से मतलब यह नहीं है कि तुम यहां से भाग कर किसी दूसरे देश चले जाओ। उससे तो कुछ फर्क न पड़ेगा।

मैंने सुना है, एक कौवा भागा जा रहा था और एक कोयल ने पूछा कि चाचा, कहां जा रहे हो? उस कौवे ने कहा : दूसरे देश जाते हैं, क्योंकि इस देश में हमारे गीत को कोई पसंद नहीं करता। कोयल ने कहा : दूसरे देश में भी यही हालत होगी। तुम्हारा गीत ऐसा है, दूसरे देश में भी कोई पसंद नहीं करेगा। गीत बदलो अपना, देश बदलने से क्या होगा?

तो ध्यान रखना पलटू यह नहीं कह रहे हैं कि दूसरे देश चले जाओ, पलटू यह कह रहे हैं कि दूसरे अंतर-प्रदेश में प्रवेश कर जाओ; भीतर देश बदल लो; भीतर आकाश बदल लो। यह जो संसारी का छोटा सा क्षुद्र झोंपड़ा बना रखा है, इसको छोड़ो। यह जो भीतर संसारी का मोह बना रखा है, इसको तोड़ो। खुला आकाश भीतर आने दो।

"जीवन है दिन चारि, काहे को कीजै रोसा।"

यह चार दिन की जिंदगी है, इसमें झगड़ा-फसाद, अदालत-मुकद्दमा, सिर फोड़ा-फाड़ी, इतना रोष, इतना क्रोध! जीवन है दिन चारि। ऐसे ही बीत जाते हैं दिन। ये चार दिन ज्यादा देर लगते नहीं। दो आरजू में बीत गए, दो इंतजारी में। दो मांगने में बीत जाते हैं, दो प्रतीक्षा में बीत जाते हैं। चार ही दिन हैं। इन चार दिन के लिए कितना रोष हम कर लेते हैं!

"तजिए सब जंजाल, नाम कै करो भरोसा।"

जंजाल छोड़ो, झगड़े छोड़ो, स्पर्धा छोड़ो। उस एक के नाम का भरोसा करो। हमारा भरोसा बहुत चीजों पर है--मकान पर, दुकान पर, धन पर, पद-प्रतिष्ठा पर। हजारों चीजों पर हमारा भरोसा है। चूंकि हमारा भरोसा हजारों चीजों पर है, हमारी आत्मा हजार खंडों में टूट गई है। एक पर भरोसा हो तो आत्मा अखंड हो जाती है। तुम्हारा जितनी चीजों पर भरोसा होगा, उतने ही तुम्हारे जीवन में खंड होंगे, तुम टुकड़े-टुकड़े हो जाओगे, तुम बिखर जाओगे।

"तजिए सब जंजाल, नाम कै करो भरोसा।"

साधारणतः आदमी भीड़ है। तुम्हारे भीतर एक आत्मा भी कहां है!

मशरफ के बगैर जल रहा हूं
मैं सूने मकान का दीया हूं।
मंजिल न कोई जादा, फिर भी
आशोबे सफर में मुब्तिला हूं।

मशरफ के बगैर जल रहा हूं! कोई कारण नहीं है तुम्हारी जिंदगी का, कोई उद्देश्य नहीं है, कोई दिशा नहीं है, कोई औचित्य नहीं है कि क्यों जी रहे हो। मशरफ के बगैर जल रहा हूं। बिना किसी औचित्य के जल रहा हूं।

मैं सूने मकान का दीया हूं।

साधारण आदमी सूने मकान का दीया है। जल रहा है। कोई अर्थ नहीं है जलने में। जल-जल कर मिट रहा है। जल्दी बुझेगा।

जिंदगी हमारी, जल-जल कर बुझ जाती है मौत में। क्या परिणाम है? क्या हाथ आता है?

मशरफ के बगैर जल रहा हूं
मैं सूने मकान का दीया हूं
मंजिल न कोई जादा, फिर भी. . .

न कोई लक्ष्य है कहीं और न कोई मार्ग है।

आशोबे सफर में मुब्तिला हूं।

लेकिन रास्ते की हजारों झंझटों में उलझा हुआ हूं। न तो कुछ मंजिल है, न कोई ठीक पता है कि जिस रास्ते पर चल रहा हूं, इससे कहां पहुंचूंगा। लेकिन रास्ते पर बड़ा झगड़ा मचा रहे हैं। बड़ी झंझट कर रहे हैं। और न मालूम कितनी हजार चिंताओं में उलझे हुए जंजाल हैं! ऐसी साधारण स्थिति है, विक्षिप्त स्थिति है।

इस देश को बदलो। दूसरा देश अपने भीतर बनाओ।

"भीख मांगी बरु खाए, खटपटी नीक न लागै।"

पलटू कहते हैं : भीख मांग कर खा ले, वह अच्छा, लेकिन झगड़े और जंजाल की जिंदगी में कोई रस नहीं।

"भीख मांगी बरु खाए". . .

चाहे भीख मांग कर खा ले, लेकिन ये झगड़े संसार के अर्थहीन हैं।

"खटपटी नीक न लागै
भरी गौन गुड़ तजै, तहां से सांझै भागै।"

अगर इस संसार में कितना ही सुख मिल रहा हो, तो भी पता जिस दिन चल जाएगा तुम्हें कि यह सब सुख धोखा है, और यहां सिर्फ जंजाल ही जंजाल है उस दिन तुम सांझ होते ही भाग जाओगे। उस दिन भरी गौन गुड़ तजै. . . उस दिन तो अगर बोरी भरा हुआ गुड़ भी रखा हो, बोरी भरा हुआ स्वादिष्ट माधुर्य भी रखा हो तो भी तुम छोड़ कर चले जाओगे। तुम कहोगे : यह सब उलझाने के लिए है। यह गुड़ जो है मक्खियों को बुलाने के लिए है, फंसाने के लिए है। तब तो तुम सांझ होते ही निकल भागोगे। तुम रात भी न ठहरोगे इस जगह, तुम यह भी न कहोगे कि अभी रात है, अभी कहां जाऊं, सुबह तो हो जाने दो! तुम इतनी देर भी न रुकोगे।

इस संसार में गुड़ बहुत है। गुड़ यानी तुम्हें फंसा लेने के बहुत से उपाय, बहुत सी आशाएं। लेकिन बुद्धू ही फंसता है। बुद्धिमान सजग हो जाता है। क्योंकि बार-बार फंस कर पाता है कि कुछ मिलता नहीं--सिवाय दुख के। धन भी दुख देता, पद भी दुख देता, कांटे ही कांटे बढ़ते चले जाते हैं। कल पर आशा टंगी रहती है कि कल शायद सब ठीक हो जाएगा, लेकिन ठीक कभी कुछ नहीं होता। ठीक तो कभी कुछ नहीं होता, एक दिन मौत आती है और सब बिखर जाता है। तुम्हारे जीवन भर का बनाया हुआ आयोजन, ताश के पत्तों के घर जैसा गिर जाता है। इसके पहले कि मौत आए, भागो! इसके पहले कि मौत आए, बहाने मत करो।

"पलटू ऐसन बूझि के, डारि दिहा सिर भार।"

पलटू कहते हैं कि मैं भी ऐसी जंजाल में पड़ा था, लेकिन समझ कर, देख कर सिर का सारा बोझ नीचे गिरा दिया।

"पलटू ऐसन बूझि के, डार दिया सिर भार।

लेहु परोसिनि झोंपड़ा, नित उठि बाढ़त रार।"

जिनसे झगड़ा-झंझट होता था, उनसे कहा कि भाई यह सम्हालो, मैं चला। यह झगड़ा तुम ले लो। तुम्हें इसमें रस है, तुम सम्हाल लो। यह गांठ उपद्रव की तुम सम्हाल लो, मैं चला। यह बोझ मैं छोड़ने को तैयार हूं।

इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम सब भागो और संन्यासी हो जाओ। इसका कुल इतना ही अर्थ है कि जंजाल से जागो। रहो, जहां हो। भीतर का देश बदल लो। भीतर का स्वर बदलो। यहां झगड़ने योग्य मूल्यवान कोई भी चीज नहीं है। इस जगत में इतनी मूल्यवान कोई भी चीज नहीं है कि तुम उसके लिए झगड़ो, रोष करो, हिंसा करो। कौड़ियों के लिए लड़ो मत। कौड़ियों के लिए लड़ कर आत्मा के बहूमूल्य हीरे न गंवाओ।

जीसस ने कहा है : तुमने सारी दुनिया भी जीत ली और अपने को गंवा दिया, तो क्या पाया? और तुमने अपने को पा लिया और सारी दुनिया भी गंवा दी, तो निश्चित पाया। बस अपने को पा लेने वाला ही पा लेने वाला है।

"जल पषान को छोड़िकै, पूजो आतमदेव।"

पहले कहाः संसार के जंजाल को छोड़ दो। लेकिन संसार का जंजाल कुछ लोग छोड़ भी देते हैं, तो धर्म के नाम पर चलते हुए जंजाल में फंस जाते हैं। जंजाल का ऐसा रस है कि इधर से छूटे उधर फंसे। मन शांत रहना ही नहीं चाहता। तो किसी तरह दुकानदारी से छूटे, किसी तरह खाते-बही से छूटे, तो फिर एक और जाल है, वह राह देख रहा है तुम्हारी, प्रतीक्षा कर रहा है कि चलो, यहां फंस जाओ।

"जल पषान को छोड़िकै, पूजो आतमदेव।"

अगर पूजा ही करनी है, तो आत्मा की करो। फिर क्षुद्र बातों में मत उलझो। फिर क्षुद्र विधि-विधानों में मत उलझो। कोई चला गंगा की यात्रा को. . . जल पषान को छोड़ कर . . . कोई कहता है हम गंगा-जल में नहा लेंगे, पवित्र हो जाएंगे। पागल हुए हो! इतना सस्ता है पवित्र हो जाना! गंगा तुम्हारे शरीर को शुद्ध कर देगी, ठीक है। सो कोई भी नदी कर सकती है। लेकिन तुम्हारी आत्मा को गंगा का जल छुएगा? आत्मा को जल छूता ही नहीं। इसलिए जल में स्नान करने से पवित्र न हो जाओगे। चैतन्य में स्नान करो। आत्मदेव की पूजा करो। पत्थर की पूजा करो, लेकिन असली पूजा नहीं है पत्थर की पूजा। असली पूजा चैतन्य की पूजा है। जहां इतना चैतन्य विराजमान है, वहां तुम जड़ की पूजा करने क्यों जाते हो? जगह-जगह परमात्मा खड़ा है। हर तरफ से परमात्मा पुकार रहा है। तुम कहते हो : मैं मंदिर जा रहा हूं। तुम पागल हो गए हो? यह सारा मंदिर उसका है। तुम भागे कहां जा रहे हो! इतना समय तुम जो मंदिर लगाने में लगा रहे हो, यह भी पूजा में लग जाता है। ये वृक्ष भी उसी के हैं। ये पक्षियों के गीत भी उसी के हैं। ये सूरज की किरणें भी उसी की हैं। यह सारा मंदिर उसी का है।

राह पर तुम गुजरते हो, पास से एक आदमी गुजर रहा है, इसके भीतर चैतन्यदेव विराजमान है। उसकी तरफ तो झुकते नहीं हो; भागे चले जा रहे हो मंदिर के पत्थर की तरफ! तुम्हारी आंखें पथरीली हो गई हैं?

"जल पषान को छोड़िकै, पूजो आतमदेव।

पूजो आतमदेव खाय, औ बोलै भाई।"

खूब प्यारी बात कही है! उसको पूजो--जो खाता है, पीता है, बोलता है... जहां चैतन्य है, जहां जीवन है!

"पूजो आतमदेव, खाय औ बोलै भाई।

छाती देकै पांव पथर की मुरत बनाई।।"

कितनी मेहनत करते हो "छाती देकर", कितना श्रम उठा कर पत्थर की मूर्ति बनाते हो, तोड़-तोड़, छैनी से चला-चला कितनी मेहनत करके पत्थर की मूर्ति बनाते हो! और यहां जीवित मूर्तियां चल रही हैं। खाय और बोलै भाई! यहां सभी मूर्तियां परमात्मा की हैं। तुम्हारे हृदय में पूजा हो तो किन्हीं भी चरणों में चढ़ा दो, सभी चरण उसके हैं। शून्य में चढ़ा दो, तो भी उसी के चरणों में पहुंच जाएगी। यहां जो भी अर्चना है, उसी के चरणों में पहुंच जाती है। और तो किसी के चरण नहीं हैं। यहां जितने रूप हैं, उसी के हैं। तुम कहां भागे जाते हो?

"छाती दैकै पांव पथर की मुरत बनाई।
ताहि धोय अन्हवाय विजन लै भोग लगाई।"

फिर उस पत्थर की मूर्ति को धोते हो, नहलाते हो, खूब भोजन-व्यंजन बनाते हो, फिर भोग लगाते हो! तुम्हें होश है तुम क्या कर रहे हो? जो खाता है, उसको तो तुम देते नहीं! जो खा नहीं सकता, उस पर भोग लगाते हो। पागल हो? कुछ होश सम्हालो!

"साक्षात भगवान द्वार से भूखा जाई।
ताहि धोय अन्हवाय विजन लै भोग लगाई।।
छाती दैकै पांव पथर की मुरत बनाई।
साक्षात भगवान द्वार से भूखा जाई।।"

और तुम्हारे द्वार पर एक भिखारी आ जाए साक्षात भगवान, तो भूखा जाता है। तुम कहते हो : आगे बढ़ो! चलो आगे चलो! अभी मैं पूजा कर रहा हूं। या अभी मेरे पूजा का वक्त है, अभी न आओ।

मैंने सुना है, एक भिखमंगा एक द्वार पर भीख मांग रहा है। सेठ ने झांक कर देखा और उसने कहा कि भाई, घर में कोई है नहीं, आगे बढ़ो। भिखमंगा भी एक ही था। उसने कहा : मैं किसी को मांगने थोड़े ही आया हूं। घर में कोई हो या न हो, मुझे दो रोटी चाहिए। मैं कोई आपके आदमी थोड़े ही मांगता हूं कि पत्नी दे दो, बच्चा दे दो। न सही कोई, दो रोटी चाहिए।

उस सेठ ने कहाः रोटी-वोटी भी नहीं है। यहां कुछ भी नहीं है देने को। रास्ते पर आगे बढ़ो।

मगर वह फकीर भी एक ही था। उसने कहा : फिर तुम यहां बैठे-बैठे क्या कर रहे हो जब कुछ भी नहीं है? तुम भी आ जाओ। साथ ही मांग लेंगे; जो मिलेगा आधा-आधा कर लेंगे। मर जाओगे भूखे बैठे-बैठे भीतर।

नहीं, जीवन के प्रति हमारी श्रद्धा नहीं है। हम मरे को पूजते हैं।

पलटू कहते हैंः "साक्षात भगवान द्वार से भूखा जाई।"

यह धोखा है धर्म का। यह तरकीब है बचने की। यह पाखंड है।

आओ कुछ जश्ने शहादती में शिर्कत हो जाए
अपनी खिड़की ही से मकतल का नजारा देखें
कौन मंझधार में जाए सरे-साहिल बैठ
दूर से डूबने वालों का तमाशा देखें।

लोग ऐसे बेईमान हैं, मंझधार में जाकर डूब कर कौन देखे, किनारे पर बैठ कर दूसरे डूबते हों, तो हम यहीं से तमाशा देखेंगे।

धर्म में तो डूबना पड़ता है। यह तो जीवन को आग में डालना है। उसमें कौन झंझट में पड़े! एक पत्थर की मूर्ति खरीद लाए, उसको रख ली, पूजा-पाठ कर लिया, प्रसन्न हो गए, झंझट मिटी।

यह जो है :

आओ कुछ जश्ने शहादत में शिर्कत हो जाए
अपनी खिड़की ही से मकतल का नजारा देखें
कौन मंझधार में जाए सरे-साहिल बैठ
दूर से डूबने वालों का तमाशा देखें।

ये किनारे पर बैठ कर तमाशा देखने की वृत्तियां हैं। लेकिन जब तक तुम न डूबोगे, तब तक कुछ भी न होगा। तमाशबीनी से कुछ भी न होगा। तमाशबीनी तो कर चुके जन्मों-जन्मों। डुबकी कब लोगे? मिटोगे कब? यह पत्थर को पूजने से कुछ हर्जा ही नहीं है; इसमें कुछ बनता-मिटता ही नहीं है। पत्थर को पूज कर सरका दिया, तुम, तुम जैसे थे वैसे के वैसे रहे। लेकिन अगर चैतन्य को पूजोगे, तो तुम्हारे जीवन में रूपांतरण होगा। तब तुम इतनी आसानी से शोषण न कर पाओगे; इतनी आसानी से झूठ न बोल पाओगे; इतने कठोर न रह पाओगे। दया उमगेगी। प्रेम बहेगा। प्रार्थना अगर चैतन्य की होगी, तो कैसे तुम बचोगे? तुम बदलोगे ही। बदलना ही पड़ेगा। उस बदलाहट से बचने के लिए हमने कई उपाय कर लिए हैं। उनको हम धर्म कहते हैं।

"काह लिये बैराग, झूंठ कै बांधै बाना।

भाव-भक्ति को मरम कोई है बिरलै जाना।।"

और यहां तक लोग कर लेते हैं कि विरागी हो गए, संन्यास ले लिया, संसार छोड़ दिया, फिर भी यह सिर्फ वेश की बात होती है, हृदय की नहीं।

"काह लिये बैराग, झूंठ कै बांधै बाना।

ये भी झूठे मोहरे, ये भी झूठे चेहरे, मुखौटे! ये भी सिर्फ उपर-उपर की बात।

"काह लिये बैराग, झूंठ कै बांधै बाना।

भाव-भक्ति को मरम कोई है बिरलै जाना।।"

कोई विरला ही भाव और भक्ति का मरम जान पाता है। कौन? वही जो डूबने की तैयारी रखता है। जो मिटने के लिए तत्पर है। जो पतंगे की तरह ज्योति पर जाकर मिट जाता है। शहीद होने की जिसकी संभावना है--वही। वही, जो अपने को चढ़ा देता है। कोई मरद--पलटू कहते हैं--कोई हिम्मतवर!

अपने को बिना मिटाए परमात्मा नहीं मिलता है। उतनी कीमत चुकानी ही पड़ती है। और कोई कीमत बड़ी नहीं है। हम अपने को देकर परमात्मा को पाते हैं, इसमें हम कीमत ही क्या चुकाते हैं। हमारा मूल्य ही क्या है! हमारा कोई मूल्य नहीं है। दो कौड़ी के बदले हम कोहनूर पाते हैं।

"पलटू दोउ कर जोरिकै गुरु संतन को सेव।

जल पषान को छोड़िकै पूजौ आतमदेव।।"

पलटू कहते हैं कि व्यर्थ की झूठी बातों में अपने को न उलझाओ, और तरकीबें निकाल कर असली से न बचो। नकली में उलझा कर असली से बचने की आयोजना न करो।

खुदा या नाखुदा, अब जिसको चाहो, बख्श दो इज्जत

हकीकत में तो कश्ती इत्तफाकन बच गई अपनी।

ऐसा ही होता रहता है। तुम मुकदमा जीत गए, क्योंकि तुम पूजा करके गए थे पत्थर की मूर्ति की। तुम कहते हो : वाह! मूर्ति ने बचा लिया। दुकान खूब चल गई। तुम कहते हो कि ठीक, वह जो हनुमान-चालीसा पढ़ते हैं उसी की वजह से चल रही है। जैसे जहां हनुमान-चालीसा कोई नहीं प.ढ़ता, वहां दुकानें नहीं चल रही हैं! अमरीका में भी खूब चल रही हैं, हनुमान-चालीसा नहीं चलता। रूस में भी चल रही हैं और वहां तो कोई चालीसा नहीं चलता। हनुमान का भी नहीं चलता, किसी का नहीं चलता।

खुदा या नाखुदा, अब जिसको चाहो, बख्श दो इज्जत

हकीकत में तो कश्ती इत्तफाकन बच गई अपनी।

ये सिर्फ जीवन की साधारण घटनाएं हैं। न कोई मूर्ति बचा रही है, न कोई मंत्र बचा रहा है। मगर तुम चाहो तो जिस पर ठोंक दो। और फिर उससे तुम और उलझे। और ऐसे पाखंड का विस्तार होता चला जाता है।

"पलटू दोउ कर जोरिकै गुरु संतन को सेव।"

अगर सेवा ही करनी हो, तो किसी संत की, किसी सदगुरु की! वहां दोनों हाथ जोड़ कर, वहां समग्रीभूत. . .।

ये दो हाथ जोड़ कर जो नमस्कार भारत में किया जाता है, यह प्रतीक है कि इसमें हृदय और मन दोनों जुड़ गए। इसमें तन-मन दोनों जुड़ गए। इसमें सक्रिय-निष्क्रिय दोनों जुड़ गए। इसमें तुम्हारे भीतर की स्त्री और तुम्हारे भीतर का पुरुष, दोनों जुड़ गए। यह जो दोनों हाथ को जोड़ कर सेवा करने का अर्थ है, इसका अर्थ हैः द्वंद्व जुड़ गया, द्वैत जुड़ गए, अद्वैत हुआ। यह भारतीय नमस्कार का ढंग बड़ा अर्थपूर्ण है। तुम एक हो गए; दो न रहे। ऐसे एक होकर, एक भाव से, एक निष्ठा से, एक श्रद्धा से--किसी गुरु की, किसी संत की सेवा करो।

"जल पषान को छोड़िकै पूजो आतमदेव।"

अगर पूजा ही करनी है तो जीवंत की, चैतन्य की; क्योंकि परमात्मा चैतन्य-रूप है।

इन सूत्रों पर ध्यान करना। इन सूत्रों को भाव बनाना। सीधे-सादे शब्द हैं। कोई पांडित्य नहीं है इन शब्दों में। मगर सत्य की झंकार है। और वही असली बात है।

आज इतना ही।

चौदहवां प्रवचन

ये जमीं नूर से महरूम नहीं

पहला प्रश्नः क्या इस कलियुग में भी कोई प्रभु को उपलब्ध हो सकता है?

कलियुग सदा से है--वैसे ही जैसे सतयुग भी सदा से है। सतयुग में राम थे, रावण भी था। रावण को भूल मत जाना। रावण तो सतयुग में नहीं हो सकता; साथ-साथ थे दोनों। रावण कलियुग में था, राम सतयुग में थे।

सतयुग और कलियुग एक-दूसरे के पीछे पंक्ति में नहीं खड़े हैं, कि पहले सतयुग आया, फिर कलियुग आया। सतयुग और कलियुग समसामयिक हैं, कंटेम्परेरी हैं--ऐसे ही जैसे रात और दिन साथ-साथ हैं; अंधेरा-उजाला साथ-साथ हैं; बुराई-भलाई साथ-साथ हैं।

तुमने सदा ऐसा ही सुना है कि पहले सतयुग था, अच्छे दिन थे, अब बुरे दिन हैं। वह धारणा मौलिक रूप से गलत है। पहले भी ऐसा था; आज भी वैसा ही है। पहले भी बुरे होने की संभावना थी; आज भी बुरे होने की संभावना है। पहले भी भले होने की संभावना थी; आज भी द्वार बंद नहीं हो गए हैं।

और ध्यान रहे, अधिक लोग तो सदा ही कलियुग में रहे हैं। बुद्ध समझाते हैं लोगों को : चोरी न करो, बेईमानी न करो, ईर्ष्या न करो, मद-मत्सर न करो; हिंसा न करो। सुबह से सांझ तक समझाते हैं; चालीस साल ज्ञान की उपलब्धि के बाद यही समझाया। यही और यही। किनको समझाते हैं? सतयुग था? तो जो लोग चोरी करते ही नहीं थे, उनको बुद्ध समझाते हैं चोरी मत करो? जो लोग हिंसा करते ही नहीं थे, उनको बुद्ध समझाते हैं कि हिंसा मत करो? जो लोग ईमानदार थे ही, उनको समझाते हैं कि ईमानदार हो जाओ? तो बुद्ध पागल रहे होंगे। ईमानदारों को कोई नहीं समझाता कि ईमानदार हो जाओ। बेईमानों को समझाना होता है।

महावीर भी वही कर रहे हैं सुबह से सांझ तक। पुरानी से पुरानी किताब वेद भी वही कर रही है। तो वेद के दिन में भी चोर थे, और साधुओं से ज्यादा रहे होंगे; बेईमान थे, और ईमानदारों से ज्यादा रहे होंगे। अगर भले ही लोग होते, शैतानियत होती ही न, तो शास्त्रों की भी कोई जरूरत न थी। शास्त्र किसके लिए लिखे जाते हैं? सद्-उपदेश किसके लिए हैं?

तो मैं तुम्हारी समय की धारणा में एक नया विचार आरोपित करना चाहता हूं : सतयुग सदा है; कलियुग भी सदा है। तुम जो चाहो चुन लो। तुम अभी चाहो तो सतयुग में रह सकते हो। तुम सत हुए तो सतयुग में प्रविष्ट हो गए। और तुम असत हुए तो कलयुग में प्रविष्ट हो गए। तुमने अंधेरे से दोस्ती बांधी तो कलियुग में रहोगे। और तुमने रोशनी से दोस्ती बांध ली तो सतयुग में रहोगे।

सतयुग और कलियुग एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जो मरजी हो, उसमें जी लो। कलियुग को दोष मत दो।

आदमी बहुत होशियार है। आदमी कहता है : हम क्या करें अब, यह तो कलियुग है! तुमने समय पर टाल दी बात। तुमने यह कह दिया कि समय ही खराब है; हमारी कोई खराबी नहीं है। तुमने अपनी जिम्मेवारी हटा दी कंधों से। निश्चित ही, अब तुम कलियुग में रहोगे। क्योंकि जिसने अपनी जिम्मेवारी छोड़ दी, उसके जीवन में जागरण की किरण कभी भी न आएगी। और स्वभावतः जब वह अंधेरे ही अंधेरे में जीएगा, तो उसकी धारणा और मजबूत होती जाएगी कि कलियुग बहुत भयंकर है; इससे छुटकारा नहीं हो सकता। और कलियुग तुम्हीं पैदा कर रहे हो।

जिंदगी को बदलो! जिंदगी तुम्हारी है; और कोई जिम्मेवार नहीं। तरकीबें न खेलो। आदमी हमेशा तरकीबें करता है। दोष किसी और पर टाल देता है। दोष दूसरे पर टाल कर निश्चिंत हो जाता है कि अब मेरा तो कोई दोष है नहीं, अब मैं क्या कर सकता हूं, असहाय हूं।

लेकिन जिस दिन तुम असहाय हुए, उसी दिन नपुंसक भी हो जाते हो। जब तुमने कहा, मैं क्या कर सकता हूं, समय खराब; मैं क्या कर सकता हूं, समाज खराब; मैं क्या कर सकता हूं, चारों तरफ बेईमान ही बेईमान हैं; मुझे भी बेईमान होना ही पड़ेगा, मजबूरी है--तो तुम बेईमान हो गए और तुम बेईमान होते चले जाओगे। तुम कमजोर हो जाते हो--उसी दिन, जिस दिन तुम जिम्मेवारी किसी और पर छोड़ते हो। तुम उसी दिन गुलाम हो जाते हो।

मालिक वही है, जिसने कहा : बुरा हूं तो मैं अपने कारण हूं। स्वतंत्र वही है, जिसने कहा : चोर हूं तो मैं अपने कारण हूं। चोर हूं सही; लेकिन कारण मैं हूं। मैंने चोर होना चुना है। यह आदमी साफ-सुथरा है। इस आदमी की जिंदगी में क्रांति हो सकती है। क्योंकि इसके पास क्रांति की मूल कुंजी है। यह कहता है : बुरा हूं तो मैं अपने कारण हूं। अगर अपने कारण बुरा हूं तो जिस दिन चाहूंगा, उस दिन भला हो जाऊंगा। वह दरवाजा मैंने अपने हाथ में रखा है। वह कुंजी अपने हाथ में है।

इसलिए तो इस देश में हम संन्यासी को स्वामी कहते हैं। स्वामी का अर्थ होता है मालिक। मालकियत की घोषणा कि मैं अपना मालिक हूं--बुरा हूं तो, भला हूं तो। मैं जैसा हूं, मैं ही कारणभूत हूं।

इससे घबड़ाओ मत कि मैं कारणभूत हूं। इससे हमें घबड़ाहट लगती है कि मैं अपने अपराधों के लिए जिम्मेवार; मैं अपनी बुराइयों के लिए जिम्मेवार; मैं अपनी शैतानियत के लिए जिम्मेवार! तुम्हें बहुत घबड़ाहट होती है। लेकिन इसका दूसरा पहलू देखो। इसका दूसरा पहलू यह है कि अगर मैं ही जिम्मेवार हूं तो कुछ किया जा सकता है; तो संभावना रूपांतरण की है, शेष है।

लोग तो टालते ही चले जाते हैं। अब समय पर टाल दिया! समय को कहां पकड़ोगे? कलियुग को तुम कैसे बदलोगे? सतयुग में? तो तुम्हारे तो हाथ के बाहर ही बात हो गई। तो फिर जो है, ठीक है; इसी में गुजार लेना है--ऐसे ही रोते, ऐसे ही झींकते, ऐसे ही रिरियाते, ऐसे ही सड़कों पर सरकते कीड़े-मकोड़ों की तरह जी लेना है।

मैं तुमसे कहना चाहता हूं : सदा से आदमी की संभावना रही है बुरा हो जाए, भला हो जाए। राम के समय में भी सभी लोग भले न थे। अगर सभी लोग भले होते तो राम को कोई अवतार क्यों कहता, कभी सोचा इस बात पर? राम की इतनी प्रतिष्ठा क्यों होती अगर सभी लोग भले होते? उन भले रामों में राम भी खो गए होते। कौन पूछता! दो कौड़ी की भी बात नहीं थी फिर। जहां सारे भले लोग हों, जहां संतों की जमात हो, वहां कौन राम को पूछता! राम को हम भूल नहीं सके, हजारों साल बीत गए। क्यों नहीं भूल सके? रावणों की भीड़ थी, उसमें राम खूब उभर कर प्रकट हुए। जैसे अंधेरी रात में तारा चमकता है; दिन में तो नहीं चमकता। दिन में भी तारे हैं आकाश में, लेकिन चमकते नहीं। सूरज की रोशनी में सब खो जाते हैं। अंधेरे में चमकते हैं। काले बादल में जब बिजली चमकती है तो बहुत साफ दिखाई पड़ती है।

काले ब्लैक बोर्ड पर हम सफेद खड़िया से लिखते हैं, ताकि दिखाई पड़े। राम अब तक दिखाई पड़ रहे हैं--रावणों का ब्लैक बोर्ड रहा होगा। काले बादल रहे होंगे, इसलिए राम की चमक अभी तक नहीं खोई है। कृष्ण दिखाई पड़ते हैं; महावीर, बुद्ध दिखाई पड़ते हैं। क्यों? इतना सम्मान किसलिए? यह सम्मान हमने दिया क्यों? यह सम्मान हम न्यून को देते हैं, बिरले को देते हैं, अद्वितीय को देते हैं। यह सम्मान अगर सभी लोग हों एक जैसे, तो फिर नहीं देते।

मैंने सुना है, जब पहला आदमी इलाहाबाद में मैट्रिक पास हुआ था, तो पता है तुम्हें, हाथी पर उसका जुलूस निकला था! सारा इलाहाबाद सजाया गया था। पहला आदमी मैट्रिक पास हो गया! अब मैट्रिक कितने

लोग पास हो रहे हैं, कोई गधे पर भी जुलूस नहीं निकालता। अब तुम अगर किसी से कहो कि मैट्रिक पास हूं, तो वह कहता है : कौन सी खूबी है! इसमें बताने की क्या बात है? मैट्रिक पास कहते वक्त तुमको भी ऐसा छाती बैठती मालूम पड़ेगी कि यह क्या कह रहे हैं।

जमाना था, जब मिडलची कलैक्टर हो जाते थे। उन दिनों कोई मैट्रिक पास हो जाता था तो दुदुंभि पिट जाती थी कि कोई गजब का काम हो गया।

राम की दुदुंभि अभी तक पिट रही है और हमने उनको मर्यादा-पुरुषोत्तम कहा--पुरुषों में उत्तम मर्यादा वाले। लोग अमर्याद रहे होंगे। लोग बड़े हीन रहे होंगे। नहीं तो कैसे राम को तौलोगे? किस कारण विशिष्टता दोगे?

कोहनूर की प्रतिष्ठा है; कंकड़ों की तो नहीं; कांच के टुकड़ों की तो नहीं। अगर कोहनूर सड़कों पर पड़े हों, गली-कूचे हर जगह पड़े हों, बच्चे उनसे खेल रहे हों, राह पर ढेर लगे हों, सीमेंट में मिला कर मकान बनाए जा रहे हों--फिर कोहनूर इंगलैंड की महारानी रखे बैठी रहे, क्या मूल्य है? मूल्य होता है बिरले का।

राम को हम भूले नहीं। अब्राहम को हम भूले नहीं। मो.ज.ज को हम भूले नहीं। क्राइस्ट को हम भूले नहीं। मोहम्मद को भूले नहीं। कारण क्या है? आखिर ये लोग टंगे क्यों रह गए हमारी स्मृति में? बड़ी अंधेरी रात थी। उस अंधेरी रात में ये चमकते हुए तारे भूलें भी कैसे!

मैंने सुना है :

दैर वीरां है, हरम है बेखरोश
बरहमन चुप है, मोअज्जन है खामोश
सोज है अशलोक में बाकी न साज
अब वो खुत्वे न हिद्दत है न जोश
हो गई बेसूद तलकीने-सवाब
अब दिलाएं भी तो क्या खोफै अजाब
अब हरीफे-शेख कोई भी नहीं
खत्म है अब हर एक मोजू-ए-खिताब
आज मधम-सी है आवाजे दरूद,
आज जलता ही नहीं मंदिर में ऊद
क्या कयामत है यकायक हो गया
महफिले जहाद पर तारी जमूद
रब्बेबर हक खालिके-आली जनाब
हो गए अपने मिशन में कामयाब
सिलसिला रूश्दो हिदायत का है खत्म
आसमां से अब न उतरेगी किताब
मर गया ऐ बाय शैतां मर गया।

यह उस दिन की कविता है, जिस दिन शैतान मर गया। शैतान मर गया तो क्या हुआ?

मर गया ए बाय शैतां मर गया!

उस दिन यह हुआ : दैर वीरां है! मंदिर खाली पड़े हैं। शैतान ही मर गया तो मंदिर में भगवान की क्या जरूरत रही!

दैर वीरां है, हरम है बेखरोश

मस्जिद शांत है; अब कोई अजान नहीं देता। शैतान ही मर गया तो अब भगवान की अजान भी कौन दे! सभी तरफ भगवान का राज्य हो गया। संघर्ष ही समाप्त हो गया।

दैर वीरां है, हरम है बेखरोश
बरहमन चुप है मोअज्जन है खामोश

अजान देने वाले चुप हो गए हैं और ब्राह्मण अब मंत्रों का पाठ नहीं करते हैं। अब किसकी पूजा, किसका पाठ!

मर गया ऐ बाय शैतां मर गया

सोज है अशलोक में बाकी न साज।

अब न तो श्लोक में बल है, न संगीत है, न उत्साह है।

अब वो खुत्वे में न हिद्दत है न जोश

अब धार्मिक भाषण में वह गरमी भी न रही।

मर गया ऐ बाय शैतां मर गया

शैतान ही मर जाए. . . जिस दिन अंधेरा मर जाएगा, उस दिन रोशनी में क्या मजा रह जाएगा! जिस दिन बीमारी मर जाएगी उस दिन स्वास्थ्य में क्या खूबी रह जाएगी! जिस दिन कांटे होंगे ही नहीं, उस दिन फूल की प्रशंसा में गीत कौन गाएगा!

हो गयी बेसूद तकलीने-सवाब।

अब दिलाएं भी तो क्या खोफै अजाब।

जिंदगी से सब पाप मिट गए अब लोगों को डराएं भी पाप से तो कैसे डराएं!

अब हरीफे-शेख कोई भी नहीं!

अब अच्छाई का कोई दुश्मन ही नहीं है। अब ज्ञानी का कोई दुश्मन ही नहीं है।

खत्म है हर एक मोजू-ए-खिताब

अब तो लोगों को संबोधित करने का कोई विषय ही न बचा।

मर गया ए बाय शैतां मर गया!

आज मधम-सी है आवाजे-दरूद

आज पूजा-पाठ बड़ा मद्धम हो गया है। मरा-मरा! श्वास टिकी-टिकी--अब गई तब गई!

आज मधम-सी है आवाजे दरूद

आज जलता ही नहीं है मंदिर में ऊद।

अब कोई उद्बत्ती नहीं जलाता, अब कोई धूप नहीं जलाता मंदिर में। परमात्मा की प्रार्थना अब नहीं होती। अब थालियां नहीं सजतीं आरती की। अब कोई फूल लेकर मंदिर में पूजा के लिए नहीं आता। किसकी अर्चना!

मर गया ऐ बाय शैतां मर गया।

क्या कयामत है यकायक हो गया

यह क्या हो गया?

महफिले जह्हाद पर तारी जमूद!

यह भले लोगों की जबान एकदम बंद क्यों हो गई? ये धार्मिक लोग एकदम चुप क्यों हो गए? ये धार्मिक लोगों की जबान पर ताले क्यों पड़ गए? यह क्या गजब हो गया!

रब्बेबर हक . . . हे परमात्मा! खालिके-आली जनाब! हो गए अपने मिशन में कामयाब। भगवान अपने मिशन में सफल हो गया। मर गया ऐ बाय शैतां मर गया। शैतान मर गया, भगवान अपने मिशन में सफल हो गए--इस कारण अब मंदिर-मस्जिद चुप पड़े हैं।

सिलसिला रूश्दो हिदायत का है खत्म

अब उपदेश की कोई जरूरत न रही।

आसमां से अब न उतरेगी किताब।

अब न वेद उतरेगी, न इंजील, न कुरान।

सिलसिला रूश्दो हिदायत का है खत्म

आसमां से अब न उतरेगी किताब

अब मर गया ए बाय शैतां मर गया।

किताबें उतरती रहीं--कुरान, वेद, बाइबिल। पैगंबर आते रहे--अब्राहम, मो.ज.ज, मोहम्मद, जीसस। तीर्थंकर उठते रहे--महावीर, बुद्ध, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ, आदिनाथ। बड़े संदेशवाहक पैदा हुए--जरथुस्त्र, लाओत्सु। संत चमके। ये किसलिए हैं? यह किस तरह है? ये सब सबूत हैं इस बात के कि कलियुग सदा से था। शैतान कभी मरा नहीं था। न शैतान कभी मरा था, न आज मर गया है, न कभी मरेगा। शैतान और परमात्मा साथ-साथ हैं, जैसे दिन और रात साथ-साथ हैं। तुम्हारी जो मर्जी, चुन लो। तुम चाहो तो दिन में सो जाओ और रात में जागो। तुम चाहो तो रात में सो जाओ और दिन में जागो। तुम्हारी मरजी जो तुम चाहो। तुम चाहो कलियुग में सो जाओ, सतयुग में जागो। और तुम चाहो सतयुग में सो जाओ कलियुग में जागो। तुम अभी चाहो राम बन जाओ, चाहो रावण बन जाओ। ये राम और रावण दो संभावनाएं हैं।

इसलिए तुम्हारे समय की धारणा को मैं बदलना चाहूंगा। मैं ऐसा नहीं कहता कि पहले सतयुग हुआ, फिर कलियुग आया। यह तो बात ही गलत है। दोनों सदा साथ रहे। दोनों समय के, गाड़ी के दो चाक हैं।

और तब एक और नई संभावना का द्वार खुलता है। तुम चाहो तो दोनों से मुक्त हो जाओ। समय से मुक्त हो जाओ। बुरे-भले दोनों से मुक्त हो जाओ। वही मोक्ष है। वही निर्वाण है। जो बुरा है, वह बुरे से बंधा है। जो भला है वह भले से बंधा है। दोनों बंधे हैं। अच्छा है कि बुराई से बंधने की बजाए भलाई से बंधो। अगर जंजीरें ही पहननी हैं तो सोने की पहनो। क्या जरूरत है लोहे की पहनो! --जंग लगी, वजनी, भारी! आभूषण ही पहनने हैं तो बहुमूल्य पहनो, हीरे-जवाहरातों के पहनो। मगर बंधे तो रहोगे।

बुराई का बंधन है बुरा, भलाई का बंधन है भला; लेकिन बंधन तो बंधन ही है। और जहर फिर चाहे कितनी ही अच्छी बोतल में हो--सोने की बोतल में हो, तो भी क्या फर्क पड़ता है, मारेगा तो ही।

धर्म की आत्यंतिक खोज समय से मुक्त हो जाना है--कालातीत। न तो सतयुग रह जाए, न कलियुग रह जाए। कलियुग में जो जीता है, वह दुर्जन। सतयुग में जो जीता है वह सज्जन। और दोनों के जो पार हो गया, उसी को हम संत कहते हैं। संत का अर्थ है, जो समय में जीता ही नहीं; जो समय के बाहर सरक गया। बुराई से ही नहीं सरका, भलाई से भी सरक गया। जिसने रात तो छोड़ी ही छोड़ी, दिन भी छोड़ा। जिसने सब छोड़ दिया। जो अपने भीतर सरक गया। जो अपने शून्य में विराजमान हो गया। गिरह हमारा सुन्न में, अनहद में विसराम।

तुम पूछते हो कि क्या इस कलियुग में भी कोई प्रभु को उपलब्ध हो सकता है? तुम ऐसा पूछ रहे हो : कि क्या इस अंधेरी रात में भी कोई दीया जला सकता है? तुमसे कहा किसने? अंधेरी रात ने दीया जलाने में बाधा कब डाली? अंधेरा दीया जलाने में बाधा डाल भी कैसे सकता है? अंधेरे का बल क्या है? दीया जलता हो तो ऐसा थोड़े है कि अंधेरा झपट्टा मार कर उसे बुझा दे; कि तुम दीया जलाओ तो अंधेरा जलने न दे। अंधेरे की सामर्थ्य क्या? दीया जला कि अंधेरा गया। रात के बहाने निकाल कर दीया जलाने से बचने की कोशिश मत करो।

जैन मानते हैं कि यह पंचमकाल है, अब कोई तीर्थंकर नहीं हो सकता। हिंदू मानते हैं यह कलियुग है, अब कोई भगवान को कैसे उपलब्ध हो! ये सब हताश बातें हैं। ये बातें आदमी को नपुंसक किए जा रही हैं। मैं तुमसे कहता हूं : ऐसा ही सदा था, ऐसा ही अब है। जो पहले हो सका, आज हो सकता है। जो आज हो सका, वही पहले भी हो सकता था। जरा भी फर्क नहीं है। दुनिया वैसी की वैसी है।

लेकिन हमें अड़चन होती है। हमें अड़चन होने के कारण हैं। होता ऐसा है कि अतीत की जब तुम स्मृति करते हो तो उसमें से भले-भले को चुन कर स्मृति करते हो। बुद्ध की तो हमें याद है, लेकिन बुद्ध जिन लोगों के बीच गुजरते थे, जिन लोगों के बीच जीते थे, उनकी हमें कोई याद नहीं, उनका कोई इतिहास नहीं बना। वे तो मिट गए। बुद्ध बचे। तो वह जो काला ब्लैकबोर्ड था, वह तो खो गया, सिर्फ चमकते हुए सफेद अक्षर हमारी याद

में रह गए हैं। आज तुम्हें याद नहीं कि बुद्ध के समय का आदमी कैसा था; राम के समय का आदमी कैसा था; कृष्ण के समय का आदमी कैसा था। यह चमकते हुए तारों की याद रह गई और अंधेरी रात का हमने कोई स्मरण न रखा। इससे ठीक उलटी बात घटती है अभी। अभी ऐसा घटता है कि करोड़ आदमी में कभी एकाध कोई चमकता आदमी मिलता है। वे जो करोड़ अंधेरे से भरे हुए लोग हैं वे रोज मिलते हैं उठते, बैठते सुबह सांझ, घर में, बाहर, दुकान, बाजार में--सब जगह वही है। बुद्ध तो कभी-कभार कोई मिलेगा। और मिल भी जाए तो तुम देख न पाओगे। क्योंकि बुरे, पागलों की भीड़ में जीते-जीते जीते-जीते तुम्हारा बुद्ध को देखने का, बुद्ध को परखने की जो सूझ चाहिए वही खो गई है। आदमियों से घिसते-पिसते, आदमियों की बेईमानी, चोरी सहते-सहते तुम इतने कठोर हो जाते हो! होना ही पड़ता है।

अगर किसी आदमी को कांटे के ही रास्ते पर चलना पड़े, कांटों पर ही चलना पड़े, तो धीरे-धीरे उसका चमड़ा कठोर हो जाएगा। फिर एक दिन फूल को स्पर्श हो, तो फूल का स्पर्श उसे पता ही न चलेगा। चमड़ी मोटी हो गई। इसलिए तो पैर की चमड़ी मोटी हो जाती है। अब तुम पैर से ही अगर गुलाब को टटोलना चाहोगे तो न टटोल पाओगे; पैर की चमड़ी मोटी हो गई। होना ही पड़ा। जमीन पर चलना है, कंकड़-पत्थर पर चलना है, तो पैर की चमड़ी को मजबूत, मोटा होना ही पड़ेगा। अब अगर तुम पैर की चमड़ी से टटोलो गुलाब को, तो तुम्हें कुछ पता न चलेगा। ऐसी ही बात है।

जिंदगी में रोज तो मिलते हैं बुरे लोग, कभी संयोगवशात कोई जीवंत भगवत्ता को उपलब्ध व्यक्ति के दर्शन होते हैं--तब तक तुम्हारी आंखें क्षमता खो चुकी होती हैं। तुम इस आदमी को समझ नहीं पाते। तुम मान नहीं पाते। तुम्हारा हृदय हजार संदेहों से भर गया। क्योंकि जब भी तुमने माना, धोखा खाया। जिसको माना, उससे धोखा खाया। धोखे ही धोखे की कथा है। जिसको तुमने सोचा कि ठीक है, वही गलत सिद्ध हुआ। यह इतनी बार हुआ कि अब तुम कैसे मानो किसी को, कि कोई ठीक हो सकता है! और संत हो सकता है, यह तो बात ही नहीं मानने की।

तो तुम्हारे जीवन का अनुभव जो है, वह तुम्हें कलियुग से घेरता है, और कभी एकाध कहीं किसी व्यक्ति में सतयुग की लपट होती है। तुम उसे मानते नहीं। तुम उसे देखते नहीं। तुम उसे स्वीकार नहीं करते।

और तुम्हें मैं क्षमा करता हूं। तुम्हें मैं क्षमा करता हूं, क्योंकि मैं जानता हूं कि तुम्हारी भी अड़चन है। तुम भी क्या करो! हजार बार भरोसा किया और हजार बार भरोसा टूटा, तो अब तुम भरोसा करने में असमर्थ हो गए हो। अब श्रद्धा सुगम न रही। जब पाया, कांटा पाया। और जब भी कांटा पाया, तो पहले हर कांटे ने फूल का धोखा दिया था। आज फूल को देख कर भी तुम यही सोचोगे कि पता नहीं, फिर धोखा हो! मन कहेगा : अब तो कुछ सीखो! कहां इस कलियुग में? कहां इस अंधेरी दुनिया में कोई जागता है? कहां कोई प्रभु को उपलब्ध होता है? अब भगवान कहां?

तुम्हारी अड़चन मेरी समझ में आती है। अतीत के भगवानों की याद्दाश्त रह गई; अतीत के मनुष्यों की याद्दाश्त खो गई। आज के मनुष्य दिखाई पड़ते हैं; आज का भगवान दिखाई नहीं पड़ता। इसलिए बड़ी निराशा पैदा होती है।

न फलक पर कोई तारा, न जमीं पर जुगनू
जो किरन नूर की है, मात हुई जाती है,
कारगर योरिशे जुलमात हुई है कितनी
क्या हमेश के लिए रात हुई जाती है?

बहुत बार यह मन में सवाल उठता है। न फलक पर कोई तारा---- एक तारा नहीं दिखाई क्षितिज पर। . . . न जमीं पर जुगनू. . .छोड़ो तारों की बात, रात ऐसी अंधेरी है कि एक तारा नहीं दिखाई पड़ता फलक पर,

आसमान पर एक तारे की झलक नहीं। रात ऐसी अंधेरी है कि तारों की तो बात छोड़ दो, जमीन पर कोई जुगनू भी चमकता हुआ नहीं दिखाई पड़ता।

न फलक पर कोई तारा न जमीं पर जुगनू

जो किरन नूर की है मात हुई जाती है।

इसलिए प्रकाश की किरण पर भरोसा कैसे आए? प्रकाश की किरण हारी जाती है। ऐसा लगता है कि अब हम आशा छोड़ देंगे, सत्य नहीं होगा; नहीं हो सकता; इस कलियुग में कहां सत्य! वह सतयुग में होता था, वह कथा है पुराणों में! वह भी क्या पक्का पता, होता था कि नहीं होता था। मगर पहले होता होगा, अब तो नहीं होता। और अब तो कभी नहीं होगा। वह स्वर्णयुग जा चुका।

कारगर योरिशे जुलमात हुई है कितनी. . . और अंधेरे में कितने जुल्म हुए हैं! अंधेरे के द्वारा कितने जुल्म हुए हैं! अंधेरा कितना झपट-झपट कर हमें तोड़ता रहा, सब तरफ से लूटता रहा है!

कारगर योरिशे जुलमात हुई है कितनी!

क्या हमेशा के लिए रात हुई जाती है?

तो यह संदेह स्वाभाविक है कि मन में विचार उठने लगे : क्या हमेशा के लिए रात हुई जाती है? क्या अब कभी सुबह न होगी?

कलियुग का अर्थ होता है कि अब कभी सुबह न होगी। कलियुग का अर्थ है कि यह आखिरी रात आ गई। वे दिन गए, जब दिन हुआ करता था। वे दिन गए, वे दिन सपने हो गए।

तुम लोगों की बातों में सुनो। वे कहते हैं : वे पुराने भले दिन! वे अच्छे दिन! लोग पीछे की तरफ सोचते हैं कि अच्छे दिन थे। उसके पीछे भी मनोवैज्ञानिक कारण है। उसके पीछे यह अर्थ नहीं कि पीछे अच्छे दिन थे। आदमी ऐसा ही रहा है, सदा से ऐसा ही रहा है। जरा भी फर्क नहीं है आदमी में। सामान बदल गए हैं, मगर आदमी नहीं बदला। आदमी की सारी वृत्तियां वही की वही हैं।

तुम सोचते हो : आज का आदमी बुरा है। तो चंगीज खान आज तो नहीं हुआ। और नादिरशाह आज तो नहीं हुआ और तैमूरलंग आज तो नहीं हुआ। कुछ फर्क नहीं हुआ है। तुम सोचते हो कि पीछे सब ठीक था। इसके पीछे मनोवैज्ञानिक कारण है, ऐतिहासिक कारण नहीं। हर आदमी अपने पीछे बचपन छोड़ आया है, वही कारण है।

बचपन में कोई चिंता न थी, कोई जिम्मेवारी न थी, कोई फिकर-फांटा न था। दुनिया में क्या हो रहा था, कुछ पता भी न था। बचपन में सब तरफ रोशनी थी; फूल खिले थे; तितलियां उड़ रही थीं; आकाश में बादल छाए थे और परियों का राज्य था। हर बच्चा अपने पीछे छोड़ आया है सुख के दिन, फिर चिंता आई, फिर परेशानी आई, फिर बेचैनियां आईं, फिर संघर्ष आया, फिर लड़ना, जूझना, हारना, ईमानदारी-बेईमानी की दुनिया शुरू हुई, फिर बाजार पैदा हुआ।

तो हर आदमी अपने पीछे बचपन छोड़ आया है। उस बचपन के कारण एक मनोवैज्ञानिक धारणा बनी है कि पहले सब अच्छा था। और बचपन के भी पहले हर आदमी गर्भ के नौ महीने छोड़ आया है। वे नौ महीने अदभुत थे। उन नौ महीनों में तो कोई चिंता का सवाल ही न था। भोजन भी खुद नहीं करना पड़ता था, मां करती थी। खून भी खुद नहीं बनाना पड़ता था, मां बनाती थी। श्वास भी खुद नहीं लेनी पड़ती थी, मां लेती थी।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मां के गर्भ में जैसा सुख बच्चा जान लेता है, उसी के कारण जीवन भर पीछे लौट-लौट कर सोचता है कि पीछे कितना सुख था! और यह हर आदमी बचपन से गुजरा है। तो हर आदमी के मन में यह धारणा बैठी है कि पहले अच्छा था। इसी पहले अच्छे का विस्तार है सतयुग का ख्याल, कि पहले सब अच्छा था और अब सब बुरा हो गया।

कुछ बदला नहीं है। सब वैसा ही है।

ये बरसता हुआ मौसम, ये-शबे तीरो-तार

किसी मद्धम से सितारे की जिया भी तो नहीं

उफ ये वीरानी-ए-माहौल-ये वीरानी-ए-दिल
आसमानों से कभी नूर भी बरसा होगा
बर्के इलहाम भी लहरा गई होगी शायद
लेकिन अब दीद-ए-हसरत से सू-ए-अर्श न देख
अब वहां एक अंधेरे के सिवा कुछ भी नहीं
देख इस फर्श को जो जुल्मते-शब के बावस्फ
रोशनी से अभी महरूम नहीं है शायद
इकन इक जर्रा यहां अब भी दमकता होगा
कोई जुगनू किसी गोशे में चमकता होगा
ये जमीं नूर से महरूम नहीं हो सकती
किसी जांबाज के माथे पर शहादत का जलाल
किसी मजबूर के सीने में बगावत की तरंग
किसी दोशीजा के ओठों पै तबस्सुम की लकीर
कल्बे-उश्शाक में महबूब से मिलने की उमंग
दिले जुहाद में नाकरद गुनाहों की खलिश
दिल में एक फाहशा के पहली मोहब्बत का ख्याल
कहीं एहसास का शोला ही फरोजां होगा
कहीं अफकार की कंदील ही रोशन होगी
कोई जुगनू कोई जर्रा तो दमकता होगा
ये जमीं नूर से महरूम नहीं हो सकती।
ये जमीं नूर से महरूम नहीं हो सकती!

माना कि रात बड़ी अंधेरी है, लेकिन कहीं इस अंधेरी रात में भी कोई तारा चमकता होगा। खोजना पड़ेगा। जिन्होंने खोजा, उन्होंने ही पाया। कहीं तो कोई कंदील जलती होगी! भयानक अमावस है!

"ये जमीं नूर से महरूम नहीं हो सकती"।

कहीं तो कोई आलोक होगा परमात्मा का।

उस आलोक को ही हम सदगुरु कहते हैं। उसी को पलटू ने कहा है : सदगुरु के चरणों में लग जाओ। खोजो! माना रात अंधेरी है, सदा से अंधेरी रही है, और सदा से कहीं न कहीं जिन्होंने खोजा है उन्हें रोशनी की कोई किरण भी मिल गई है।

ये बरसता हुआ मौसम, ये शबे-तीरो-तार

यह अंधेरी डरावनी रात, यह धुआंधार आकाश से गिरती हुई जलधार, यह अंधड़, यह तूफान, यह बादलों की गड़गड़ाहट, यह घबड़ाहट से भरी हुई रात . . . किसी मद्धम से सितारे की जिया भी तो नहीं! ऐसे बादल धिरे हैं, ऐसे अंधेरे धनधोर बादल धिरे हैं! किसी मद्धम से सितारे की जिया भी तो नहीं! कोई छोटे-मोटे चमकते हुए तारे की रोशनी भी कहीं दिखाई नहीं पड़ती।

उफ ये वीरानी-ए-माहौल. . .

यह वातावरण का सन्नाटा। उफ ये वीरानी-ए-माहौल ये वीरानी-ए दिल!

न केवल वातावरण में सन्नाटा है, भीतर दिल भी दबा जाता है, और मरा जाता है, भीतर दिल में भी सन्नाटा है। बाहर भी अंधेरी रात है, भीतर भी अंधेरी रात है।

आसमानों से कभी नूर भी बरसा होगा।

आदमी सोचता है इस अंधेरे में कि कभी तो आकाश से नूर बरसा होगा। सुनते हैं कहानियां, पढ़ते हैं कहानियां : कभी तो बरसा होगा।

और तुम चकित होओगे यह जान कर कि ऐसा तुम ही नहीं सोचते कि कभी नूर बरसा होगा, पुराने से पुराने शास्त्र भी यही कहते हैं कि पहले अच्छा था, अब सब खराब हो गया। चीन में सबसे ज्यादा पुरानी किताब

है। वह एक ही पन्ना है और वह पन्ना भी आदमी की खाल पर लिखा गया है। वह कोई छह हजार साल पुराना है। कहते हैं, वह वेद से भी ज्यादा पुराना है। अगर उसे पढ़ो तो बड़ी हैरानी होती है। वह ऐसा मालूम पड़ता है कि आज ही सुबह के अखबार का संपादकीय हो। उसमें कहा है कि बेटे बाप के खिलाफ हो गए हैं, पत्नियां धोखेबाज, दगाबाज हो गई हैं। वफा नहीं रही दुनिया में। शिष्यों में गुरुओं के प्रति श्रद्धा नहीं है। अच्छे दिन कहां खो गए? हे प्रभु, ये बुरे दिन क्यों आ गए हैं? इसमें तुम्हें जरा भी लगता है कि पुरानी बातें हैं? यह छः हजार साल पुरानी बात! छः हजार साल पहले भी आदमी ऐसा ही था, जैसे तुम हो। यही तकलीफें थीं, यही परेशानियां थीं, यही झगड़े थे, यही समस्याएं थीं।

मगर आदमी को कुछ सहारा भी तो चाहिए। तो सहारे के दो ढंग हैं। या तो सोचो कि पहले, बहुत पहले, प्राचीन, अति प्राचीन समय में, समय के प्रारंभ में सब ठीक था, इससे सहारा मिलता है कि चलो, कभी तो ठीक था। आज खराब हो गया, हर्ज नहीं; लेकिन कभी तो ठीक था। कभी पुरखों के दिन तो थे।

इसलिए पुरानी चीन की किताबें कहती हैं : पुरखों के दिन, उन पुराने लोगों के दिन, वे बड़े शुभ दिन थे। एक तो यह रास्ता है कि पीछे देखो, क्योंकि आज तो कुछ रोशनी दिखाई नहीं पड़ती। दूसरा एक रास्ता है कि आगे देखो, जैसा कम्युनिज्म देखता है कि भविष्य में आ रहा है स्वर्णयुग। धर्म पीछे की तरफ देखते हैं; राजनीति आगे की तरफ देखती है; मगर दोनों में कुछ भेद नहीं है। आज तो दोनों राजी हैं कि सब गड़बड़ है। धर्म कहता है : बीते कल में सब ठीक था। राजनीति कहती है : आगे कल में सब ठीक होगा। लेकिन आज. . . आज पर दोनों सहमत हैं। बीता कल भी जा चुका है; आया कल आया नहीं। जो जा चुका है, वह तुम्हारी धारणा में है, कभी था नहीं। और जो आने वाला है, वह भी तुम्हारी कल्पना में है, कभी आएगा नहीं। आता तो सदा जो है, वह बिलकुल आज है; जैसा आज है बस ऐसा ही दोहरता है। बस आज ही आज। यही सदा दोहरता है।

आसमानों से कभी नूर भी बरसा होगा।

आदमी को राहत के लिए, सांत्वना के लिए कुछ तो चाहिए!

बर्के इलहाम भी लहरा गई होगी शायद!

और कभी शायद आकाशवाणी भी हुई होगी--जैसा वेद कहते हैं, कुरान कहती है--इलहाम हुआ होगा।

बर्के इलहाम भी लहरा गयी होगी शायद।

और कभी बिजली कौंधी होगी, परमात्मा की आवाज आई होगी और लोगों को सतयुग से भर गई होगी; उठा गई होगी। लोगों को पवित्र कर गई होगी। आसमानों से कभी नूर भी बरसा होगा।

बर्के-इलहाम भी लहरा गयी होगी शायद

लेकिन अब दीद-ए-हसरत से सू-ए-अर्श न देख!

लेकिन अब हरसत भरी आंखों से आकाश की तरफ मत देखो।

लेकिन अब दीद-ए-हसरत से सू-ए-अर्श न देख

अब वहां एक अंधेरे के सिवा कुछ भी नहीं।

यही है कलियुग की धारणा कि अब और मत देखो आकाश की तरफ। अब न तो बर्के-इलहाम लहराती है, न किताबें उतरती हैं, न पैगंबर आते हैं, न देवता उड़ते हैं, न परियां उतरती हैं, न पैगंबर, न तीर्थंकर। अब तो अंधेरा ही अंधेरा है।

देख इस फर्श को जो जुल्मते-शब के बावस्फ

लेकिन जहां अंधेरा है, वहां रोशनी भी होती है। जहां रात गहरी अंधेरी हो जाती है, वहीं सुबह करीब आने लगती है। जब रात बहुत अंधेरी हो जाए तो घबड़ा मत जाना; यह सुबह के करीब आने का सबूत है। और जब रात बहुत अंधेरी हो तो घबड़ाना मत; खोजना, यही मौका है, कि कहीं कोई जलती हुई किरण मिल जाए। दिन में तो खोजना बहुत मुश्किल हो जाएगा। रात को अवसर बनाओ।

देख इस फर्श को जो जुल्मते-शब के बावस्फ

रोशनी से अभी महरूम नहीं है शायद

खोजो! आकाश पर घिर गए हैं बादल और तारे नहीं दिखाई पड़ते। किन्हीं आंखों में खोजो तो शायद तारा मिल जाए--और ऐसा तारा जो कभी नहीं बुझता। किसी हृदय में झांको।

रोशनी से अभी महरूम नहीं है शायद

इक न इक जर्रा यहां अब भी दमकता होगा।

कोई न कोई छोटा कण अब भी दमकता होगा।

इक न इक जर्रा यहां अब भी दमकता होगा

कोई जुगनू किसी गोशे में चमकता होगा।

किसी की गोद में बैठा हुआ कोई जुगनू चमकता होगा।

और ऐसा ही सदा से था। कभी किसी बुद्ध की गोद में बैठ कर चमकता था जुगनू। कभी किसी क्राइस्ट की गोद में बैठ कर चमकता था जूगनू। अब भी चमकता है। आंख चाहिए! खोज चाहिए!

इक न इक जर्रा यहां अब भी दमकता होगा

कोई जुगनू किसी गोशे में चमकता होगा,

ये जमीं नूर से महरूम नहीं हो सकती।

यह हताशा छोड़ो कि कलियुग है, अब क्या होगा! ये जमीं नूर से महरूम नहीं हो सकती। यह असंभव है कि रोशनी बिलकुल मिट जाए। कम हो सकती है, बहुत कम हो सकती है, बहुत-बहुत कम हो सकती है--मिट नहीं सकती। रोशनी मिट जाए तो जीवन ही मिट जाए। रोशनी मिट नहीं सकती। जब तक चेतना है, जब तक होश है, तब तक रोशनी मिट नहीं सकती।

जरा होश को सुलगाओ। जरा आंख ठीक से खोलो। जरा देखने के नए ढंग सीखो। जरा देखने की नई शैली सीखो। या तो प्रेम से भरो आंख को, या ध्यान से भरो आंख को।

किसी जांबाज के माथे पे शहादत का जलाल

किसी हिम्मतवर के माथे पर अभी भी तुम्हें वही हिम्मत मिल जाएगी, जो मंसूर में थी।

किसी जांबाज के माथे पे शहादत का जलाल

किसी साहसी की आंखों में तुम्हें वही साहस दिख जाएगा जो जीसस को सूली पर लटकते वक्त था।

और किसी मजबूर के सीने में बगावत की तरंग

और अभी भी किसी के हृदय में तुम्हें बगावत और विद्रोह की तरंग मिल जाएगी।

किसी दोशीजा के ओठों पै तबस्सुम की लकीर

अभी भी कहीं कोई मुस्कुराता है।

कल्बे उश्शाक में महबूब से मिलने की उमंग।

और अभी भी प्रेमियों के हृदय में परमात्मा से मिलने की आशा है।

कल्बे उश्शाक में महबूब से मिलने की उमंग

खोजो, कहीं कोई भक्त मिल जाएगा, जो अब भी अपनी उपासना में बड़ी आशा से संलग्न है; जिसके प्रेम ने उसके सामने रखी मूर्ति को जीवंत कर दिया है; जिसकी वाणी से मरे हुए शब्द नहीं निकलते; जिसकी वाणी में जिसका हृदय उंडला जाता है।

किसी दोशीजा के ओठों पै तबस्सुम की लकीर

कल्बे उश्शाक में महबूब से मिलने की उमंग।

क्या तुम सोचते हो जमीन पर एक भी भक्त नहीं? क्या तुम सोचते हो जमीन पर एक भी मीरा नहीं? क्या तुम सोचते हो जमीन पर एक भी चैतन्य नहीं? ऐसा तो कभी नहीं हुआ। ऐसा कभी हो भी नहीं सकता।

दिले जुहाद में नाकरद गुनाहों की खलिश

ऐसे भक्त भी तुम्हें मिल जाएंगे, जिन्हें ऐसे पापों के संबंध में पश्चाताप है, जो उन्होंने किए ही नहीं। आज भी! माना, ऐसे लोग भी हैं कि पाप करते हैं और पछताते नहीं; वे कलियुग में रहते हैं। और ऐसे लोग भी हैं कि ऐसे पापों के लिए पछताते हैं जो उन्होंने किए ही नहीं; वे सतयुग में रहते हैं।

दिले जुहाद में नाकरद गुनाहों की खलिश

कांटे की तरह चुभते हैं ऐसे पाप, जो उन्होंने किए ही नहीं--ऐसे सरल हृदय लोग भी अभी मिल जाएंगे--जो रो रहे हैं और कहते हैं हमें क्षमा करो। और उन्होंने कुछ ऐसा किया ही नहीं, जिसके लिए उन्हें क्षमा किया जा सके।

मगर यही तो भक्ति की आखिरी ऊंचाई है, जहां न किए पाप के लिए आदमी क्षमा मांगता है। अभक्ति की आखिरी नीचाई, जहां किए हुए पाप का भी पश्चाताप नहीं होता।

दिल में एक फाहशा के पहली मोहब्बत का ख्याल
कहीं एहसास का शोला ही फरोजां होगा।
और कहीं तो अनुभूति जलती होगी, फरोजां होगी, रोशन होगी!
कहीं एहसास का शोला ही फरोजां होगा
कहीं अफकार की कंदील ही रोशन होगी।
और कहीं तो चिंतन-मनन का दीया जलता होगा!
कहीं अफकार की कंदील ही रोशन होगी
कोई जुगनू, कोई जर्रा तो दमकता होगा।
ये जमीं नूर से महरूम नहीं हो सकती
ये जमीं नूर से महरूम नहीं हो सकती!

यह पृथ्वी कभी भी प्रभु के प्रकाश से खाली नहीं रही, न कभी खाली रहेगी। परमात्मा ने इस पृथ्वी को कभी भी बहिष्कृत नहीं किया है। इसलिए कलियुग की क्या बातें उठाते हो।

पूछते हो : "क्या इस कलियुग में भी कोई प्रभु को उपलब्ध हो सकता है?"

प्रभु शाश्वत है। समय के बाहर है। जो भी आदमी समय के बाहर उठ जाए, कभी भी परमात्मा को उपलब्ध हो सकता है। सब समय बराबर है बाहर जाने के लिए। इसलिए तो पलटूदास ने कहा कि मुहूर्त इत्यादि सब व्यर्थ हैं। छोड़ यह पागलपन। यह मुहूर्त की बात फिर ले आए। तुम फिर उठाने लगे कलियुग!

पलटूदास कहते हैंः समय महूरत व्यर्थ सब! असली बात की फिकर करो। कैसे समय के बाहर आ जाओ, इसकी फिकर करो। और समय के बाहर जब भी किसी को आना पड़ा है तो यही अड़चनें थीं; जो आज हैं वे ही कल थीं। तुम क्या सोचते हो, आज से पांच हजार साल पहले, जब कोई आदमी ध्यान करने बैठता था तो उसके मन में चिंतन नहीं उठता था, विचार नहीं उठते थे? विचार और चीजों के उठते थे। कार का नहीं उठता था विचार, यह पक्का है, क्योंकि कार नहीं थी, लेकिन बैलगाड़ी का उठता था : एक छकड़ा खरीद लूं! माना कि राष्ट्रपति होने का ख्याल नहीं उठता था, लेकिन राजा होने का ख्याल उठता था। फर्क क्या है? भेद क्या पड़ता है? राजनीति इतनी ही थी, कुछ इससे कम न थी। आदमी के मन में महत्वाकांक्षाएं इतनी थीं, कुछ इससे कम न थीं।

अक्सर तुम इस भूल में पड़ जाते हो, क्योंकि तुम्हें ख्याल लगता है कि मैं जब बैठता हूं तो ख्याल आता है कि एक कार कब खरीद पाऊंगा; कितने भले लोग रहे होंगे पांच हजार साल पहले, कि लोग जब बैठते होंगे, कार इत्यादि की चिंता ही नहीं उठती थी, अब यह चिंता उठती है, कलियुग आ गया! पर कार और बैलगाड़ी की चिंता में कोई फर्क है? कार और बैलगाड़ी में फर्क होगा, लेकिन कार और बैलगाड़ी की चिंता में तो कोई फर्क नहीं। तब भी आदमी तड़फता था कि मेरे पास एक शानदार घोड़ा नहीं है। तुम रोते हो कि अब फिएट नहीं है। वह आदमी रोता था कि घोड़ा नहीं है। फर्क कुछ नहीं है। इसलिए तो फिएट को भी हम कहते हैं कि कितने हॉर्सपॉवर की है। वही घोड़े का ही मामला है। अभी भी भाषा वही है : कितने घोड़े की ताकत है इसमें? उन दिनों भी जिसके पास अरबी घोड़ा था, उसकी शान और थी। इंपोर्टेड घोड़े होते थे, इंपोर्टेड गाड़ियां होती हैं; कुछ फर्क नहीं होता।

आदमी की चिंताएं वही की वही हैं। उस दिन भी आदमी को इतना जद्दोजहद करना पड़ता था मन के बाहर आने के लिए। क्या तुम सोचते हो कि तुम जब बैठते हो, फिल्म अभिनेत्रियों के ख्याल आते हैं, तो उस दिन सुंदर स्त्रियां न थीं? उस दिन भी सुंदर स्त्रियां थीं। उस दिन भी उनके संबंध में वैसी ही वासना उठती थी जैसी आज उठती है। सब ऐसा ही था। जो बदलाहटें हुई हैं, वे बाहर हुई हैं। आदमी के मन में कोई फर्क नहीं पड़ता।

हां, अगर बुद्ध को आज फिर वापस आना पड़े तो वे कई चीजें न पहचान पाएंगे। अगर तुम उन्हें एक हैलिकॉप्टर दिखाओगे तो वे नहीं पहचान पाएंगे। वे चौंक कर खड़े हो जाएंगे कि यह क्या है। स्वाभाविक। लेकिन अगर तुम उन्हें आदमी का मन दिखलाओगे तो तुम समझते हो, वे चौंकेंगे? वे चौंकेंगे जरूर--इस बात से चौंकेंगे कि अरे, पच्चीस सौ साल हो गए, आदमी का मन वैसा का वैसा, जरा भी बदला नहीं है! वही दौड़, वही महत्त्वाकांक्षा, वही ईर्ष्या, वही क्रोध, वही मोह, वही लोभ! क्या फर्क है?

उस दिन प्रभु को उपलब्ध हो सकते थे लोग; आज भी उपलब्ध हो सकते हैं।

मैं फिर दोहरा दूं : तुम बचने की कोशिश न करो। तुम बहाने न खोजो। अगर प्रभु को उपलब्ध नहीं होना चाहते, तो भी यही स्वीकार करो मन में कि मैं नहीं उपलब्ध होना चाहता, इसलिए नहीं हो रहा हूं। मालिक तो रहो। मालकियत तो न खो दो। फिर किसी दिन यह मालकियत काम पड़ जाएगी; जिस दिन होना चाहोगे उपलब्ध उस दिन हो सकोगे। यह कलियुग इत्यादि की आड़ें मत लो, ये आड़ें खतरनाक हैं।

दूसरा प्रश्नः कल आपने बताया कि कैसे मो.ज.ज के खंडन व आलोचना से गड़रिए की ग्रामीण और सरल प्रार्थना को हानि पहुंची। और कि परमात्मा ने मो.ज.ज को सावधान किया कि वह लोगों की वैयक्तिक आस्था को खंडित न करे। इसी संदर्भ में याद आता है कि आपने प्रथम पंद्रह वर्षों में सारे देश में घूम कर लोगों की पूजा, उपासना, आस्था व परंपरा का कठोर खंडन व आलोचना की थी। कृपया समझाएं कि इसके पीछे आपका क्या अभिप्राय था?

जरूर परमात्मा ने मो.ज.ज को डांटा-फटकारा, कि तूने ठीक नहीं किया, कि उस सरल हृदय की प्रार्थना खंडित कर दी। लेकिन मुझे परमात्मा ने जरा भी डांटा-फटकारा नहीं है। क्योंकि मैंने जिनकी प्रार्थना खंडित करने की कोशिश की, वे सरल-हृदय लोग नहीं थे। वे गड़रिए जैसे नहीं थे। वे झूठे पाखंडी लोग हैं। परमात्मा ने तो कई बार मुझसे कहा कि ठीक किया, शाबाश!

फर्क ख्याल में ले लेना। किसी सरल हृदय की प्रार्थना मत खंडित करना। मगर झूठी पाखंडियों की प्रार्थना तो खंडित करनी ही होगी; नहीं तो वे कभी सरल हृदय न हो सकेंगे। सरल-हृदय की मैंने कभी खंडित नहीं की। जब भी मैंने कोई सरल हृदय आदमी देखा, तो मैंने उससे कहा : तुम जैसा कर रहे हो, वैसा ही करते रहो; तुम्हें जरा भी बदलने की जरूरत नहीं है। इसलिए कभी-कभी मेरे पास अड़चन भी हो जाती है लोगों को। एक आदमी पूछता है एक बात और उससे मैं कह देता हूं कि ठीक है, तुम ऐसा ही करो। दूसरा कहता है वही बात और उससे मैं कहता हूं, ऐसा भूल कर मत करना। और बड़ी अड़चन खड़ी होती है। वे सोचते हैं कि मैं विरोधाभासी वक्तव्य देता हूं।

जिसकी सच्ची है प्रार्थना, हार्दिक है प्रार्थना, उसको मैं छूता नहीं। मैं कहता हूंः ठीक, इसमें पूरे डूब जाओ। और किस तरह साथ दूं तुम्हें कि तुम डूब जाओ। और जिसकी प्रार्थना झूठी है उसे तो मुझे तोड़ना ही पड़ता है। मो.ज.ज ने सरल-हृदय आदमी की प्रार्थना तोड़ी थी। मैं उन लोगों की प्रार्थना तोड़ रहा हूं जिनको मो.ज.ज जैसे लोग प्रार्थना सिखा गए; जिनकी प्रार्थना झूठी हो गई है।

तुम ऐसा समझो। कहानी में इतना और जोड़ दो। कहानी ही है, जोड़ने में डर भी क्या! कि जब मो.ज.ज चला गया तो मैं गया उस गड़रिए के पास और मैंने उससे कहा : फेंक यह बकवास जो मो.ज.ज ने तुझे सिखाई। इसमें कुछ सार नहीं है। तू अपने सरल-हृदय होने पर वापस लौट जा। तो मैं भी खंडन कर रहा हूं और मो.ज.ज ने भी खंडन किया। मो.ज.ज ने खंडन किया एक आदमी की सीधी-सरल आस्था का, निर्दोष आस्था का। मैं खंडन कर रहा हूं मो.ज.ज के द्वारा दिया गया पांडित्य। मैं खंडित कर रहा हूं एक झूठी प्रार्थना। मैं भी खंडित कर रहा हूं, मो.ज.ज भी खंडित कर रहे हैं। तो अगर खंडन ही देखोगे तो चिंता पैदा होगी। लेकिन मैं खंडन का खंडन कर रहा हूं।

तर्क में एक नियम होता है : निगेशन ऑफ निगेशन (निषेध का निषेध)। निषेध को निषेध से काट देने पर जो शेष रह जाता है, वही परम विधेय है।

तुमसे किसी ने कह दिया परमात्मा नहीं है। तुम मानते थे परमात्मा है। किसी ने कह दिया परमात्मा नहीं है। उसने खंडन कर दिया। तुम मेरे पास आए। अब तुम मानते हो कि परमात्मा नहीं है। मैंने इसका खंडन कर दिया। मैंने कहा कि नहीं, यह तुम्हारी धारणा गलत है। मैंने भी खंडन किया। लेकिन निषेध का निषेध। तुम वापस अपनी सरल-चित्तता पर पहुंच गए।

जिन लोगों की श्रद्धा को मैंने खंडित किया, उनमें श्रद्धा थी ही नहीं। जब भी मैंने कभी पाया, और वह तो कभी मिलता है वैसा आदमी. . .। मो.ज.ज को भी बार-बार नहीं मिलता फिर; एक ही दफा मिलता है पूरे मो.ज.ज की जिंदगी में वह गड़रिया। और परमात्मा को एक ही दफा डांटना पड़ता है मो.ज.ज को, फिर नहीं डांटते वे। क्यों? क्योंकि वैसा सरल-हृदय कभी-कभार. . .। अड़चन होती है।

मैं एक शिविर में था। मैं बोला। माथेरान में शिविर था। सुबह मैं बोला और मैंने कहा : न किसी की पूजा, न किसी का चरण-वंदन, न कोई प्रार्थना, न कोई आस्था। सब छोड़ दो। सबसे मुक्त हो जाओ। यह बोल कर मैं निकला बाहर। इसी सिलसिले में सारा वक्तव्य था। और जैसे ही मैं बाहर आया, सोहन वहां खड़ी थी, उसने झुक कर मेरे पैर छुए। हिंदी और मराठी के जाने-माने लेखक ऋषभदास रांका मेरे पास खड़े थे। उन्होंने कहा : आप रोकते क्यों नहीं? अभी आपने समझाया। आप रोकते क्यों नहीं? मैंने कहा : इसको मैं न रोकूंगा। उसकी आंख से आंसू बहे जा रहे हैं। वह मेरे पैर छू रही है और मैं पैर छूने के खिलाफ बोला हूं। अभी बोल कर ही आ रहा हूं और वही सुन कर ही वह मेरे पैर छू रही है। वह इतनी प्रभावित हो गई है सुन कर! वह इतने भाव से भर गई है कि वह पैर छू रही है!"

ऋषभदास की बात ठीक है, तर्कयुक्त है। मैं किसकी मानूं? और ऋषभदास का मामला बिलकुल साफ है। अदालत में ऋषभदास जीतेंगे, क्योंकि मैं अभी बोल कर आ रहा हूं। अभी देर भी नहीं हुई है; अभी शब्द गूंज ही रहे हैं। अभी लोग निकल ही रहे हैं और सामने ही यह सोहन खड़ी है और यह आंख आंसू से भरे हुए, पैर छू रही है। पर मैंने उनसे कहा : इसे मैं नहीं रोकूंगा। अगर आप मेरे पैर छुएं, मैं रोकूंगा।

वे जो उस दिन से नाराज मुझसे हुए, फिर कभी आए नहीं। उनको तो लगा कि यह आदमी विरोधाभासी है। वे तो भाग ही गए। फिर दुबारा मुझे उनके दर्शन नहीं हुए। जब मैंने उनसे यह कहा कि आप अगर मेरे पैर छुएं, मैं बिलकुल रोक दूंगा; क्योंकि वह झूठा होगा, वह पाखंड होगा। उसमें कुछ मतलब होगा। उसमें कुछ हेतु होगा। आप अगर पैर छुओगे तो मतलब से छुओगे, कुछ स्वार्थ होगा। ये जो पैर छुए जा रहे हैं, इसमें कुछ हेतु नहीं है; यह सिर्फ भाव की बात है। यह छू रही है पैर, ऐसा भी नहीं है। यह पैर छुए जा रहे हैं। इसमें कोई भीतर कर्ता भी नहीं है। यह बुद्धि से नहीं उतर रही है बात। बुद्धि से तो उतरती ही कैसे, क्योंकि अभी तो मैं समझा कर आ रहा हूं; बुद्धिमानों को समझा कर आ रहा हूं। यह हृदय से आ रही है। हृदय का मैंने कभी खंडन नहीं किया है।

इसलिए मैं तुमसे कहना चाहता हूं : भगवान सदा मुझसे कहता रहा है कि ठीक किया, ठीक किया।

एक तो प्रेम होता है और एक कर्तव्य। जब तुम कर्त्तव्य से प्रार्थना करते हो, झूठी हो जाती है; जब तुम प्रेम से करते हो, सच्ची हो जाती है। प्रार्थना वही, चाहे शब्द वही हो, ढंग वही हो, औपचारिक ढांचा वही हो। इसलिए आंख देखना भक्त की, भाव देखना भक्त का। कृत्य मत देखना। कृत्य से तो गड़बड़ हो जाएगी। कृत्य में तो कोई फर्क न लगेगा; पुजारी और भक्त दोनों एक से लगेंगे। पुजारी को तुम सौ रुपए महीने दे देते हो, वह आता है। और कैसा गद्गद भाव दिखलाता है प्रार्थना करते वक्त। अगर तुमने कहा हो कि आंसू भी बहने चाहिए, तो आंसू भी बहाता है। फिर चाहे आंसू बहाने के लिए आंख में कुछ लगाना पड़ता हो, कोई हर्जा नहीं। आखिर अभिनेता भी करते हैं न : जब रोना पड़ता है और कुछ नहीं उपाय होता तो आंख में कुछ लगाते हैं, तो आंसू बहने लगते हैं। पुजारी गद्गद होकर नाचता है; मगर वह सब गद्गद होना बाहर-बाहर है। और अगर गद्गद भी हो रहा है तो इसलिए हो रहा है कि चलो, नौकरी मिल गई। गद्गद हो रहा है कि अब सौ रुपए मिलने ही वाले हैं।

भक्त भी नाचता है। भक्त भी गद्गद होता है। मगर इसके गद्गद होने में बात और है। इसमें कुछ हेतु नहीं है। यह जो सुख इसमें प्रकट हो रहा है, यह और ही सुख है। और दोनों बाहर से एक जैसे मालूम हो सकते हैं। इसलिए बाहर से मत देखना। भक्त की जात मत पूछना। भक्त का ढंग मत पूछना।

पूछ लीजिए भाव!

उसका भाव ही पूछना।

है अदूह मुसर्रत का शेख हो गया बरहम

हाथ में अगर खाली जाम भी लिया मैंने।

वह जो पंडित है, वह जो मौलवी है--शेख--वह नाराज हो गया, रुष्ट हो गया।

है अदूह मुसर्रत का. . .। वह किसी भी तरह के सुख के भाव का दुश्मन है। शेख हो गया बरहम, हाथ में अगर खाली जाम भी लिया मैंने! अगर खाली जाम भी उसने हाथ में देखा तो वह नाराज हो गया। वह यह तो देखता ही नहीं कि जाम भरा है कि खाली है।

अब किसी को क्या बतलाऊं दिल पे अपने क्या गुजरी।

जिंदगी फरीजा थी और जी लिया मैंने।

और अब मैं किसको क्या बतलाऊं कि दिल पर अपने क्या गुजरी. . . कि कैसी कठिनाइयों में दिल बीता। जिंदगी फरीजा थी. . . एक कर्त्तव्य मात्र थी. . . और जी लिया मैंने।

कर्त्तव्य भाव की तरह जो जी रहा है जिंदगी को, उसकी जिंदगी बड़ी कष्टपूर्ण है। क्योंकि कर्त्तव्य में रस तो होता नहीं। यही तो तुम्हारी गति है। यही तो तुम्हारी दुर्गति है। दुकान पर बैठे हो, काम कर रहे हो, कोई पूछे तो कोई रस नहीं है। कहते हो : क्या करें, अब शादी कर ली, अब बच्चे हैं, पत्नी है, करना पड़ता है। कर्त्तव्य भाव से कर रहे हैं। तो सब रस चला गया। अगर यही तुम प्रेम-भाव से कर रहे होते, तो बड़ा रस होता।

जीवन में रस बहता है, जहां प्रेम होता है। और जहां कर्तव्य होता है, वहां रस सूख जाता है। तुम्हारी जिंदगी जो मरुस्थल जैसी हो गई है, इसीलिए कि तुम जो भी कर रहे हो, सब कर्त्तव्य है। पिता है तो इनकी सेवा करनी है। मां है, तो इनकी सेवा करनी है। पत्नी है, तो अब क्या करो, बांध लिया चक्कर तो अब इसका कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा! बच्चे हो गए, तो अब इन्हें स्कूल तो पढ़ाना ही पड़ेगा, इनकी शादी भी करनी पड़ेगी। सब करना पड़ेगा! मगर अब रस तुम्हें किसी बात में नहीं है। तुम्हारा जीवन अगर मरुस्थल हो जाए तो आश्चर्य क्या! यह प्रेमी का ढंग नहीं है। प्रेमी का ढंग और है।

महाराष्ट्र में कथा है विठोबा के मंदिर की, कि भक्त अपनी मां के पैर दाब रहा है और रोज पुकारता है कृष्ण को। और उस रात कृष्ण को मौज आ गई और वे आ गए। और उन्होंने दरवाजा खटखटाया। दरवाजा बंद नहीं था, अटका ही था। भक्त ने कहा : भीतर आ जाओ, कौन है? लेकिन जब कृष्ण आए तो भक्त की पीठ थी उनकी तरफ, वह अपनी मां के पैर दबा रहा था। कृष्ण ने कहा : मैं कृष्ण हूं, तू रोज-रोज पुकारता है, आ गया।

भक्त ने कहा : अभी बेवक्त आए। अभी मैं मां के पैर दाब रहा हूं। फिर कभी आना। यह अपूर्व श्रद्धा, यह मां के पैर दाबने में भाव--मोह लिया कृष्ण को! कृष्ण ने कहा : तो मैं रुका जाता हूं, तू पहले अपनी मां की सेवा कर ले। तो उसने पास में रखी एक ईंट सरका दी और कहा कि इस पर बैठ जाओ, तो कृष्ण उस ईंट पर खड़े रहे, खड़े रहे, खड़े रहे। इसलिए विठोबा के मंदिर में जो मूर्ति है, वह अब भी ईंट पर खड़ी है।

यह कर्त्तव्य तो नहीं था। इसमें ऐसा प्रेम था कि फिर मां के चरणों में जो प्रेम है, उस प्रेम में और परमात्मा के प्रेम में कोई विरोध थोड़े ही रह जाता है। वे एक ही हो गए। जहां प्रेम है, वहां समस्त प्रेम एक ही हो जाते हैं। वे एक ही सरिता की तरंगें हैं।

तो प्रार्थना जो कर्त्तव्य से करते हैं--कहते हैं हिंदू हैं, इसलिए जाना पड़ता है मंदिर; कहते हैं मुसलमान हैं, इसलिए रमजान रखना पड़ता है, रोजा रखना पड़ता है; कहते हैं जैन हैं, इसलिए पर्यूषण का व्रत पालना पड़ता है, करना पड़ता है--उनका मैंने खंडन किया पंद्रह वर्षों तक। उनका खंडन करना जरूरी था। उनके खंडन से ही मैंने वे लोग खोजे, जो झूठ को छोड़ने को तैयार हैं और सच की तरफ जाने के लिए जिनमें साहस है। इसलिए अब जाना मैंने बंद कर दिया कहीं भी। जिन-जिन के द्वार खटकाने थे, खटका आया। खबर दे आया कि यह कंदील जल गई है, कभी अंधेरे से परेशानी हो तो आ जाना। अब उनकी मरजी। अब उनकी मौज।

लेकिन मैंने जिन प्रार्थनाओं का खंडन किया था, वे प्रार्थनाएं नहीं थीं, इसे याद रखना। और जिन क्रियाकांडों का मैंने विरोध किया है, वे क्रियाकांड ही थे, इसलिए विरोध किया है। अन्यथा मेरे मन में किसी चीज का कोई विरोध नहीं है। हो कैसे सकता है! जहां सत्य की झलक है, मेरा उसे समर्थन है।

वो जिन्हें दावा-ए-अनलहक था
खून से अपने खेल कर होली
कौल पर अपने जान हार गए
सर से कर्जे-अता उतार गए
मुद्दई याने-सरकशी अब भी
गीतदारो-रसन के गाते हैं
नश्शा-ए-मैं जब बहकते हैं
सू-ए-मक्तल कदम बढ़ाते हैं
लेकिन अक्सर ये लोग मक्तल से
बसलामत ही लौट आते हैं
कब नजस खून से कोई, अपनी
तेग को दागदार करता है।
वो जिन्हें दावा-ए अनलहक था! . . .

मंसूर अलहिल्लास--ऐसे लोग जिन्होंने कहा अनलहक; जिन्होंने कहा मैं सत्य हूं; जिन्होंने कहा अहं ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूं; जिन्होंने सत्य का ऐसा दावा किया था; जो सत्य के ऐसे दावेदार थे।

वो जिन्हें दावा-ए-अनलहक था
खून से अपने खेल कर होली
कौल पर अपने जान हार गए
सर से कर्जे-अता उतार गए

उन्होंने सारा कर्ज उतार दिया संसार का। वे अपने खून से होली खेल गए। उन्होंने सत्य के लिए अपनी जान दे दी। सत्य के लिए कुछ भी दिया जा सकता है। सत्य के लिए सब कुछ दिया जा सकता।

मुद्दई याने-सरकशी अब भी। . . . लेकिन लोग हैं अभी भी जो कहते हैं कि हम भी सिर कटा सकते हैं; जो कहते हैं हम भी दावेदार हैं शहादत के।

मुद्दई याने-सरकशी अब भी

गीतदारो-रसन के गाते हैं

वे अब भी कहते हैं कि हम भी उसी दशा में हैं, जहां मंसूर थे। नशा-ए-मैं में जब बहकते हैं. . .। और जब कभी शराब पी लेते हैं तो बड़ी ऊंची बातें करते हैं। मंसूर ने भी एक शराब पी थी। वह शराब आकाश से उतरती है। या वह शराब आत्मा की गहनता में ढाली जाती है। और ये जाकर मयखाने में शराब पी आते हैं।

गीतोदारो-रसन के गाते हैं

नशा-ए-मैं में जब बहकते हैं

सू-ए मक्तल कदम बढ़ाते हैं

और जब शराब के नशे में थोड़े बहक जाते हैं, भूल जाते हैं, होश खो देते हैं--तो कहते हैं : हम जाते हैं शहादत को। लेकिन अक्सर ये लोग मकतल से बसलामत ही लौट आते हैं। लेकिन शहादत-बहादत इनकी कभी होती नहीं। इधर-उधर नाली में गिर-गिरा कर सुबह अपने घर वापस आ जाते हैं।

कब नजस खून से कोई, अपनी

तेग को दागदार करता है!

ये कभी तलवार को अपने खून से गंदा नहीं होने देते। ये बड़े होशियार लोग हैं। ये बात ही बात करते हैं। इनके जीवन में कभी कुछ घटता नहीं--सिवाय दिमागी कसरत के। इनके जीवन में कभी कोई क्रांति नहीं उतरती। शहादत की बातें करते हैं और शहादत की बातें करने में कुशल हो जाते हैं। जब कभी नशे में बहक जाते हैं, तो यह भी कहते हैं कि अब हम जाते हैं; अब हम चले सूली पर। और सुबह वापस घर लौट आते हैं। ये कभी सूली इत्यादि पर कहीं जाते नहीं।

फर्क को देखना। शराब के नशे में तुम कितनी ही ऊंची बातें बोलो, उनका कोई मूल्य नहीं है। नशे में बोली गई बातों का क्या मूल्य हो सकता है! तुम जब परमात्मा की प्रार्थना कर रहे हो, होश में हो? क्या कर रहे हो? यह पुकार तुम्हारे अंतरतम से उठी है या यूं ही दिखावा कर रहे हो? जान गंवा देने की तैयारी है या यूं ही बातचीत का मजा ले रहे हो?

जरूर मैंने उन लोगों का खंडन किया, जो व्यर्थ की बातों में पड़ गए हैं; जिन्हें कुछ भी पता नहीं है; जो शास्त्रीय ज्ञान बघार रहे हैं; जिन्हें एक कण भी सत्य का स्वाद नहीं मिला है; जिनके पास सिवाय शास्त्रीय स्मृति के और कुछ भी नहीं है। उनका मैंने निश्चित विरोध किया।

जब मैंने काशी के पंडितों का विरोध किया या जगतगुरु पुरी के शंकराचार्य का विरोध किया--तो आदि शंकराचार्य का विरोध नहीं किया है। तो मैंने उपनिषद के ऋषियों का विरोध नहीं किया है। सच तो यह है कि उपनिषद के ऋषियों के पक्ष में इन पाखंडियों का विरोध किया है। आदि शंकराचार्य के पक्ष में पुरी के जगतगुरु का विरोध किया है। खंडन किया है पाखंड का। पाखंड टूट जाए तो सद्धर्म प्रकट होता है।

तीसरा प्रश्नः ज्ञानी तो परिवार, समाज से भागता है; लेकिन भक्त न तो परिवार, समाज से भागता है, न कहीं आता न कहीं जाता, वहीं का वहीं बना रहता है, फिर भी उपलब्ध हो जाता है। भक्त के पास ऐसा क्या बल है?

भक्त के पास भगवान का बल है। ज्ञानी अपने सहारे चलता है। भक्त भगवान के सहारे चलता है। ज्ञानी अकेला है। भक्त अकेला नहीं है। ज्ञानी ऐसे हैं जैसे कोई पतवार से नाव चलाता है। भक्त ऐसे हैं जैसे उसने मस्तूल बांध दिए और हवाएं उसकी नाव को चलाती हैं। इस फर्क को ख्याल में ले लेना।

जब तुम पतवार से नाव चलाते हो, तो तुम्हारी ही भुजाओं पर निर्भर रहना पड़ेगा। थकोगे, परेशान होओगे, पसीने से लथपथ होओगे। कभी डांड रख भी देने पड़ेंगे। कभी विश्राम भी करना होगा। कभी हारोगे भी। कभी दूसरा किनारा छूटता भी लगने लगेगा। कभी मिलता है, कभी छूटता है। संघर्ष होगा, श्रम होगा।

भक्त पतवार नहीं चलाता, चप्पू हाथ में नहीं लेता। भक्त तो पाल बांध देता है; भगवान की हवाएं उसे ले चलाती हैं।

रामकृष्ण ने कहा है कि तू क्यों पतवार चलाता है? जब उसकी हवाएं उस तरफ ले जाने को तैयार हैं तो पाल क्यों नहीं खोलता?

यह फर्क है।

ज्ञानी अपने भरोसे चलता है। ज्ञानी यानी पुरुषार्थ।

वह कहता हैः मैं पाकर रहूंगा। मैं कोशिश करूंगा। मैं लड़ूंगा। मैं तैरूंगा। भक्त कहता है : मेरे से क्या होगा! मैं कौन हूं! मेरे किए कब क्या हुआ! मुझसे कुछ नहीं होने वाला! मुझ से तो इतना ही हो सकता है कि तेरे चरण पकड़ लेता हूं, अब तू कर।

इसलिए भक्त के पास एक बल है, जो ज्ञानी के पास नहीं है। भक्त के पास भगवान का बल है। भक्त अकेला नहीं है। कोई सदा उसके साथ है। विराट उसके साथ है। अपने को खोकर उसने विराट से दोस्ती बना ली है।

ज्ञानी अपने को पाकर विराट से दोस्ती बनाता है। फर्क समझ लेना। भक्त अपने को खोकर विराट से दोस्ती बनाता है। ज्ञानी अपने को पाकर विराट से दोस्ती बनाता है।

इसलिए ज्ञानी कहते हैं : स्वयं को जानो। "नो दाइ सैल्फ"। भक्त कहता है : स्वयं को डुबाओ। "फॉरगेट दाइ सैल्फ"। विस्मरण करो। भूलो।

ये उनके बुनियादी भेद हैं। ख्याल रखना, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम भक्त बन जाओ। मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि तुम ज्ञानी बन जाओ। मैं यही कह रहा हूं कि भेद को ठीक से समझ लो; फिर तुम्हें जो रुचिकर लगे। असली बात तो उस पार जाना है। तुम्हें अगर पतवार चलाने में मजा आता हो, तो कोई हर्जा नहीं है। एकदम जरूर चलाओ। खूब चलाओ। जितने लंबे रास्ते से जाना हो, लंबे रास्ते से जाओ। जितना पसीना बहाना हो उतना बहाओ। अपनी-अपनी मौज। तुम अपनी रुचि को पहचानो। लेकिन, अगर यह तुम्हारी रुचि न हो तो कुछ घबड़ाने की जरूरत नहीं, हताश होने की जरूरत नहीं है। और भी उपाय है। पाल खोलो। हवा के प्रति समर्पित हो जाओ। हवा को कहो : ले चल। छोड़ो, समर्पण करो।

ज्ञानी यानी संकल्प। भक्त यानी समर्पण।

तो भक्त के पास तो बड़ा बल है। इसलिए भक्त को जंगल नहीं जाना पड़ता। वह कहता है : जंगल अब कहां जाऊं? यहीं बाजार में कोई कम जंगल है? आदमियों की भीड़ में कुछ कम जंगल है? वृक्षों की भीड़ से क्या फर्क पड़ जाएगा? पत्थर-पहाड़ों में बैठने से क्या; यहां कोई कम पत्थर पहाड़ हैं? पत्थर ही पत्थर तो चल रहे हैं चारों तरफ। जानवरों में भागने की क्या जरूरत है? यहां आदमी कोई जानवर से कम हैं? सब तरफ पशुता का राज्य है। भाग कर कहां जाना है! यहीं रहेंगे। लेकिन प्रभु को साथ ले लेंगे। प्रभु के साथ हो लेंगे। उसके हाथ में हाथ दे देंगे।

फिर बाजार में भी शांति हो जाती है। फिर भीड़ में भी एकांत हो जाता है। फिर बाजार के कोलाहल में भी प्रार्थना का स्वर उठने लगता है। फिर तुम जहां हो, वहीं से मार्ग बनने लगता है।

प्रश्न सार्थक है। ज्ञानी को बड़ी चेष्टा करनी पड़ती है। भक्त तो सिर्फ प्रसाद की आकांक्षा करता है। भक्त तो छोटे बच्चों की तरह है। वह रोना जानता है। उसे एक बात पक्का है कि जब वह रोता है, तो मां चली आती है, लाख काम में उलझी हो, कहीं भी हो, चली आती है, खोज लेती है। भक्त तो छोटा बालक है।

ज्ञानी मां को खोजने निकलता है। अपने पैरों पर भरोसा रखता है। ज्ञानी भी पहुंच जाते हैं। ज्ञानी भगवान तक पहुंचते हैं। भक्त तक भगवान पहुंचता है। पुकार चाहिए।

चौथा प्रश्नः मेरे गांव में एक साधु है जो रोज सुबह और शाम नदी जाते-आते जोर-जोर से चिल्लाता हैः राम राम भज ले रे माटी के धोंदा। "माटी के धोंदा" से उसका आशय क्या है? और वह चिल्लाता ही क्यों निकलता है कृपा करके समझाइए।

बात तो सीधी-साफ है, समझाने की कुछ है नहीं। चिल्लाता है, क्योंकि तुम बहरे हो। चिल्ला-चिल्ला कर भी कहां तुम सुनते हो!

जीसस ने अपने शिष्यों से कहा है : चढ़ जाओ मकानों की मुंडेरों पर और चिल्लाओ। लोग इतने बहरे हैं, तब भी सुन लें तो चमत्कार। जीसस रोज-रोज कहते हैं कि अगर आंखें हों तो देख लो। आंख वालों से कहते हैं कि आंखें हों तो देख लो। कान वालों से कहते हैं कि कान हों तो सुन लो। क्योंकि जो तुम देखने के लिए तड़फते थे जन्मों से, वह मौजूद है। और जो तुम सुनने के लिए रोते थे जन्मों से, बोला जा रहा है। मगर कान हों तो सुन लो, आंख हो तो देख लो।

संत सदा से चिल्लाते रहे हैं। फिर भी तुमने कहां सुना है! तुम्हारी नींद गहरी है। तुम उलटे नाराज होते हो जब कोई संत चिल्लाता है। तुम करवट लेकर कंबल ओढ़ कर और गहरे सो जाते हो। तुम कहते होः भाई, मत जगाओ, परेशान न करो। अभी आधी रात मत उठाओ, अभी मैं सुंदर सपने देख रहा हूं। यह कौन आदमी बुलाने लगा बेवक्त! अभी सोने दो।

तुम्हारा बहरापन! इसलिए साधु चिल्लाता होगा। और आदमी है ही क्या! मिट्टी का! मिट्टी का पुतला ही तो!

राम-राम भज ले रे माटी के धोंदा! ठीक कहता है साधु। मिट्टी के पुतले हैं हम। मिट्टी में ही गिर जाएंगे। लेकिन हममें कुछ है जो मिट्टी का भी नहीं है। हममें कुछ है, जो मिट्टी का नहीं है। हममें कुछ है, जो पार से आता है।

राम-राम भज ले रे! हमारे भीतर भजन है जो मिट्टी का नहीं है। हमारे भीतर सुरति है जो मिट्टी की नहीं है। हमारे भीतर स्मरण है, बोध है, होश है, याद है--जो मिट्टी की नहीं है। मिट्टी तो मिट्टी में गिर जाएगी। अगर बिना परमात्मा को याद किए मर गए तो मिट्टी ही रहे और मिट्टी में ही गिर गए।

तुम्हारे भीतर कुछ समाया है--आकाश भी। तुम पृथ्वी के ही नहीं बने हो, तुम्हारे भीतर थोड़ा सा आकाश भी समाया है। तुम्हारी इन मिट्टी की दीवालों में आकाश भी है। तुम्हारे आंगन में मिट्टी की दीवाल भी है और आकाश भी है।

राम-स्मरण का अर्थ होता है : मिट्टी पर से ध्यान हटाओ, आकाश का स्मरण करो।

आंगन ठीक प्रतीक है। देखते हैं, छोटा सा आंगन, चारों तरफ दीवालें उठा रखी हैं! लेकिन आंगन दीवालों के बीच, वह जो आकाश है, वह तो वही आकाश है, जो बाहर फैला हुआ है। उसमें और भीतर के आंगन के आकाश में कोई फर्क नहीं है।

छोटे से घड़े में भी जो आकाश बंद होता है, उसमें भी और बाहर के विराट आकाश में कोई फर्क नहीं। घड़ा टूटा कि आकाश आकाश से मिल जाता है।

अब तुम्हारी दृष्टि की बात है। या तो मिट्टी पर दृष्टि बांध लो। अपने को देह मानो--देह और देह और देह। और यही तुम्हारी एकमात्र धारणा रह जाए, तो तुमने भीतर जो आकाश था वह तो देखा ही नहीं; मिट्टी की दीवाल को ही पकड़ कर रुक गए, मिट्टी ही रह गए।

तो वह ठीक ही कहता है : फिर माटी के धोंदा ही रह जाओगे। फिर तुम गोबर-गणेश रह गए; तुम असली को न पहचान पाए। और असली मौजूद था। तुम नकली को पकड़ लिए।

नकली भी है। असली भी है। सिर्फ ध्यान को बदलो। धीरे-धीरे देह से ध्यान को हटाओ और तुम्हारे भीतर जो चैतन्य है, उस पर ध्यान को लगाओ। उसी चैतन्य से जुड़ जाओ। उसी चैतन्य को अहर्निश भावो। उसी चैतन्य का भजन हो। यही अर्थ है : राम-राम भज ले रे माटी के धोंदा।

लेकिन मिट्टी के साथ हमने बहुत कुछ अहंकार जोड़ रखा है। मिट्टी के साथ हमने बड़े निहित स्वार्थ जोड़ रखे हैं। हम तो यही सोचते हैं कि यह मिट्टी होना ही सब कुछ है। तुम अपनी देह की कितनी चिंता करते हो! इतनी तुमने कभी अपनी चिंता की? दर्पण के सामने घंटों खड़े रहते हो सुबह-सांझ! कभी अपने सामने भी खड़े हुए? एकाध क्षण को भी? दर्पण ही देखते रहोगे? असली दर्पण कब देखोगे? दर्पण देखने से तो सिर्फ देह ही दिखाई पड़ेगी; यह मिट्टी का लोंदा ही झलकेगा, कुछ और नहीं होगा। वह जो दर्पण देख रहा है, उसे कब देखोगे? द्रष्टा को कब देखोगे? दर्शन की जो क्षमता तुम्हारे भीतर छिपी है, उस पर कब लौटोगे? उसे कब पकड़ोगे? उसे कब हाथ में लोगे? उसे हाथ में ले लिया तो परमात्मा को हाथ में ले लिया। उसे हाथ में न लिया, तो यह सब घड़ी भर की बात है। यह चार दिन की जिंदगी, फिर अंधेरी रात है। यह घड़ी भर की बात है। अकड़ लो, इतरा लो। यह सब मिट्टी मिट्टी में गिर जाएगी।

हकीरो-नातुवां तिन्का
हवा के दोश पर पर्रां,
समझता था कि बहरो-बर पर उसकी हुक्मरानी है
मगर झोंका हवा का एक अलबेला
तलव्वुत केश बेपरवा
जब उसके जी में आए रुख पलट जाए
हवा आखिर हवा है, कब किसी का साथ देती है
हवा तो बेवफा है, कब किसी का साथ देती है!
हवा पलटी बुलंदी का फुसूं टूटा,
हकीरो-नातुवां तिन्का,
पड़ा है खाके-पस्ती पर
खुदा जाने कोई राहगीरे-बेपरवाह
जब अपने पांव से उसको मसलता है
तो अपना ख्वाबे-अजमत याद करके उसके दिल पर क्या गुजरती है।
समझो : हकीरो-नातुवां तिन्का!

तुच्छ और निर्बल एक छोटा सा तिनका कभी हवा पर चढ़ जाता है। कभी हवा उठा कर ले जाती है एक तुच्छ तिनके को। आकाश में मंडराने लगता है तिनका।

हम भी हवा पर चढ़ गए हैं। यह जो श्वास है, हवा है। इस श्वास पर हम चढ़ गए हैं। छोटा सा तिनका है, यह मिट्टी का थोड़ा सा लोंदा है। यह हवा पर चढ़ गया है। यह हवा से फूल गया है।

हकीरो-नातुवां तिन्का! तुच्छ निर्बल तिनका। हवा के दोश पर पर्रां। हवा के कंधों पर सोचता है, मुझे पर लगे हैं। सोचता है, मेरे पास पंख हैं। सोचता है, मैं उड़ सकता हूं; देखो, मैं उड़ सकता हूं। उड़ रहा है तो सोचता है, उड़ सकता हूं। हवा के पंखों पर चढ़ कर सोचता है, मेरे पास पंख हैं। मैं पंख वाला हूं। मैं पक्षी हूं।

हकीरो-नातुवां तिन्का, हवा के दोश पर पर्रां।

समझता था कि बहरो-बर उसकी हुक्मरानी है।

और सोचता था थोड़ी देर को कि हवाओं पर, तूफानों पर, आंधियों पर, चांद-तारों पर, आकाश पर, उसकी मालकियत है, हुक्मरानी है।

मगर झोंका हवा का एक अलबेला तलव्वुत केश।

हवा के झोंकों का क्या भरोसा! कब रुख बदल लें, कब रुख बदल दें! अलबेले झोंके, अभी चलें, अभी बंद हो जाएं, आए न आए!

मगर हवा का एक झोंका अलबेला तलव्वुत केश, बेपरवाह!

और हवा को क्या परवाह है इस तिनके की। न तो परवाह है और न हवा को कोई इसे उड़ाने में मजा है। जब उसके जी में आए, रुख पलट जाए।

हवा आखिर हवा है, कब किसी का साथ देती है।

यह जो हवा तुम्हारे भीतर आ-जा रही है, यह भी सदा साथ देने वाली नहीं है; यह कब पलट जाए पता नहीं। अभी है, अभी न हो। अभी आई भीतर, अभी गई बाहर; और फिर न लौटे, तो कुछ भी न कर सकोगे। एक श्वास भी ज्यादा न ले सकोगे। गई तो गई।

मगर झोंका हवा का एक अलबेला
तलव्वुत केश
बेपरवाह
जब उसके जी में आए रुख पलट जाए।
हवा आखिर हवा है, कब किसी का साथ देती है

हवा तो बेवफा है, कब किसी का साथ देती है।

इस धोखेबाज हवा के चक्कर में बहुत मत पड़ जाना। इन श्वासों का बहुत भरोसा मत कर लेना।
राम-राम भज ले रे!

हवा पलटी, बुलंदी का फुसूं टूटा।

और जैसे ही हवा पलटती है, वैसे ही आसमान से तिनका जमीन पर गिर जाता है। वह जो बुलंदी का फुसूं था, वह जो ख्याल था कि मैं ऊंचा हो गया हूं, मैं बड़ा हो गया हूं, मैं महान हो गया हूं--वे सब एक क्षण में गिर जाते हैं।

ऐसा ही तो होता है। आज तुम्हारे पास धन है; आकाश में चलते हो, जमीन पर पैर नहीं छूते। कल धन चला गया। आज तुम्हारे पास पद है; कल पद चला गया। यह सब हवा के ही झोंके हैं। तुम इंदिरा से पूछो। हवा का झोंका चला गया। मोरारजी को चेता देना कि हवा किसी की भी नहीं।

हवा तो बेवफा है, कब किसी का साथ देती है।

हवा पलटी, बुलंदी का फुसूं टूटा

हकीरो-नातुवां तिन्का!

टूट गया सपना। तुच्छ तिनका आखिर तुच्छ ही था; गिर गया वापस।

हकीरो-नातुवां तिन्का
पड़ा है खाके-पस्ती पर

अब पड़ा है जमीन पर, हारा हुआ, चारों खाने चित्त। खुदा जाने कोई रहगीरे-बेपरवाह. . . और राहगीरों को क्या फिकर है कि यहां कोई बड़ा ऊंचा तिनका पड़ा है, जो कभी आकाश में उड़ा करता था! वे तो जूतों से दबाते इसको निकल जाएंगे। वे तो पैरों से रौंदते इसे निकल जाएंगे। तुम्हें पता है, आज नहीं कल तुम्हारी यह देह मिट्टी में पड़ी होगी, कितने जूतों से रौंदी जाएगी! नाहक दर्पण के सामने खड़े-खड़े समय खराब मत कर लो! भज ले रे राम! राम-राम भज ले रे!

पड़ा है खाके-पस्ती पर
खुदा जाने कोई राहगीरे-बेपरवाह
जब अपने पांव से उसको मसलता है
तो अपना ख्वाबे-अजमत याद करके उसके दिल पर क्या गुजरती है!

तो जरा सोचो तो, उसे भी याद आते होंगे वे सपने अपने उत्थान के। वे स्मृतियां लौट-लौट आती होंगी कि कभी आकाश में उड़ता था, कभी मैं भी था, कभी मैं भी कुछ था, कभी मेरी भी बुलंदी थी, कभी मैं भी सिकंदर था।

खुदा जाने कोई राहगीरे-बेपरवाह

जब अपने पांव से उसको मसलता है
तो अपना ख्वाबे-अजमत याद करके इसके दिल पर क्या गुजरती है!
मगर मिट्टी है, मिट्टी में गिरेगी।
साधु ठीक ही कहता हैः राम-राम भज ले रे माटी के धोंदा।

मिट्टी के ही हम हैं, मिट्टी में ही हम गिर जाएंगे। डस्ट अनटु डस्ट! लेकिन हम अगर मिट्टी ही मिट्टी होते, तो भी कुछ अड़चन न थी। हमारी मिट्टी में कुछ किरण हैं--जो मिट्टी के पार की हैं। हमारे भीतर अमृत की एक बूंद भी है। मिट्टी की इस कीचड़ में अमृत की एक बूंद भी पड़ी है। मिट्टी की इस खान में एक हीरा भी पड़ा है। धन्यभागी हैं वे जो उस हीरे को पहचान लेते हैं--इसके पहले कि श्वास उड़ जाए, हवा का रुख पलट जाए।

हवा तो बस हवा है, कब किसका साथ देती है!
हवा तो बेवफा है, कब किसका साथ देती है!

धन्यभागी हैं वे जो हवा के रुख बदलने के पहले, अपना रुख बदल लेते हैं; जो हवा के पंखों से गिरने के पहले अपने पंख खोज लेते हैं; जो हवा की झूठी बुलंदी के सपनों में ज्यादा देर नहीं उलझते; जो अपनी असली बुलंदी खोज लेते हैं; जो अपना असली घर खोज लेते हैं; जो यहां के घरों को धर्मशाला जानते हैं। यहां सरायें हैं; रुको रात भर, सुबह जाना है। और अपने घर को भूल मत जाना।

"गिरह हमारा सुन्न में, अनहद में विसराम।"

वह जो शून्य है, परम शून्य है, उसे कहो--परमात्मा, आत्मा, ध्यान, समाधि, जो नाम देना हो--निर्वाण, मोक्ष, कैवल्य--जो रुचिकर लगे--वहीं हमारा असली घर है। और वहीं पहुंच कर विश्राम है। उसके पहले धोखों में मत पड़ना। यहां धोखे बहुत हैं। यहां प्रवंचनाएं बहुत हैं।

साधु ठीक ही कहता है। अजहूं चेत गंवार!

आज इतना ही।

पंद्रहवां प्रवचन

मन के विजेता बनो

बोलु हरिनाम तू छोड़ि दे काम सब
सहज में मुक्ति होइ जाए तेरी।
दाम लागै नहीं, काम यह बड़ा है,
सदा सतसंग में लाउ फेरी।।
बिलम न लाइकैं डारि सिर भार को,
छोड़ि दे आस संसार केरी।
दास पलटू कहै यही संग जाएगा।
बोलु मुख राम यह अरज मेरी।। 1।।

पूरब में राम है, पच्छिम खुदाय है,
उत्तर और दक्खिन कहो कौन रहता?
साहिब वह कहां है, कहां फिर नहीं है,
हिंदू और तुरक तोफान करता।।
हिंदू और तुरक मिलि परे हैं खैंचि में
आपनी बर्ग दोउ दीन बहता।
दास पलटू कहै, साहिब सब में रहै,
जुदा न तनिक, मैं सांच कहता।। 2।।

जाहि तन लगि है, सोइ तन जानिहै
जानिहै वही सतसंग-वासी।
कोटि औषधि करैं, विरह ना जाएगा,
जाहि के लगी है विरहगांसी।।
नैन झरना बन्यौ, भूख ना नींद है
परी है गले बिच प्रेम-फांसी।
दास पलटू कहै, लगी ना छूटिहै,
सकल संसार मिलि करै हांसी।। 3।।

होय रजपूत सो चढ़ै मैदान पर,
खेत पर पांच-पच्चीस मारै
काम औ क्रोध दुई दुष्ट ये बड़े हैं,
ज्ञान के धनुष से इन्हें टारै।।
कूद परि जायकै कोट काया मंहै,
आगि लगाय के मोह जारै।।
दास पलटू कहैं सोई रजपूत है,
लेहि मन जीति तब आपु हारै।। 4।।

आदमी आनंद की तलाश करता है--ऐसा कहते हैं। आदमी को देख कर भरोसा नहीं आता। ऐसा सुना है कि आदमी आनंद का खोजी है। आदमी को देख कर बात उलटी ही मालूम पड़ती है। लगता है, आदमी दुख का खोजी है। दुख को छोड़ता नहीं। दुख को पकड़ता है। दुख को बचाता है। दुख को संवारता है; तिजोड़ी में सम्हाल कर रखता है। दुख का बीज हाथ पड़ जाए, हीरे की तरह सम्हालता है। जन्मों-जन्मों तक सम्हालता है। लाख दुख पाए, पर फेंकने की तैयारी नहीं दिखाता।

जो लोग कहते हैं आदमी आनंद का खोजी है, लगता है आदमी की तरफ देखते ही नहीं। आदमी दुखवादी है, अन्यथा संसार इतना दुख में क्यों हो! अगर सभी लोग आनंद खोज रहे हैं, तो संसार में आनंद की थोड़ी झलक होती। कुछ को तो मिलता! और कुछ को मिल जाता तो वे बांटते औरों को भी; तो कुछ झलक उनकी आंखों और उनके प्राणों में भी आती।

अगर सभी आनंद की तलाश कर रहे हैं, तो लोग एक-दूसरे को इतना दुख क्यों दे रहे हैं। और ऐसा नहीं कि पराए ही दुख देते हों, अपने भी दुख देते हैं। अपने ही दुख देते हैं! शत्रु तो दुख देते ही हैं; हिसाब रखा है, मित्र कितना दुख देते हैं? जिन्हें तुमसे घृणा है, वे तो दुख देंगे, स्वाभाविक; लेकिन जो कहते हैं तुमसे प्रेम है, उन्होंने कितना दुख दिया, उसका हिसाब रखा है? और अगर हर आदमी दुख दे रहा है, तो एक ही बात का सबूत है कि हर आदमी दुख से भरा है। हम वही तो देते हैं, जिससे हम भरे हैं। वही तो हमसे बहता है जो हमारे भीतर लगा है। नीम के पत्ते अगर कड़वे होते हैं, तो इसी कारण कि जहर भीतर बह रहा है; और आम अगर मीठा है तो इसी कारण कि अमीरस भीतर बह रहा है।

हमारे व्यवहार से दूसरों को दुख मिलता है, क्योंकि भीतर हमारे कड़वाहट है। हम लाख कहें हम प्रेम करते हैं, लेकिन प्रेम के नाम पर भी हम दूसरों के जीवन में नरक निर्मित करते हैं। पति-पत्नियों को देखो, मां-बाप को देखो, बेटे-बच्चों को देखो--सब एक-दूसरे की फांसी लगाए हुए हैं। अच्छे-अच्छे नाम हैं; लेकिन अच्छे नामों के पीछे जो चलता है, वह सब नारकीय व्यवहार है। ऐसा है। क्यों? और सभी कहते हैं कि हम सुख को खोजते हैं।

मेरे पास रोज लोग आते हैं, जो कहते हैं : हम सुख चाहते हैं। अगर तुम सुख चाहते हो तो कोई भी तो बाधा नहीं है; सुख तो लुट रहा है। सुख तो चारों तरफ मौजूद है। ऐसे ही हो तुम, जैसे सामने गंगा बहती हो और किनारे पर खड़े तुम छाती पीटते हो, चिल्लाते हो : मैं प्यासा हूं, मैं जल चाहता हूं! झुको और पीओ! गंगा सामने बहती है। गंगा सदा सामने बहती है। और गंगा के लिए तो चाहे दो कदम भी उठाना पड़ें, सुख तो उससे भी करीब है। सुख तो तुम्हारा स्वभाव है। डूबो इस स्वभाव में।

जिन्होंने भी कभी आनंद पाया है, उन्होंने एक बात निरंतर दोहराई है कि आनंद तुम्हारा जन्म-सिद्ध अधिकार है। यह तुम्हारे रोएं-रोएं में समाया हुआ है। तुम जिस दिन तय कर लोगे कि आनंदित होना है, उसी क्षण आनंदित हो जाओगे। फिर एक पल की भी देरी नहीं है। देरी का कोई कारण नहीं है।

इसे ऐसा समझो। आनंद यदि स्वभाव है तो दुख हमें पैदा करना पड़ता है। आनंद यदि स्वभाव है तो उसका अर्थ है : अगर तुम कुछ भी न करो तो भी आनंद होगा। श्वास चलती जैसे, ऐसे तुम्हारे प्राणों में आनंद चलता है। तुम कुछ भी न करो; तुम्हारे करने पर आनंद निर्भर ही नहीं है। तुम सच्चिदानंद हो। करना पड़ता है दुख के लिए कुछ। दुख अर्जित है। दुख में बड़ी मेहनत करनी पड़ती है, बड़ा श्रम उठाना पड़ता है, बड़ी तपश्चर्या। बड़ी मुश्किल-मुश्किल से तुम दुखी हो पाते हो। और फिर भी तुम कहते होः हम सुख के खोजी हैं! और सुख के जितने सूत्र हैं, उनमें से एक सूत्र को भी तुम मानने को तैयार नहीं। और दुख के जितने सूत्र हैं उनको छाती से लगाए बैठे हो।

क्रोध ने दुख दिया, हजार बार दुख दिया। अब छोड़ते क्यों नहीं? सुख के खोजी हो! बड़ी अजीब खोज है! मांगते हो पानी, जाते हो आग की तरफ! प्यास-प्यास चिल्लाते हो, अंगारे तलाशते हो! अंगारों से कहीं प्यास बुझी है! जानते होः वासना ने सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं दिया; जितनी इच्छाएं कीं, उतनी पीड़ा पाई। इच्छाएं बढ़ीं, पीड़ा बढ़ी। हर इच्छा एक सीढ़ी बनी और तुम पीड़ा के शिखरों पर चढ़े। कहते हो : सुख की तलाश कर रहे हैं! हर इच्छा तुम्हें तड़पा गई। हर वासना तुम्हें गड्ढे में डाल गई, गर्त में गिरा गई। जब भी तुमने कुछ चाहा, तभी एक घाव बना; फिर घाव बढ़ता है, भरता भी नहीं। फिर भी तुम्हारी चाहत का अंत नहीं है। फिर भी तुम चाहे चले जाते हो। और उन्हीं चीजों को चाहे चले जाते हो, जिनसे तुम्हारे प्राणों में घाव बने हैं। कितनी बार अनुभव करोगे, तब जागोगे? अजहूं चेत गंवार!

दर्द इक ना-ख्वांदा मेहमां था
अगर रुखसत हुआ,
यास का इसमें कोई पहलू न था
लेकिन ऐ दिल,
ऐ अजूबाकार दिल!
तू तो यूं हिरमाजदा है
छुट गया हो जैसे कोई यारेगार
ये जो इक झोंका मसर्रत का दर आया है
मुझे मालूम है,
है तेरी उम्रे-रियाजत का सिला
लेकिन ऐ दिल, ऐ अजूबाकार दिल!
अब तुझे होने लगा उफताद का इस पर गुमां,
आह ऐ दिल,
ऐ अजूबाकार दिल!
बस के कोहना मरीज
अपने जख्मों से मोहब्बत है तुझे।

हां, ऐसा ही है। अपने जख्मों से मोहब्बत है तुझे। दर्द इक ना-ख्वांदा मेहमां था। दर्द तो एक बिना बुलाया मेहमान था। तुमने कभी बुलाया नहीं। ऐसा तुम कहते तो हो कि दर्द हम चाहते नहीं। तुम्हारा बुलाया हुआ मेहमान न था। दर्द इक ना-ख्वांदा मेहमां था--एक बिना बुलाया अतिथि! अगर रुखसत हुआ, अगर चला गया--यास का इसमें कोई पहलू न था! तो इतने निराश क्यों बैठे हो? इसमें निराश होने की क्या बात थी अगर दुख चला गया?

लेकिन दुख जाता है तो लोग निराश होते हैं। ऐसा मेरा भी निरीक्षण है। सुख आता है तो लोग स्वीकार नहीं कर पाते और दुख जाता है तो लोग निराश होते हैं। दुख से दोस्ती बन गई है। जन्मों-जन्मों का संबंध जुड़ गया है। दुख संगी मालूम पड़ता है, परिचित है। उसका रग-रग रेशा-रेशा परिचित है। कितनी रातें उसके साथ तड़पे हो। कितने दिन उसके साथ पीड़ा भोगी! कितने जन्मों तक हाथ में हाथ डाल कर, गलबंहियां डाल कर चले हो! जब अचानक दुख छूटता है तो तुम खाली लगोगे। तुम्हें लगेगा, जैसे कुछ खो गया।

यहां रोज यह घटना घटती है। अगर किसी को ध्यान में थोड़ा सुख मिलता है, सुख की किरण फूटती है, तो वह घबड़ा कर आकर मुझ से पूछता है कि यह क्या हो रहा है? मुझे बड़ा सुख मालूम होता है, मैं ठीक तो हूं? कुछ गलती तो नहीं हो रही? मैं पागल तो नहीं हुआ जा रहा हूं? दुख पर इतना भरोसा आ गया है कि जब सुख आता है तो उस पर भरोसा नहीं आता है; लगता है कि कहीं पागल तो नहीं हुआ जा रहा हूं! दुख का गणित

ऐसा बैठ गया है प्राणों में कि सुख हो सकता है, इस पर श्रद्धा ही नहीं जमती। और जब सुख फूटता है तो ऐसा लगता है कि कहीं कोई भूल-चूक तो नहीं हो रही, कहीं मैं पागल तो नहीं हुआ जा रहा हूं! दुख से भरी इस पृथ्वी पर सुखी होते समय पागलपन जैसा लगता है। लगता है कि कुछ, जो नहीं होना था, हो रहा है; कुछ जो किसी को नहीं हो रहा, मुझे हो रहा है; जहां भीड़ नहीं जा रही, वहां मैं अकेला चला।

भीड़ राजपथ पर है--दुख के राजपथ। और सुख की पगडंडियां हैं; उन पर अकेला चलना होता है। और जैसे ही तुम अकेले होते हो, वैसे ही घबड़ाने लगते हो। भीड़ रहती है तो भरोसा बना रहता है। संगी-साथी साथ हैं। रोने के ही संगी-साथी हैं। लेकिन साथ तो है! कोई साथ तो है! अपने ही जैसे दुखी लोग हैं, लेकिन फिर भी भीड़ तो है! अकेले तो नहीं हो।

तुम स्वर्ग में भी अकेले न रहना चाहोगे; नरक में भी रहना पड़े तो भीड़ में रहना पसंद करोगे। सोचना। खोजना अपने भीतर। ये मैं कोई सिद्धांत की बातें नहीं कह रहा हूं। यह तुम्हारे मनोविज्ञान की बात है। और इसे जब तक न समझोगे, आगे गति हो नहीं सकती।

दर्द इक ना-ख्वांदा मेहमां था,

अगर रुखसत हुआ,

यास का इसमें कोई पहलू तो न था।

इसमें इतने उदास होने की क्या बात है कि दुख चला गया! लेकिन लोग उदास होते हैं, जब दुख जाता है। जब दुख एकदम छाती से हट जाता है तो भीतर कुछ खाली हो जाता है। दुख ही तो भरे हुए है तुम्हें। दुख ही तो तुम्हारी संपदा है। दुख के कारण ही तो भीतर थोड़ी चहल-पहल है। जहां दुख गया, फिर तो सन्नाटा है; फिर तो शून्य है। और शून्य से तुम डरोगे, घबड़ाओगे।

आनंद शून्य की तरह है। दुख का बड़ा भराव है। कूड़ा-करकट सही, लेकिन आदमी अपनी झोली में कूड़ा-कर्कट भी डाले रहता है, तो झोली भरी हुई तो मालूम पड़ती है।

सुख शून्य है; दुख संसार है। दुख में तुम्हारी मुट्ठी में कुछ मालूम होता है; सुख में मुट्ठी खुल जाती है। सुख में तुम शून्य हो जाते हो। या इसे ऐसा समझोः दुख में तुम होते हो; सुख में तुम मिट जाते हो। इसलिए सुख में घबड़ाहट लगती है। जितना बड़ा सुख होगा उतना ही तुम्हें मिटा जाता है। जब आनंद की झलक आती है तो तुम खो जाते हो। और जब परम आनंद उतरता है तो तुम कहीं पाए ही नहीं जाते।

भूल कर भी मत सोचना कि मैं आनंदित हो सकता हूं। मैं तो कभी आनंदित हुआ ही नहीं है! जब तक मैं रहा तब तक दुख रहा। जब मैं गया, तब आनंद हुआ। और मैं दुख पर ही जीता है। दुख मैं का भोजन है। अगर तुम्हारे भीतर अहंकार की दौड़ है तो भूल कर भी यह मत सोचना कि तुम आनंद खोज रहे हो; तुम दुख ही खोजोगे। कहो कुछ भी, कहने से क्या होता है! कहो पश्चिम जाते हैं, लेकिन तुम्हें देखता हूं, कि तुम पूरब जा रहे हो। अहंकार का भोजन है दुख। दुख के कीड़ों को खा कर ही अहंकार जीता है। दुख के घावों से उठी हुई मवाद को पी कर ही अहंकार जीता है। आनंद में तो सब घाव भर जाते हैं। आनंद में तो सब कीड़े विदा हो जाते हैं। अहंकार को खाने के लिए कुछ भोजन नहीं मिलता। उपवासा अहंकार मर जाता है। पहले दुख मरता है, फिर अहंकार मर जाता है। और आनंद की खोज वही कर सकता है, जो अहंकार को खो देने को तैयार हो।

तुम इसे अपने भीतर परीक्षण करना, निरीक्षण करना, इस पर ध्यान करनाः तुम दुख को खोने को तैयार हो?

लेकिन ऐ दिल, ऐ अजूबाकार दिल!

यह दिल बड़ा विचित्र है!

लेकिन ऐ दिल, ऐ अजूबाकार दिल!

ऐ विचित्र दिल!

तू तो यूं हिरमाजदा है! तू तो ऐसा निराश मालूम होता है दुख के चले जाने से--छुट गया हो जैसे कोई यारेगार... जैसे कोई प्यारा छूट गया हो, कोई प्रीतम छूट गया हो, कोई यार छूट गया हो, कोई मित्र छूट गया हो!

तू तो यूं हिरमाजदा है
छुट गया हो जैसे कोई यारेगार
ये जो इक झोंका मसर्रत का दर आया है

और यह जो हलकी सी झलक सुख की आई है, झोंका ही है। जरा सी हवा सुख की आ गई है तेरी तरफ।

ये जो इक झोंका मसर्रत का दर आया है
मुझे मालूम है, है तेरी उम्रे-रियाजत का सिला।

यह तूने जीवन भर मांगा था। इसी के लिए प्रार्थनाएं की थीं। इसलिए कि मंदिर-मस्जिदों में सिर पटका था। इसके लिए तपश्चर्याएं की थीं। यह ऐसे ही नहीं आया है; बहुत मांगे-मांगे, बहुत बुलाए-बुलाए आया है। बड़ी प्रार्थनाओं का फल है।

ये जो इक झोंका मसर्रत का दर आया है
मुझे मालूम है, है तेरी उम्रे-रियाजत का सिला।

तेरे जीवन भर की तपश्चर्याओं का फल... मगर तू प्रसन्न नहीं है। तू उदास है--उसके लिए, जो चला गया। तू अगवानी नहीं कर रहा है उस मेहमान की, जिसे तूने बुलाया था और निमंत्रण भेजे थे और वर्षों तूने प्रार्थना की थी कि आओ! आग्रह किए थे। अतिथि आया है बुलाया हुआ, तो तू उसकी अगवानी नहीं कर रहा है; तूने द्वार पर मंगल-दीप नहीं जलाए हैं, मंगल-घट नहीं रखे हैं। तूने वंदनवार नहीं बांधा है। तूने स्वागतम की कोई आयोजना नहीं की है। तू रो रहा है उस दुख के लिए जो चला गया। और दर्द इक ना-ख्वांदा मेहमां था। और वह बिना बुलाया मेहमान था। उसे कभी तूने बुलाया न था और सदा तू यही कहता रहा था कि चला जाए, चला जाए, कब इससे छूटूं, कब इससे छुटकारा हो!

लेकिन पीछे कारण हैं। दुख छूटता है... अगर दुख ही छूटता होता और तुम न मिटते होते, तो तुम प्रसन्नता से छोड़ देते। लेकिन दुख छूटता है तो तुम्हारे मकान की ईंटें गिरने लगती हैं। दुख की ईंटों से ही तुम बने हो। यह जो अहंकार का भवन है दुख की ईंटों से निर्मित है। एक-एक दुख हटेगा, कि यह भवन गिरेगा। फिर तो खाली आकाश रह जाता है। उसी खाली आकाश में आनंद का नृत्य होता है।

खाली होने की तैयारी हो, तो ही आनंदित हो सकते हो। मिटने की तैयारी हो तो ही आनंदित हो सकते हो। किसकी तैयारी है मिटने की!

इसलिए मैं कहता हूं : लोग आनंद को कहां खोज रहे हैं! लोग दुख को खोज रहे हैं। लोग बड़े दुख को खोज रहे हैं। छोटे दुख से दिल नहीं भरता। अगर किसी के पास झोपड़े वाला दुख है तो उससे दिल नहीं भरता; वह महल वाला दुख खोज रहा है। लोग बड़े दुख खोज रहे हैं। अगर पूना का दुख है तो उससे दिल नहीं भरता; लोग दिल्ली के दुख खोज रहे हैं। लोगों को बड़ा दुख चाहिए। अगर गांव का दुख है तो नहीं रुचता; महानगरी का दुख चाहिए। गरीब का दुख नहीं रुचता; अमीर का दुख चाहिए।

अमीर भी दुखी हैं; गरीब भी दुखी हैं। जो प्रसिद्ध नहीं हैं, वे भी दुखी हैं। जो प्रसिद्ध हैं, वे भी दुखी हैं। लेकिन प्रसिद्धि में आदमी दुख को झेल लेता है। क्यों? प्रसिद्धि की हजार चिंताएं झेल लेता है। अप्रसिद्धि की निश्चिंतता भी सुख नहीं देती। तुम्हें कोई न जाने और तुम सुखी हो, यह तुम पसंद करोगे, कि तुम दुखी होओ, सारी दुनिया तुम्हें जाने, यह तुम पसंद करोगे? ठीक से सोचना। और तुम बड़े हैरान होओगे। तुम यही पसंद करोगे कि दुनिया जाने, चाहे मैं भीतर कितना ही दुखी रहूं। प्रधानमंत्री हो जाऊं, कि राष्ट्रपति हो जाऊं, चाहे रात सो न सकूं। सुबह सुबह न होगी फिर। रात रात न होगी। चांद-तारे न होंगे, सूरज न निकलेगा, फूल न खिलेंगे, राजनीति की गंदगी होगी चारों तरफ; दुर्गंध ही दुर्गंध होगी! लेकिन फिर भी तुम चाहोगे कि यह हो।

क्यों? क्योंकि उस दुर्गंध पर तुम्हारा मैं मजबूत होगा। उस दुर्गंध के लिए तुम जीवन भर तड़पे हो। वह दुख तुम झेल लोगे। और अगर कोई कहता हो, एक एकांत कोने में बैठ कर तुम सुखी हो सकते हो, तुम्हें कोई जानेगा नहीं, किसी को पता ही नहीं चलेगा। सच तो यह है, अगर तुम सच में ही सुखी हो जाओ तो तुम ऐसे शून्यवत हो जाते हो कि शायद लोग पास से गुजर जाएंगे, तुम्हारी तरफ आंख भी उठा कर न देखेंगे। क्या तुम पसंद करोगे यह? अगर नहीं पसंद करोगे तो एक बात साफ समझ लो, फिर झूठी बातें मत कहो कि हम सुख को खोजते हैं। कम से कम इतनी ईमानदारी तो बरतो कि कहो कि हम दुख को खोजते हैं।

लेकिन ऐ दिल, ऐ अजूबाकार दिल!

तू तो यूं हिरमाजदा है,
छूट गया हो जैसे कोई यारेगार
ये जो एक मसर्रत का झोंका दर आया है
मुझे मालूम है,
है तेरी उम्रे-रियाजत का सिला
लेकिन ऐ दिल, ऐ अजूबाकार दिल!
अब तुझे होने लगा उफताद का इस पर गुमां!

यह जो सुख की झलक आई है, इस पर भरोसा नहीं आता; लगता है कि यह कोई दैवी प्रकोप है, कोई पागलपन है, कोई विक्षिप्तता है। यह जो सुख का झरोखा आया है, यह कोई सपना है। मेरी कोई कल्पना है। यह जो सुख का झोंका आया है, इसे इनकार करने का मन होता है, क्योंकि यह सुख का झोंका तुम्हें पोंछ जाएगा। इसके पहले कि तुम्हें पोंछ दे, तुम उसे इनकार करना शुरू कर देते हो।

अब तुझे होने लगा उफताद का इस पर गुमां

तुझे शक हो रहा है कि यह तो कोई दैवी-प्रकोप मालूम होता है। यह कहां की झंझट! यह कैसी बला मेरे ऊपर आ गई!

आह ऐ दिल, ऐ अजूबाकार दिल!

बस के कोहना मरीज

पुराने बीमार हो तुम। दुख के आदी हो गए हो। अपने जख्मों से मोहब्बत है तुझे। तुम्हें अपने जख्मों से प्रेम हो गया है।

मनोवैज्ञानिकों से पूछो, मैं जो कह रहा हूं, इसकी वे गवाही देंगे, हजार-हजार जबानों से गवाही देंगे। लोग दुख को खूब जकड़ते हैं। इसलिए तुम देखो, लोग दुख की चर्चा करते हैं, बहुत चर्चा करते हैं। सुख की कहीं चर्चा होती है! लोग दुख की चर्चा करते हैं। लोग बीमारियों की चर्चा करते हैं। लोग अपनी परेशानियों की चर्चा करते हैं। जरा लोगों को सुनो। तुम चकित होओगे कि लोग इतने दुख की चर्चा क्यों करते हैं! क्या जीवन में कभी भी सुख के झोंके नहीं आते? आते हैं, मगर उनकी चर्चा नहीं होती। अखबार उनकी खबर नहीं छापते। अखबार दुख की खबरें छापते हैं। खबर ही उसको मानी जाती है। कोई हत्या करे, कोई चोरी करे, कोई बेईमानी करे, धोखा डाले, कोई किसी की स्त्री ले भागे--तो अखबार भी छापता है; अखबार को भी उसमें रस है। कोई किसी गिरते को उठा ले, कहीं किसी के बगीचे में कोई गुलाब का फूल खिले--इसमें किसको रस है! ऐसे अखबार को कौन पढ़ेगा, जो फूलों की खबर छापे। अखबार लोग पढ़ते हैं--कांटों की खबर के लिए। अपने भी कांटे चुभा रहे हैं; औरों के कांटे भी इकट्ठा कर लेते हैं। अपने ही दुख काफी नहीं हैं; दूसरों के दुख भी इकट्ठा कर लेते हैं। सारी दुनिया में कहां-कहां दुख हो रहा है, सबको इकट्ठा कर लेते हैं। अपने दुख से भी मन नहीं भरता; औरों के दुख भी चाहिए।

तुम जरा घूम-फिर कर लोगों की बातें सुनो। अपनी ही बातें सुनना और तुम पाओगे कि तुम दुख में सदा संलग्न होकर बात कर रहे हो। और जब तुम दुख की बात करते हो, तब तुम बड़े प्रसन्न मालूम होते हो। यह भी बड़ी चकित होने वाली बात है।

मेरे पास लोग आते हैं। जब वे अपने दुख की कथा रोने लगते हैं, तो बड़े प्रसन्न मालूम होते हैं। उलटा बड़े प्रसन्न! उनकी आंखों में चमक मालूम होती है। जैसे कोई बड़ा गीत गा रहे हों! अपने घाव खोलते हैं, लेकिन लगता है जैसे कमल के फूल ले आए हैं। सुख की तो कोई बात ही नहीं करता।

और ऐसा नहीं है कि सुख नहीं है; हम सुख पर ध्यान नहीं देते हैं। हम दुख-दुख चुन लेते हैं; हम सुख की उपेक्षा कर देते हैं। फिर जिसकी उपेक्षा कर देते हैं, स्वभावतः धीरे-धीरे धीरे-धीरे वह दूर होता चला जाता है। और जिसमें हम रस लेते हैं, वह पास होता चला जाता है।

पहली बात ख्याल लो आज के सूत्रों में कि संतों की बात तुम्हें तभी जमेगी, रुचेगी, भली लगेगी, प्रीतिकर मालूम होगी--जब तुम दुख को पकड़ना छोड़ दोगे; जब तुम जागोगे और सुख की सचेष्ट खोज शुरू करोगे। तब उनके एक-एक सूत्र बहुमूल्य हैं; अन्यथा सुन लोगे और नहीं सुन पाओगे। तुम्हारे भीतर अगर अभी भी दुख को पकड़ने का आयोजन चल रहा है, तो संतों के वचन तुम्हारे कानों में गूंजेंगे और खो जाएंगे। तुम्हारे हृदय तक नहीं पहुंचेंगे। क्योंकि संतों के वचनों में बड़ा सुख भरा है। इन वचनों में अमृत भरा है। तुम सुखोन्मुख हो जाओ, तुम आनंद की खोज में लग जाओ--तो ये एक-एक शब्द ऐसे जाएंगे तुम्हारे भीतर जैसे तीर चले जाएं। और ये एक-एक शब्द तुम्हारे भीतर ऐसे-ऐसे हजार-हजार फूल खिला देंगे, जैसे कभी न खिले थे। तुम्हारे भीतर दीये-पर-दीये जलते चले जाएंगे--पंक्तिबद्ध दीये जल जाएंगे। तुम्हारे भीतर बड़ी रोशनी होगी।

ये छोटे-छोटे शब्द हैं। ये कोई बहुत बड़े-बड़े शब्द नहीं हैं। मगर ये बड़े सार्थक शब्द हैं। सुनो।

"बोलु हरिनाम तू छोड़ि दे काम सब
सहज में मुक्ति होई जाय तेरी।
बोलु हरिनाम तू छोड़ दे काम सब।"

काम यानी कामना। काम यानी वासना। काम यानी इच्छा, तृष्णा। यह मिले, वह मिले--कुछ मिले! जब तक हम मिलने की दौड़ में होते हैं, हम भिखमंगे होते हैं। और जब तक हम भिखमंगे होते हैं, तब तक परमात्मा नहीं मिलता। परमात्मा भिखमंगों को मिलता ही नहीं। परमात्मा सम्राटों को मिलता है। परमात्मा उनको मिलता है जो अपने मालिक हैं। परमात्मा उनको मिलता है जो कुछ मांगते ही नहीं। असल में वे ही परमात्मा को मांगने में कुछ सफल हो पाते हैं, जो और कुछ नहीं मांगते। जिन्होंने कुछ और मांगा, वे परमात्मा को कैसे मांगेंगे। वह जबान फिर परमात्मा को मांगने के योग्य न रह गई। वह जबान अपवित्र हो गई। उसी जबान से परमात्मा को मांगोगे, जिस जबान से बेटा मांगा, बेटी मांगी, धन मांगा, पद मांगा, प्रतिष्ठा मांगी--उसी जबान से परमात्मा को मांगोगे? इस जहर भरे पात्र में अमृत को रखोगे? यह जबान जब तक मांगती है, तब तक संसार है। जिस दिन यह जबान मांगती नहीं, उस दिन परमात्मा की यात्रा शुरू हुई। उस दिन बिन मांगे मिलता है। ऐसे तो मांगे-मांगे भी नहीं मिलता। बिन मांगे मोती मिलें, मांगे मिले न चून।

परमात्मा तुम्हारे मांगने से नहीं मिलता--तुम्हारी मांग जब बंद हो जाती है। ध्यान करना इस स्थिति पर। जब तुम्हारे भीतर कोई मांगने का स्वर नहीं होता, तब तुम कहां होते हो? जब मांगने का कोई स्वर नहीं होता, सब शांत मौन, चुप, कोई दौड़ नहीं, कोई आपाधापी नहीं; जब कुछ मांगना ही नहीं तो कैसी दौड़, कोई लक्ष्य नहीं; तुम कहीं नहीं जा रहे; तुम अपने घर में भीतर बैठे होते हो, विश्राम में होते हो--इसी विश्राम की दशा का नाम ध्यान है। इसी विश्राम की घड़ी में परमात्मा तुम्हारे भीतर प्रवेश करता है। परमात्मा तो रोज प्रवेश करता है, लेकिन तुम भागे हुए हो; तुम कहीं-कहीं गए हुए हो। तुम घर में कभी मिलते नहीं। तुम पते पर कभी मिलते ही नहीं। परमात्मा कभी आता है, तुम बाजार में; बैठे घर पर होते हो। अब यह जरा परमात्मा की

भी अड़चन समझो। अगर बाजार में खोजे तो तुम वहां मिलोगे नहीं, क्योंकि तुम घर बैठे हो। अगर घर तुम्हें खोजे, जहां तुम बैठे हो, तो वहां तुम हो नहीं; तुम्हारा मन बाजार में है। तुम वहां तो होते ही नहीं, जहां होते हो; मांग तुम्हें कहीं और ले जाती है। बैठे पूना में हो, हो कलकत्ता में; अब परमात्मा कलकत्ते में खोजे तो तुम मिलोगे नहीं, क्योंकि वहां तुम मिलोगे कैसे, वहां तुम हो नहीं; और पूना में खोजे तो तुम मिल नहीं सकते, क्योंकि तुम कलकत्ते गए हो।

मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन अपने मित्र से बातें कर रहा था। मुल्ला ने कहा : रात बड़े गजब का सपना देखा। सपना देखा कि पेरिस गया हूं और वहां के सब से बड़े जूए के अड्डे में खूब डट कर शराब पी है और जूआ खेल रहा हूं, लाखों रुपए जीत रहा हूं।

मित्र ने कहा : मुल्ला, यह कुछ भी नहीं। मैंने भी रात सपना देखा कि हेमामालिनी को लेकर एक एकांत निर्जन द्वीप पर चला गया हूं। वहां कोई भी नहीं। हम काफी गुलछर्रे उड़ा रहे हैं।

मुल्ला ने कहाः अरे, तुम मुझे क्यों नहीं ले चले साथ?

मित्र ने कहाः मैं तो तुम्हारे घर फोन किया था, लेकिन तुम्हारी पत्नी ने कहा कि तुम पेरिस गए हो।

यह सपने में चल रहा है सब। कोई कहीं गया नहीं है।

तुम्हारी जब तक मांग है, तब तक तुम कहीं और हो। तुम कभी अपने घर नहीं पाए जाते; परमात्मा रोज आता है, प्रतिपल आता है--आता ही रहता है। आने की बात ही कहनी ठीक नहीं--मौजूद ही रहता है तुम्हारे चारों तरफ। मगर तुम मौजूद नहीं। मिलन हो तो कैसे हो! तुम यहां मौजूद मिल जाओ तो अभी मिलन हो जाए, इसी क्षण मिलन हो जाए। तुम दूर गए हो, परमात्मा पास है।

लोग पूछते हैंः परमात्मा को कहां खोजें? जैसे कि परमात्मा दूर हो और तुम्हें खोजने जाना पड़े! परमात्मा तुम्हें खोजता हुआ खड़ा है; कृपा करके घर लौट आओ। वापस आ जाओ। जहां देह है, वहीं मौजूद हो जाओ। ये मन की तरंगें तुम्हें दूर ले जाती हैं। ये भटका देती हैं। मन की इन तरंगों में जीना ही संसार है। इसलिए पतंजलि ने कहाः चित्त-वृत्ति निरोधः योगः! जब चित्त की सारी वृत्तियां निरुद्ध हो जाती हैं, तब योग। जब चित्त में कोई वृत्ति नहीं उठती, कोई वेग नहीं उठता, जब चित्त में कोई लहर-तरंग नहीं उठती--तब योग। योग का मतलब होता है : मिलन। तब परमात्मा से मिलन। तब समाधि।

"बोलु हरिनाम तू छोड़ि दे काम सब।"

सारी वासना छोड़ दे। सारी कामना छोड़ दे। क्योंकि कितने दिन तक दौड़ा, पाया क्या? हाथ में क्या है? सब खाली का खाली है। कब जागेगा? यह दौड़ बहुत हो चुकी। समय आ गया कि दौड़ छोड़ दे। और इस दौड़ के छोड़ते ही संभावना उठती है हरिनाम की।

जहां काम गया, वहां राम आया। काम में दौड़ती ऊर्जा ही, जब काम में नहीं दौड़ती तो राम बन जाती है। राम काम ही की ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन है। राम काम की ही ऊर्जा है। काम में नीचे की तरफ जाती है, बाहर की तरफ जाती है, दूर जाती है; जब काम की ही ऊर्जा कहीं नहीं जाती, नीचे नहीं, बाहर नहीं, दूर नहीं--तो राम बन जाती है। फिर अपने घर में विश्राम हो जाता है। अनहद में विसराम!

तो राम-राम जपने को नहीं कह रहे हैं पलटूदास। यह मत सोच लेना कि वे कह रहे हैं कि बैठो और राम-राम जपो। वे कह रहे हैं काम को रूपांतरित करो, तब राम-जप अपने से होगा। फिर तुम्हें करना न होगा। किए हुए का कोई मूल्य नहीं। तुम करोगे तो वह तो फिर वासना ही रहेगी। लोग करते भी हैं, राम-राम राम-राम जप रहे हैं; मगर यहां राम-राम जप रहे हैं, भीतर वे सोच रहे हैं : कुछ मिलेगा इससे कि नहीं मिलेगा? कितना तो जप चुके, मिलता तो कुछ है नहीं! कितना तो भगवान को कहे जा रहे हैं, पता नहीं भगवान है भी या नहीं!

और मांग क्या रहे हो तुम? कुछ क्षुद्र मांग रहे होओगे। जो क्षुद्र तुम अपनी वासना से नहीं पा सके, वही तुम प्रार्थना से पाने की कोशिश कर रहे हो। तो तुमने प्रार्थना को भी कलुषित कर दिया। प्रार्थना तो तभी है जब मांग से मुक्त हो।

अब देखो, प्रार्थना इतनी कलुषित हो गई है कि प्रार्थना शब्द का मतलब ही मांगना लगता है। तो मांगने वाले को हम प्रार्थी कहते हैं। प्रार्थना ऐसी खराब कर दी हमने, कि जब भी कोई कहे कि हम प्रार्थना कर रहे हैं, तो स्वाभाविक उठता है मन में प्रश्नः किसलिए? क्या मांगने के लिए? किस बात की प्रार्थना?

प्रार्थना किसी बात की नहीं होती; मांगने के लिए नहीं होती। प्रार्थना तो एक ऐसी चित्त की दशा है, जहां मांगना मिट गया है। एक मस्ती की दशा है। एक अहोभाव! एक धन्यवाद! मांगते हो, उसमें शिकायत ही है। मांगने का मतलब ही शिकायत है कि जो होना चाहिए, वह नहीं है, वह करो; ऐसा होना चाहिए, वैसा होना चाहिए।

प्रार्थना का अर्थ हैः धन्यवाद। जैसा है सुंदर है। जैसा है, इससे सुंदर और क्या हो सकता है! जैसा है, पर्याप्त है। पर्याप्त से ज्यादा है। मैं इससे परितुष्ट हूं।

प्रार्थना का अर्थ हैः परितोष का भाव। मुझे खूब दिया है, इसके लिए धन्यवाद देता हूं। मुझे बनाया, यही काफी है। और क्या चाहिए! मुझे यह चेतना दी, यह साक्षी दिया--और क्या चाहिए! मुझे यह आत्मा दी, यह शाश्वत आत्मा दी--और क्या चाहिए! यह बोध की क्षमता दी--और क्या चाहिए! यह बोध की क्षमता ही बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाती है। यह बोध ही एक दिन बुद्ध बन जाता है।

"बोलु हरिनाम तू छोड़ि दे काम सब
सहज में मुक्ति होइ जए तेरी।"

पलटू कहते हैंः सहज में ही हो जाएगी मुक्ति, तू मांग मत। आकांक्षा मत कर परमात्मा ऐसे ही देने को है, तू मांग कर बात को खराब मत कर। मांग कर अपनी प्रतिष्ठा मत गिरा। मुक्ति तो ऐसी ही हुई-हुई है; सहज में ही, बिना कुछ किए हो जाएगी। तू शांत बैठ जा, मौन बैठ जा, विश्राम में उतर जा। कामना की दौड़-धूप न रह जाए, मुक्ति हो जाएगी।

"बोलु हरिनाम तू छोड़ि दे काम सब
सहज में मुक्ति होइ जाए तेरी।
दाम लागै नहीं काम यह बड़ा है।"

सुनना ठीक से।

पलटू कहते हैंः दाम लागे नहीं, काम यह बड़ा है।

यह बड़े से बड़ा काम है मुक्ति। इससे बड़ा कोई काम नहीं है इस जगत में। यह बड़े से बड़ा कृत्य है। यह बड़े से बड़ी अनुभूति है। यह शिखर है आखिरी। इसके ऊपर न कोई आनंद है, न इसके ऊपर कोई कल्याण है, न इसके ऊपर कोई और श्रेयस है।

"दाम लागै नहीं काम यह बड़ा है!"

काम यह बड़े से बड़ा है। यही तो मनुष्य-जीवन की कृतार्थता है और दाम लागै नहीं! कुछ भी लगता नहीं। यह ऐसे ही घट जाता है। जरा सी अपनी मांगों को हटा देना है; भिखमंगेपन को गिरा देना है। मालिक से मालिक का मिलना होता है। साहिब का साहिब से मिलना होता है। जब तक तुम स्वामी नहीं हो, तब तक तुम परमात्मा से न मिल सकोगे।

"दाम लागै नहीं काम यह बड़ा है,
सदा सतसंग में लाउ फेरी।"

स्वभावतः प्रश्न उठता हैः यह घटना कैसे घटे? बात समझ में भी आ जाए, तो भी यह घटना कैसे घटे?

हम तो जीवन में दौड़-दौड़ कर कुछ न पा सके, यह सहज कैसे मिलेगा? बिना किए कैसे मिलेगा? यह बात तो बेबूझ लगती है, उलटबांसी मालूम होती है। लगता है, ये फकीर तो इस तरह की उलटी बातें बोलते ही रहे हैं, कि सहज में हो जाएगी बात, कुछ करना न पड़ेगा राम-नाम का विस्फोट हो जाएगा! यह होगा कैसे? इसकी शुरुआत कहां से करें? समझ भी लें, मान भी लें कि ऐसा ही ठीक होगा; लेकिन कैसे छोड़ें वासनाएं और कैसे यह राम की घटना घटे?

और हमने कैसे पूछा कि अड़चन आई। क्योंकि कैसे का मतलब है : हमने एक नई वासना बनाई। अब हमने कहा कि राम-नाम घटना चाहिए, मुक्ति होनी चाहिए। यह हमारी वासना हो गई। काम गया नहीं, काम पीछे के दरवाजे से वापस आ गया। काम ने कहा : चलो, धन मत मांगो, मुक्ति मांगो। और अगर बिन मांगे मिलती है तो चलो मांगो ही मत; क्योंकि बिन मांगे मिलती है, इसलिए मांगो मत। मगर यह तो तरकीब मांगने की हुई; चूंकि बिन मांगे मिलती है, इसलिए नहीं मांगेंगे। मगर भीतर तो मांगने का भाव बना ही हुआ है। और किनारे से, आंख के कोने से तुम देखते रहोगे : अभी मिली कि नहीं मिली? अब तक नहीं मिली, पता नहीं बात सच थी कि झूठ थी!

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैंः ध्यान नहीं लगता है। बड़ी चेष्टा कर रहे हैं। मैं उनसे कहता हूं : तुम कुछ ध्यान में आकांक्षा तो नहीं रखे हो? वे कहते हैं : आकांक्षा तो है--चित्त में शांति हो जाए, स्वास्थ्य ठीक हो जाए, ऐसा हो जाए, वैसा हो जाए।

मैं कहता हूं : जब तक तुम आकांक्षा रखोगे, यह होगा नहीं। तो वे कहते हैं : अच्छी बात है, आप कहते हैं तो आकांक्षा छोड़ कर कर देंगे। लेकिन फिर होगा?

वह जो "फिर होगा" कहते हैं, उसमें आकांक्षा वापस लौट आई। आदमी ऐसे गहन जाल में है कि एक तरफ से छूटता है तो दूसरी तरफ से पकड़ जाता है। तो पलटू का सुझाव क्या है? पलटू का सुझाव है :

"दाम लागै नहीं काम यह बड़ा है,

सदा सतसंग में लाउ फेरी।"

इसलिए अब इसकी कहां से शुरुआत करें?

तुम पूछोगे : कैसे? कैसे पूछा कि भूल हो गई। पलटू कहते हैंः कैसे मत पूछो। पूछो कहां से? सत्संग से : जहां कुछ लोग इस शून्य में विराजमान हों; एकाध भी सही, तो भी चलेगा। जहां एकाध भी इस विश्राम में विराजमान हो गया हो, वहां के चक्कर काटो, सत्संग करो, वहां की फेरी लगाओ। वह जगह परिक्रमा के योग्य है। वहां जाओ; जितना समय बिता सको, बिताओ। बैठो उसके पास जिसको हो गया है। उसके पास बैठते-बैठते, पारस के पास बैठते-बैठते लोहा भी सोना हो जाता है।

सत्संग बड़ा बहुमूल्य है। भक्ति के मार्ग में सत्संग का वही मूल्य है जो योग के साधने में समस्त प्रक्रियाओं का है। अष्टांग। यम, नियम, आसन, व्यायाम--सब जोड़ कर जो सारी विधियां पतंजलि ने गिनाई हैं, यम से लेकर समाधि तक, आठ अंग; या बुद्ध ने भी अष्टांगिक मार्ग कहा है--सम्यक दृष्टि, सम्यक व्यवहार, सम्यक श्रम, इत्यादि। हजारों विधियां हैं। योग में, तंत्र में विधियां ही विधियां हैं। भक्ति की क्या विधि है? भक्ति की एक ही विधि है : सत्संग। सारी विधियों का जोड़, कि जिसको हो गया हो, उसके पास बैठ जाओ। उसकी मौजूदगी कैटेलिटिक एजेंट का काम करती है। उसकी मौजूदगी में कुछ घटने लगता है।

रोज तुम देखते हो घटनाएं घटती हैं मौजूदगी में, मगर तुम ख्याल नहीं लेते। सुबह हुई, अभी सूरज नहीं निकला, कलियां बंद हैं, पक्षी सोए हैं; फिर भोर होने लगी, प्राची में लाली हुई, कलियां खिलने लगीं। अब सूरज कोई एक-एक कली को आकर खोलता थोड़े ही है--सिर्फ उसकी मौजूदगी; सिर्फ रोशनी की मौजूदगी। अब सूरज आकर एक-एक पक्षी के सिर पर दस्तक थोड़े ही देता है कि अब जागो भाई, भोर भई! लेकिन जैसे ही सूरज की

रोशनी फैलनी शुरू होती है, सारी पृथ्वी जाग आती है। वृक्ष जागते हैं, पशु जागते हैं, पक्षी जागते हैं। सब जागरण फैल जाता है। सहज ही हो जाता है। सूरज की मौजूदगी जगा देती है। सांझ हुई, सूरज गया, प्रकृति सो जाती है। उसकी गैर-मौजूदगी में निद्रा सघन हो जाती है।

ऐसे ही जो जाग गया हो, उसके पास अगर रहोगे, तो उसकी किरणें, उसका प्रकाश, उसकी रोशनी तुम पर पड़ेगी। तुम अंधे हो तो भी पड़ेगी। अंधा भी जब दीये जले कमरे में आता है तो उस पर भी रोशनी पड़ती है। रोशनी कुछ यह थोड़े ही कहती है कि अंधे पर नहीं पड़ूंगी। तुम सोए हो तो भी पड़ेगी। तुम मूर्च्छित हो तो भी पड़ेगी। वे किरणें धीरे-धीरे धीरे-धीरे तुम्हारे अंग-अंग में व्याप्त हो जाएगीं। वह सुवास धीरे-धीरे तुम्हारे हृदय में घर बना लेंगी। सत्संग भक्तों का एकमात्र मार्ग है।

"दाम लागै नहीं काम यह बड़ा है,
सदा सतसंग में लाउ फेरी।"

इससे यह मत समझ लेना कि सत्संग में जो हो जाएगा तो सब हो गया। सत्संग में शुरुआत होती है; अंतिम परिणाम तो तुम्हारे भीतर होंगे। सत्संग में तो पहली किरण फूटती है। पूरा सूरज तो तुम्हारे भीतर उगेगा। इसलिए गुरु से बंध नहीं जाना है। गुरु के संग-साथ तो होना है, लेकिन बंध नहीं जाना है। गुरु के चरणों में तो झुकना है, लेकिन वहीं रुक नहीं जाना है। वहां से यात्रा का प्रारंभ है। फिर तो जाना है भीतर। उसके पास बैठ-बैठ कर सहज दशा का थोड़ा सा अनुभव होगा। एक बूंद कंठ में उतर जाएगी। स्वाद आ जाए, तो फिर चीजें बड़ी सरल हो जाती हैं।

ये जो इक नूर की हल्की सी किरन फूटी है
कौन कहता है इसे सुब्हे-दरख्शां ऐ दोस्त
मुझ को एहसास है, बाकी है शबे-तार अभी
लेकिन ऐ दोस्त मुझे रक्स तो कर लेने दे
कम से कम नूर ने उलटा तो है इक बार नकाब
एक लम्हे को तो टूटा है तिलस्मे-शबे-तार
इससे साबित तो हुआ, सुबह भी हो सकती है
परदा-ए-जुलमते शब चाक भी हो सकता है
सुब्हे काजिब भी तो है असल में दिबाचः सुबह
सुब्हे काजिब भी तो है सुब्हे दरख्शां की नवेद
एक ऐलान कि हंगामे-विदा-ए-शब है
काफिला नूरे-सहर का है बहुत ही नजदीक
जल्द होने को है खुरशीदे-दरख्शां की नुमूद

ये जो इक नूर की हलकी सी किरन फूटी है! देखते हैंः सुबह होने के पहले भोर होती है! सूरज नहीं उगा होता, रात चली गई होती है; लेकिन सूरज नहीं उगा होता है--दोनों का मध्यकाल, उसको ही संध्या कहते हैं। एक संधि का काल। छोटी सी संधि। रात गई, दिन अभी नहीं हुआ है। उस भोर की घड़ी को सुबह भी नहीं कह सकते अभी, रात भी नहीं कह सकते अब। ऐसी ही घटना घटती है गुरु के पास। अभी तुम मुक्त भी नहीं हो गए। और अब तुम बंधन में हो, ऐसा भी नहीं कह सकते। संधिकाल आ गया। बंधन गिरने-गिरने को, रात जाने-जाने को, और दिन आने-आने को। दोनों के मध्य में है।

ये जो इक नूर की हल्की-सी किरन फूटी है
कौन कहता है इसे सुब्हे-दरख्शां ऐ दोस्त

इसे कौन कहता है कि यह असली सुबह है! कौन कहता है कि सूरज हो गया! कौन कहता है कि दिन निकल आया? मुझको एहसास है बाकी है शबे-तार अभी! मुझे पक्का पता है कि अभी रात और काटने को है; अभी थोड़ी और देर है। लेकिन ऐ दोस्त, मुझे रक्स तो कर लेने दे। लेकिन मुझे नाच तो लेने दे। मुझे खुश तो हो लेने दे। यह जो हलकी सी नूर की किरण फूटी है, इसका स्वागत तो कर लेने दे।

सत्संग में आनंद-मग्न हो जाते हैं भक्त। अभी उनकी सुबह नहीं आई, लेकिन किसी में तो आ गई है! किसी की सुबह देखी। अभी परमात्मा को उन्होंने सीधा नहीं देखा, लेकिन किसी की आंखों से देखा। अभी परमात्मा का हाथ उन्होंने खुद नहीं छुआ, लेकिन ऐसे आदमी का हाथ छुआ है जिसने परमात्मा का हाथ छुआ है। यह भी कुछ कम नहीं। यह भी बड़ी क्रांति की घटना है। भोर हो गई।

लेकिन ऐ दोस्त, मुझे रक्स तो कर लेने दे।

इसलिए भक्त सत्संग में आनंदित हो उठता है, मस्त हो उठता है, रक्स में आ जाता है, नाच पैदा हो जाता है उसके भीतर। एक शराब की मस्ती उसमें छा जाती है। डोलने लगता है।

मुझको एहसास है, बाकी है शबे-तार अभी

लेकिन ऐ दोस्त मुझे रक्स तो कर लेने दे

कम से कम नूर ने उलटा तो है इक बार नकाब!

चलो इतना ही क्या कम कि एक बार तो रोशनी ने झलक दी। एक बार तो पर्दा उठा, घूंघट उठा। एक बार तो खिड़की खुली। झरोखे से देखा है सूरज अभी; झरोखा अपना नहीं है, यह भी सच है। यह सच है। मुझको एहसास है बाकी है शबे-तार अभी। और यह जो इक नूर की हल्की-सी किरण टूटी है, कौन कहता है इसे सुब्हे-दरख्शां ऐ दोस्त! मैं इसे कहता भी नहीं कि मेरी सुबह हो गई, लेकिन किसी और की सुबह में थोड़ी देर के लिए मेहमान हुआ हूं; किसी और के आनंदपूर्ण जगत में थोड़ी देर के लिए शामिल हुआ हूं; किसी और के नृत्य में भागीदार हुआ हूं। पर मुझे आनंद कर लेने दो।

मेरे पास कई बार मित्र पूछते हैं। अजित सरस्वती बार-बार प्रश्न पूछते हैं कि अभी मुझे हुआ नहीं है, लेकिन होने-होने को है। और मुझे जो होने-होने को है, उसे भी मैं दूसरों को बांटना चाहता हूं। तो मैं बांटूं या न बांटूं? मैं दूसरों को कहूं या न कहूं? मैं चुप रहूं या यह खबर फैलाऊं?

वे यही पूछ रहे हैं। वे यही पूछ रहे हैं--लेकिन ऐ दोस्त, मुझे रक्स तो कर लेने दे!

बांटना ही होगा। भोर ही सही अभी, अभी सूरज नहीं निकला, सूर्योदय नहीं हुआ, भोर ही सही; मगर सूरज करीब तो आ गया! अब ज्यादा देर नहीं होने में। बांटो! रक्स करो! आनंद मनाओ! उत्सव में आओ।

भक्त को आनंद में देख कर अनेक लोगों को हैरानी होती है। लोग पूछते हैं : तुम्हें हो गया? यहां मेरे पास जो आकर मस्त हो जाते हैं, उनको लोग पूछते हैं : तुम्हें हो गया, तुम इतने मस्त हो रहे हो! और स्वभावतः झिझक होती है कि कैसे कह दें कि हमें हो गया!

मुझको एहसास है बाकी है शबे-तार अभी!

अभी रात बाकी है। तो यह कह भी नहीं सकते कि मुझे हो गया। लेकिन किसी को हो गया है, कहीं हो गया है; हम वहीं से आ रहे हैं। हमने थोड़ी देर किसी और की आंखों में आंखें डाल कर देखा है। हम किसी के हाथ को पकड़ कर नाचे हैं और उस हाथ का स्पर्श हमें भरोसा दिला गया है कि होता है। सुबह भी होती है। रात ही रात नहीं है, सुबह भी होती है।

कम से कम नूर ने उलटा तो है एक बार नकाब

चलो किसी और के चेहरे पर सही, हमने परमात्मा की छाप देखी है। मगर, अगर एक आदमी के चेहरे पर परमात्मा की छाप हो सकती है, तो हमारे चेहरे पर भी हो सकती है, यह भरोसा आ गया। और यह भरोसा आ गया तो सब आ गया। यह भरोसा ही बुनियाद है। इसी को श्रद्धा कहा है।

श्रद्धा विश्वास का नाम नहीं। भूल कर भी मत सोचना कि विश्वास का नाम श्रद्धा है। विश्वास का अर्थ है : दूसरों ने समझा दिया है। उनको भी नहीं हुआ है। और उन्होंने ने तुम्हें समझा दिया है। तुम्हारे मां-बाप ने समझा दिया है। उनको भी नहीं हुआ है। तुम्हारे पंडित-पुरोहित ने समझा दिया है; उसको भी नहीं हुआ है। और तुम विश्वास ले आए।

विश्वास का अर्थ है : अंधों ने अंधों को समझा दिया है।

श्रद्धा का अर्थ हैः किसी आंख वाले की आंख में आंख डाल कर देखा है। तुम्हारी अभी आंख नहीं खुली है। तुम्हारा अपना झरोखा अभी बंद है। लेकिन किसी और के मेहमान होकर देखा है। लेकिन जिसके मेहमान होकर देखा है, उसको हुआ है--तो श्रद्धा।

श्रद्धा और विश्वास में यही फर्क है। श्रद्धा का अर्थ है : कहीं हमने वह चमत्कार देखा।

कम से कम नूर ने उलटा तो है इक बार नकाब

एक लमहे को तो टूटा है तिलस्मे शबे-तार।

एक क्षण को, एक पल को सही, जरा सी झलक के लिए--लेकिन रात का जो जादू था, टूटा। एक लमहे को सही, मगर रात का जादू टूट गया है। वह रात के जादू ने हमें ऐसा ग्रसा है, रात के जादू ने हम पर ऐसी फांसी कसी है, कि भरोसा ही नहीं होता कि सुबह होगी, कि सुबह कभी भी हुई थी, कि सुबह हो सकती है।

गुरु का अर्थ है--ऐसा व्यक्ति, जिसमें लमहे भर को रात का जादू तुम्हारे लिए टूट जाता है। उसके लिए तो टूट गया है, लेकिन उसके पास, उसकी सन्निद्धि में, उसके संग-साथ उठते-बैठते, उठते-बैठते--पलटू कहते हैं : चक्कर काटते रहना। पलटू कहते हैंः सदा सतसंग में लाउ फेरी। जितना बने, जाते रहना सत्संग में। जल्दी मत करना, अधैर्य मत करना।

एक लमहे को तो टूटा है तिलस्मे-शबे तार

इससे साबित तो हुआ : सुबह भी हो सकती है।

यह श्रद्धा।

परदा-ए-जुलमते शब चाक भी हो सकता है

और रात का यह गहन पर्दा कट भी सकता है। इससे यह साबित तो हुआ।

सुब्हे काजिब भी हो तो है असल में दिबाचः सुबह

और भोर भी हो, कच्ची सुबह... सुबह काजिब भी हो... कच्ची सुबह, कच्चा समय, अभी पका नहीं है, अभी सूरज निकला नहीं है; लेकिन वह भी तो होने वाली सुबह का प्रमाण है, आने की खबर है।

सुब्हे काजिब भी हो तो है असल में दिबाचः सुबह

सुब्हे काजिब भी तो है सुब्हे-दरख्शां की नवेद

वह सूचक है कि आता है दिन, आता है, अब आया, अब आया। संदेशवाहक है। एक ऐलान कि हंगामे-विदा-ए-शब है... कि रात्रि के समय का अंत आ गया।

यही मैं अजित सरस्वती को कहता हूं : अभी हुआ तो नहीं, लेकिन रात्रि के विदा का समय आ गया। एक ऐलान! स्वभावतः जब तुम्हें ऐलान सुनाई पड़ेगा तो तुम्हें भी ऐलान करना ही होगा। क्या करोगे? जब तुम्हें श्रद्धा पैदा होगी, तुम्हें बांटनी ही पड़ेगी; किसी को कहना ही पड़ेगा। अन्यथा बोझिल हो जाएगी, भारी हो जाएगी। बांटना ही पड़ता है। जब मेघ भर जाता है जल से, तो बरसता ही है। और जब फूल में गंध आ जाती है तो बिखरती ही है। यह होगा ही।

एक एलान कि हंगामे-विदा-ए-शब है

काफिला नूरे-सहर का है बहुत ही नजदीक

काफिला अब ज्यादा दूर नहीं है सुबह का। करीब ही है। पगध्वनियां सुनाई पड़ने लगीं काफिले की। आवाजें पास आने लगीं।

काफिला नूरे सहर का है बहुत ही नजदीक।

जल्द होने को है खुरशीदे दरख्शां की नुमूद

वह महासूर्य जल्दी ही प्रकट होने के करीब है। सत्संग का अर्थ है : जहां प्रकट हो गया हो, जिसमें प्रकट हो गया हो, जहां तुम्हें श्रद्धा जम जाए--फिर तुम फिकर मत करना दुनिया की। और ख्याल रखो कि तुम किसी को सिद्ध भी न कर पाओगे। यह बात हार्दिक है। लग गई, लग गई। तुम दूसरे को सिद्ध न कर पाओगे। तुम दूसरे को प्रमाण न दे पाओगे। तुम दूसरे को तर्क से न समझा पाओगे। कब कौन समझा पाया है!

यह ऐसा ही है कि तुम किसी एक स्त्री के प्रेम में पड़ गए या किसी पुरुष के प्रेम में पड़ गए। अब तुम लाख उपाय करो कि वह सुंदर है, कैसे समझाओगे? तुम्हें सुंदर है, निश्चित ही; अन्यथा तुम प्रेम में क्यों पड़ते! लेकिन तुम क्या समझा सकोगे किसी और को? क्या उपाय होगा? कोई उपाय नहीं। लोग हंसेंगे। ठीक ऐसा ही है गुरु के प्रेम में भी पड़ जाना। सत्संग भी ऐसा ही है।

"बिलम न लाइकैं डारि सिर भार को

छोड़ि दे आस संसार केरी।"

पलटू कहते हैंः फिर देर मत करना, जब गुरु मिल जाए। बिलम न लाइकैं डारि सिर भार को! फिर तो अपने सारे सिर-भार को उसके चरणों में डाल देना। छोड़ि दे आस संसार केरी! फिर आशा के लिए नई यात्रा शुरू होती है। फिर संसार की आशा छोड़ देना। फिर यह मत सोचना कि अब इस संसार में कुछ और मिल सकता है। जब गुरु मिल जाए तो संसार में जो मिल सकता था मिल गया; अब कुछ और मिलने को नहीं है इस संसार में। इस संसार में गुरु मिल जाए तो सब मिल गया। धन्यभाग उनके जिन्हें बुद्ध मिल गए। धन्यभाग उनके जिन्हें मोहम्मद मिल गए। धन्यभाग उनके जिन्हें नानक मिल गए। अब और इस संसार में मिलने को क्या है! इस संसार में और कुछ भी नहीं मिल सकता। मिलने योग्य एक ही चीज है कि गुरु मिल जाए।

यह भी थोड़ा समझ लेने का है कि क्यों? गुरु का क्या अर्थ है? गुरु का अर्थ है संसार के बाहर जाने का द्वार मिल जाए। संसार में इतना ही मिल जाए तो बस बहुत है--संसार के बाहर जाने का द्वार मिल जाए।

सिक्ख ठीक ही अपने मंदिर को गुरुद्वारा कहते हैं। वह सिर्फ द्वार है। गुरु का द्वार! इस संसार में जन्मों-जन्मों तक भटक कर, वासना में हजार तरह के कष्ट पाकर, निराश होने के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगता। जिस दिन गुरु मिल जाए उस दिन संसार से और सब आशा छोड़ देना। यहां की बात खत्म हो गई, यह यात्रा पूरी हो गई। तुम द्वार के करीब आ गए, जहां से परमात्मा शुरू होता है।

"छोड़ि दे आस संसार केरी

बिलम न लाइकैं डारि सिर भार को।"

अब कुछ आशा रखने की जरूरत नहीं संसार से; जो हो सकता था संसार में, हो गया। अंतिम हो गया।

"दास पलटू कहै यही संग जाएगा।"

यही संग--सत्संग!

"दास पलटू कहै यही संग जाएगा,

बोलु मुख राम यह अरज मेरी।"

सत्संग साध लो। सत्संग ही साथ जाएगा। और सब पड़ा रह जाएगा। गुरु से थोड़ा गहरा संबंध बांध लो। उस संबंध में जो झलकेगा, जो दिखाई पड़ेगा, वही साथ जाएगा। शेष सब पड़ा रह जाएगा।

पलटू कहते हैं : मेरी अर्जी है, मेरी प्रार्थना है तुमसे।

बोलु मुख राम यह अरज मेरी।

छोड़ काम सब बोलु हरिनाम।

सहज में मुक्ति हो जाये तेरी।

"पूरब में राम है, पच्छिम खुदाय है।"

तब कहते हैं कि जिस राम की मैं बात कर रहा हूं, वह वह राम नहीं है जिसकी मंदिर-मस्जिदों में बात चलती है। भूल मत कर लेना।

"पूरब में राम है, पच्छिम खुदाय है।

उत्तर और दक्खिन कहो कौन रहता?"

पलटू कहते हैंः ये भी क्या पागलपन की बातें हैं कि कोई कहता है कि पश्चिम में खुदा है, पूरब में राम है! तो उत्तर और दक्खिन में कौन रहता? सभी दिशाएं उसकी हैं। सभी दिशाओं में वह व्याप्त है। इसलिए मंदिर-मस्जिदों के चक्कर में मत पड़ना। यह सारा अस्तित्व उसका मंदिर है। यहां प्रत्येक इंच-इंच भूमि पवित्र है। तुम

जहां भी चल रहे हो, मंदिर में ही चल रहे हो। इसलिए हर जगह होश रखना और हर जगह राम का स्मरण रखना। यह मत सोचना कि जब मंदिर गए तो स्नान करके और अच्छा भाव करके पहुंच गए और मंदिर के बाहर आए तो संसार को चलाने लगे। यह सारी जगह उसी की है। इस सब में वही व्याप्त है।

"साहिब वह कहां है, कहां फिर नहीं है।"

यह तो पूछो ही मत कि भगवान कहां है। असली सवाल तो यह है कि कहां वह नहीं है। सभी जगह है। उसका होना ही एकमात्र होना है। सब होने में वही छिपा है।

"हिंदू और तुरक तोफान करता।"

झगड़े में पड़े हैं हिंदू और मुसलमान, ईसाई और जैन, बौद्ध और पारसी, सब झगड़े में पड़े हैं। वे इसकी फिकर में लगे हैं कि भगवान कहां है। पलटू कहते हैं : असली सवाल यह है साहिब वह कहां है, कहां फिर नहीं है! उसके रूप की भी कोई फिकर मत करो। सब रूप उसी के हैं। और उसके नाम की भी बहुत चिंता मत करो; सभी नाम उसी के हैं।

"हिंदू और तुरक मिलि परे हैं खैंचि में
आपनी बर्ग दोउ दीन बहता।"

खींच-तान में लगे हैं! लोगों को खींच रहे हैं कि यहां आओ, धर्म यहां है। बड़ी खींच-तान मची है। इस खींच-तान में मत पड़ना। किसी सदगुरु की शरण उतर जाना। रख देना सारा सिर-भार। छोड़ देना संसार की आशा; फिर मिल गया जो मिलने को था यहां। परम निधी मिल गई हाथ; फिर उसमें डुबकी लगा जाना।

"दास पलटू कहै, साहिब सब में रहै,
जुदा ना तनिक मैं सांच कहता।"

सब में है परमात्मा। तुम में भी है। इसलिए किसी मंदिर-मस्जिद की खींचा-तानी में पड़ने की कोई जरूरत नहीं। सब खींचा-तानी राजनीति है। सब संख्या बढ़ाने का उपाय है। खींचा-तानी की फिकर में मत पड़ना। हिंदू-मुसलमान होने से कुछ सार नहीं होता। किसी जीवंत गुरु का हाथ पकड़ो। वहां न कोई हिंदू होता है, न वहां कोई मुसलमान होता है। यह बड़े मजे की बात है। क्राइस्ट जब जिंदा थे तो कोई क्रिश्चियन नहीं था। और बुद्ध जब जिंदा थे तो कोई बौद्ध नहीं था। और कृष्ण जब जिंदा थे तो कौन हिंदू था! हिंदू शब्द भी नहीं था। जब कोई जीवित गुरु मौजूद होता है, तब वहां धर्म विशेषण-रहित होता है। जब गुरु विदा हो जाता है, तो धीरे-धीरे पंडित-पुरोहित इकट्ठे होते हैं; फिर विशेषण महत्वपूर्ण होने लगता है। जहां विशेषण बहुत महत्वपूर्ण हो जाए, वहां से निकल भागना। अब वहां कुछ भी नहीं है--राख है। अंगारा बुझ चुका।

"दास पलटू कहै, साहिब सब में रहै,
जुदा न तनिक, मैं सांच कहता।"

"जाहि तन लगी है सोई तन जानिहै
जानिहै वही सतसंग-वासी।"

पलटू कहते हैं : लेकिन ये बातें जो मैं कह रहा हूं, यह सुन कर तुम न समझ पाओगे। जान पाओगे, तभी।

"जानिहै वही सतसंग-वासी।"

जो सत्संग में पड़ेगा, जो किसी सदगुरु के प्रेम में पड़ेगा--वही जान पाएगा।

"जाहि तन लगी है सोइ तन जानिहै।"

यह हवा जिसको लग जाएगी, यह रोग परमात्मा का जिसको पकड़ लेगा, यह शराब जिसके कंठ उतर जाएगी--वही जानेगा।

"जाहि तन लगी है सोई तन जानिहै,
जानिहै वही सतसंग-वासी।
कोटि औषधि करैं, विरह ना जाएगा

जाहि के लगी है विरहगांसी।।"

और जिसके हृदय में परमात्मा के विरह की छुरी चुभ गई, अब किसी औषधि से यह बात हल होने वाली नहीं है। अब यह कोई इलाज से हल नहीं होगी।

पश्चिम में हजारों तरह की बीमारियों का इलाज खोजा जाता है। लेकिन अभी पश्चिम में इस बीमारी के संबंध में कुछ ख्याल नहीं है पश्चिम के चिकित्साशास्त्र को, कि एक ऐसी भी बीमारी होती है--भक्त की बीमारी, प्रेमी की बीमारी--जिसका कोई इलाज इस संसार में नहीं है।

जापान में झेन की हजारों साल की परंपरा के बाद ऐसा अनुभव जापान के डाक्टरों को होना शुरू हुआ कि कुछ लोग एक अजीब तरह की बीमारी से ग्रसित हो जाते हैं, जिसका कोई संबंध पागलपन से नहीं है; लेकिन पागलपन जैसी लगती है। तो जापान अकेला मुल्क है सारी दुनिया में, जहां का चिकित्साशास्त्र एक खास तरह की बीमारी को झेन की बीमारी कहता है। यह बड़ी ऊंची बात है। और जब भी कोई चिकित्सक देखता है कि यह आदमी झेन से बीमार है, ध्यान से बीमार है, इसकी बीमारी ध्यान है, परमात्मा है--तो फिर उसका इलाज नहीं करता। उसको भेज देता है किसी सदगुरु के पास--किसी आश्रम में, कि तू वहां चला जा। यहां हमारे पास इलाज नहीं हो सकेगा। यह तेरी कोई शरीर की बीमारी नहीं है, न तेरे मन की बीमारी है। यह आत्मिक है।

आदमी तीन तल पर जीता है--शरीर, मन, आत्मा। पहले तो पश्चिम के चिकित्सक मानते थे : सब बीमारियां शरीर की होती हैं। फिर बामुश्किल, बड़ी मुश्किल से उन्होंने स्वीकार करना शुरू किया कि कुछ बीमारियां मन की होती हैं। फ्रायड के बाद पचास साल के निरंतर संघर्ष से यह बात स्वीकार हुई कि कुछ बीमारियां मन की होती हैं। तो अब मानसिक बीमारी के लिए अलग स्थान हो गया। लेकिन अभी तीसरी बीमारी स्वीकृत नहीं हो पाई है कि कुछ बीमारियां आत्मा की होती हैं और उनका कोई इलाज नहीं किया जा सकता। उनका इलाज नहीं किया जा सकता, यह सौभाग्य है। वे तो अनुभव से ही जाती हैं। वह विरह की बीमारी है; वह तो परमात्मा के मिलन से ही जाती है।

पश्चिम में एक बहुत बड़ा विचारक हैः आर. डी. लैंग। उसने बहुत से पागलों का अध्ययन किया है। मनोवैज्ञानिक है। और उसने इस संबंध में बड़ी मेहनत की है कि बहुत से पागल पश्चिम के पागलखानों में बंद हैं, जो पागल नहीं हैं; किसी और सदी में होते तो भक्त समझे जाते। अगर पूरब में होते तो ध्यानी समझे जाते। और पागलखानों में बंद हैं, उनका इलाज किया जा रहा है, इंजेक्शन दिए जा रहे हैं, बिजली के शॉक दिए जा रहे हैं। उनको सताया जा रहा है। क्योंकि उनके पास कोई मानसिक बीमारी के पार और भी एक तीसरी बीमारी हो सकती है, उसकी कोई धारणा नहीं है। यह जो पलटू कहते हैं--

"जाहि तन लगी है सोइ तन जानिहै

जानिहै वही सतसंग-वासी।"

जैसे एक विक्षिप्तता पकड़ ले, परमात्मा ऐसे ही पकड़ता है। जैसा प्रेमी पागल हो जाता है, ऐसा भक्त पागल हो जाता है। और प्रेमी का पागलपन तो कुछ भी नहीं--छोटा-मोटा झरना! भक्त का पागलपन तो ऐसे जैसे पूरा सागर। मजनू पागल होता है लैला के लिए, लेकिन स्वभावतः मजनू का पागलपन लैला के लिए छोटा-मोटा पागलपन होगा। लेकिन जब मीरा पागल होती है कृष्ण के लिए, तो यह पागलपन तो विराट होगा, आकाश जैसा बड़ा होगा।

"कोटि औषधि करैं, विरह न जायगा

जाहिकै लगी है विरहगांसी।"

जिसके हृदय में परमात्मा के विरह की छुरी चुभ गई! और सत्संग में यही होता है।

गुरु की मौजूदगी, गुरु का अनुभव, गुरु के भीतर फूटी प्रकाश की झलक--भक्त की छाती में छुरे की तरह गड़ने लगती है : ऐसा मुझे कब होगा! मेरे कब होंगे धन्यभाग कि ऐसा मुझे हो! रोता है भक्त, चीखता है भक्त,

चिल्लाता है भक्त। छाती पीटता है; नाचता है, गाता है, पुकारता है। इसको जो ठीक शब्द दिया पलटू नेः विरहगांसी। बड़ी छुरी चुभ जाती है। मगर यह धन्यभाग है। ऐसा जो बीमार हो जाए, धन्यभागी है।

"नैन झरना बन्यौ, भूख ना नींद है

परी है गले बिच प्रेम-फांसी।"

सत्संग में यह होगा तो पलटू कह देते हैं : सावधान पहले ही कर देना उचित है।

"नैन झरना बन्यौ!"

आंख से ऐसे ही बहते हैं आंसू जैसे झरना।

और ध्यान रहे, ये आंख के आंसू, जब भक्त की आंख से बहते हैं तो दुख के नहीं होते हैं; ये सुख के होते हैं। यह विरह भी बड़ा सुखद है। परमात्मा का विरह, आदमियों से मिलन से जो सुख होता है, उससे कहीं ज्यादा सुख परमात्मा के विरह में है। आदमियों से मिल कर तो जो सुख होता है, वह आज नहीं कल दुख बन जाता है। और परमात्मा का विरह का जो दुख है, वह आज नहीं कल सुख बन जाता है। इसलिए भक्त रोता है। उसके आंसू परम आनंद के आंसू हैं। वह अहोभाव से रोता है।

"नैन झरना बन्यौ, भूख ना नींद है,

परी है गले बिच प्रेम-फांसी।"

अब तो उसकी गर्दन में एक फांसी लग गई है। जब तक प्रभु-मिलन न हो जाए, तब तक चैन नहीं। जब तक उसमें लीनता न हो जाए, तब तक अब कैसी भूख, कैसी प्यास!

"दास पलटू कहै लगी ना छूटिहै

सकल संसार मिलि करै हांसी।"

और यह पागलपन ऐसा है, एक बार लग जाए तो सारा संसार हंसे, उपहास करे, तो भी छूटता नहीं।

"दास पलटू कहै लगी ना छूटिहै।"

लग भर जाए यह रंग, फिर छूटता नहीं। यह कोई कच्चा रंग नहीं है।

"सकल संसार मिलि करै हांसी।

होय रजपूत सो चढ़ै मैदान पर।"

इसलिए कहते हैंः ध्यान रखना, होय रजपूत सो चढ़ै मैदान पर!

जिसमें हिम्मत हो, साहस हो, वही इस रास्ते पर आए। यह कमजोरों का रास्ता नहीं। यह भयभीतों-भीरुओं का रास्ता नहीं।

"होय रजपूत सो चढ़ै मैदान पर,

खेत पर पांच-पच्चीस मारै।"

यह जो पांच-पच्चीस है--ये तुम्हारी पांच इंद्रियां और इन पांच इंद्रियों के पच्चीस प्रतिफलन जो जीवन में बनते हैं। एक-एक इंद्रिय पांच-पांच इंद्रिय हो जाती है। एक-एक इंद्रिय पांच-पांच दिशाओं में दौड़ने लगती है।

"होय रजपूत सो चढ़ै मैदान पर,

खेत पर पांच-पच्चीस मारै।"

इंद्रियों को जो जीत ले, वही विजेता है। इसलिए हमने महावीर को जिन कहा है। जिन का अर्थ होता है : जिसने जीत लिया। जैनों को जैन कहलाने का कोई हक नहीं है। वह तो सिर्फ महावीर को हक है। इंद्रियां जीती हों, तो जिन; अन्यथा कैसे जिन, कैसे जैन? इंद्रियों की मालकियत आई हो, इंद्रियां अपनी हों... । अभी तुम्हारी इंद्रियां अपनी कहां हैं! तुम राह पर चले जा रहे हो, एक सुंदर स्त्री निकलती है--आंख मोहित हो जाती है। तुम इधर-उधर आंख खींचते हो, मगर आंख वहीं जाना चाहती है। अभी तुम्हारी आंख भी तुम्हारा कहां मानती है!

और तुम जबरदस्ती खींच-तान कर आंख को रोक भी लो, तो रात सपना देखोगे उसी स्त्री का। आंख देखना ही चाहती थी तो देखेगी। सपना देखेगी, अगर असली में नहीं देख सकी।

राह से गुजरते हो, किसी रेस्तरां से गंध आती है सुस्वादु भोजन की, नासापुट प्रफुल्लित हो जाते हैं। तुम रोकते हो अपने को।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन ने कसम खा ली कि अब शराब न पीऊंगा। पर मुसीबत यह थी कि दूसरे दिन निकलना पड़ता था उसी रास्ते से, जहां शराब-घर था। बड़ी हिम्मत की। बड़ा परमात्मा का स्मरण करता हुआ निकला। जैसे-जैसे शराब-घर करीब आने लगा और हवा में शराब की थोड़ी खुशबु आने लगी और शराबी निकलने लगे शराब-घर से लड़खड़ाते हुए, बस कमजोर होने लगा। मगर फिर भी बड़ा हिम्मत का आदमी है, किसी तरह अपनी छाती को मजबूत कर के सौ कदम आगे तक चला गया। फिर सौ कदम पर रुक कर अपनी पीठ ठोंकी और कहा कि नसरुद्दीन, शाबास! अब आ, तेरे को दिल भर कर पिलाता हूं! इस खुशी में पिलाता हूं कि आज तूने... । पहुंच गया वापस। नई तरकीब निकाल लीः इस खुशी में पिलाता हूं, कि आज तू सौ कदम आगे तक निकल आया और शराब-घर तुझे नहीं खींच सका। शाबाश!

तुम जरा अपनी इंद्रियों को देखना। पच्चीसों दिशाओं में तुम्हें खींचती हैं। और तुम्हारे जबरदस्ती रोके ये रुकेंगी भी नहीं। जबरदस्ती रोकने से ये रुकती भी नहीं। जब तक तुम्हारे भीतर परम का स्वाद न आने लगे, तब तक तुम्हारे स्वाद की इंद्रिय के तुम मालिक न हो सकोगे। और जब तक तुम्हें परम का रूप न दिखाई पड़ने लगे तब तक तुम्हारी आंखें रूप को कहीं न कहीं खोजती रहेंगी। और जब तक तुम्हें अनाहत नाद न सुनाई पड़े, तब तक कान संगीत के पागल रहेंगे। और जब तक तुम्हें असली शराब न मिल जाए--परमात्मा के प्रेम की शराब--तब तक तुम किसी न किसी तरह के नशे की तलाश करोगे ही।

"होय रजपूत सो चढ़ै मैदान पर,
खेत पर पांच-पच्चीस मारै।
काम औ क्रोध दुई दुष्ट ये बड़े हैं,
ज्ञान के धनुष से इन्हैं टारै।।"

समझना इस सूत्र को। काम औ क्रोध दुई दुष्ट ये बड़े हैं! दो ही उपद्रव हैं इस जगत में। एक तो है काम का उपद्रव। काम का अर्थ हैः मैं जीऊं। खूब जीऊं। जीवेष्णा। और क्रोध का अर्थ है : दूसरे को न जीने दूं। इसलिए जब तुम्हें किसी पर क्रोध चढ़ता है, तो मन में उठता हैः मार ही डालूं। समाप्त ही कर दूं इसको। अपने को बचाने के लिए तुम दूसरे को मारना चाहते हो।

काम और क्रोध साथ-साथ चलते हैं। जो कामी है, वह क्रोधी होगा ही। इसलिए होगा क्रोधी, कि जब भी तुम कामवासना में दौड़ोगे, तो तुम पाओगे अनेकों से प्रतिस्पर्धा हो रही है। हीरा पड़ा है रास्ते पर, तुम भी भागे, और भी भाग रहे हैं। तुम अकेले तो नहीं हो इस जगत में। और अकेले होते तो हीरा उठाने का मजा भी क्या था? समझ लो, अकेले ही रह गए--तीसरा महायुद्ध हो गया--तुम अकेले ही रह गए, अब तुम्हारा दिल हो तो उठा लाओ कोहिनूर और जो भी हीरे तुम्हें इकट्ठे करने हों, कर लो। थोड़ी देर में तुम थक जाओगे कि इनका करना क्या! हीरा लगा कर भी बैठ जाओगे मोरमुकुट में बांध कर, तो कोई देखने भी नहीं आएगा। कोई मतलब ही नहीं है। जब भीड़ नहीं रही तो कोई मतलब ही नहीं है।

मजा समझो। हीरे का मूल्य है, क्योंकि प्रतिस्पर्धी हैं। हीरे का कोई मूल्य नहीं है, अगर प्रतिस्पर्धी न हों। और चूंकि प्रतिस्पर्धी हैं, इसलिए तुम अकेले नहीं हो संघर्ष में। हर कामना युद्ध बन जाती है। और भी लोग दौड़ रहे हैं। उनसे संघर्ष होगा। उनकी छाती पर पैर रख कर जाना पड़ेगा। उनके सिर की सीढ़ी बनानी पड़ेगी। उनकी हत्या करनी होगी तो करनी पड़ेगी।

इसलिए तो राजनीति में कोई नीति नहीं होती। कैसे लोग इसको राजनीति कहते हैं, यही आश्चर्य है। इसको नीति तो कहना ही नहीं चाहिए। यह तो नीति शब्द का बड़ा अपमान है। राजनीति में कहां नीति? वहां

तो येन-केन-प्रकारेण, जैसे भी हो, जिस तरह भी हो, अच्छे हो तो अच्छे, बुरे हो तो बुरे, सीधे हाथ हो तो ठीक, उलटे हाथ हो तो उलटे--जैसे भी हो, पद पाना है, प्रतिष्ठा पानी है। वहां तो दौड़ कर सिंहासन पर बैठना है। और स्वभावतः बहुत लोग दौड़ रहे हैं। अब हिंदुस्तान में कोई साठ करोड़ लोग हैं और सभी दौड़ रहे हैं। साठ करोड़ दुश्मन हैं तुम्हारे, जब तुम पद के आकांक्षा के जहर से भरोगे। साठ करोड़ दुश्मन हैं तुम्हारे! स्वभावतः अनीति होगी।

राजनीति यानी अनीति। और हमारा सारा जीवन कामना का है, तो राजनीति का है। धन की दौड़, तो वहां भी वही उपद्रव है।

तो जहां-जहां तुम दौड़ोगे कामवासना से, जो भी तुम्हारे बीच में आएगा, उस पर क्रोध आएगा। अगर हिंदुस्तान के सारे राजनीतिज्ञ इंदिरा गांधी के विरोधी हो गए तो उसका कारण था। उन सब की दौड़ उस तरफ थी और इंदिरा सब के बीच में खड़ी थी। ये सारे राजनीतिज्ञ जो इकट्ठे हो सके इंदिरा के खिलाफ, इनका कुछ आपस में प्रेम नहीं है। यह भूल कर मत समझना। इनका आपस में कुछ लेना-देना नहीं है। अब ये आपस में लड़ेंगे। अब ये एक-दूसरे के ऊपर चढ़ाई करेंगे। अगर इनको कोई चीज जोड़े रख सकती है दुनिया में तो वह इंदिरा का डर है; और कोई चीज नहीं जोड़े रख सकती। जिस दिन इनको पक्का हो जाएगा कि इंदिरा खतम हो गई, अब इसका कोई डर नहीं, उस दिन ये टूट जाएंगे। ये बिखर जाएंगे। फिर इनमें संघर्ष शुरू हो जाएगा। ये सारे के सारे राजनीतिज्ञ इतने खिलाफ क्यों हो गए? बाधा थी। क्रोध पैदा हुआ। एक व्यक्ति कब्जा जमा कर बैठ गया और अब किसी को भी नहीं पहुंचने देता। तो जितने लोग पहुंचने के लिए आतुर थे, वे सब इकट्ठे हो गए।

निरंतर यही होगा। तुम्हारे दुश्मन का दुश्मन तुम्हारा दोस्त हो जाएगा। तुम्हारा दुश्मन का दोस्त तुम्हारा दुश्मन हो जाएगा।

राजनीति का सूत्र हैः जो अपने साथ नहीं, वह दुश्मन है। और जो अपने साथ है, वह भी तभी तक दोस्त है जब तक तुम पद पर नहीं पहुच गए; जैसे ही तुम पद पर पहुंचे कि तुम्हें सब से बड़ी सावधानी इससे बरतनी पड़ेगी, जो तुम्हारे साथ है, क्योंकि यह तुम्हारे बहुत करीब है। सबसे बड़ा खतरा तुम्हें इसी से रहेगा। आज नहीं कल, यह तुम्हारी टांग खींच दे सकता है। यह करीब है।

मैक्यावली ने राजनीतिज्ञों के लिए जो सूत्र लिखे हैं, उसमें एक सूत्र हैः अपने दोस्त का भी विश्वास मत करना, क्योंकि राजनीति में कोई दोस्त नहीं होता। अपने दोस्त से भी वह बात मत कहना जो तुम अपने दुश्मन से छिपाना चाहो; क्योंकि जो आज दोस्त है, कल दुश्मन हो सकता है। और अपने दुश्मन के खिलाफ भी ऐसी बात मत कहना, जो तुम अपने दोस्त के खिलाफ न कहना चाहो; क्योंकि जो आज दुश्मन है, कल दोस्त हो सकता है।

यह बड़ी कीमत की बात मैक्यावली ने लिखी है। मैक्यावली ने जब यह किताब लिखी--दि प्रिंस--तो मैक्यावली सोचता था कि उसे निश्चित ही कोई बड़ा सम्राट बुला कर अपना वजीर बना लेगा। बहुत से सम्राटों ने उसकी किताब से लाभ उठाया, लेकिन किसी सम्राट ने उसे अपने दरबार में नहीं घुसने दिया। क्योंकि सब चिंतित हो गए कि यह आदमी इतना जानता है, इसको वजीर बनाने का मतलब है यह आज नहीं कल बादशाह हो जाएगा। उसको कोई चपरासी रखने को भी कोई तैयार नहीं था। हालांकि सबने उसकी किताब से लाभ उठाया। सबने उसकी किताब से सीखा। जैसे धार्मिक आदमी को कुछ सीखना हो तो गीता, कुरान, बाइबिल--ऐसे राजनीतिज्ञ को कुछ सीखना हो तो मैक्यावली कीः दि प्रिंस। मगर उसको कोई जगह नहीं मिली; वह भूखा रहा, परेशान रहा। आखिर में उसको समझ में आया कि यह किताब लिख कर उसने अपना नुकसान कर लिया। वह किताब न लिखता तो शायद कहीं न कहीं तरकीब लगा कर घुस जाता। किताब ही बाधा बन गई। इतने होशियार आदमी को कोई पास नहीं लेता।

इसलिए राजनीतिज्ञों के पास बुद्धुओं का जमाव हो जाता है। उसका कारण है, क्योंकि कोई राजनीतिज्ञ बहुत बुद्धिमान आदमियों को बर्दाश्त नहीं करता। यह कुछ ऐसा नहीं है कि इसके पीछे कोई नियम नहीं है।

इसके पीछे नियम है। जब भी कोई राजनीतिज्ञ सफल हो जाएगा, वह बुद्धिमान आदमियों को हटाने लगेगा और बुद्धुओं को इकट्ठा करने लगेगा। क्योंकि बुद्धुओं से कोई डर नहीं है--सुरक्षा है। उनमें इतनी अक्ल भी नहीं है कि वे इतनी झंझट खड़ी कर सकें। बुद्धिमान को कोई बरदाश्त नहीं करता।

जहां कामना है, वहां सतत हिंसा और क्रोध है। जो तुम्हारे मार्ग में आ जाएगा, जो आड़ बनेगा, उसको ही तुम खत्म कर देना चाहोगे।

पलटू कहते हैंः

"काम और क्रोध दुई दुष्ट ये बड़े हैं

ज्ञान के धनुष से इन्हें टारै।"

बोध को जगाए। जब काम उठे तो परिपूर्ण ध्यान को उठाए। जागरूक हो। होश की लहर से भर जाए। देखे क्रोध को। क्रोध का संग-साथ न दे। क्रोध के चक्कर में न आए। क्रोध के साथ तादात्म्य न करे। और जब काम उठे तो उसके साथ भी तादात्म्य न करे। दूर खड़े होकर साक्षीभाव से देखें। यह है अर्थः

ज्ञान के धनुष से इन्हें टारै।

"कूद परि जायकै कोट काया मंहै

आगि लगाय के मोह जारै।"

और अगर कोई चीज जलाने योग्य है--इसके पहले कि तुम्हारी देह जले चिता पर, अगर किसी चीज की चिता बना देने योग्य है--तो वह है : मोह; मेरा-तेरा; ममत्व। क्योंकि जब तक मेरा है तब तक मैं बचा रहेगा। मेरा मैं का ही फैलाव है। तो मेरे को काटे। मेरा मकान, मेरी दुकान, मेरी पत्नी, मेरे बच्चे, मेरा धर्म, मेरा शास्त्र--जहां-जहां मेरा है--मेरा देश, मेरी जाति, मेरा वर्ण--जहां-जहां मेरा है, मेरे को काटता जाए। जिस दिन सारा मेरा कट जाता है, उस दिन जो मैं है, तत्क्षण गिर जाता है। उसको कोई सहारा नहीं रह जाता। मैं का तंबू मेरे की खूंटियों पर लगा है। सब खूंटियां कट जाती हैं, मैं का तंबू गिर जाता है। और जहां मैं का तंबू गिरता है, वहीं परमात्मा उतरता है।

"कूद परि जायकै कोट काया मंहै,
आगि लगाय के मोह जारै।
दास पलटू कहैं सोई रजपूत है
लेहि मन जीति तब आपु हारै।।"

मन को जीतने के पहले हार मत जाना। मन को जीत लो, फिर विश्राम करो। फिर कोई चिंता न रही। मन को जीते बिना जो न हारे, जो लड़ता ही रहे मन को जीतने के लिए, जो जिन बने बिना रुके नहीं--सोई रजपूत है। दास पलटू कहैं लेहि मन जीत तब आपु हारै!

रुकना तभी, विराम तभी, विश्राम तभी--जब एक बात सुनिश्चित हो जाए कि तुम मन के विजेता हो गए। सोई रजपूत है पलटू कहैं! वही है क्षत्रिय, वही है वीरपुरुष--जो काम को, क्रोध को, मोह को राख कर दे; जो ज्ञान की अग्नि में अज्ञान को भस्म कर दे। जो अपने साक्षी के भाव में मैं देह हूं, यह भी भूल जाए; मैं मन हूं, यह भी भूल जाए; मैं हूं, अंततः यह भी भूल जाए। जब समस्त मैं विलीन हो जाता है, तो जो शेष रह जाता है--वही है ओंकार। वही है नाद। वही हैः

"बोलु हरिनाम तू छोड़ि दे काम सब,

सहज में मुक्ति हो जाय तेरी।

दाम लागै नहीं, काम यह बड़ा है

सदा सतसंग में लाउ फेरी।।
बिलम न लाइकैं डारि सिर भार को
छोड़ि दे आस संसार केरी।
दास पलटू कहै यही संग जाएगा,

बोलु मुख राम यह अरज मेरी।।

पूरब में राम है, पच्छिम खुदाय है
उत्तर और दक्खिन कहो कौन रहता?
साहिब वह कहां है, कहां फिर नहीं है,
हिंदू और तुरक तोफान करता।।
हिंदू और तुरक मिलि परे हैं खैंचि में
आपनी बर्ग दोउ दीन बहता।
दास पलटू कहै साहिब सब में रहै
जुदा न तनिक, मैं सांच कहता।।

जाहि तन लगी है, सोई तन जानिहै
जानिहै वही सतसंग-वासी
कोटि औषधि करैं विरह ना जाएगा
जाहिकै लगी है विरहगांसी।।
नैन झरना बन्यो भूख ना नींद है
परी है गले बिच प्रेम-फांसी।
दास पलटू कहै, लगी ना छूटिहै
सकल संसार मिलि करैं हांसी।।

होय रजपूत सो चढ़ै मैदान पर,
खेत पर पांच-पच्चीस मारै।
काम और क्रोध दुई दुष्ट ये बड़े हैं,
ज्ञान के धनुष से इन्हें टारै।।
कूद परि जायकै कोटि काया मंहै,
आगि लगाय कै मोह जारै।
दास पलटू कहैं सोई रजपूत है
लेहि मन जीति तब आपु हारै।।"

आज इतना ही।

सोलहवां प्रवचन

संन्यासीः परमभोग का यात्री

पहला प्रश्नः आप मधुशाला में बैठ कर रोज सुबह और शाम भर-भर कर शराब के जाम पर जाम देते हैं। मैं आपकी शराब से मस्त तो होता हूं, पर होश नहीं खोता। क्या करूं?

धन्यभागी हो, कम से कम मस्त तो होते हो! और भी हैं; तुमसे भी ज्यादा अभागे लोग हैं, जो मस्त भी नहीं होते। मस्त होते हो तो कभी बेहोश भी हो जाओगे। अच्छे लक्षण हैं। मस्त होना भी कठिन है।

मस्त होने का अर्थ होता है : मन को खोना। मस्त होने का अर्थ होता हैः नियंत्रण खोना। मस्त होने का अर्थ होता है : अपने अहंकार से थोड़े नीचे उतर आना, सिंहासन छोड़ना। मस्त होने का अर्थ होता है : फिर से हो गए बालक जैसे निर्दोष; फिर से भर गए जीवन के आश्चर्य से; फिर से वृक्षों की मस्ती और फूलों की सुगंध और हवाओं का नृत्य अर्थपूर्ण हो गया। खो दी मन की, गणित की क्षमता। वह जो तर्क का सतत जाल है, वह जो तर्क का सतत फैलाव है भीतर, उसे तोड़ कर क्षण भर को बाहर निकल आए; जैसे कोई कारागृह से बाहर आ जाए। बंद दीवालें और बंद दीवालों के भीतर की बंद हवा, थोड़ी देर को जैसे कोई छोड़ कर बाहर आ जाए!

शुभ लक्षण है। ठीक दिशा में हो। लेकिन प्रश्न सार्थक है। पहले तो मस्ती ही क्यों कठिन है? इसलिए कठिन है... ऐसी सभी बातें कठिन होती हैं जो तुम्हारे अहंकार से बड़ी हैं। जो तुम्हारे अहंकार से छोटा है और तुम्हारी मुट्ठी में आ जाए उस भर में भय नहीं होता; तुम उसके मालिक हो जाते हो। तुमसे बड़ा कुछ भी तुम्हें पकड़ ले--कोई अंधड़, कोई तूफान; जो तुमसे बड़ा है; जिसकी तुम मालकियत न कर सकोगे; जिसको तुम कहो बाएं जाओ तो बाएं न जाएगा; जिसको तुम कहो दाएं जाओ तो दाएं न जाएगा; जो तुम्हारी मानेगा ही नहीं; जो तुम्हारी सुनेगा ही नहीं; जिसकी तुम्हें सुननी पड़ेगी; जिसकी तुम्हें माननी पड़ेगी; जो तुम्हें जहां ले जाएगा वहां जाना पड़ेगा--ऐसा अंधड़ फिर कोई भी हो, चाहे प्रेम का हो, चाहे प्रार्थना का हो। ऐसा अंधड़ फिर कोई भी हो, उससे तुम बचोगे, उससे तुम घबड़ाओगे। यह थोड़ा ज्यादा है। और फिर पता नहीं कहां ले जाए! तुम्हारी चालाक मनोदशा चिंतित हो जाएगी : फिर पता नहीं कहां इसका अंत हो!

तुम्हें तैरना सिखाया गया है; बहना नहीं सिखाया गया। अहंकार तैरने से निर्मित होता है। और तैरने का मजा भी तभी है, जब तुम धारा के विपरीत तैरते हो। जब नदी से लड़ते हो, जब धारे के खिलाफ तैरते हो--तब अहंकार को पूरा मजा आता है।

मस्ती का तो अर्थ है : धारा के साथ बह चले; हाथ-पैर भी न हिलाए; धारा के हो रहे। धारा जहां ले जाए--डुबा दे तो वही साहिल, वही किनारा। अब डूबने की भी तैयारी है। और ले जाए दूर खाई-खड्डों में और ले जाए सागरों में, तो जाने की तैयारी है। इसलिए आदमी प्रेम से डरता है। और इसलिए आदमी भक्ति से भी डरता है। जब प्रेम से ही डर जाते हो. . . एक-दूसरे से भी प्रेम नहीं कर पाते हैं, क्योंकि उसमें भी घबड़ाहट लगती है कि अंधड़ है, तूफान है।

इसलिए तो लोगों ने विवाह रचाया। विवाह प्रेम से बचने की तरकीब है। विवाह व्यवस्था है। प्रेम खतरा है। इसलिए तथाकथित बुद्धिमानों ने सारी दुनिया में, इसके पहले कि प्रेम का खतरा आए, विवाह का आयोजन कर दिया है। इस देश में तो बाल-विवाह कर देते थे। वह इस देश के तथाकथित समझदारों का हिसाब था, गणित था। इसके पहले कि कोई जवान हो जाए, जवान हो जाए तो फिर तुम कैसे रोकोगे; अंधड़ आ ही जाएगा। और एक बार आ जाए, तो फिर पैर जिंदगी भर डगमगाते हैं। एक बार जिसे डगमगाने में मजा आ

गया, फिर वह फिकर नहीं करता सम्हल कर चलने की, होश से चलने की। इसके पहले कि प्रेम का अंधड़ आए, विवाह की व्यवस्था जमा दो; विवाह के पत्थरों की भी दीवाल बना दो। अगर प्रेम आएगा भी अब, तो विवाह के भीतर आएगा; खतरा नहीं होगा; सीमा रेखा होगी; परिभाषा होगी। एक तो आएगा ही नहीं। ज्यादा से ज्यादा साहचर्य से एक तरह का स्नेह पैदा हो जाता है, वह हो जाएगा। दो व्यक्ति साथ-साथ रहते हैं, स्नेह पैदा हो जाता है। जैसे भाई और बहन में होता है, वैसा ही पति और पत्नी में भी हो जाएगा।

तुम जरा देखते हो : परमात्मा ने भाई-बहन, माता-पिता सब दिए हैं, सिर्फ पत्नी नहीं दी है, पति नहीं दिया है! उतनी जगह छोड़ी थी तुम्हारे लिए मुक्त होने को। भाई-बहन तो जन्म से मिल जाते हैं; चुनाव का कोई उपाय नहीं है; तुम्हें कोई सुविधा नहीं है। और जहां चुनाव की कोई सुविधा नहीं है, वहां कोई स्वतंत्रता कैसे हो सकती है? एक ही जगह खाली छोड़ी थी, एक ही द्वार छोड़ा था तुम्हारे कारागृह में, जिससे तुम शायद बाहर निकलते और शायद मस्त होते; शायद कोई खतरा मोल लेते, कोई चुनौती स्वीकार करते। वह तुम्हारे समझदारों ने बंद कर दिया। जो परमात्मा ने थोड़ा सा द्वार रखा था, उस पर भी ईंटें जड़ दीं; उस पर भी पत्थर चुन दिए।

बाल-विवाह का मतलब होता है : बड़े होते-होते तुम पाओगे कि जैसे भाई-बहन जन्म से मिले हैं, ऐसे ही पत्नी भी, पति भी जन्म से मिला है। छोटे बच्चे, दुधमुंहे बच्चे, विवाह कर दिए गए। उनको याद भी नहीं आएगी कब उनका विवाह हुआ। वे तो होश के पहले ही विवाहित हो गए। जब होश आएगा तो वे पाएंगे कि हम तो विवाहित ही हैं। वे सदा अपने को विवाहित पाएंगे। यह उपाय था प्रेम से बचाने का।

और जो व्यक्ति प्रेम से भी बच गया, उसके जीवन में भक्ति तो कभी पैदा नहीं होगी। क्यों? क्योंकि जब तुम एक व्यक्ति से भी प्रेम करने का खतरा मोल न ले सके, एक व्यक्ति के साथ भी आग की होली न खेल सके, तो फिर परमात्मा के साथ कैसे खेलोगे? वह तो महान खतरा है। वह तो विराट खतरा है। उसमें तो तुम बिलकुल ही मिट जाने वाले हो। प्रेम में तो तुम थोड़े-बहुत जलते, मिटते नहीं। प्रेम में तो थोड़े-बहुत छींटे पड़ते। अहंकार थोड़ा-बहुत खंडित होता है, धूल-धूसरित होता है; बिलकुल मिट नहीं जाता। लेकिन परमात्मा के प्रेम में तो तुम आमूल जाओगे, जड़ से जाओगे, कुछ भी नहीं बचेगा। पीछे लौट कर देखोगे तो कोई सेतु नहीं बचेगा; सब सेतु टूटते जाएंगे। और एक ऐसी घड़ी आती है, जैसे बूंद सागर में समाए, ऐसे तुम समा जाओगे।

तो पहले तो हम मस्त होने में ही डरते हैं। पहला डर का कारण, कि मस्ती तुमसे बड़ी है; तुम उसे मुट्ठी में न ले सकोगे।

ऐ दिले खुद्दार, यह अच्छा किया
वो जो एक लमहा मसर्रत का नसीबों से मिला था,
उसको भी ठुकरा दिया।
वो मसर्रत क्या जो बन सकती न हो तेरी कनीज
इश्क है रोजे अजल से हुक्मराने बहरोबर
इश्क, और लमहाते इसरत का गुलाम?
जो हवा मुट्ठी में आ सकती न हो
उस हवा में सांस लेना भी हराम।

समझो। ऐ दिले खुद्दार, यह अच्छा किया! ऐ स्वाभिमानी दिल, यह अच्छा किया। वह जो एक लमहा मसर्रत का नसीबों से मिला था, उसको भी ठुकरा दिया! वह जो एक क्षण आया था आनंद का; वह जो एक झलक आई थी पार से; वह एक जो झोंका हवा का आया था और अनंत को छितरा गया था तुम्हारी चेतना पर; वह जो थोड़ी सी सुख की किरण फूटी थी; वह जो एक लमहा मसर्रत का नसीबों से मिला था--उसको भी ठुकरा

दिया। अच्छा किया। हे स्वाभिमानी दिल, अच्छा किया उसको ठुकरा दिया। क्योंकि उसमें खतरा था। उसमें भयानक खतरा था। खतरा यही था कि

वो मसर्रत क्या, जो बन सकती न हो तेरी कनीज!

वह आनंद तुझसे बड़ा था और तेरी नौकरी न करता और तेरा चाकर न बनता। वह आनंद तुझसे बड़ा था। वह तुझे डुबा लेता। तू उसे अपनी तिजोड़ी में बंद न कर पाता। वह आनंद इतना बड़ा था कि मुट्ठी में बंद हो नहीं सकता था। वह खुली मुट्ठी में ही हो सकता था। मुट्ठी उसमें हो सकती थी; वह मुट्ठी में नहीं हो सकता था।

अब जिन लोगों को तिजोड़ी में ही एकमात्र जीवन दिखाई पड़ता है, वे कैसे सागर में उतरेंगे? सागर को तिजोड़ी में तो बंद नहीं किया जा सकता!

परमात्मा पर तुम मालकियत तो नहीं कर सकते! हां, चाहो तो उसे मालिक बना सकते हो; मगर मालकियत नहीं कर सकते उस पर। तो जिनका जिंदगी का ढांचा मालकियत में है; जो कहते हैं : जो अपनी मुट्ठी में है उसी पर हमारा भरोसा है; जो हमारा आज्ञाकारी है उसी पर हमारा भरोसा है; जो हमसे छोटा है उसी पर हमें भरोसा है। ...

तुम जरा ख्याल करो, जिंदगी में तुम हमेशा अपने से छोटे को खोजते रहते हो। तुम अपने से बड़े से इतने डरते हो जिसका हिसाब नहीं। अपने से छोटे को. . .। तुम अपने से बुद्धि में भी जो छोटा है, उसके साथ दोस्ती बनाते हो। क्योंकि तुमसे जो बुद्धि में बड़ा है उसके साथ दोस्ती भय लाती है। पता नहीं वह कहां ले जाए! उसकी बुद्धि तुमसे थोड़ी ज्यादा है। तुम सदा ही हर हालत में उसे खोजते हो जो तुम्हारा गुलाम हो सके; क्योंकि जो तुम्हारा गुलाम हो सके उससे ही तुम्हारा अहंकार भरता है, तुम मालिक हो जाते हो। अब परमात्मा को तुम अपना दास तो न बना सकोगे। परमात्मा को तो छोड़ो, जिन्होंने प्रेम किया है जीवन में, वे अपने प्रेमी को भी अपना दास नहीं बना सकते। प्रेम किसी का दास बनता ही नहीं।

वो मसर्रत क्या जो बन सकती न हो तेरी कनीज।

हम उसे खुशी ही नहीं मानते। हम कहते हैं : वह खुशी ही क्या, वह आनंद क्या, जो हमारी दासी न बन सके।

इश्क है रोजे अजल से हुक्मराने बहरोबर

इश्क और लमहाते इसरत का गुलाम?

हमारी तथाकथित बुद्धिमानी, हमारी अहंकार से भरी बुद्धिमानी कहती है कि मैं अपने प्रेम को किसी चीज पर निर्भर न होने दूंगा।

इश्क और लमहाते इसरत का गुलाम?

जो हवा मुट्ठी में आ सकती न हो

उस हवा में सांस लेना भी हराम।

यह हमारा अहंकार सदा हमसे कहता है कि जो हवा हमारी मुट्ठी में न आ जाए उसमें हम श्वास भी न लेंगे। उसमें श्वास लेना भी हराम! तो फिर तुम मुर्दा हवा में श्वास लोगे। तो तुम फिर एक बंद कमरे की हवा में श्वास लोगे, जो तुम्हारी मुट्ठी में हो। तुम सड़ी हवा में श्वास लोगे, तुम ऐसी हवा में श्वास लोगे, जहां मौत तो आ सकती है, जिंदगी नहीं आती। फिर तुम खुले तूफानों के साथ न खेल सकोगे। तुम फिर बड़ी चुनौतियां स्वीकार न कर सकोगे।

और जितनी बड़ी चुनौतियां होती हैं, उतने ही बड़े तुम होते हो। अनंत की चुनौती जब कोई स्वीकार करता है तो अनंत हो जाता है। जैसी चुनौती स्वीकार करते हो वैसे ही हो जाते हो।

हम डरे हैं। हमने अपना आंगन बना लिया है। हम उसी आंगन में समाए रहते हैं। हम आंगन के बाहर भी नहीं झांकते हैं।

मन तुम्हें मस्त नहीं होने देता। तो पहले तो मस्ती ही कठिन। और मन का सारा हिसाब यह है, मन कहता है : कल। अभी जल्दी क्या? अभी और भी तो काम हैं, इन्हें निबटा लो। मस्त ही होना है, कल हो लेना।

अभी बेटे का विवाह करना है। अभी दुकान चलानी है। अभी मुकद्दमा लड़ना है। अभी हजार काम हैं। मस्ती का अभी वक्त आया नहीं। कल, फिर भविष्य में कभी मस्त हो लेंगे।

मैंने सुना है :

फिर गया था सिर उमर खय्याम का

जिसने कहा : आज आओ, मौज कर लें।

कल तो मरना है हमें

साथियो, इतिहास का संदेश है : बहुजन हिताय

आज मर लें, मार लें

कल मौज करना है हमें।

मन कहता है : आज तो मर लें, मार लें, कल मौज करना है हमें। तो मन तो उमर खय्याम जैसे लोगों को नासमझ कहता है।

फिर गया था सिर उमर खय्याम का

जिसने कहा : आज आओ, मौज कर लें।

कल तो मरना है हमें

मस्ती तो अभी हो सकती है, कल नहीं। मौज तो अभी हो सकती है, कल नहीं। जिसने कल पर टाला, सदा को टाला; फिर कभी होगी ही नहीं। कल तो आता ही नहीं, जब भी आता है आज आता है। जो कल बीत गया, वह भी कल आज था। और जो कल आएगा कल, वह भी आज ही होकर आएगा। यह आज जो आ गया है, यह भी तो कल कल था।

और जिसने यह आदत सीख ली टालने की, स्थगन करने की कि कल, वह फिर कभी मस्त नहीं होता। और इन्हीं लोगों को हम बुद्धिमान कहते हैं। इनको हम दूरदृष्टि कहते हैं। हम कहते हैं : ये हैं समझदार लोग--भविष्य की योजना करते, व्यवस्था करते। भविष्य की योजना और व्यवस्था में वर्तमान को गंवा देने वाले लोगों को हम बुद्धिमान कहते हैं, वर्तमान के लिए सारे भविष्य को गंवा देने वाले लोगों को हम नासमझ कहते हैं, पागल कहते हैं। और जो पागल है, वही मस्त हो सकता है।

इसलिए तुम पाओगे संतों और पागलों में एक बात समान होती है : मस्ती। संतों में कुछ पागलपन होता है; पागलों में कुछ संतपन होता है। एकदम तो एक जैसे नहीं होते, मगर कुछ समान बात होती है। पागल मन से नीचे गिर गया। पागल भी मन के बाहर हो गया। संत मन के ऊपर उठ गया। संत भी मन के बाहर हो गया। दोनों मन के बाहर हैं, इतनी बात तो समान होती है। और बहुत बातें असमान होती हैं। पागल परेशान है, क्योंकि मन से नीचे गिर गया। संत परम उल्लासित है, क्योंकि मन के पार उठ गया। लेकिन मन के दोनों बाहर हो गए।

इसलिए कभी-कभी तुम्हें परमहंसों में पागलपन दिखाई पड़ेगा और कभी-कभी पागलों की बातों में परमहंस-पन की भी झलक मिल जाएगी। कभी-कभी पागल ऐसी बात कह देते हैं जो बुद्धिमानों के मुंह से सुनी ही नहीं जाती। कभी-कभी पागल बड़ी दूर की ले आते हैं। कभी-कभी पागल ऐसे वचन बोल देते हैं, जो उपनिषदों में लिखे जाएं और वेदों में संकलित किए जाएं और कुरान में जिनकी आयतें ढाली जाएं। और कभी-कभी संत ऐसी बातें कहते हैं कि अगर मनोवैज्ञानिकों के हाथों में पड़ जाएं तो संतों को पागलखानों में रख दें।

तुम क्या सोचते हो, रामकृष्ण को अगर मनोवैज्ञानिकों के हाथ में दे दिया जाए तो रामकृष्ण को वे छोड़ेंगे बिना इलाज किए? वे इलाज करके रहेंगे। वे तो राम-कृष्ण की समाधि को हिस्टीरिया कहते थे। हिस्टीरिया और समाधि में कुछ तालमेल है। दोनों ही तो बेहोश हो जाते हैं। मिरगी का मरीज जैसे बेहोश होकर गिर जाता है, ऐसे ही तो समाधि की दशा में भी कभी कोई मस्त होकर गिर जाता है। ऊपर से देखने पर भेद नहीं मालूम पड़ता। भेद तो भीतर है, लेकिन भीतर कौन जाए! भेद तो भीतर है; भीतर को देखो कैसे! भेद तो

बड़ा सूक्ष्म है। स्थूल तो समान है। जो बात आंकी जा सकती है, मापी जा सकती है, यंत्रों के द्वारा जांची जा सकती है, वह तो बिलकुल समान है--दोनों बेहोश पड़े हैं। लेकिन रामकृष्ण की बेहोशी उनके जीवन को इतने होश से भर गई, इसे कोई नहीं देखता और उनकी बेहोशी के बाद वे कैसे परम आनंद और कैसी परम शांति में कैसे कमल जैसे खिले हुए वापस लौटते हैं इसे कोई नहीं देखता। मिरगी का मरीज जब अपनी बेहोशी के बाद लौटता है तो थका-हारा, पिटा-पिटा, टूटा-टूटा--जिसका सब खो गया हो। रामकृष्ण जब लौटते हैं बेहोशी के बाद, तो ऐसे जैसे सब मिल गया। राम रतन धन पायो री!

मिरगी का मरीज घबड़ाता है कि अब दुबारा कहीं फिर न बेहोशी आ जाए। और रामकृष्ण होश में आते ही ऊपर आकाश की तरफ मुंह उठा कर कहते हैं : अब फिर ऐसे क्षण कब दोगे? अब फिर कब कृपा होगी, कब प्रसाद बरसेगा? अनेक बार रामकृष्ण जब होश में आते थे, तो रोते और चिल्लाते कि इतनी जल्दी वापस क्यों लौटा दिया? ऐसा अपूर्व आनंद बरस रहा था, वंचित क्यों कर दिया? थोड़ी मेरी और झोली भर जाती, तो तुम्हारा क्या बिगड़ जाता? तुम तो औघड़दानी हो! तुम कंजूसी क्यों कर गए?

मगर ये बातें मनोवैज्ञानिक को सुनाई न पड़ेंगी। ऊपर से तो ऐसे लगेगा कि यह भी शायद पागलपन का ही हिस्सा है--ये जो बातें हैं। यह भी आदमी बिलकुल विकृत हो गया है, इसलिए कुछ भी अनाप-शनाप बोल रहा है।

बुद्ध को शांत बैठे देख कर तुम्हें भी ख्याल उठेगा कि यह आदमी आलसी तो नहीं हो गया! क्योंकि आलसी भी ऐसे ही बैठ जाते हैं। आलसी और बुद्ध में क्या फर्क करोगे? ऊपर से तो कोई फर्क नहीं है; दोनों बैठ गए हैं सुस्त होकर। ये बुद्ध टिके बैठे हैं वृक्ष से, और एक आलसी भी बैठा हुआ है टिका अपने वृक्ष से; न आलसी हिलता है न डुलता है, न बुद्ध हिलते न डुलते। ऊपर से देखने पर तो दोनों आलसी हैं।

पश्चिम के विचारक पूरब को आलसी होने का इल्जाम लगाते हैं। और उनके इल्जाम के पीछे वे यह भी स्वर उठाते हैं कि पूरब के जो मनीषी हुए, उन्होंने लोगों को आलस्य सिखाया, निष्क्रियता सिखाई। निश्चित ही अकर्म की बातें कही हैं ज्ञानियों ने। कहा है कि जब कर्म से तुम मुक्त हो जाओगे, तभी तुम जानोगे--जो है। अब अकर्म की बात का अर्थ आलस्य भी किया जा सकता है। बुद्ध भी आलसी ही तो मालूम पड़ते हैं; कुछ करते-धरते नहीं, खाली बैठे हैं। बोझ ही तो मालूम पड़ते हैं। अगर किसी कम्युनिस्ट समाज में पैदा होते तो जेलखाने में जिंदगी बीतती या सायबेरिया में होते। चीन में होते तो किसी शिविर में श्रमदान कर रहे होते।

अभी चीन में अनेक संन्यासी--लाओत्सु को मानने वाले और बुद्ध को मानने वाले--पड़े ही हैं सैनिक शिविरों में। जबरदस्ती कोड़ों की चोट पर गिट्टियां तुड़वाई जा रही हैं। चीन में आज निंदा है कि ये सब आलसी हैं। इन आलसियों में कोई बुद्ध भी हो सकता है। आखिर बुद्ध आदमियों में ही तो होते हैं! इन आलसियों में कोई लाओत्सु भी हो सकता है। इन आलसियों में कोई वह भी हो सकता है जो अकर्म की दशा को उपलब्ध हो गया। लेकिन वह तो बात भीतर की है; कैसे फर्क करोगे?

अकर्म में और आलस्य में कैसे फर्क करोगे? ऊपर से दोनों एक-से दिखाई पड़ते हैं। फर्क भीतर है। आलसी मुर्दा होता जाता है। अकर्मण्य की दशा में जीवन की ज्योति और भी प्रगाढ़ता से जलती है। आलसी जब आंख खोलेगा तो उसकी आंख में तुम धुंध पाओगे। और जब अकर्मण्य की आंख में तुम धुंध पाओ तो गौर से देखना : तुम उसके भीतर बहुत धुआं-धुआं पाओगे, अंधेरा पाओगे। उसके जीवन में कहीं जीवन-ऊर्जा न होगी; जीवन की तरंग न होगी; लपट न होगी; ज्योति न होगी। फिर अकर्म को उपलब्ध व्यक्ति की आंख में झांक कर देखना : वहां तुम्हें विराट-विराट आकाश दिखाई पड़ेगा--जहां बादल नहीं है; जहां धुंध है ही नहीं। जहां सूरज अपने पूरे प्रकाश में चमक रहा है। और वहां तुम जीवन की बड़ी लपट पाओगे। वहां दीया बहुत प्रगाढ़ता से जल रहा है। निष्कंप है चेतना उसकी; कंपन नहीं होता। क्योंकि अब कर्म ही नहीं तो कंपन कैसा! लेकिन मुर्दा नहीं है।

मुर्दा और समाधिस्थ में कुछ फर्क समझते हो? कभी-कभी समाधिस्थ मुर्दा मालूम हो सकता है। कभी-कभी मुर्दा समाधिस्थ मालूम हो सकता है। ऊपर से देखने के उपाय नहीं हैं।

इसीलिए उमरख्य्याम जैसा सूफी फकीर भी गलत समझा गया। उमरखय्याम के संबंध में जो भी तुम्हारी धारणा है, सब गलत है। उसने जिस शराब की बात कही है, वह शराबखानों में बिकने वाली शराब नहीं है। उसने जिस प्रेयसी की बात कही है, वह हाड़-मांस-मज्जा की प्रेयसी नहीं है। उसने "प्रेयसी" परमात्मा को कहा है। और उसने शराब "भक्ति" को कहा है। फिटजराल्ड ने, जिसने उमरखय्याम का सबसे पहले अंग्रेजी में अनुवाद किया और जिसके कारण उमरखय्याम जगत-विख्यात हुआ, उमरखय्याम को समझा ही नहीं। फिटजराल्ड तो शराब का मतलब शराब समझा। पश्चिमी आदमी था। उसने तो दो और दो चार समझे। उसने तो शराब को शराब समझा और प्रेयसी को प्रेयसी समझा। सूफियों का अपूर्व मंतव्य ऐसे एक बड़ी गलतफहमी का शिकार हो गया। फिर फिटजराल्ड के अनुवाद के आधार पर सारी दुनिया की भाषा में अनुवाद हुए और सब जगह भूल फैलती चली गई। आज तो शराबघरों के नाम उमरखय्याम हैं। इससे ज्यादा नासमझी और कुछ नहीं हो सकती।

मंदिरों के नाम होने चाहिए उमरखय्याम; शराब-घरों के नहीं। क्योंकि जिस मधुशाला की उमरखय्याम ने बात की है, वह और ही है।

एक ऐसी भी मस्ती है, जो बेहोशी में ले जाती है; और जिसके भीतर से बड़ा गहरा होश उठता है। लेकिन इस मस्ती की पहली शर्त है कि तुम कल पर मत टालो। कल पर टालना मन की तरकीब है।

यहां मुझे सुनते हो, जिसने सोचा कि ठीक है, बात तो ठीक लगती है, सोचेंगे-विचारेंगे, कभी करेंगे--उसने न करने का इंतजाम कर लिया। मैं यहां तुमसे कुछ करने को नहीं कह रहा हूं। मैं कह रहा हूं : थोड़ी देर मेरे साथ डोल लो। यह बीन बजती ही है, तुम्हारे भीतर छिपे सांप को थोड़ा डोल लेने दो। तुम्हारे डोलने से तुम्हारे भीतर का सांप डोलेगा। जिसको हम कुंडलिनी कहते हैं, उसको हमने सर्प के रूप में ही सोचा है। किसी की बीन बजती हो तो तुम्हारे सांप को थोड़ा डोल लेने देना। टालना मत। होशियारी मत रखना। यह मत सोचना कि आस-पास बैठे लोग क्या समझेंगे। कोई क्या कहेगा कि आप और डोलते हैं! पढ़े-लिखे, समझदार, बुद्धिमान, प्रतिष्ठित--आप डोलते हैं! ऐसे डोलें नासमझ, मंद-बुद्धि--चलेगा; आप बुद्धिमान हैं, आप डोलते हैं!

अहंकार रोक लेगा। और डर भी लगता है कि डोलने का अंत कहां होगा! यह तो शुरुआत है, फिर इसका अंत कहां होगा! बुद्धि सब हिसाब पहले कर लेना चाहती है। बुद्धि हर चीज को दो और दो चार हों, इसका इंतजाम कर लेना चाहती है।

काठमांडू से मेरे एक संन्यासी आए हैं : अरुण। किसी ने शिवपुरी बाबा पर किताब लिखी है, उन्होंने मेरे लिए अरुण के साथ किताब भेजी है। छोटी सी किताब है, लेकिन प्यारी है। शिवपुरी बाबा प्यारे आदमी थे। थोड़े से आदमियों में इस सदी में, जिनके भीतर परमात्मा का वास था, एक थे। वे कोई पैंतीस साल तक सारी दुनिया में यात्रा करते रहे--चुपचाप, एक अज्ञात आदमी की भांति! उन यात्राओं में वे दुनिया के बड़े-बड़े लोगों से मिले। अलबर्ट आइंस्टीन से भी मिलना उनका हुआ। अलबर्ट आइंस्टीन से उनकी जो बात हुई, उसमें शिवपुरी बाबा ने कहा : आप क्या सोचते हैं दो और दो चार होते हैं? आइंस्टीन ने कहा : निश्चित दो और दो चार होते हैं, इसमें भी क्या पूछने की बात है!

शिवपुरी बाबा ने कहा : लेकिन मेरा एक निवेदन है, दो और दो चार हो नहीं सकते। एक और एक दो नहीं हो सकते, क्योंकि यहां दो चीजें एक जैसी हैं ही नहीं; जोड़ोगे कैसे? यहां दो "एक" एक जैसे हैं ही नहीं, प्रत्येक चीज इतनी अद्वितीय है! एक और एक मिल कर दो हो सकते हैं, अगर एक और एक बिलकुल एक जैसे हों। मगर यहां कोई चीज एक जैसी नहीं है।

तुम कहते हो, एक आदमी कमरे में है, एक और आदमी गया तो दो आदमी हो गए। मगर ये दो आदमी इतने भिन्न हैं, इनको दोनों को एक-एक मान कर चलोगे, एक जैसा मान कर चलोगे? गणित में धोखा हो जाएगा। इसमें एक आदमी कृष्ण जैसा हो सकता है, एक आदमी कंस जैसा हो सकता है। ये दोनों भीतर जाएं तो दो नहीं होते। कृष्ण और कंस हों तो एक-दूसरे को काट देंगे। या इनमें कोई मजनू और लैला हो सकता है; ये दो

भीतर जाएं तो दो जुड़ कर एक हो जाएंगे, दो नहीं बचेंगे। निर्भर करेगा। सदा एक और एक दो नहीं होगा और सदा दो और दो चार नहीं होंगे। कभी एक और एक मिल कर डेढ़ ही होगा; कभी एक और एक मिल कर एक ही होगा; कभी एक और एक मिल कर दस भी हो सकते हैं। कठिन है कहना।

कहते हैं आइंस्टीन चुप हो गया और सोचने लगा : बात तो सच थी। जिंदगी गणित से थोड़ी ज्यादा है। जिंदगी रहस्यपूर्ण है। गणित सारे रहस्यों को समाप्त कर देता है।

मस्ती का अर्थ है : गणित के बाहर उठना; तर्क के बाहर उठना। तर्क कामचलाऊ है। बाजार में ठीक है; मंदिर में जरा भी ठीक नहीं। और जब तुम काम-धाम में लगे हो, हिसाब-किताब कर रहे हो, उपयोग कर लेना, लेकिन इस भ्रांति में मत पड़ना कि यही तुम्हारी जिंदगी हो जाए। कुछ झरोखे खुले रखना। कुछ झरोखे खुले रखना, जहां से ताजी हवा भी बहती रहे। कुछ रहस्य की संभावना खाली रखना। ऐसा न समझ लेना कि तुमने सब जान लिया।

जिसने सोचा कि सब जान लिया, उससे ज्यादा बड़ा अज्ञानी इस जगत में और कोई नहीं है। क्योंकि उसका ज्ञान ही अब उसे और जानने की यात्रा पर न जाने देगा। यहां कौन कब सब को जान पाता है! जिन्होंने जाना है, उन्होंने कहा : जितना ज्यादा हमने जाना, उतना जानने को शेष पाया। जितना हम जानते गए, उतना ही लगा कुछ भी तो नहीं जानते।

मस्त होने का अर्थ होता है : तुम अपने सिर में ही समाप्त नहीं हो; तुम्हारे पास हृदय भी है। खोपड़ी ही तुम्हारी आत्मा नहीं है; तुम्हारी आत्मा तुम्हारी खोपड़ी से बड़ी है। तुम्हारे भीतर ऐसे बिंदु भी हैं, जहां दो और दो पांच भी होते हैं, और दो और दो तीन भी रह जाते हैं और कभी दो और दो एक ही रह जाता है। तुम्हारे भीतर ऐसी संभावनाएं, आयाम भी हैं, जहां गणित व्यर्थ हो जाते हैं, तर्कों में कोई सार नहीं रह जाता; जहां तर्क की निष्पत्ति का कोई मूल्य नहीं होता; जहां काव्य का आविर्भाव होता है। तुम्हारे भीतर ऐसे हृदय का स्रोत भी है, जहां प्रेम जन्मता है, काव्य जन्मता है; जहां गीत लगते हैं; जहां फूल खिलते हैं; जहां से रहस्य उमगता है, समाधि पैदा होती है।

जब तुम डोलते हो, जब तुम मस्त होते हो, तो तुम सिर से नीचे उतर रहे हो। तुम्हारी ऊर्जा सिर से उतरने लगी और हृदय पर पड़ने लगी। तुम्हारा झरना हृदयोन्मुख हुआ। डोलना सिर्फ डोलना ही थोड़े है। अगर शरीर को ही हिला रहे हो तो बेकार कसरत कर रहे हो; उसका कोई मूल्य नहीं है। तुम हिला रहे हो, तब तो बिलकुल ही मूल्य नहीं है। हिल रहा है। तुम रोको भर मत, इतना काफी है। तुम रोको तो रोक सकते हो। मगर हिलाओ तो हिला नहीं सकते। इसे मैं दोहरा दूं। तुम रोको तो रोक सकते हो। सिर मालिक बन जाएगा और हृदय को कोई गुंजाइश न छोड़ेगा; जंजीरों में डाल देगा और कह देगाः तू अज्ञानी है, अंधा है। रुक! चुप! श्रृद्धा को उठने न देगा। प्रेम को विह्वल न होने देगा। सिपाही की तरह संगीन लेकर खड़ा हो जाएगा।

और हृदय बहुत कोमल है--फूल की तरह कोमल है। अब फूल में तुम संगीन चुभा दोगे तो संगीन नहीं टूटेगी, फूल ही टूट जाएगा। हृदय बहुत कोमल है। बहुत कोमल तंतु हैं हृदय के!

तुम चाहो तो रोक सकते हो कंपन, लेकिन तुम पैदा नहीं कर सकते। तुम ऐसी चेष्टा करके हिलने लगो तो सर्कस हो जाएगा। तुम चेष्टा करके हिल सकते हो--अच्छी कवायद हो जाए, अच्छा व्यायाम हो जाए--लेकिन चूक जाओगे। इससे भीतर का सांप न हिलेगा। पहले तो तुमने बांसुरी ही न सुनी, बीन ही न सुनी।

तो हिलाने की चेष्टा मत करना। हां, रोकने का भाव न आए, इतना भर ध्यान रखना। जब उठने लगे कोई उमंग तो तुम छोड़ देना फिकर लोक-लाज की। तो मस्त हो पाओगे।

कब तक हवाए शौक से दिल को बचाइए,

मौसम का जो भी मशवरा हो, मान जाइए।

जब वसंत आ गया हो और जब हवाओं में रंग हो और फूलों में गंध हो और पक्षी गीत गाने लगें, और मोर अपने पंख फैला दें, तो फिर बचाना मत।

कब तक हवाए शौक से दिल को बचाइए,

मौसम का जो भी मशवरा हो, मान जाइए।

जब वसंत आए तो अपने हृदय के द्वार खुले छोड़ देना।

पी है अगर शराब तो कुछ लुत्फ उठाइए,

क्यों इतनी एहतियात? जरा लड़खड़ाइए!

क्यों इतनी एहतियात? इतनी सावधानी भी क्या! इतने सावधान हो-होकर मत चलिए। यहां आ ही गए हो, अगर थोड़ी शराब पी ही ली है. . ."पी है अगर शराब तो कुछ लुत्फ उठाइए।" तो फिर थोड़ा लुत्फ, फिर थोड़ा रंग बहने दो। फिर भीतर कोई डोले तो डोलने दो। भीतर कोई गुनगुनाए तो गुनगुनाने दो। रोमांच हो आए तो होने दो। आंसू बहें तो बहने दो।

पी है अगर शराब तो कुछ लुत्फ उठाइए,

क्यों इतनी एहतियात? जरा लड़खड़ाइए!

इतनी भी सावधानी क्या? इतनी भी होशियारी क्या? कभी तो ऐसा करो कि होशियारी को हटा कर रख दो। कभी तो थोड़ी देर को होशियार न रहो। कभी तो थोड़ी देर के लिए निर्दोष हो जाओ, नासमझ हो जाओ। कभी तो थोड़ी देर के लिए फिर बालवत हो जाओ।

जीसस ने कहा है : जो बच्चों की भांति हैं, वे ही मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे। ठीक ही कहा है, सौ प्रतिशत ठीक कहा है। इस देश में तो हम सदा से कहते रहे हैं : जो फिर से बालवत हो जाते हैं, वे ही संत हैं। इसलिए संतों को द्विज कहते हैं--दुबारा उनका जन्म हो गया; वे फिर बच्चे हो गए।

हर ब्राह्मण द्विज नहीं है, ख्याल रखना। क्योंकि हर ब्राह्मण ब्राह्मण ही नहीं है। जिसने ब्रह्म को जाना, वह ब्राह्मण; और जो फिर से जन्मा। एक तो जन्म मां-बाप से मिलता है; वह तो सभी को मिलता है; उससे कोई द्विज नहीं होता। और जनेऊ धारण करने से कोई द्विज नहीं होता। किसको धोखा दे रहे हो? द्विज होता है कोई, दुबारा, जब मन की धूल को हटा देता है, तर्क को समेट कर रख देता है और फिर बालवत चेतना को अपने भीतर उमगने देता है।

पी है अगर शराब तो कुछ लुत्फ उठाइए

क्यों इतनी एहतियात? जरा लड़खड़ाइए।

क्या सिर्फ आशिकी मय है, नासह जियाने दिल,

अपना तो इरादा था कि जां तक गंवाइए।

डरते क्यों हो? दिल की हानि का डर लगता है? लगता है कि प्रेम में कहीं दिल डूब न जाए, कहीं खो न जाए?

क्या सिर्फ आशिकी मय है, नासह जियाने दिल,

क्या तुमने यही सोचा है कि प्रेम में दिल गंवाना पड़ता है, दिल खोना पड़ता है? यह तो कुछ भी नहीं है। यह तो शुरुआत है।

अपना तो इरादा था कि जां तक गंवाइए।

प्राणों तक को गंवाना पड़े तो भी तैयारी रखनी चाहिए, क्योंकि प्राण को गंवा कर ही कोई उस परम प्राण को पाता है। अपने को खोकर ही कोई परमात्मा होता है।

क्या सिर्फ आशिकी मय है, नासह जियाने दिल,

अपना तो इरादा था कि जां तक गंवाइए।

वाइज बयाने खुल्द बहुत खूब है मगर
एक रोज उसकी बज्म में भी होकर आइए।

मुझे सुनते हो। मैं तुमसे जो कह रहा हूं, यह तो खबर है उस लोक की जो मैंने देखा। यह तो खबर है उस बज्म की, जो मैंने देखी। यह तो खबर है उस वसंत की, जो मैंने देखा। यह तो खबर है उन फूलों की, जो मैंने खिले देखे। इन्हें सुन कर तुम मस्त हो जाओ यह तो ठीक; लेकिन यह कोई अंतिम बात नहीं है--जब तक कि तुम भी उस बज्म में न हो आओ; जब तक कि तुम भी उस दर्शन को उपलब्ध न हो जाओ।

तो यहां से तो प्यास लेना। अगर मस्त ही न हुए तो प्यास ही न जागेगी। यहां से तो थोड़े प्यास को बढ़ाने का मात्र उपाय है। तुम खूब प्यासे हो जाओ। ऐसे प्यासे हो जाओ कि प्यास ही प्यास बचे, कि तुम जलने लगो प्यास से!

वाइज बयाने खुल्द बहुत खूब है मगर!

मैं कितने ही अच्छे ढंग से तुम्हें कहूं, मैं कितने ही ढंग से तुम्हें समझाऊं; लेकिन जो भी मैं कहूंगा, तुम तक पहुंचते-पहुंचते शब्द रह जाएंगे। शराब तो खो जाएगी, शराब शब्द रह जाएगा। परमात्मा तो खो जाएगा, परमात्मा शब्द तुम्हारे कानों में सुनाई पड़ेगा। अर्थ तो मेरे ही भीतर रह जाएंगे, कोरे शब्द तुम तक पहुंचेंगे। लेकिन कभी-कभी, जब तुम बहुत-बहुत मुझसे जुड़े होते हो, तो इन शब्दों में अटका-अटका थोड़ा सा शून्य भी पहुंच जाता है।

ऐसा ही समझो कि शराब के पास रखी-रखी कोई चीज भी थोड़ा सा नशा ले ली हो; शराब के पास रखी-रखी थोड़ी सी शराबमय हो गई हो। मगर यह कुछ दूर तक जाने वाली बात नहीं है। इससे यात्रा शुरू हो जाए, प्रारंभ हो जाए--पर्याप्त। जाना तो तुम्हें ही है उसके दरबार में।

वाइज बयाने खुल्द बहुत खूब है मगर
एक रोज उसकी बज्म में भी होकर आइए।

मस्त होओ, तो तुम मुझसे जुड़े। बेहोश हो जाओ तो तुम उसकी बज्म में हो आए। मस्त हुए, तो मेरा गीत तुम्हें छुआ। बेहोश हुए तो तुम्हारा दरवाजा खुला।

अब तुम पूछते हो कि मैं मस्त तो हो जाता हूं, पर होश नहीं खोता। आधा-आधा कर रहे हो। इससे तुम बड़ी अड़चन में पड़ोगे। इससे न संसार के रहोगे, न प्रभु के हो पाओगे। इससे तो अच्छा है मस्त भी न होओ। यह तो तुम खतरा मोल ले रहे हो। यह तो तुम भारी झंझट में पड़ जाओगे। यह तो तुम घर के रहोगे न घाट के। यह तो संसार में तुम्हारा मजा कम हो जाएगा और परमात्मा में जाने की हिम्मत न जुटा पाओगे। अटक जाओगे, त्रिशंकु हो जाओगे, बीच में रह जाओगे। यह बड़ी दुविधा की दशा हो जाएगी।

अब जब मस्त ही हो रहे हो तो तब थोड़ी और हिम्मत करो। अपन इतने दूर भी आ गए, तो अब थोड़ी और हिम्मत सही। अब थोड़े बेहोश भी होओ। और ध्यान रखना, यह बेहोशी ऐसी है, जिससे होश पैदा होता है। यह बेहोशी शराब की बेहोशी नहीं है, साधारण शराब की बेहोशी नहीं है। यह बेहोशी परमात्मा की शराब की बेहोशी है। इसमें जो आदमी जितना बेहोश होता है, उतना होश को उपलब्ध होता है। अभी तुम जिसे होश कह रहे हो, वह बेहोशी है--संसार की बेहोशी। अभी तुमने जिसको जागरण समझा है, वह सिर्फ नींद है।

श्री अरविंद ने कहा है कि जब तक समाधि न फली थी, तब तक मैंने जिसे दिन समझा था वह रात से भी बदतर रात सिद्ध हुई; और जिसको मैंने जीवन समझा था, वह मौत से भी बदतर मौत थी; और जिसको मैंने अमृत समझा था, वह जहर साबित हुआ। समाधि के बाद सारा मूल्यांकन बदल जाता है; पुनः मूल्यांकन होता है।

अभी तुम जिसको जागरण कहते हो, वह जागरण नहीं है, समाधि के बाद। वह तो सिर्फ आंख खुली नींद है। आंख भर खुली हैं और तुम सो रहे हो। नींद में ही तुम चल रहे हो। नींद में ही तुम उठ रहे हो। नींद में ही तुम बातें कर रहे हो। तुम्हारे भीतर बड़ी तंद्रा है, मूर्च्छा है, प्रमाद है।

अगर तुम थोड़े-थोड़े डूबने लगे मस्ती में और फिर बेहोश हुए, तो तुम बड़े हैरान हो जाओगे। इधर तुम बेहोश होओगे संसार के प्रति, उधर एक नए होश का प्रारंभ होगा। इधर बाहर से आंख बंद होगी और भीतर आंख खुलेगी। इधर देह भूलेगी और आत्मा का स्मरण आएगा। इधर संसार की आपा-धापी का ख्याल विस्मरण में चला जाएगा, संसार के प्रति बेहोश हो जाओगे, तो तत्क्षण तुम पाओगे कि प्रभु के सन्मुख खड़े हो।

यही थी दशा रामकृष्ण की, जब वे बेहोश हो जाते थे, तो संसार को भूल जाते थे, अपनी देह को भूल जाते थे। याद आ जाती थी परम प्यारे की। प्रभु के सन्मुख हो जाते थे।

तो मैं तुमसे कहूंगा : इतना किया, अब इतना और भी करो। मस्त हुए--एक कदम उठाया; अब दूसरा भी उठाओ। और दो ही कदम की दूरी है। और दो ही कदम से मंजिल पूरी हो जाती है। पहला कदम : मस्ती; दूसरा कदम : बेहोशी। और तीसरे कदम पर तो तुम बचते नहीं, परमात्मा ही बचता है। यह दो कदम का ही फासला है।

मौसमे गुल है, हवा इत्र फसां है साकी
देख गुलजार पर जन्नत का गुमां है साकी।

मौसमे गुल है! वसंत आ गया! फूल खिले। हवा इत्र फसां है साकी। और हवा में इत्र ही इत्र बिखरा हुआ है।

मौसमे गुल है, हवा इत्र फसां है साकी
देख गुलजार पर जन्नत का गुमां है साकी।

देख, बसंत में स्वर्ग उतरा है!

आज फितरत ने गुलिस्तां में उलट दी है नकाब
ओज पर किस्मते साहब, नजरां है साकी।

आज परमात्मा की नजर तुम पर पड़ी।

आज फितरत ने गुलिस्तां में उलट दी है नकाब।

जब भी कोई बुद्धपुरुष--बुद्ध या महावीर या मोहम्मद या कृष्ण या क्राइस्ट--तुम्हारे बीच आता है तो वसंत आता है। जैसे परमात्मा अपनी नकाब उलट देता है; अपना बुर्का उठा देता है; अपना घूंघट हटा देता है। हम घूंघट डाले हुए परमात्मा हैं। बुद्ध ने घूंघट उठा दिया।

आज फितरत ने गुलिस्तां में उलट दी है नकाब
ओज पर किस्मते साहब, नजरां है साकी।

वो घटा झूम कर उठी, वो जवानी बरसी
आज दुनिया की हर इक चीज जवां है साकी।
देख किस शान से मैखाने की जानिब है रवां
दीदनी सर खुशी ए बाद कसां है साकी।

मस्त हो जाओगे तो मैखाने की ओर जिस मस्ती से जाओगे, वह मस्ती देखते ही बनेगी। मंदिर की ओर मुर्दे की तरह जाते हो--एक कर्त्तव्य निभाने। मस्जिद चले जाते हो, क्योंकि जाना है। गुरुद्वारे में सिर पटक आते हो, क्योंकि क्या करें, प्रतिष्ठा का सवाल है! लेकिन मस्ती नहीं दिखाई पड़ती। और जब तक तुम लड़खड़ाते हुए मंदिर की तरफ न जाओगे, जैसे-जैसे मंदिर के पास पहुंचोगे वैसे-वैसे और न लड़खड़ाने लगोगे--तब तक बेकार है। सब जाना बेकार है; व्यर्थ मेहनत न करो। और लड़खड़ाना आ जाए तो मंदिर घर ही आ जाता है; तुम जहां हो वहीं आ जाता है।

देख किस शान से मैखाने की जानिब है रवां

दीदनी सर खुशी है बाद कशां है साकी
ऐसे मौसम में हिमाकत है तमन्नाए बहिश्त
ये जमीं गैरते गुलजारे जनां है साकी।

और जब बुद्ध इस जमीन पर होते हैं, तो फिर बहिश्त की बात करना ही बेकार है, स्वर्ग की बात ही करना बेकार है। ऐसे मौसम में हिमाकत है तमन्नाए बहिश्त। फिर तो हम नासमझ होंगे जो स्वर्ग जाने की सोचें। स्वर्ग सामने है। फिर तो पागल होंगे, जो परमात्मा की बात करें।

सदगुरु सामने है। उसमें डूबो वहीं से द्वार मिल जाएगा। बनते-बनते बन जाएगी।

बनत बनत बनि जाई
हरि के चरण लगे रहो रे भाई।

मगर याद रखो, हिम्मत तो चाहिए ही। इसलिए पलटूदास बार-बार कहते हैं : सोई रजपूत. . . वही है राजपूत, जो उतर जाए युद्ध के मैदान में और तब तक न लौटे जब तक जीत ही न ले। अपने को गंवा दे। अपने को दांव पर लगा दे। लेकिन तब तक न लौटे, जब तक परम जीत न हो जाए।

और परम जीत क्या है? परम जीत वही--अपने को गंवा देना है। हमने अपने को इतना ज्यादा सजा रखा है, संवार रखा है! हमने अपने अहंकार को इतने सिंहासन पर बिठा दिया है कि परमात्मा के लिए हमने जगह खाली ही नहीं छोड़ी। तुम जरा सिंहासन खाली करो। तुम जरा बाहर आओ। तुम शून्य हो जाओ तो परमात्मा उतरे। जब तुम बेहोश होओगे, तभी तुम शून्य होओगे। और इतना मैं तुम्हें याद दिला दूं। आज तो यह बात ही की बात होगी, क्योंकि तुम उस बज्म में अभी गए नहीं। आज तो मेरे भरोसे पर तुम्हें स्वीकार कर लेना होगा; कोई और उपाय नहीं। आज तो तुम्हें यह बात सिर्फ संकेत मात्र होगी कि जिस दिन कोई आदमी ठीक से बेहोश हो जाता है परमात्मा के लिए, उसी दिन होश आता है। यह बात उलटबांसी है।

यह शराब जो मैं तुम्हें पिलाना चाहता हूं, पिला रहा हूं, अगर तुम पीने को राजी हो गए और तुमने कंठ से नीचे उतार ली--तो तुम पहली दफा जीवन में होश से भरोगे। पहली बार तुम्हारे भीतर ज्योति का ऊर्ध्वगमन शुरू होगा। पहली बार तुम्हारे सपने खो जाएंगे और संसार खो जाएगा। पहली बार तुम घर आओगे।

दूसरा प्रश्नः पश्चिम में आज जो संवेदनशील अस्तित्ववादी चिंतक हैं वे सभी के सभी दुखवादी हैं। क्या संवेदना दुख ही लाती है? क्या संवेदना के पार भी कुछ है, जो सुख और दुख दोनों से मुक्त करता है? कृपा करके समझाइए।

मनुष्य एक वर्तुल है। निश्चित ही प्रत्येक वर्तुल का केंद्र होता है। तो मनुष्य के भीतर दोनों हैं--केंद्र और परिधि। केंद्र है तुम्हारी आत्मा। अभी कहता हूं आत्मा; जिस दिन जान लोगे, उस दिन कहूंगा परमात्मा। एक ही चीज है। सोया रहे तुम्हारे भीतर परमात्मा तो आत्मा; जाग जाए तो परमात्मा।

तुम्हारे भीतर एक तो केंद्र है--आत्मा या परमात्मा। और तुम्हारी परिधि है--शरीर या संसार। साधारणतः आदमी दोनों की तरफ सोया हुआ है; न उसे भीतर के परमात्मा का पता है, न उसे बाहर के संसार का कुछ होश है। चला जा रहा है--नींद में चला जा रहा है।

तुमने सुनी होगी न बात, कई लोग नींद में चलते हैं। शायद तुममें से भी कोई चलता हो। क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं, हर दस आदमी में एक आदमी नींद में चलने की क्षमता रखता है। इतने लोग यहां हैं, दस-पांच आदमी तो जरूर नींद में चलते ही होंगे। निद्रा में चलना जिससे होता है, वह खुद भी चौंकता है सुबह उठ कर। उससे कहो तो मानता नहीं। रात जब उसे तुम नींद में चलते देखोगे, तुम भी चौंकोगे : उसकी आंख खुली होती है और वह नींद में होता है। अगर उसे तुम जगा दो तो वह एकदम चौंक पड़ेगा और कहेगा : क्या मामला है? बहुत घबड़ा जाएगा।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं : नींद में चलते किसी आदमी को जगाना मत, अन्यथा बहुत घबड़ा जाएगा। हृदय का दौरा भी पड़ सकता है। क्योंकि वह तो सोचता है कि बिस्तर पर सोया है और अचानक तुमने उठा दिया और बैठकखाने में खड़ा है वह--तो वह घबड़ा जाएगा। नींद में चलते किसी आदमी को जगाना मत।

और नींद में आदमी बड़ी सुविधा से चल लेता है। कम-से-कम अपने मकान में तो बड़े मजे से चल लेता है। सब आदत है; यंत्रवत है। सब उसे मालूम है : दरवाजा कहां है, दीवाल कहां है, कुर्सी कहां रखी है। दिन में भी कभी-कभी कुर्सी से टकरा जाता है, टेबल में धक्का लग जाता है, दरवाजे से पैर लग जाता है; लेकिन रात में जब चलता है नींद में, तो कहीं धक्का नहीं लगता, आंख खुली रहती है।

कार दुर्घटनाओं के संबंध में मनोवैज्ञानिकों ने बहुत सी खोजें की हैं। पाया गया है कि रात तीन बजे से पांच बजे के बीच सर्वाधिक दुर्घटनाएं होती हैं। जो ड्राइवर रात भर चलाते हैं, वे तीन और पांच के बीच घटनाएं होती हैं। सर्वाधिक कार दुर्घटनाएं। उस पर बहुत अध्ययन करने पर पता चला है कि तीन और पांच के बीच अधिक लोगों के लिए नींद का समय है--गहरा से गहरा समय है। रात में दो घंटे आदमी सर्वाधिक सोता है। अगर वे दो घंटे उसे सोने मिल जाएं तो ताजा बना रहता है। अगर वे दो घंटे सोने न मिलें तो वह आठ घंटे भी सोया रहे तो भी ताजा नहीं होता। इन दो घंटों में मनुष्य के शरीर का तापमान नीचे गिर जाता है, दो डिग्री नीचे गिर जाता है। इसीलिए तुम्हें सुबह-सुबह पांच बजे के करीब थोड़ी सर्दी मालूम होती है; लगता है, एक कंबल और हो। सर्दी बढ़ती नहीं, तुम्हारा तापमान गिर जाता है। और जब दो डिग्री तापमान गिरता है दो घंटे के लिए, तो वही सबसे गहरी नींद का समय है। ये सबकी अलग-अलग होती हैं, यह भी ख्याल रखना।

कोई आदमी दो से चार के बीच तापमान पाता है कम हो गया, तो वह दो और चार के बीच सोना उसके लिए एकदम जरूरी है। उसके स्वास्थ्य के लिए, मानसिक संतुलन के लिए, ये दो घंटे अनिवार्य हैं। ऐसा आदमी अगर चार बजे उठ आएगा, उसे कोई अड़चन न होगी। ऐसा आदमी ब्रह्ममुहूर्त में उठ सकता है और दूसरों को पापी समझेगा। और दूसरों को समझाएगा कि ब्रह्ममुहूर्त में उठना चाहिए। मुझे देखो!

लेकिन जिस आदमी को चार और छः के बीच दो घंटे तापमान गिरता है, उसकी बड़ी मुश्किल है; वह नहीं उठ सकता है चार बजे। अगर वह उठ भी आए तो दिन भर परेशान होगा, दिन भर सिर भारी होगा, नींद आती रहेगी। और यह जो चार बजे उठ आता है, यह उसको पापी बताएगा। तो अपराध-भाव भी पैदा हो गया कि मैं भी कैसा तामसी आदमी। यह सब मूढ़तापूर्ण सिद्धांत है।

लेकिन रात में दो घंटे सबका तापमान गिरता है। अलग-अलग समय पर गिरता है। पुरुषों का आमतौर से तीन और पांच बजे के बीच गिरता है। और स्त्रियों का आमतौर से पांच और सात के बीच गिरता है। इसलिए पश्चिम की व्यवस्था ज्यादा वैज्ञानिक मालूम पड़ती है कि पति उठ कर सुबह की चाय बनाए; पत्नी नहीं। उसके लिए सोने का वक्त है। पूर्वीय व्यवस्था अवैज्ञानिक मालूम पड़ती है कि पत्नी पहले उठे, घर झाड़ू-बुहारी लगाए, चाय इत्यादि बनाए, फिर पति को उठाए, पतिदेव उठें तो उनके लिए इंतजाम करें। यह ज्यादा अवैज्ञानिक है। कम-से-कम आधुनिक शोध इसकी सहमति में नहीं है।

तो पुरुष तीन और पांच के बीच जब गहरी नींद में उतर जाते हैं, वही कार दुर्घटनाओं का समय है। मनोवैज्ञानिकों ने पाया कि तीन और पांच के बीच अनेक ड्राइवर आंखें तो खुली रखते हैं और भीतर सो जाते हैं। आंखें खुली रहती हैं। देख रहे हैं। पास में बैठा हुआ आदमी यह नहीं पाएगा कि वे सो रहे हैं; आंख खुली है और वे झपकी खा गए। वह जो झपकी खा जाना है, वही दुर्घटनाओं का सबसे बड़ा कारण है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि यह अगर कारण मिटा दिया जाए तो पचास प्रतिशत दुर्घटनाएं कम हो जाएंगी। मगर इसको मिटाना बहुत मुश्किल मामला है। वह तीन और पांच के बीच तो झपकी आएगी ही।

मैं तुमसे यह कहना चाह रहा हूं कि आंख खुली हो, तब भी नींद हो सकती है। और जिसको हम जागरण कहते हैं, यह आंख खुली नींद है। न हमें ठीक-ठीक संसार का पता है, न ठीक-ठीक हमें अपना पता है। हमें पता कुछ भी नहीं है। हम तो चले जा रहे हैं यंत्रवत। ऐसे आदमी को न तो बड़े दुखों का पता होता है, न बड़े सुखों का

पता होता है। ऐसा आदमी तो धक्के में चलता जाता है। ऐसे आदमी की खाल बड़ी मोटी होती है--संवेदनहीन, इनसेंसिटिव होता है आदमी। इसलिए साधारण आदमी को दुख पता नहीं चलता।

बुद्ध चिल्लाते हैं कि दुख है, सारा जीवन दुख है--जन्म दुख, जीवन दुख, जवानी दुख, जरा दुख, मृत्यु दुख, सब दुख ही दुख है। तुम सुन भी लेते हो, लेकिन तुम्हें समझ में नहीं आता है, कि सब दुख ही दुख है। बुद्ध बहुत संवेदनशील व्यक्ति हैं। असल में पृथ्वी पर इतने संवेदनशील व्यक्ति कम ही हुए हैं। उनकी संवेदनशीलता इतनी प्रगाढ़ है, इसलिए उन्हें सब दुख दिखाई पड़ता है। जहां तुम्हें फूल मालूम पड़ते हैं, वहां भी उन्हें कांटे मालूम पड़ते हैं। यह तो तुम्हारे ऊपर निर्भर है।

अगर तुम ठीक से अभ्यास करो रोज-रोज, सख्त बिस्तर पर सोने का और फिर अभ्यास बढ़ाते जाओ, तो एक दिन तुम कांटों के बिस्तर पर भी सो सकते हो। काशी में तुम्हें मिल जाएंगे लोग सोते हुए कांटे के बिस्तर पर। वह अभ्यास की बात है। उनकी संवेदनशीलता बिलकुल मर गई है।

तुम चकित होओगे, किसी दिन अपने बेटे को कहना, या अपनी पत्नी को, या अपने पति को, कि एक सुई लेकर तुम्हारी पीठ में कई जगह चुभाएं। तो कुछ जगह तो तुम अनुभव करोगे कि चुभन हो रही है, कुछ जगह तुम्हें पता नहीं चलेगा; पति चुभा रहा है और तुम्हें पता नहीं चल रहा। शरीर में ऐसे कई बिंदु हैं, जो बिलकुल संवेदनशून्य हैं। और कई बिंदु हैं जो बहुत संवेदनशील हैं। अगर व्यक्ति अभ्यास करे तो सारा शरीर संवेदनशून्य हो सकता है।

और जीवन में इतना दुख है, इस कारण हम सभी ने किसी-किसी तरह के अभ्यास कर लिए हैं, ताकि पता न चले। तुम रास्ते से निकलते हो, एक आदमी भीख मांग रहा है। अब अगर तुम संवेदनशील व्यक्ति हो तो तुम्हें पीड़ा होगी। क्योंकि तुम इस समाज के हिस्सेदार हो, जिस समाज ने इस आदमी को भीख मांगने पर मजबूर कर दिया। तुम्हें पीड़ा होगी। तुम्हें परेशानी होगी। तुम जा रहे थे काम करने कुछ, अब तुम्हारा चित्त इसमें उलझ गया। अब तुम्हारे काम में अड़चन होगी। तुम अगर कवि हो और एक कविता उठ रही थी और आकाश में बादल घिरे थे और बड़ा सौंदर्य का तुम्हें भाव हो रहा था--एक भिखमंगे को देख कर सब खराब हो गया। कविता खो गई; उलटा रोष पैदा हो रहा है। दुख और उदासी आ गई। तुम अदालत जा रहे थे काम करने, अब यह भिखारी तुम्हारा पीछा करेगा। इसके घाव तुम्हें याद आते रहेंगे। तुम भोजन करने जा रहे थे, अब भोजन न कर सकोगे, उबकाई आएगी। तुमने इसके जो घावों से भरा शरीर देखा है सड़क के किनारे, वह भूलेगा नहीं। तुम भोजन करोगे, इसकी दुर्गंध तुम्हारे आस-पास घिरी रहेगी।

अब करना क्या? यह समाज में बहुत दुख है। तो उपाय एक ही है : संवेदनशून्य हो जाओ। इस तरह की पर्त ओढ़ लो अपने चारों तरफ, कवच धारण कर लो कि भिखारी भीख मांगता रहे, तुम्हें पता न चले, तुम निकल जाओ; कोई किसी को मारता रहे, तुम निकल जाओ; कुछ भी होता रहे, तुम्हें चिंता न हो। तुम्हें अपनी ही चिंताएं बहुत हैं; अगर तुम बहुत संवेदनशील हो जाओ तो तुम जीओगे कैसे?

तो एक मजेदार घटना घटती है, कि आदमी चारों तरफ इतना दुख है, उसके बीच से ऐसा तैरता चला जाता है जैसे कहीं दुख है ही नहीं। मगर ख्याल रखना, जब तुम्हारी संवेदना इतनी मुर्दा हो जाती है कि तुम्हें दुख का पता नहीं चलता, तो इसके साथ ही साथ तुम्हारे सुख की संवेदना भी मुर्दा हो गई; ये दोनों साथ-साथ चलती हैं, एक ही अनुपात में होती हैं। जिस आदमी को इस भिखारी के घाव नहीं दिखाई पड़ते, उसे कमल का फूल भी दिखाई नहीं पड़ेगा। एक ही अनुपात होता है। अगर कमल का फूल देखना है, तो भिखारी के घाव भी देखने पड़ेंगे। अगर फूल का सौंदर्य और फूल का मखमलीपन स्पर्श करना है तो कांटे की पीड़ा भी अनुभव करनी पड़ेगी। अगर तुमने हाथ ऐसे कर लिए कि कांटों का पता ही नहीं चलता तो फिर फूल का भी पता नहीं चलेगा।

जिसने दुख की संवेदना रोक ली, उसे सुख का भी पता नहीं चलता। और दुख काफी है; इसलिए सुख भी खो गया है। हम सब संवेदनशून्य हो गए हैं।

फिर जब कोई समाज संपन्न होता है, तो धीरे-धीरे वह जो दुख से बचने के लिए हमने संवेदना शून्य कर रखी थी, उसकी जरूरत नहीं रह जाती। इसलिए पश्चिम में यह घटना घट रही है।

तुम्हारा प्रश्न हैः "पश्चिम में आज जो संवेदनशील अस्तित्ववादी चिंतक हैं, वे सभी दुखवादी हैं। क्यों?"

कारण है। पश्चिम में दुख कम हो गया है। यह तुम्हें बहुत हैरानी की लगेगी बात, विरोधाभासी लगेगी। तुम समझोगे कि यह मैं क्या कह रहा हूं! पश्चिम में दुख, बाहर दिखाई पड़ने वाला दुख, कम हो गया। सड़कों पर गंदगी नहीं है। लोग भीख नहीं मांग रहे हैं। गरीब नहीं बचा है। भिखमंगा नहीं है। बच्चों के पेट, भूख और गलत भोजन करने से बड़े नहीं हैं। लोग सुंदर हो गए हैं। देह स्वस्थ हुई है। लोग ज्यादा जी रहे हैं। कम से कम बाहर एक तरह की संपन्नता आ गई है। जीवन का ढांचा ऊपर उठा है। चूंकि जीवन का ढांचा ऊपर उठ गया है, पश्चिम के आदमी को सुविधा है कि वह अपने कवच को थोड़ा कम कर ले; अब बचने की कोई जरूरत नहीं है, बाहर दुख कम है। चूंकि बाहर दुख कम है, बचने की जरूरत नहीं है, इसलिए बाहर ज्यादा दुख दिखाई पड़ेगा।

पूरब में दुख इतना ज्यादा है कि तुम मर ही जाओगे, आत्महत्या कर लोगे--अगर तुमने संवेदनशीलता प्रकट की। तुम घर से बाजार तक नहीं पहुंच पाओगे; बीच में किसी झाड़ में लटका कर अपने को, मर जाओगे। चारों तरफ असह्य पीड़ा है। कोई विधवा रो रही है। कोई भूखा मर रहा है। कोई भिखमंगा बच्चा तुम्हारा कपड़ा पकड़े हुए तुम्हारे पीछे ही भागता जा रहा है; तुम झिझकते जाते हो। तुम कहते हो : छोड़, भाग यहां से! कहीं और जा! जैसे तुम्हारे पास हृदय नहीं है! हृदय रख कर करोगे कैसे? हृदय रख कर चलाओगे कैसे? हृदय रख कर चले तो कुछ होने ही वाला नहीं है। पैसा लेकर गए थे सब्जी खरीदने, कोई भिखमंगा ले लेगा। बच्चे के लिए दवा खरीदने गए थे, कोई विधवा ले लेगी। जीओगे कैसे? घर कैसे लौटोगे? भिखमंगई इतनी है, दुख इतना है--अगर बांटने चले तो तुम दुखी होकर मर जाओगे। अब अपने को बचाना है, तो एक ही उपाय है : खूब मोटी चमड़ी कर लो।

इसलिए पश्चिम से लोग आते हैं--यहां बहुत मित्र पश्चिम से हैं--उन सबको एक तकलीफ खड़ी होती है। निरंतर प्रश्न पूछे जाते हैं. . . कोई भारतीय प्रश्न नहीं पूछता कि सड़कों पर भिखमंगे हैं, हम क्या करें? लेकिन हर रोज किसी पश्चिमी संन्यासी का प्रश्न आ जाता है कि ध्यान तो ठीक है, लेकिन चारों तरफ इतनी गरीबी और भिखमंगापन है, इसके लिए क्या किया जाए? इसके लिए क्या करना पड़ेगा? रोज ही कोई पश्चिमात्य का प्रश्न होता है कि मुझे ध्यान से आनंद भी आ रहा है, लेकिन बाहर आश्रम के जाने में बड़ी घबड़ाहट होती है। चारों तरफ भिखमंगापन है। दरवाजे के बाहर निकले कि भिखमंगे खड़े हैं। इनके लिए क्या किया जाए? इनकी चिंता मन को सताती है।

लेकिन कोई पूर्वीय नहीं पूछता। कोई भारतीय नहीं पूछता। इन पांच सालों में एक भारतीय ने प्रश्न नहीं उठाया। कारण है। भारतीय पूछे तो जीए कैसे? जीना मुश्किल हो जाएगा। भारतीय को अपनी संवेदना क्षीण कर लेनी पड़ी।

बुद्ध ने कहा थाः दुख है। क्योंकि बुद्ध एक संपन्न परिवार में पैदा हुए थे और बचपन से ही उन्हें दुख से बचाया गया था और सुख की सारी सुविधाएं खोली गई थीं। सुंदरतम स्त्रियां उनके पास थीं, सुंदरतम भोजन था, सुंदर वस्त्र थे, सुंदर महल थे। हर मौसम के लिए अलग महल पिता ने बनवा दिए थे। बाहर जाने की मनाही थी। क्योंकि ज्योतिषियों ने कहा था : अगर यह बाहर गया और उसने संसार का दुख देखा तो संन्यासी हो जाएगा। इसलिए डर से बुद्ध को भीतर ही भीतर रोका था। सुंदर संगीत का आयोजन था। सुंदर नर्तकियां नाचती थीं। सब आयोजन ऐसा था कि बाहर जाने का बुद्ध को मन ही न आए। इसी से झंझट हो गई। बुद्ध कवच न पैदा कर पाए--वह जो कवच भारत में एकदम जरूरी है। वे बाहर का खोल नहीं बना पाए। खोल बना ही नहीं; जरूरत ही न थी।

ऐसा ही समझो ना कि तुम जब जूते ही पहन कर चलते हो सदा, फिर एक दिन जरा बिना जूते के रास्ते पर चल कर देखो, तब तुमको पता चलेगा कि कंकड़ बहुत ज्यादा हैं। लेकिन जो आदमी बिना जूते के चल ही रहा है जिंदगी से; उसको कंकड़ों का पता ही नहीं चलता। कंकड़ क्या, वह अंगारे पर चल जाए तो पता नहीं चलता। पैर सख्त हो गए हैं। पैरों ने सुरक्षा कर ली है। पैरों ने अपना आयोजन कर लिया है। पैर जूते बन गए हैं।

इसलिए तुम जाकर गांव के ग्रामीण आदमी का पैर देखो। उसका पैर जूते का तलवा है, आदमी का पैर नहीं है। उसको पैर कहना ठीक नहीं। शरीर ने इंतजाम कर लिया; जूता नहीं दिया तो शरीर ने खुद ही जूता बना लिया; पैर उसका जूता हो गया। अब वह मजे से चलता जाता है--कांटे में, कीचड़ में, कबाड़ में--कुछ पता नहीं चलता उसे। शहर का आदमी आ जाए तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाता है; एक-एक कदम चलना मुश्किल हो जाता है।

बुद्ध को अड़चन खड़ी हो गई, क्योंकि बुद्ध को कवच पैदा नहीं हुआ। बचपन से ही गए होते बाहर, देखे होते भिखमंगे, मरते हुए लोग, बूढ़े, कोढ़ी अपंग, अंधे--यह सब देखा होता तो धीरे-धीरे धीरे-धीरे चोट पड़ते-पड़ते पड़ते-पड़ते उन्होंने सुरक्षा का उपाय कर लिया होता। वह सुरक्षा पैदा न हुई। फिर एक दिन अड़चन हो गई। जाना तो पड़ेगा ही एक दिन इस दुनिया में। कब तक रोक सकते हो! नगर में महोत्सव था--युवक महोत्सव--और बुद्ध उसका उद्घाटन करने जा रहे थे। स्वभावतः राजकुमार उद्घाटन करेगा। जब वे रास्ते पर गए तो बड़ी मुश्किल खड़ी हो गई। हटा दिए गए थे रास्ते से लोग, कोई बूढ़ा निकले ना। खबर कर दी गई थी। डुंडी पीट दी गई थी। कोई बीमार रास्ते पर न निकले। लेकिन क्या करोगे, रास्ते रास्ते हैं! एक बूढ़ा आदमी घर में से बाहर निकल आया और खांसने लगा। हो सकता है, देखने निकल आया हो; हो सकता हो न रोक पाया हो अपने मन को कि देख ले राजकुमार को, दर्शन कर ले। और खांसी आ गई।

उस बूढ़े को देख कर बुद्ध ने अपने सारथी से पूछा : इसे क्या हो गया है? इस आदमी को क्या हो गया? बुद्ध ने बूढ़ा नहीं देखा था, इसलिए बुढ़ापा भी एक बड़ा प्रश्न बन कर खड़ा हो गया। इस आदमी को हो क्या गया है? ऐसा आदमी कैसे हो गया यह? कमर झुकी जाती है। हाथ-पैर सूख गए हैं और खांस रहा है। बुद्ध ने किसी को इस तरह रुग्ण भी नहीं देखा था। चमड़ी सूख गई है। आंखें धंस गई हैं। हड्डी-हड्डी निकली है। पेट पीठ से लग गया है। इस आदमी को क्या हो गया?

सारथी ने कहाः मैं आपको क्या कहूं! ऐसा सभी आदमियों को हो जाता है अंततः। यह बुढ़ापा है। यह कोई बीमारी नहीं है। यह जिंदगी का सहज क्रम है।

बुद्ध ने तत्क्षण पूछाः क्या यही दशा मेरी भी हो जाएगी? आज तक यह प्रश्न उठा ही न था।

सारथी ने कहा कि मुझे क्षमा करें, झूठ नहीं बोल सकता आप से और सच कहने में भी डरता हूं। हो तो जाएगा। यह सभी को होता रहा; कोई भी अपवाद नहीं।

तो बुद्ध ने कहाः वापस लौटा लो रथ। अब युवक महोत्सव का उद्घाटन करने की कोई जरूरत नहीं रही। मैं बूढ़ा हो ही गया। अब क्या युवक! तुम वापस चलो।

वापस लौटते वक्त देखा कि एक आदमी मर गया, उसकी अरथी निकल रही है। इस आदमी को क्या हो गया? और सारथी ने कहा : यह उस आदमी के आगे की दशा है। वह जो अभी रास्ते में देखा था खांसते-खंखारते, यह उसके बाद की अवस्था है। यह आदमी मर गया।

बुद्ध ने कहा : क्या मैं भी मर जाऊंगा? सारथी ने कहा : सभी मरते हैं; कोई भी अपवाद नहीं। और महल के द्वार पर बुद्ध की आंखें अंधेरे से भरी हैं; हाथ-पैर डगमगा रहे हैं। जब वे महल के द्वार पर उतरते हैं, तब उन्होंने संन्यासी देखा--एक गैरिक वस्त्रधारी संन्यासी। उन्होंने पूछा : इस आदमी को क्या हुआ? यह गैरिक वस्त्र क्यों पहने हुए है?

सारथी ने कहाः यह आदमी उन दोनों को जो हो गया, उसको देख कर बचने का उपाय खोज रहा है। वह जो बूढ़ा हो गया, वह जो मर गया--इस आदमी को दिखाई पड़ गया कि जीवन में दुख है, दुख के पार कैसे जाएं, इसकी यह चेष्टा में लगा है। यह कोशिश में लगा है। यह संन्यासी है। यह महाजीवन को खोजने चला है--ऐसा जीवन, जहां दुख न हो। ऐसा सोच कर इसने जीवन का त्याग कर दिया है। यह अमृत की तलाश में है। यह अमृत का यात्री है।

उसी रात बुद्ध भाग गए। उसी रात गैरिक वस्त्र प्रीतिकर हो गए। उसी रात गैरिक वस्त्रों में रंग गए। उसी रात संन्यास का जन्म हो गया। यह ज्योतिषियों की बड़ी कृपा थी कि उन्होंने बुद्ध के पिता को समझाया कि इसे बाहर मत जाने देना। नहीं तो कितने राजकुमार होते हैं, ऐसे ही बुद्ध भी खो गए होते!

मैं तुम्हें यह समझाने के लिए कह रहा हूं कि पश्चिम में आज वैसी हालत हो गई है जैसे कभी-कभी पूरब में किन्हीं-किन्हीं राजपुत्रों को उपलब्ध थी। आज पश्चिम में साधारण आदमी को वह उपलब्ध है, जो राजाओं को कल उपलब्ध नहीं था। साधारण आदमी इन सुविधाओं को उपलब्ध कर लिया है, जो राजपुत्र तरसते हैं। अगर आज अकबर आए या चंगीजखान या नादिरशाह या नेपोलियन, तो एक साधारण आदमी जिस सुखद जिंदगी को जी रहा है बाहर, उसे देख कर ईर्ष्या से भर जाएंगे।

इसका परिणाम यह हुआ कि पश्चिम के पास जो कवच है, वह धीरे-धीरे टूटने लगा। जो बुद्ध को हुआ था, एक आदमी को, वह पश्चिम में आज बहुत विचारकों को हो रहा है कि जीवन में दुख है, दुख ही दुख है। अस्तित्ववाद बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना है।

तुमने कभी सोचा, जैनों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के बेटे हैं, क्यों? तुमने कभी सोचा, बुद्ध राजा के बेटे हैं, क्यों? तुमने कभी सोचा हिंदुओं के सब अवतार राजाओं के बेटे हैं, क्यों? कारण है। वही कारण काम कर रहा है। संपन्नता हो और चारों तरफ सुख हो, तो आदमी दुख से बचाने का कवच नहीं बनाता। और फिर अगर दुख के सामने आ जाए तो दुख चुभ जाता है, छाती में तीर की तरह लग जाता है। इसलिए अस्तित्ववाद का जन्म हुआ।

और अस्तित्ववाद का जन्म हुआ, एक संयोग में--दूसरे महायुद्ध में। क्योंकि दूसरे महायुद्ध के पहले तक एक संपन्नता की धारा रही और पश्चिम सोच रहा था पहुंच रहे हैं शिखर पर और फिर एकदम से धड़ाम से गिरा और सब तरफ दुख की धारा बह गई। खून ही खून छितर गया। सब तरफ मृत्यु नंगा नाच करने लगी। मृत्यु का तांडव-नृत्य हुआ, उसे देख कर, उस स्थिति को अनुवाद करके अस्तित्ववाद का जन्म हुआ।

पश्चिम के विचारक बाहर के प्रति जागरूक हो गए हैं, इसलिए दुख है। जल्दी ही अस्तित्ववाद दूसरा कदम लेगा। अगर लेगा तो पश्चिम धार्मिक हो जाएगा; जिसकी संभावना रोज बढ़ती जाती है। पश्चिम के धार्मिक होने की संभावना है। पूरब में तो सूरज डूब गया। सूरज अब पश्चिम में उगेगा। पूरब में तो कम्युनिज्म की संभावना है; धर्म की कोई संभावना नहीं। पूरब में तो नारा समाजवाद का है। धर्म इत्यादि की बकवास कौन करता है!

मुझसे लोग आकर पूछते हैं कि आपके पास सारी दुनिया से लोग चले आ रहे हैं, लेकिन भारतीय इतने उत्सुक नहीं मालूम होते हैं! भारतीय कैसे उत्सुक हों? भारतीयों की उत्सुकता दूसरी है। वे पश्चिम की तरफ जा रहे हैं--किसी को वैज्ञानिक बनना है; किसी को इंजीनियर बनना है, किसी को फिजीसिस्ट बनना है; कोई एटामिक एनर्जी का अध्ययन करने जा रहा है। भारत की प्रतिभा पश्चिम जा रही है कि कैसे हम ज्यादा संपन्न हो जाएं, कैसे समाजवाद आए, कैसे वैज्ञानिक टेक्नालॉजी आए। और पश्चिम से जो बुद्धिमान है, वह भागा पूरब की तरफ आ रहा है कि हम खोज लें जो बुद्ध पुरुषों ने कहा है। इसके पहले कि पश्चिम इस दुख के बोझ से दब कर मर जाए, हम किसी तरह खोज लें अपने भीतर सुख की कोई किरण। बाहर तो दुख ही दुख है; हम भीतर मुड़ जाएं और भीतर सुख को खोज लें।

अस्तित्ववाद क्रांति की शुरुआत है। अस्तित्ववाद ने पहली घोषणा कर दी : जगत दुख है। अगर जगत दुख है, तो अब दूसरी घोषणा की जरूरत हैः तो फिर हम कहां सुख खोजें? बाहर सुख नहीं है, तब एक ही उपाय बचता है कि हम भीतर और खोज कर देख लें। तो एक तो परिधि के प्रति पश्चिम जाग गया है, अब उसे आत्मा के प्रति जागना है, केंद्र के प्रति जागना है। अब उसे, उसे देखना है जो भीतर है। बाहर दुख है, भीतर को देखना है। और जिन्होंने भी भीतर देखा उन्होंने शाश्वत सुख पाया, स्वर्ग पाया।

अस्तित्ववाद पश्चिम में आने वाले धर्म के लिए प्रभात की बेला है। सूरज जल्दी ही उगेगा। भोर हो गई है। अभी भोर कच्ची है; जल्दी पकेगी। यह जरूरी नहीं है कि जो अस्तित्ववादी हैं वे ही धार्मिक बनेंगे; लेकिन अस्तित्ववाद भोर बन गया है। इसके बाद की जो पीढ़ी है, वह धार्मिक बनेगी। वह बन रही है।

दूसरे महायुद्ध में अस्तित्ववाद पैदा हुआ और दूसरे महायुद्ध के बाद जो बच्चे पश्चिम में पैदा हुए हैं, उनकी रुचि धर्म में अपूर्व रूप से है। युवा। आज जो मेरे पास युवा हैं, वे सब दूसरे महायुद्ध के बाद पैदा हुए बच्चे हैं; उन्नीस सौ पैंतालीस साल के बाद उनकी जन्म-तिथि है।

अस्तित्ववाद ने पहली भूमिका तैयार कर दी, बुनियाद रख दी; अब मंदिर बन रहा है। और यह बिलकुल नैसर्गिक प्रक्रिया से हो रहा है। जब कोई संपन्न होता है, तभी धार्मिक हो सकता है। धर्म संपन्नता की आखिरी ऊंचाई है। विपन्न आदमी धन खोजता है; ध्यान नहीं। बीमार आदमी औषधि खोजता है; आत्मा नहीं। स्वस्थ आदमी आत्मा खोजता है। संपन्न आदमी ध्यान खोजता है।

इसलिए मैं कहता हूं कि धर्म इस जगत की अंतिम, अंतिम ऊंचाई है। जिसने सब पा लिया है, वही धर्म को खोजने चलता है। जब तक कुछ पाने को बचा है संसार में, तब तक धर्म की खोज शुरू नहीं होती।

इसलिए यह भी तुम ख्याल रख लेना, मुझसे अनेक लोग पूछते हैं कि संपन्न व्यक्ति ही क्यों आपके पास आते हैं? संपन्न ही खोज सकता है धर्म। विपन्न अभी और चीजें खोजने में लगा है। भूखे भजन न होईं गोपाला! वह जो भूख से भरा है, वह अभी भोजन खोज रहा है, भजन कैसे खोजे! और अगर कभी भजन भी करता पाओ उसे, तो भोजन की तलाश में ही भजन कर रहा है, ख्याल रखना। वह सत्यसाईं बाबा के पास जा सकता है, क्योंकि वहां लगता है उसे कि शायद चमत्कार हो और भोजन मिल जाए; टांग टूटी है, टांग ठीक हो जाए; बीमारी है, बीमारी दूर हो जाए; नौकरी नहीं लगती, नौकरी लग जाए। जब आदमी शून्य से राख पैदा कर रहा है और शून्य में से ताबीज निकलते हैं, तो फिर कुछ भी हो सकता है। इसलिए गलत ढंग के लोग सत्यसाईं बाबा के पास इकट्ठे होंगे--वे ही लोग, जो धार्मिक नहीं हैं। संसार से कुछ चाहते थे, संसार में नहीं मिला; चलो सत्यसाईं बाबा से शायद मिल जाए। एक संभावना बची है, वहां चले जाएं। बीमारी है, ठीक नहीं होती; नौकरी लगती नहीं; विवाह होता नहीं; लड़की बड़ी हो गई, अब किसी के आशीर्वाद से हो जाए।

मगर यह खोज धर्म की खोज है? तो फिर संसार क्या है? इसलिए संसारी आदमी को चमत्कारी लोग खूब प्रभावित करते हैं। संसारी आदमी धर्म से प्रभावित नहीं होता, चमत्कार से प्रभावित होता है। मुकद्दमा चल रहा है कोई, चुनाव में लड़ना है--वह जाता है। वह सत्यसाईं बाबा के पास पहुंच जाता है कि चलो अब चुनाव में खड़े हुए हैं, बाबा आशीर्वाद दे दो। लेकिन धर्म का उससे क्या लेना-देना है!

ख्याल रखना, जब शरीर की जरूरतें पूरी हो जाती हैं, तो मन की जरूरतें पैदा होती हैं। जब मन की जरूरतें पूरी हो जाती हैं, तब आत्मा की जरूरतें पैदा होती हैं। जो आदमी भूखा है, उसके सामने तुम पिकासो के चित्र रखो और वानगॉग के चित्र रखो, वह सिर ठोंक लेगा। वह कहेगा : यह काहे के लिए रख रहे हो, मुझे भूख लगी है! ये पिकासो, वानगॉग, यह बिथोवन का संगीत, यह मो.जर्ट, यह कालिदास--हटाओ इनको यहां से, जलाओ इनको! वह होली में डाल देगा तुम्हारे सब कालिदास और तुम्हारे सब शेक्सपीयर। उसे क्या प्रयोजन है

इनसे? उसे क्या मतलब काव्य की गहराइयों से? उसे छंदशास्त्र में उतरने की कहां सुविधा! वह संगीत के सरगम में कैसे डूबे!

और मैं कुछ यह नहीं कहता कि वह गलत करता है। यह स्वाभाविक है। इसलिए जब भी देश गरीब होता है, उसकी संस्कृति बहुत ओछी हो जाती है, क्षुद्र हो जाती है, दो कौड़ी की हो जाती है। श्रेष्ठ का कोई स्वीकार नहीं रह जाता। अभिजात्य का विरोध हो जाता है। यह कुछ आश्चर्यजनक थोड़े ही है कि तुम्हारे कालिदास भवभूति सब राजाओं के दरबार में पले हैं। यह कुछ आश्चर्यजनक थोड़े ही है। यह कोई ट्रेड-यूनियन थोड़े ही इनको पाल सकता है। ट्रेड-यूनियन कालिदास को पाले, यह बात ही फिजूल है। ट्रेड-यूनियन कहेगा कि महाराज कालिदास, आप पुराना काम शुरू करो, लकड़ियां काटो; कविता इत्यादि से कुछ चाहिए नहीं। होगा क्या कविता से! हम मरे जा रहे हैं। कम्युनिज्म चाहिए, कविता नहीं। आप फिर वही लकड़ी काटने लगो, जैसे आप पहले काटते थे; उलटे बैठ कर अब, तो भी चलेगा। यह कहां की बुद्धिमत्ता आप बघार रहे हो?

यह संस्कृत भाषा का सौंदर्य, यह लालित्य! पर इसे जानने के लिए एक अभिजात्य चाहिए, एक अरिस्टोक्रेसी चाहिए। और मैं तुमसे कहना चाहता हूं : धर्म सब से बड़ा अभिजात्य है, सबसे बड़ी ऐरिस्टोक्रेसी है। आज यह बात कहना भी कठिन है, क्योंकि यह बात ही खतरनाक मालूम पड़ती है। आज तो ऐरिस्टोक्रेसी के पक्ष में कोई एक शब्द बोलने को तैयार नहीं। जो ऐरिस्टोक्रेट हैं, वे भी नहीं बोल सकते; कौन अपनी फांसी लगवानी है। जो ऐरिस्टोक्रेट हैं, वे भी कहते हैं : समाजवाद जिंदाबाद!

समाजवाद बहुत नीचे तल की बात है। जरूरी है, होनी चाहिए। लोगों के पेट भरने चाहिए। लेकिन जीसस ठीक हैं : मैन कैन नॉट लिव बाय ब्रेड अलोन। लेकिन आदमी अकेली रोटी से थोड़े ही जी सकता है। कुछ और भी चाहिए--रोटी से कुछ बड़ा चाहिए। हां, जब तक रोटी नहीं मिली, तब तक रोटी ही सब कुछ मालूम होती है; जिस दिन रोटी मिल गई, उसी दिन रोटी बेकार हो जाती है। जो मिल गया वही बेकार हो जाता है। तुम जानते हो। रोटी मिल गई, फिर उसमें कोई अर्थ नहीं रह जाता। मकान मिल गया है, उसमें कोई अर्थ नहीं। कार मिल गई, उसमें कोई अर्थ नहीं। जो मिल गया, वह अर्थहीन। जब तक नहीं मिला, तब तक मन में चुभता है--शूल की तरह चुभता है : एक कार चाहिए, एक मकान चाहिए, रोटी चाहिए, दुकान चाहिए, काम धंधा चाहिए, बैंक में थोड़ा रुपया चाहिए! लेकिन जैसे ही सब हो गया, फिर? फिर अचानक तुम ठिठक कर खड़े हो जाते हो--पूछते हो : अब? अब कहां? अब किधर? अब क्या करना है? तब तुम्हारे मन की जरूरतें उठनी शुरू होती हैं। मन कहता है : संगीत खोजो, साहित्य खोजो, चित्र, नृत्य. . .। अब तुम इस सूक्ष्म में उतरना शुरू होते हो।

फिर एक दिन मन भी भर जाता है। खोज लिया संगीत, सुन लिए बीथोवन और मोझर्ट और वेजनर; सुन लिए काव्य--कालिदास, मिल्टन, टेनिसन; देखे नृत्य--अब? अब क्या? अब महासूक्ष्म में उतरना होता है। अब प्रश्न उठता है कि मैं कौन हूं! यह सब तो हो गया। अब यहां बाहर कुछ भी नहीं बचा, जो पाने योग्य हो। जो पाया जा सकता था, पा लिया। और पाकर पाया कि यहां पाने योग्य कुछ भी नहीं है। पाकर ही पाया जाता है कि पाने योग्य कुछ भी नहीं है। बिना पाए नहीं पाया जाता। कैसे पाओगे बिना पाए? कैसे जानोगे कि व्यर्थ है? अनुभव होगा तो व्यर्थ होगा। तब एक सवाल उठता है कि मैं कौन हूं, अब इसे जान लूं। और सब तो जान लिया। संसार देख लिया--देख कर पाया : असार है। अब एक ही बात बची है कि यह मैं कौन हूं। तब प्रश्न उठता है : मैं कौन हूं? तभी धर्म का जन्म शुरू होता है।

तो पश्चिम ने देख लिया बाहर का सब। तन और मन दोनों पश्चिम के, भर रहे हैं और आत्मा की खोज शुरू हो रही है। यह भारत भी तभी धार्मिक था, जब संपन्न था। जैसे-जैसे विपन्न हुआ, वैसे-वैसे धर्म विकृत हुआ। फिर धर्म चमत्कारी बाबाओं तक सीमित रह गया। फिर मदारीगिरी का नाम धर्म हो गया। मदारियों से बहुत

क्षुद्र वृत्ति के लोग प्रभावित होते हैं। मदारी तो है ही ओछा, उससे जो प्रभावित होते हैं वे उससे भी ओछी हालत में हैं।

तुम बुद्ध से थोड़े ही प्रभावित होओगे! अगर तुम सत्यसाईं बाबा से प्रभावित होते हो तो बुद्ध को तो तुम ऐसे ही निकल जाओगे कि क्या रखा है, कुछ चमत्कार दिखाओ! बुद्ध ने कोई चमत्कार कभी नहीं दिखाया। बुद्ध इस जगत में धर्म के आभिजात्य के परम प्रतीक हैं। कोई चमत्कार का सवाल नहीं है। यही चमत्कार है कि कोई व्यक्ति शांत हुआ, आनंदित हुआ, परम विश्राम को उपलब्ध हुआ। यही चमत्कार है कि किसी व्यक्ति के भीतर से दुख समाप्त हुआ।

तो पहले तो दुख तो दिखाई पड़ता है बाहर; जब दुख बाहर दिखाई पड़ता है तो आदमी भीतर जाता है। और जब भीतर जाता है तो सुख दिखाई पड़ता है। और जब भीतर का सुख दिखाई पड़ता है, तब आंखों पर एक नई ज्योति उतरती है। फिर इस सारे जगत में सब कहीं, सब रूपों में तुम्हारे भीतर जो है, उसकी ही झलक दिखाई पड़ती है। एक को जान लो अपने भीतर, तो तुमने अनेक के भीतर छिपे हुए को जान लिया, क्योंकि वह भी यही है। जो तुम हो वही तुम्हारे बाहर भी है। वही वृक्ष में, वही चट्टान में, वही पत्थर में, वही नदी में, वही पहाड़ों में, वही चांद-तारों में। एक को जान लिया, सबको जान लिया।

तो ये तीन स्थितियां। एकः न तो बाहर का पता न भीतर का, मुर्दे की तरह जीए जा रहे हैं। ऐसे अधिक लोग हैं, निन्यानबे प्रतिशत लोग। दूसरी स्थितिः बाहर का पता चलना शुरू हुआ, भीतर का अभी कुछ पता नहीं है। यह अस्तित्ववाद की दशा है। दुख का बोध होगा। विषाद घिर जाएगा। संताप और चिंता पकड़ेगी। इसलिए अस्तित्ववाद के जो शब्द हैं विचार करने के, तुम अगर अस्तित्ववाद की कोई किताब देखोगे तो बड़े हैरान होओगे। जिनको हम सामान्य तौर से सोचते हैं दर्शनशास्त्र के विषय, उनकी कोई चर्चा ही नहीं है। अगर तुम सूची देखोगे विषयसूची अस्तित्ववाद की किसी पुस्तक की, तो न तो आत्मा पाओगे उसमें, न परमात्मा, न ध्यान, कुछ भी नहीं पाओगे--पाओगे : विषाद, संताप, अर्थहीनता। ये विषय हैं। यह दूसरी स्थिति : बाहर का दर्शन हो रहा है भीतर सब अंधेरा है।

तीसरी स्थिति : भीतर भी रोशनी, बाहर भी रोशनी। बाहर का भी अनुभव हो रहा है कि बाहर दुख है और भीतर का अनुभव हो रहा है कि भीतर सुख है। यह तीसरी स्थिति। यह तीसरी स्थिति ध्यानी की स्थिति है। और इस तीसरी स्थिति के बाद एक चौथी स्थिति है, जिसका वर्णन नहीं हो सकता; जिसको हमने तुरीय कहा है। तुरीय का मतलब यह होता हैः चौथी; दी फोर्थ। उसको कोई नाम नहीं दिया, क्योंकि उसको नाम दिया नहीं जा सकता। उसको सिर्फ चौथी कहा है--तुरीय। वह अवस्था हैः न भीतर रहा कुछ, न बाहर रहा कुछ। अतिक्रमण हो गया। बाहर-भीतर दोनों के प्रति जाग कर पाया कि मैं दोनों के पार हूं; न तो मैं भीतर हूं, न मैं बाहर हूं। मैं अन्य हूं, मैं भिन्न हूं। मैं दोनों का साक्षी हूं। यह जो साक्षी की दशा है, यह परमात्म-दशा है। यह आखिरी आभिजात्य है। यह आखिरी लग्जरी, जो इस जगत में इस अस्तित्व में मनुष्य को उपलब्ध हो सकती है। यह आखिरी विलास है। यह आखिरी भोग है। यह परम भोग है।

मैं संन्यासी को त्यागी नहीं कहता--परम भोग की यात्रा पर निकला खोजी कहता हूं। संसारी साधारण भोग में पड़े हैं। उनका भोग कुछ भोग जैसा नहीं है। संन्यासी असली भोगी है; उसका भोग असली भोग है, परमभोग।

संसारी क्या सुख पाता है? सोचता है : मिलेगा, मिलेगा, मिलेगा! मिलता कभी भी नहीं। एक मृग-मरीचिका--दौड़ता चला जाता है। संन्यासी पाता है--और ऐसा पाता है कि जो फिर कभी छूटता नहीं। पाया सो पाया। ऐसा पाता है जो स्वभाव है, स्वरूप है। फिर अहर्निश उस आनंद की वर्षा होती रहती है।

अनहद बाजत बांसुरी!
आज इतना ही।

सत्रहवां प्रवचन

प्रभु की भाषाः नृत्य, गान, उत्सव

राज तन में करै, भक्ति जागीर लै,
ज्ञान से लड़ै, रजपूत सोई।
छमा-तलवार से जगत को बस्सि करै
प्रेम की जुज्झ मैदान होई।।
लोभ औ मोह हंकार दल मारिकै
काम औ क्रोध ना बचै कोई।
दास पलटू कहै तिलकधारी सोई,
उदित तिहुं लोक रजपूत सोई।। 5।।

गाय-बजाय के काल को काटना,
और की सुनै कछु आप कहना।
हंसना-खेलना बात मीठी कहै,
सकल संसार को बस्सि करना।।
खाइये-पीजिये मिलैं सो पहिरिए,
संग्रह और त्याग में नाहिं परना।
बोलु हरिभजन को मगन ह्वै प्रेम से
चुप्प जब रहौ, तब ध्यान धरना।। 6।।

सुंदरी पिया की पिया को खोजती,
भई बेहोश तू पिया कै कै।
बहुत सी पदमिनी खोजती मरि गई,
रटत ही पिया पिया एक एकै।।
सती सब होती हैं जरत बिनु आगि से,
कठिन कठोर वह नाहिं झांकै।
दास पलटू कहै सीस उतारिकै
सीस पर नाचु जो पिया ताकै।। 7।।

पूरब ठाकुरद्वारा पच्छिम मक्का बना,
हिंदु और तुरक दुइ ओर धाया।
पूरब मूरति बनी पच्छिम में कबुर है,
हिंदू और तुरक सिर पटकि आया।।
मूरति और कबुर ना बोलै ना खाय कछु,
हिंदू और तुरक तुम कहां पाया।
दास पलटू कहै पाया तिन्ह आप में
मूए बैल ने कब घास खाया।। 8।।

जीवन अभी है, अभी नहीं। क्षण का खेल है। पानी केरा बुदबुदा! है तो लगता है जैसे सदा रहेगा। नहीं हो जाता है तो लगता हैः था भी? कभी था भी? पानी केरा बुदबुदा! ऐसा फूल कर पानी का बुदबुदा तैरता है; सूरज की किरणों में सतरंगा हो जाता है। जब है तो शाश्वत का भ्रम देता है और जब नहीं है तो सपना भी हुआ था उसका, इसका भी भरोसा नहीं आता।

जीवन पर तो मौत की तलवार बड़े कच्चे धागे में लटकी है; कब टूट पड़ेगी, कोई कह नहीं सकता। अब टूटे तब टूटे। इसलिए समझदार वे ही हैं, जो जीवन में उसको पा लें, जो शाश्वत है। नासमझ वे हैं, जो जीवन में उसको इकट्ठा करें, जो क्षणभंगुर है। जीवन क्षणभंगुर है स्वयं। उसे क्षणभंगुर की ही सेवा में लगा दोगे? जीवन भी जाएगा और जो इकट्ठा किया है वह भी जाएगा। कुछ कमाई हाथ न लगेगी।

यह जो छोटा सा जीवन है, इसे शाश्वत की खोज में लगा दो। जीवन तो जाएगा ही, फिर भी जाएगा। शाश्वत खोजो कि क्षणभंगुर, जीवन को जाना है। जीवन रुकने को नहीं है। लेकिन जिसने शाश्वत को खोजा, उसका जीवन तो चला जाएगा; लेकिन उसने जीवन का उपयोग कर लिया; उसने जीवन की सीढ़ी बना ली। जो खोजा वह रहेगा। समय तो गया; लेकिन समय को निचोड़ लिया संपत्ति में।

बहुत कम सौभाग्यशाली लोग हैं जो मौत के क्षण में यह कह सकें कि हमारा जीवन कृतार्थ हुआ। मृत्यु के क्षण में कसौटी है। मौत जब सामने खड़ी होती है, तब कसौटी है; तब परीक्षा का दिन है। तभी पता चलता है कि तुमने जीवन में कुछ पाया? क्यों मौत के क्षण में पता चलता है? क्योंकि मौत तय कर देती है कि जो पाया, उसे ले जा सकोगे या नहीं? अगर सच में पाया है तो तुम्हारे साथ जाएगा। अगर यूं ही क्षणभंगुर बबूलों के साथ खेल खेलते रहे तो तुम्हारे साथ कुछ भी न जा सकेगा। नंगा आदमी आता है और नंगा आदमी जाता है। खाली हाथ आता है और खाली हाथ जाता है।

जन्म से खाली हाथ हम आते हैं, यह तो ठीक है; लेकिन मरते वक्त भी खाली हाथ जाएं, तो सारे जीवन का अर्थ क्या हुआ?

समय में शाश्वत छिपा है और क्षणभंगुर में द्वार है सनातन का। मौत पर कसौटी होगी। लेकिन, अगर मौत के समय जागें, तो फिर करोगे क्या? फिर हाथ में समय तो बचता नहीं। इसलिए पलटू कहते हैंः अजहूं चेत गंवार! अब चेतो!

धरा पर लुटाया नहीं प्यार अब तक
अरी मौत अपना कदम तू हटा ले
समय की तृषित आत्मा के अधर पर,
अभी तो सुधा-बूंद बनना मुझे है,
अभी तो किसी झोपड़ी की अमा में
मधुर चांदनी-सी उतरना मुझे है,
किसी नव कली को उठा धूल में से
बनाया नहीं देव-शृंगार अब तक
अरी मौत अपना कदम तू हटा ले।
हुई मौन आंसू-भरा गीत गाकर
उसी आंख में अब सपन तो बसा लूं,
बिना प्यार के चल रहा जो अकेला
जरा उस पथिक की थकन तो मिटा लूं,
किसी की लुटी-सी बुझी जिंदगी में
मनाया नहीं दीप-त्यौहार अब तक,

अरी मौत अपना कदम तू हटा ले।
चलेंगे बहुत इस कंटीली डगर पर
जरा बीन कर शूल पथ साफ कर लूं
बुरा कुछ किया है, बुरा कुछ सहा है
जरा माफ हो लूं, जरा माफ कर लूं
किसी की बहकती नजर को बदल कर
दिखाया न रंगीन संसार अब तक
अरी मौत अपना कदम तू हटा ले।
अभी खेत-खलिहान चौपाल पनघट
नदी के किनारे जरा घूम लूं मैं
उमड़ती-धुमड़ती बरसती धटा में
जरा भींग लूं मैं, जरा झूम लूं मैं,
उमर घट रही है, सफर बढ़ रहा है
उठी पर हृदय से न झंकार अब तक
अरी मौत अपना कदम तू हटा ले

लेकिन मौत कदम हटाती नहीं। मौत का बढ़ा कदम कभी पीछे नहीं हटता। फिर तुम लाख रोओ, लाख चिल्लाओ। तुम लाख कहो कि अभी तो मैं जी भी नहीं पाया; और अभी तो व्यर्थ में ही उलझा रहा; अभी तो सार्थक की तरफ आंख भी नहीं उठाई थी। फिर तुम लाख सिर पटको, मौत कदम वापस नहीं उठाती। इसलिए जिन्हें जागना है, उन्हें मौत के आने के पहले जागना है।

बिना जागे, पूरे जीवन का कोई परिणाम नहीं है। और अगर एक क्षण भी तुम मौत के पहले जाग जाओ, सिर्फ एक क्षण भी, तो झरोखा खुल जाता है परमात्मा का।

ये पलटू के वचन--अजहूं चेत गंवार--यही कहने को है कि इतना तो गया, थोड़ा बचा है; यह भी चला जाएगा। इतना गया, इससे मिला क्या है? जो थोड़ा बचा है, इसे भी ऐसे ही गंवा देना है या कि कुछ कर लेना है? संसार को कितना ही जीतो, जीत नहीं होती; क्योंकि मौत आकर सब खेल ही बिगाड़ देती है। अपने को जीते ही जीत होती है। मन के जीते जीत। उसी जीत के ये आज के वचन हैं!

राज तन में करै, भक्ति जागीर लै
ज्ञान से लड़ै, रजपूत सोई।
छमा-तलवार से जगत को बस्सि करै
प्रेम की जुज्झ मैदान होई।
लोभ औ मोह हंकार दल मारिकै
काम औ क्रोध ना बचै कोई।
दास पलटू कहै तिलकधारी सोई
उदित तिहुं लोक रजपूत सोई।।

पलटू ने कहा हैः उसी को कहते हम राजपूत, उसी को कहते हैं क्षत्रिय, उसी को कहते हैं योद्धा, जो कुछ ऐसा जीत ले, जो छीना नहीं जा सकता है। और योद्धाओं को तो योद्धा कहना व्यर्थ है। खिलौनों के लिए लड़ते हैं। अगर किसी से तुमने छीन भी लिया तो क्या होगा? मौत तुमसे छीन लेगी। मौत सबको बराबर कर जाती है--गरीब-अमीर को; हारे को, जीते को--सब से छीन लेती है। वह सारी छीन-झपट व्यर्थ हो जाती है। हारे हुए तो हारते हैं; जीते हुए भी हार जाते हैं।

तो किसको हम क्षत्रिय कहें, किसको योद्धा कहें? उसको योद्धा कहें, जो मौत से कुछ छीन ले। मौत से कुछ छीनना हो, तो एक ही उपाय है कि कुछ शाश्वत की झलक मिले। क्योंकि शाश्वत पर ही मौत का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। समय के बाहर हमारी कोई संपदा हो, समयातीत द्वार खुले, समाधि मिले, तो ही मौत नहीं छीन पाती। हमारे भीतर अमृत का कोई स्वर सुनाई पड़े, तो मौत नहीं मिटा पाती।

"राज तन में करै, भक्ति जागीर लै।"

पलटू कहते हैंः राज ही करने का मन है--भला मन है, बुरा कुछ भी नहीं है; जरूर राज करो--लेकिन राज तन में करै।

तुम्हारी अपनी देह पर तुम्हारी मालकियत नहीं है। यह तुम्हारी देह तुम्हारी सुनती नहीं है। और दूसरी देहों को आज्ञा देने में लगे हो! सारे जगत को चलाने की आकांक्षा से भरे हो। अपनी देह को चला नहीं पाते। यह छोटी सी देह भी तुम्हारा मानती नहीं। यह छोटी सी देह भी तुम्हारा सुनती नहीं है। यह छोटी सी देह भी तुम्हारी छाया नहीं बनती। यह भी तुम्हारी मालिक है। तुम कैसे राजा बनोगे? इस देह की गुलामी भी नहीं छूट पाती है।

"राज तन में करै... "

तो पहला राज तो अपने तन पर फैलाओ। पहला अनुशासन कि तुम्हारी देह तुम्हारे पीछे चले, तुम्हें देह के पीछे न चलना पड़े। स्वाद भटकाता है। संगीत लुभाता है। कामवासना पकड़ती है। और जब शरीर किसी ज्वर से भरता है, किसी वासना के ज्वर से भरता है, तो तुम बिलकुल बेहोश हो जाते हो; तुम्हारा सारा होश खो जाता है। क्रोध की लपटें उठती हैं, जब तुम ऐसे काम कर लेते हो जो तुम कभी भी होश में होते तो न करते। पीछे पछताते हो। मगर पीछे पछताते हो! पीछे पछताने से क्या होगा? अब पछताए होत का, जब चिड़िया चुग गई खेत! पीछे तो सभी पछताते हैं। पीछे तो नासमझ से नासमझ भी पछताते हैं। समझदार वही है, जो उसी क्षण में जाग जाए, जब क्रोध उठा है; उसी क्षण में होश को सम्हाल ले। उसी होश से मालकियत पैदा होती है।

मालकियत का मतलब तुम समझ लेना। मालकियत का मतलब जबरदस्ती नहीं है, शरीर को कोड़े मार कर और शरीर को भूखा रख कर, उपवास करवा कर, अगर तुम मालिक बन गए तो वह मालकियत नहीं है; वह झूठी मालकियत है। शरीर स्वस्थ चाहिए, शक्तिशाली चाहिए, ऊर्जा से भरा हुआ चाहिए--फिर भी मालकियत चाहिए।

तो दुनिया में दो तरह की मालकियत होती है। एक तो मालकियत होती है कि शरीर को इतना कमजोर कर लो कि उसमें कुछ दम ही न रह जाए, मगर वह कोई मालकियत हुई? वह तो मालकियत का धोखा हुआ। वह तो ऐसे हुआ कि घर में एक लाश रख ली और कहा कि हम इसके मालिक हैं। हम जब उठाते हैं, तब यह लाश उठती है; हम जब बिठाते हैं, तब यह लाश बैठती है; हम बाहर ले जाते हैं तो बाहर जाती है; हम भीतर लाते हैं तो भीतर आती है।

तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासियों ने शरीर को लाश बना लिया। उन्हें डर है। मालकियत नहीं है यह। मालिक को कहां डर! यह तो ऐसा ही हुआ कि तुम एक घोड़े पर सवार हो और घोड़ा तुम्हारी मानता नहीं, तो तुम घोड़े को भूखा रखने लगे, कोड़े मारने लगे, उसके शरीर पर घाव बना दिए। घोड़े को इतना कमजोर कर लिया कि अब तुम्हारी उसे माननी ही पड़ेगी, क्योंकि न मानने की शक्ति ही नहीं रही। मगर यह मालकियत हुई? यह घोड़ा तो मुर्दा हो गया। मालकियत का तो मजा तभी था जब इस घोड़े में प्राण थे और यह हवाओं से बाजी लेता था। मालकियत का तो मजा तभी था जब यह घोड़ा वीर्यवान था। इसे कमजोर करके मालिक बनने में मजा नहीं है। यह तो मालकियत का धोखा है। यह रहे पूरा शक्तिशाली और फिर मालकियत।

तो ख्याल रखना, दमन के द्वारा जो मालकियत आती है, पलटू उसकी बात नहीं कर रहे हैं। आगे सूत्र में साफ हो जाएगा। पलटू कह रहे हैं : बोध से जो मालकियत आती है। अपने भीतर चैतन्य को घना कर लेने से जो

मालकियत आती है। इन दोनों में क्रांतिकारी भेद है। दमन से तुम तो जागते नहीं, सिर्फ तुम्हारा शरीर कमजोर हो जाता है। जागने से तुम्हारा शरीर तो अपनी जगह होता है; शायद और भी बलशाली हो जाए, लेकिन तुम्हारे भीतर एक दीया जलने लगता है। उस दीये की रोशनी में तुम जलने लगते हो। तुम्हारे भीतर एक शांति विराजमान हो जाती है। उस शांति में संतुलन है। उस संतुलन में संयम है। उस संयम में समाधि है। फिर एक चीज दूसरे में ले जाती है। धीरे-धीरे तुम्हारे भीतर एक इतनी विराट मालकियत का जन्म होता है, जिसको जैनों ने जिनत्व कहा है; तुम जिन हो जाते हो, विजेता हो जाते हो। और शरीर को मारना भी नहीं पड़ता, शरीर को काटना भी नहीं पड़ता। शरीर के साथ लड़ना ही नहीं पड़ता और जीत हो जाती है। जीत तो वही कुशल है कि लड़ना न पड़े और हो जाए।

"राज तन में करै, भक्ति जागीर लै।"

बड़ी मजे की बात पलटू कह रहे हैं। पलटू कह रहे हैं कि राज तन में बड़ी आसानी से हो जाएगा, भक्ति की जागीर मिल जाए। शरीर से लड़ कर राज नहीं करना है, परमात्मा से प्रेम करके राज हो जाएगा। शरीर की तरफ ध्यान ही मत देना।

दो तरह के शरीरवादी हैं दुनिया में। एक--जो शरीर को आभूषणों से सजाता रहता है; दर्पणों के सामने खड़ा हुआ सजता रहता है; जिसकी सारी चिंता शरीर को सजाने में ही लगी रहती है। यह भी शरीरवादी है। और एक दूसरा शरीरवादी है, जिसको तुम महात्मा कहते हो; वह भी चौबीस घंटे शरीर के ही ध्यान में लगा रहता है। क्या खाना, क्या पहनना, क्या पीना, क्या नहीं पीना, कब उठना कब नहीं उठना--चौबीस घंटे . . .। इन दोनों में फर्क नहीं है। एक दर्पण के सामने खड़ा है; वह सजा रहा है शरीर को; वह शरीर के साथ बड़े राग में है। दूसरा शरीर का दुश्मन है। वह शरीर को काट रहा है हर तरह से। मगर दोनों की दिशा, दोनों की दृष्टि शरीर पर अटकी है। दोनों में से आत्मवादी कोई भी नहीं है।

आत्मवादी तो वही है : "भक्ति जागीर लै"।

आत्मवादी का मतलब है : शरीर की चिंता ही नहीं रही; आंख उठीं और भीतर परमात्मा की तरफ उठ गईं। जैसे ही आंख परमात्मा की तरफ उठती है, शरीर अनुगामी हो जाता है, शरीर को अनुगामी बनाना नहीं पड़ता। जिसने परमात्मा को बुला लिया, जिसने थोड़ा सा संबंध प्रभु से जोड़ लिया, वह अचानक पाता है कि शरीर में जो उद्दाम वासनाएं थीं, वे अपने-आप शांत हो गईं। क्यों? क्योंकि जिसके जीवन में परमात्मा का प्रेम बरसने लगे, वह फिर किसी और प्रेम की आकांक्षा नहीं करता। और जिसके जीवन में परमात्मा की संपत्ति आ जाए, फिर और धन की आकांक्षा नहीं करता। और जिसको परमात्मा मिल जाए, उसको कैसा क्रोध, कैसा लोभ, कैसा मोह! ये सारे उपद्रव तो उस अंधेरी रात के थे जब परमात्मा की रोशनी न थी। इसलिए सरल से शब्द हैं, पर बड़े गहरे हैं।

"राज तन में करै, भक्ति जागीर लै।"

परमात्मा की जागीरी मिल जाए, फिर राज अपने-आप हो जाता है। तुम प्रभु को पा लो, शेष सब अपने आप हो जाता है। शरीर से लड़-लड़ कर प्रभु को नहीं पाया जाता; प्रभु को पाकर शरीर पर विजय हो जाती है।

इसलिए असली सवाल तपश्चर्या का नहीं है; असली सवाल भक्ति-भाव का है। असली सवाल प्रेम का है--प्रेम की धारा को मोड़ देने का है। तुम्हारा प्रेम ऊपर उठे। फर्क को ख्याल में लो।

एक सुंदर स्त्री राह से गुजरती है, तुम्हारा मन उसमें आकर्षित हो जाता है। भक्त भी निकले वहीं से; वह भी सुंदर स्त्री को देखेगा; अंधा नहीं है। सौंदर्य की परख उसे तुमसे ज्यादा है, क्योंकि उसने परम सौंदर्य देखा है। लेकिन इस सुंदर स्त्री में उसे उसी परम सौंदर्य की झलक मिलेगी। इस सुंदर स्त्री में उसे उसी परमात्मा का थोड़ा सा आभास मिलेगा। जैसे चांद को देखा हो जल में प्रतिबिंब बनते, ऐसा इस देह में उसी परमात्मा का छोटा सा प्रतिबिंब बनता दिखाई पड़ेगा। इस स्त्री के सौंदर्य को देख कर उसे स्त्री के सौंदर्य के प्रति, स्त्री की देह के प्रति

वासना पैदा नहीं होगी; इस स्त्री के सौंदर्य को देख कर उसे फिर प्रभु का स्मरण आ जाएगा। इस सौंदर्य को देख कर उसे उस परम सौंदर्य की याद आ जाएगी; वह फिर भजन में डूब जाएगा। वह फिर भीतर डोलने लगेगा। खिलते फूल को देख कर भी यही होगा। सूरज को निकलते देख कर भी यही होगा। सागर में उठती तरंगों देख कर भी यही होगा। जिसे एक बार परम सौंदर्य दिखाई पड़ गया, अब तो हर जगह जहां भी सौंदर्य होगा, वहीं उसकी झलक दिखाई पड़ेगी।

भक्त को लड़ना नहीं पड़ता। भक्त का मार्ग लड़ना है ही नहीं। भक्त का मार्ग बड़ा कलात्मक है; बिना लड़े जीत लेता है।

तुम राह से गुजरते हो, सुंदर स्त्री आकर्षित कर लेती है : शरीर में वेग उठते हैं, वासना उठती है। तुम इसके मालिक नहीं हो। फिर एक तुम्हारा तथाकथित महात्मा रास्ते से गुजरता है; वह भी सुंदर स्त्री को देखता है, वह जल्दी से आंख नीची कर लेता है। वह अपनी श्वास रोक लेता है। वह अपने भीतर राम-राम, राम-राम, राम-राम करने लगता है; एक दीवाल खड़ी करता है राम-राम की, ताकि भूल जाए। यह स्त्री दिखाई पड़ गई, यह भी भूल जाए।

झेन फकीरों की कथा है : एक बूढ़ा फकीर और एक युवक फकीर आश्रम वापस लौट रहे हैं। छोटी सी नदी पड़ती है। और एक सुंदर युवती नदी पार करने को खड़ी है, लेकिन डरती है। अनजानी नदी है, पहाड़ी नदी है, गहरी हो, खतरनाक हो, बड़ी तेज धार है। बूढ़ा संन्यासी तो नीचे आंख करके जल्दी से नदी में प्रवेश कर जाता है, क्योंकि वह समझ जाता है कि यह पार होना चाहती है, हाथ का सहारा मांगती है, लेकिन वह डर जाता है। हाथ का सहारा! इस बात में पड़ना ठीक नहीं! लेकिन युवक संन्यासी उसके पीछे ही चला आ रहा है। वह युवती से पूछता है कि क्या कारण है। सांझ हुई जा रही है, जल्दी ही सूरज डूब जाएगा और युवती अकेली छूट जाएगी। युवती कहती है : मैं बहुत डरी हुई हूं। पानी में उतरते घबड़ाती हूं। मुझे उस पार जाना है।

तो वह युवक संन्यासी उसे कंधे पर ले लेता है। बूढ़ा संन्यासी उस पार पहुंच गया, तब उसे याद आती है कि मेरे पीछे युवा संन्यासी भी आ रहा है, कहीं वह इस झंझट में न पड़ जाए! लौट कर देखता है तो उसकी तो आंखों को भरोसा ही नहीं आता है : वह कंधे पर बिठाए हुए लड़की को नदी पार कर रहा है! बूढ़ा तो आग से जल-भुन गया। युवक संन्यासी ने युवती को दूसरे किनारे उतार दिया, फिर दोनों चुपचाप चलने लगे। दो मील तक कोई बात न हुई। दो मील बाद बूढ़े को बर्दाश्त के बाहर हो गया। उसने कहा : यह ठीक नहीं हुआ और मुझे गुरु को जाकर कहना ही पड़ेगा; नियम का उल्लंघन हुआ है। तुमने उस सुंदर युवती को कंधे पर क्यों बिठाया!

उस युवक ने जो कहा, वह याद रखना। युवक ने कहा : आप बहुत थक गए होंगे। मैं तो उस युवती को नदी के तट पर ही उतार आया; आप अभी कंधे पर बिठाए हुए हैं! आप बहुत थक गए होंगे! बात आई और गई भी हो गई, अभी तक आप भूले नहीं!

जिसको तुम महात्मा कहते हो, वह आंख तो झुका लेगा; लेकिन आंख झुकाने से कहीं वासनाएं समाप्त होती हैं! आंख फोड़ भी लो तो भी वासनाएं समाप्त नहीं होती। आंखों पर पट्टियां बांध लो, तो भी वासनाएं समाप्त नहीं होती। वासनाओं का आंखों से क्या संबंध है? क्या तुम सोचते हो, अंधे को वासना नहीं होती? अंधे को इतनी ही वासना होती है, जितनी तुमको; शायद थोड़ी ज्यादा ही होती है। क्योंकि उसके पास, बेचारे के पास, उपाय भी नहीं; असहाय है, वह तड़फता है। उसके भीतर भी प्रबल आकांक्षा है, प्रबल वेग है। तो आंख बंद कर लेने से, आंख झुका लेने से क्या होगा? किसको धोखा दे रहे हो?

तो एक तो साधारण आदमी है, जिसके शरीर में ज्वर उठता है वासना का, सौंदर्य को देख कर। और एक तुम्हारा तथाकथित महात्मा है; उसके भीतर भी ज्वर उठता है, लेकिन वह आंख झुका लेता है। दोनों के भीतर

शरीर भागना चाहता है। एक भागने देता है, दूसरा शरीर को जबरदस्ती रोक लेता है। शायद लौट कर वह दो दिन उपवास करेगा पश्चाताप में, या शरीर पर कोड़े मारेगा।

सूफी फकीर, ईसाई फकीर, झेन फकीर, सारी दुनिया में हजारों किस्म के फकीर हुए, जिनमें न मालूम कितने-कितने ढंग के रोग व्याप्त हो गए। कोड़े मारने वालों की जमात रही है। उपवास करने वालों की जमात रही है रात-रात भर जागने वालों की जमात रही है। कमर में कीले चुभाने वाले, बेल्ट बांध लेने वालों की जमात रही है। जूतों में कीले अंदर की तरफ निकाल कर घाव पैरों में बना कर चलने वालों की जमात रही है। आंखें फोड़ लेने वाले, जननेंद्रियां काट देने वालों की जमात रही है। मगर ये रुग्ण जमातें हैं। पलटू इसके समर्थन में नहीं हैं।

पलटू कहते हैं : एक और रास्ता है। लड़ो मत वासना से। लड़ कर कहां जाओगे? घाव बन जाएंगे। कुछ और बड़ी वासना को जगा लो--परमात्मा की वासना। किसी और बड़े प्रेम से थोड़े भर जाओ। थोड़ी आंख ऊपर उठाओ। इस सौंदर्य में भी इसीलिए रस है कि इस सौंदर्य में क्षण भर को परमात्मा के सौंदर्य की थोड़ी सी छाया पड़ी है। तुम छाया से ग्रसित हो जाते हो, क्योंकि मूल को नहीं देखा है। तुम तस्वीर से जकड़ जाते हो, क्योंकि जिसकी तसवीर है उसको तुमने नहीं देखा है। उसको देख लो : मिल गई जागीर। फिर लड़ना नहीं पड़ता। फिर जबरदस्ती नहीं करनी पड़ती। फिर एक मालकियत आती है, जो बड़ी सहज है।

"राज तन में करै, भक्ति जागीर लै

ज्ञान से लड़ै, रजपूत सोई।"

बोध को जगाना है। ज्ञान को उठाना है। वही असली राजपूत है। वही क्षत्रिय है।

"ज्ञान से लड़ै . . ."

एक ही उपाय है : जागरण; अवेयरनेस; बोध; सुरति; होश को सम्हाले। इधर होश सम्हालता जाता है, उधर शरीर पर मालकियत आती जाती है। और जिस दिन अपने शरीर पर मालकियत आ जाती है, जिस दिन होश पूरा हो जाता है, उस दिन जीवन में बड़े सौभाग्य का मंगल क्षण आता है। उस दिन जीवन में बड़े मंगल वाद्य बजते हैं।

"छमा-तलवार से जगत को बस्सि करै।"

और ऐसा व्यक्ति, जिसने बोध के द्वारा अपने शरीर पर कब्जा कर लिया है, उसके जीवन में बड़ी और घटनाएं चुपचाप घट जाती हैं। जिसके भीतर बोध जगा है, उसके लिए सारे जगत के प्रति करुणा और क्षमा का भाव पैदा होता है। होता ही है। यह उसका अनुषंग है। जिसके भीतर वासना है, कामना है, उसका अनुषंग है : क्रोध। कामी क्रोधी होगा ही। यह असंभव है कि कोई कामी हो और क्रोधी न हो। काम के साथ क्रोध आता है। क्रोध काम की म्यान है। काम अगर तलवार है तो क्रोध उसकी म्यान है। काम की छाया है क्रोध।

तुमने भी देखा, तुम क्रोध से कब भरते हो? तुम क्रोध से तभी भरते हो जब तुम्हारे काम में कोई बाधा डाल देता है। तुम एक स्त्री के पीछे दीवाने हो और कोई दूसरा आदमी दखलंदाजी कर देता है। तुम एक जमीन खरीदना चाहते थे, कोई दूसरा आदमी ज्यादा दाम लगा देता है। तुम चुनाव लड़ने निकले थे, कोई दूसरा आदमी खड़ा हो जाता है और तुम्हारे वोटों को खींचने लगता है, तो क्रोध उठता है। जहां तुम्हारी कामना में कोई अड़ंगा डालता है, वहां क्रोध उठता है। और कामना में अड़ंगा तो डाला ही जाएगा, क्योंकि इतने कामी हैं। सारा जगत कामियों से भरा हुआ है! तुम अकेले थोड़े ही कामी हो। तो काम में तो संघर्ष होगा ही, द्वंद्व होगा, स्पर्धा होगी। काम में तो एक-दूसरे का गलाघोंट प्रतियोगिता होगी। तो काम होगा, क्रोध होगा।

ठीक इससे उलटी दशा बनती है : जैसे ही भीतर काम गया, प्रार्थना आई। भक्ति की जागीर आई, वैसे ही भक्ति की जागीर के साथ क्षमा आती है। क्षमा यानी क्रोध के विपरीत दशा। जब तुम्हारी कोई कामना ही बाहर

के जगत में न रही, तुम्हें यहां कुछ ऐसा नहीं है जिसको पाना ही है--फिर क्या झगड़ा! फिर किस पर क्रोध! फिर क्षमा सहज हो जाती है।

ध्यान रखना, पलटू यह नहीं कह रहे हैं कि तुम क्षमा का आचरण बना लो। पलटू यह नहीं कह रहे हैं कि तुम क्षमा करो। क्षमा की अगर तुमने, तो क्षमा रही नहीं। करनी पड़ी तो क्रोध तो आ ही गया।

जैन शास्त्रों में लिखा है : महावीर महाक्षमावान थे। मैंने एक जैन मुनि को पूछा कि इसका क्या अर्थ होता है? उन्होंने कहा : इसमें क्या अड़चन की बात है? यह तो सीधी सी बात है कि महाक्षमावान थे; सबको क्षमा कर देते थे।

तो मैंने कहाः एक बात पूछने जैसी है, कि क्षमा तो तभी हो सकती है जब क्रोध पहले आ जाता हो। क्रोध के बिना क्षमा कैसे होगी?

वे जरा बेचैन हुए। बात तो सीधी है। अगर महावीर को महाक्षमावान कहते हो, तो उसका मतलब यह हुआ कि महावीर को क्रोध आ जाता है फिर क्षमा कर देते हैं। मगर क्षमा के लिए क्रोध तो जरूरी हो जाएगा। वे कहने लगे कि सोचना पड़ेगा मुझे। बिना क्रोध के कैसे क्षमा होगी! आप शायद ठीक कहते हैं।

फिर दुबारा मैं उनको मिला। कोई आठ महीने बाद फिर मिलना हुआ। मैंने कहा : सोचा? उन्होंने कहा : मैं बहुत सोचा, मगर कुछ समझ में नहीं आता। तो मैंने कहा : आपको कुछ क्षमा का थोड़ा-बहुत अनुभव हुआ है कभी? सोचने की जरूरत ही न होती, अगर क्षमा का थोड़ा भी अनुभव हुआ होता।

क्षमा का अर्थ महावीर के लिए, महावीर के संदर्भ में यह नहीं होता कि उनको क्रोध हुआ और उन्होंने क्षमा की। अगर मुझसे पूछो तो मैं उनको क्षमावान भी न कहूंगा; मैं उनको अक्रोधी कहूंगा। क्रोध नहीं हुआ। महावीर को क्रोध नहीं हुआ, इसलिए दूसरों ने जिन्होंने बाहर से देखा, उनको लगा महाक्षमावान। क्योंकि उनको क्रोध नहीं हुआ। किसी ने गाली दी और वे शांत खड़े रहे। किसी ने उनके कान में खीले ठोंक दिए, वे चुप खड़े रहे। किसी ने उन्हें धक्के देकर गांव के बाहर निकाल दिया, वे चुप ही रहे। कोई मार गया तो, कोई अपमान कर गया तो, कोई पत्थर फेंक गया तो--वे चुप ही रहे। इसलिए लोकोक्ति हो गई कि महा-क्षमावान हैं; गाली देने वाले पर भी नाराज नहीं होते, क्षमा कर देते हैं।

यह हमारी बाहर से दृष्टि हुई। भीतर क्या हो रहा है? महावीर के भीतर क्रोध नहीं उठ रहा है; क्षमा का सवाल नहीं उठता। यही मतलब पलटू का है।

"ज्ञान से लड़ै, रजपूत सोई,

राज तन में करै, भक्ति जागीर लै,

छमा-तलवार से जगत को बस्सि करै।"

फिर तो क्षमा की तलवार से जगत वश में होने लगता है।

"प्रेम की जुज्झ मैदान होई।"

यह बड़ा अपूर्व वचन है :

"प्रेम की जुज्झ मैदान होई।"

इस पर जितना तुम ध्यान करोगे, उतने ही नये-नये अर्थ प्रकट होंगे।

पलटू कह रहे हैं : इस जगत में एक ही युद्ध है, वह प्रेम का युद्ध है। पहले तो किससे प्रेम? धन से प्रेम? पद से प्रेम? पत्नी से प्रेम? पति से प्रेम? मित्र से प्रेम? परिवार से प्रेम? परमात्मा से प्रेम? किससे प्रेम? ये युद्ध है सारा संसार का। प्रेम का ही युद्ध है। प्रेम की ही "जुज्झ" चल रही है। कहां प्रेम को टिकाऊं? किस मंदिर में प्रेम की आरती चढ़ाऊं? किसको बनाऊं मेरा आराध्य? कौन बने मेरी प्रतिमा? किसको पूजूं? किसके द्वार पर भजन गाऊं? किसके चरण में सिर झुकाऊं? यही तो सारा युद्ध है सारे संसार का। कोई धन के द्वार पर सिर झुका रहा है। कोई नगद कलदार के सामने सिर झुकाए बैठा है। कोई सोने-चांदी की पूजा कर रहा है।

तुम देखते हो न, दीवाली आती है तो इस देश में लक्ष्मी की पूजा होती है! और ऐसे हम कहते हैं : यह देश बड़ा धार्मिक है! लक्ष्मी की पूजा करने वाले दुनिया में कहीं भी नहीं हैं; सिर्फ इसी देश में है। धन की पूजा! और तुम सोचते हो, तुम्हारा देश धार्मिक है! मुझे तो कई बार शक भी होता है कि तुम नारायण की भी पूजा इसीलिए करते हो कि लक्ष्मीनारायण हैं वे। लक्ष्मी जुड़ी है तो नारायण की भी करनी पड़ती है। मगर दिल तुम्हारा लक्ष्मी की पूजा का ही है।

धन की पूजा! तुमने कभी सोचा? दीवाली पर दीये जलाते हो, फुलझड़ी जलाते हो, फटाके तोड़ते हो--और करते लक्ष्मी की पूजा! लोग नगद रुपयों के ढेर लगा लेते हैं। फिर उनकी पूजा करते हैं। अब नगद रुपए तो रहे भी नहीं हैं, तो लोग सिर्फ पूजा के लिए कुछ रुपए बचाए रखते हैं।

मगर धन की पूजा! यह तो परम लोलुपता हो गई। धन का उपयोग करो, यह भी ठीक है, मगर कम से कम पूजा तो न करो। और फिर भी कहे चले जाते हो कि तुम धार्मिक देश हो; धार्मिक वृत्ति है तुम्हारी।

सोचना। अपनी पूजा का ठीक-ठीक ख्याल करना, तुम किसकी पूजा कर रहे हो! कुछ लोग पद की पूजा कर रहे हैं; वे कुर्सी के सामने ही नमस्कार करते हैं। जहां पद दिखाई पड़ा, वहां एकदम उनके सिर झुक जाते हैं। वही आदमी कल पद पर नहीं रह जाएगा, तो कोई सिर झुकाने नहीं मिलेगा। गधे को भी बिठाल दो पद पर, तो तुम एकदम गुणगान करने लगोगे। और भगवान को भी पद से नीचे उतार दो, तो कोई नमस्कार करने वाला नहीं मिलेगा। पद की ऐसी पूजा। पद से ऐसा लोलुप प्रेम!

कोई अहंकार की पूजा कर रहा है। अपने ही सामने खड़ा हो गया है दर्पण के और अपने ही गले में मालाएं पहना रहा है। ठीक कहते हैं पलटू : इस जगत में एक ही युद्ध चल रहा है--"प्रेम की जुज्झ मैदान होई।" यहां एक ही मैदान है, एक ही युद्ध है, वह प्रेम का है। किसके प्रति प्रेम है तुम्हारा? और एक बात सोचना : जिसके प्रति प्रेम है, तुम उसी जैसे हो जाओगे। यह बहुत मूल्य की बात है। इसे गांठ बांध लेना। अगर पत्थर से प्रेम किया, पथरीले हो जाओगे। प्रेम बड़ा निर्णायक है। प्रेम की रसायन यही है : जिससे प्रेम करोगे वैसे ही हो जाओगे। इसलिए अगर लोग पत्थर की मूर्तियों को पूजते-पूजते पत्थर हो गए हैं, तो कुछ आश्चर्य नहीं है। उनका आराध्य पत्थर हो गया। जब आराध्य पत्थर हो गया, तो उन्होंने अपने हृदय भी पथरीले कर लिए। आदमी अपने आराध्य जैसा ही होना चाहता है।

ऐसे लोग हैं जो मशीनों को प्रेम करते हैं। कुछ लोग दीवाने हैं मशीनों के। वे घर में मशीनें ही बढ़ाते चले जाते हैं। अमरीका में बड़ा मशीनों का प्रेम है। मशीनें ही मशीनें लोग इकट्ठी कर लेते हैं। लेकिन मशीन ही मशीन के बीच जीने वाला आदमी धीरे-धीरे मशीन हो जाता है, यंत्र हो जाता है। उसके भीतर से मनुष्यता खो जाती है। उसका व्यवहार यंत्रवत हो जाता है। अब ऐसे लोग हैं, जो अपनी कार को प्रेम करते हैं। वे अपने बच्चे का सिर न थपथपाएंगे और पत्नी का आलिंगन न करेंगे; मगर उनका कार का प्रेम अदभुत है। सफाई कर रहे हैं कार की, पोंछ रहे हैं कार को, चारों तरफ घूम कर देख रहे हैं। ऐसे लोगों को मैं जानता हूं जो अपनी कार को अपने पोर्च के बाहर नहीं निकालते--कहीं धक्का लग जाए, कहीं खरोंच आ जाए! कार देवता है! तब स्वभावतः अगर तुम भी धीरे-धीरे यंत्रवत हो जाओ, तो कुछ आश्चर्य नहीं।

और जो आदमी अपने ही अहंकार की पूजा में लग गया हो, इसके जीवन में तो कोई विकास संभव नहीं रहा। आराध्य कुछ तो ऊंचा हो! क्योंकि जब आराध्य ऊंचा होता है तो तुम उसके चरण छूने के लिए थोड़े ऊपर बढ़ते हो। तुम्हीं आराध्य हो अपने, तो तुम पागल हो जाओगे। अपने ही पैर छूने के लिए झुकोगे तो और नीचे झुक जाओगे। कोई पैर तलाशो, जो तुम से जरा ऊपर हों। एकाध सीढ़ी ही सही ऊपर हों, तो कम से कम उतने तो तुम ऊपर सरकोगे! उतने तो ऊपर चढ़ोगे! उतना तो ऊर्ध्वगमन होगा!

पलटू कहते हैं : प्रेम ही करना हो, तो विराट से करो, ताकि तुम विराट हो जाओ। भक्ति जागीर लै। प्रेम करना हो तो परमात्मा से करो। परमात्मा से प्रेम करते-करते-करते एक दिन भक्त भगवान हो जाता है। उस प्रेम की रसायन यही है कि तुम जिससे करते हो, उसी जैसे हो जाते हो। इसलिए प्रेमपात्र बहुत सोच कर चुनना।

तुमने यह अक्सर देखा होगा और शायद तुम सोच में भी पड़े होओगे : पति-पत्नी साथ रहते-रहते जीवन के आखिर-आखिर में करीब-करीब एक जैसे हो जाते हैं। उनका व्यवहार एक जैसा हो जाता है। उनका बोलचाल एक जैसा हो जाता है। उनके ढंग एक जैसे हो जाते हैं। उनकी मुख-मुद्राएं एक जैसी हो जाती हैं। एक-दूसरे के साथ रहते, एक-दूसरे को प्रेम करते-करते-करते, एक-दूसरे की अनुकृति करते-करते, एक-दूसरे का अनुसरण होते-होते--दोनों बिल्कुल एक जैसे हो जाते हैं। पति-पत्नी जीवन के अंत तक करीब-करीब भाई-बहन जैसे हो जाते हैं। उनके चेहरे एक-दूसरे से मिलने लगते हैं। उनकी आंखें एक-दूसरे से मिलने लगती हैं। उनका ढंग-व्यवहार मिलने लगता है। ऐसा क्यों हो जाता है? यह प्रेम का रसायन है।

सोच कर प्रेम करना। बहुत सोच कर प्रेम करना। बहुत मंथन से प्रेम करना। बहुत मननपूर्वक करना। बहुत ध्यान देना इस बात पर। क्योंकि तुम्हारा प्रेमपात्र अंततः तुम्हारे जीवन का निर्णायक हो जाएगा; तुम्हारी नियति बन जाएगा।

"राज तन में करै, भक्ति जागीर लै,

ज्ञान से लड़ै, रजपूत सोई।

छमा-तलवार से जगत को बस्सि करै,

प्रेम की जुज्झ मैदान होई।।"

इस सारे जगत में एक ही युद्ध चल रहा है : छोटे प्रेम का बड़े प्रेम से। फिर उस बड़े प्रेम का और बड़े प्रेम से। फिर उस और बड़े प्रेम का और बड़े प्रेम से। अंततः संसार और परमात्मा का युद्ध है। अंततः राम और रावण के बीच चुनाव है। यह महाभारत है।

धन से प्रेम करते हो? पागल न बनो! प्रेम ही करना हो तो ध्यान से करो। धन यानी रावण। ध्यान यानी राम। पदार्थ से प्रेम करते हो? प्रेम ही करना है तो चैतन्य से करो। पदार्थ यानी रावण। चैतन्य यानी राम। जो दिखाई पड़ता है, उससे प्रेम करते हो? तो संसार के पार कैसे जाओगे? जो नहीं दिखाई पड़ता, उससे प्रेम करो। अदृश्य के साथ थोड़े संबंध बांधो। दृश्य यानी रावण। अदृश्य यानी राम। धीरे-धीरे दृश्य से अदृश्य की तरफ हटो; ज्ञात से अज्ञात की तरफ; क्षुद्र से विराट की तरफ। धीरे-धीरे तुम पाओगे, तुम्हारे जीवन में अपूर्व शांति का राज्य उतरने लगा। जितना बड़ा प्रेमी खोज लोगे, उतने ही बड़े तुम हो जाओगे।

सुख के साथी मिले हजारों ही, लेकिन
दुख में साथ निभाने वाला नहीं मिला
जब तक रही बाहर उमर की बगिया में
जो भी आया द्वार चांद लेकर आया
पर जिस दिन झर गई गुलाबों की पंखुरी
मेरा आंसू मुझ तक आते शरमाया
जिसने चाहा, मेरे फूलों को चाहा
नहीं किसी ने लेकिन शूलों को चाहा
मेला साथ दिखाने वाले मिले बहुत
सूनापन बहलाने वाला नहीं मिला।
सुख के साथी मिले हजारों ही, लेकिन
दुख में साथ निभाने वाला नहीं मिला।
कोई रंग-बिरंगे कपड़ों पर रीझा
मोहा कोई मुखड़े की गोराई से
लुभा किसी को गई कंठ की कोयलिया

उलझा कोई केशों की घुंघराई से
जिसने देखी, बस मेरी डोली देखी
नहीं किसी ने पर दुल्हन भोली देखी
तन के तीर तैरने वाले मिले सभी
मन के घाट नहाने वाला नहीं मिला।
सुख के साथी मिले हजारों ही, लेकिन
लेकिन दुख में साथ निभाने वाला नहीं मिला।
मैं जिस दिन सोकर जागा, मैंने देखा
मेरे चारों ओर ठगों का जमघट है
एक इधर से एक उधर से लूट रहा
छिन-छिन रीत रहा मेरा जीवन-घट है
सबकी आंख लगी थी गठरी पर मेरी
और मची थी आपस में मेरा-तेरी
जितने मिले, सभी बस धन के चोर मिले
लेकिन हृदय चुराने वाला नहीं मिला।
सुख के साथी मिले हजारों ही, लेकिन
दुख में साथ निभाने वाला नहीं मिला।
रूठी सुबह डिठौना मेरा छुड़ा गई,
गई ले गई, तरुणायी सब दोपहरी
हंसी खुशी सूरज चंदा के बांट पड़ी,
मेरे हाथ रही केवल रजनी गहरी,
आकर जो लौटा कुछ लेकर ही लौटा
छोटा और हो गया यह जीवन छोटा,
चीर घटाने वाले ही सब मिले यहां,
घटता चीर बढ़ाने वाला नहीं मिला
सुख के साथी मिले हजारों ही लेकिन
दुख में साथ निभाने वाला नहीं मिला।
उस दिन जुगनू एक अंधेरी बस्ती में
भटक रहा था इधर-उधर भरमाया सा
आस-पास था अंतहीन बस अंधियारा
केवल था सिर पर निज लौ का साया सा,
मैंने पूछाः तेरी नींद कहां खोई?
वह चुप रहा, मगर उसकी ज्वाला रोई
नींद चुराने वाले ही तो मिले यहां
कोई गोद सुलाने वाला नहीं मिला।
सुख के साथी मिले हजारों ही, लेकिन
दुख में साथ निभाने वाला नहीं मिला।

इस जगत में तुमने बहुत प्रेम किए; बहुत मैत्रियां बांधीं। अब उनका थोड़ा अवलोकन करो, निरीक्षण करो। अब थोड़ा उन पर पुनर्विचार करो। अब कुछ निष्पत्तियां निकालो। सबने तुम्हारे सुख में साथ बंटाने की चेष्टा की, लेकिन तुम्हारे दुख में कौन साथ बंटाने आया! सबने तुम्हारे जीवन में दोस्ती बांधी; तुम मरे तो कौन तुम्हारे साथ मरा।

यह प्रेम, जिसे हम प्रेम की तरह जानते हैं, एक-दूसरे का शोषण है। केवल परमात्मा ही सदा साथ हो सकता है; और कोई सदा साथ हो नहीं सकता। और जिसका सदा साथ मिल सके, वही साथ करने योग्य है। वही जागीर है, जिसे मौत भी न छीन सकेगी। मौत के क्षण में भी जो तुम्हारे साथ होगा, उस परम दुख के क्षण में भी जो तुम्हारे साथ होगा, वही जागीर है।

"लोभ औ मोह हंकार दम मारिकै
काम और क्रोध ना बचै कोई
दास पलटू कहै तिलकधारी सोई,
उदित तिहुं लोक रजपूत सोई।।"

जैसे ही यह भक्ति की जागीर किसी को मिल जाती है . . . और सबको मिल सकती है। यह सबका स्वरूप-सिद्ध अधिकार है। न पाओ तो इतना ही अर्थ हुआ कि तुमने मांगी नहीं। न पाओ तो इतना ही अर्थ हुआ कि तुमने चाही नहीं। मिल सकती थी। हाथ बढ़ाने की बात थी, तुमने हाथ भी न बढ़ाया। यह जागीर मिल जाए तो तन पर राज आ जाता है; ज्ञान की अपरंपार ज्योति जलने लगती है; जीवन में क्षमा का चारों ओर उजियारा फैल जाता है और प्रेम के युद्ध में जीत हो गई। यह जागीर मिली तो प्रेम के युद्ध में जीत हो गई। इस जीत के साथ ही लोभ चले जाते हैं; मोह चला जाता है; अहंकार चला जाता है।

लोभ, मोह, अहंकार सब अंधेरी दुनिया के हिस्से हैं; जैसे ही रोशनी प्रेम की हुई, ये सब मिट जाते हैं।

"काम औ क्रोध ना बचै कोई
दास पलटू कहै तिलकधारी सोई।"

खूब प्यारा मजाक किया है पलटू ने! पलटू कहते हैं : तुम तिलक लगाते फिरते हो; घिस-घिस कर चंदन-तिलक लगाते हो। इसको तिलक धारण करना नहीं कहेंगे। जिसके भीतर तन पर मालकियत आ जाए, मन पर मालकियत आ जाए, वही तिलकधारी। और तिलकधारी प्रतीक भी बड़ा प्यारा है। क्योंकि वस्तुतः जैसे ही तुम्हारे भीतर जागरण जगता है, तुम्हारा तीसरा नेत्र खुलता है। तुम्हारी दो आंखों के मध्य में एक ज्योति सतत जलने लगती है, वही तिलक है। भीतर है तिलक। ऐसे बाहर से चंदन का टीका लगाने से तिलक नहीं होता।

आदमी नकलची है। हमने तिलकधारी देखे हैं--कोई कबीर, कोई पलटू, कोई दादू। हमने उनकी तीसरी आंख को जलते देखा। हमने उनकी तीसरी आंख को रोशन होते देखा; हीरे की तरह चमकते देखा। हमको लगा : हम भी कुछ करें। हमने एक तिलक लगा लिया उसी जगह पर; जैसे कि तिलक लगाने से बात हल हो जाएगी।

चंदन का तिलक भी बहुत सोच कर चुना गया। चंदन शीतल है और जिसके भीतर का तीसरा नेत्र जग जाता है, उसके जीवन में परम शीतलता हो जाती है। चंदन अपूर्व सुगंध से भरा है; वैसी सुगंध और किसी चीज की नहीं। चंदन की सुगंध ऐसी है कि सांप भी अपने विष को भूल जाता है। और चंदन की सुगंध ऐसी है कि सांप लिपटे रहते हैं, भुजंग लिपटे रहते हैं चंदन पर, तो भी उनके जहर से चंदन विकृत नहीं होता। चंदन की सुगंध से वे ही सज्जन हो जाते हैं।

तो जिसके भीतर चंदन जैसी सुगंध आई और जिसके भीतर चंदन जैसी शीतलता आई और जिसके भीतर . . ."भीतर" चंदन का तिलक लगा, उसको ही तिलकधारी कहते हैं। अब ऊपर से तुम कितने ही तिलक लगाते रहो, आड़े, तिरछे, जैसे तुम्हें बनाने हों--यह सब पाखंड है; यह सब धोखा है। भीतर का तिलक खोजो।

"दास पलटू कहै तिलकधारी सोई।"

जिसे राम की जागीर मिली . . .और जागीर मिलती है तीसरे नेत्र से। इसलिए उसको आज्ञा-केंद्र कहा है, आज्ञाचक्र कहा है। क्योंकि तीसरे नेत्र पर जो आ गया, उसकी आज्ञा चलने लगती है अपने तन-मन पर। इसलिए उसे आज्ञाचक्र कहा है। उस बिंदु से आदमी मालिक हो जाता है। फिर थोड़ी ही दूरी रही परमात्मा होने में। बस एक कदम और। यह छठवां चक्र है। सातवां चक्र है सहस्रार। आज्ञा चलने लगी शरीर पर, मन पर--मालकियत

आ गई; स्वामी हो गया व्यक्ति। यह संन्यासी की दशा है। इसलिए हम संन्यासी को स्वामी कहते हैं। ऐसी दशा भीतर आ जाए, ऐसा तिलक भीतर लग जाए, तो ठीक-ठीक संन्यासी हुए। फिर एक ही कदम और बचा, आखिरी कदम और बचा। अभी भक्त रहेगा। अभी भक्त बड़ा मालिक हो जाएगा, बड़ा मस्त हो जाएगा; मगर भक्त रहेगा। अब आखिरी कदम आता है और आदमी छठवें केंद्र से सातवें केंद्र में प्रवेश करता है। वहां तो खो जाता है; जैसे नदी सागर में खो जाती है। वहां भक्त नहीं बचता; भगवान ही बचता है।

इसलिए दो तरह की गणनाएं हैं इस देश में। कुछ ने सात चक्र गिने हैं; सहस्रार को भी एक चक्र गिना है। कुछ ने छह ही चक्र गिने हैं; उन्होंने सहस्रार को आदमी में नहीं गिना; उसको आदमी के बाहर गिना है। इसलिए उसको आदमी में क्या गिनना! छठवें तक आदमी रहता है, सातवें में तो आदमी रह नहीं जाता। इसलिए तुम्हें अनेक किताबों में छः चक्रों का वर्णन मिलेगा, तो हैरान मत होना। उन्होंने सातवें को इस कारण छोड़ दिया कि सातवें में तुम तो बचोगे ही नहीं। वह तुम्हारा चक्र कैसा! तुम तो छठवें तक रहोगे। छठवें के पार जैसे ही तुम सप्तम में गए--गए! तुम न रहे, परमात्मा रहा। इसको पलटू कहते हैं : तिलकधारी।

"दास पलटू कहै तिलकधारी सोई।"

और तिलकधारी का एक अर्थ राजा भी होता है--जिसका तिलक हो गया; राज-सिंहासन पर जो बैठ गया; जो राजा हो गया।

स्वामी रामतीर्थ अपने को बादशाह कहते थे--इसी अर्थ में कहते थे--तिलकधारी। पास कुछ भी नहीं। सम्राट हो गए।

बुद्ध का जन्म हुआ। बड़े-बड़े ज्योतिषी इकट्ठे हुए। सभी ज्योतिषियों ने--जब बुद्ध के पिता ने पूछा, कि इसके संबंध में कोई विशेष बात, इस बेटे के संबंध में कोई विशेष बात? तो सबने दो-दो उंगलियां उठाईं। बुद्ध के पिता ने पूछा : मैं समझा नहीं, इशारा क्यों करते हो? बोलते क्यों नहीं? तो उन्होंने कहा : हम थोड़े शंकित होते हैं, इसलिए नहीं बोलते। दो संभावनाएं हैं। पक्का कुछ कहा नहीं जा सकता। या तो यह चक्रवर्ती सम्राट होगा, या परम संन्यासी होगा। या तो यह सब छोड़ कर परम संन्यासी हो जाएगा और या यह सारे जगत में राज्य करेगा। छहों महाद्वीप पर राजा बनेगा; चक्रवर्ती होगा। इसलिए हम दो उंगली उठाते हैं।

लेकिन एक युवक ज्योतिषी बिना हाथ उठाए बैठा रहा। वह अकेला था। बुद्ध के पिता ने पूछा : आपने कुछ इशारा नहीं किया? उसने एक ही उंगली उठाई। बुद्ध के पिता ने पूछा : आपका भिन्न मत है इन सबसे? उसने कहा कि नहीं, मेरा भिन्न मत नहीं है; क्योंकि जब कोई परम संन्यासी होता है, तभी चक्रवर्ती होता है। यह बड़ी प्यारी बात उसने कही। उसने कहा : मैं एक ही उंगली उठाता हूं। यह परम चक्रवर्ती भी होगा और परम संन्यासी भी--दोनों। मगर यह एक ही साथ घटती है बात। सारे जगत का राजा वही है, महाराजा वही है--जिसकी कोई चाह न रही। चाह रही तो भिखमंगा।

वह युवा ज्योतिषी जरूर सिर्फ ज्योतिषी ही नहीं था--बड़ी आत्मिक अनुभूति उसे हुई होगी, रही होगी। उसने बड़ी ठीक-ठीक बात कही, कि यह बेटा तुम्हारा महासंन्यासी तो होगा ही और महासंन्यासी होकर ही चक्रवर्ती होगा। ये दो बातें नहीं हैं; या का कोई सवाल ही नहीं। क्योंकि दुनिया में तभी कोई चक्रवर्ती होता है, जब कोई सब छोड़ देता है; जब जिसकी कोई पकड़ नहीं रह जाती।

तो इस अर्थ में भी हम दास पलटू की बात समझें : "दास पलटू कहै तिलकधारी सोई।" चक्रवर्ती सम्राट हो गया।

"उदित तिहुं लोक रजपूत सोई।"

और ऐसे व्यक्ति का तीनों लोकों में प्रकाश हो जाता है। ऐसे व्यक्ति का सर्वलोकों में प्रकाश हो जाता है। यहां पृथ्वी पर ही प्रकाश नहीं होता; नरक के गहनतम अंधेरे में भी इस आदमी की रोशनी पहुंचती है और स्वर्ग की ऊंचाइयों पर भी इसकी रोशनी पहुंचती है। जगत में ऐसा कोई भी कोना नहीं जहां इसकी रोशनी नहीं

पहुंचती। जहां भी आंख है, जहां भी कोई देखने में सक्षम है, वहां इसकी रोशनी पहुंचती है। और जहां भी कोई सुनने में सक्षम है, वहां इसकी वाणी पहुंच जाती है। तीनों लोकों से व्यक्ति इसकी तरफ खिंचने शुरू हो जाते हैं।

हमारे पास अनूठी कहानियां हैं। अब तो कहानियां ही रह गई हैं, क्योंकि आज के आदमी को उन पर भरोसा आना कठिन हो गया है। जब महावीर को ज्ञान हुआ, तो तत्क्षण देवता इकट्ठे हो गए। सारा स्वर्ग उतर आया सुनने के लिए। बुद्ध को जब ज्ञान हुआ, तब भी ऐसा ही हुआ। महावीर की जो देशनाएं हैं, उनकी देशना की जो कथाएं हैं--वह बड़ी अपूर्व हैं। उनमें कहा जाता है : पशु-पक्षी मौजूद थे; भूत-प्रेत मौजूद थे; देवी-देवता मौजूद थे; मनुष्य मौजूद थे; सब मौजूद थे; तीनों लोकों से चेतनाएं आ गई थीं। और महावीर चुप रहे। महावीर बोले नहीं। क्योंकि अब बोलें किसकी भाषा में? पशु एक भाषा समझते हैं; आदमी दूसरी भाषा समझते हैं; भूत-प्रेत तीसरी भाषा समझते हैं; देवता कोई और भाषा समझते हैं। अब किस भाषा में बोलें? महावीर चुप रहे। क्योंकि मौन ही एकमात्र भाषा है, जो सब समझते हैं।

इसलिए एक अपूर्व कथा है महावीर के संबंध में, कि महावीर बोले नहीं। फिर जो महावीर के वचन हैं, वे कैसे आए? वे व्याख्याएं हैं। वह तो जिन्होंने महावीर के मौन को समझा, उन्होंने उनको समझाया जो महावीर का मौन नहीं समझ सकते थे। इसलिए महावीर के गणधर बोले। महावीर तो चुप रहे। महावीर चुप रहे। जिन्होंने महावीर को समझा, जैसे गौतम गणधर, महावीर का शिष्य, वह महावीर के मौन को समझा। उसने फिर लोगों को समझाया। वह महावीर के मौन को पकड़ लिया; फिर उसने उस मौन को लोगों की भाषा में उतारा।

इसलिए तुम चकित होओगे जान कर, कि जैनों के दो पंथ हैं : दिगंबर और श्वेतांबर। दिगंबर के पास महावीर के कोई सूत्र नहीं हैं। क्योंकि वे कहते हैं : महावीर बोले नहीं, चुप रहे। इसलिए उनका कोई शास्त्र नहीं है। श्वेतांबरों के पास उनके सूत्र हैं; क्योंकि उन्होंने, जो गणधरों ने कहा, जो महावीर के व्याख्याकारों ने कहा, उसे संगृहीत किया।

दोनों बातें सच हैं। गणधर लाख उपाय करें, बात वही की वही तो नहीं रह जाएगी जो महावीर ने कही थी। मैं यहां तुमसे कुछ कहता हूं, तुम जाकर अपने घर अपने बच्चों को समझाओगे--फर्क हो जाएगा। हो ही जाने वाला है। कुछ तुम उसमें मिल ही जाओगे।

इसलिए दिगंबर बड़े शुद्धिवादी हैं। वे कहते हैं : हम ये, ये वचन न इकट्ठे करेंगे। अगर हमें महावीर को सुनना है तो हम मौन ही होना सीखेंगे और मौन होकर ही समझेंगे; और दूसरा बीच में हम उपाय न लेंगे; किसी मध्यस्थ को स्वीकार न करेंगे। यह बात भी महत्त्वपूर्ण है। लेकिन आदमी कमजोर है। सभी तो मौन नहीं हो सकते। यह भी हम मान लें कि गणधरों ने जो कहा, उसमें कुछ उनके भाव भी मिश्रित हो गए होंगे, तो भी गणधर हमसे तो पार ही हैं; कुछ तो ऊंचे हैं। हमें कुछ तो पार ले जाएंगे। कम से कम महावीर का मौन तो समझ सके; हम तो नहीं समझ सकते हैं महावीर का मौन। चलो जितने दूर गणधर ले जा सकते हैं, इनके साथ चल लेंगे; फिर जितने आगे अपने जाना है, खुद चले जाएंगे। जितनी यात्रा भी संग-साथ हो सके, उतनी भी ठीक।

श्वेतांबरों ने थोड़ा समझौता किया है आदमी की कमजोरी से। दिगंबरों ने समझौता नहीं किया आदमी की कमजोरी से। इसलिए श्वेतांबरों ने सफेद वस्त्र भी पहनने शुरू कर दिए--आदमी की कमजोरी! नग्न संन्यासी समाज के लिए जरा कठिन है। लेकिन दिगंबरों ने समझौता नहीं किया। संन्यासी उनके कम होते गए, होते गए; आज उनके केवल बाइस मुनि हैं पूरे देश में। अब बाइस कोई संख्या है? और जब एक मुनि मर जाता है, तो बस एक संख्या कम हो गई; फिर उसको भरने के लिए दूसरा मुनि नहीं हो पाता। नग्न रहना! किसी तरह की वस्तु का कोई परिग्रह नहीं! सोने के लिए बिछौना भी नहीं--घास या फर्श! फिर सर्दी भी है, गरमी भी है। कंबल भी ओढ़ नहीं सकते। आग भी नहीं जला सकते। हिंदू संन्यासी को तो सुविधा है; वह आग जला कर बैठ जाता है।

नंगा भी रहा तो कोई चिंता नहीं; आग तो जला लेता है। जैन मुनि आग भी नहीं जला सकता, क्योंकि आग के जलाने में हिंसा होती है। कठिन होता गया।

दिगंबरों ने कोई समझौता नहीं किया। वह बात भी महत्वपूर्ण है। समझौते की बात में भी अर्थ है। लेकिन जिस व्यक्ति को ज्ञान उत्पन्न होता है, उसकी वाणी तीनों लोक तक पहुंच जाती है; बिना पहुंचाए पहुंच जाती है। जो भी, जहां भी, जिस योनि में भी, उसे सुनने के लिए उत्सुक हो जाता है, वही खिंचा चला आता है। एक अदम्य आकर्षण, जैसे एक चुंबक का जन्म होता है! और जो भी प्यासे हैं, वे खिंचे चले आते हैं। कौन खींच रहा है? क्यों खींच रहा है? क्यों चल पड़े हैं, यह भी ठीक-ठीक पता नहीं होता।

"उदित तिहुं लोक रजपूत सोई।"

"गाय-बजाय के काल को काटना,
और की सुनै कछु आप कहना।
हंसना-खेलना बात मीठी कहै,
सकल संसार को बस्सि करना।।
खाइये-पीजिये मिलैं सो पहिरिए,
संग्रह और त्याग में नाहिं परना।
बोलु हरिभजन को मगन ह्वै प्रेम से
चुप्प जब रहौ, तब ध्यान धरना।।"

एक-एक शब्द बहुमूल्य है। हीरों में तौला जाए, ऐसा है।

"गाय-बजाय के काल को काटना।"

यह जो समय थोड़ा सा मिला है, इसे ऐसे उदास बैठे-बैठे मत बिताओ। गाय-बजाय के . . .। नाचो, गुनगुनाओ, मस्त होओ। इस जीवन को ऐसे रोते-रोते उदास लंबे चेहरों से मत बिताओ।

संतों का धर्म नृत्य करता हुआ धर्म है। तुम्हारे तथाकथित महात्माओं का धर्म उदास और रुग्ण और बीमार धर्म है।

"गाय-बजाय के काल को काटना।"

और की सुनै कछु, आप कहना।"

और विवाद में नहीं पड़ना। दूसरे की भी सुनना; कुछ कहने योग्य लगे तो कहना। संवाद करना, मगर विवाद में मत पड़ना। असल में जो आदमी जीवन को गा-बजा कर बिताना चाहता है, वह विवाद में पड़ेगा भी क्यों! शास्त्रार्थ का कोई सवाल नहीं है। जहां दो प्रेमी मिल बैठें, कुछ उनकी सुन लेना, कुछ अपनी कह देना, कुछ प्रभु-चर्चा कर लेना। लेकिन विवाद में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है।

"गाय-बजाय के काल को काटना,
और की सुनै कछु आप कहना।"

अगर तुम्हारे भीतर कुछ उमगे, कोई फूल खिले, तो बांट लेना सुगंध। और कोई दूसरा बांटने आए, उसके भीतर उठे हुए रस की थोड़ी धार तुम्हारे तरफ बह आए, तो स्वीकार कर लेना। संवाद करना।

भक्तों का आधारभूत नियम है : सत्संग। जहां दो भक्त मिल बैठें, चार दीवाने मिलें, वहां थोड़ी बात हो प्रभु की। और गाय-बजाय के हो। ऐसी कोरी-कोरी तार्किक न हो; सैद्धांतिक न हो, शास्त्रीय न हो। रसधार बहे। मस्ती की हो। नाचती, गीत गाती हुई हो। वसंत की धुन हो उसमें। पतझड़ की, विवाद की, तर्क की--दुर्गंध न हो।

"गाय-बजाय के काल को काटना

और की सुनै कछु आप कहना।
हंसना-खेलना बात मीठी कहै
सकल संसार को बस्सि करना।।"

और ऐसे अपने आप ही संसार वश में हो जाता है--"हंसना-खेलना बात मीठी कहै।" समझते हो हंसना-खेलना? धर्म को लोगों ने बड़ा गंभीर बना रखा है। वे समझते हैं धर्म बड़ी गंभीर बात है। धर्म को हंसना-खेलना बनाओ। नाच-गान बनाओ। उत्सव बनाओ। धर्म को रुग्ण मत बनाओ। धर्म का उदासी से कोई संबंध नहीं है। धर्म कोई अस्पताल नहीं है। हंसना-खेलना!

परमात्मा सब तरफ छाया है। भीतर भी वही है, बाहर भी वही है। जहां देखो, वही-वही है। सब तरफ उसका नूर है, उसकी रोशनी है। यहां कैसी उदासी है? यहां कैसे गंभीर बने बैठे हो? थिरकने दो पैरों को, पड़ने दो थाप तबलों पर! मृदंग बजने दो। नाचो, गाओ, गुनगुनाओ।

"खाइये-पीजिये, मिलैं सो पहरिए।"

यह सूत्र मैं अपने संन्यासियों को कहता हूं : खूब गांठ बांध लेना।

खाइये-पीजिये मिलै सो पहिरिए।

जो मिल जाए, पहन लेना। जो खाने को मिल जाए, खा लेना। जो पीने को मिल जाए, पी लेना। परम धन्यवाद से! आनंदभाव से! अहोभाव से!

"संग्रह और त्याग में नहीं परना।"

यह है क्रांति का सूत्र : "संग्रह और त्याग में नहीं परना।" तुम्हारे तथाकथित महात्मा कहते हैं : संग्रह तो छोड़ो, त्याग करो। असली ज्ञानी कहते हैं : न संग्रह में पड़ना और न त्याग में पड़ना। दोनों बातें मूढ़तापूर्ण हैं। कुछ रुपए इकट्ठे करने में पड़े हैं, कुछ रुपए छोड़ने में पड़े हैं; मगर दोनों की नजर रुपए पर लगी है। मिल जाए रुपया, उपयोग कर लेना, मजा कर लेना। हंस लेना, गा लेना। न मिले भजन गा कर सो जाना। लेकिन संग्रह में और त्याग में मत पड़ना। पकड़ और छोड़ क्या! दे प्रभु तो ठीक, न दे तो ठीक। न दे तो उसकी मर्जी, दे तो उसकी मर्जी।

यह भक्त की परम दशा है। परमात्मा जो देता है, वह स्वीकार करता है। वह कहता है : राजा बनाते हो, तो राजा बने जाते हैं। वह कहता है : भिखारी बनाते हो, तो भिखारी बने जाते हैं। न अपनी जिद्द है राजा बनने की, न अपनी जिद्द है भिखारी बनने की। अपनी कुछ बनने की जिद्द ही नहीं है। जो तुम्हारी मर्जी हो!

ऐसा ही समझो कि तुम एक नाटक में भाग लेने गए, अब तुम यह थोड़े ही कहते हो कि हम रामचंद्र जी ही बनेंगे। नाटक का मैनेजर कहता कि आप बड़े सुंदर लगते हो, रावण बिलकुल जंचोगे। यह आपकी देह, यह ढंग--यह बिलकुल रावण के मौजू पड़ेगा। तो आप यह थोड़े ही कहते हो कि मैं, और रावण बनूंगा! रावण किसी और को बनाना, मैं तो राम बनने की जिद्द किए हूं। मैं भला आदमी, झूठ नहीं बोलता, चोरी नहीं करता, मैं बेईमानी... मैं रावण बनूंगा! तुमने समझा क्या है? अदालत में ले जाऊंगा, मान-हानि का दावा करूंगा। तुमने यह बात ही क्यों कही है?

नहीं; तुम तैयार हो जाते हो। तुम रावण का पार्ट करने को भी तैयार हो जाते हो; बड़े मजे से पार्ट करते हो। क्यों? क्योंकि तुम जानते हो कि यह तो खेल है। इसमें क्या पकड़ना, क्या छोड़ना! इसमें गरीब बनना पड़े तो गरीब बन जाते हो, इसमें अमीर बनना पड़े तो अमीर बन जाते हो। न तो अमीर बनने से अमीर बनते हो, न गरीब बनने से गरीब बनते हो; क्योंकि यह तो खेल है।

"गाय-बजाय के काल को काटना,
और की सुनै कछु आप कहना।
हंसना-खेलना बात मीठी कहै
सकल संसार को बस्सि करना।।

खाइये-पीजिये मिलैं सो पहिरिए
संग्रह और त्याग में नहीं पड़ना।
बोलु हरिभजन को मगन ह्वै प्रेम से,
चुप्प जब रहौ, तब ध्यान धरना।।"

और दो बातें कहते हैं कि जब चुप रहने का मन हो तो ध्यान धर लेना और जब कुछ कहने का मन हो तो हरिभजन कर लेना। बोलना तो हरिभजन। कहना ही हो तो प्रभु की चर्चा करना। जब बोलो ही, शब्द का ही रस आता हो, तो शब्द को परमात्मा के चरणों में चढ़ा देना। भक्ति-भाव, भजन! और जब चुप रहने का मजा आता हो, तो फिर चुप्पी साध जाना, फिर चुप रह जाना, ध्यान धर लेना। ध्यान--जब अकेले रहो। और भक्ति--जब दो प्यारे मिल बैठें। ध्यान अपने लिए; प्रेम सारे जगत के लिए।

"सुंदरी पिया की पिया को खोजती
भई बेहोश तू पिया कै-कै।
बहुत-सी पदमिनी खोजती मरि गई
रटत ही पिया पिया एक एकै।।
सती सब होति हैं जरत बिनु आगि से
कठिन कठोर वह नाहिं झांकै।
दास पलटू कहै सीस उतारि कै,
सीस पर नाचुं जो पिया ताकै।।"

बड़ा प्यारा वचन!

"सुंदरी पिया की पिया को खोजती
भई बेहोश तू पिया कै कै।"

पिया कह-कह कर, पिया-पिया को पुकार-पुकार कर, जैसे पपीहा पुकारता रहता है पिया-पिया, ऐसे पिया-पिया को पुकार-पुकार कर भक्त डूब जाता है मस्ती में। इसी पुकार में एक तरह की मदिरा पैदा होती है।

यह प्रयोग करने जैसा है। कभी मस्ती से डूब कर पुकारो। और तुम थोड़ी देर में पाओगे : आंखों में नशा छाने लगा। तुमने पुकारा ही नहीं, इसलिए तुम्हें पता नहीं कि यह भी एक शराब ढाल लेने का ढंग है--और बड़ी प्यारी शराब! चढ़ जाए तो धन्यभागी! और चढ़े एक बार तो फिर उतरती नहीं। और जिसने पी ली, फिर दुनिया की और कोई चीज उसे जंचती नहीं। आखिरी चीज मिल गई, कोहिनूर मिल गया, अब कंकड़-पत्थर थोड़े ही जंचेंगे।

"सुंदरी पिया की पिया को खोजती,
भई बेहोश तू पिया कै कै।"

बार-बार दोहराते-दोहराते-दोहराते आदमी बेहोश हो गया। यह सीधी सी विधि है कि अगर तुम बैठो, डोलो और राम-राम या अल्लाह-अल्लाह तुम दोहराओ, तुम थोड़ी देर में समझोगे, थोड़ी देर में तुम्हें समझ में आने लगेगा : जैसे कोई भीतर शराब प्रविष्ट होने लगी! किसी अज्ञात लोक से कुछ मदमाती चीज उतरने लगी, कुछ मस्ती आने लगी। आंखें सुर्ख होने लगीं। हाथ-पैरों में एक नई ऊर्जा छाने लगी। घबड़ा मत जाना, क्योंकि लगेगा पहले तो ऐसा ही कि जैसे पागल होने लगे। अगर कहते ही चले गए, तो कहीं पैंतालीस मिनट के बाद तुम पाओगे कि मस्ती पूरी छा गई, अब तुम डूबे जा रहे हो। घबड़ाना मत। बहुत से बहुत बेहोश होकर गिरोगे, तो घड़ी दो घड़ी के बाद अपने-आप होश में आ जाओगे। और यह बेहोशी ऐसी नहीं है कि तुम कुछ खोते हो। यह बेहोशी ऐसी है कि तुम अपने अंतरतम में प्रविष्ट हो जाते हो।

"सुंदरी पिया की पिया को खोजती,
भई बेहोश तू पिया कै-कै।

बहुत सी पदमिनी खोजती मरि गई,

रटत ही पिया पिया एक एकै।।"

बहुत से प्यारे ऐसे ही रटते-रटते, रटते-रटते, खो ही नहीं गए, मर भी गए। लेकिन उसी मरने में तो परम जीवन की शुरुआत है। जहां भक्त मरता है, वहीं भगवान का जन्म है।

"सती सब होति हैं जरत बिनु आगि से।"

यह जो भक्तों का सती होना है, यह बड़ा अपूर्व है; इसमें बाहर से आग नहीं लगानी पड़ती, यहां भीतर से आग लग जाती है। यह जो जपन है, यह जो रटन है, यह जो पिया-पिया की पुकार है, यह जो अहर्निश भजन है. . .

"सती सब होति हैं जरत बिनु आगि से।"

ये जो भक्त हैं, ये सब मर जाते हैं, सती हो जाते हैं उसी प्यारे के लिए। उसी के साथ दग्ध हो जाते हैं, एक हो जाते हैं; लीन हो जाते हैं--जैसे पतंगा आकर दीये की ज्योति पर मर जाता है। लेकिन बाहर की आग की जरूरत नहीं है; यह भीतर की विरह की अग्नि पर्याप्त है।

"सती सब होति हैं, जरत बिनु आगि से,

कठिन कठोर वह नाहिं झांकै।"

यह भी सूत्र ख्याल में रखने का है। परमात्मा इस बात की चिंता नहीं करता कि तुमने कितनी कठोर तपश्चर्या की है, कि तुमने कितनी कठिन तपश्चर्या की है। वे तो सब अहंकार के ही ढंग हैं। कोई कहता है : मैंने इतने उपवास किए। कोई कहता है कि मैं इतनी रात जागा। कोई कहता है : यह किया, वह किया। ये सब . . . परमात्मा इनकी तरफ झांकता भी नहीं। क्योंकि वे तो अभी अहंकार की ही घोषणाएं कर रहे हैं कि मैंने इतना किया, इतना धन त्यागा। ये तो बता रहे हैं कि मैंने कितनी कठोरता बरती अपने साथ; मैंने कितनी ज्यादतियां कीं, कितना तप किया।

"सती सब होति हैं जरत बिनु आगि से,

कठिन कठोर वह नाहिं झांकै।"

परमात्मा इनकी तरफ देखता भी नहीं, जो यह कठिन कठोर की बकवास लगाए हुए हैं।

"दास पलटू कहै सीस उतारिकै,

सीस पर नाचु जो पिया ताकै।"

वह तो एक की ही तरफ देखता है, जो अपने प्रेम में इतना भर जाता है कि अपने अहंकार को काट देता है। यह तो कठिन-कठोर की बातें तो अहंकार की ही बाते हैं। मैंने कितना त्यागा, इसमें तो मैं यही बता रहा हूं कि मैं कितना बड़ा हूं। जो इस मैं को काट देता है, सीस को उतार कर रख देता है. . .। और रख ही नहीं देता सीस को उतार कर, क्योंकि तुम गंभीरता से भी रख सकते हो--तुम कहते हो कि चलो ठीक है, इससे ही होता हो तो उतार कर रख देते हैं। उदासी से भी नहीं।

"दास पलटू कहै सीस उतारिकै,

सीस पर नाचुं जो पिया ताकै।"

अपने ही सीस को नीचे उतार कर, अपने ही अहंकार को धूल में गिरा कर जो उस पर नाचता है--परमात्मा उसकी तरफ देखता है। और वह एक नजर काफी है। बस एक नजर काफी है। वह एक दृष्टि काफी है।

"पूरब ठाकुरद्वारा पच्छिम मक्का बना,

हिंदू और तुरक दुई ओर धाया।"

और हिंदू और मुसलमान भाग रहे हैं--कोई पूरब, कोई पश्चिम। अरे उस नजर की तरफ भागो, जो एक नजर काफी है। और उस नजर के लिए कहीं भागने की जरूरत नहीं, सिर्फ सीस को काट कर जमीन पर रख दो।

अहंकार को नीचे रख दो। धन का अहंकार न करो, न त्याग का अहंकार करो। और जिस क्षण तुम अहंकार को त्याग कर रख देते हो, प्रभु तुम्हारी तरफ ताकता है; प्रभु तुम्हें खोजना शुरू कर देता है।

"पूरब ठाकुरद्वारा पच्छिम मक्का बना,
हिंदू और तुरक दुई ओर धाया।
पूरब मूरति बनी पच्छिम में कबुर है,
हिंदू और तुरक सिर पटकि आया।।"

सिर पटकने से कब्रों पर या मूर्तियों पर कुछ भी न होगा। सिर उतारने से कुछ होगा। और उतारने का मतलब यह भौतिक सिर नहीं; वह भीतर जो अहंकार अकड़ कर खड़ा है--असली सिर!

"मूरति और कबुर ना बोलै ना खाय कछु,
हिंदू और तुरक तुम कहां पाया।"

तुम्हें मिला क्या? हो आए मक्का, हो आए मदीना। चले हज को, हाजी हो गए! कोई चले काशी--चले कोई सब धामों की यात्रा को! और परमधाम तुम्हारे भीतर है।

"मूरति और कबुर ना बोलै ना खाय कछु।"

जा-जाकर भोग लगा रहे हो मूर्तियों को। न वे खाती हैं। इससे तो किसी भूखे को दे दिया होता, तो भी परमात्मा तक पहुंच जाता। कब्र तो कुछ बोलती भी नहीं है। इससे तो किसी जीवंत से दो बातें कर ली होतीं प्रेम की, तो परमात्मा तक स्वर पहुंच जाता, खबर पहुंच जाती।

"मूरति और कबुर ना बोलै ना खाय कछु,
हिंदू और तुरक तुम कहां पाया।"

तुम्हें मिला क्या?

"दास पलटू कहै पाया तिन्ह आप में।"

जिन्होंने भी कभी पाया है, अपने भीतर पाया है। न काशी में, न कैलाश में, न काबा में। जिन्होंने कभी पाया है--पाया तिन्ह आप में--उन्हें अपने भीतर मिला है।

"मूए बैल ने कब घास खाया!"

पलटू कहते हैं : मरा हुआ बैल कहीं घास खा सकता है!

"मूए बैल ने कब घास खाया!"

तुम मूर्तियों को घास खिला रहे हो! तुम कब्रों को घास खिला रहे हो। मरा हुआ बैल भी घास नहीं खाता; तुम पत्थरों को खिला रहे हो। और जिंदा परमात्मा चारों तरफ मौजूद है। और जिंदा परमात्मा बह्ुत भूखा है। बह्ुत अर्थों में भूखा है। कहीं भोजन के लिए भूखा है, कहीं वस्त्रों के लिए भूखा है, कहीं प्रेम के लिए भूखा है। चारों तरफ परमात्मा भूखा है। जो तुम कर सको, वह इस परमात्मा के लिए करो।

और, असली बात और आखिरी बात तो तुम्हें भीतर करनी है, कि तुम अपनी गर्दन उतार दो। सीस को काट कर भूमि पर रख दो। और इतने से ही नहीं होगा; फिर उस पर नाचो भी।

"हंसना-खेलना गाय बजाय के काल को काटना।
सीस पर नाचुं जो पिया ताकै।"

तुम जरा नाचो तो अपने अहंकार को छोड़ कर! तत्क्षण प्यारे की आंख तुम्हारी तरफ पड़ने लगती है। प्यारे की आंख तो पड़ ही रही थी; मगर तुम अंधे थे अहंकार से, इसलिए दिखाई न पड़ती थी। प्यारा तो तुम्हें देख ही रहा था, हजार-हजार आंखों से तुम्हें खोज ही रहा था; मगर तुम अंधे थे, क्योंकि तुम्हारा अहंकार तुम्हारी आंखों को बंद किए हुए था। जरा अहंकार उतार कर नाचो।

मगर ख्याल रखना दो बातों का। एक तो अहंकार न बने--संग्रह का अहंकार, त्याग का अहंकार; संसार का अहंकार, संन्यास का अहंकार। अहंकार न बने--एक। दूसरा--सिर्फ अहंकार न बने, इतना आधा हुआ; अब नृत्य भी उठे, गान भी उठे, उत्सव भी उठे।

देखते नहीं परमात्मा चारों तरफ कितने उत्सव में है--चांद-तारों में, वृक्षों में, पक्षियों में! आदमी को छोड़ कर तुम्हें कहीं उदासी दिखाई पड़ती है? आदमी को छोड़ कर तुम्हें कहीं भी पाप दिखाई पड़ता है। आदमी को छोड़ कर कहीं तुम्हें चिंता दिखाई पड़ती है? सब तरफ उत्सव चल रहा है अहर्निश। सब तरफ नृत्य है, गान है। इस विराट आनंद के महोत्सव में तुम अलग-थलग खड़े, दूर-दूर अपने अहंकार में अकड़े और जकड़े हो।

उतारो इस अहंकार को, सम्मिलित हो जाओ इस नाच में! नाचो चांद-तारों के साथ! उसी नृत्य में तुम पाओगे कि परमात्मा की आंख तुम पर पड़ने लगी।

प्रभु से मिलने का निकटतम मार्ग है : नृत्य। निकटतम मार्ग है : आनंद।

लोग सोचते हैंः प्रभु को मिलने से आनंद मिलेगा, ठीक सोचते हैं। मगर दूसरी बात भी इतना ही सच है : आनंद से प्रभु मिलता है। ये दोनों बातें जुड़ी हैं। आनंद से प्रभु मिलता है; प्रभु से और आनंद मिलता है। और जब और आनंद मिलता है तो और प्रभु मिलता है। और, और प्रभु मिलता है तो और आनंद मिलता है। ये दोनों एक-दूसरे से जुड़े हैं।

जब तुम उसे पुकारो तो उदास, दुखी और चिंतित और परेशान मत पुकारना। नहीं तो तुमने हजार तो बाधाएं खड़ी कर दीं; वह सुन कैसे पाएगा? उसे आती है भाषा उत्सव की; उदासी की नहीं। पलटू उत्सव के पक्षपाती हैं। जिन्होंने जाना है, वे सभी उत्सव के पक्षपाती हैं। परमात्मा परम भोग है।

इन वचनों को फिर से दोहरा दूं।

"राज तन में करै, भक्ति जागीर लै,
ज्ञान से लड़ै, रजपूत सोई।
छमा-तलवार से जगत को बस्सि करै,
प्रेम की जुज्झ मैदान होई।।
लोभ और मोह हंकार दल मारिकै,
काम और क्रोध ना बचै कोई।
दास पलटू कहै तिलकधारी सोई,
उदित तिहुं लोक रजपूत सोई।।

गाय-बजाय के काल को काटना,
और की सुनै कछु आप कहना।
हंसना-खेलना बात मीठी कहै,
सकल संसार को बस्सि करना।।
खाइये-पीजिये मिलैं सौ पहिरिए,
संग्रह और त्याग में नाहिं परना।
बोलु हरिभजन को मगन ह्वै प्रेम से,
चुप्प जब रहौ, तब ध्यान धरना।।

सुंदरी पिया की पिया को खोजती,
भई बेहोश तू पिया कै-कै।

बहुत सी पदमिनी खोजती मरि गई,
रटत ही पिया पिया एक एकै।
सती सब होती हैं जरत बिनु आगि से,
कठिन कठोर वह नाहिं झांकै।
दास पलटू कहै सीस उतारिकै,
सीस पर नाचुं जो पिया ताकै।।

पूरब ठाकुरद्वारा पच्छिम मक्का बना,
हिंदू और तुरक दुइ ओर धाया।
पूरब मूरति बनी पच्छिम में कबुर है,
हिंदू और तुरक सिर पटकि आया।।
मूरति और कबुर ना बोलै ना खाय कछु,
हिंदू और तुरक तुम कहां पाया।
दास पलटू कहै पाया तिन्ह आप में,
मूए बैल ने कब घास खाया।।"

बुलाओ प्रभु को। आनंद के आंसुओं से बुलाओ। पैरों में घूंघर बांधो। नृत्य, गीत-गान से बुलाओ। हृदय की वीणा को बजाओ। गीत को फूटने दो। उत्सव की बांसुरी बजाओ, रास रचाओ।

प्रभु आता है--निश्चित आता है। जो भी निर-अहंकार दशा में, आनंद के उद्घोष से बुलाते हैं, उनके पास निश्चित आता है। आने को तड़फता है। तुम बुलाते नहीं। कभी बुलाते हो तो गलत ढंग से बुलाते हो। प्रभु तुमसे मिलने को आतुर है। तुम जितने आतुर हो, उससे ज्यादा आतुर है। जिस दिन तुम प्रभु को पाओगे, उस दिन तुम्हें यह बात समझ में आएगी कि उसका हाथ तुम्हारे पास ही था; कितने दिनों से तुम्हारी प्रतीक्षा करता था कि तुम भी हाथ बढ़ाओ तो मिलन हो जाए। वह जरा भी दूर नहीं; तुम्हारे पास ही पास डोलता है, कि तुम पुकारो और कहीं ऐसा न हो कि वह दूर हो और तुम पुकारो और पुकार खाली चली जाए! हर घड़ी तुम्हें चारों तरफ से घेरे हुए है। और अनंत उसकी प्रतीक्षा है।

या तो तुम पुकारते ही नहीं; क्योंकि जो धन को पुकार रहा है वह प्रभु को कैसे पुकारे! जो पद को पुकार रहा है, वह प्रभु को कैसे पुकारे, जो अभी संसार को पुकार रहा है, वह अभी निर्वाण को कैसे पुकारे! या तो तुम पुकारते नहीं; तुम्हारी पुकार कहीं और संलग्न है तुम पातियां अभी संसार को भेज रहे हो; परमात्मा को कैसे भेजो! या फिर अगर कभी तुम पुकारते भी हो तो गलत ढंग से पुकारते हो--त्यागी बन कर पुकारते हो; उदासी बन कर पुकारते हो। फिर भी अहंकार का दंभ लेकर पुकारते हो। तुम ऐसे पुकारते हो, जैसे कोई दावेदार पुकारता है--कि देखो, मैंने इतना किया, अब आओ! अब आना ही पड़ेगा! तुम ऐसे पुकारते हो जैसे कोई अदालत में जाकर पुकारता है। तब भी तुम चूक जाते हो।

उसे पुकारना हो, तो पुकारना तो जरूरी है, लेकिन ठीक ढंग से पुकारना जरूरी है। और वह ठीक ढंग है : नाचो, गाओ! उसे आनंद से बुलाओ। दावेदार मत बनो। दावा कैसा! प्रेम कभी दावेदार बनता है? प्रेम तो कहता है : जब भी आओगे, तभी मेरा सौभाग्य। जब भी आए, तभी जल्दी है। और मैं प्रतीक्षा को तैयार हूं। और प्रतीक्षा में भी उदास न होऊंगा, हारूंगा नहीं, थकूंगा नहीं। नाचूंगा, गाऊंगा। इंतजार को भी आनंद ही बनाऊंगा!

आज इतना ही।

अठारहवां प्रवचन

प्रेम एक झोंका है अज्ञात का

पहला प्रश्नः उस परम तत्व से प्रेम या भक्ति कैसे की जाए जिसे हम जानते ही नहीं? क्या अज्ञात से भी प्रेम संभव है?

अज्ञात से ही प्रेम संभव है। ज्ञात से तो प्रेम धीरे-धीरे शून्य हो जाता है। जिसे हमने जान लिया उसमें हमारा रस ही समाप्त हो जाता है। इधर जाना उधर रस समाप्त हुआ। अनजान में ही रस होता है। अपरिचित में ही आकर्षण होता है।

जब दो प्रेमी एक-दूसरे को पूरा-पूरा जान लेते हैं, तभी प्रेम समाप्त हो जाता है। परिचित हुए, फिर कुछ शेष नहीं बचता अभियान को; खोजने को कुछ नहीं बचता।

अज्ञात से ही प्रेम संभव है।

इसलिए इस जगत में सारे प्रेम एक न एक दिन समाप्त हो जाएंगे, सिर्फ परमात्मा का प्रेम कभी समाप्त नहीं होता। क्योंकि ऐसी कोई घड़ी नहीं आती जब तुम कह सको कि परमात्मा को पूरा-पूरा जान लिया। कितना ही जानो, उतना ही जानने को शेष रहता है। जितना ही जानो उतना ही जानने को और द्वार खुलते चले जाते हैं। एक शिखर पर चढ़ते हो, तब ऐसा लगता है कि बस आ गई आखिरी मंजिल। चढ़ भी नहीं पाते कि दूसरा शिखर सामने चुनौती देने लगता है। अंतहीन सिलसिला है।

इसलिए हमने परमात्मा को अनंत कहा है। न उसका कोई प्रारंभ है, न उसका कोई अंत है। वह यात्रा अंवेषण की कभी पूरी नहीं होती। इसलिए प्रेम परमात्मा के साथ शाश्वत हो जाता है। प्रेम के मिटने का उपाय ही नहीं।

इसे जीवन में समझने की कोशिश करना। और अगर जीवन के इस साधारण तल पर भी प्रेम को बनाए रखना हो तो एक-दूसरे को जानने की भ्रांति में मत पड़ना, अन्यथा प्रेम मर जाएगा। और सच्चाई यही है कि जान तो कहां पाते हो तुम! तीस साल एक स्त्री के साथ रहे, कि पुरुष के साथ रहे, तुम सोचते हो कि जान लिया, जान कहां पाते हो? तीस साल जिस पत्नी के साथ रहे हो, उसे भी सच में जानते हो? मान लिया है कि जानते हो। आंखें धुंधली हो गई हैं। जाना क्या है? जिस बच्चे को तुमने जन्म दिया है, जो तुम्हारे खून से बड़ा हुआ है, उसे भी जानते हो? मान लिया है कि अपना बेटा है तो जानते हैं। पर जानते क्या हो?

इस जगत का रहस्य कहीं भी तो समाप्त नहीं होता। फिर से अपनी पत्नी की आंखों में झांक कर देखना, जिसके साथ तीस साल रहे हो। हालांकि धीरे-धीरे तुमने आंखों में झांकना बंद ही कर दिया है। धीरे-धीरे तुम पत्नी की तरफ देखते ही नहीं।

सब धुंधला-धुंधला हो गया है। तुम सोचते होः जब जानते ही हैं तो देखना क्या है? देखते तो हम अनजान को हैं, अपरिचित को हैं। राह से कोई स्त्री गुजर जाती है, उसे देखते हैं। कुछ नया हो तो देखते हैं। पुराने को तो हम धीरे-धीरे देखना ही बंद कर देते हैं।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर तुम अपनी आंख बंद करके अपनी पत्नी की मुखाकृति याद करना चाहो तो बड़े हैरान हो जाओगे। तीस साल जिसके साथ रहे, आंख बंद करके जब उसका चेहरा सोचोगे तो चेहरा बनेगा नहीं, बिखर-बिखर जाएगा, धुंधला-धुंधला हो जाएगा। जिसे तुम मानने लगे हो कि जानते हो, कब से उसका चेहरा नहीं देखा है! कब से उसकी आवाज नहीं सुनी है! कब से उसका हाथ हाथ में नहीं लिया है! हाथ लिया भी होगा, मगर संवेदना कभी की मर चुकी है। स्पर्श किया भी होगा, मगर स्पर्श जब तक बोधपूर्वक न हो तब तक कहां!

आज घर लौट कर अजनबी की तरह अपनी पत्नी को देखना, तुम चकित होओगे; या अपने पति को देखना; या अपने बेटे को; या अपने मित्र को--और तुम चकित होओगे कि मान्यता ही थी कि हम जानते हैं। और जीवन रोज-रोज यह घटना घटाता है। रोज-रोज पत्नी ऐसा व्यवहार कर देती है कि तुम्हें परेशानी होती है। तुम सोच ही नहीं सकते थे। पति ऐसा व्यवहार कर देता है कि पत्नी सोच ही नहीं सकती थी कि कभी ऐसा करेगा।

एक आदमी को तुम भला मानते थे, एक दिन धोखा दे जाता है। तुम कहते होः यह आदमी धोखा दे गया। लेकिन सच्चाई कुल इतनी ही है कि तुमने यह मान लिया था कि यह कभी धोखा न देगा। यह तुम्हारी जानकारी थी, सिर्फ तुम्हारी जानकारी टूट गई, और कुछ नहीं हुआ है। यह आदमी तो जैसा है वैसा ही है।

एक बुरा आदमी भला हो जाता है। एक भला आदमी बुरा हो जाता है। क्षण में हो जाती है यह बात।

कोई भी आदमी की भविष्यवाणी नहीं हो सकती। हम इतना तो कभी भी किसी को नहीं जान पाते हैं कि कह सकें कि कल यह कैसा व्यवहार करेगा। हमारी जानकारियां मान्यता भर हैं। पर इन्हीं मान्यताओं के कारण हमारा जीवन धुंधला हो जाता है और जीवन से प्रेम खो जाता है।

परमात्मा को भी लोग सोचने लगते हैं कि हम जानते हैं, तो बस उनकी प्रार्थना भी मर गई। जहां जाना कि जाना, वहां परमात्मा भी मर गया, प्रार्थना भी मर गई, तुम भी मर गए। वहां सिर्फ मृत्यु का ही वास है। जहां तथाकथित ज्ञान की सघनता है वहां मृत्यु का आवास है। और जहां तुम निर्दोष बच्चे की भांति हो जिसे कुछ भी पता नहीं, वहां रहस्य है। इसलिए तो छोटे बच्चे तुम्हें इतने आह्लादित मालूम पड़ते हैं। तुम भी उनका हाथ पकड़ कर चल रहे हो, उसी बगीचे में जिसमें वे हैं, लेकिन वे इतने आह्लादित हैं! हर उड़ती तितली उनकी आंखों को पकड़ लेती है। हर फूल उन्हें ठिठका लेता है। वे खड़े हो गए हैं; तुम उन्हें खींच रहे हो कि चलो, अब क्या देखना है, ये देखे हुए फूल हैं। हर पक्षी की आवाज उन्हें रोक लेती है। यह भागा खरगोश और उनके प्राण उनके साथ हो लिए!

लेकिन तुम! तुम उसी बगीचे से गुजर रहे हो; न पक्षी तुम्हें छूते हैं; न वृक्षों की हरियाली तुम्हें छूती है; न फूलों के रंग तुम्हें पुकारते हैं; न आकाश में खिला इंद्रधनुष तुम्हें दिखाई पड़ता है। तुम्हें कुछ नहीं दिखाई पड़ता। तुम्हें तो यह ख्याल है इस बगीचे में तो बहुत बार हो गए। बस इसी कारण सब अड़चन हुई जा रही है।

उपनिषद कहते हैंः जिसे यह ख्याल है कि मैं परमात्मा को जानता हूं, जानना कि नहीं जानता। यह तो सबसे बड़े अज्ञान की घोषणा हो जाएगी। परमात्मा को जानने वाला तो सिर्फ रहस्य-विमुग्ध रह जाता है; मौन हो जाता है। और जिस दिन तुम परमात्मा के साथ थोड़ा सा भी संबंध जोड़ लेते हो, उस दिन परमात्मा तो ज्ञात होता ही नहीं, यह संसार भी अज्ञात हो जाता है। जिसने परमात्मा के साथ थोड़ा संबंध जोड़ लिया, उस दिन उसकी पत्नी भी अज्ञात हो गई, पति भी अज्ञात हो गया, अपना बेटा भी अज्ञात हो गया, क्योंकि इस बेटे की आंखों में भी परमात्मा ही झांकेगा। इस मित्र के हाथ में भी परमात्मा का ही स्पर्श होगा। यह पत्नी भी कोई और नहीं, उसका ही एक रूप है। यह वृक्षों में भी वही हरा है। इन पक्षियों में भी वही गीत गा रहा है। इस सूरज में वही प्रकाश है। इस अंधेरी रात में वही अंधेरी रात है।

परमात्मा को जानने से परमात्मा ही अज्ञात नहीं होता; सारा जगत पुनः अज्ञात हो जाता है। इसको दूसरी भाषा में अगर कहें तो फिर से जगत रहस्यपूर्ण हो जाता है; फिर से आश्चर्य का जन्म होता है; फिर से तुम्हें बच्चे की आंख मिलती है; पुनर्जन्म हुआ; द्विज बने। यह नया जन्म ही संन्यास है।

तुम पूछते होः "उस परम तत्त्व से प्रेम या भक्ति कैसे की जाए जिसे हम जानते ही नहीं?"

तुम्हारे प्रश्न को मैं समझा, सार्थक है। स्वभावतः यह सवाल उठता है कि जिसे हम जानते ही नहीं उसे कैसे प्रेम करें! पहले जानेंगे, तभी तो प्रेम उपजेगा! तुम्हारा ख्याल है कि प्रेम प्रेम की वस्तु के कारण उपजता है, तो भूल में पड़ गए।

क्या तुम सोचते हो प्यास इसलिए पैदा होती है कि पानी सामने है? प्यास पहले है, पानी की तलाश पीछे है।

क्या तुम सोचते हो जब बच्चा पैदा होता है तो उसे पता है कि दूध क्या है? --इसलिए चिल्लाता है कि मुझे दूध चाहिए? -- इसलिए रोता है, चीखता- पुकारता है कि मुझे दूध चाहिए? दूध का तो उसे कुछ भी पता नहीं; न पहले कभी चखा न कभी सुना। फिर किसलिए पुकार मचा रहा है? फिर किसलिए गुहार मचा रहा है? फिर किसलिए शोरगुल कर रहा है? भूख है। भूख का पता है।

भेद समझ लेना। दूध का पता हो और तब भूख लगे तो झूठी भूख। ऐसी तुम्हें अक्सर लगती है। होटल के पास से निकले, गंध तैरती पास से गुजर गई, नासापुट गंध से भर गए और भूख लग आई। पकौड़े पकते थे और भूख लग आई। यह झूठी है। अभी क्षणभर पहले नहीं थी। अभी पकौड़ों के पकने की गंध नासापुटों में भर गई और भूख लग आई। यह भूख मानसिक है। यह थोथी है। इस भूख से सावधान। यह कृत्रिम है। और अगर इस भूख की मान कर चलोगे तो जल्दी ही रुग्ण बनोगे। यह तुम्हारे शरीर की मांग ही नहीं है। यह तुम्हारी जरूरत नहीं है। जरूरत होती तो पकौड़े की गंध की जरूरत नहीं थी। जरूरत होती तो भूख उठती। फिर तुम पकौड़े की तलाश में निकलते, वह दूसरी बात थी।

छोटा बच्चा पैदा हुआ, अभी तो इसने कभी स्वाद नहीं लिया, कभी देखा नहीं दूध, कभी मां के स्तन जाने नहीं। अभी नौ महीने तो मां के पेट में सब मिलता था चुपचाप; पता ही नहीं चलता था कैसे, कहां से! जीवन-रस इसमें चुपचाप बहता था। इसे ओंठ भी नहीं चलाने पड़ते थे। जीवन-ऊर्जा इसे मिलती थी मुफ्त। इसने कभी दूध पिया भी नहीं है। बड़ा चमत्कार है।

मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक, सभी के सामने यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि बच्चा जब पहली दफा रोता है तो किसलिए? दूध के लिए? स्तन के लिए? यह तो संभव नहीं है। फिर किसलिए? भूख है। भूख का उसे पता है। भीतर भूख कुलबुला रही है। पुकारता है, रोता है, चिल्लाता है। किसके लिए रोता है, पुकारता है, यह भी अभी पता नहीं है। यह भी कैसे पता हो सकता है! सिर्फ रोता है।

इसलिए परम भक्त तो वही है जो सिर्फ रोता है; जो यह भी नहीं कह सकता कि मैं राम को बुला रहा हूं, कि कृष्ण को बुला रहा हूं--जो सिर्फ कहता है कि मैं किसको बुला रहा हूं, यह भी मुझे पता नहीं है; लेकिन एक बुलाहट मेरे भीतर रोएं-रोएं में है; एक पुकार उठी है; एक प्यास उठी है; एक भूख जगी है। नाम कुछ भी रख लेता है। बिना नाम के भी भक्त बुलाता है। आकाश में देखता है और खोजता है। चांद-तारों में खोजता है। लोगों की आंखों में खोजता है। अपने चारों तरफ देखता है। बाहर-भीतर खोजता है। उसे एक बात का पता है कि भीतर कोई चीज उठी है बड़े जोर से; एक अंधड उठा है; एक तूफान आया है; एक भूख जगी है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि बच्चे को जैसे ही स्तन मिलता है, वह तत्काल स्तन से दूध पीना शुरू कर देता है। इसने पहले कभी अभ्यास भी नहीं किया, कोई रिहर्सल भी नहीं किया है। इसको कोई मौका ही नहीं मिला रिहर्सल का। यह कैसे एकदम से दूध पीने लगता है?

भूख पर्याप्त है। अभ्यास की जरूरत नहीं है। वह भूख ही दूध को खींचने लगती है। दूध पीछे आता है, भूख पहले। पानी पीछे आता है, प्यास पहले। प्रेम पहले आता है, परमात्मा बाद में।

तुम पूछते हो कि "अज्ञात परमात्मा को हम कैसे प्रेम करें?"

प्रेम तुम्हारे भीतर है ही। तुम इसे वस्तुगत मत बनाओ--आत्मगत है। प्रेम तुम्हारे भीतर है ही। असल में तुमने जब भी प्रेम किया है तो तुमने परमात्मा की ही तलाश की है। इसे मैं दोहरा दूं। तुमने जब भी किसी को प्रेम किया है तो तुमने परमात्मा की ही तलाश की है--अनजाने। बच्चा अक्सर करता है कि उसके हाथ में कुछ भी दो, जल्दी से मुंह में ले लेता है। क्यों? उसे तो भूख लगी है। वह स्तन की तलाश कर रहा है। हाथ में घुनघुना दिया, घुनघुने को मुंह में ले लता है। कुछ न मिले, अपने अंगूठे को मुंह में ले लेता है; अपने पैर के अंगूठे को मुंह में ले लेता है। जो मिलता है उसी को मुंह में ले लेता है। उसे तो भूख लगी है। सोचता है शायद यही स्तन है। स्तन का तो उसे कुछ पता नहीं।

ऐसी हमारी दशा है। तुम्हें जो दिखाई पड़ जाता है उसी के तुम प्रेम में पड़ जाते हो। मगर यह प्रेम है परमात्मा की ही तलाश। और इसलिए इस जगत का कोई भी प्रेम तृप्त नहीं कर पाता। बच्चे ने घुनघुना मुंह में ले लिया, मगर इससे कुछ भूख तो मिटेगी नहीं। घुनघुने को चूसता रहे, घुनघुने को पीता रहे, इससे तृप्ति तो होगी नहीं; जल्दी ही देर-अबेर घुनघुने को फेंक देगा। फिर तलाश शुरू हो जाएगी।

ऐसे ही हमारे इस जगत के प्रेम हैं--घुनघुने हैं। उनमें हम खोजते परमात्मा को हैं; हम फिर परमात्मा को नहीं पाते, इसलिए ऊब पैदा हो जाती है, विषाद पैदा होता है। फिर हम एक घुनघुना छोड़ते हैं, फिर दूसरा घुनघुना पकड़ लेते हैं। धन खोजा, धन में कुछ रस न पाया। पद खोजा, पद में कुछ रस न पाया। पत्नी खोजी, पति खोजे, मित्र खोजे--कुछ रस न पाया। ऐसी ही दौड़ चलती रहती है, चलती ही रहती है। क्यों रस नहीं मिलता? रस इसीलिए नहीं मिलता कि जब तक वास्तविक स्तन न मिल जाए, रस मिले कैसे? घुनघुने ने कहा कब था कि मैं तुम्हें रस दूंगा? तुमने मान लिया था।

और अज्ञात है परमात्मा, इसीलिए यह भ्रांति भी होती है। मनुष्य कुछ भी खोजता हो, परमात्मा को ही खोजता है। नरक में खोजता हो तो भी परमात्मा को ही खोजता है। शराब में खोजता हो तो भी परमात्मा को ही खोजता है। पद में खोजता हो तो भी परमात्मा को ही खोजता है। धन में खोजता हो तो भी परमात्मा को ही खोजता है। समझने की कोशिश करना।

तुम्हारी धन की इतनी आकांक्षा क्यों है? कभी तुमने इस पर विचार किया? तुम्हारे महात्मा भी इसके खिलाफ तो बोलते हैं, लेकिन इस पर कभी विचार करने का मौका नहीं देते। इस पर तुमने कभी ध्यान किया कि आदमी धन की तलाश में क्या खोजता है? आदमी धन की तलाश में यही खोज रहा है कि ऐसी स्थिति आ जाए कि मेरी सब जरूरतें पूरी हो जाएं, कि मुझे कुछ चाहिए हो तो मेरे पास धन हो; ऐसा न हो कि चाहत तो हो और धन न हो, तो तड़प हो। धन के द्वारा आदमी एक ऐसी दशा पाना चाहता है जहां कोई भी आकांक्षा अतृप्त न रह जाए। और क्या खोज है? इतना धन हो कि मेरी आकांक्षाओं से ज्यादा हो, यही तो धन की खोज है। अगर तुम इसका सार-अर्थ समझो तो इसका मतलब हुआ कि धन के द्वारा भी आदमी वासनारहित चित्त की दशा खोजता है। एक ऐसी दशा आ जाए जहां कोई आकांक्षा नहीं बची। क्योंकि आकांक्षा यानी भिखमंगापन--मांगो, गिड़गिड़ाओ, तड़पो!

तुम जो धन के पीछे इतने पड़े हो तो तुम कोई रुपए-सिक्के के पीछे थोड़े ही दीवाने हो। कौन पागल रुपए के पीछे दीवाना है! रुपए में एक आशा है, एक भरोसा है कि अगर रुपया पास होगा तो तुम्हें भिखमंगा नहीं होना पड़ेगा; जब जरूरत पड़ेगी, तुम्हारे पास संपत्ति होगी, सुविधा होगी, तुम अपनी जरूरत पूरी कर लोगे; जरूरत से तड़पोगे नहीं।

वासना से ज्यादा धन हो जाए, यह हमारी दौड़ है। यह कभी हो नहीं पाता, यह दूसरी बात है; इसलिए हम तकलीफ में पड़ते हैं। मगर हमारी आकांक्षा तो यही है।

तुम पद पर पहुंचना चाहते हो--क्यों? ताकि तुम किसी से नीचे न रह जाओ, इससे ग्लानि होती है; तुम किसी से पीछे न रह जाओ। पीछे रहने में मन को कष्ट होता है। ऐसी जगह पहुंच जाओ जिसके ऊपर और कोई जगह नहीं हैः चलो राष्ट्रपति हो जाओ कि प्रधानमंत्री हो जाओ। ऐसी जगह पहुंच जाओ जिसके ऊपर और कोई जगह नहीं; वहां निश्चित होकर फिर बैठोगे। अब कहीं जाने को नहीं रहा।

पद की तलाश भी इसीलिए है कि एक ऐसी जगह आ जाए जहां विश्राम कर सको; जहां से फिर और जाने की, और धक्के खाने की जरूरत न रहे; आखिरी पड़ाव आ गया, मंजिल आ गई। मगर यह आती नहीं मंजिल। दिल्ली पहुंच जाते हो, मगर मंजिल नहीं आती। मगर तलाश परमात्मा की हो रही है।

परमात्मा को भक्तों ने परमपद कहा है। और परमात्मा को भक्तों ने परमधन कहा है। क्यों? क्योंकि परमात्मा के मिलते ही सब वासनाएं शून्य हो जाती हैं। परमात्मा के मिलते ही सब दौड़ शांत हो गई। अब कहीं

और नहीं जाना है; विश्राम आ गया, अपना घर आ गया; मंजिल आ गई। अब इसमें ही डुबकी लगानी है; गोते खाने हैं; इस रस में ही डूबना-उबरना है, डूबना है। अब मौज के क्षण आ गए। अब लीला होगी। अब कोई तनाव, कोई चिंता न रही।

मनुष्य के मन का ठीक-ठीक विश्लेषण करो तो तुम्हें पता चलेगाः मनुष्य कुछ भी खोजता हो, परमात्मा को ही खोजता है। और चूंकि कहीं भी नहीं पाता, इसलिए सब जगह से विषादग्रस्त होकर, संतापग्रस्त होकर लौट आता है।

पत्नी में तुमने खोजना चाहा था एक ऐसा सौंदर्य जो कभी कलुषित न हो। तुम्हारी आकांक्षा परमात्मा की है; वही एक सौंदर्य है जो कभी कलुषित नहीं होता। तुमने पत्नी में एक ऐसा यौवन खोजना चाहा था जो कभी मुरझाएगा नहीं। लेकिन वह तो सिर्फ परमात्मा का ही है जो कभी नहीं मुरझाता। इस जगत में तो सब मुरझा जाएगा। जो जवान है, बूढ़ा होगा। जो सुंदर है, कुरूप हो जाएगा। जो आज ताजा है, कल बासा हो जाएगा। यहां तो सब सुगंधें दुर्गंधें बन जाती हैं। और यहां सब सौंदर्य ढल जाता है। यहां फूल खिलते हैं--कुम्हलाने को। तुमने एक ऐसा फूल चाहा था जो कभी न कुम्हलाए। फिर तुमने जिस फूल को चाहा, वह कुम्हलाया। फिर पीड़ा लगी, फिर चोट लगी। ऐसी ही चोटों का नाम संसार है। ऐसे ही घाव बढ़ते चले जाते हैं।

मूढ़ आदमी वही है जो फिर-फिर उन्हीं घुनघुनों को पकड़ लेता है; फिर-फिर उन्हीं खिलौनों को चूसने लगता है। समझदार वह है जो देख लेता है कि घुनघुनों से दूध नहीं बहता है।

धन से कोई भी कभी आकांक्षा से मुक्त नहीं होगा और पद से कोई कभी परमपद पर नहीं पहुंचता है। जिसको यह बात दिखाई पड़ गई, उसकी भूख खालिस रह गई; इस संसार में कोई उसकी भूख नहीं भरता। उस खालिस भूख से प्रार्थना उठती है; परमात्मा को जानने से नहीं उठती। खालिस भूख, भूख और भूख और भूख! और इस जगत में कोई चीज तृप्त करने वाली नहीं। सब देख लिया, सब परख लिया, कोई चीज तृप्त करती नहीं। फिर क्या करोगे? भूख तो है, प्यास तो है। प्रेम तो अग्नि की लपटों की तरह उठ रहा है। और अब इन लपटों को उलझाने वाले पात्र भी न रहे--न पत्नी उलझाती न पति उलझाता, न धन न पद, कोई नहीं उलझाता। सब हैं अपनी जगह, लेकिन अब तुम्हारी इस अतृप्ति के लिए तृप्त करने वाली कोई चीज नहीं है यहां। उन्हीं क्षणों में आंखें आकाश की तरफ उठती हैं, अज्ञात की तरफ उठती हैं। ज्ञात को तो छान लिया, अब अज्ञात को खोजें। जो दिखाई पड़ता है, उसको तो खूब परख लिया; अब जो नहीं दिखाई पड़ता, उसकी यात्रा में चलें। बाहर जो था उसको तो खूब तलाशा और हर बार और भी ज्यादा विषादग्रस्त होकर अपने में गिर गए; अब भीतर खोजें; अब अंतर्यात्रा पर निकलें।

"उस परम तत्व से प्रेम या भक्ति कैसे की जाए जिसे हम जानते ही नहीं?"

जिसे तुम जानते हो, जिस दिन इससे तुम्हारा प्रेम असफल हो जाएगा--उस दिन। जिस दिन तुम जान लोगे कि यहां प्रेम के तृप्त होने का उपाय ही नहीं है, उस दिन यात्रा शुरू होगी। असली बात तुम्हारे भीतर की प्यास है। अपनी प्यास पहचानो, परमात्मा की फिकर छोड़ो।

इसलिए तो कुछ ऐसे ज्ञानी हुए जैसे बुद्ध-महावीर, जिन्होंने परमात्मा की बात ही नहीं की। उन्होंने कहा, परमात्मा को क्यों बीच में लाएं? अपनी प्यास है; अपनी प्यास को ही समझने की कोशिश करें; और अपनी प्यास में ही उतरें। वे अपनी प्यास में ही उतर गए और उन्होंने परम अवस्था पा ली। परमात्मा मिल गया--परमात्मा की बात किए बिना मिल गया। और जिन्होंने भगवान को नहीं माना, उनको हमने भगवान कहा। बुद्ध को हमने भगवान कहा। महावीर को हमने भगवान कहा। माना नहीं उन्होंने भगवान को। वे बड़े तर्कनिष्ठ लोग थे। उन्होंने कहा, भगवान को तो हम जानते नहीं, उसकी क्या बात करें? हमारे भीतर एक प्यास है, उसका ही हम विश्लेषण करेंगे। अपनी ही प्यास की हम खोज करेंगे। अपनी ही प्यास में गहरे जाएंगे। सीढ़ियां दर सीढ़ियां नीचे उतरेंगे। अपनी ही प्यास के कुएं में झांकेंगे। अंततः कहीं न कहीं जल की कोई रेखा होगी।

जिन्होंने ऐसी यात्रा की, वे ध्यानीः उन्होंने ध्यान के माध्यम से परम अवस्था पा ली। वे स्वयं परमात्मा हो गए! जरूरी नहीं कि सभी ऐसी यात्रा करें। जो सरल हृदय हैं, जिनका चित्त अभी बहुत विश्लेषण के रोग से ग्रसित नहीं हुआ है, जिनके पास थोड़ी सी भाव की संपदा शेष है, वे आंख उठा कर आकाश के अज्ञात में देखना शुरू कर दें। रोएं। गीत गा सकें गीत गाएं। कुछ न बन सके तो रोना तो बन सकता है। रोने के लिए तो कोई कुशलता और कला नहीं चाहिए। उसी रोने में प्रार्थना का जन्म हो जाएगा।

घड़ी भर रोज रो लो। पर्याप्त है। नहा जाओगे उन आंसुओं में; हलके हो जाओगे। और तुम पाओगे कि धीरे-धीरे जिसकी खोज है वह करीब आने लगा।

कौन वह पुकार गई!
अंधियारे आंगन में दिवरा सा बार गई
सूखे दो तिनकों में गुम-सुम-सा बैठा है
पांखों में ढांपे मुख जीवन से रूठा है
नीड़-विटप ठूंठा है
ऐसे मन-सुगना को चुगना-सा डार गई
कौन वह पुकार गई!
पेड़ों की फुनगी पर सिहरन अंधियारे की
टहनी पर सुगबुग है पंछी बनजारे की,
पंथी मनहारे की
सबकी मनचीती भिनसार को गुहार गई
कौन वह पुकार गई!
आंखों की शाखों पर आंसू का झूला है
ओठों के ढोले पर प्राण बहुत झूला है,
पैगों में भूला है
सांसों की छिटकी लट प्यास से संवार गई
कौन वह पुकार गई!
बेला के गजरेले सागर भी दौड़ा था
तट की चट्टानों ने फूल-फूल तोड़ा था
गति ने मुख मोड़ा था
रेत की गलबांही दे चुप-चुप दुलार गई
कौन वह पुकार गई!
रह-रह कर गिरते हैं जाले उदासी के
दुख से धुंधवाए-से भाप की उसांसी-से
मैले-से, बासी-से
अंतस के मटियाले बासन खंगार गई
कौन वह पुकार गई!
सपनों के मड़वे पर, भावों के चौरे पर
आशा के बिरवे पर, प्यार के टकोरे पर
बोर के निहोरे पर
सरस रूप गंध के फुहारे फुहार गई
कौन वह पुकार गई!
ऐसी फुलचुगी को पाना भर जीवन है
बैठे जिस डाली पर उसमें ही कंपन है
गीतों का नंदन है
मुट्ठी में बांधो तो पारे सी पार गई

अंधियारे आंगन में दिवरा सा बार गई

कौन वह पुकार गई!

इस जगत के प्रेम भी जब आते हैं तो बड़े अज्ञात-अपरिचित आते हैं। किसी प्रेमी से पूछा इस स्त्री के प्रेम में क्यों पड़ गए? इसे जानते थे? जान कर प्रेम किया? तो प्रेमी कहेगा, जानने का सवाल ही नहीं उठा। इसे देखा और प्रेम हो गया।

प्रेम कैसे हो गया, यह प्रेमी कहता है, यह बताना मुश्किल है। मैंने किया, यह बात ही गलत--बस हो गया। अपने किए की कुछ बात ही नहीं है। एक तरंग उठी। कोई हृदय को बांध गया।

... कौन वह पुकार गई!

पहचानते थोड़े ही हैं प्रेमी एक-दूसरे को। एक पुकार, एक तरंग दोनों हृदयों में एक साथ डोल जाती है। कोई अज्ञात तंतु कंप जाता है। क्यों कंप जाता है? अब तक कोई उत्तर नहीं है। कभी कोई उत्तर नहीं होगा। कारण मिल जाए प्रेम का तो समझना प्रेम ही नहीं। तुम कहोगेः इसलिए प्रेम किया कि इसके पास पैसा बहुत था, बाप की अकेली बेटी है, सब अपना हो जाएगा--तो यह प्रेम न रहा। अगर उत्तर दे सको कि इसलिए प्रेम किया, तो यह प्रेम न रहा। तुमने कहा कि इसकी नाक बड़ी सुंदर है... नाक से तो कोई प्रेम नहीं करता। और फिर कल नाक तो... नाक ही है, कल गिर पड़े, चोट खा जाए, फिर क्या होगा? तुम कहो इसकी आंख से प्रेम किया। नहीं, ये सब तो बहाने हैं। अक्सर तुम खोज लेते हो ये बहाने। मगर ये सच्चे नहीं हैं।

प्रेम पहले हो जाता है, फिर आंख सुंदर मालूम पड़ती है, नाक सुंदर मालूम पड़ती है, बाल सुंदर मालूम पड़ते हैं। असल बात उलटी है। ऐसा नहीं है कि आंख सुंदर थी, इसलिए प्रेम हो गया। प्रेम हो गया, इसलिए आंख सुंदर मालूम पड़ती है। क्योंकि यही आंख किसी दूसरे को सुंदर नहीं मालूम पड़ती; सिर्फ तुम्हीं को मालूम पड़ती है।

लैला सिर्फ मजनू को सुंदर मालूम पड़ती है। सारा गांव हंसता था, पागल समझता था। मजनू का मतलब ही पागल हो गया धीरे-धीरे, शब्द का अर्थ ही पागल हो गया कि क्या मजनू हुए जा रहे हो! दिमाग खराब हो गया है? सारा गांव हंसता था। लोग कहते थेः तू पागल है, यह लैला में कुछ भी रखा नहीं है; हमें तो कुछ दिखाई नहीं पड़ते। गांव के राजा ने भी बुलाया मजनू को। कहाः तू बिलकुल दीवानगी छोड़। तुझे सुंदर स्त्री चाहिए?

समझदार आदमी सदा ऐसी बातें करते रहेः तुझे सुंदर स्त्री चाहिए? उसने राजमहल से बारह लड़कियां खड़ी कर दीं--सुंदरतम। उस पूरे देश में नहीं थीं। मजनू गया। एक-एक स्त्री को देखा, लौट कर उदास आ गया। उसने कहाः लैला इनमें कोई भी नहीं है। राजा ने कहाः तू पागल हुआ है? लैला कुछ भी नहीं है--एक काली-कलूटी सी, साधारण सी स्त्री है; ये सुंदरतम स्त्रियां हैं।

मजनू ने कहाः होंगी। लेकिन मुझे लैला के सिवाय और कोई सुंदर दिखाई नहीं पड़ती। मुझे जिससे प्रेम है उसी में सौंदर्य दिखाई पड़ता है।

राजा ने कहाः मुझे सौंदर्य नहीं दिखाई पड़ता, मैं कोई अंधा हूं?

मजनू का उत्तर बड़ा प्यारा था। उसने कहाः अगर लैला में सौंदर्य देखना हो तो मजनू की आंख चाहिए।

यह बात बड़ी महत्त्वपूर्ण हैः मजनू की आंख।

तुम्हारा जब किसी से प्रेम हो जाता है तो दुनिया को तुम पागल मालूम पड़ोगे। प्रेमी सदा से पागल मालूम पड़े हैं। कारण साफ है क्योंकि प्रेमी उत्तर नहीं दे पाते, तर्कयुक्त उत्तर नहीं दे पाते। इसलिए प्रेम को लोग अंधा कहते हैं, क्योंकि प्रेम के पास तर्क नहीं है। प्रेम के पास बुद्धिमानीपूर्ण उत्तर नहीं है। इसलिए बहुत बुद्धिमानों ने तो प्रेम का रास्ता ही समाप्त कर दिया था। उन्होंने तो विवाह ईजाद किया। वह बुद्धिमानों की ईजाद है; समझदार, चालाकों की ईजाद है। उन्होंने विवाह ईजाद किया। विवाह का मतलब होता है कि पहले ठीक से जान लो, फिर प्रेम में पड़ो। घर-ठिकाना, ज्योतिष से पूछो। मुहूर्त दिखवाओ। कुलीन है या नहीं? परंपरा

कैसी है? अब तक घर में कैसे लोग रहे? प्रतिष्ठा कैसी? धन, पद-प्रतिष्ठा, शिक्षा यह सब जांचो-परखो। पहले जान लो, फिर प्रेम करो।

तुम्हारा जो प्रश्न है वह ऐसा ही है कि पहले जानें तब तो प्रेम हो। फिर विवाह होगा, प्रेम नहीं हो पाएगा। और विवाह प्रेम नहीं है, ख्याल रखना। विवाह बिलकुल प्लास्टिक, उसमें असलियत जरा भी नहीं है। व्यवस्था अच्छी है विवाह की; उसमें खतरा कम है, यह सच है। सुविधा ज्यादा है, सुरक्षा ज्यादा है। समाज विवाह के साथ ज्यादा सुरक्षित है; प्रेम के साथ खतरे हैं। ऐसी चीज का क्या भरोसा जो अनजान से उतरती है। अपने बस में नहीं है। ऐसी चीज का कोई भरोसा नहीं है। आया हवा का झोंका तो आ गया, नहीं आया तो. . .। और जो आया अचानक, वह अचानक जा भी सकता है। यह भी खतरा है।

विवाह तो हम चेष्टा से लाए हैं, चेष्टा से ही जा सकेगा। पहले विवाह को बड़े आयोजन से लाना पड़ता है। इसलिए तो फिर तलाक का भी उतना ही आयोजन करना पड़ता है; जब जाएगा तो उतना ही आयोजन करना पड़ता है। और भी कठिन आयोजन करना पड़ेगा। जैसे बैंड-बाजे बजे थे और एक औपचारिकता थी और पंडित-पुरोहित आए थे और समाज इकट्ठा हुआ था, ऐसी फिर अदालत की दुनिया में गुजरना पड़ेगा, मुकदमेबाजी होगी, कानून चलेगा, झंझटें होंगी। व्यवस्था बनाई थी तो व्यवस्था मिटाने में भी उतनी झंझट होगी।

प्रेम तो आता है अज्ञात झोंके की तरह। फिर उसका कुछ भरोसा भी क्या है! उसमें तो बहुत हिम्मतवर ही भरोसा कर सकते हैं। उसमें तो दुस्साहसी भरोसा कर सकते हैं। कमजोर, वणिक बुद्धि के लोग उसमें भरोसा नहीं कर सकते। उसमें तो क्षत्रिय और राजपूत. . .।

और यह तो मैं साधारण प्रेम की बात कर रहा हूं। परमात्मा का प्रेम तो बहुत भयंकर अंधड़ है। तुम परमात्मा को पहले जानोगे, फिर प्रेम करोगे? तुम्हें कोई पहले परमात्मा से परिचय करवाए तब तुम प्रेम करोगे? यही तो विज्ञान कहता है। विज्ञान कहता है, पहले परमात्मा प्रमाणित तो हो! प्रयोगशाला में प्रमाणित हो; टेस्ट-ट्यूब में प्रमाणित हो। हम इसकी जांच-परख कर लें ठीक से। काट-पीट कर लें इसकी ठीक से। जब तक हम परमात्मा का रोआं-रोआं रग-रग न जान लें, तब तक हम स्वीकार न करेंगे। प्रेम की तो बात ही दूर है; पहले स्वीकार करेंगे, फिर प्रेम हो सकता है।

... तो तो फिर तुम परमात्मा से कभी संबंध न जोड़ पाओगे।

परमात्मा अज्ञात है, और अज्ञात ही रहता है; अदृश्य है और अदृश्य ही रहता है।

परमात्मा का अर्थ हैः इस विराट में जो ऊर्जा समाहित है; यह जो विराट की लीला चल रही है, इसके पीछे जो छिपा हुआ नर्तक है; यह जो नृत्य चल रहा है; यह जो उत्सव चल रहा है; इस उत्सव के पीछे जो जीवन-सूत्र है। उस जीवन-सूत्र से सीधी-सीधी पहचान नहीं होती। प्रत्यक्ष परिचय कभी नहीं होता--परोक्ष। प्रेम के द्वारा ही होता है।

इसलिए संतों ने सदगुरु की इतनी बात की है। सदगुरु का मतलब केवल इतना है कि तुम्हारा सीधा तो कोई परिचय नहीं है; किसी का परिचय हो, पहले उसके प्रेम में पड़ो। धीरे-धीरे कदम बढ़ाओ।

आदमी तैरने सीखने जाता है नदी पर तो पहले तो उथले में तैरता है। एकदम से उतर नहीं जाता सागर की गहराई में। पहले किनारे पर तैरता है। आहिस्ता-आहिस्ता अभ्यास करता है। फिर धीरे-धीरे और गहराई की तरफ बढ़ता है। ऐसे-ऐसे एक दिन इस योग्य हो जाता है कि पैसिफिक की गहराई भी हो तो भी कोई अंतर नहीं पड़ता। तैरना आ गया।

पहले सत्संग करो। सत्संग का मतलब हैः जहां तुम जैसे ही प्यासे लोग, संसार से ऊब गए, हार गए, थक गए लोग, संसार को जिन्होंने ठीक से देख लिया, परख लिया और जरा भी पोषण नहीं पाया संसार से, जिनके प्राणों को जरा भी तृप्ति नहीं मिली, ऐसे लोगों के संग-साथ बैठो, संगत करो। इनके साथ बैठने से तुम्हारी प्यास निखरेगी, तुम्हारी प्यास प्रकट होगी, साफ होगी। और तुम्हें हिम्मत बढ़ेगी कि तुम अकेले ही नहीं हो जिसके

लिए संसार व्यर्थ गया है। अकेले में डर लगता है कि पता नहीं, अपनी कोई भ्रांति हो। जहां सारी दुनिया धन की खोज कर रही है, वहां मैं ध्यान की खोज करूं! संदेह पैदा होता है, भरोसा नहीं आताः कहीं पागल तो नहीं हो रहा हूं। यह क्या झंझट सिर ले रहा हूं! जहां सारी भीड़ जा रही है, उसी तरफ जाने में सुगमता मालूम पड़ती है, सुविधा मालूम पड़ती है।

जहां भीड़ है वहीं सच होगा, ऐसी हमारी धारणा है। जहां सभी लोग जाते हैं, इसीलिए जाते होंगे कि कुछ सच्चाई है; अकेला मैं कैसे चल पड़ूं पगडंडी पर।

संगत का अर्थ हैः अकेला नहीं हूं, और भी लोग हैं। संगत का अर्थ हैः मेरे जैसे और भी दीवाने हैं, मेरे जैसे और भी प्यासे हैं। इससे हिम्मत बढ़ती है।

तो पहला कदमः संगत। संगत का अर्थ हैः नदी के किनारे, तट पर, गले-गले पानी में तैरना सीखो। फिर संगत से दूसरा कदम हैः सदगुरु। अब तुम थोड़े और गहरे जाओ। अब जरा उसका हाथ पकड़ो जिसने परमात्मा में डुबकी लगाई हो। पहले उनका हाथ पकड़ो जो डुबकी लगाने के लिए आतुर हैं; फिर उसका हाथ पकड़ो जिसने डुबकी लगाई हो। और तीसरे कदम में तुम्हें पूरी स्वतंत्रता है, तुम परमात्मा में सीधे डुबकी मार जाओ।

संगत, सदगुरु और सत्य--बस ये तीन ही कदम हैं। भक्ति में ये तीन ही कदम हैं।

दूसरा प्रश्नः तथाता और समर्पण मुझे विशेष रूप से प्रिय लगते हैं, लेकिन उनमें स्थित क्यों नहीं हो पाता? कृपापूर्वक मार्गदर्शन करें।

प्रिय लगने से ही तो कुछ हल नहीं होता। प्रिय तो कभी-कभी गलत कारणों से भी लग सकते हैं। और आदमी इतना गलत है कि गलत की ही संभावना ज्यादा है।

समझो। समर्पण की बात सुनी कि तुम्हें कुछ भी नहीं करना, सब उसी पर छोड़ देना है। यह बात प्रिय लग सकती है क्योंकि करने की झंझट से बचे। यह गलत कारण होगा प्रीतिकर लगने का। तुमने सोचाः यह तो बड़ी अच्छी रही, कुछ करना भी नहीं। मगर तुम समझे नहीं बात। कुछ न करना इस जगत में सबसे बड़ा करना है और सबसे कठिन करना है। जरा कभी आधा घड़ी कुछ न किए बैठ कर देखो, तब तुम्हें समझ में आएगा। कुछ करना तो सदा आसान है। करते तो तुम रहे ही हो, जन्मों-जन्मों से करते ही रहे हो। वह तो आसान है। कठिन से कठिन काम आदमी कर ले, लेकिन यह सरल से सरल काम कि आधा घड़ी को बिना कुछ किए बैठ जाए, यह बड़ा कठिन है, बहुत कठिन है। शरीर से रोक भी लोगे अपने को तो मन भागा-भागा रहेगा, मन करता रहेगा। मन योजनाएं बनाएगा, या कि अतीत में लौट जाएगा या कि भविष्य में दौड़ेगा, यहां-वहां छितरा-छितरा होगा। मगर तुम कुछ करोगे तो ही।

न करने का मतलब होता है शरीर भी शून्य हो गया, मन भी शून्य हो गया।

न करने का मतलब होता है जैसे तुम मर ही गए; जैसे इन कुछ घड़ियों के लिए तुम बचे ही नहीं; तुम्हारे होने का बोध ही न रहा। कोई अहंकार न रहा, कोई कर्ता न रहा, कोई कर्तृत्व न रहा।

ज्ञानियों ने कहा हैः एक क्षण को भी ऐसा शून्य घट जाए तो सब घट गया।

तो जब तुम मेरी बात सुनते हो कि समर्पण में कुछ नहीं करना होता, सब छोड़ देना होता है, तो तुम्हें बात तो जंचती है लेकिन गलत कारण से जंचती है। तुम सोचते हो, यह अच्छी रही। हम तो सोचते थे कुछ करना पड़ेगा। यह झंझट मिटी करने की भी।

तुम हो आलसी। तुम्हें बात रुचीः कुछ करना नहीं है। मगर तुम समझे नहीं। गलती के कारण बात जंची। भ्रांति तुम्हें हो गई। तुम समझे आलस्य, मैं कह रहा था शून्य। तुम समझे कुछ करना नहीं है, यह तो बड़ी सुगम बात हो गई है। और मैं कह रहा था अहंकार को विसर्जित करना है।

कर्ता यानी मैं। और जब तुम अकर्ता बनोगे तभी परमात्मा तुम्हारे भीतर प्रविष्ट हो सकता है। जब तक तुम हो तब तक बाधा है, अड़चन है।

तो तुम पूछते होः "तथाता और समर्पण की बात मुझे प्रिय लगती है, लेकिन उनमें स्थित क्यों नहीं हो पाता?"

प्रिय लगती होंगी गलत कारण से। अगर ठीक कारण से प्रिय लगेंगी तो तत्क्षण स्थित हो जाओगे। तथाता की बात भी बहुत लोगों को प्रिय लगती है कि जैसा है वैसा ही स्वीकार कर लो। मगर तुम समझते हो यह आसान है कि जैसा है वैसा ही स्वीकार कर लो।

मन तो इनकार करने का आदी है, अभ्यस्त है। मन तो शिकायत करने का आदी है। मन तो हर जगह भूल-चूक निकालता है। मन तो कहता हैः ऐसा होना चाहिए था, ऐसा होता तो अच्छा होता। यह क्या हो गया?

हां, जब अच्छा-अच्छा होगा तब शायद तुम स्वीकार कर लो। लेकिन वह तो कोई बात न थी; सवाल तो तब था जब अच्छा न हो तब स्वीकार करने का। मीठा-मीठा गप, कड़वा-कड़वा थू। मीठा-मीठा गप की तो बात ही नहीं थी। वह जो कड़वा-कड़वा था। जिसको तुम थूक देते हो, उसको भी उसी अहोभाव से स्वीकार कर लेना था। सुख को तो सभी स्वीकार कर लेते हैं; दुख को स्वीकार करने की बात थी।

जब मैं कहता हूं तथाता, तो उसका अर्थ होता है जो प्रभु दे! फूल दे तो फूल, कांटे दे तो कांटे। सफलता दे तो ठीक, विफलता दे तो ठीक। विफलता में भी जरा सी शिकायत न उठेगी। क्षण भर को भी ऐसा भाव न आएगा मन में कि विफलता हो गई, यह क्या हो गया? यह तूने क्या किया? अपने प्यारे को, अपने भक्त को इस बुरी दशा में डाल दिया? चोर-उचक्के सफल हुए जा रहे हैं और मैं पूजा-पाठ कर करके मरा जा रहा हूं, मैं हारता जा रहा हूं। बुरे आदमी जीत रहे हैं, महल खड़े कर रहे हैं। भले आदमी गिट्टियां तोड़ रहे हैं। यह तू क्या कर रहा है? और मैंने तो सदा यही सुना था कि तेरे संसार में न्याय है; यह तो अन्याय हो रहा है।

तुम अक्सर भले आदमियों को रोते पाओगे। मेरे पास आते हैं। वे कहते हैंः यह क्या हो रहा है संसार में? हमने तो सुना था सत्यमेव जयते! यहां तो झूठ की विजय हो रही है और सत्य तो हारा-पीटा है, सब जगह चारों खाने चित्त पड़ा है। सत्य बोले कि हारे। झूठ बोलो तो जीतो।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हम शील से जीते हैं, सदाचरण से जीते हैं, भूखे मर रहे हैं। बच्चों के लिए न शिक्षा जुटा पाते, न मकान जुटा पाते, न कोई सुख-सुविधा जुटा पाते। हम भी चोर होते, हम भी लफंगे होते, तो हम भी सुख में होते।

मगर इसका मतलब क्या होता है? इसका मतलब इतना ही होता है कि ये भलेपन की जो बातें कर रहे हैं--शील, सदाचरण, इत्यादि--ये सिर्फ भय के कारण भले हैं। वह जो चोर खतरा लेता है, वह खतरा लेने की इनकी तैयारी नहीं है। चोर खतरा भी लेता है, महल ही नहीं बनाता है; कभी-कभी फिर नौ लाख के महल में भी चला जाता है। उसका खतरा भी देखते हो! वह दांव भी लगाता है। जुआरी है। या तो सब गया या सब पाता है।

अब तुम छोटी सी दुकान करते हो, जुए का दांव लगाते नहीं। तो कभी-कभी जुआरी जब जीत जाता है, तब तुम परेशान होते हो। मगर उसका खतरा देखा! उसने जोखिम उठाई थी। या तो सड़क का भिखमंगा होता। तुम कभी भिखमंगे न होओगे। किसी तरह खाते-पीते दाल रोटी जुटाते रहोगे। या तो वह भिखमंगा होने को तैयार था या महल बनाने को तैयार था। दोनों हालत में उसने खतरा लिया था, तो कभी वह जीतेगा, कभी हारेगा। उसके साहस के कारण ही यह हो रहा है।

तुम्हारी नीति अक्सर तुम्हारा आंतरिक भय होता है कि कहीं पकड़े न जाएं, कहीं कोई झंझट न हो जाए, प्रतिष्ठा न टूट जाए! यह कोई वास्तविक धर्म नहीं हैः यह भीरू का धर्म है। यह कमजोर और नपुंसक का धर्म है।

इसलिए तुम्हारे मन में शिकायत भी बनी रहती है। तुम्हारे मन में ईर्ष्या तो उसी से बनी रहती है, उस बुरे आदमी से। तुम भी चाहते तो वही हो जो उसे मिल रहा है; लेकिन तुम उतनी जोखिम भी नहीं उठाना चाहते। तुम जालसाज ज्यादा हो। तुम बिना ही जोखिम के पाना चाहते हो। तुम चाहते हो कि कभी-कभी भजन कर लेते हैं, माला फेर लेते हैं, इसलिए जो महल चोर को मिल गया है वह हमें भी मिल जाए। पर भजन कर लेने से महल के मिलने का कोई संबंध नहीं। भजन करने से बादशाह होने का जरूर संबंध है, लेकिन महल के मिलने का कोई संबंध नहीं है। बादशाह तुम हो जाओगे--झोपड़े में रहोगे तो भी बादशाह हो जाओगे। और महल होने से थोड़े ही कोई बादशाह हो जाता है। महलों में कितने भिखारी रह रहे हैं! मगर तुम महल देखते हो। तुम्हें भी महल ही दिखाई पड़ता है; महल के भीतर वह जो भिखमंगा, वह जो चोर रह रहा है जो रात भर सो नहीं सकता और जिसके जीवन में कोई शांति नहीं है और सब तरफ जहर है, वह तुम्हें नहीं दिखाई पड़ता, उसका महल दिखाई पड़ता है।

तुम भी हो तो चोर ही, लेकिन तुम जरा कमजोर चोर हो। तुम पकड़े जाने का खतरा नहीं उठा सके। तुम माला फेरते हो, जैसे कि माला फेरने से महल के मिलने का कोई संबंध हो; कि तुम गीता पढ़ते हो, जैसे गीता पढ़ने से कोई धन के पैदा होने का कोई भी तो संबंध नहीं है।

वास्तविक धार्मिक आदमी की कोई शिकायत नहीं होती, सदा ही धन्यवाद होता है। वह कहता है, प्रभु की अनुकंपा हर घड़ी बरस रही है। कभी दुख में आती है, कभी सुख में आती है, लेकिन मैं उसे हमेशा पहचानता हूं। वह दुख में भी आती है तब भी उसकी कृपा को पहचानता हूं। क्योंकि दुख सदा दुख ही नहीं होता। दुख निखारता है, मांजता है। दुख कचरे को जलाता है। दुख शुद्ध को प्रकट करता है। दुख प्रक्रिया है विकास की।

अब लोहार पीटता है लोहे को, आग में डालता है, पीटता है, आग में डालता है, तब कुछ निर्मित हो पाता है। सोने को आग में डालना पड़ता है, तब कचरा जलता है और सोना कुंदन बनता है।

ऐसे ही दुख भी एक अग्नि है। और अक्सर ऐसा होता है कि परमात्मा अपने प्यारों को ज्यादा दुख की अग्नि से गुजारता है। स्वभावतः वे उसके प्यारे हैं। स्वभावतः उनकी पात्रता ऐसी है कि उन्हें ज्यादा अग्नि से गुजारा जाना चाहिए। स्वभावतः उनके भीतर ज्यादा संभावना छिपी है, उन्हें ज्यादा कूटा-पीटा जाना चाहिए, ताकि उनके भीतर दबे हुए बीज प्रकट हो जाएं।

अक्सर बुरा आदमी सुविधा से जी लेता है। बुरे आदमी में कुछ है ही नहीं। उसको कूटने-पीटने की भी कोई जरूरत नहीं। भला आदमी हजार असुविधाओं से गुजरता है। मगर अगर परमात्मा से प्रेम लग गया हो, लगन लग गई हो तो दुख दुख नहीं मालूम होता; विफलता विफलता नहीं मालूम होती; हार हार नहीं मालूम होती; हर हार एक नई जीत की सीढ़ी बन जाती है।

अब तुम पूछते हो कि तथाता और समर्पण मुझे विशेष रूप से प्रिय लगते हैं। वे इसलिए अच्छे लगते होंगे कि तथाता का मतलब होता है एक तरह का भाग्यवाद, कि अब हम क्या करें, जो परमात्मा कर रहा है सो कर रहा है, जो करेगा सो करेगा, हमारे किए तो कुछ होगा नहीं। एक तरह की काहिलता, सुस्ती, आलस्य. . .। यह नकारात्मक पहलू है तथाता का, जो तुम पकड़ रहे हो।

फिर दूसरा है समर्पणः हमें कुछ करना नहीं है, सिर्फ उसके चरणों में सिर रख देना है। मगर तुम सोचते हो उसके चरणों में सिर रख देना कुछ आसान बात है? सिर उतार कर रखना होता है। ऐसे ही झुका दिया और चले आए. . .। तुम तो झुके ही नहीं, सिर की कवायद हो गई। ऐसे नहीं चलेगा। पलटू का कल वचन सुना? पलटू ने कहाः अपने सिर को काटे। काटे ही नहीं, फिर कटे हुए सिर के ऊपर खुद नाचे। बड़ी अपूर्व बात कही! सिर को काटे, पहले तो अहंकार को काट कर गिरा दे। और इतना ही नहीं कि गिरा कर खड़ा हो जाए कि देखो कितना त्याग किया; उदासी में खड़ा हो जाए गंभीर होकर कि अब मुझे बदला दो। नाचे--आनंद अहोभाव से, उत्सव से! उस उत्सव की घड़ी में ही परमात्मा से मिलन होता है।

तो तुम्हें कुछ बातें प्रीतिकर लगें, इससे यह मत सोचना कि तुम उसमें स्थित हो जाओगे। अगर स्थित हो जाओ तो ही समझना कि वस्तुतः तुम्हें प्रीतिकर लगीं और ठीक कारणों से प्रीतिकर लगीं। अगर स्थित न हो पाओ तो समझना कि गलत कारणों से प्रीतिकर लगी होंगी, अपने कारण को बदलो।

दुनिया में बड़े-बड़े अपूर्व सिद्धांत गलत आदमियों के हाथ में पड़ कर गलत हो गए। गलत आदमी के हाथ में ठीक सिद्धांत भी गलत हो जाता है। और ठीक आदमी के हाथ में गलत सिद्धांत भी ठीक हो जाता है। इसे स्मरण रखना। सब कुछ आदमी पर निर्भर है।

अब यह कितना अपूर्व सिद्धांत था भाग्य का कि जो कर रहा है परमात्मा कर रहा है! लेकिन गलत आदमियों के हाथ में पड़ गया। यह अपूर्व सिद्धांत गलत आदमियों के हाथ में पड़ कर पूर्व की पूरी की पूरी परेशानी का कारण बन गया। अब हमें कुछ करना नहीं है। अब तो जो कुछ हो रहा है ठीक है। दुख है, दारिद्रय है, बीमारी है, रोग है--सब ठीक है। एक तरह की जड़ता पैदा हो गई।

भाग्यवाद ने पूर्व को मार डाला--बुरी तरह मार डाला! गलत कारणों से ऐसा हुआ। असली भाग्यवाद का अर्थ यह नहीं होता कि हमें कुछ नहीं करना है। असली भाग्यवाद का अर्थ यह होता है कि हमसे परमात्मा जो करवाए वह करना। करवाने वाला वह है, करने वाले हम हैं। करने वाले अब भी हम हैं। ख्याल रखना, पुरुषार्थी भी करता है; लेकिन पुरुषार्थी कहता है, मैं कर रहा हूं। और भाग्यवादी भी करता है; लेकिन भाग्यवादी कहता है, परमात्मा करवा रहा है। इतना ही फर्क है। करने में जरा फर्क नहीं पड़ता। सच तो यह है कि पुरुषार्थी जल्दी थक जाएगा। उसकी ऊर्जा कितनी! अहंकार की क्षमता कितनी! भाग्यवादी कभी नहीं थकेगा। परमात्मा की ऊर्जा से जो जी रहा है, वही करवा रहा है; उसके थकने के कारण कहां हैं।

अगर पूर्व के देशों ने भाग्यवाद को ठीक कारणों से पकड़ा होता तो पश्चिम बहुत पीछे होता। पश्चिम तो अहंकार से जी रहा है। पश्चिम अहंकार से इतना संपन्न हो गया और हम परमात्मा के साथ जुड़ कर न हो पाए। जरूर कहीं कुछ भूल हो गई है, गहरी भूल हो गई है। हम जुड़े ही नहीं। हमने भाग्य को आलस्य बना लिया। समर्पण को हम समझे कि बस खत्म हो गया; मंदिर में सिर रख आए, बात खत्म हो गई।

समर्पण है पूरे जीवन की शैली का रूपांतरण। समर्पण का अर्थ होता हैः अब तू है, मैं नहीं हूं। अब तू जो करवाएगा वही मैं करूंगा। यही तो गीता की पूरी की पूरी भित्ती है। अर्जुन बड़ा पाश्चात्य बुद्धि का आदमी रहा होगा। वह यही कह रहा है कि मैं काटूं, मैं मारूं, इस युद्ध में मैं हत्या करूं, हिंसा करूं, मैं ऐसे बुरे काम करूं--किसलिए? मैं जंगल चला जाऊंगा, मैं सब छोड़ दूंगा। मैं संन्यस्त हुआ जाता हूं।

और कृष्ण उसे खींच-खींच कर, समझा-समझा कर युद्ध में वापस ला रहे हैं। और कृष्ण कह रहे हैं कि तू एक भ्रांति छोड़ दे कि तू करने वाला है। करने वाला परमात्मा है। तू कौन बीच में आता है! ये जो लोग तू खड़े देख रहा है, ये मर ही चुके हैं। तू तो निमित्त मात्र है। जैसे कोई आदमी मर गया और तेरे धक्के की जरूरत है। ताकि वह गिर जाए। तू धक्का नहीं देगा तो कोई और धक्का देगा, लेकिन जो मारने वाला है वह मरेगा। तू भाग मत। तू परमात्मा की सेवा कर। तुझे थोड़ा अवसर मिला है, इससे मत चूक। परमात्मा ने तुझे निमित्त बनाया है, तू निमित्त बन जा। यह अपूर्व अवसर है, इससे भाग मत। यही संन्यास है।

अर्जुन को समझ में नहीं आती बात कि यह कैसा संन्यास है! विवाद चलता है, लंबा विवाद चलता है। कृष्ण कहते हैं यही संन्यास है कि प्रभु जो कराए वही हम करें। फिर यह भी हम न पूछेंगे कि बुरा कि भला। क्योंकि मैं कौन! जहां निमित्त बना देगा... ।

यह बड़ी क्रांतिकारी धारणा हैः बुरे को भी चुपचाप स्वीकार कर लेना। अपमान होगा, निंदा होगी, प्रतिष्ठा खो जाएगी--ठीक है। प्रभु की यही मर्जी होगी तो यही होगा। यही काम उसे मुझसे लेना होगा। मुझे अप्रतिष्ठित होने की दशा में डालना जरूरी होगा, इसलिए डालता है।

ऐसी सरलता से जो समर्पण कर देता है उसके जीवन में कुछ और करने को बचा नहीं रह जाता। बचने की कोई बात ही नहीं रही।

ठीक कारण पकड़ो। ठीक कारण समझो। अन्यथा अक्सर तुमने संतों के वचन का दुरुपयोग किया है। तुम कुछ अपने हिसाब से अर्थ निकाल लेते हो। तुम अपने अर्थ एक किनारे रखो। जो कहा जाए उसे ठीक वैसा ही पहले समझने की कोशिश करो। जल्दबाजी न करो। करने की जल्दी नहीं है। समझने की फिकर करो पहले।

इधर मेरा निरंतर का अनुभव यह है कि लोग करने की जल्दी में हैं; समझने की जल्दी किसी को है ही नहीं। लोग कहते हैं, समझ कर क्या करना। वे मेरे पास आ जाते हैं। वे कहते हैं, अब आप तो सब समझते ही हो, आप कह दो हम क्या करें! मगर मैं जो कहूंगा और तुम बिना समझे करोगे तो भूल होने वाली है। क्यों? फिर गलत आदमी के हाथ में, जिसके पास समझ नहीं है, गलती ही होने वाली है।

तुम्हारे पास समझ होनी चाहिए, करने की इतनी जल्दी मत करो। समझ से जो कृत्य निकलता है, वही सुंदर होता है। और समझ से कृत्य निकलते हैं।

तो पहले तो तुम तथाता और समर्पण को ठीक से समझो। अभी अभ्यास की जरूरत नहीं है कि तथाता का अभ्यास करो, समर्पण का अभ्यास करो। पहले समझ लो। समझ लिया तो तुम पाओगे अभ्यास अपने-आप चला आया--छाया की तरह।

तीसरा प्रश्नः प्रभु-प्रेम के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा क्या है?

तुम्हीं हो सबसे बड़ी बाधा। और कोई बाधा नहीं है। मैं-भाव सबसे बड़ी बाधा है। भक्त ही बाधा है भगवान के मार्ग में। भक्त को मिटना होता है, गलना होता है, खो जाना होता है।

साधारण जीवन में भी प्रेम में जो बाधा है, वह अहंकार है। साधारण जीवन में भी। चलो छोड़ो परमात्मा को। परमात्मा का तुम्हें कोई अनुभव नहीं है, इसलिए बात बेबूझ हो जाएगी। साधारण जीवन में भी जो प्रेम में बाधा है वह क्या है? यही अहंकार। पत्नी पति पर कब्जा करने की कोशिश में लगी है, दिखाने की कोशिश में कि मैं मालिक हूं। पति कोशिश कर रहा है दिखाने की कि मैं मालिक हूं। झगड़ा चल रहा है।

समस्त तरह के प्रेमियों में एक ही कलह चलती रहती है कि कौन मालिक है, किसकी मानी जाती है?

मुल्ला नसरुद्दीन चायखाने में बैठ कर लोगों से कह रहा था कि मेरे घर कभी कोई झगड़ा नहीं होता। लोगों ने माना नहीं। उन्होंने कहा, यह हम मान नहीं सकते, यह कभी हुआ ही नहीं है कि घर में, और झगड़ा न होता हो। घर ही क्या अगर झगड़ा न होता हो? और अगर ऐसा है तो तुम अपना राज बताओ कि यह कैसे संभव हुआ? यह तो असंभव घटना है कि झगड़ा न होता हो।

मुल्ला ने कहाः हमने जिस दिन शादी की उसी दिन एक निर्णय कर लिया कि बड़े-बड़े मसले मैं तय करूंगा, छोटे-छोटे मसले पत्नी तय करेगी। फिर तबसे कोई झगड़ा नहीं हुआ।

किसी को भरोसा न आया इस बात पर। उन्होंने कहा कि तुम और जरा विस्तार में कहो। खुलासा करो। कौन से मसले बड़े और कौन से मसले छोटे?

तो मुल्ला ने कहाः छोटे-छोटे मसले--जैसे कौन सा घर खरीदा जाए, कौन सी कार खरीदी जाए, कौन सा धंधा किया जाए; लड़के को किस स्कूल में भेजा जाए; कौन से कपड़े पहने जाएं। ये छोटे-छोटे काम तो पत्नी निपटा लेती है। और बड़े मसले क्या हैं? जैसे कि स्वर्ग है या नहीं, नरक है या नहीं, ऐसे बड़े-बड़े मसले मैं निपटाता हूं। झगड़ा कुछ होता ही नहीं। झगड़ा होगा भी क्यों?

आदमी की सतत चेष्टा होती है बहुत गहरे में। अब मुल्ला यह कह कर कि बड़े-बड़े मसले मैं निपटाता हूं, उस बड़े-बड़े में भी अपने अहंकार को बचाने की कोशिश कर रहा है। छोटे-छोटे पत्नी निपटाती है। और पत्नी ज्यादा पार्थिव होती है। स्त्रियां ज्यादा पार्थिव होती हैं, ज्यादा समझदार। वे जानती हैं कि छोटे मसले ही बड़े मसले हैं। बड़े मसलों में क्या रखा है? होता है नरक कि नहीं होता, तुम जानो। ये सिद्धांत की बातें तुम तय

करते रहो। कोई स्त्री इन बातों की फिकर नहीं करती बहुत। असली मतलब की बातें उसने अपने हाथ में ले रखी हैं। दोनों तृप्त हैं। पत्नी जानती है असली क्या है और मुल्ला सोचता है कि बड़े मसले क्या हैं।

अहंकार की सतत चेष्टा चलती है कि किसी भी बहाने मैं बड़ा हो जाऊं।

प्रेम में भी बस अहंकार ही उपद्रव है। प्रेम में जो कलह चलती है, वह प्रेम की नहीं, अहंकार की कलह है।

मेरी जां गो तुझे दिल से भुलाया जा नहीं सकता
मगर ये बात मैं अपनी जुबां पर ला नहीं सकता।
तुझे अपना बनाना मोजिबे राहत समझ कर भी
तुझे अपना बना लूं, ये तसव्वर ला नहीं सकता।
हुआ है बारहा एहसास मुझको इस हकीकत का
तेरे नजदीक रह कर भी मैं तुझको पा नहीं सकता।
मेरे दस्ते-हवस की दस्तरस है जिस्म तक तेरे
समझता हूं कि दिल पै कब्जा पा नहीं सकता।
तेरे दिल की तमन्ना भी करूं तो किस भरोसे पर
मैं खुद दरगाह में तेरी यह तोहफा ला नहीं सकता।
मेरी मजबूरियों को भी बहुत कुछ दखल है इसमें
तुझी को मोरिदे-इलजाम मैं ठहरा नहीं सकता।
मैं तुझसे बढ़ कर अपनी आबरू को प्यार करता हूं
मैं अपनी इज्जतो-नामूस को ठुकरा नहीं सकता।
तेरे माहौल की पस्ती का ताना दूं तुझे क्यूंकर
मैं खुद माहौल से अपनी रिहाई पा नहीं सकता।

एक ही कठिनाई हैः मैं तुझसे बढ़ कर अपनी आबरू को प्यार करता हूं।

मैं अपनी इज्जतो-नामूस को ठुकरा नहीं सकता।

मैं अपने मान-सम्मान को ठुकरा नहीं सकता।

प्रेमी कह रहा है कि मैं आकर तेरे द्वार में निवेदन भी नहीं कर सकता कि मैं तेरा प्रेमी हूं। मैं, और निवेदन करूं! मैं अपनी मान-मर्यादा छोड़ नहीं सकता। जल लूंगा। जानता हूं कि तेरा साथ मिल जाए तो सुख होगा, लेकिन मेरा अहंकार मेरे पैरों को रोकता है। मैं निवेदन भी नहीं कर सकता। यह बात मैं अपनी जबान से कह भी नहीं सकता कि तेरे साथ मेरे जीवन में सुख होने वाला है। तेरे कारण सुख होगा, यह भी नहीं कह सकता हूं।

तुमने कभी निवेदन किया है? सच में किसी से कहा है कि तुम्हारे कारण मेरे जीवन में सुख है, सुख हो रहा है? मन रोक लेता हैः यह बात कहने की नहीं है। स्त्रियां तो इतने अहंकार से भर गई हैं सदियों में कि स्त्रियां तो कभी प्रेम का निवेदन करती ही नहीं। कोई स्त्री कभी प्रेम का निवेदन नहीं करती। प्रेम भी हो तो प्रतीक्षा करती है कि पुरुष ही निवेदन करे।

निवेदन भी प्रेम का करने में इतनी अड़चन है! यह कहने में ही मन को बड़ी चोट लगती है कि मैं किसी से भीख मांगने चला, भिक्षा मांगने चला; मैंने किसी के सामने यह स्वीकार किया कि मेरी खुशी तेरी खुशी पर निर्भर है। वही अड़चन हो जाती है।

तो परमात्मा के सामने भी यही बाधा है। वहां तो तुम्हें परिपूर्ण रूप से निवेदन करना पड़ेगा कि मैं बाधा हूं, तू मुझे मिटा! तू मुझे समाप्त कर! तू मुझे साथ दे कि मैं किसी तरह अपने से पार हो जाऊं!

तुम पूछ रहे होः "प्रभु-प्रेम के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा क्या है?"

मैं तुझसे बढ़ कर अपनी आबरू को प्यार करता हूं
मैं अपनी इज्जतो-नामूस को ठुकरा नहीं सकता।

सुना है न मीरा को! सब लोक-लाज खोई। और भी मीराएं हो सकती थीं दुनिया में, लेकिन लोक-लाज खोने को कोई तैयार नहीं। प्रतिष्ठा गंवाई।

इस समाज में तो भक्त की कोई प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। भगवान की ही कोई प्रतिष्ठा नहीं तो भक्त की कैसे होगी? भगवान ही अप्रतिष्ठित हो गया है, तो भगवान की तरफ जाने वाला भक्त तो कैसे प्रतिष्ठित होगा?

ये बड़े मजे की बातें हैं। तुम मंदिर जाकर फूल तो चढ़ा आते हो दो, लेकिन तुम्हारा बेटा अगर सच में भक्त हो जाए तो तुम परेशान हो जाओगे। कोई संन्यासी गांव में आता है तो तुम उसके पैर छू कर नमस्कार कर आते हो, लेकिन तुम्हारा बेटा संन्यासी हो जाए तो तुम परेशान हो जाओगे। यह बड़ी हैरानी की बात है। तुम्हारे मन में संन्यास की सच में प्रतिष्ठा है? अगर तुम्हारे मन में संन्यास की प्रतिष्ठा है तो तुम चाहोगे कि तुम्हारा बेटा भी संन्यासी हो जाए। मगर वह तो तुम नहीं चाहते। हां, गांव में कोई संन्यासी आता है तो तुम्हारा क्या लगता है! तुम जा कर पैर छू आते हो। यह मुफ्त की श्रद्धा तुम दिखा आते हो--दो कौड़ी की। चाहते तो तुम हो कि बेटा किसी तरह दिल्ली पहुंच जाए। चाहते तुम हो कि बेटा राजनेता हो जाए। चाहते तो तुम हो कि बेटा बहुत धनी हो जाए। हां, किसी दूसरे का बेटा अगर संन्यासी हो जाए तो तुम भी उसकी शोभायात्रा में सम्मिलित हो जाते हो। तुम्हारा क्या लगता है! दोनों हाथ से लूट ली--अपने बेटे से संसार लूट रहे हैं और दूसरे के संन्यासी के चरणों में जाकर सिर झुका कर दूसरा संसार भी सम्हाल रहे हैं।

तुम मीरा का भजन तो बड़ी मस्ती से सुन लेते हो, लेकिन तुमने सोचा है कभी कि तुम्हारी पत्नी अगर मीरा हो जाए और गांव-गांव द्वार-द्वार घूमने लगे और नाचने लगे रास्तों पर और कृष्ण के गीत गाने लगे, तो तुम भी जहर का प्याला भेजोगे। तुम भी! हालांकि तुमने कहानी में जब भी पढ़ा था कि राणा ने जहर का प्याला भेजा, तभी तुम्हें लगा था कि राणा भी कैसा आदमी था, मीरा जैसी प्यारी स्त्री, ऐसी भक्त, और उसको जहर का प्याला भेजा! तुम क्या करोगे? तुम भी जहर का प्याला भेजोगे। तुम भी राणा से भिन्न व्यवहार नहीं करोगे। तुम्हारा भी व्यवहार वही होगा।

लाखों लोग जीसस को पूजते हैं। लेकिन जीसस ने जो किया, अगर तुम्हारा बेटा करे और तुम्हारे बेटे को सूली पर चढ़ने की नौबत आ जाए, तो तुम क्या करोगे? जीसस के मां-बाप ने भी, कहा जाता है, इनकार कर दिया था; कह दिया था, हमारा इससे कुछ संबंध नहीं है। स्वभावतः आज लाखों-करोड़ों लोग जीसस की पूजा करते हैं--क्रॉस पर चढ़े जीसस की! तुमने कभी सोचा तुम्हारा बेटा क्रॉस पर चढ़े? यह बिलकुल आसान है अपने गले में एक क्रॉस का प्रतीक लटका लेना, क्योंकि उसमें कुछ हर्जा नहीं है।

धर्म सदा से खतरनाक रहा है, क्योंकि परमात्मा की तरफ जाने का अर्थ होता हैः इस जगत में तुम्हारे पैर डगमगा जाएंगे। यहां तुम जहां खड़े हो वहां से हट जाओगे। यहां जो मूल्यवान है, परमात्मा की तलाश में सब मूल्यहीन हो जाता है। फिर न कोई पति है न कोई पत्नी है; न कोई बेटा है न मां है; फिर न कोई भाई है न कोई मित्र है। फिर न कोई इस जगत के मूल्य अर्थ रखते हैं। फिर एक नया मूल्य तुम्हारे जीवन में पैदा हुआ। उस नये मूल्य की तरफ जाने के लिए पागल होने की हिम्मत तो चाहिए ही--चाहिए ही चाहिए। वही अड़चन आ रही है।

तुम पूछते होः "प्रभु-प्रेम के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा क्या है?"

तुम अपनी इज्जत-आबरू नहीं खो सकते। तुम इज्जत-आबरू बचा कर परमात्मा को पाना चाहते हो। तुम बड़े होशियार हो, चालाक हो। जो मीरा नहीं कर सकी वह तुम करना चाहते हो। जो बुद्ध नहीं कर सके वह तुम करना चाहते हो। तुम चाहते होः संसार भी बच जाए और किसी तरह परमात्मा को भी पा लें; अपने को भी बचा लें और उसे भी पा लें। तुम परमात्मा को ऐसे पाना चाहते हो जैसे तुम धन पाना चाहते हो--अपनी मुट्ठी में। तुम अपने को गंवा कर परमात्मा को पाने की तैयारी नहीं रखते। और जो अपने को गंवाने को राजी नहीं उसने कभी पाया नहीं। मिटे बिना कोई चारा ही नहीं है, कोई उपाय नहीं है।

तुम्हीं हो बाधा।

लेकिन झूठ चलता है। झूठ धर्म चलता है। सब तरह के झूठ चलते हैं यहां। ढोंग चलता है। सस्ता धर्मः मंदिर में जाकर पूजा कर आए; पत्थर की मूर्ति के सामने सिर झुका आए; कभी घर में सत्यनारायण की कथा

करा ली; कभी किसी फकीर के वचन सुन आए। इस कान से सुने उस कान से निकाल दिए; या सुने ही नहीं। अधिकतर लोग तो सोए ही रहते हैं, सुनने का सवाल ही नहीं उठता।

एक आदमी अपने घर लौटा। पड़ोस के बच्चे और उसके बच्चे सब मिल कर खेल खेल रहे थे। उसने पूछा क्या खेल खेल रहे हो, क्योंकि वे बड़ी अजीब सी हालत में थे। सब बिल्कुल चुपचाप बैठे थे। उसने पूछा, कौन सा खेल हो रहा है? उन्होंने कहाः हम चर्च खेल रहे हैं।

चर्च! तो उसने कहाः ऐसे चुपचाप क्यों बैठे हो?

तो उन्होंने कहाः चर्च में लिखा रहता है न, शांत रहो! तो हम लोग चर्च में बैठे हैं।

उसने ऐसे ही पूछा कि तुम मतलब समझते हो कि चर्च में यह क्यों लिखा रहता है कि शांत रहो? उसके बेटे ने कहा, मालूम है हमेंः जिससे कि लोगों की नींद न टूटे। सब लोग सोए रहते हैं।

कान से भी कौन सुनता है! सुनने की झंझट में भी कौन पड़ता है! क्योंकि सुनो, फिर भुलाओ, फिर सफाई करो। सुनते ही नहीं लोग।

यह सस्ता धर्म है, झूठा धर्म है। और इस झूठे धर्म में बड़ी सुगमता मालूम पड़ती है। इससे प्रतिष्ठा मिलती है, जाती नहीं, तुम धार्मिक समझे जाते हो। लोग कहते हैंः आहा, आदमी हो तो ऐसा--रमजान आता है तो देखो किस तरह रोजे रखता है! आदमी हो तो ऐसा--पर्यूषण आते हैं तो कैसे उपवास करता है! आदमी हो तो ऐसा कि हर अमावस, पूर्णिमा उपवास करता है, कि हर साल गंगा-स्नान करने जाता है! आदमी हो तो ऐसा, सब धाम हो आया है! इससे प्रतिष्ठा बढ़ती है, घटती नहीं।

असली धर्म से तो इस जगत में तुम एकदम उखड़ जाते हो। नकली धर्म से इस जगत में बड़ी प्रतिष्ठा मिलती है।

यहां औपचारिक धर्म का चलन है--झूठा सिक्का।

मैंने सुना है, दिल्ली के एक अजायबघर में एक बड़ा भालू था--सफेद भालू। सायबेरिया का भालू। वह अचानक मर गया। वह बच्चों को बड़ा प्यारा था। और उसके बिना बच्चे बड़े परेशान होने लगे। दूर-दूर से देखने बच्चे उस भालू को आते थे। भालू का कटघरा खाली पड़ा रहा। कुछ दिन मैनेजर भी परेशान हुआ। भालू को लाना इतनी जल्दी आसान भी नहीं। कहां से भालू खोजा जाए! तभी एक दिन राह पर एक राजनेता से मिलना हो गया। राजनेता अभी-अभी चुनाव हारे थे, नौकरी की तलाश में थे। उसे सूझ आई--अजायबघर के मैनेजर को। उसने कहा, आप ऐसा करो, एक काम मेरे पास है। तीन सौ रुपए महीने मैं आपको दूंगा। भालू मर गया है, उसकी हमने खाल निकाल ली है। वह ओढ़ कर आप बस बैठ जाओ, बच्चों के लिए काफी है। उछलते-कूदते रहे थोड़ा। बच्चे बड़े उदास हैं। उसी भालू के लिए आते थे। अजायबघर की शान चली गई।

तीन सौ रुपया, उसने सोचा कुछ खास झंझट भी नहीं है। और उछलना-कूदना तो उसे वैसे ही आता है, पार्लियामेंट में वही तो करता था! तो उसने कहा, यह जमेगा। वह दूसरे दिन से भालू की खोल ओढ़ ली उसने और उछलता-कूदता और बड़ा आनंद आता। बच्चे भी बड़े प्रसन्न हुए। ऐसा आठ दिन तो बड़े मजे से गुजरे, नौवें दिन ऐसा हुआ कि उसने देखा कि द्वार खुला है भर दोपहरी में। रोज रात को उसे छुट्टी हो जाती थी। अपने घर जाकर सोता था, सुबह फिर आकर भोर में भालू का वेश ओढ़ लेता था। भर दोपहर में दरवाजा खुला; दरवाजा ही नहीं खुला, एक सिंह भीतर घुसा। उसके तो छक्के छूट गए। वह तो चिल्लायाः मारे गए, मारे गए बचाओ! वह तो भूल ही गया कि मैं भालू हूं और आदमी की भाषा बोलना अभी ठीक नहीं। असलियत, जब मुसीबत आ जाए तो आदमी की असलियत प्रकट होती है। वह चिल्लायाः बचाओ, बचाओ, मारे गए!

लेकिन तब और एक चमत्कार हुआ। वह सिंह उसके पास आया। उसने कहाः उल्लू के पट्ठे, चुप रह! क्या तू सोचता है तू ही अकेला चुनाव हारा है? ऐसे चिल्लाएगा, तेरी भी नौकरी जाएगी, मेरी भी जाएगी।

यहां ऐसा ही धोखा चल रहा है। यहां कोई भालू बना है, कोई सिंह बना है। यहां लोग ऐसे बने हैं जैसे नहीं हैं; जो नहीं हैं।

धार्मिक आदमी बड़ा खतरा मोल लेता है, क्योंकि इस झूठे समाज में वह सच्चे होने की हिम्मत करता है। इस झूठों की भीड़ में वह अपने नकाब उतार देता है, वह अपने मुखौटे उतार देता है। वह कहता हैः जो हूं मैं, जैसा हूं, यह हूं। बुरा तो बुरा, भला तो भला। स्वीकार कर लो तो ठीक। स्वीकार न करो तो ठीक। लेकिन मैं अब कोई मुखौटे नहीं ओढूंगा।

धार्मिक आदमी अपने लिए भी खतरा उठाता है और दूसरों के लिए भी नाराजगी का कारण हो जाता है। क्योंकि कोई आदमी जब अपने मुखौटे उतार देता है तो तुम्हें भी अपने मुखौटों की याद आने लगती है। इसलिए हम धार्मिक आदमी को कभी बरदाश्त नहीं कर सके। झूठों की भीड़ में अगर कोई आदमी सच बोले तो सब झूठे मिल कर उसको मार डालेंगे। क्योंकि यह आदमी एक उपद्रव का कारण हो गया। सब चल रहा था, सब ठीक चल रहा थाः इन सज्जन को सच बोलने की झंझट खड़ी कर दी इन्होंने।

एक सच बोलने वाला आदमी झूठों की भीड़ में सबका दुश्मन हो जाएगा। सब उसे दुश्मन की तरह देखेंगे। क्योंकि हर आदमी को खटकेगा। इसका सच हर आदमी के झूठ को दिखलाता है। यह जो बिजली कौंधती है इसके सच से, इससे हर आदमी के रोग दिखाई पड़ते हैं। इसलिए हमने जीसस को सूली पर लटका दिया, सुकरात को जहर पिला दिया, मंसूर को मार डाला। हम बरदाश्त नहीं कर सके। हां, मर जाए मंसूर, फिर हम पूजा करते हैं। जीसस मर जाएं, फिर हम चर्च बनाते हैं। सुकरात की हम हजारों साल तक याद रखते हैं, पूजा के फूल चढ़ाते हैं। लेकिन जिंदा धार्मिक आदमी से हमें बड़ा कष्ट होता है। क्योंकि जिंदा धार्मिक आदमी खालिस, प्रमाणिक, जैसा है वैसा; और न उसे मान की फिकर है न उसे मर्यादा की।

इस जगत में सारा उपाय, सारी व्यवस्था अहंकार के इर्द-गिर्द है। हम छोटे-छोटे बच्चों को भी कहते हैं कि देखो ख्याल रखना, किस कुल के हो, किस घर से आए, किसके बेटे हो! हम छोटे-छोटे बच्चों को कहते हैं, स्कूल में प्रथम आना, प्रतिष्ठा रखना, हमारे घर में कभी भी कोई द्वितीय नहीं आया। हम अहंकार सिखाते हैं, पहले दिन से ही अहंकार सिखाते हैं। हम लोगों को कहते हैं, ऐसा व्यवहार करो जिससे इज्जत मिले। हम तो ऐसी बातें लोगों को सिखाते हैं कि विनम्र रहो, निर-अहंकारी बनो, तो ही प्रतिष्ठा मिलेगी।

अब यह भी बड़े मजे की बात है कि जिसको प्रतिष्ठा चाहिए वह निअर्हंकारी कैसे बन सकता है! निअर्हंकार का धोखा कर सकता है। विनीत बनो, ताकि लोग तुम्हें आदर दें। आदर पाने के लिए लोग विनीत बने हुए हैं। विनीत कैसे बनेंगे? विनीत का मतलब होता है, जिसे आदर की कोई चाह नहीं, जिसे अनादर से कोई इनकार नहीं। कोई स्तुति करे कि निंदा, सब बराबर है, ऐसी समतुलता का नाम विनीतता है।

मगर हम खूब अजीब बातें सिखाते हैं। हम कहते हैं, ईमानदारी कुशल नीति है। नीति! आनेस्टी इ.ज दि बैस्ट पॉलिसी। पर ख्याल रखना, जो आदमी इस नीति को मानता है, ईमानदार नहीं हो सकता। यह तो बेईमानी की शुरुआत हो गई। ईमानदारी--नीति! तरकीब! पॉलिसी! तो राजनीति हो गई। पॉलिसी आई तो पॉलिटिक्स हो गई। यह आदमी इसीलिए ईमानदार है क्योंकि ईमानदारी में लाभ है। लेकिन अगर कल बेईमानी में लाभ होगा तो यह आदमी ईमानदार रहेगा? लाभ के कारण ईमानदार था। लाभ होता था तो ईमानदार था। लाभ इसका लक्ष्य था। आज बेईमानी में लाभ होता है तो यह बेईमान हो जाएगा। इसने कभी ईमानदारी की थोड़े ही पूजा की थी; लाभ की पूजा की थी।

हमारी सारी ईमानदारी, सारे सच, सब तरकीबें हैं; लेकिन सबके पीछे एक ही आकांक्षा हैः किसी तरह हमारे अहंकार को प्रतिष्ठा मिले। यह सारा संसार अहंकार की कील पर घूमता है। और परमात्मा को पाने में अहंकार बाधा है।

परमात्मा को पाने के लिए आदमी को एक ही महत्वपूर्ण काम करना पड़ता है, एक ही महत्त्वपूर्ण कदम उठाना पड़ता है--वह है आत्मघात; वह अपने अहंकार को बिल्कुल काट देना; वह कह देना कि मैं कुछ भी नहीं हूं, मैं शून्यवत हूं। और ऐसा कह ही नहीं देना--ऐसे जीना। कोई गाली दे जाए तो शून्य को क्या अड़चन! और कोई स्तुति कर जाए तो शून्य को क्या प्रशंसा और क्या प्रसन्नता! शून्य तो शून्य ही रहेगा। एक सूने घर में जाकर स्तुति कर आओ कि गाली दे आओ, दोनों गूंजेंगी, दोनों विलीन हो जाएंगी। सूना घर सूना रहेगा। ऐसा व्यक्ति ही परमात्मा को पाने में समर्थ हो पाता है।

तुम पूछते होः "प्रभु-प्रेम के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा क्या है?"

तुम। तुम्हारे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। तुम हटो, प्रभु को राह दो। परमात्मा आने को आतुर है, तुम जरा द्वार-दरवाजे खोलो। लेकिन तुम अड़े खड़े हो द्वार-दरवाजों पर। तुम चाहते हो परमात्मा भी मिल जाए और उसके मिलने से भी प्रतिष्ठा बढ़ जाए। धन तो पा ही लिया, पद तो पा ही लिया, अब परमात्मा भी मिल जाए। ऐसी कोई चीज छूट न जाए कहने को कि मैंने नहीं पाई; यह परमात्मा एक, हाथ के बाहर न रह जाए। यह भी दुनिया को दिखा दूं कि यह भी पाकर रहा। सब पाकर दिखा दिया।

तुम परमात्मा पर भी विजय पाना चाहते हो! परमात्मा के भी विजेता होना चाहते हो! फिर तुम परमात्मा को नहीं अनुभव कर पाओगे। और प्रेम का तो जन्म ही न होगा; प्रेम का झरना ही नहीं फूटेगा।

अपने को हारा हुआ जानो। हारे को हरिनाम! अपने को पराजित जानो। हारो और मिट जाओ। सर्वहारा हो जाओ। तुमने अपना करके बहुत देख लिया, कुछ भी नहीं मिला; अब थोड़ी देर को अपने कर्ता को जाने दो। कर्ता के जाते ही द्वार खुलता है; पत्थर हटता है, झरना फूटता है।

आखिरी प्रश्नः प्रभु-प्रेम दीवाना क्यों बना देता है?

और क्या करे? प्रेम यानी दीवानगी। प्रेम यानी पागलपन। प्रेम यानी तर्क के बाहर हो जाना। प्रेम यानी बुद्धि की झंझटों से छूट जाना; बुद्धि की सीमाओं का अतिक्रमण कर जाना। प्रेम यानी एक तरह की शराब, एक तरह की मस्ती, जो तुम अपने भीतर ही निर्मित कर लेते हो।

तुमने प्रेमी की आंख देखी! सदा पिए-पिए मालूम पड़ता है। तुमने प्रेमी के पैर देखे! कहीं रखता कहीं पड़ते हैं! सदा डोला-डोला रहता है।

प्रेम की कीमिया यही है कि तुम अपने ही भीतर शराब को पैदा करते हो; तुम्हारे भीतर ही शराब पैदा होने लगती है, फिर किसी मधुशाला में जाना नहीं पड़ता। तुम स्वयं ही अपना मधु निःसृत करने लगते हो।

तो दीवाना तो प्रेमी हो ही जाएगा। साधारण प्रेम दीवाना बना देता है, तो परमात्मा के प्रेम की तो बात ही क्या कहनी! किसी मनुष्य के प्रेम में पड़ जाओ और दीवाने हो जाते हो। वृक्षों के प्रेम में पड़ जाओ और इनके सौंदर्य के प्रेम में पड़ जाओ और तुम्हारे भीतर दीवानगी आ जाती है। कवियों को देखा! फूल, तारों, बादलों के प्रेम में पड़ कर कैसी मस्ती में डूब जाते हैं!

जहां भी प्रेम है वहां मस्ती है। फिर परमात्मा का प्रेम तो परम प्रेम है, तो परम मस्ती है।

कल मैं एक गीत पढ़ रहा था। एक प्रेमी परमात्मा से कह रहा है। कह रहा है कि मैंने जो इस स्त्री को प्रेम किया है, इसमें मेरा कसूर नहीं है, वह स्त्री ही ऐसी थी। ऐसा सौंदर्य प्रभु, कि अगर तुम भी देखते तो तुम भी चकित हो जाते, तुम भी अवाक रह जाते।

जुर्म अगर हुस्ने-नजर है तो गुनहगार हूं मैं।
दावरा इसके सिवा मेरी खता कुछ भी नहीं
थी न.जर में मेरी, शादाबी-ए-जन्नत लेकिन
कितनी शादाब थी वो राहगुजर क्या कहिए!

दावरा तेरी मशीअत के तकाजों की कसम
वाकई दिल पै बड़ा जब्र किया था मैंने
मुझको मालूम था आवारा निगाही का मआल
लेकिन उस शोख का अफसूने न.जर क्या कहिए!
दावरा! मेरी नजर में थी तेरी शाने जलाल
लेकिन ऐ काश दिखा दूं तुझे उसका भी जमाल
दावरा! कितने दिल आवेज थे उसके खतोहाल
और फिर उस पै मेरा हुस्ने-नजर क्या कहिए!
जुर्म अगर हुस्ने-नजर है तो गुनहगार हूं मैं!

प्रेमी कह रहा है कि अगर सौंदर्य को देखने वाली आंख में कोई जुर्म है तो मैं गुनहगार हूं, मैं अपराधी हूं।

जुर्म अगर हुस्ने-न.जर है तो गुनहगार हूं मैं।

दावरा! हे प्रभु! हे न्यायकर्ता! हे ईश्वर! दावरा इसके सिवा मेरी खता कुछ भी नहीं। मेरा और कोई कसूर नहीं है। सौंदर्य था और मेरे पास आंख है सौंदर्य को परखने की, तो मैं क्या करता?

जुर्म अगर हुस्ने-न.जर है तो गुनहगार हूं मैं
दावरा इसके सिवा मेरी खता कुछ भी नहीं
थी न.जर में मेरी शादाबी-ए-जन्नत लेकिन

प्रेमी कहता है कि मुझे पता है कि तेरा स्वर्ग बड़ा प्यारा है और मुझे यह भी पता है कि स्वर्ग में बड़ी खुशियां हैं, और बड़ा सौंदर्य है। मगर फिर भी क्या कहूं?

थी न.जर में मेरी शादाबी-ए-जन्नत लेकिन

स्वर्ग की प्रफुल्लता का मुझे पता है और मेरे ख्याल में थी बात। ऐसा भी नहीं था कि भूल गया था। तुझे भूल गया था, ऐसी भी बात न थी।

थी न.जर में मेरी शादाबी-ए-जन्नत लेकिन
कितनी शादाब थी वो राहगुजर क्या कहिए!

लेकिन उसकी गली भी बड़ी प्यारी थी। मैं तुझसे क्या कहूं? तेरा स्वर्ग प्यारा है वह मुझे मालूम है। और भूल भी नहीं गया था। लेकिन फिर भी उसकी गली बड़ी प्यारी थी।

दावरा तेरी मशीअत के तकाजों की कसम
वाकई दिल पै बड़ा जब्र किया था मैंने।

और मैं तुझसे कहना चाहता हूंः मुझे क्षमा कर। लेकिन मैं सच्ची बात भी तुझसे कह दूं कि ऐसा नहीं है कि मैंने अपने पर बहुत नियंत्रण न रखा था। मैंने बहुत संयम रखने की कोशिश की थी।

दावरा तेरी मशीअत के तकाजों की कसम
मैं तेरी कसम खा कर कहता हूं; हे प्रभु!
वाकई दिल पै बड़ा जब्र किया था मैंने।

मैंने बहुत तरह से अपने दिल को रोक लेना चाहा था, नियंत्रण रखना चाहा था। मगर सब नियंत्रण टूट गया। वह सौंदर्य कुछ ऐसा था।

जुर्म अगर हुस्ने-नजर है तो गुनहगार हूं मैं
दावरा इसके सिवा मेरी खता कुछ भी नहीं
मुझको मालूम था आवारा-निगाही का मआल

और मुझे यह भी पता था कि आंखों को ऐसे भटकाऊंगा, आवारा, तो इसका परिणाम क्या होगा? ऐसा भी नहीं है कि मुझे इसके परिणाम का कुछ पता नहीं था। इसका परिणाम बुरा होगा। मैं भटकूंगा। मैं राह से उतर जाऊंगा। यह संसार का चक्र शुरू होगा। यह मुझे पता था।

मुझको मालूम था आवारा-निगाही का मआल
लेकिन उस शोख का अफसूने नजर क्या कहिए!
पर उसकी आंख! उस सौंदर्य का कहना क्या!
यह भगवान से कह रहा है प्रेमी।

दावरा! मेरी न.जर में थी तेरी शाने जलाल

और मुझे पता है--तेरा तेज पता है! तेरी भव्यता पता है। कुछ ऐसा नहीं कि मैं तुझे नहीं जानता। तेरी भव्यता का मुझे स्मरण है।

दावरा! मेरी न.जर में थी तेरी शाने जलाल

लेकिन ऐ काश दिखा दूं तुझे उसका भी जमाल!

लेकिन काश, अगर मैं उसका सौंदर्य तुझे दिखा सकता तो तू समझता मेरी मुसीबत। मैं पागल हो गया।

दावरा! कितने दिल आवेज थे उसके खतोहाल

और कितने लोग दीवाने थे! कोई मैं अकेला दीवाना था! उसके नाक-नक्श को देख कर कितने लोग दीवाने थे!

दावरा! कितने दिल आवेज थे उसके खतोहाल

और फिर उस पै मेरा हुस्ने नजर क्या कहिए!

और फिर तूने जो मुझे आंख दी है सौंदर्य की परख की, मैं क्या करता, पागल हो गया।

यह तो साधारण प्रेम की बात है। साधारण प्रेम आदमी को इतना पागल बना देता है, तो परमात्मा के प्रेम का तो फिर कोई हिसाब लगाना संभव नहीं। और दोनों में जो फर्क है वह परिमाण का ही होता तो भी ठीक था, वह गुण का फर्क है। मात्रा का ही भेद नहीं है। ऐसा नहीं है कि यहां छोटा सा प्रेम है और इसी का बड़ा रूप परमात्मा का प्रेम है। मात्रा का ही फर्क नहीं है, गुण का फर्क है। वह प्रेम किसी और ही आयाम में है। वह प्रेम परिपूर्ण प्रेम है। वह प्रेम शाश्वत प्रेम है। वह एक दफा घटता है तो घटता है, फिर मिटता नहीं। यहां तो प्रेम बनते हैं, मिटते हैं, पानी के बुलबुले हैं। पानी केरा बुदबुदा! क्षणभंगुर है। सुबह खिले फूल, सांझ मुरझा जाते हैं। वह तो ऐसा कमल है जो कभी मुरझाता नहीं--स्वर्ण कमल है। और उसकी आंख में आंख मिल जाए, उस दिल के साथ दिल जुड़ जाए, उसके हाथ में हाथ आ जाए, उसके नाच में नाच हो जाए, उसके साथ रास रच जाए तो पागल न होओगे तो क्या होगा? होश सम्हाल कर रखोगे कैसे? होश सम्हाल कर रखोगे कहां? होश सम्हाल कर करोगे भी क्या? इसलिए वहां होशियार नहीं पहुंच पाते, वहां दीवाने पहुंचते हैं! वहां गति दीवानों की है। होशियार तो बाहर ही रह जाते हैं मंदिर के। जहां तुम जूते उतार आते हो होशियार वहीं रह जाते हैं। जो होशियारी वहीं रख आता है, वही मंदिर में भीतर प्रवेश करता है। वहां दीवानों की गति है।

भगवान पागलों को चाहता है, क्योंकि पागल ही उसे चाह सकते हैं। सब चाहत पागलपन लाती है।

आज अजाने फिर मेरे इस हृदय-गगन के आंगन में

यह सतरंगी याद तुम्हारी झूला डाल गई।

उसकी याद आते ही एक नया झूला पड़ जाता है तुम्हारे प्राणों के आंगन में।

आज अजाने फिर मेरे इस हृदय-गगन के आंगन में

यह सतरंगी याद तुम्हारी झूला डाल गई

मंद-मंद मुसकाया मेरे भावों का यह ताजमहल

नयनों के सूने पनघट पर फिर हो आई चहल-पहल

आशाओं ने मेंहदी घोली, मांग सजाई चाहों ने

प्राणों के निर्झर में किसने आज मचा दी फिर हलचल

भीगा आंगन, भीगा आंचल, भीग गया तन-मन मेरा

नयनों के तट, बौराई घट, कंचन ढाल गई।

आज अजाने फिर मेरे इस हृदय-गगन के आंगन में

यह सतरंगी याद तुम्हारी झूला डाल गई।

उसकी याद आते ही तुम किसी दूसरे लोक में रूपांतरित हो जाते हो। बहती है एक रसधार।

भीगा आंगन, भीगा आंचल, भीग गया तन-मन मेरा

नयनों के तट, बौराई घट, कंचन ढाल गई।

आज अजाने फिर मेरे इस हृदय-गगन के आंगन में
यह सतरंगी याद तुम्हारी झूला डाल गई।

पागल तो हो ही जाता है आदमी। मगर धन्यभागी हैं वे जो पागल होने का साहस जुटा लेते हैं।

धीरे-धीरे चलो। धीरे-धीरे हिम्मत बढ़ाओ। एक-एक कदम, एक-एक इंच। मगर अपनी होशियारी को थोड़ा-थोड़ा छोड़ो। इस होशियारी में चूक जाओगे। इस होशियारी में जन्मों-जन्मों तक चूके हो। यह होशियारी ही तुम्हारी फांसी का फंदा बन गई है। इस होशियारी के कारण ही बाजार में बस ठीकरे इकट्ठे कर रहे हो।

विराट को चाहना हो तो यह होशियारी बड़ी छोटी है, इसमें विराट नहीं समाता। हृदय तुम्हारा परमात्मा को ले सकता है, सिर तुम्हारा नहीं ले पाता। सिर बहुत छोटा है, हृदय बहुत बड़ा है।

मुझसे लोग पूछते हैं, हृदय कहां है? एक दिन एक युवक ने पूछा कि हृदय कहां है, किस जगह है ठीक-ठीक शरीर में? उससे मैंने कहा, सिर तुम्हारे भीतर है, तुम हृदय के भीतर हो। हृदय तुम्हारे भीतर नहीं है। ये जो फेफड़े फड़कते हैं, इनको हृदय मत समझ लेना। यह तो केवल वायु को शुद्ध करने का यंत्र मात्र है। हृदय के भीतर तुम हो। हृदय तुम से बड़ा है। सिर तुम से छोटा है। यह जो सिर के भीतर विचारों का जाल फैलता है, यह तुम्हारा है; यह तुम्हारी निजी दुनिया है। यह सत्य की दुनिया नहीं है; यह झूठ की दुनिया है; यह सपनों की दुनिया है।

जैसे ही तुम्हारी ऊर्जा इस सिर के फंदे के बाहर निकल जाती है, जैसे ही सिर के बाहर तुम आए वैसे ही आंगन मिलता है विराट का--तुम्हारा हृदय का आंगन। वह इतना ही बड़ा है जैसा आकाश। तुम्हारे अन्तर में इतना ही बड़ा आकाश छिपा है जितना बाहर। उस आकाश में उतरोगे तो फिर बुद्धि की छोटी-छोटी बातें जो कल तक बड़ी महत्त्वपूर्ण मालूम पड़ती थीं, महत्त्वपूर्ण नहीं मालूम पड़ेंगी। और जिनको अभी भी महत्वपूर्ण मालूम पड़ रही हैं, उन्हें तुम पागल मालूम पड़ो तो कुछ आश्चर्य तो नहीं।

ऐसा ही समझो कि कुछ बच्चे कंकड़-पत्थरों से खेल रहे हैं, समुद्र के किनारे शंख-सीप बीन रहे हैं, हरे-नीले-लाल पत्थर बीन कर इकट्ठे कर रहे हैं। और तभी किसी बच्चे को हीरा हाथ लग जाए, तो वह बच्चा अपने सब कंकड़-पत्थर मोती-सीप, छोड़-छाड़ कर हीरे को गांठ बांधे और घर भाग जाए, बाकी सारे बच्चे उसे पागल समझेंगे। वे कहेंगे, यह भी पागल है, दिन भर इन्हीं सीपियों को, शंखों को बीनने में बिताया और अब सांझ सब छोड़-छाड़ कर भाग गया, पागल है। उन्हें पता नहीं, उसे हीरा हाथ लग गया है। कंकड़-पत्थर अब करना क्या है!

कबीर ने कहा हैः हीरा पायो गांठ गठियायो। जैसे ही हीरा मिला कि आदमी फिर गांठ में रख लेता है। फिर कहां! और कल तक जो चीजें मूल्यवान मालूम होती थीं, वे एकदम निर्मूल्य हो जाती हैं।

एक छोटी सी सूफी कथा है। एक फकीर एक वृक्ष के नीचे बैठता और रोज देखता एक लकड़हारा लकड़ियां काटने आता। वह उसके पास ही जंगल में लकड़ियां काट कर लौट जाता। उसे एक दिन दया आई, उसने उस आदमी को कहा कि तू पागल है, जरा और आगे क्यों नहीं जाता? उसने कहा, और आगे क्या होगा?

तू जरा आगे जा। मेरी मान।

फकीर कभी कुछ बोला भी नहीं था, फकीर सदा शांत बैठा रहता था। इस लकड़हारे को इस पर बड़ी श्रद्धा भी धीरे-धीरे उत्पन्न हुई थी। न तो यह कुछ कहा था कभी, न इसे कुछ करते देखा था, यह तो वहीं वृक्ष के नीचे शांत बैठा रहता था। लेकिन इसकी शांत प्रतिमा कभी-कभी लकड़हारे को बड़े आनंद से भर देती थी। कभी-कभी वह दो रोटी भी घर से इसके लिए ले आता था। कभी दो फूल भी चढ़ा जाता था। फकीर ने कहा तो उसने कहा कुछ होगा मतलब, वह दूसरे दिन जरा भीतर जंगल में गहरा गया। वह चकित हुआ, वहां चंदन के वृक्ष थे। लकड़ियां महीने भर में काट कर जितना कमाता था वह, उतना तो एक दिन की कमाई हो गई, एक दिन में कमा लिया। वह तो बड़ा खुश हुआ। फकीर के चरणों में खूब मिठाइयां लाया।

कुछ महीनों बाद फकीर ने कहाः पागल, वहीं अटक गया? थोड़ा और आगे जा।

उसने कहाः अब और आगे क्या होगा? अब बहुत हो रहा है, मजा ही मजा है। एक दिन काट लेता हूं, महीने दो महीने के लिए फुरसत। और किसी को इसका पता भी नहीं है। कोई दूसरा काटने वाला भी नहीं है; सारा जंगल पड़ा है चंदन का। आपने पहले क्यों न कहा? पहले ही कह देते महाराज, आप इत्ते दिन तक चुप क्यों बैठे रहे?

उस फकीर ने कहाः जब समय आता है और जब ठीक घड़ी होती है तभी कहा जाता है। पहले मैं कहता तो तू मानता नहीं। जब धीरे-धीरे मैंने देखा कि तेरे मन में मेरे प्रति प्रेम और भरोसा आ गया तब मैंने कहा। मुझे तो पता था। मुझे तो और भी पता है। इसलिए तुझसे कहता हूं कि थोड़ा और आगे जा।

लकड़हारे को लगा कि जाने में कुछ सार तो क्या है, बहुत तो मिल रहा है! अब और इससे ज्यादा हो भी क्या सकता है? लकड़हारा ज्यादा से ज्यादा चंदन की बात सोच सकता है, समझना। लकड़ी काटने वाला बहुत से बहुत सोचेगा तो चंदन की लकड़ी, इसके पार तो कोई लकड़ी होती नहीं। इससे आगे हो भी क्या सकता है! दो-चार दिन तो वह सोचता रहा, फिर एक दिन उसने सोचा, एक दिन जाकर देख लेने में हर्ज भी क्या है। फकीर कहता है तो देख ही लो। बार-बार कहता है, रोज-रोज कहता है; जब भी आता हूं तभी याद दिलाता है कि आगे क्यों नहीं जाता?

जंचती तो उसको बात नहीं थी। बुद्धि कहती थी, अब और आगे हो क्या सकता है? लकड़ी की भाषा चंदन तक जा सकती थी। समाप्त हो गई। गया एक दिन आगे। कुछ बड़ी आशा से नहीं गया था। कोई बहुत भरोसे से भी नहीं गया था, लेकिन अब फकीर कहता है तो शायद ठीक ही कहता हो; एक दफा करके देख लेने जैसा है। गया तो बड़ा हैरान हुआ। वहां तो चांदी की एक खदान मिली। मगर यह तो उसकी कल्पना में भी नहीं आ सकता था। चंदन से चांदी, कोई जोड़ नहीं था।

तर्क की तो एक व्यवस्था होती है। तर्क में एक सीमा होती है। अब चंदन से चांदी छलांग है। इसमें कुछ संबंध नहीं है। चंदन से तर्क किसी भी तरह चांदी पर नहीं पहुंचता। मगर जिंदगी तर्क थोड़े ही है। जिंदगी में बड़ी छलांगें हैं। यहां चांदी चंदन से पहुंची जा सकती है।

वह तो मस्त हो गया। उसने कहा कि हद हो गई, मैं भी इस फकीर की सुना नहीं, मैं भी कैसा नासमझ हूं! उसने चांदी भरी। अब तो सालों के लिए एक दफे में काम हो जाता है। साल दो साल ऐसे ही बीत गए। फकीर ने एक दिन उसे कहा कि तुझे अपने से कभी अक्ल आएगी कि नहीं, कि मुझे ही कहना पड़ेगा बार-बार? आगे क्यों नहीं जाता मूढ़?

उसने कहाः अब और आगे क्या हो सकता है?

गरीब आदमी! गरीब आदमी की चित्त-दशा चांदी के आगे नहीं जाती। चांदी के आभूषण, बस समाप्त हो गई बात। सोना तो राजमहलों में होता था उन दिनों। पुरानी कहानी। सोना तो गरीब आदमी को पहनने का हक भी नहीं था। अब भी गरीब आदमी की स्त्री पैर में सोना पहनने में डरती है। वह सिर्फ रानियों के लिए था। अब भी नहीं पहनती, गांवों में अब भी नहीं पहनती। गांव में अभी कोई स्त्री हिम्मत नहीं कर सकती कि सोना पहन ले। राजा नहीं रहे, रानियां नहीं रहीं; मगर सोना पैर में! वह सिर्फ राजाओं के लिए था, रानियों के लिए था। चांदी आखिरी बात थी आभूषण में।

उसने कहाः अब और आगे क्या हो सकता है? चांदी मिल गई महाराज, अब आगे और हो भी क्या सकता है?

उसने कहाः तू फिर भी कोशिश कर।

अब थोड़ा भरोसा उसे आने लगा था कि यह आदमी चंदन से चांदी पर ले गया, पता नहीं कुछ हो। सोना तो उसके सपने में भी नहीं आ सकता था। आगे गया तो सोने की खान मिली। तब तो वह निश्चिंत हो गया कि आखिरी पड़ाव आ गया। वर्षों बीत गए। फकीर भी बूढ़ा हो गया था। फकीर ने उसे एक दिन कहा कि देख, अब मेरा आखिरी समय आ गया है, अब मैं जा रहा हूं। तुझे आखिरी बात कहे जाता हूं, तुझमें अपने से भी कहीं कुछ

किसी दिन अक्ल, अपने से भी कभी तेरे भीतर कभी अन्वेषण, खोज की वृत्ति पैदा होगी कि नहीं होगी, कि तू मुझसे ही बंधा रहेगा? आगे क्यों नहीं जाता?

उसने कहाः महाराज, अब आप चुप रहो। काफी आगे जा चुका हूं। अब आगे कुछ है भी नहीं, हो भी नहीं सकता। अब मुझे आपकी बात पर बिलकुल भरोसा नहीं आता। सोना मिल गया, अब और क्या होगा?

फकीर ने कहाः यह मैं मर रहा हूं, मरते हुए आदमी की बात मान ले, एक दफा आगे हो आ। इसके पहले कि मैं मरूं, मैं तुझे और आगे गया हुआ देख लेना चाहता हूं।

वह फकीर की बात थी, फकीर मर रहा है तो वह गया। गया तो वहां एक हीरों की खदान मिली। सोचा, बस अब आ गया आखिरी पड़ाव, फकीर को बहुत धन्यवाद दिया। फकीर ने कहाः इसको आखिरी पड़ाव मत समझ लेना, उसके और थोड़े आगे।

उसने कहाः अब मैं बिलकुल नहीं मानता। अब आप मजाक कर रहे हैं। अब आप नाहक मुझे उलझा रहे हैं। उसके आगे अब कुछ भी नहीं हो सकता।

फकीर ने कहाः उसके आगे मैं हूं। उसके आगे ध्यान है। धन के आगे ध्यान है। धन से ध्यान! फिर एक छलांग लगती है। जैसे चंदन से चांदी। जैसे सोने से हीरे। ऐसा धन से ध्यान। और ध्यान से परमात्मा।

फकीर ने कहाः जब तक परमात्मा न मिल जाए तब तक आगे चलते ही जाना, चलते ही जाना, चलते ही जाना, रुकना ही मत। उसके पहले जो रुका, वह भूला और भटका।

मगर और लकड़हारे हैं जो अभी वहीं लकड़ियां काट रहे हैं, वे इसको पागल कहते हैं। वे कहते हैं, तू जाता कहां है? लकड़ियां यहां हैं, तू जाता कहां है? कई दिन-दिन तक दिखाई नहीं पड़ता, तू करता क्या है? आलसी हो गया है? तेरी कुछ खोज-खबर नहीं मिलती।

वह हंसता है, वह मुस्कुराता है।

हीरा पायो गांठ गठियायो, बाको अब बार-बार क्यों खोले। अब वह इनसे कहे भी क्या! और वह जानता भी है भलीभांति कि ये मानेंगे नहीं। मैंने कहां मानी थी। और मनाने वाला बड़ा फकीर था, मैं तो कुछ भी नहीं हूं। मेरी ये नहीं मानेंगे। ये कोई मेरी नहीं मान सकते।

ये उसे पागल समझते हैं। ये कहते हैं, इसका दिमाग खराब हो गया है।

तो जिस दिन तुम बाजार से मंदिर की तरफ जाओगे, बाजार के लोग तुम्हें पागल समझेंगे। लकड़हारे हैं। उन्हें चंदन की लकड़ी का पता नहीं है। फिर एक दिन जब तुम और आगे बढ़ोगे, और आगे बढ़ोगे तो धीरे-धीरे जो लोग पीछे छूटते जाएंगे वे निर्णय लेते जाएंगे, तुम्हारा दिमाग खराब हो गया। और जिस दिन तुम ध्यान की अंतिम गहराई में, समाधि में पहुंचोगे और परमात्मा का दर्शन करोगे, उस दिन इस जगत में सब कूड़ा-करकट है। उस दिन तुम सब इस जगत में पाओगे निर्मूल्य है। तो जो इस जगत में मूल्य देखते हैं, अगर वे तुम्हें पागल कहें तो कुछ आश्चर्य नहीं। उनका कहना भी ठीक है।

और यह पागलपन सौभाग्य है; सौभाग्य से किसी को मिलता है। मेरी मानो और आगे चलो।

आज इतना ही।

उन्नीसवां प्रवचन

शून्य की झीलः शील के कमल

सील की अवध, सनेह का जनकपुर,
सत्त की जानकी, ब्याह कीता।
मनहिं दुलहा बने आप रघुनाथ जी,
ज्ञान के मौर सिर बांधि लीता।।
प्रेम-बारात जब चली है उमंगिकै,
छिमा बिछाय जनबांस दीता।
भूप अहंकार के मान को मर्दिकै,
थीरता-धनुष को जाय जीता।। 9।।

बाम्हन तो भये जनेउ को पहिरि कै,
बाम्हनी के गले कछु नाहिं देखा।
आधी सुद्रिनि रहै घर के बीच में,
करै, तुम खाहु यह कौन लेखा।।
सेख की सुन्नति से मुसलमानी भई,
सेखानी को नाहिं तुम कहौ सेखा।
आधी हिंदुइन रहै घरै बीच में,
पलटू अब दुहुन के मारु मेखा।। 10।।

तुरुक लै मुर्दा को कब्र में गाड़ते,
हिंदू लै आग के बीच जारैं।
पूरब वै गये हैं वै पच्छूं को,
दोऊ बेकूफ ह्वै खाक टारैं।।
वै पूजैं पत्थर को, कबर वै पूजते,
भटककै मुए दैं सीस मारैं।
दास पलटू कहै, साहिब है आप में
अपनी समझ बिनु दोउ हारैं।। 11।।

संतन के बीच में टेढ़ रहें
मठ बांधि संसार रिझावते हैं।
दस बीस सिष्य परमोधि लिया,
सबसे वह गोड़ धरावते हैं।।
संतन की बानी काटिके, जी
जोरि-जोरि के आप बनावते हैं।
पलटू कोस चारि-चारि के गिर्द में, जी

सोइ चक्रवर्ती कहलावते हैं।। 12।।

एक सुबह, ईसाई फकीर अगस्तीन से एक युवक ने आकर पूछाः मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूं; ग्रामीण हूं, गंवार हूं। धर्मशास्त्रों की बातें मेरी समझ में नहीं आतीं। बड़े उपदेश मेरे पल्ले नहीं पड़ते। आपने तो उस प्रभु को देखा है, आप मुझे दो शब्दों में सार की बात कह दें--ऐसी कि मैं उसे गांठ बांध लूं; ऐसी कि भुलाना भी चाहूं अपने अज्ञान में तो भी भुला न पाऊं; ऐसी कि चिंगारी बन जाए मेरे भीतर।

कहते हैं, अगस्तीन, जो कभी किसी प्रश्न के उत्तर देने में न झिझका था, क्षण भर को झिझक गया और उसने आंखें बंद कर लीं। उसके शिष्य बड़े चकित हुए। बड़े विद्वान आते हैं, बड़े पंडित आते हैं, बड़े धर्मशास्त्री आते हैं--अगस्तीन उनके प्रश्नों में आंख कभी बंद नहीं किया। उत्तर तत्क्षण होते हैं।

बड़ा मेधावी पुरुष था अगस्तीन। और आज एक छोटे से प्रश्न के उत्तर में आंखें बंद कर ली हैं। और बड़ी देर लगी, जैसे अगस्तीन भीतर बहुत खोजता रहा। फिर उसने आंखें खोलीं और उसने कहाः तो फिर एक शब्द याद रखो--प्रेम। उसमें सब आ जाता है--सब धर्म, सब धर्मशास्त्र, सब नीतियां, सब आदर्श। एक शब्द याद रखो फिर--प्रेम। और प्रेम जीवन में आ गया तो सब आ जाएगा। फिर तुम फिकर छोड़ो परमात्मा की। तुम प्रेम को सम्हाल लो, प्रेम के धागे में बंधा हुआ परमात्मा अपने आप आ जाता है।

अगस्तीन का यह उत्तर अत्यधिक मूल्यवान है। सारे धर्मों का सार प्रेम है। और प्रेम सम्हल जाए तो सब सम्हल गया। और प्रेम न सम्हल पाए तो तुम सब सम्हालते रहो, फिर सब औपचारिक है, उसका कोई मूल्य नहीं है। और यह बात भी महत्त्वपूर्ण है कि अगस्तीन को सोचना पड़ा।

किसी ने रूजवेल्ट को एक बार पूछा कि आप व्याख्यान देते हैं, तो आपको तैयारी करनी पड़ती होगी? कितनी तैयारी करनी पड़ती है? रूजवेल्ट ने कहाः निर्भर करता है। अगर दो घंटे बोलना हो तो तैयारी बिलकुल नहीं करनी पड़ती; फिर तो जो भी बोलना है बोले चला जाता हूं। अगर आधा घंटा बोलना हो तो तैयारी करनी पड़ती है; दिन भर लगाना पड़ता है। और अगर दस मिनट ही बोलना हो तो दो दिन भी लग जाते हैं। और अगर दो ही मिनट में बात कहनी हो तो सप्ताह बीत जाते हैं, तब कहीं मैं तैयार कर पाता हूं।

यह बात सोचने जैसी है। जितने संक्षिप्त में कहनी हो बात, उतनी देर लग जाती है। और अगर एक ही शब्द में कहनी हो, तो स्वभावतः अगस्तीन को बड़ा मंथन करना पड़ा। बहुत से शब्द उठे होंगे उसके भीतर, जब वह सोचने लगा कि क्या उत्तर दूं इस ग्रामीण को। सारे शास्त्र घूम गए होंगे उसके भीतर। शास्त्रों का ज्ञाता था; बाइबिल उसे कंठस्थ थी। उन सभी शब्दों ने सिर उठाए होंगे। लेकिन उन्होंने सबको इनकार कर दिया। सारे मंदिर, सारे मस्जिद, सारी प्रार्थनाएं, सब इनकार कर दीं। और उस सब में से चुना एक शब्द, जो शायद भीड़ में कहीं खो ही जाता। क्योंकि प्रेम ऐसा है कि अंत में खड़ा होता है। पंक्तियों के आगे खड़े होने का प्रेम का कोई आग्रह नहीं है। लेकिन अगस्तीन ने खोज लिया सूत्र, सार-सूत्र खोज लिया।

भक्ति का सारसूत्र भी प्रेम है।

आज के वचन प्रेम की दिशा का अपूर्व रूप से प्रस्थापन करते हैं। एक-एक सूत्र को ख्याल से समझें।

"सील की अवध सनेह का जनकपुर,
सत्त की जानकी ब्याह कीता।
मनहिं दुलहा बने आप रघुनाथ जी,
ज्ञान के मौर सिर बांधि लीता।।
प्रेम-बारात जब चली है उमंगिकै,
छिमा बिछाय जनबांस दीता।
भूप अहंकार के मान को मर्दिकै
थीरता-धनुष को जाय जीता।।"

सारी राम की कथा इन थोड़े से शब्दों में आ गई। सारा रामचरितमानस। तुलसीदास को महाकाव्य लिखना पड़ा है। पूरा महाकाव्य पलटू की इन थोड़ी सी पंक्तियों में आ गया। बाकी सब प्रतीक-कथाएं हैं। बाकी सब व्याख्याएं हैं; समझाने की बातें हैं। सार की बात आ गई।

"सील की अवध... "

कहते हैंः अयोध्या, जहां राम जन्मे और जीए, जहां राम रहे और राजा बने। कौन सी अयोध्या की बात हो रही है? वह जो बाहर अयोध्या है, उसकी बात हो रही है? तो चूक जाओगे। फिर जाकर सिर पटक आना अयोध्या नगरी में, कर आना तीर्थयात्रा--और कहीं न पहुंचोगे। जेब खाली करके लौट आओगे; आत्मा भरी हुई नहीं लौटेगी। जो पास था वह भी गंवा आओगे; लाओगे कुछ भी नहीं। इतना सस्ता थोड़े ही है, कि खरीद ली टिकट चले अयोध्या। इतना सस्ता थोड़े ही है कि मरते वक्त चले गए और अयोध्या में ही रहने लगे कि वहीं राम की कृपा से तर जाएंगे।

"पलटू कहते हैंः सील की अवध!"

अगर सच्ची अयोध्या खोजनी हो तो शील की।

शील और चरित्र दो शब्द समझने जैसे हैं। दोनों का भाषाकोश में एक ही अर्थ है, लेकिन जीवन के कोश में बड़े भिन्न अर्थ हैं। चरित्र कहते हैं आयोजित शील को। और शील कहते हैं स्व-स्पंदित चरित्र को। फर्क भारी है, जमीन-आसमान जितना है। भाषाकोश के धोखे में मत पड़ना। चरित्र कहते हैंः अपने पर जबरदस्ती आरोपित आचरण। तुम्हें कुछ पता नहीं है क्या ठीक है। लोगों ने कहा, यह ठीक है। भय-प्रलोभन में तुम वैसा करने लगे। तुम्हारी अनुभूति से नहीं जन्मा तुम्हारा जीवन। तुम्हारा आचरण तुम्हारी प्रतीति से नहीं उमगा। यह तुम्हारा साक्षात्कार नहीं है।

लोग कहते हैंः क्रोध बुरा है। लोगों ने समझाया है। तुम पैदा हुए थे, तब से समझा रहे हैं कि क्रोध बुरा है। किताबों में लिखा हैः क्रोध बुरा है। स्कूलों में सिखाया जा रहा हैः क्रोध बुरा है। मंदिरों में समझाया जा रहा हैः क्रोध बुरा है। तुम्हारे चारों तरफ एक हवा संस्कार की पैदा की जा रही है कि क्रोध बुरा है। और क्रोधी असम्मानित होता है। अक्रोधी की पूजा है। तुम्हारे अहंकार को फुसलाया जा रहा है कि अगर तुम क्रोध न करोगे तो सम्मानित होओगे और अगर क्रोध करोगे तो अपमानित होओगे। यहीं नहीं, परलोक में भी। परलोक में भी परमात्मा प्रतीक्षा करेगा अगर तुमने क्रोध न किया; तुम्हारे स्वागत को वंदनवार लगा कर स्वर्ग के द्वार पर खड़ा रहेगा। और अगर क्रोध किया तो नरक में दबोचे जाओगे, आग में जलाए जाओगे, शैतान के द्वारा सताए जाओगे।

तो तुम्हें भय दिया जा रहा है, प्रलोभन दिया जा रहा है। तुम्हारे अहंकार को फुसलाया जा रहा है कि क्रोध मत करना। फिर इन सब बातों में तुम पड़ गए और तुमने एक आचरण निर्मित कर लिया। जब क्रोध आया तो दबा दिया। क्रोध आया, पी गए। कहते हैं न क्रोध पी गए! कहां पीओगे? जब कोई चीज पीते हो तो पेट में चली जाती है। जब क्रोध को पी लोगे तो क्रोध पेट में इकट्ठा होगा। जब क्रोध को पी लोगे तो तुम्हारे खून में चला जाएगा। जब क्रोध को पी लोगे तो तुम्हारे हड्डी-मांस-मज्जा में समा जाएगा। जब क्रोध को पी लोगे तो तुम्हारे अचेतन में क्रोध, क्रोध के ज्वालामुखी जलने लगेंगे। ऊपर-ऊपर शांति होगी, भीतर-भीतर आग। तुम दोहरे आदमी हो जाओगे। तुम पाखंडी हो जाओगे। तुम कहोगे कुछ, होओगे कुछ; बोलोगे कुछ, प्रयोजन कुछ और होगा। तुम दो तरह की जिंदगी जीने लगोगे। तुम्हारी जिंदगी झूठी हो जाएगी, अप्रमाणिक हो जाएगी।

जिनको तुम चरित्रवान कहते हो, उनकी जिंदगी अप्रमाणिक होती है। उनकी असली जिंदगी वे जीते ही नहीं। और जो वे जीते हैं, वह नकली होती है। अक्सर मरते वक्त आदमी पाता हैः यह मैं किसकी जिंदगी जी लिया? अपनी जिंदगी तो कभी जीया ही नहीं। औरों के इशारों पर चला। औरों ने जो कहा, किया। औरों ने जैसा बताया, वैसा जीया। अपनी जिंदगी तो जीया ही नहीं। यह मैं किसकी जिंदगी जी लिया?

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बहुत लोग मरते वक्त यह अनुभव करते हैं कि जैसे मैं किसी और की जिंदगी जी लिया। जैसे जिंदगी में प्रवेश करते वक्त तुम्हारे हाथ में किसी और का पार्ट लग गया। जो किसी और अभिनेता को करना था, वह भूल से तुम्हारे हाथ पड़ गया और तुमने जिंदगी भर उसी के अनुसार आचरण कर लिया। पछताओगे। बहुत पछताओगे। पछतावे के सिवा हाथ कुछ भी न लगेगा। जिंदगी यूं ही चली जाएगी। जिंदगी में रस नहीं पैदा होगा। जिंदगी में उत्सव नहीं होगा। तुम परमात्मा को धन्यवाद कैसे दे सकोगे? तुम्हारे मन में शिकायत होगी। शिकायत ही शिकायत होगी। तुम्हारे मन में परमात्मा के प्रति क्रोध होगा कि यह कैसी जिंदगी मुझे दी--आया भी और चला भी, और हाथ कुछ भी न लगा! एक फूल न खिला। एक गीत न फूटा। एक बार नाचा नहीं मन भर कर। कहीं कोई सुख, कहीं कोई संगीत न पाया।

कैसे पाओगे? तुम कुछ और बनने की कोशिश में लगे रहे। बनने कुछ आए थे, बनने की कुछ और कोशिश करते रहे।

चरित्र इस जगत में सब से बड़ा खतरनाक शब्द है। और ध्यान रखना, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि चरित्रहीन हो जाओ।

शील दूसरा शब्द, समझने जैसा है। शील का अर्थ हैः अपने साक्षात्कार से, अपने अनुभव से, अपने बोध से, अपने ध्यान से--अपने जीवन को निर्णीत होने दो। उधार जीवन मत जीओ; अपना जीवन जीओ। क्रोध बुरा है, निश्चित बुरा है। मेरे कहने से तुमने अगर माना तो चरित्र पैदा होगा और तुमने अपने अनुभव से अगर माना तो शील पैदा होगा। और ऊपर से दोनों बातें एक जैसी लगेंगी। शीलवान व्यक्ति और चरित्रवान व्यक्ति एक जैसा लगेगा। और भीतर शीलवान के अपूर्व शांति होगी और चरित्रवान के सिर्फ क्रोध होगा। भीतर एक के आग होगी और एक के भीतर कमल खिलते होंगे। अपूर्व भेद है, जमीन आसमान का भेद है, एक के भीतर नरक और एक के भीतर स्वर्ग होगा, इतना भेद है। और ऊपर से दोनों एक जैसे लगेंगे।

कई बार तो ऐसा हो जाएगा कि चरित्रवान आदमी ज्यादा मूल्यवान मालूम पड़ेगा--शीलवान से भी। क्योंकि चरित्रवान आदमी तो सिर्फ पाखंड कर रहा है। वह पाखंड करने में कुशल हो जाएगा, बहुत कुशल हो जाएगा। अभ्यास, अभ्यास, अभ्यास--आदमी कुशल हो जाता है। शीलवान आदमी तो कोई अभ्यास नहीं कर रहा है। वह तो प्रतिपल जीएगा उससे कभी भूल-चूक भी हो सकती है। चरित्रवान से भूल-चूक होती ही नहीं। भूल-चूक का कोई कारण ही नहीं है। उसके पास तो मुर्दा एक आचरण है, जिसको दोहराए चले जाना है।

तुमने कभी मशीनों को भूल करते देखा? मशीनें भूल नहीं कर सकतीं। मशीन मशीन है; भूल का उपाय कहां! भूल तो आदमी की गरिमा है, आदमी का गौरव है; सिर्फ आदमी कर सकता है, मशीन नहीं कर सकती भूल।

तो जिस आदमी ने चरित्र को यांत्रिक बना लिया है, उससे तो भूल होती ही नहीं। शीलवान से शायद कभी भूल हो जाए, क्योंकि शीलवान को प्रतिपल तय करना होता हैः क्या करूं? पल खड़ा हो जाता है, तब शीलवान को उसकी चुनौती स्वीकार करके उत्तर देना होता है। चरित्रवान तो पहले से उत्तर तैयार रखता है। उसे उत्तर बनाना नहीं पड़ता। उसे उत्तर खोजना नहीं पड़ता। उसका उत्तर तो रेडीमेड है। प्रश्न के पहले ही उत्तर है। तुमने प्रश्न पूछा ही नहीं, उसका उत्तर तो तैयार ही है। तुम न भी पूछते, तो भी तैयार था। तुमने पूछा, वह तत्क्षण दे देगा जवाब। उसके पास तो बंधी लकीरें हैं।

चरित्रवान तो ऐसे है जैसे कि मालगाड़ी के डिब्बे पटरियों पर दौड़ते रहते हैं--उन्हीं पटरियों पर बार-बार। शीलवान ऐसे है जैसे सागर की तरफ बहती हुई सरिता। कुछ पक्का नहीं है, कौन सी दिशा में बहेगी, कौन सा मार्ग चुनेगी, कब मार्ग बदल लेगी--कुछ पक्का नहीं है। लोहे की पटरियां नहीं बिछी हैं नदी के लिए और आगे कोई झंडा लेकर नहीं चल रहा है कि मेरे पीछे-पीछे आओ। नदी अपनी मौज से बहती है। नदी अपनी गति निर्धारित करती है। नदी प्रतिपल तय करती है; जहां सर्वाधिक सुगमता होती है, वहां से बहती है। नदी का कोई

पूर्व निर्धारित पथ नहीं है। नदी पथ-हीन है। फिर भी सागर तो पहुंचती है, इसलिए कोई पथ तो है। लेकिन पथ प्रतिपल निर्धारित होता है।

शील नदी जैसा है; चरित्र रेल की पटरियों जैसा। चरित्रवान व्यक्ति जड़ होता है, मुर्दा होता है, यंत्रवत होता है। उससे भूल नहीं होती, लेकिन वह मनुष्य ही नहीं है। शीलवान से शायद कभी भूल हो, लेकिन शीलवान की भूल भी गौरवशाली है। भूल एक दफा होगी तो उससे और नया अनुभव होगा। चरित्रवान से या तो भूल बिलकुल नहीं होती; या अगर भूल होती है तो बार-बार वही-वही होती है, क्योंकि चरित्रवान के पास कोई बोध तो नहीं है। अगर उसने एक बार दो और दो पांच जोड़ लिए, तो वह जिंदगी भर दो और दो पांच जोड़ता जाएगा। शीलवान से भूल होती है; लेकिन एक भूल एक ही बार होती है। उससे दुबारा वही भूल नहीं होती। अनुभव से सीखता है शीलवान। चरित्रवान तो अनुभव से सीखता ही नहीं। सीखने से तो चरित्रवान डरता है। डरता है कि कहीं सीखने में कोई ऐसी बात न आ जाए कि चरित्र के खिलाफ चली जाए। फिर क्या करोगे? फिर किसकी मानोगे? अपनी मानोगे कि गुरुजनों की? वह तो अपने से डरता है। वह अपने को काटता रहता है; गुरुजन जो कहते हैं मानता चला जाता है। ऐसे एक मुर्दा जीवन पैदा होता है।

"सील की अवध... "

पलटू कहते हैंः शील पैदा हो; चरित्र नहीं। बोध से जन्मे तुम्हारा जीवन। तुम प्रतिपल जागे हुए जीओ। तुम जीवन में जो भी करो, वह प्रतिक्रिया न हो; वह क्रिया हो। क्रिया अर्थात उसी क्षण जीवन को देख कर निकले। उत्तर जीवंत हो; बंधा-बंधाया, पिटा-पिटाया न हो, तैयार न हो। तुम दर्पण जैसे रहो; जो सामने आए उसकी तस्वीर बने।

चरित्रवान आदमी तस्वीर जैसा है; कोई भी सामने आ जाए, कुछ फर्क नहीं पड़ता, उसकी तस्वीर तो बनी ही हुई है। शीलवान आदमी दर्पण जैसा है; जो सामने आता है उसकी तस्वीर बनती है; जैसा सामने आता है, वैसी ही तस्वीर बनती है। शीलवान खाली होता है, शून्य होता है।

शून्य से जन्मता है शील। बोध से जन्मता है शील। और शील जीवन को स्वतंत्रता देता है।

"सील की अवध... "

अगर अयोध्या ही जाना हो--पलटू कहते हैं तो शील की अयोध्या जाना।

"सनेह का जनकपुर।"

और अगर जनकपुर जाना हो, जहां सीता जन्मी--तो स्नेह का, तो प्रेम का।

स्नेह और प्रेम में भी थोड़ा सा फर्क है। उसे भी ख्याल में ले लेना--स्नेह और प्रेम। प्रेम में थोड़ी सी वासना मालूम पड़ती है। स्नेह में कोई वासना नहीं रह जाती। प्रेम में थोड़ा सा दंश रहता है--वासना का, मोह का, भोग का। स्नेह शुद्ध प्रेम है। प्रेम में थोड़ी सी छाया पड़ती है देह की। स्नेह में जरा सी भी छाया नहीं पड़ती। जब प्रेम परिपूर्ण रूप से पवित्र होता है, तब हम उसे स्नेह कहते हैं।

हमारी भाषा समृद्ध है। दुनिया की किसी भाषा में प्रेम के लिए इतने शब्द नहीं हैं, और इतने बारीक भेदों को बताने वाले शब्द नहीं हैं। अंग्रेजी में तो एक ही शब्द हैः लव। तो किसी भी चीज से प्रेम हो, तो उसी एक शब्द का उपयोग करना पड़ेगा। तो लोग कहते हैंः हमें आइस्क्रीम से बहुत प्रेम है; कि हमें हॉकी से बहुत प्रेम है; कि हमें शराब से बहुत प्रेम है; कि हमें परमात्मा से बहुत प्रेम है। अब आइस्क्रीम और परमात्मा दोनों के लिए एक ही शब्द उपयोग करना पड़े, यह भाषा जरा दरिद्र हो गई। हमारी भाषा समृद्ध है। हमारे पास बहुत शब्द हैं। उनमें ये दो शब्द महत्त्वपूर्ण हैं।

प्रेम का अर्थ होता हैः दूसरे से कुछ पाने की आकांक्षा छिपी है; प्रकट हो अप्रकट, मगर दूसरे से कुछ पाना है। स्नेह का अर्थ होता हैः दूसरे को सिर्फ देना है, पाने की कोई आकांक्षा नहीं है। पाने की रत्ती भर आकांक्षा नहीं है। सिर्फ दान है। जब प्रेम सिर्फ दान बन जाता है, तो तुम्हारे जीवन में अपूर्व ज्योति जलेगी। तुम्हारे जीवन में

अपूर्व सुगंध का आविर्भाव होगा। तुम एक नए छंद से भर जाओगे। अभी तो जीवन में एक ही दौड़ हैः कैसे पा लूं, कैसे लूट लूं? एक तो जीवन का ढंग है कि कैसे सबसे छीन लूं। यह संसारी का ढंग है। एक और दूसरा ढंग है जीवन का--ठीक विपरीत--जिसको मैं संन्यासी का ढंग कहता हूंः कैसे दे दूं! कैसे बांट दूं, जो भी मेरे पास है!

जिस दिन तुम्हारे भीतर बांटने वाले का जन्म होता है उस दिन तुम्हारे भीतर स्नेह का जन्म होता है। गुरु का शिष्य के प्रति जो प्रेम होता है, उसको हम स्नेह कहते हैं। मां का बेटे के प्रति जो प्रेम होता है, उसको हम स्नेह कहते हैं। दान ही है वहां। धन्यभाग है कि दूसरा स्वीकार कर लेता है। लेने की कोई आकांक्षा नहीं है। जहां लेना आया वहां विकृति आई। जहां लेना आया, वहां अग्नि की लपट शुद्ध न रही, धुएं से भर गई।

ख्याल तुमने किया, जब हम लकड़ी जलाते हैं, आग पैदा होती है, तो धुआं पैदा होता है! लेकिन तुम यह जानते हो कि लकड़ी से धुआं पैदा नहीं होता; लकड़ी में छिपे हुए पानी से पैदा होता है। लकड़ी सूखी हो, बिलकुल सूखी हो तो फिर धुआं पैदा नहीं होता। जितनी गीली हो उतनी ही धुंध आती है। ऐसे ही प्रेम से कभी जीवन में धुआं पैदा नहीं होता। प्रेम के साथ जो वासना लगी है, वासना की जो आर्द्रता है, गीलापन है, उसी से धुआं पैदा होता है। जब वासना की सारी आर्द्रता सूख जाती है, जब लकड़ी बिलकुल सूखी होती है, तब जरा भी धुआं पैदा नहीं होता। प्रेम से बड़ा धुआं पैदा होता है। इसलिए प्रेमियों को तुम अक्सर लड़ते पाओगे, झगड़ते पाओगे, एक-दूसरे पर कब्जा करते पाओगे, ईर्ष्या से भरे पाओगे। जलन, द्वेष, घृणा सब पैदा होता है, क्रोध। प्रेम के साथ हजार तरह की बीमारियां चलती हैं। स्नेह के साथ कोई बीमारी नहीं।

तो तुम ऐसा समझ लोः बीमार स्नेह का नाम प्रेम है। अस्पताल में पड़े स्नेह का नाम प्रेम। स्वस्थ हो गए प्रेम का नाम स्नेह। घर लौट आए प्रेम का नाम स्नेह। कोई रोग न रहा; नीरोग जब हो गए। अब सिर्फ देने में मजा है। और देने में अपूर्व मजा है। मांगने में भिखमंगापन है; मजा हो कैसे सकता है? कौन आनंद को उपलब्ध हो सकता है भिखारी होकर? जब भी तुमने मांगा है, तभी तुमने भीतर पाया होगा कि तुम दीन हो गए। जब भी हाथ फैलाए, तभी दीनता आ गई है। और दीनता में कोई कैसे खुश हो सकता है? चाहे कोई हीरा मिल जाए तुम्हें, दीनता के द्वारा मांग कर, हीरे की उतनी खुशी नहीं होगी, जितनी तुम भीतर पाओगे कि दीनता का दुख फैल गया है। छोटा होना पड़ा, भिक्षापात्र लेना पड़ा, हाथ फैलाने पड़े। हाथ फैलाने में सुख नहीं हो सकता। मौज तो तब घटती है, जब तुम दे पाते हो। और जब तुम ऐसे दे पाते हो कि धन्यवाद भी नहीं मांगते। और मांगना तो दूर, तुम रुकते भी नहीं इस बात के लिए भी कि दूसरा धन्यवाद भी दे। इतना ही नहीं, उलटे तुम धन्यवाद देते हो।

देखते हैं, हिंदुस्तान में एक रिवाज है! अगर बौद्ध भिक्षु को भोजन के लिए बुलाया जाता था या ब्राह्मण को अगर भोजन के लिए बुलाया जाता था, तो पहले उसे भोजन खिलाते, उसे कुछ दान देते, और दान के बाद दक्षिणा देते। दान का मतलब हुआः जो हमारे पास है, देने में हमें मजा आ रहा है। और दक्षिणा का अर्थ होता है कि आपने स्वीकार किया है, इनकार नहीं किया, उसका धन्यवाद दक्षिणा से देते हैं। पहले दान, फिर दक्षिणा। दक्षिणा का मतलब होता हैः आपकी बड़ी कृपा कि आपने स्वीकार कर लिया। अगर आप इनकार कर देते तो... ? आप कह देते कि नहीं--तो? ... तो दान में तो दिया और दक्षिणा में तुमने लिया, इसका धन्यवाद है। यह बड़ी अपूर्व बात है। जिसने लिया है, उससे धन्यवाद की अपेक्षा नहीं है। जिसने दिया है, वही धन्यवाद दे रहा है। स्नेह का यही अर्थ होता है।

"सील की अवध, सनेह का जनकुपर।"

अयोध्या चाहिए तो शील को जन्माओ। और जनकपुर बनना है, जिसमें सीता का जन्म हो सके, तो स्नेह को जन्माओ। राम का जन्म होगा अगर शील हो। सीता का जन्म होगा अगर स्नेह हो।

राम और सीता की कथा में तुमने एक बात देखी? राम अपने शील के लिए सब खोने को तैयार हैं; सीता को भी खोने के लिए तैयार हैं। और सीता अपने स्नेह के कारण सब देने को तैयार है; अपने को भी देने को तैयार

है। जरा भी ना-नुच नहीं है। सीता के मन में जरा भी शिकायत नहीं है कि राम ने उसे जंगल में फेंक दिया है। जंगल में भी बैठ कर राम का ही स्मरण करती है। जंगल में बैठे भी राम के ही स्मरण में डूबी है। सीता है स्नेह; राम है शील। इसलिए राम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहा है। जो पुरुष के भीतर उत्तम से उत्तम पैदा हो सकता है, वह राम के भीतर पैदा हुआ है, इसलिए पुरुषोत्तम कहा।

लेकिन सीता पर उतना विचार नहीं हुआ है, जितना राम पर विचार हुआ। पलटू ने ठीक किया, दोनों को एक ही वचन में याद किया। और ध्यान रखना, शील का बहुत मूल्य है, लेकिन स्नेह से ज्यादा नहीं। स्नेह का मूल्य ज्यादा है क्योंकि शील फिर भी एक व्यवस्था है। स्नेह एक बड़ी आंतरिक क्रांति है। पुरुष के लिए आसान है शील में डूब जाना। स्त्री के लिए आसान है स्नेह में डूब जाना। स्त्रियों ने जितना स्नेह जगत को दिया है उतना पुरुषों ने कभी नहीं दिया है पुरुष नहीं दे पाए; वह उनकी क्षमता नहीं है। पुरुषों ने शील दिया है जगत को; वैसा स्त्रियां नहीं दे पाईं। वह उनकी क्षमता नहीं है। और जिस व्यक्ति में शील और स्नेह दोनों का मिलन हो जाए, वहां सोने में सुगंध आ जाती है; वहां राम और सीता दोनों आ गए।

तुमने ख्याल किया, हमने सदा ही जब भी याद किया अपने सत्पुरुषों को, तो हमने स्त्रियों को पहले रखा! हम कहते हैंः सीता-राम। हम कहते हैंः राधा-कृष्ण। स्त्री को पहले रखा। क्योंकि स्त्रैण हृदय का जो मूल्य है, स्नेह का जो मूल्य है, वह शील से ज्यादा है। शील में तो कुछ न कुछ सोच-विचार चलता है; स्नेह में कोई सोच-विचार नहीं। शील में तो मस्तिष्क कुछ काम करता है। स्नेह में सिर्फ हृदय ही धड़कता है। स्नेह हार्दिक है।

"सील की अवध, सनेह का जनकपुर,
सत्त की जानकी ब्याह कीता।"

और अगर ब्याह करने की ही उत्सुकता हो, अगर इस जगत में कहीं भांवर ही डालनी हो, तो फिर सत्य के साथ भांवर डालना। और सब भांवरे काम नहीं पड़तीं। और सब भांवरें कारागृह में ले जाती हैं। और सब भांवरें तुम्हें कैदी बनाती हैं, गुलाम बनाती हैं। केवल सत्य ही मुक्त करता है।

जीसस का प्रसिद्ध वचन हैः सत्य मुक्त करता है। ट्रूथ लिब्रेटस्। और कुछ भी मुक्त नहीं करता। अगर बंधना ही हो तो उससे बंधना जो मुक्त करे। यह हुआ इस सूत्र का अर्थ। उससे मत बंध जाना, जो और बांध ले। वैसे ही तुम बंधे हो, ऐसी चीज से मत बंध जाना जो तुम्हें और बांध ले। वैसे ही काफी बंधे थे; अब और बंधन की जरूरत नहीं है। अब तो कुछ ऐसी चीज का साथ पकड़ना, जो तुम्हें मुक्त करे।

इसलिए गुरु को हम सदगुरु कहते हैं। सदगुरु का अर्थ होता हैः सतगुरु। जिसके भीतर सत्य विराजमान हुआ है। और उसके माध्यम से तुम मुक्त हो सकोगे।

"सत्त की जानकी ब्याह कीता
मनहिं दुलहा बने आप रघुनाथजी।"

और अगर दूल्हा ही बनना हो तो भीतर जो छिपा हुआ "आप" है, वह जो आत्मा है, उसको ही बना लेना। सत्य की जानकी से विवाह कर लेना, दूल्हा अपनी आत्मा को बना लेना।

"मनहिं दुलहा बने आप रघुनाथजी
ज्ञान के मौर सिर बांधि लीता।"

ज्ञान का मोर-मुकुट बांध लेना। दूल्हे के सिर पर मोर बांधते हैं--वह ज्ञान का हो; वह ध्यान का हो; वह बोध का हो, जागृति का हो।

"प्रेम-बारात जब चली है उमंगिकै।"

और जब यह अपूर्व अभियान शुरू हो, यह प्रेम की बरात निकले, तो उमंग से निकले। यह उदास-उदास न हो। बरात और उदास-उदास! लेकिन तुम अपने तथाकथित साधु-संन्यासियों को देखो; वे ऐसे लगते हैं जैसे किसी के मरने में सम्मिलित हुए हों। मातमी! जैसे किसी को मरघट भेजने जा रहे हों। बराती तो नहीं लगते।

और प्रभु के साथ अगर जुड़ना हो तो बराती जैसी उमंग चाहिए। नाचते, गाते, आनंद अहोभाव से! रोते-रोते नहीं। अगर रोओ भी तो तुम्हारे आंसू आनंद के हों, उदासी के नहीं। तुम्हारे पैरों में नृत्य हो। तुम्हारे जीवन में उमंग हो, उत्साह हो, ऊर्जा हो। ऐसी बरात बनाना।

"प्रेम-बारात जब चली है उमंगिकै
छिमा बिछाय जनबांस दीता।"

और अगर कहीं ठहराना हो इस प्रेम की बरात को--तो क्षमा में। इसका कहीं जनवास तो करना ही पड़ेगा--तो क्षमा में।

उदासी न हो, उदासीनता न हो, उपेक्षा न हो--यह भक्ति का सारसूत्र है। उदास आदमी परमात्मा से टूट जाता है। उदासी से कैसे जुड़ोगे? तुमने देखा, जब कोई आदमी उदास होता है तो उससे संवाद करना तक मुश्किल हो जाता है! अगर उदास आदमी के पास तुम जाओ तो तुम पाओगे उसके चारों तरफ एक दीवाल है, जिसके भीतर प्रवेश करना कठिन है। उदास आदमी अपने में बंद हो जाता है। उदास संकोच लाता है। प्रफुल्लित आदमी खुल जाता है; जैसे कली खिल गई; जैसे बीज फूट पड़ा, अंकुर निकल आया। प्रसन्न आदमी से संबंध बनाना बड़ा सरल होता है, बड़ा सरल होता है! जो आदमी मुस्कुरा रहा है, उससे दोस्ती बनानी बड़ी आसान होती है, उससे संवाद करना बहुत आसान होता है। लंबे चेहरे, उदास चेहरे, गंभीर चेहरे--उनके साथ संबंध बनाना कठिन हो जाता है; उनसे सेतु नहीं बनता। जब यह साधारण हालत है, तो तुम उस हालत को तो सोचो, जब तुम परमात्मा से मिलने चले। उदास चेहरे लेकर जाओगे, मिलन नहीं हो सकेगा। तुम्हारा उदास चेहरा ही बाधा बन जाएगा। नाचते हुए जाओ। जो भी गया है, नाचता हुआ गया है। कभी-कभी नाच प्रकट होता है, कभी-कभी अप्रकट होता है--यह बात दूसरी है। बुद्ध भी नाचते हुए ही गए हैं। हां, यह बात सच है कि वे मीरा जैसे प्रकट नहीं नाच रहे हैं; उनका नृत्य बहुत आंतरिक है। शरीर थिर है; भीतर ध्यान नाच रहा है। आंतरिक है नृत्य। मीरा अंतर-बाहर दोनों में नाच रही है। और अंतर-बाहर दोनों में नाच सको तो फिर कंजूसी क्या करनी; दोनों में ही नाचना। अगर अड़चन ही हो बाहर नाचने की, तो अंदर तो नाचना ही। लेकिन तुम्हारे केंद्र पर तो नृत्य की घटना घटनी चाहिए।

"प्रेम बारात जब चली है उमंगिकै,
छिमा बिछाय जनबांस दीता।"

तुम्हारे भीतर प्रेम का आनंद उमगता रहे और तुम्हारे चारों तरफ क्षमा की बरसा होती रहे। तुम्हारे भीतर से कभी भी क्रोध न उठे। वे जो तुम्हारे नुकसान करने वाले हैं, जो तुम्हारे शत्रु हैं, उनके प्रति भी प्रेम का भाव ही उठे--तो क्षमा।

"भूप अहंकार के मान को मर्दिकै।"

और एक अहंकार है, जिसके मान का मर्दन कर देना है। एक अहंकार है, जो तुम्हारे और परमात्मा के बीच पर्दा बना हुआ है। हर प्रेम में अहंकार का पर्दा ही रुकावट डालता है।

"भूप अहंकार के मान को मर्दिकै,
थीरता-धनुष को जाय जीता।"

थीरता! थिरता अकंप चैतन्य की दशा! जिसको कृष्ण ने स्थिति-प्रज्ञ कहा है। जब चैतन्य बिलकुल थिर हो जाता है, कोई कंपन नहीं उठते। कंपन का अर्थ होता हैः मांग, वासना, इच्छा। कंपन का अर्थ होता हैः दौड़। कंपन का अर्थ होता हैः असंतोष। जैसा हूं वैसा काफी नहीं; कुछ और चाहिए--धन चाहिए, पद चाहिए, प्रतिष्ठा चाहिए। कंपन का अर्थ होता हैः कोई भी मुझे डुला जाता है। कोई आदमी स्तुति कर गया और तुम एकदम फूल कर कुप्पा हो गए।

मैंने सुना है, एक राजनेता जंगल में भटक गया। मनुष्यों को खा जाने वाले आदमखोरों ने उसे पकड़ लिया। वे उसे पकड़ कर अपने प्रधान के पास ले गए। प्रधान ने तत्क्षण लोगों से कहाः उसकी जंजीरें छोड़ो, उसे बड़े अच्छे आसन पर बिठाया और उसकी बड़ी प्रशंसा की। उसके अनुयायी तो बड़े हैरान हुए। अन्य आदमखोरों ने कहाः आप यह क्या कर रहे हैं? हम भूखे हैं और कई दिन से आदमी खाने को नहीं मिला और बिठा कर इसकी प्रशंसा कर रहे हैं। जल्दी इसका खातमा किया जाए और भोजन तैयार किया जाए।

उसने कहाः नहीं, जरा ठहरो। मैं राजनेताओं को जानता हूं। एक बार गणतंत्र उत्सव में भाग लेने मैं दिल्ली भी गया था। मैं राजनेताओं को जानता हूं। तुम जरा ठहरो।

उन्होंने कहाः हम समझे नहीं, बात क्या है?

उसने कहा कि बात यह है कि पहले इसकी स्तुति करने दो, यह फूल कर कुप्पा हो जाएगा। जब यह कुप्पा हो जाएगा तो ज्यादा लोगों के पेट भरेंगे। पहले इसे फुलाने दो। तुम जानते नहीं राजनेता को। अभी खाओगे तो यह दुबला-पतला है सूखा-साखा, किसी मतलब का नहीं। जरा पहले फूल जाने दो। पहले इसमें खूब हवा भरने दो। फिर इसके बाद खाना। तो सब का पेट भरेगा। भूखे हो सब, मुझे मालूम है।

कोई तुम्हारी स्तुति कर जाता है, तुम फूलने लगते हो। और कोई तुम्हारी निंदा कर जाता है--और पंक्चर कर गया और एकदम हवा निकल जाती है। ऐसी छोटी-छोटी बातें, अगर तुम्हें आंदोलित करती हैं तो तुम कभी परमात्मा को उपलब्ध न हो सकोगे। उसे पाने के लिए तो तुम्हारे भीतर एक ऐसी परम शांति चाहिए, जिसको कोई चीज खंडित न करती हो--न स्तुति, न निंदा; न सफलता, न असफलता; न जीवन, न मृत्यु। कुछ मिल जाए तो ठीक; कुछ खो जाए तो ठीक। जिसके भीतर का ठीक-पन कभी नष्ट ही न होता हो। जिसके भीतर का ठीक-पन बना ही रहता हो। इसको जैनों ने सम्यक्त्व कहा है। ठीक शब्द उपयोग किया है। सम्यकत्व का अर्थ होता हैः ठीक-पन। ठीक-ठीक जो बना ही रहता है भीतर। जिसके भीतर के ठीक-पन में जरा भी भेद नहीं पड़ता। जो धीर है, थिर है, अकंप है।

"थीरता-धनुष को जाय जीता।"

यह पूरी रामकथा आ गई। और बड़े प्यारे ढंग से आ गई। यह सार आ गया। शेष रामकथा तो इसी सार के आधार पर बनी हुई कहानी है। यह निचोड़ है। यह इत्र है हजारों फूलों का। राम की कथा तो बड़ा बगीचा है; उसमें बहुत फूल हैं। पलटूदास ने सब फूल निचोड़ लिया। और थोड़ा सा इत्र की एक बोतल में बंद कर दिया। ये बहुमूल्य हैं बातें।

इन सब का सार हुआ, दो बात ख्याल रखनाः तुम्हारे भीतर शील की अयोध्या हो तो राम का जन्म होगा। राम को कितने लोग खोजते हैं और नहीं खोज पाते। क्यों नहीं खोज पाते? अयोध्या तो तुम बनाते ही नहीं--और राम को खोजने निकल पड़े! अयोध्या हो, तो ही राम आते हैं। अयोध्या में ही जनमते हैं। तो अयोध्या निर्मित करो। ऐसे राम-राम चिल्लाने से कुछ भी न होगा। ऐसे राम-राम की रट लगाने से कुछ भी न होगा। योग्यता तो अर्जित करो। पात्र तो निर्मित करो। अमृत बरसेगा, निश्चित बरसेगा। जब भी कोई पात्र निर्मित हो गया है, अमृत बरसा ही है, निरपवाद रूप से बरसा है। लेकिन पात्रता तो निर्मित करो। अयोध्या तो बनो; राम तो तैयार है जन्म लेने को तुम्हारे भीतर। आतुर खड़े हैं, कि कब तुम राजी हो जाओ और कब वे प्रवेश कर जाएं।

तुम भी खूब शोरगुल मचा रहे हो राम-राम का, लेकिन पात्रता बनाते ही नहीं। मेहमान को बुलाते हो, ठहराने की जगह ही नहीं है। खुद रास्ते पर बैठे हो। मेहमान को बुला रहे हो। और छोटे-मोटे मेहमान को भी नहीं बुलाते, राम को बुलाते हो। पहले कुछ पात्रता तो बनाओ। बुलाने के पहले तैयारी तो कर लो। अतिथि तो आएगा--आतिथेय तो बन जाओ। मेहमान आए, उसके पहले मेजबान को तो तैयार कर लो। घर मेहमान आ जाए, दरी भी बिछाने को नहीं पाओगे। तब बड़ी भद्द होगी, बड़ी फजीहत होगी। तुम्हें फजीहत से बचाने के लिए राम तुम्हारी सुन कर आते नहीं।

अयोध्या बनो। राम का जन्म होगा। राम का ही जन्म हो, तो यह अधूरी बात है। सीता का भी जन्म साथ-साथ होना चाहिए। अगर राम का ही जन्म हो, तो तुम आधे ही मनुष्य होओगे--पुरुष मात्र। और तुम्हारे भीतर, वह सब जो स्त्रैण है--और जो स्त्रैण है, बहुमूल्य है--उसका अभाव रहेगा। जो परम पुरुष है, वह स्त्री में भी जो श्रेष्ठ है, अपने में समाहित कर लेता है; और पुरुष में जो श्रेष्ठ है, उसे समाहित कर लेता है। जो परम स्त्री है, उसमें भी दोनों समाहित हो जाते हैं। परम तो समन्वय है। परम तो आखिरी समन्वय है। वहां सभी स्वर एक संगीत बन जाते हैं। जो आखिरी दशा है समाधिस्थ की, वहां न तो कोई पुरुष होता है न स्त्री होता। वहां न कोई राम होता, न वहां कोई सीता होता। वहां तो सीता-राम, वहां तो दोनों का सम्मिश्रण हो जाता है, मेल हो जाता है। वहां तो गंगा-यमुना का मिलन हो जाता है। और यह बड़े मजे की बात है। वहां अगर दो का ही मिलन होता तो भी ठीक था, वहां तीन नदियों का मिलन होता है; वहां संगम बनता है।

यह बात सोचने जैसी है। हमारी कथाएं कहती हैं कि प्रयाग है तीर्थराज; वह तीर्थों का तीर्थ है। वहां तीन नदियां मिलती हैं--गंगा, यमुना, सरस्वती। दो दिखाई पड़ती हैं, एक दिखाई नहीं पड़ती। एक अदृश्य है; दो दृश्य हैं। यह पौराणिक कथा नहीं है; यह तुम्हारे भीतर की आखिरी घटना की सूचना है। तुम्हारे भीतर दो तो दृश्य नदियां हैं--पुरुष और स्त्री। ये दोनों जिस दिन मिलेंगी, उस दिन तीसरी परमात्मा की अदृश्य नदी। वह दिखाई नहीं पड़ती; वह भी तत्क्षण सम्मिलित हो जाती है। जिस दिन तुम्हारे भीतर सीता-राम का जन्म हो गया, उस दिन परमात्मा की नदी, उस ब्रह्म का भी अदृश्य रूप तुममें प्रवेश कर जाता है, प्रवाहित हो जाता है।

इसे ऐसा ही समझोः न तो पुरुष बच्चे को जन्म दे सकता है और न स्त्री। जब पुरुष और स्त्री का संभोग होता है, तब किसी क्षण में जीवन प्रवेश करता है, वह अदृश्य धारा है। साधारण जगत में भी रोज वही घटता है, मगर तुम देखते नहीं। तुम तो आंख होते अंधे हो; कान होते बहरे हो। कोई पुरुष बच्चे को जन्म नहीं दे सकता। कोई स्त्री बच्चे को जन्म नहीं दे सकती। स्त्री-पुरुष के मिलन पर कहीं अज्ञात लोक से जीवन प्रवेश करता है। वह जीवन दिखाई नहीं पड़ता कहां से आता है, कैसे आता है; मगर ये दो मिलते हैं और तीसरा मिल जाता है।

जैसा शरीर के जीवन में घटता है, वैसा ही अंतिम आत्मा के जीवन में भी घटता है। तुम्हारे भीतर राम और सीता का मिलन होता है और ब्रह्म की धारा उसमें प्रवाहित हो जाती है। वह परम जीवन है। वही घटना रोज घट रही है जब एक बच्चे का जन्म होता है। अगर तुम जीवन को आंखें खोल कर देखने लगो तो किन्हीं शास्त्रों में जाने की कोई भी जरूरत नहीं है। यहां सारी बात लिखी ही पड़ी है। वेद में नहीं है, कुरान में नहीं है, बाइबिल में नहीं है। यहां सारी बात चारों तरफ लिखी ही पड़ी है। जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं में शास्त्रों का शास्त्र छिपा है।

हर बच्चा त्रिवेणी है और हर समाधिस्थ परमहंस भी त्रिवेणी है। और इसलिए हम यह भी कहते हैं कि जब कोई परमहंस दशा को उपलब्ध हो जाता है तो उसका दुबारा जन्म हुआ; वह द्विज हुआ; वह फिर से बालवत हो गया। उसने अपने को जन्म दे दिया।

यह राम और सीता की बात थोड़ी और भी समझ लेनी जरूरी है। पश्चिम में शरीरशास्त्र के संबंध में बहुत खोजें हो रही हैं। तो वे कहते हैंः मनुष्य के मन के दो हिस्से हैं। आधा हिस्सा पुरुष का, आधा हिस्सा स्त्री का। प्रत्येक के भीतर। प्रत्येक के भीतर एक मन नहीं है; प्रत्येक के भीतर दो मन हैं। एक स्त्रैण मन है, एक पुरुष मन है। वह जो पुरुष मन है, तर्क करता है, विचार करता है, गणित करता है, विज्ञान की खोज करता है, विवाद करता है--आक्रामक है। वह जो स्त्रैण मन है, प्रेम करता है, अनुभव करता है; गीत उसमें पैदा होते हैं, तर्क नहीं; भाव की उमंगें उठती हैं, विचार नहीं, नाच उससे आता है, गणित नहीं; काव्य उससे पैदा होता है, विज्ञान नहीं। और जब इन दोनों मनों का मेल हो जाता है, जब ये दोनों मन एक-दूसरे में युग-नद्ध हो जाते हैं, जब ये दोनों मन एक-दूसरे में घुलमिल जाते हैं, एक हो जाते हैं--तब जो पैदा होता है वही धर्म है।

तीन शास्त्र हैं जगत में--विज्ञान, कला और धर्म; साइंस, आर्ट, रिलीजन। विज्ञान पुरुष की खोज है। काव्य स्त्री की खोज है। धर्म दोनों के मिलन से घटित होता है। मगर जब दो मिलते हैं, तो तीसरा भी आ मिलता है; वह अदृश्य है। वह चुपचाप आ जाता है। वह कब आ जाता है दो के मिलन पर, पता भी नहीं चलता। इधर दो मिले कि तुम अचानक तीसरे को मौजूद पाते हो। जहां दो हैं, वहां तीसरा भी है। इजिप्त की एक बहुत पुरानी किताब है, जो कहती हैः जहां दो हैं वहां तीसरा भी है। और दो गौण हो जाते हैं, जहां तीसरा है; क्योंकि तीसरा परम है; वह आत्यंतिक है।

तुम्हारे भीतर मस्तिष्क और हृदय का मेल होना चाहिए। मस्तिष्क--पुरुष; हृदय--स्त्री। तुम्हारे भीतर अनुभूति और विचार का मेल होना चाहिए। तर्क और भाव का मेल होना चाहिए। तुम्हारे भीतर इनका विवाद चलता रहे तो तनाव होगा। तुम दो खंडों में बंटे रहोगे। और जब तक तुम दो खंडों में बंटे रहोगे, तब तक तुम्हारे भीतर एक तरह की कलह चलती रहेगी, चैन नहीं होगी।

लोग इतने बेचैन क्यों हैं? उनके भीतर दो तरफ यात्रा चल रही है--आधे पश्चिम जा रहे हैं; आधे पूरब जा रहे हैं; एक हिस्सा इधर जा रहा है, दूसरा हिस्सा उधर जा रहा है। तुम रोज अनुभव करते हो कि कुछ भी निर्णय करने जाओ, आधा मन कहता है कर लो, आधा कहता है मत करो। छोटा निर्णय हो कि बड़ा, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। कौन सी फिल्म देखने जाएं आज? आधा मन कहता है इस टॉकीज चले जाओ, आधा मन कहता है उस टॉकीज चले जाओ। क्षुद्र सी बातों में... कौन सी साड़ी पहन कर आज निकलना है। स्त्रियों को इतनी देर क्यों लग जाती है साड़ी के भंडार के सामने खड़े हुए? पतिदेव हार्न बजा रहे हैं और स्त्री अपनी साड़ियां निहार रही है। समझ ही नहीं पड़ता कौन सी पहने! एक निकालती है, दूसरी निकालती है; वह भी नहीं जंचती। एक आधी पहन कर उतार डालती है।

मन सदा द्वंद्व में है--यह करूं, वह करूं! यह-वह का द्वंद्व हैः क्योंकि तुम्हारे भीतर दो हैं और दोनों बोल रहे हैं और कहते हैं मेरी सुनो। और तुम किसी की भी सुनो, दुख होगा। क्योंकि दूसरा पछताएगा और दूसरा कहेगाः मैंने पहले कहा था। आधे ही खुश होओगे; तुम कभी पूरे खुश नहीं हो पाते। धन मिल जाए तो आधे खुश होते हो, पूरे नहीं। क्योंकि आधा हिस्सा जो धन मिलने के कारण अतृप्त रह गया, वह कहता हैः क्या मिला? क्या रखा है? वह आधा हिस्सा कहता थाः प्रेम खोजो, धन में क्या रखा है? अगर प्रेम मिल जाए तो वह जो आधा हिस्सा कहता था धन खोजो, वह कहता हैः अब क्या रखा है? तो मिल गई यह स्त्री, अब? अब क्या करोगे? खाओगे-पीओगे क्या? मकान कहां है? इससे तो अच्छा था धन कमा लेते, तो मजा-मौज से रहते।

तुम जो भी करोगे पछताओगे; क्योंकि तुम्हारा आधा हिस्सा ही उसे करवाएगा और आधा उसके विरोध में खड़ा है। इसलिए तुम्हारा दुख तो निश्चित ही है। यह करो, वह करो--दुख तो निश्चित ही है।

कैसे सुख होगा? सुख होगाः तुम्हारे भीतर एक समरसता आए। तुम्हारे ये दो विपरीत लड़ने वाले खंड, तुम्हारे भीतर ये कौरव और पांडव लड़ें ना। इनकी भीतर दोस्ती बन जाए। ये साथ-साथ हो जाएं। यह महाभारत बंद हो।

समस्त ध्यान की प्रक्रियाएं, समस्त भक्ति की प्रक्रियाएं अंततः तुम्हारे भीतर इस स्थिति को पैदा करवाती हैं--एक समस्वरता, एक लयबद्धता--जहां विपरीत खो जाते हैं; जहां विरोध विलीन हो जाता है; जहां तुम एक ही हो जाते हो, दो नहीं रहते। यही तो सारी अद्वैत की शिक्षा हैः जहां तुम एक ही हो जाते हो, दो नहीं रहते। जब तक दो हो, तब तक अड़चन है। इसलिए भक्त की जो आत्यंतिक परिणति है, वह भगवान से एक हो जाना है या भगवान को अपने में एक कर लेना है--या तो भगवान में डूब जाना है या भगवान को अपने में डुबा लेना है। मगर एक ही बचे। प्रेमगली अति सांकरी, तामें दो न समाय।

मैंने सुना है, महाराष्ट्र में एक बड़े संत हुए, ज्ञानदेव। वे गुरु गोरखनाथ की परंपरा के संत थे। संतों की परंपरा चलती है। परंपरा से ही असली बात चलती है। जो बात लिख दी जाती है, उसका असली अर्थ खो जाता है। परंपरा का अर्थ होता हैः कान से कान तक, कान कान से चलती है। परंपरा का अर्थ होता हैः जिसने जाना उसने उसको जनाया जिसे अभी ज्ञात नहीं था। जब उसने जान लिया; उसने फिर किसी और को जनाया। सूफी इसी को सिलसिला कहते हैं। दुनिया में सिलसिले चलते हैं, परंपराएं चलती हैं। एक गुरु से किसी शिष्य को उपलब्ध होता है। फिर वही शिष्य उस गुरु की संपदा का मालिक हो गया। बुद्ध को मिला, तो महाकाश्यप को दिया। फिर महाकाश्यप से तैरते-तैरते उतरते-उतरते बोधिधर्म को मिला। फिर बोधिधर्म चीन चला गया और चीन में एक नई परंपरा शुरू हो गई, एक नया सिलसिला शुरू हो गया। मोहम्मद को मिला, फिर मोहम्मद से और फकीरों को मिला--मिलते-मिलते एक सिलसिला शुरू हुआ।

किसी एक को, प्रथम जो होता है, परमात्मा से मिलता है। वह भी सिलसिला है। कोई एक अपने को ऐसा समर्पित कर देता है कि उसके भीतर परमात्मा को सीधा ही बोलना पड़ता है, मध्यस्थ की जरूरत नहीं होती। जिस व्यक्ति के भीतर परमात्मा सीधा बोलता है, उसी व्यक्ति से धर्म की शुरुआत होती है, सिलसिला होता है। जिनको हम पैगंबर कहते हैं, तीर्थंकर कहते हैं, अवतार कहते हैं, वे ऐसे ही पुरुष हैं--जिन्होंने किसी मनुष्य से नहीं सीखा; जिनके भीतर परमात्मा सीधा बोला; जिनका गुरु परमात्मा ही था। बुद्ध से परमात्मा सीधा बोला। महावीर से परमात्मा सीधा बोला। मोहम्मद से परमात्मा सीधा बोला या क्राइस्ट से परमात्मा सीधा बोला, या नानक से, कबीर से--सीधा बोला। फिर एक सिलसिला शुरू हुआ। फिर जो परमात्मा से सीधा संबंध नहीं जोड़ पाते, वे कबीर से जोड़ सकते हैं, नानक से जोड़ सकते हैं। इनके भीतर भी वही बात आ जाएगी। एक दफा जुड़ गया संबंध, तो ये भी परमात्मा से जुड़ गए। लेकिन इन्हें जरूरत पड़ी एक मध्यस्थ की।

दुनिया में बहुत थोड़े से लोग हैं जो बिना मध्यस्थ के परमात्मा को जान पाएंगे। क्योंकि उसके लिए इतना समर्पण चाहिए, जितना समर्पण साधारण आदमी से जुटाने की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

ज्ञानदेव गुरु गोरखनाथ की परंपरा के अंग थे। वे अपने कुछ भक्तों को लेकर, थोड़े से भक्तों को लेकर--उन्हीं को लेकर जो पहुंच गए थे, जो सिद्ध हो गए थे--भारत की यात्रा पर निकले। महाराष्ट्र में दूसरे प्रसिद्ध संत हुए-- नामदेव। नामदेव तब तक संत नहीं थे। उन्होंने भी ज्ञानदेव से प्रार्थना कीः मुझे भी ले चलें। ज्ञानदेव ने कहा कि तू अभी कच्चा है। यह बात नामदेव को बहुत अखरी--कच्चा! भक्तिभाव उनका बड़ा था। बिठोबा के मंदिर में दिन-रात लगे रहते थेः बिठोबा! बिठोबा! बिठोबा! चौबीस घंटे स्मरण चलाते थे, और ज्ञानदेव ने कह दियाः कच्चा! उन्होंने कहाः क्या कच्चापन है? ज्ञानदेव ने कहाः यही कि तू अभी भी यह बिठोबा बिठोबा बिठोबा लगाए रखता है। अभी दो हैं, इसलिए कच्चा। जब एक रह जाएगा, तब पक्का। अभी तेरा घड़ा आग में पड़ा नहीं, अभी पका नहीं। यह क्या मचा रखा है बिठोबा-बिठोबा!

भगवान की याद जब तक करनी पड़ती है, तब तक दूरी है। जब तक भगवान दिखाई पड़ता है अलग, तब तक बात अभी घटी नहीं। जिस दिन भगवान भीतर ही विराजमान हो जाता है, जिस दिन भक्त और भगवान में कोई भेद नहीं रह जाता, जिस दिन भक्त ही भगवान हो जाता है--उस दिन पक्का।

ज्ञानदेव ने कहाः मैं "पक्कों" को ले जा रहा हूं, कच्चे को मैं नहीं ले जा सकता। मगर नामदेव बहुत पीछे पड़ गए, पैर पकड़ लिए कि नहीं, कच्चे ही सही, दया करो। साथ ही लगा रहूंगा। लगते-लगते शायद मैं भी पक जाऊं।

बहुत रोए-धोए तो ज्ञानदेव ने उन्हें साथ ले लिया। मगर चोरी-छिपे जब कोई नहीं होता तो वे बैठ कर अपना बिठोबा-बिठोबा कर लेते थे, क्योंकि उनको यह भी डर लगा रहता था कि पता नहीं, ऐसे में भगवान छूट न जाए, ये लोग अजीब से हैं! बस बैठ जाते हैं, बैठे रहते हैं। न कोई नाम-जप, न कोई नाम-स्मरण--ये करते क्या

हैं? ऊपर-ऊपर से वह भी दिखलाते थे कि अब मैं भी कुछ ऐसा नहीं। मगर छोटी सी एक मूर्ति भी अपने भी पास छिपा कर रखे हुए थे। अपने कपड़ों में गठरी में रखी होगी। जब सब सो जाते, रात में निकाल कर बिठोबा को कहते कि माफ करना, अब यह जरा सत्संग ऐसे लोगों का मिल गया है, ये सब हैं निर्गुण उपासक, ये सगुण को समझते नहीं हैं। घर चल कर तुम्हारी खूब पूजा करूंगा। अभी तो व्यवस्था से कर भी नहीं पाता, क्योंकि यह, यह बात यहां जंचेगी नहीं, यहां यह भाषा ही नहीं चलती इन लोगों के साथ। तो ऐसा छुपा-छुपा कर।

फिर एक गांव में ठहरे, जिसके घर में ठहरे वह एक कुम्हार था। सुबह बैठे थे धूप में, सब बैठे थे, कुम्हार भी बैठा था। वह कुम्हार भी बड़ा पहुंचा हुआ सिद्ध था, इसलिए उसके घर में ठहरे थे ज्ञानदेव। वह भी गुरु गोरखनाथ की परंपरा का अंग था। अज्ञात था। उसके नाम का कुछ पता नहीं। लेकिन बात जाहिर करवाने को ज्ञानदेव ने कहा कि भाई सुन, तू कुम्हार है, तुझे कच्चे-पक्के घड़ों की परख है? उसने कहाः जिंदगी हो गई, और तो मैं कोई काम करता नहीं, कच्चे-पक्के घड़े ही... । रात के अंधेरे में बता सकता हूं कि कौन कच्चा घड़ा है, कौन पक्का घड़ा है।

तो उन्होंने कहा कि ये हमारे घड़े बैठे हैं, इनमें कौन कच्चा है, कौन पक्का है? वह आदमी अपने घड़े पीटने के पिटने को उठा लाया, जिससे घड़े पीटे जाते हैं। और सब तो बैठे रहे, नामदेव बहुत डरे कि यह अजीब मामला है, क्या यह मारेगा, यह क्या करेगा! उसने लोगों की खोपड़ी बजानी शुरू कर दी। सब तो बैठे रहे; वे पक्के ही घड़े थे। वह खोपड़ी बजाता रहा, वे बैठे रहे। जब वह नामदेव की खोपड़ी बजाने लगा तो वे खड़े हो गए। उन्होंने कहाः यह क्या पागलपन है? वह तो क्रुद्ध हो गए, नाराज हो गए, झगड़ने को तैयार हो गए। उस कुम्हार ने कहाः और सब तो पके घड़े हैं। ज्ञानदेव महाराज, यह कच्चा है। ज्ञानदेव ने नामदेव को कहा कि देख, एक कुम्हार भी पहचान लेता है कि कौन कच्चा है। निकाल, तेरा कच्चापन कहां छिपाया हुआ है! इसकी गठरी खोलो। गठरी में बिठोबा निकले। यह कच्चापन था। दो का भाव। परमात्मा दूजा है? उसको पुकारना है? उसकी मूर्ति सजानी है? उसको आभूषण लगाने हैं, थाल सजाने हैं, प्रसाद लगाना है, भोग लगाना है? ये सब बचकानी बातें हैं। बुरी न भी हों तो भी बचकानी तो हैं ही। भली हों, तो भी बचकानी तो हैं ही। जैसे बच्चे खिलौनों से खेलते हैं, ऐसी ही है।

सार-सूत्र याद रखोः एक हो जाना है। तो पहले अपने भीतर के द्वंद्व को एक छंद बनाओ। फिर एक छंद के बनते ही प्रसाद मिलता है और तुम त्रिवेणी बन जाते हो। तुम तो मिले थे दो--गंगा-यमुना--सरस्वती आ मिलती है।

सरस्वती को ज्ञान की नदी कहा है। सरस्वती को ज्ञान की देवी कहा है। वह भी ठीक है। जैसे ही स्त्री और पुरुष का तुम्हारे भीतर मिलन हुआ, वैसे ही तुम्हारे भीतर ज्ञान का आविर्भाव होता है; बोधि फलती है; बुद्धत्व उत्पन्न होता है।

"बाम्हन तो भये जनेउ को पहिरी कै,

बाम्हनी के गले कछु नाहिं देखा।"

पलटू कहते हैं... अब वे जरा मजाक उड़ाते हैं उन सबकी जो द्वंद्व में पड़े हैं, द्वैत में पड़े हैं; जिनको प्रेम का सार-सूत्र समझ में नहीं आया।

"बाम्हन तो भये जनेउ को पहिरि कै।"

वे कहते हैं कि ब्राह्मण हो गए जनेऊ पहनने से, चलो ठीक। हालांकि कोई जनेऊ पहनने से ब्राह्मण हो नहीं सकता। ब्राह्मण तो वह जो ब्रह्म को जाने। जनेऊ पहनने से क्या होगा? प्रतीकों में पड़ जाते हैं लोग। तुमने देखा, जनेऊ में तीन धागे होते हैं, वे त्रिवेणी के प्रतीक हैं। सिर्फ प्रतीक हैं। वे जो तीन धागे हैं जनेऊ के, वे प्रतीक हैं कि दो मिल जाएं तो तीसरा भी आ मिलेगा। ऐसी त्रिवेणी बन जाएगी तो तुम ब्राह्मण हो जाओगे। मगर प्रतीक को ही रखे बैठे हैं।

यह तो ऐसे ही हुआ कि जैसे किसी ने कहा कि पानी का प्रतीक एच. टू. ओ., कि दो परमाणु उद्जन के और एक परमाणु ऑक्सीजन का, इनके मिलने से पानी बन जाता है; इन तीन के मिलने से पानी बन जाता है। अब तुम्हें लगी है प्यास, तुम कागज पर रखे बैठे हुए हो एच टू ओ, या बैठे-बैठे भजन कर रहे हो--एच. टू. ओ., एच. टू. ओ., एच. टू. ओ.! इससे प्यास नहीं बुझेगी। और यह सूत्र गलत नहीं है। सूत्र की तरह ठीक है और बड़ा अर्थपूर्ण है। मगर इसको जपने से प्यास नहीं बुझेगी। प्यास तो पानी से बुझेगी। ब्रह्म को पाने से बुझेगी।

"बाम्हन तो भए जनेऊ को पहिरि कै।"

पलटू कहते हैं कि चलो ठीक, तुम तो जनेऊ को पहन कर ब्राह्मण हो गए, मगर ब्राह्मणी के बाबत क्या ख्याल है? वे मजाक उड़ाते हैं।

"ब्राह्मनी के गले कछु नाहिं देखा।"

ब्राह्मणी तो नहीं पहनती जनेऊ। स्त्रियां तो पहन नहीं सकतीं। आदमी ने इतनी ज्यादती की है! पुरुष ने इतना अहंकार किया है सदियों से! और जिनको हम धार्मिक लोग कहते हैं, उन्होंने भी, वस्तुतः उन्होंने ही... स्त्री को मोक्ष नहीं; स्त्री को वेद पढ़ने का हक नहीं। स्त्री की गणना शूद्रों में है। एक तो शूद्रों की ही गणना गलत; फिर स्त्रियों को भी शूद्रों में डाल दिया! और स्त्री तुम्हारा आधा अंग है। जिस दिन तुमने स्त्री को मुक्ति का उपाय नहीं छोड़ा, उस दिन तुम भी मुक्त होने का उपाय समाप्त कर लिए; क्योंकि तुम्हारे भीतर की स्त्री का क्या होगा? तुम जिससे पैदा हुए अकेले पुरुष से तो पैदा नहीं हुए; आधा हिस्सा तुम्हारे पिता से आया, आधा तुम्हारी मां से आया। तुम्हारे आधे अणु पिता के हैं, आधे तुम्हारी मां के हैं। तुम्हारे भीतर पचास प्रतिशत स्त्री मौजूद है। कहां जाओगे? उससे कहां भागोगे? किसी न किसी तरह तुम्हें अपने स्त्री और पुरुष दोनों को मुक्त करना होगा।

मनुष्य-जाति के गर्त में गिरने के बड़े से बड़े कारणों में से एक है कि आधी मनुष्य-जाति को तो धर्म का कोई अधिकार ही नहीं रहा। यहूदियों में स्त्रियां सिनागॉग में नहीं जा सकतीं; या जाएं भी तो उनके लिए दूर ऊपर अलग छज्जा होता है, जिस पर पर्दा पड़ा होता है, वहां बैठना पड़ता है।

मैंने सुना है, जब गोल्डा मेयर इ.जरायल में प्रधानमंत्री थी, और इंदिरा गांधी भारत में, इंदिरा इ.जरायल गई। इंदिरा ने देखना चाहा सिनागॉग, यहूदियों का मंदिर। तो इजरायल के सबसे बड़े मंदिर में उन्हें ले जाया गया। और सब तो नीचे थे मंदिर में, ये दोनों स्त्रियां--प्रधानमंत्री भी हों तो क्या होता हैः स्त्रियां यानी स्त्रियां; इनको तो सीधा मंदिर में भीतर तो ले जाया नहीं जा सकता--तो ऊपर एक छज्जे पर पर्दा डाल कर। इंदिरा जब लौटी, दिल्ली में किसी ने पूछा कि संस्मरण... इजरायल में क्या-क्या देखा? उन्होंने कहाः तो और तो सब ठीक देखा, एक बात अजीब देखी कि इ.जरायल में आम जनता तो मंदिर में सीधे प्रार्थना करती है, प्रधानमंत्री ऊपर छज्जे पर प्रार्थना करते हैं! उनको पता नहीं कि यह स्त्री की वजह से छज्जे पर बिठाया गया है, प्रधानमंत्री की वजह से नहीं।

जैन कहते हैंः स्त्रियों का कोई मोक्ष नहीं स्त्री-पर्याय से। मर कर स्त्रियों को पहले पुरुष होना पड़ेगा, फिर मोक्ष हो सकता है। मोक्ष सिर्फ पुरुष का हो सकता है।

यह बात बड़ी अपराधपूर्ण है। इसलिए पलटू मजाक उड़ाते हैं।

"बाम्हन तो भये जनेउ को पहिरि कै,
बाम्हनी के गले कछु नाहिं देखा।
आधी सुद्रिनि रहै घर के बीच में।"

तब तो इसका मतलब हुआ कि स्त्री तो शूद्र हो गई, क्योंकि वह शूद्र ही नहीं पहन सकते हैं जनेऊ और स्त्री भी नहीं पहन सकती।

"आधी सुद्रिनि रहै घरै के बीच में,
करै, तुम खाहु यह कौन लेखा।"

और वह भोजन बनाती है और तुम भोजन करते हो, यह कैसा, कौन सा हिसाब चल रहा है? शूद्र का किया हुआ भोजन कर रहे हो और ब्राह्मण बने बैठे हो, कुछ तो शर्म खाओ!

"सेख की सुन्नति से मुसलमानी भई।"

खतना होता है मुसलमानों में, तो शेख की तो सुन्नति हो जाती है; खतना हो गया, इसलिए मुसलमान हो गए।

"सेख की सुन्नति से मुसलमानी भई,
सेखानी को नाहिं तुम कहौ सेखा।"

वे पूछते हैंः लेकिन शेखानी के बाबत क्या ख्याल है? इसका खतना तो हुआ नहीं, यह तो मुसलमान है नहीं। खतने के बिना तो कोई मुसलमान हो नहीं सकता। खतना तो बिलकुल जरूरी है।

"आधी हिंदुइन रहै घरै बीच में।"

और यह जो शेखानी है, यह तो हिंदू हो गई, क्योंकि इसका खतना कभी हुआ नहीं।

"आधी हिंदुइन रहै घरै बीच में
पलटू अब दुहुन के मारु मेखा।"

पलटू कहते कि पलटू समझदार की बात तो यह है कि दोनों को समाप्त करके ऊपर उठो। स्त्री-पुरुष के भेद-भाव को मिटा कर ऊपर उठो। तुम्हारे भीतर दोनों को समाप्त करके।

"पलटू अब दुहुन के मारु मेखा।"

दोनों को खत्म कर दो अपने भीतर। न स्त्री रह जाओ, न पुरुष रह जाओ। जब तुम्हारे भीतर न स्त्री बचे न पुरुष बचे, जब दोनों मिल जाएं, तब तीसरे का जन्म होता है।

"तुरुक लै मुर्दा को कब्र में गाड़ते,
हिंदू लै आग के बीच जारै।
पूरब वै गये हैं वै पच्छूं को,
दोऊ बेकूफ ह्वै खाक टारैं।।"

पलटू कहते हैं कि तुर्क मुर्दा को कब्र में गाड़ते हैं। मरे-मराए को गाड़ो कि जलाओ, क्या फर्क पड़ता है? मुर्दे को गाड़ा तो खाक हो जाएगा; जलाओ तो खाक हो जाएगाः इन बातों से बड़ी झंझटें खड़ी कर रहे हो। इन बातों से सोच रहे हो, बड़ा धर्म का भेद हो रहा है।

"तुरुक लै मुर्दा को कब्र में गाड़ते,
हिंदु लै आग के बीच जारै।
पूरब वै गये हैं वैं पच्छू को।"

एक पूर्व की तरफ हाथ जोड़ कर नमस्कार करता है--सूर्य-नमस्कार; और एक पश्चिम की तरफ--काबा की तरफ।

"दोऊ बेकूफ ह्वै खाक टारैं।"

कहते हैं पलटू कि दोनों तरफ बेवकूफ हैं। दोनों बुद्धिहीन हैं। व्यर्थ ही खाक टार रहे हैं! व्यर्थ ही धूल के साथ उलझे हैं, प्रपंच में पड़े हैं।

"वै पूजैं पत्थर को, कबर वै पूजते,
भटककै मुए दैं सीस मारैं।"

ये मूर्ति को पूजते हैं--पत्थर को; और मुसलमान मूर्ति के खिलाफ हैं, लेकिन कबर को पूजता है। और कबर भी पत्थर से बनी है। फर्क क्या है?

"वै पूजैं पत्थर को, कबर वै पूजते,
भटककै मुए दैं सीस मारैं।"

दोनों ही मरे-मराओं के सामने सिर पटकते हैं।

जीवंत को पूजो। जीवंत चारों तरफ मौजूद है। परमात्मा प्रतिपल चारों तरफ जीवंत के रूप से मौजूद है। मुर्दों की पूजा करोगे, मुर्दे हो जाओगे। जैसी पूजा करोगे, वैसे ही हो जाओगे। जिसकी पूजा करोगे, वही हो जाओगे। अगर दुनिया में इतने मुर्दे चलते-फिरते दिखाई पड़ते हैं, तो उसका कारण यही है कि मुर्दों की पूजा करते-करते--जीवंत के साथ संबंध जोड़ो।

"दास पलटू कहै, साहिब है आप में।

वह परमात्मा तुम्हारे भीतर बैठा है।

अपनी समझ बिनु दोउ हारैं।"

मुसलमान और हिंदू अपनी खुद की समझ न होने के कारण हार गए हैं। अपनी समझ चाहिए। न तो कुरान तुम्हारी समझ बन सकता है, न वेद तुम्हारी समझ बन सकते हैं। तुम्हें अपनी समझ ही चाहिए। तुम अपनी समझ को निखारो। तुम जीवन के अनुभव से अपनी समझ को जगाओ। जीवन को खुली आंख से देखो। पर्दे हटाओ संस्कारों के। द्वार खोलो। अपनी समझ को जगाओ। अपनी समझ ही काम आएगी।

"दास पलटू कहै, साहिब है आप में

अपनी समझ बिनु दोउ हारैं।

संतन के बीच में टेढ़ रहें,

मठ बांधि संसार रिझावते हैं।"

और पंडित-पुरोहित हैं, मुल्ला-मौलवी हैं, संतों के पास जाने से डरते हैं। संतों का नाम उन्हें घबड़ाता है। संतों के पास भी ले जाओ तो वहां अकड़ कर खड़े हो जाते हैं। यही पत्थर की मूर्ति के सामने सिर झुका देंगे, कबर के सामने साष्टांग दंडवत कर लेंगे; लेकिन जिंदा संत के सामने अकड़ कर खड़े हो जाएंगे।

"संतन के बीच में टेढ़ रहें।"

वहां तो बिलकुल खड़े हो जाएंगे--अडिग! वहां झुक न सकेंगे।

"मठ बांधि संसार रिझावते हैं।"

मठ-मंदिर बनाएंगे और संसार को झूठे प्रलोभन देंगे। स्वर्ग के प्रलोभन या नरक के भय। लोगों को फसाएंगे।

"दस-बीस सिष्य परमोधि लिया।"

और यह दुनिया कुछ ऐसी है कि यहां मूढ़ से मूढ़ आदमी भी दस-बीस शिष्य पा सकता है। इसमें कुछ अड़चन नहीं है। यहां इतने एक से एक पहुंचे हुए मूढ़ पड़े हैं कि अगर तुमने तय कर लिया तो तुम्हें भी दस-बीस शिष्य मिल जाएंगे, इसमें कोई अड़चन नहीं है। इसमें अड़चन ही क्या है!

"दस-बीस सिष्य परमोधि लिया।"

दस-बीस शिष्य के कान फूंक दिए।

"सबसे वह गोड़ धरावते हैं।"

फिर वे दस-बीस उनके पैर दाबने लगे। फिर दूसरों में भी सनक चढ़ती है। ये बीमारियां छूत की होती हैं; लगने लगती हैं दूसरों में भी, कि जब दस-बीस पैर दाब रहे हैं तो कुछ होगा। आदमी इतना बंदर जैसा है!

बंबई में मैं मृदुला के घर में मेहमान था। दो सज्जन मुझे मिलने आए थे--जो मुझे वर्षों से जानते हैं और हमेशा आते थे; कुछ नए नहीं थे; कम से कम दस साल से निरंतर मुझे मिलने आते, जब भी मैं बंबई होता। कभी उन्होंने एक पैसा मेरे चरणों में नहीं रखा था। कोई बात भी नहीं थी, कोई जरूरत भी नहीं थी। उस दिन संयोगवशात एक नए सज्जन मुझे मिलने लाए। ये दोनों बैठे थे। उन नए सज्जन ने जल्दी से आकर चरण छुए और सौ रुपए का एक नोट निकाल कर मेरे पैर में रखा। मैं तो चकित हुआ। वे जो दो बैठे थे, जो दस साल से आते थे,

उन्होंने भी जल्दी से सौ-सौ के नोट निकाल कर... ! मैंने कहा कि भाई तुम्हें क्या हो गया? इन्होंने रखा, ये नये हैं। इनके मैं लौटाने ही जा रहा था, मगर यह तुम्हें क्या हो गया?

छूत की बीमारियां लगती हैं। एक आदमी खांसने लगे यहां, अनेक की खांसी चलने लगेगी। एक आदमी चला बाथरूम की तरफ, तुम्हें भी अचानक ख्याल आता है कि अरे... लघुशंका एकदम पकड़ती है।

आदमी नकलची है। तुम एकाध शिष्य बना लो; वह एकाध दस-बीस को ले आएगा।

पलटू कहते हैंः

"दस बीस शिष्य परमोधि लिया,

सबसे वह गोड़ धरावते हैं।

संतन की बानी काटिके, जी

जोरि-जोरि के आप बनावते हैं।।"

कुछ अपना अनुभव नहीं है, कुछ अपना साक्षात्कार नहीं है। दूसरों की उधार बाते हैं। उन्हीं को दोहराते हैं। अपनी आंख नहीं है; वेद का उद्धरण दे सकते हैं और कुरान की आयत दोहरा सकते हैं। लेकिन न वेद का कोई मूल्य है न कुरान का कोई मूल्य है। जब तक तुम्हारे भीतर वेद का जन्म न हो, जब तक तुम्हारी आंख न खुले--तब तक कोई बात काम की नहीं है। तब तक तुम ग्रामोफोन के रिकार्ड हो। तब तक तुम दोहरा सकते हो। कितनी ही शुद्ध भाषा में दोहराओ, तुम्हारे दोहराए का मूल्य दो कौड़ी भी नहीं है। अगर तुम्हें अपना अनुभव हो और संस्कृत भी न आती हो और अरबी भी न आती हो और तुम्हें भाषा का भी कोई ठीक पता न हो, व्याकरण भी न आती हो--तब भी कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर तुम्हें अनुभव हुआ तो तुम्हारी टूटी-फूटी भाषा में, तुम्हारे तुतलाने में भी परमात्मा की झलक होगी। पांडित्य से कोई संबंध धर्म का नहीं है--अनुभव से है।

"पलटू कोस चारि चारि के गिर्द में, जी

सोइ चक्रवर्ती कहलावते हैं।"

और पलटू कहते हैंः बड़ा मजा चल रहा है। दो-चार कोस में दस-बीस भक्त मिल गए हैं, वे चक्रवर्ती हो गए! सारे संसार में जैसे उनका राज्य स्थापित हो गया! पलटू यह कह रहे हैं कि इन छोटी-छोटी बातों में मत उलझ जाना और इन छोटे-छोटे दुकानदारों में मत उलझ जाना। अगर हिम्मत हो तो किसी से विवाह रचाना, जिसको सत्य मिला हो। अगर हिम्मत हो तो किसी आंख वाले के साथ आंखें मिलाना। अगर हिम्मत हो तो किसी हिम्मतवर से दोस्ती गांठना। उस दोस्ती का कोई परिणाम हो सकता है। उससे क्रांति आ सकती है। बुझे दीयों के पास मत बैठे रहना--जले दीये के पास जाना। पास जाते-जाते किसी क्षण जले दीये से लपट तुम में भी छलांग लगा लेगी; तुम्हारा बुझा दीया भी जल जाएगा। जले दीये का तो कुछ भी न खोएगा। जले दीये का क्या खोता है? तुम एक जलते दीये से हजार दीये जला लो, जलते दीये का कुछ नहीं खोता। ऐसा थोड़ा ही है कि हजार दीये जला लिए तो जला हुआ दीया अब गरीब हो गया, क्योंकि हजार दीये जल गए। लेकिन हजार दीयों को कितना मिल गया, यह तो सोचो, यह मजा तो देखो! जलते का कुछ भी नहीं खोता, बुझे को कितना मिल जाता है!

जलता हुआ दीया कौन?

जिसके पास अपनी रोशनी हो। और हमारी अड़चन यही है कि रोशन आदमी को हम नहीं पहचान पाते। क्योंकि रोशन आदमी अपनी भाषा बोलता है और हम संप्रदाय की भाषा पहचानते हैं। संप्रदाय की भाषा का मतलब होता हैः अगर तुम हिंदू हो तो मेरे साथ तुम्हारा संबंध न जुड़ सकेगा; अगर तुम मुसलमान हो तो मेरे साथ संबंध न जुड़ सकेगा। अगर तुम हिम्मतवर मुसलमान हो, तो ही मुझ से संबंध जुड़ सकेगा; हिम्मतवर हिंदू हो तो ही मुझ से संबंध जुड़ सकेगा। अगर तुमने यह सोचा कि मैं यहां वेद को दोहरा रहा होऊंगा और अंधे की तरह वेद में जो कुछ कहा है सबको ठीक कहूंगा, तो तो फिर मुझ से संबंध न जुड़ सकेगा।

मैं हिंदू नहीं हूं। मुझे वेद के साथ कुछ लेना-देना नहीं है। अगर कभी मैं वेद की किसी बात को सच भी कहता हूं, तो इसीलिए कि वह मैंने अनुभव की है। बात तो मैं अपनी ही सच कहता हूं। वेद में भी लिखी है, इसलिए वेद का भी उद्धरण दे देता हूं। लेकिन वेद में लिखे होने के कारण वह सच नहीं है; मेरे अनुभव में आई है, इसलिए सच है। और जो मेरे अनुभव में आया है और वेद में उसके विपरीत लिखा है, वह गलत है। मुझे वेद से कुछ लेना-देना नहीं है। अगर वेद सही होगा तो मेरी कसौटी पर सही होगा और गलत होगा तो मेरी कसौटी पर गलत होगा।

वह जो पंडित है, वह जो सांप्रदायिक वृत्ति का आदमी हैः वेद सही ही है, और कोई कसौटी नहीं है। वेद में है, इसलिए सही है।

बुद्ध ने कहा है अपने शिष्यों को कि तुम तब तक मेरी बात मत मान लेना, जब तक कि तुम्हारे अनुभव में न आ जाए। मैं लाख कहूं, सुन लेना, समझ लेना; मगर मानना मत। मानना तो तभी, जब तुम्हारे अनुभव में आ जाए। और जब तुम्हारे अनुभव में आ जाएगी, तभी सच होगी; नहीं तो झूठ रह जाएगी।

मेरा सत्य मेरा सत्य है। तुम उसे दोहराओगे, झूठ हो जाएगा। जब तुम भी उसे अनुभव में ले आओगे, तभी सच होगा। तुम्हारे अनुभव में आने के कारण सच होगा। उधार अगर सत्य भी ले लिया तो झूठ हो जाता है।

लेकिन हमारी हिम्मत नहीं होती। हमारे संस्कार हैं बंधे हुए। अगर कोई मुसलमान मेरे पास आता है तो वह भीतर से अनजाने, अचेतन मन से, झांकता रहता है कि जो मैं कह रहा हूं वह कुरान से मेल खाता है या नहीं। अगर खाता है तो ठीक; अगर मेल नहीं खाता है तो गलत। कुरान तो गलत हो ही नहीं सकता। यही अड़चन है। कुरान चौदह सौ साल पुरानी किताब है, चौदह सौ साल पुरानी भाषा है। फिर मोहम्मद एक ढंग के आदमी थे, मैं दूसरे ढंग का आदमी हूं। मेरी अभिव्यक्ति मेरी है, उनकी अभिव्यक्ति उनकी है। अगर तुम मुझे मोहम्मद से जांचने चले तो तुम्हारा मुझसे कोई संबंध न बन पाएगा। अगर तुम मोहम्मद के भी पास गए होते तो मुझसे तुमने मोहम्मद को जांचा होता, तो मोहम्मद से भी कोई संबंध नहीं बन सकता था।

इसलिए मैं तुम्हें यह भी आगाह कर दूं कि मेरे चले जाने के बाद तुम मेरे आधार से किसी को मत जांचना, क्योंकि फिर तुम्हारा संबंध न बन पाएगा। तुम जब भी किसी को जांचने जाओ तो खुले मन से जांचना; कोई आधार लेकर मत जाना; कोई पक्षपात लेकर मत जाना। सब पक्षपात हटा कर शांत मौन भाव से सुनना। और जो भी तुम सुनो, जल्दी विश्वास कर लेने की कोई भी जरूरत नहीं है, न अविश्वास करने की कोई जरूरत है। दोनों एक जैसे हैं। कुछ लोग सुनते ही से विश्वास कर लेते हैं और कुछ लोग सुनते ही से अविश्वास कर लेते हैं। ये दोनों ही बातें जल्दबाजी की हैं। न विश्वास की जल्दी करो, न अविश्वास की। अनुभव की चिंता लो। सारी ऊर्जा अनुभव में लगाओ।

तुमने मेरे से कोई बात सुनी, अब तुम परखना इसको अपने अनुभव में। अगर अनुभव कह दे कि ठीक, तो ठीक। अनुभव कह दे गलत, तो किसी ने भी कही हो, किसी बुद्धपुरुष ने कही हो, कोई मूल्य नहीं रखती। अंततः तुम्हारा अनुभव ही निर्णायक है। अंततः तुम ही निर्णायक हो।

यह जो प्रेम का शास्त्र है भक्ति, यह पाखंड के खिलाफ बोले, यह जरूरी है, क्योंकि पाखंड के कारण ही प्रेम खो गया है! तुम्हारी पूजा मंदिरों में भटक गई है और मस्जिदों में भटक गई है। और तुम्हारा बोध शास्त्रों में उलझ गया है। इसलिए मजबूरी है पलटूदास जैसे संतों को कि उन्हें शास्त्र के खिलाफ बोलना पड़ता है, पंडित के खिलाफ बोलना पड़ता है, मौलवी के खिलाफ बोलना पड़ता है, ब्राह्मण और शेख के खिलाफ बोलना पड़ता है। उन्हें खिलाफ बोलने में कोई रस नहीं है--बोलना पड़ता है इसलिए कि ये जगह हैं, जहां तुम उलझ गए हो। तुम इनसे मुक्त हो सको, इसलिए ऐसा बोलना पड़ता है। अन्यथा, प्रेम के शास्त्र को कोई खिलाफत नहीं है, कोई किसी चीज के खंडन में रस नहीं है। प्रेम का शास्त्र तो शुद्ध आनंद का शास्त्र है, उमंग का शास्त्र है।

आज मौसम में वो एजाजे-मसीहाई है

दिल ने बीमारी-ए-हिजरा से सिफा पाई है
दिल की धड़कन से हम आहंग हैं यूं मौजे नसीम
जैसे उस शोख का पैगामे वफा लाई है।
जिस पर हसरत कदा-ए-यास का होता था गुमां
अब वो दिल मरकजे सद जलवाए रानाई है।
आयी है मुजदाये अनवारे मर्सरत लेकर
ये जो गर्दूं पे स्यह मस्त घटा छाई है
रक्स करते हैं तस्सवर में नजारे क्या क्या
दिल को क्या क्या हब से अंजुमन आराई है।

भक्त तो कहता हैः वसंत छाया है! उसे कहां विवाद है! भक्त तो कहता हैः वसंत छाया है। वियोग का रोग मिट गया।

आज मौसम में वो एजाजे मसीहाई है।

आज तो वातावरण के कण-कण में जैसे पैगंबर मौजूद हुआ है, परमात्मा का संदेश आया है।

दिल ने बीमारी-ए-हिजरा से सिफा पाई है।

वियोग का रोग समाप्त हो गया, मिलन का स्वास्थ्य घटा है।

दिल की धड़कन से हम आहंग हैं यूं मौजे नसीम
और दिल धड़क रहा है आनंद से। हवाओं में बड़ी उत्फुल्लता है।
जैसे उस शोख का पैगामे वफा लाई है।
उस प्यारे की खबर लेकर हर हवा की लहर आ रही है।
जिस पै हसरत कदा-ए-यास का होता था गुमां
अब वो दिल मरकजे सद जलवाए रानाई है।

जहां सोचते थे कि कभी फूल न खिलेंगे, उस मरुस्थल में आज फूल खिले हैं। जहां संदेह होने लगा था कि रात कभी न टूटेगी, वहां सुबह हुई है। जहां सोचते थे उदासी ही उदासी रहेगी, वहां आज आनंद उत्सव है।

आयी है मुजदाए अनवारे मर्सरत लेकर
यह जो गर्दूं पे स्यह मस्त घटा छायी है।

और हम तो सोचते थे यह अंधेरी काली घटा है, आज यह बात नहीं है। आज यह मस्त घटा है। और उल्लास और प्रकाश के पुंज की शुभ्र सूचना लेकर आई है। इस अंधेरी घटा के पार भी सूरज झांक रहा है।

आई है मुजदाए अनवारे मर्सरत लेकर।

यह खबर लेकर आई है--उल्लास की, प्रकाश के पुंज की--कि सूरज पीछे है, आता ही है।

यह जो गर्दूं पे स्यह मस्त घटा छायी है
रक्स करते हैं तस्सवर में नजारे क्या-क्या!
कहां फुर्सत है प्रेमी को कि विवाद में पड़े!
रक्स करते हैं तस्सवर में नजारे क्या-क्या
दिल को क्या-क्या हब्से अंजुमन आराई है
यहां तो दिल में नृत्य हो रहा है। यहां तो शराब के चश्मे बह रहे हैं। यहां तो गीतों की झड़ी लगी है।
दिल को क्या क्या हब्से अंजुमन आराई है।
रक्स करते हैं तस्सवर में नजारे क्या क्या!

यहां तो कैसे प्यारे सपनों का जन्म हुआ है, यहां किसको फुरसत है! लेकिन फिर भी भक्तों को भी कुछ कठोर बातें कहनी पड़ी हैं--तुम्हारे कारण। क्योंकि तुम ऐसी जगह उलझ गए हो कि अगर तुम्हें वहां से न तोड़ा जाए तो तुम ठीक जगह पहुंच ही न सकोगे।

दिल है वज्द में सर-सार बेखुदी में रक्सां है
टीस इश्क की जब से जख्माए रंगे जां है,
आज जाम में साकी आग जाए मैं भर दे,

दिल गुदाजे पिनहा कि लज्जतों का ख्वाहां है
जो टूट जाता है हर खिजां की योरिश का,
देख फिर गुलिस्तां में जोर से बहारां है
आज उलट गया शायद शोलाए नकाब उनका
आज जो भी जर्रा है रक्से मेहरे ताबां है,
मौजे नहकते गुल में जोरों गम का है आलम
आज सहने गुलशन में कौन यह खरामां है
बेसबब नहीं जाहिद चश्मे दिल की मदहोशी
हर अदा सितमगर की कैफियत बदामां है
आशिकी की दुनिया में दैर क्या, हरम कैसा
यहां फकत मोहब्बत है, कुफ्र है न ईमां है
दाद दे मुझे वाइज तुझको बातों बातों में
जिस जगह पे ले आया कूए मै फरोसां है।
आशिकी की दुनिया में दैर क्या, हरम कैसा!
प्रेम की दुनिया में कहां कोई मंदिर है, कहां कोई मस्जिद है!
आशिकी की दुनिया में दैर क्या, हरम कैसा
यहां फकत मोहब्बत है, कुफ्र है न ईमां है।
न यहां कोई काफिर है और न यहां कोई मुसलमान; यहां तो सिर्फ मुहब्बत है।
यहां फकत मोहब्बत है, कुफ्र है न ईमां है
आशिकी की दुनिया में दैर क्या, हरम कैसा!
दाद दे मुझे वाइज तुझको बातों बातों में
जिस जगह पे ले आया कूए मै फरोसां है
धन्यवाद दो मुझे कि बात ही बात में तुम्हें ऐसी जगह ले आया, जहां मधुशाला है।
दाद दे मुझे वाइज तुझको बातों बातों में
जिस जगह पे ले आया कूए मै फरोसां है।

संतों ने अगर कभी खंडन किया तो सिर्फ इसलिए कि तुम्हें तोड़ लें उन जगहों से, जो गलत हैं। खंडन किया तो मंडन के लिए। अगर किसी बात को गलत कहा तो सिर्फ इसलिए कि ताकि सही तुम्हें दिखाई पड़ सके। गलत को गलत की तरह देख लेने पर सही को देखने की सुविधा बनती है। अन्यथा भक्तों को कोई विवाद नहीं है, कोई शास्त्रार्थ नहीं है। उन्हें कोई रस नहीं है। न मंदिर में कोई झगड़ा है; न मस्जिद से कोई। न उन्हें फिकर है कि तुम काफिर हो, हिंदू हो कि मुसलमान हो, ईमानदार हो--उन्हें तो सिर्फ एक ही फिकर है और एक ही उनका लगाव है और एक ही उनका संदेह हैः मोहब्बत। तुम्हारे जीवन में प्रेम है तो बस ठीक है। मस्जिद में रहो तो ठीक, मंदिर में रहो तो ठीक। इतना ही ख्याल रहे कि प्रेम में रहो। और तुम्हारे जीवन में आनंद है, परमात्मा के प्रेम की मदहोशी है, तो बस ठीक। फिर तुम काबा जाओ कि कैलाश, कुछ अंतर नहीं पड़ता। फिर तुम कहीं भी रहो, कैसे भी रहो, किसी वेश में, किसी देश में, किसी रंग-ढंग में--सब चलेगा। मगर दो बातें ख्याल कर लेनाः परमात्मा के लिए प्रेम हो और परमात्मा के लिए आनंद हो। नाचता हुआ प्रेम हो। उत्फुल्ल प्रेम हो। कमल की तरह खिला हुआ प्रेम हो। फिर सब अपने आप हो जाता है।

प्रेम के इन वचनों को अगर तुम समझते रहे समझते रहे, तो धीरे-धीरे मधुशाला के करीब निश्चित ही आ जाओगे।

आशिकी की दुनिया में दैर क्या, हरम कैसा!
यहां फकत मोहब्बत है, कुप्र है न ईमां है

दाद दे मुझे वाइज तुझको बातों बातों में
जिस जगह् पे ले आया कूए मै फरोसां है।

आज इतना ही।

बीसवां प्रवचन

जीवन का एकमात्र अभिशापः अहंकार

पहला प्रश्नः कहा है--निर्बल के बल राम। क्या यह सच है?

मनुष्य का अहंकार मानने को राजी नहीं होगा। मनुष्य के अहंकार के विपरीत जाती है यह बात। मनुष्य तो मानना चाहता है कि सारे बल का स्रोत उसके भीतर है। रोज-रोज अनुभव करता है कि निर्बल है, प्रतिपल अनुभव करता कि निर्बल है; फिर भी माने चला जाता है कि बल का स्रोत मेरे भीतर है, कि मैं बलशाली हूं।

जीवन भर इसी विषाद की कथा है कि तुम सोचते हो कि बलशाली हो और सिद्ध होता है कि निर्बल हो; मगर सीखते नहीं। हारते हो, हारते चले जाते हो; मगर विजय की आकांक्षा मन में मंडराती रहती है। यह जो विजय की आकांक्षा है मन में, यह तुम्हें स्वीकार न करने देगी कि निर्बल के बल राम। यह कोई वचन मात्र नहीं है; यह एक जीवंत अनुभूति है।

अभी राम को तो छोड़ो, अभी राम से तो तुम्हारा कुछ लेना-देना नहीं है। अभी तो एक ही बात समझो कि तुम निर्बल हो। बल सिद्ध कहां हुआ! बलशाली से बलशाली को अंततः हम धूल में पड़े देखते हैं। यहां सिकंदर भी खाली हाथ ही आते हैं और खाली हाथ ही जाते हैं। यहां सब सिंहासन आज नहीं कल सूलियां बन जाते हैं। जिनको कल बहुत अकड़ते देखा था, वे सब अब कहां हैं? इस पृथ्वी पर बहुत लोग अकड़ कर चले हैं, करोड़ों लोग अकड़ कर चले हैं--उन सब की लाशें धूल में मिल गई हैं। वे सिर जो आकाश में उठे थे और जिन्होंने बड़े दावे किए थे, वे सब दावेदार कहां हैं? आज उनका कोई नामो-निशान भी नहीं है।

अभी राम को छोड़ो, क्योंकि जब तक तुम्हें अपनी निर्बलता का पूरा-पूरा अहसास न हो जाए, तुम्हारा रोआं-रोआं न कहने लगे तुमसे कि मैं निर्बल हूं, तब तक तुम राम के बल को न जान सकोगे, राम को न जान सकोगे।

इस सूत्र में बड़ा रहस्य छिपा है। यह काव्य ही नहीं है। इसके भीतर वह चिनगारी छिपी है कि तुम्हारे सारे जीवन को रूपांतरित कर दे। इसके भीतर सारी आध्यात्मिक परिवर्तन की कीमिया छिपी है। यह सूत्र बड़ा क्रांतिकारी सूत्र है। मगर शुरू करो अपनी निर्बलता से। मन तो मानने को राजी नहीं होता। मन कहता है : मैं--और निर्बल! रहे होंगे सिकंदर और दूसरे निर्बल, और रहे होंगे करोड़ों लोग जो हार गए। मैं--और हारूंगा! मैं सिद्ध करूंगा कि मैं अपवाद हूं। प्रत्येक मनुष्य का मन यही कहता है कि मैं अपवाद हूं। मुझ पर नियम लागू नहीं होते; मैं नियमों से बच जाऊंगा, कोई तरकीब निकाल लूंगा।

ये नियम अगर आदमी के बनाए नियम होते तो शायद तुम तरकीब निकाल भी लेते। मगर ये नियम शाश्वत हैं। आदमी के बनाए नहीं हैं; उलटा इन्हीं नियमों ने आदमी को बनाया है। इसलिए आदमी इनसे बच कर निकल नहीं जा सकता। यहां कोई अपवाद नहीं होता। यह नियम सार्वभौम है।

मनुष्य निर्बल है, इसका अर्थ क्या है? इससे तुम अपने मन में दीनता मत ले आना, अन्यथा फिर चूक हो गई। एक तो अहंकार है जो मानने को राजी नहीं होता कि मैं--और निर्बल; मैं और निर्बल! कभी नहीं! फिर अगर जीवन सिद्ध ही कर दे--जो कि करेगा ही--क्योंकि गलत बात को लेकर तुम चले थे कि दो और दो पांच होते हैं, आज नहीं कल, कल नहीं परसों, जिंदगी तुम्हें कहेगी, बहुत रूपों में कहेगी कि दो और दो चार होते हैं। कब तक तुम खींचोगे इस झूठ को! एक न एक घड़ी यह झूठ गिर ही जाएगा। झूठ चल नहीं सकते। बैसाखियां दे दो उन्हें सत्य की, थोड़े बहुत घिसट सकते हैं, लेकिन चल नहीं सकते; उनके पास अपने कोई पैर नहीं होते। उनके पास अपना कोई प्राण नहीं होता। तो यह झूठ रोज लड़खड़ाएगा, रोज गिरेगा, जगह-जगह गिरेगा--

रास्तों पर, चौराहों पर, हर पड़ाव पर तुम्हें दिक्कत देगा। कभी न कभी तो तुम्हें दिखाई पड़ेगा कि नहीं, मैं निर्बल हूं। मगर तब खतरा है कि कहीं तुम दूसरी अति पर न चले जाओ और तुम यह सोचने लगो कि मैं दीन-हीन हूं। तो फिर अहंकार वापस लौट आया--नई शक्ल में लौटा। पहचान न सकोगे, ऐसा वेश रख कर लौटा। पहले सम्राट होने का दावा करता था, अब भिखारी होने का भाव लेकर लौटा।

निर्बल का अर्थ भिखारी नहीं होता। निर्बल का इतना ही अर्थ होता है कि बल का स्रोत मैं नहीं हूं। इसमें दीनता का कोई कारण ही नहीं है। गुलाब का फूल कमल नहीं है; इसमें दीनता का क्या कारण है? कमल का फूल गुलाब नहीं है; इसमें दीनता का क्या कारण है? आंख सुनती नहीं; इसमें दीनता का क्या कारण है? कान देखते नहीं; इसमें दीनता का क्या कारण है? ऐसा है।

दीनता का भाव ही तभी पैदा होता है जब हम कुछ और चाहते थे और वैसा नहीं हो रहा है, तो दीनता पैदा होती है। तो दीनता में भी अहंकार ही छिपा हुआ है--पराजित अहंकार, हारा हुआ अहंकार, गिरा हुआ अहंकार। रस्सी जल गई--कहते हैं--लेकिन जल जाने के बाद भी रस्सी की अकड़ नहीं गई। अहंकार हार गया, लेकिन अब हार कर भी एक नए रूप में मौजूद है। अब तुम सोचने लगे मैं दीन-हीन, मैं कुछ भी नहीं; मगर अभी भी तुम्हारी पुरानी बात कहीं स्वर, किसी पृष्ठभूमि में गूंज रही है। अभी भी तुम उसी से तौल रहे हो। उसी के आधार पर तो तुम्हें लग रहा है कि तुम दीन हो। तुमने चाहा था सम्राट होना, नहीं हो सके; अब लगता है कि भिखारी हो। न तुम सम्राट हो, न तुम भिखारी हो।

निर्बल का अर्थ होता है : बल के स्रोत तुम नहीं। बल का स्रोत परमात्मा है। क्यों? क्योंकि यह अस्तित्व इकट्ठा है। इसके बल का स्रोत एक ही है, बहुत नहीं। व्यक्ति अपने को अलग मान लेता है, वहीं भ्रांति शुरू होती है, माया शुरू होती है। अहंकार का जन्म होता है। जिस क्षण तुमने समझा कि मैं अलग हूं इस विराट से, उसी क्षण झंझट शुरू हुई।

तुम अलग नहीं हो।

इन वृक्षों को देखते हो। ये वृक्ष जमीन में जड़े गड़ाए खड़े हैं; जमीन के बिना ये जी न सकेंगे। प्रतिपल जमीन इन्हें रस दे रही है और हवाओं से श्वास ले रहे हैं, पत्ते-पत्ते से श्वास ले रहे हैं। हवाओं के बिना भी न जी सकेंगे। हवाएं प्राण दे रही हैं। और सूरज की किरणों में नाच रहे हैं। सूरज की किरणें ऊष्मा दे रही हैं, गरमी दे रही हैं, ताप दे रही हैं। जीवन उसके बिना भी न हो सकेगा।

यह सारा अस्तित्व एक छोटे से वृक्ष से जुड़ा है और एक छोटा सा वृक्ष सारे अस्तित्व में फैला है। ऐसे ही हम हैं--चलते-फिरते वृक्ष। श्वास न आएगी, तो तुम जी न सकोगे। तो प्रतिपल परमात्मा तुम्हारे भीतर श्वास डाल रहा है।

बाइबिल में कथा है कि भगवान ने मिट्टी की पुतली से आदमी को बनाया और फिर उसके नासापुटों पर अपने ओंठ रख कर श्वास फूंकी। यह कहानी प्रीतिकर है। ऐसा कभी किसी दिन भगवान ने किया होगा, ऐतिहासिक रूप से, ऐसा नहीं है; मगर ऐसा प्रतिपल कर रहा है। ऐसा ही है। कौन तुम्हारे नासापुटों पर श्वास फूंक रहा है? तुम तो नहीं ले रहे हो श्वास, एक बात पक्की है। तुम अगर लेते होते, तब तो तुम मरते ही नहीं।

मुल्ला नसरुद्दीन बहुत बूढ़ा हो गया, सौ साल का हो गया। किसी ने उससे पूछा कि नसरुद्दीन, सौ साल के हो गए, तुम्हारे लंबे जीने का राज क्या है? उसने कहा कि इसमें राज कुछ भी नहीं, बस श्वास लेते जाओ।

मगर श्वास बंद हो जाए तो फिर क्या करोगे? फिर कैसे लोगे? बंद हो गई श्वास, फिर कैसे लोगे? न आई, फिर कैसे लोगे? यह भ्रांति है कि तुम श्वास लेते हो। श्वास चलती है, सच; लेता कोई भी नहीं। जब तक चलती है, चलती है; जब नहीं चलती, नहीं चलती। बाइबिल की कथा ज्यादा सच है, ज्यादा वैज्ञानिक; ऐतिहासिक न हो भला, मगर ज्यादा सही है, ज्यादा सत्य के करीब है--कि परमात्मा ने आदमी की मिट्टी की देह पर श्वास

फूंकी, आदमी जीवित हो उठा। अभी भी फूंक रहा है। तुम्हारे नासापुटों पर भी उसी के ओंठ हैं; तुम्हें दिखाई पड़ें या न दिखाई पड़ें। और जिस दिन श्वास नहीं फूंकेगा, उस दिन श्वास नहीं आएगी।

हम जुड़े हैं।

एक मछली को भी तो ख्याल नहीं आता होगा सागर में, कि मैं सागर के बिना न जी सकूंगी। कैसे ख्याल आएगा? मछली को भी तो ख्याल न आता होगा कि सागर में मेरा जीवन है; सागर से मेरा जीवन है; सागर का मैं अंग हूं। कैसे ख्याल आएगा? मछली बाएं जाती है, दाएं जाती है, डुबकी मारती है, ऊपर आती है, सतह पर तैरती है, गहराई में उतरती है--मछली को लगता होगा : मैं अलग हूं। फिर इसे फेंक दो तट पर, तब इसे पता चलेगा। तड़फेगी, रोएगी, गुहार मचाएगी कि मेरा सागर मुझे वापस दे दो; मैं बिना सागर के नहीं जी सकती। तब इसे पता चलेगा कि मैं सागर की एक लहर हूं--जरा ठोस हो गई, बस; लेकिन हूं सागर की एक लहर। सागर में ही हो सकती हूं।

ऐसे ही हम परमात्मा के सागर में जीते हैं। हम भूल ही जाते हैं कि हम परमात्मा में ही जी रहे हैं; परमात्मा हमारा जीवन है। हमारा अपना कोई अलग जीवन नहीं है; जैसे मछली का अपना कोई अलग जीवन नहीं है। सागर में ही जन्म, सागर में ही जीवन, सागर में ही मृत्यु। सागर से ही उठना, सागर में ही एक दिन सो जाना। थोड़ी देर की क्रीड़ा और फिर विश्राम। ऐसे ही हम हैं। जिस दिन तुम जानोगे कि मैं निर्बल हूं, उस दिन सिर्फ इतना ही सिद्ध हुआ कि वह जो अहंकार की तुम घोषणा कर रहे थे, गलत थी। तुम अपने स्वयं के केंद्र न थे। तुम्हारे केंद्र पर भी परमात्मा बैठा है, विराट बैठा है। वही सबके केंद्र पर बैठा है।

इस सारे अस्तित्व का एक ही केंद्र है। होना भी ऐसा ही चाहिए। अगर इस अस्तित्व में इतने केंद्र होते जितने अहंकार हैं, तो यह अस्तित्व कभी का बिखर गया होता; इसे जोड़ कर कौन रखता! यह सारा अस्तित्व जुड़ा है--कितना घनीभूत रूप से जुड़ा है! सब चीजें एक-दूसरे से जुड़ी हैं। सब हम ताने-बाने हैं एक ही अस्तित्व के। यहां रात-दिन, जागे-सोए, तुम्हें पता चले न पता चले, चेतन-अचेतन, प्रतिपल लेन-देन चल रहा है। जैसे श्वास आ रही जा रही, ऐसे ही और हजार तलों पर लेन-देन चल रहा है।

ये वृक्ष जब श्वास लेते हैं तो कार्बन-डाइआक्साइड को पीते हैं और जब श्वास छोड़ते हैं तो ऑक्सीजन को छोड़ते हैं। तुम ऑक्सीजन पीते हो और जब छोड़ते हो तो कार्बन-डाइआक्साइड छोड़ते हो। इन वृक्षों के बिना तुम न हो सकोगे। तुम्हारे बिना ये वृक्ष न हो सकेंगे। इसीलिए तो जैसे-जैसे जमीन को हमने काट कर वृक्षों से रहित कर दिया, वैसे-वैसे आदमी का जीवन क्षीण हो गया है। और हमने फिजूल की बातों के लिए वृक्षों को काट डाला।

कल मैं पुस्तकों के इतिहास के संबंध में एक पुस्तक पढ़ रहा था। अमरीका में न्यूयार्क टाइम्स की इतनी प्रतियां छपती हैं रोज कि डेढ़ सौ एकड़ जमीन में जितने वृक्ष होते हैं उतने उसे रोज जरूरत पड़ते हैं--उसके कागज बनाने के लिए। डेढ़ सौ एकड़ जमीन के वृक्ष न्यूयार्क टाइम्स पी जाता है एक दिन में। यह एक अखबार! और इस अखबार से किसी को कोई जीवन नहीं मिलने वाला। और वह जो डेढ़ सौ एकड़ में फैले हुए हजारों वृक्ष थे, वे गए। और उनसे न मालूम कितने जीवन क्षीण हो जाएंगे!

आदमी ने बड़ी नासमझियां की हैं--इसी भ्रांति में कर ली हैं कि मैं तो अलग हूं। वृक्ष को काटने से मेरा क्या कटेगा! पर ध्यान रखना, जब तुमने वृक्ष काटा, अपना पैर काटा। वृक्ष कट जाएगा तो वर्षा न होगी, बादल न आएंगे; मरुस्थल हो जाएगा। वृक्ष कट जाएगा तो पक्षी न आएंगे। वृक्ष कट जाएगा तो हवाएं इस ढंग से न बहेंगी जैसे कल तक बहती थीं। वृक्ष कट जाएंगे तो कौन तुम्हारे जीवन में ऑक्सीजन को दे जाएगा। तुम्हारे द्वारा फेंकी गई कार्बन-डाइआक्साइड को कौन पचाएगा? तुम जो पूरे वक्त जहर फेंक रहे हो बाहर, उसको कौन पिएगा? ये वृक्ष नीलकंठ हैं। ये तुम्हारे श्वास से फेंके गए जहर को पी जाते हैं; उसको भी काम का बना देते हैं।

यहां सब जुड़ा है। यह तो मैंने उदाहरण के लिए बात कही। यहां सब संयुक्त है। पानी के बिना हम न हो सकेंगे। हवा के बिना हम न हो सकेंगे। आकाश के बिना हम न हो सकेंगे। चांद-तारों के बिना हम न हो सकेंगे।

सूरज के बिना हम न हो सकेंगे। तो हमारे होने को अलग मानने का कारण क्या है? कोई एकाध आदमी तो सिद्ध करके बता दे कि मैं अलग हो सकता हूं। अपने सारे संबंध तोड़ कर एक क्षण भी तो कोई जी जाए. . .। दो-चार दिन भोजन नहीं करते तो अड़चन शुरू हो जाती है या नहीं? तो इसका अर्थ हुआ कि वे जो वृक्षों पर फल लगते थे, उन पर तुम निर्भर थे; वे जो गेहूं की बालें लगती थीं खेत में, उन पर तुम निर्भर थे। तो वे गेहूं की बालें और गेहूं के खेत, उनसे तुम अलग नहीं हो।

एक दिन पानी न मिले तो कैसी तड़प पैदा होती है! और उस एक दिन भी तुम जी लेते हो, क्योंकि तुम्हारे शरीर ने कुछ पानी इकट्ठा कर रखा है, अन्यथा तुम एक दिन भी नहीं जी सकते थे। वह जो भीतर पानी इकट्ठा कर रखा है, संरक्षित, उससे काम चला लेते हो एक दिन, दो दिन, तीन दिन; फिर मुश्किल होने लगती है, भीतर का संरक्षित खत्म होने लगता है। पानी चाहिए! पानी चाहिए! अब तुम तड़फते हो।

सिकंदर से किसी फकीर ने कहा था कि तू ऐसा समझ सिकंदर, अगर कभी रेगिस्तान में खो जाए और तुझे प्यास लगे और एक आदमी तेरे पास एक गिलास में पानी भर कर खड़ा हो, लेकिन वह कहे कि इसका मूल्य क्या चुकाएगा, तू कितना देने को राजी होगा? सिकंदर ने कहा कि अगर मैं प्यासा होऊंगा और मरुस्थल में होऊंगा तो मैं अपना आधा राज्य भी दे दूंगा।

उस फकीर ने कहा : वह आदमी मैं हूं, मैं कोई ऐसे सस्ते में बेचने वाला नहीं हूं। और क्या दे सकेगा?

सिकंदर ने कहा कि अगर हालत बहुत खराब हो रही होगी तो मैं पूरा राज्य भी दे दूंगा।

तो उस फकीर ने कहा : यह भी खूब मजे की रही! एक गिलास पानी में जो चला जाएगा, इस राज्य को कमाने के लिए पूरा जीवन तूने गंवा दिया! एक गिलास पानी की भी कीमत जो नहीं चुका सकेगा समय पड़ने पर... ।

तो किसी क्षण में पूरा साम्राज्य सिकंदर का एक गिलास पानी की भी कीमत का नहीं होता। क्यों? क्योंकि जब पानी न मिले तो प्राण संकट में पड़ जाते हैं। पानी तो परमात्मा से आता है। राज्यों का क्या मूल्य है! जीवन ही न होगा तो राज्य का क्या करोगे!

तो जब हम कहते हैं निर्बल के बल राम, तो इसका अर्थ क्या होता है? इसका अर्थ वैसा नहीं होता जैसा तुम अपने मन में सोच लेते हो। तुम सोच लेते हो कि हम जाएंगे मंदिर में, कहेंगे कि भगवान, हम बड़े कमजोर हैं, अब तुम हमें बल दो, धंधा ठीक से चलवाओ, दुकान ठीक से चलवाओ, बाजार में प्रतिष्ठा बढ़वाओ। चलो हम तो कह देते हैं कि हम निर्बल हैं, अब अपने चमत्कार दिखलाओ। यह मतलब नहीं होता। ऐसा ही मूढ़तापूर्ण मतलब लोगों ने लिया है कि जब हम निर्बल होकर आंसू बहाएंगे और खूब रोएंगे, गिड़गिड़ाएंगे, कहेंगे कि हम पतित हैं, तुम पतितपावन हो; हम ना-कुछ हैं तुम सब कुछ हो; हम तुम्हारे चरणों की धूल हैं, तुम राजा हो; अब बचाओ--तब वह भागा हुआ आएगा। ये बचकानी आकांक्षाएं हैं। इसका तो मतलब यह हुआ कि तुमने उसको भी अपनी सेवा में लगा लिया। तुमने बड़ी होशियारी की। तुम्हारी खुशामद काम कर गई।

तुम्हारी प्रार्थनाएं खुशामदें हैं। इसलिए तो प्रार्थना को स्तुति कहते हैं। स्तुति यानी खुशामद। तुम्हारी प्रार्थनाएं--चापलूसियां हैं। तुम्हारी प्रार्थनाएं--उसको फुसलाने की कोशिश। तुम किसको धोखा देने चले हो?

निर्बल के बल राम का ऐसा कुछ अर्थ नहीं होता कि तुम गिड़गिड़ाओ, कि तुम घुटने टेको। निर्बल के बल राम का अर्थ होता है, इस सत्य का साक्षात्कार, कि मैं अलग नहीं हूं। बस मेरा केंद्र मेरे भीतर नहीं; मेरा केंद्र तेरे भीतर है। मैं तेरे साथ जी रहा हूं। मैं तेरा अंग हूं; तू अंगी है। मैं तेरा अंश हूं; तू अंशी है। तू सागर है; मैं तेरी एक छोटी सी लहर। . . . ऐसी साक्षात अनुभूति का नाम : वही इस छोटे से प्यारे वचन में जोड़ा गया है--निर्बल के बल राम।

फिर ऐसा थोड़े ही है कि तुम मेरी दुकान ठीक से चलाओ तो इसका मतलब हुआ तुम्हारी दुकान अभी अलग है! इसका यह मतलब तो थोड़े ही है कि तुम मेरी बीमारी को मिटाओ। इसका मतलब हुआ कि तुम्हारी बीमारी अभी अलग है! जिस दिन तुमने जाना निर्बल के बल राम, तुमने जाना कि मैं निर्बल हूं।

और ध्यान रखना, फिर दोहरा दूं : निर्बल जानने का मतलब यह नहीं कि तुमने जाना कि मैं दीन-हीन हूं। दीन-हीनता तो गई अहंकार के ही साथ। वह तो अहंकार की ही छाया थी। सिर्फ अहंकारियों को पता चलता है दीन-हीन होने का। जिनका अहंकार मिट गया, उनकी कैसी दीनता? दीनता पता कैसे चलेगी उन्हें? अहंकार को ही दीनता का बोध होता है। जब अहंकार हारता है और रोज-रोज हारता है, इसलिए रोज-रोज दीनता का बोध होता है। फिर जितनी दीनता का बोध होता है, उतनी जीतने की कोशिश करता है कि एकाध बार तो सिद्ध कर दूं कि मैं कुछ हूं। जितना हारता है उतना जीतने को दौड़ता है। जितना जीतने को दौड़ता है उतना हारता है। तो अहंकार की आकांक्षा होती है कि मैं सिद्ध कर दूं कि मैं कुछ हूं। और सिद्ध हमेशा होता है कि मैं ना-कुछ हूं। इसलिए दीनता पैदा होती है।

दीनता अहंकार की छाया है। जिसका अहंकार गया, स्वभावतः छाया भी चली जाएगी। इसलिए धार्मिक व्यक्ति न तो अहंकारी होता है न विनीत। इसे तुम गांठ बांध लेना। धार्मिक व्यक्ति अहंकारी तो होता ही नहीं, विनम्र भी नहीं होता। विनम्र क्या खाक होगा? किसलिए होगा? किस कारण होगा? धार्मिक आदमी में अहंकार ही नहीं बचता, तो अहंकार की वह जो छाया थी, वह भी कहां बचने वाली है! धार्मिक आदमी यह तो कहता ही नहीं कि मैं सब कुछ हूं; धार्मिक आदमी यह भी नहीं कहता कि मैं कुछ भी नहीं हूं। जब "मैं" ही न बचा तो अब दावा क्या!

कुछ नहीं हूं, यह भी दावा है। यह विपरीत दावा है। अहंकारी कहता है : मैं सिंहासन पर! और जिसको तुम विनम्र कहते हो, वह कहता है : मैं आपके चरणों की धूल--मगर हूं! फिर चरणों की धूल कभी भी तो मुकुट पर बैठ सकती है, देर क्या लगती है। चरणों की धूल को कितनी देर लगती है मुकुट पर चढ़ जाने में! मुकुट पर चढ़ने की तरकीब ही है कि चरण से शुरू करो। किसी की गर्दन दबानी हो, पैर दबाने से शुरू करो। पहले जनसेवक बन जाओ, पैर दबाओ, फिर दिल्ली पहुंच जाओगे। फिर गर्दन दबाओ।

गर्दन दबानी हो तो पैर दबाने से शुरू करना। पैर दबाओगे, आदमी निश्चिंत हो जाएगा; कहेगा : भला, जनता का सेवक है, सर्वोदयी है। दबाने दो, पैर ही तो दबा रहा है! तुम... जब तक नींद लग जाएगी तुम्हारी, वह पैर दबाने वाला बढ़ते-बढ़ते, बढ़ते-बढ़ते धीरे-धीरे गर्दन दबा लेगा। जब गर्दन दबा लेगा, तब तुम समझोगे कि सर्वोदयी जनता पार्टी में सम्मिलित हो गया है; अब सर्वोदयी सर्वोदयी नहीं है। मगर तब तक बहुत देर हो चुकी। अब गर्दन से हाथ हटाना बहुत मुश्किल हो जाएगा। अब काफी देर हो चुकी। अब छूटना इतना आसान नहीं।

तो वह जो पैर की धूल होने का दावा करता है, वह किसी भी क्षण मुकुट पर विराजमान हो जाएगा। वह उसी के लिए तो कर रहा है दावा। वह उसी के लिए तो झुक रहा है कि चलो कोई बात नहीं, झुके लेते हैं। अगर झुकने से रास्ता खुलता हो तो झुके लेते हैं।

धार्मिक व्यक्ति का न तो कोई अहंकार है और न कोई निअर्हंकारिता है। धार्मिक व्यक्ति यह कहता है कि मैं हूं ही नहीं, तो कैसा निअर्हंकार और कैसा अहंकार! परमात्मा है। वही है। उसका ही होना मात्र है। और स्वभावतः उसका होना परम बल से भरा है। सारी ऊर्जा उसकी है। ऐसा अर्थ है इस सूत्र का : निर्बल के बल राम।

जिस क्षण तुम मिट जाते, तुम बिलकुल शून्य हो जाते, जिस क्षण तुम जगह खाली कर देते हो--उस क्षण तुम्हारे भीतर नई हवाएं बहती हैं, द्वार-दरवाजे खुलते हैं। ये नई हवाएं परमात्मा की हैं। जब तुम अपना छोटा सा टिमटिमाता हुआ दीया, गंदा सा प्रकाश बुझा देते, तब तुम्हारे भीतर चांदनी उतर आती है, वह चांदनी परमात्मा की है।

रवींद्रनाथ ने लिखा हैः एक रात बजरे पर देर तक सौंदर्यशास्त्र पर कोई किताब मैं पढ़ता रहा। एक छोटी सी मोमबत्ती को जला कर, उसका टिमटिमाता प्रकाश, बामुश्किल पढ़ पाता था। लेकिन किताब रुचिपूर्ण थी

और लगा रहा। आधी रात गए, किताब बंद की, थका-मांदा मोमबत्ती बुझा कर फूंकी। फूंकते ही चमत्कृत हो गया। वह बजरे पर, नाव पर छोटा सा झोपड़ा. . . तत्क्षण जैसे ही मोमबत्ती फूंक कर बुझाई, वह जो धीमी सी टिमटिमाती मोमबत्ती की रोशनी थी, वह जैसे ही बुझी, वैसे ही पूरा चांद बाहर था! द्वार-दरवाजे से, रंध्र-रंध्र से चांद की किरणें भीतर आ गईं। चांदी नाचने लगी।

रवींद्रनाथ को एक बोध हुआ। उन्होंने अपनी डायरी में लिखा है कि आज मुझे एक बोध हुआ : यह छोटी सी टिमटिमाती रोशनी चांद को भीतर न आने देती थी! यह छोटी सी टिमटिमाती रोशनी पूरे चांद को अटका दी थी, बाहर अटका दी थी, भीतर नहीं आने देती थी! इसके बुझते ही, यह क्षुद्र के मिटते ही विराट भीतर चला आया। अपूर्व सौंदर्य भीतर चला आया! और मैं भी कैसा अंधा, सौंदर्यशास्त्र को किताब में खोज रहा हूं!

वे बाहर निकल आए। पूरा चांद आकाश में! एकांत नदी पर बंधा हुआ बजरा! सब तरफ सन्नाटा! पक्षी भी सो गए! मनुष्यों का कोई पता नहीं। गांव-ग्राम सो गए। उस अपूर्व सन्नाटे में, उस शांत स्निग्ध रात्रि में--सौंदर्य बरस रहा था। पहले तो चांद की किरणें भीतर आ गईं, जैसे ही मोमबत्ती बुझी, रंध्र रंध्र से! फिर जब चांद भीतर आ जाए तो तुम्हें बाहर ले जाएगा। जब चांद भीतर आ जाएगा तो उसी की किरणों के सहारे तुम बाहर आ जाओगे। वह तुम्हें बाहर बुलाएगा। निमंत्रण मिल गया। अब तुम रुक न सकोगे।

रवींद्रनाथ को बाहर आना पड़ा। थके-मांदे थे, सोने की तैयारी कर रहे थे, इसलिए मोमबत्ती बुझाई थी; लेकिन अब यह चांद जो बुलावा देने आ गया, ये जो भीतर आ गईं किरणें इसकी, यह जो किरणों का तिलिस्म, यह जादू भर गया कमरे में! वे बाहर निकल आए।

उस रात उन्होंने अपनी डायरी में लिखा कि जब तक मनुष्य के भीतर अहंकार की मोमबत्ती जलती रहती है, तब तक परमात्मा प्रवेश नहीं कर पाता; बाहर अटका रहता है। और वह अहंकार की मोमबत्ती में हम कितने शास्त्र टटोलते हैं, कितने शास्त्र खोजते हैं! और सत्य चारों तरफ मौजूद है और सत्य को हम खोजने निकलते हैं। और सत्य ही सत्य है! सब तरफ वही है। और हम उसी को खोजने निकलते हैं; जैसे कहीं और हो; जैसे कहीं और जाना हो!

निर्बल के बल राम का अर्थ हैः तुम्हें यह समझ में आ जाए कि मैं नहीं हूं। यह दावा मैं का खो जाए। यह दावा ही है; इसमें कोई असलियत नहीं है। यह सिर्फ ख्याल है। मगर ख्याल भी बड़ी असलियत ले लेते हैं। अगर बहुत दिन तक ख्यालों को पकड़ कर हम बैठे रहें तो यथार्थ बन जाते हैं। ख्याल ही है।

तुम्हें अगर किसी ने कह दिया कि इस रास्ते से मत गुजरना, यहां मरघट है। चाहे मरघट न हो. . .।

मेरे एक मित्र मेरे पास मेहमान थे। बनारस विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान के प्रोफेसर हैं। बस यूं ही बात हो रही थी। मनोवैज्ञानिक हैं। और जब मैंने उनसे यह कहा कि विचार अगर बहुत दिन तक मन में बैठे रहें तो यथार्थ हो जाते हैं। उन्होंने कहा : यह बात मुझे जंचती नहीं। सिर्फ विचार कैसे यथार्थ हो सकता है? यथार्थ यथार्थ है, विचार विचार है।

मैंने फिर उनसे कुछ कहा नहीं। जब वे रात सोने गए, मैंने उनसे कहा : इस कमरे में जरा आप ख्याल से सोना। उन्होंने कहा : क्यों? मैंने कहा : इसमें एक... है तो बात ही, आप से कहनी 29ः 15... , लेकिन बता देनी ठीक है। कभी यहां कोई कब्र थी। मकान बनाने वाले ने कब्र तो मिटा दी है, मगर कब्र में जो रहने वाला था, वह गया नहीं। वह कभी-कभी रात में अभी भी आ जाता है।

अरे, उन्होंने कहाः आप भी क्या बातें कर रहे हैं! आप जैसा आदमी और ऐसी बातें कर रहा है!

मैंने कहा कि करनी तो नहीं चाहिए, मैं करना भी नहीं चाहता। मैं खुद भी नहीं मानता था, लेकिन जब प्रत्यक्ष हुआ, तो अब मजबूरी है। फिर आपको न बताऊं, फिर सुबह आप कहें कि बताया नहीं, चेताया नहीं... । आप पहली दफा इस मकान में आए हैं; जो इसमें आते हैं, उनको तो पता है। दुबारा आपको नहीं कहूंगा। और फिर मेरी बात माननी जरूरी नहीं। आप तो निश्चिंत सोइए, आप मत मानिए। मगर है और कभी-कभी चादर

खींचता है। कभी मुंह से चादर उघाड़ देता है। कभी एकदम आकर सामने खड़ा हो जाता है। उन्होंने कहा : आप भी कहां की बातें कर रहे हैं! आप से मैंने कभी आशा ही नहीं की थी कि आप भूत-प्रेत में मानते होंगे।

मैंने कहा : मैं क्या करूं, मानता मैं भी नहीं हूं।

फिर तो मैं सो गया। और रात दो बजे उन्होंने जो चीख मारी तो गया उनके कमरे में, वह बेहोश पड़े थे। पानी छिड़कवाना पड़ा, हवा करनी पड़ी, बामुश्किल होश में आए। मैंने पूछा : क्या हुआ? उन्होंने कहा कि हद हो गई, मैं भी मानता नहीं, मगर है कोई। बराबर मैंने उस कोने में खड़ा देखा। और जब मैंने खड़ा देखा तो मैं घबड़ा गया।

मैंने कहाः कोई भी नहीं है। मैं सिर्फ आपके प्रश्न का उत्तर दिया हूं। विचार भीतर बैठ जाए तो यथार्थ हो जाता है।

वे तो बड़े नाराज हुए। उन्होंने कहाः यह भी कोई बात हुई! मेरी पूरी रात खराब कर दी और मैं इतना घबड़ा गया, मुझे तो ऐसा लगा जैसे हार्ट-अटैक हो जाएगा या क्या होगा! मुझे तो ऐसा लग रहा था कि अब मैं चीख भी न सकूंगा, जब वह सामने खड़ा था। कैसे चीख निकली, क्योंकि मैं इस घबड़ाहट में पड़ गया कि अब कोई न आया तो क्या होगा, पता नहीं यह क्या करे! ऐसे भी उत्तर दिया जाता है?

मैंने कहाः ऐसे ही उत्तर दिया जाता है। और तो कोई उत्तर नहीं है। यह कोई भी नहीं है यहां। अब आप मजे से सो जाइए।

उन्होंने कहाः नहीं, मैं आपके ही कमरे में आता हूं। अब आप कितना ही कहो, इस कमरे में मैं सोने वाला नहीं हूं।

पर मैंने कहाः यहां कोई भी नहीं। उन्होंने कहा : हो या न हो, मुझे सोना है, तो मैं इस झंझट में नहीं पड़ता। यह कोई विवाद का मसला नहीं, मुझे मेरी पूरी रात खराब मत करो। मैं बहुत घबड़ा गया हूं।

एक दफा तुम किसी बात को स्वीकार कर लो, तुम्हारी स्वीकृति के कारण ही हो जाती है। एक सम्मोहन पैदा हो जाता है।

तुम्हारी जिंदगी में बहुत से यथार्थ ऐसे ही हैं जो तुमने स्वीकार कर लिए हैं। बस स्वीकार कर लिए हैं। कर लिए, तो हैं। जिस दिन अस्वीकार कर दोगे, उसी दिन नहीं हो जाएंगे।

यह अहंकार मनुष्य के सबसे बड़े सम्मोहनों में से एक है। यह सबसे बड़ी हिप्नोसिस है। यह हमने मान रखा है और जन्मों-जन्मों से इसको सम्हाला है, इसलिए बहुत मजबूत हो गया है। है बिलकुल नहीं; हवा है, बस हवा है--लेकिन बहुत गहरे बैठ गया है। अफवाह है। तुम हो नहीं; तुम्हारा होना एक अफवाह है। लेकिन इस अफवाह पर तुमने भरोसा कर लिया। भरोसा ही नहीं कर लिया, इसको सही सिद्ध करने की तुमने सब तरह की चेष्टाएं की हैं। और यह सही मालूम होता है। और फिर तुम जिनके बीच रहते हो, वे भी इसी अफवाह को मानते हैं। तो हम एक-दूसरे का पारस्परिक सम्मोहन बढ़ाते रहते हैं।

फिर, चौबीस घंटे हमारी भाषा ऐसी है कि मैं शब्द का उपयोग करना ही पड़ता है। जब भी तुम मैं शब्द का उपयोग करते हो, फिर यह अहंकार मजबूत होता है, फिर मजबूत होता है, फिर मजबूत होता है। इस पर रोज पर्त-दर-पर्त जमती चली जाती है।

जीवन के यथार्थ इस झूठ के कारण दिखाई नहीं पड़ते। यथार्थ परमात्मा है। अयथार्थ तुम हो। यही तो अर्थ है, संत जब कहते हैं कि संसार माया है। संसार यानी ये वृक्ष नहीं--ये विचार। संसार यानी ये पहाड़-पर्वत नहीं--यह अहंकार। संसार यानी ये चांद-तारे, सूरज नहीं--ये तुम्हारे भीतर जो धारणाएं, अफवाहें, कल्पनाएं घनीभूत हो गई हैं। इन घनीभूत धारणाओं के विसर्जन का नाम ध्यान है, भक्ति है। और तब अचानक दिखाई पड़ता है कि सब तरफ राम का ही बल है। तुम में भी, औरों में भी--सब तरफ उसी एक का बल है।

और स्वभावतः जब तुम नहीं बचते तो फिर कैसी दीनता! निर्बल के बल राम! तब जो भी होता है शुभ है, क्योंकि परमात्मा से होता है। जो भी होता है, सुंदर है। उसके हाथ से असुंदर हो ही कैसे सकता है! फिर तो मृत्यु

भी आती है तो वरदान है। अभी तो जीवन भी अभिशाप है। इस अहंकार के कारण जीवन भी अभिशाप हो गया है। और फिर तो मौत भी आती है तो वरदान है। फिर तो वरदान ही घटते हैं; और कुछ घटता ही नहीं। फिर तो आशीष ही बरसते हैं; और कुछ बरसता नहीं, क्योंकि और कुछ बरस सकता नहीं।

आज पराया हुआ जा रहा है मुझसे मेरा अपनापन
पथ भूले राही सा व्याकुल भटक रहा मेरा जीवन
ले अंगड़ाई जगी वेदना, जाग गया सोया क्रंदन
डूब चला विश्वास जभी से टूट चले मन के बंधन,
कैसे चले सांस की दुल्हन, निपट अकेली राहों में
कदम कदम पर व्यथा ठगोनी विषधर पाल गई
आज उभर आयी अधरों पर फिर से सहमी करुण कथा
वाणी से अधिकार मांगता गीत अधूरे जीवन का
देखो आज बिखर न जाए संचित भावों की माला
टूट न जाए छंद, अबोली रह जाए मन की भाषा
बुझी आरती थकी पुजारिन, मंदिर के पट बंद हुए
कौन सुहागिन स्वर्ण-कलश पर दीपक बाल गयी!
बुझी आरती, थकी पुजारिन, मंदिर के पट बंद हुए
कौन सुहागिन स्वर्ण-कलश पर दीपक बाल गई!

वह दीया बलता ही तब है, जलता ही तब है--जब तुम्हारे अहंकार का सब हार जाता है, सब समाप्त हो जाता है, अहंकार जब पूरी तरह पराजित होकर गिर जाता है, उसकी रेखा भी नहीं बचती।

बुझी आरती, थकी पुजारिन, मंदिर के पट बंद हुए

जहां लगता है कि अंतिम पराजय आ गई, सब तरह से हार गए, सर्वहारा--उसी क्षण. . . कौन सुहागिन स्वर्ण-कलश पर दीपक बाल गई! उसी क्षण किसी अज्ञात का दीया तुममें उतर आता है; किसी अज्ञात की रोशनी तुम में उतर आती है। निर्बल के बलराम।

निर्बल के बल राम में राम का किसी तरह का उपयोग कर लेने की चेष्टा नहीं है। निर्बल के बल राम में राम के बल का कुछ शोषण कर लेने का आयोजन नहीं है। निर्बल के बल राम में केवल तथ्य की घोषणा है।

इसीलिए तो अहंकार तोड़ता है और आंसू जोड़ देते हैं। अहंकार दीवाल बन जाती है; आंसू द्वार बन जाते हैं। क्योंकि आंसू का अर्थ होता है : हारे हुए, पराजित।

बुझी आरती, थकी पुजारिन, मंदिर के पट बंद हुए

अब अपने पर कोई भरोसा न रहा। अब अपने से कुछ हो सकेगा, इसकी कोई आशा भी न बची। अब सारी आशा, निराशा हो गई; सारी योजनाएं हताश होकर गिर गईं। अब कोई भविष्य न बचा। सिर्फ आंख आंसुओं से गीली रह गई। सिर्फ विषाद, सिर्फ संताप...

बुझी आरती, थकी पुजारिन, मंदिर के पट बंद हुए

जैसे आदमी ने अपना आत्मघात ही कर लिया, अब मैं नहीं हूं--और जिस क्षण यह आत्मघात घटता है कि मैं नहीं हूं, उसी क्षण समाधि का दीया जल जाता है। यह बेबूझ घटना घटती है, यह रहस्यमय घटना घटती है। जिस दिन तुम नहीं होते, उसी दिन तुम्हारे भीतर परमात्मा नाचने लगता है। आंसू की कला सीखो।

यह जी चाहता है कि कुछ कर दिखाएं,
कोई नज्म लिखें, कोई गीत गाएं
जो यह भी न हो तो उसे याद करके
किसी कुंज में बैठ कर गम के आंसू बहाएं

मन तो करने का होता है। यह जी चाहता है कि कुछ कर दिखाएं! मगर क्या कर दिखाओगे? कृत्य से कोई आदमी परमात्मा से नहीं जुड़ता, क्योंकि कृत्य तो फिर-फिर अहंकार को ही मजबूत कर जाता है। इसलिए तुम क्या करते हो, इससे तुम धार्मिक नहीं होते; तुम क्या हो, इससे धार्मिक होते हो। कोई आदमी कहता है, मैंने दान किया। कोई आदमी कहता है, मैंने मंदिर बनाया। कोई आदमी कहता है कि मैंने गौ-शाला खोली। कोई आदमी कहता है, इतने ब्राह्मणों को भोजन कराता हूं। कोई आदमी कहता है, देखो अनाथालय चलाता हूं, विधवा आश्रम चलाता हूं, ऐसा-ऐसा . . . फेहरिश्त लंबी है करने वालों की। मगर ये धार्मिक हैं?

ये धार्मिक नहीं हैं। अभी इन्हें करने का ख्याल है। अभी ये कहते हैं कि मैंने धर्मशाला बनाई, मैंने मंदिर बनाया! तो यह मंदिर में जो इन्होंने मूर्ति रखी, यह मूर्ति इनके ही मैं की मूर्ति है, चाहे इसको राम कहो, चाहे कृष्ण कहो, चाहे महावीर, बुद्ध कहो, कुछ फर्क नहीं पड़ता। अगर इस मूर्ति को जरा गहरे खोदोगे तो तुम इनका नाम ही लिखा हुआ पाओगे। यह मूर्ति इनकी ही है। यह बुद्ध के बहाने इन्होंने अपनी मूर्ति रख ली। अपने हस्ताक्षर कर जाने की कोशिश कर रहे हैं। पत्थरों पर नाम लिख जाने की कोशिश कर रहे हैं--टिके कुछ, बचा रहे कुछ पीछे, याद रह जाए, इतिहास के पन्नों पर कहीं कोई छोटी टिप्पणी रह जाए।

जब बोधिधर्म चीन पहुंचा और सम्राट वू ने उससे कहा कि मैंने हजारों मंदिर बनवाए और लाखों बुद्ध की मूर्तियां गड़वाईं और मैं सैकड़ों बौद्ध भिक्षुओं को भोजन कराता हूं और मैंने सैकड़ों बौद्ध शास्त्रों का अनुवाद करवाया है, मैंने अपना सारा खजाना धर्म की सेवा में लगा दिया है--मुझे इससे क्या लाभ होगा? इसका क्या पुण्य होगा?

जो और भिक्षु गए थे भारत से इसके पहले, उन सबने उसकी खूब प्रशंसा की थी कि सम्राट वू, आप चक्रवर्ती हैं! आप जैसा धर्म-राजा कभी नहीं हुआ! आप राजाओं में भी महाराजा हैं! आपकी कीर्ति सदा रहेगी। आपका पुण्य बड़ा है। स्वर्ग में आपके लिए स्वर्ण-महल बनाए जा रहे हैं। आपकी प्रतीक्षा की जा रही है। आप सातवें स्वर्ग जाओगे। ऐसी-ऐसी बातें उन्होंने कही थीं। वू बहुत प्रसन्न हुआ था। और वू ने और भी ज्यादा मंदिर बनवाए, और भी भिक्षुओं को भोजन करवाया, और भी शास्त्रों के अनुवाद करवाए, और भी लोगों को बौद्ध धर्म में दीक्षित करवाया। सम्राट वू ने चीन को बौद्ध बनाया।

लेकिन यह बोधिधर्म आया। यह कुछ और ढंग का आदमी था। यह असली आदमी था। ऐसे असली आदमियों के सामने खड़े होने में भी प्राण कंप जाते हैं।

जब बोधिधर्म से पूछा वू ने, जो उसने हमेशा पूछा था और प्रशंसित होकर आनंदित होता था, जब उसने पूछा क्या होगा इसका पुण्य--बोधिधर्म ने उसे ऐसे क्रोध से देखा, बोधिधर्म ने उसकी आंखों में इस तरह भयंकरता से देखा कि जैसे कोई सिंह खड़ा हो और खा जाने को तत्पर हो। उसने कहा कि पुण्य! कैसा पुण्य? नरक में न पड़ो तो बहुत!

नरक में न पड़ो तो बहुत। वू ने कहा : महाराज, आप कहते क्या हैं? वह तो जैसे एक नींद से जागा। अब तक तो किसी ने यह बात नहीं कही थी। उसने कहा : आप कहते क्या हैं? मैंने इतने धर्म के कृत्य किए और मैं नरक में न पड़ूं तो बस. . .!

बोधिधर्म ने कहा : हां, इसमें पुण्य कुछ भी नहीं, धर्म कुछ भी नहीं। कृत्य में धर्म कैसा! क्योंकि कृत्य में तो करने वाला आ गया। कृत्य में तो अहंकार आ गया। यह तो अहंकार की ही सजावट चल रही है।

वू थोड़ा नाराज हुआ। उसने प्रश्न बदल दिया, उसने विषय बदला, क्योंकि और लोग भी खड़े थे, और यह आदमी कुछ अजीब सा मालूम पड़ता है! सम्राटों से इस तरह नहीं बोला जाता। मगर उसे पता नहीं कि बोधिधर्म जिस चित्त की दशा में है, वह बुद्ध की दशा है; वह ठीक वहीं हैं जहां बुद्ध हैं। वे कुछ औपचारिक बातें नहीं बोलेंगे।

सम्राट वू ने विषय बदला, ताकि बात जरा फजीहत की न हो जाए। उसने कहा : फिर धर्म की पवित्रता के संबंध में कुछ कहें। बोधिधर्म हंसा। उसने कहा कि धर्म और पवित्रता का क्या संबंध! धर्म यानी शून्यता।

पवित्रता? पवित्रता का क्या संबंध धर्म से? पवित्रता--फिर वही अहंकार। पवित्रता-अपवित्रता, पाप-पुण्य--नाम ही बदलते हो, बात वही करते हो। नीति-अनीति, अच्छा-बुरा. . . धर्म का अच्छे-बुरे से कोई संबंध नहीं। धर्म का संबंध है शून्य-भाव से--न अच्छा न बुरा, न कुछ पवित्र न कुछ अपवित्र। मैं का अभाव--धर्म।

तब तो जरा सम्राट वू भी नाराज हो गया। उसने कहा : फिर आप कौन हैं? अगर धर्म शून्य है, तो आप कौन हैं? यह जो मेरे सामने खड़ा बात कर रहा है, यह कौन है?

बोधिधर्म हंसा और उसने कहा : मुझे पता नहीं। यह बड़ा अपूर्व उत्तर है। उसने कहा : मुझे पता नहीं। पता भी हो तो मैं हो जाऊं। मुझे कुछ पता नहीं। आप देख लो, यह कौन खड़ा है सामने! आप झांक लो, यह कौन खड़ा है सामने! मैं खुला हूं, मेरे द्वार खुले हैं; लेकिन मैं कौन हूं, यह तो मुझे ही पता नहीं। यह तो किसी को भी पता नहीं है।

वू यह पूछ रहा था, नाराजगी में पूछ रहा था, कि आप कौन हैं महाशय, जो इस तरह के कठोर उत्तर दिए चले जा रहे हैं? आप हैं कौन?

और बोधिधर्म कहता है, मुझे पता नहीं। मैं कौन हूं, तुम देख लो। मेरे द्वार खुले हैं।

काश वू में हिम्मत होती उन द्वारों में झांकने की, तो वह पाता महाशून्य। और उस महाशून्य में पाता ज्योतिर्मय परमात्मा को। लेकिन वह न देख सका, वह लौट पड़ा। उसने कहाः यह आदमी अशिष्ट है और इसे राज-दरबारों के नियमों का कोई पता नहीं। चूक गया अवसर।

धर्म का संबंध कृत्य से नहीं है--शून्य से है--परम शून्य के भाव से है। इसलिए करने से कोई धार्मिक नहीं होता। तुम क्या करते हो, इससे धार्मिक नहीं होते--तुम क्या हो! तुम अगर शून्य हो तो धार्मिक हो। यही बात है इस वचन में : निर्बल के बल राम। निर्बल से अर्थ है : शून्य हो जाओ, तो पूर्ण उतरेगा। जहां शून्य है वहां पूर्ण उतरता ही है। शून्य यानी तुम और पूर्ण यानी परमात्मा।

दूसरा प्रश्नः प्रश्नकर्ता दुकानदार है। उसे भलीभांति पता है कि सुंदर वस्तु की कीमत भी बड़ी होती है। दिक्कत यह है कि वह एक कंजूस मारवाड़ी भी है। यह जानते हुए भी कि संसार और मोक्ष एक साथ नहीं सधते, उसका रस दोनों में है।

कोई हर्जा नहीं। दुकानदार होने में कोई हर्जा नहीं। संसार में सभी दुकानदार हैं। दुकानें अलग-अलग होंगी, मगर संसार में सभी दुकानदार हैं। संसार में होने का ढंग ही दुकानदारी है। और किसी ढंग से तो संसार में कोई हो ही नहीं सकता। कोई ज्ञान की दुकान करता है, कोई और सामान की दुकान; लेकिन सभी दुकानदार हैं। इसलिए चिंता न लो।

और दुकानदार भी पहुंच जाते हैं। देखते हैं पलटू--निरगुन बनिया! पलटू पहुंच गए। पलटू--राम का मोदी। पलटू पहुंच गए, तुम भी पहुंच जाओगे। कोई चिंता की बात नहीं है।

दुकानदार का अर्थ इतना ही होता है कि हिसाब-किताब रखते हो। सो सभी रखते हैं। अहंकार हिसाबी-किताबी है। दुकानदार का अर्थ होता है कि दो पैसे में चीज खरीदो और चार में बेच दो तो कुछ बचत हो जाए। दुकानदार का अर्थ होता है : कम दो और ज्यादा लो, तो कुछ बचत हो जाए। सभी लोग यही कर रहे हैं। और अच्छा है कि तुमने स्वीकार किया, क्योंकि जिसने स्वीकार किया वह पार जा सकता है। यह बात भी समझ में आ जाए कि मेरा चित्त दुकानदार का है, हिसाबी-किताबी है, गणित में लगा रहता है, हमेशा गिनती करता रहता है कि कुछ ज्यादा न चला जाए; ज्यादा आए सदा, जाए कम, आए ज्यादा। यह तो सभी की दशा है। जिस दिन इससे उलटी दशा होती है, उस दिन भक्त पैदा होता है। भक्त का अर्थ होता है : जाए ज्यादा, दूं ज्यादा, बंटे ज्यादा। लूं उतना ही जितना मुझे जरूरी है। और दे दूं सब जो मेरे पास है। मेरा काम दो रोटी से चल जाए, तो

दो रोटी ले लूं और दे दूं सब, पूरा खजाना लुटा दूं! वह जो मेरे अंतरतम में उठे हैं, स्वर वे सब बांट दूं। सारा प्रेम उंडेल दूं।

प्रेमी उलटा दुकानदार है। बांटने में, देने में उसका रस है। दुकानदार कभी भी प्रेमी बन सकता है; जरा सी दिशा बदलने की बात है। अभी ज्यादा लेते थे, कम देते थे; जरा सी ही बदलने की बात है--कम लेने लगे, ज्यादा देने लगे, प्रेमी हो गए, भक्त हो गए। ऐसे ही तो पलटू निरगुन बनिया परम सिद्ध को उपलब्ध हुआ। जरा सी दुकान के ही सूत्र को बदल लेने की बात है।

मैं तुम्हें दुकान छोड़ कर भागने को नहीं कहता। मैं तुम्हें सिर्फ इतना ही कहता हूं कि जहां तुम्हारे भीतर गणित बैठा है, वहां प्रेम बैठ जाए।

पूछा तुमने : "प्रश्नकर्ता दुकानदार है। उसे भलीभांति पता है कि सुंदर वस्तु की कीमत भी बड़ी होती है।"

ठीक ही पता है, उचित ही पता है कि जितनी सुंदर वस्तु होगी उतनी कीमत होगी। और जो परमात्मा को खोजने चला है, उसे तो अपने को पूरा का पूरा कीमत में ही दे देना होगा, इससे कम में काम न चलेगा। तुम चाहो कि धन देने से परमात्मा मिल जाए, तो नहीं होगा। स्वयं को देना होगा। अपने को पूरा ही उंडेल देना होगा। वहीं अड़चन होती है। वहीं हमारा मन कहता है कि खुद को तो न देना पड़े और कुछ भी देने से चल जाए तो दे देंगे--जमीन दे देंगे, मकान दे देंगे, पत्नी-बच्चे दे देंगे, धन-द्वार दे देंगे; लेकिन अपने को! अपने को दे दिया तो फिर लेने का मजा क्या! फिर लेने वाला कौन बचा! और यह परमात्मा कुछ ऐसा है कि मिलता ही तब है जब तुम अपने को दे देते हो। वहीं दुकानदार का मन अड़चन में पड़ता है। वहीं उसका गणित हारने लगता है। वहीं कुछ उलटा गणित शुरू होता है। अपने को ही दे दो, तभी परमात्मा मिलता है। ऐसे ही जैसे बूंद सागर में गिरती है, तो अपने को गंवा देती है--लेकिन गंवा कर ही सागर हो जाती है। और बीज जमीन में टूटता है तो अपने को गंवा देता है--और अपने को गंवा कर ही वृक्ष हो जाता है। और फिर वृक्ष में करोड़ों बीज लगेंगे और एक-एक बीज करोड़-करोड़ बीज को पैदा करता जाता है।

वनस्पतिशास्त्री कहते हैं, एक बीज से पूरी जमीन हरी हो सकती है। एक जमीन क्या, सारी जमीनें हरी हो सकती हैं। क्योंकि एक बीज फूटता है तो करोड़ बीज, फिर एक और; करोड़ फूटते हैं तो करोड़-करोड़--फैलता चला जाता है। अनंत विस्तार है। एक छोटे से बीज में ब्रह्म का विस्तार है। लेकिन मिटना पड़ता है बीज को। वहीं अड़चन आएगी। और वहीं तुम्हें अड़चन आती है, ऐसा नहीं; सभी को आती है। इसलिए चिंता मत लेना। दुकानदार हो या नहीं हो, सभी को अड़चन आती है। अपने को कैसे मिटाएं!

अहंकार कहता है : अपने को बचा लो और परमात्मा को भी पा लो। यह नहीं हो सकता। क्योंकि अहंकार ही बाधा है। यह तो ऐसे ही हुआ कि कोई आदमी चाहे कि कमरे में अंधेरा भी बच जाए और रोशनी भी जला लूं। रोशनी जली तो अंधेरा जाएगा। अंधेरा बचाना है तो फिर रोशनी नहीं जलेगी। ये दोनों बातें साथ-साथ न हो सकेंगी। असंभव को करने की कोशिश मत करना। और मेरी ऐसी प्रतीति है कि दुकानदार इस बात को समझ सकता है। दुकानदार के पास काफी समझ होती है। दुकानदार के पास इतना गणित, इतना तर्क होता है कि वह तर्कातीत की भी थोड़ी सी बात समझ ले। तर्कातीत को समझने के लिए भी थोड़े तर्क की जरूरत होती है। जो बुद्धि के पार है, उसमें झांकने को भी बुद्धि की जरूरत होती है। और दुकानदार बुद्धि में जीता है।

इसलिए इस बात को अड़चन मत मान लेना। इसका उपयोग करो। हर राह के पत्थर को सीढ़ी बनाओ। अब जहां हो, अगर दुकानदार हो, व्यवसायी हो, तो व्यवसाय को ही सीढ़ी बनाओ।

अक्सर ऐसा होता है कि हम हर राह की सीढ़ी को पत्थर बना लेते हैं--बजाय पत्थरों को सीढ़ी बनाने के। हमारी दृष्टियां बड़ी नकारात्मक हैं।

"प्रश्नकर्ता दुकानदार है। उसे भलीभांति पता है कि सुंदर वस्तु की कीमत भी बड़ी होती है।"

ठीक पता है। एक और बात पता कर लो कि यह जो परमात्मा है, इसकी कीमत बड़ी नहीं होती; इसकी कीमत अपने पूरे होने से चुकानी पड़ती है। और बड़ा मजा यह है कि हमारी कीमत ही क्या है, हमारा मूल्य ही क्या है! हम तो सिर्फ अफवाह हैं। हम तो एक झूठ हैं।

मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन एक ट्रेन में सफर कर रहा था। उस कमरे में, फर्स्ट क्लास के उस डब्बे में मुल्ला था और दो संभ्रांत महिलाएं थीं। एक महिला ने कहा दूसरी महिला से, कि तुम्हें भरोसा आए या न आए, लेकिन मुझे सोने-चांदी से एलर्जी है। सोने-चांदी से एलर्जी! पहली महिला जब यह बोली तो दूसरी महिला थोड़ी चौंकी। उस महिला ने कहा कि अभी कल ही ऐसा हुआ कि पति सोने का एक हार ले आए। मैंने गले में डाला और एलर्जी हो गई और मैं बेहोश हो गई। तुम मानो या न मानो. . .। लेकिन दूसरी महिला ने कहा : यह मैं मानूंगी, क्योंकि मुझे भी एलर्जी है। मुझे सोने-चांदी की एलर्जी नहीं है, हीरे-जवाहरात की एलर्जी है। अभी परसों ही तो पति दिल्ली से लौटे हैं, एक नौ लाख का हार ले आए और मैंने पहना कि एकदम मैं बेहोश हो गई।

ये दोनों की बातें चल रही थीं कि मुल्ला एकदम से गिरा और फर्श पर चारों खाने चित्त होकर बेहोश हो गया। दोनों महिलाएं घबड़ा गईं, चेन खींची, गार्ड आया, और लोग भी आ गए, आस-पास के डिब्बों से लोग आ गए। बामुश्किल पानी छिड़का, हवा की, किसी तरह मुल्ला को होश में लाया। मुल्ला से पूछा : मामला क्या? मुल्ला ने कहा कि मारे गए होते, अच्छा हुआ आप लोग आ गए। मुझे झूठ की एलर्जी है। इसलिए मैं स्त्रियों का सत्संग करता भी नहीं। संयोगवशात जान जाती थी। एक सीमा तक मैं झूठ बरदाश्त कर सकता हूं, उसके बाद फिर मुझे एलर्जी है, फिर मैं एकदम बेहोश हो जाता हूं।

यह जो अहंकार है, यह झूठ है, यह बिलकुल झूठ है। इसी झूठ में डूबे हुए तुम बेहोश हो। तुम्हें सत्य की एलर्जी है। तुम झूठ से तो राजी हो; सत्य से तुम्हें अड़चन है। सत्य से एलर्जी कम हो, इसलिए सत्संग। इसलिए सत्य की सुनो, सत्य को गुनो, सत्य को सोचो, ध्याओ, विचारो--ताकि धीरे-धीरे, धीरे-धीरे सत्य की एलर्जी कम हो जाए, और झूठ की एलर्जी बढ़े। तब तुम एक दिन पाओगे कि अहंकार को परमात्मा के चरणों में चढ़ाते वक्त तुमने कोई मूल्य नहीं चुकाया है, सिर्फ बीमारी छोड़ी है। परमात्मा मुफ्त मिल रहा है--बीमारी की कीमत पर मिल रहा है। परमात्मा मुफ्त मिल रहा है--झूठ की कीमत में मिल रहा है। जो तुम्हारे पास नहीं है, उसको छोड़ने से मिल रहा है।

फिर से दोहरा दूं : जो तुम्हारे पास नहीं है, उसको छोड़ने से परमात्मा मिल रहा है। जो है--मिलता है--उसे छोड़ने से--जो नहीं है। इससे सस्ता सौदा और क्या होगा! अगर तुम असली दुकानदार हो तो मेरी बात तुम्हें समझ में आ जाएगी। इससे सस्ता सौदा और क्या होगा--जो नहीं है, उसको छोड़ने से मिलता है--वह, जो है!

"दिक्कत यह है कि वह एक कंजूस मारवाड़ी भी है।"

मारवाड़ी होना ही काफी है, कंजूस मारवाड़ी. . . तो कोई जरूरत ही नहीं है। ये दो-दो इकट्ठे क्यों? पुनरुक्ति क्यों करते हो? मारवाड़ी होना पर्याप्त है। मगर कौन मारवाड़ी नहीं है! जहां लोभ है, वहां मारवाड़। देखा न, कल हम सुनते थे कि जहां शील वहां अवध और जहां स्नेह वहां जनकपुरी! ऐसा ही समझो : जहां लोभ वहां मारवाड़। लोभी तो सभी हैं, सो सभी मारवाड़ी हैं। जब तक लोभ है, तब तक मारवाड़ के बाहर जाओगे कैसे? जो भी महत्त्वाकांक्षी है, मारवाड़ी है। जो भी लोलुप है, मारवाड़ी है। यह तो प्रतीक है। और जो भी लोभी है, कंजूस होगा ही।

कंजूस का क्या अर्थ होता है? कंजूस का अर्थ होता है... । लोभी का अर्थ होता हैः जो नहीं है वह मिले। लोलुप का अर्थ होता है : जो मेरे हाथ में नहीं है, हाथ में आ जाए। कंजूस का अर्थ होता है : जो हाथ में आ गया, वह निकल न जाए। और तो कुछ मतलब नहीं होता। तो यह तो बिलकुल संगति है दोनों की; एक ही तर्क का फैलाव है। जो मेरे पास नहीं है, वह मुझे मिल जाए--यह लोभ। फिर जब मिल गया, तो कहीं यह मिला हुआ हाथ से न निकल जाए, क्योंकि और लोग भी तो झपटने को तैयार खड़े हैं। तुम अकेले ही तो नहीं हो यहां। यहां बड़े प्रतिस्पर्धी हैं। सारी पृथ्वी मारवाड़ियों से भरी है। कहां भागोगे, कहां बच कर जाओगे! और दूसरे भी झपट

रहे हैं। जैसा तुमने किसी से झपट लिया है, दूसरे तुमसे झपटने को तत्पर बैठे हैं। जैसे ही तुम्हारे हाथ में आया कि झंझट शुरू होती है।

रामकृष्ण कहा करते थे, बैठे थे एक दिन मंदिर के बाहर दक्षिणेश्वर में। उन्होंने एक चील को उड़ते देखा। वह एक चूहे को लेकर उड़ रही थी। और उसके पीछे कई गिद्ध लगे थे, और चीलें लगी थीं और झपट्टे मार रही थीं उस पर। रामकृष्ण बैठे देखते रहे और उनके शिष्य भी बैठे थे। शिष्य भी देखने लगे। रामकृष्ण को ऐसा दत्तचित्त देख कर उनको लगा कि जरूर कुछ महत्वपूर्ण बात होगी; वहां कुछ खास मामला भी नहीं है। वह चील एक चूहे को लेकर उड़ रही है। और गिद्ध उस पर हमले मार रहे हैं, और चीलें भी झपट्टे मार रही हैं। फिर उस चील ने वह चूहा छोड़ दिया। चूहे के छोड़ते ही सब गिद्ध और सब चीलें--जो उस पर हमला कर रहे थे--उसे छोड़ कर चले गए। वे चूहे के पीछे चले गए; इस चील से उन्हें क्या लेना-देना था! वह चील एक वृक्ष पर बैठ गई।

रामकृष्ण ने अपने शिष्यों से कहा : देखा! जब तक तुम किसी चूहे को पकड़े हो, तब तक गिद्ध तुम पर हमला करेंगे। अब देखो, वह किस मजे में बैठी है! गिरह हमारा सुन्न में, अनहद में विसराम! अब वहां कोई नहीं है, सन्नाटा हो गया। अब कोई चील हमला नहीं करती, कोई गिद्ध हमला नहीं करता। अब उस चील को पता चल रहा होगा कि यह मुझ पर हमला कर ही नहीं रहे थे, इनका हमला तो चूहे पर था। मैं भी चूहे को पकड़ रही थी, ये भी चूहे को पकड़ने के प्रतियोगी थे, प्रतिस्पर्धी थे। चूहा छूट गया या छोड़ दिया--बात खत्म हो गई।

लोभ का अर्थ हैः दूसरों के हाथ में जो है, वह मेरे हाथ में हो। कंजूसी का अर्थ है : जो मेरे हाथ में है, वह मेरे ही हाथ में रहे, किसी और के हाथ में न चला जाए। कंजूसी लोभ की ही छाया है और मजा यह है कि लोभी सदा दुखी रहेगा और कंजूस सदा भयभीत। लोभी सदा दुखी रहेगा, क्योंकि कितना ही तुम पा लो, बहुत कुछ सदा पाने को शेष रह जाता है। वह जो नहीं मिला है, वह पीड़ा देता है। उसका दंश चुभता है, छाती में छुरी की तरह चुभता है। एक मकान तुमने बना लिया, इससे क्या होता है; बस्ती में हजार मकान हैं; और यही कोई बस्ती तो नहीं, और हजार बस्तियां हैं। तुम कितना कर लोगे? जितना करोगे, वह सदा ही छोटा रहेगा--उसके मुकाबले में, जो कि शेष करने को है। जिंदगी छोटी है। यह सत्तर-अस्सी साल की जिंदगी में कितना कमाओगे? हमेशा पाओगे कि क्षुद्र ही हाथ में लगा। जितना होना था उतना नहीं हो पाया। इसलिए लोभी सदा दुखी। लोभी कभी सुखी नहीं हो सकता। और कंजूस सदा भयभीत, क्योंकि जो हाथ में है वह कोई छीन न ले! सारे लोग झपट्टा मारने को तैयार हैं। सब तरफ दुश्मन खड़े हैं।

तुम देखते हो, गरीब का कौन दुश्मन है! दुश्मन अमीर के होते हैं। तुम्हारे पास कुछ हो, तब कोई दुश्मन होता है। तुम्हारे पास कुछ न हो तो कौन दुश्मन होता है! तुम देखते हो बस्ती में ही तुम्हारे राजनेता घूमता रहता था, कोई दुश्मन नहीं था। जैसे ही वह मिनिस्टर हो जाता है, फिर मुश्किल खड़ी हो जाती है। फिर वह निकल कर घूम नहीं सकता। फिर खतरा है, फिर घिराव होगा, आंदोलन होगा, विरोध में प्रदर्शन निकलेगा, पत्थरबाजी होगी, जूते फेंके जाएंगे।

अभी देखा, मोरारजी भाई पर कोई जूते नहीं फेंकता था, अब लोग फेंकने लगे। फेंकेंगे जूते। अभी पूना में ही फिंके। कोई नहीं फेंक रहा था जूते, किसी को प्रयोजन नहीं था। जब तक तुम्हारे हाथ में चूहा न हो, किसी को कोई मतलब नहीं है। चूहा हाथ में आया कि सबको मतलब है, क्योंकि वह चूहा औरों को भी चाहिए। तो जैसे ही तुम्हारे हाथ में पद हो, प्रतिष्ठा हो, धन हो, वैसे ही तुम अड़चन में पड़े, फिर उसकी रक्षा करनी पड़ती है। फिर सब तरफ से इंतजाम करना पड़ता है कि कोई छीन न ले, कोई झपट न ले।

जिनके पास कुछ नहीं है, वे मजे से सो सकते हैं; लेकिन जिसके पास कुछ है, वह कैसे सोए! इसलिए कंजूस सो नहीं पाता। लोभ और कंजूसी के बीच में फंस कर, इन दो चाकों के बीच में, आदमी पिस जाता है। यह कोई बड़ी होशियारी नहीं है।

अगर तुम सच में होशियार हो, तो पलटू की सुनो, समझो, जागो। मारवाड़ के बाहर निकलो। यह भय का नरक किसी सार का नहीं है। इस भय और लोभ के बीच क्या मिला है? क्या मिलेगा?

फिर तुम पूछते हो : "यह जानते हुए भी कि संसार और मोक्ष एक साथ नहीं सधते, उसका रस दोनों में है।"

समझो। पहली बात : रस तो एक ही है। दुनिया में दो रस नहीं हैं। रसो वै सः। वह परमात्मा रसरूप है। संसार में भी तुम उसे ही खोज रहे हो। संसार उसी को खोजने की गलत दिशा है। जैसे नदी तो पश्चिम में है और तुम पूरब जा रहे हो--नदी की तलाश में। जा रहे हो नदी की तलाश में। तुम्हारी तलाश में कोई भूल-चूक नहीं है। तुम्हारी दिशा जरूर गलत है। आकांक्षा तुम्हारी बिलकुल दुरुस्त है। मगर नदी तुम्हें मिलेगी नहीं, क्योंकि नदी वहां है नहीं। संसार में भी आदमी उसी को खोज रहा है। यही मेरा निरंतर तुम से निवेदन है। आदमी कुछ और खोजता ही नहीं, आदमी परमात्मा को ही खोजता है। और कुछ खोज ही नहीं सकता। और कुछ खोजने योग्य है ही नहीं। वही तड़प है--नाम कुछ भी रखो, दिशा कोई भी पकड़ो; लेकिन हम सब परमानंद को खोज रहे हैं, सच्चिदानंद को खोज रहे हैं। भगवान कहो, ईश्वर कहो, ब्रह्म कहो। न देना हो नाम, मोक्ष निर्वाण कहो। कुछ भी नाम न देना हो, तो आनंद ही कहो चलो। आनंद शब्द ठीक है। मगर हर आदमी आनंद ही खोज रहा है।

फिर, दो तरह के लोग हैं। एक, जो गलत दिशा में खोज रहे हैं और कभी न पाएंगे। खोज-खोज कर थकेंगे, टूटेंगे, मरेंगे, सड़ेंगे--और कभी न पाएंगे। और कुछ लोग, जो ठीक दिशा में खोज रहे हैं। और मजा ऐसा है कि ठीक दिशा में मुड़ते ही मिलन हो जाता है।

ऐसा समझो कि एक आदमी सूरज की तरफ पीठ करके भागा जा रहा है। सूरज की खोज में सूरज की तरफ पीठ किए भागा जा रहा है। नहीं मिल रहा है सूरज, तो और तेजी से दौड़ रहा है। सोचता है : शायद तेजी से दौड़ने से मिलेगा। यह हमारा तर्क होता है। जब कोई चीज नहीं मिलती तो हम तेजी से दौड़ते हैं, स्पीड बढ़ाते हैं, गति बढ़ाते हैं। खूब तेजी से दौड़ता जा रहा है। पंख लगा लिए हैं, उड़ रहा है। मगर सूरज की तरफ पीठ है, सूरज नहीं मिलेगा। और जिस दिन उसको यह समझ में आ जाएगा, उस दिन लौटते ही मुड़ कर खड़ा होगा--और सूरज सामने है। मुड़ते ही सूरज सामने है।

यही पलटू शब्द का अर्थ है : लौट पड़ना। गुरु ने उनको इसीलिए पलटूदास कहा। वणिक थे, संसार में डूबे थे। गुरु का बोध सुन कर उन्हें समझ आ गई, पलट पड़े तो पलटूदास कहा। एक क्षण में पलट पड़े। हिम्मतवर रहे होंगे। दुकानदार थे, लेकिन दुकानदार होना उनकी आत्मा में प्रविष्ट नहीं हो गया था। आत्मा अभी भी जुआरी की थी, हिम्मतवर की थी, क्षत्रिय की थी, योद्धा की थी। सुनी बात, समझी बात, लौट पड़े। एक क्षण में लौट पड़े।

जैन शास्त्रों में उल्लेख है : एक युवक महावीर के वचन सुन कर घर लौटा। पुराने दिन की कहानी है; अब तो वैसा होता नहीं। तो उसकी पत्नी उबटन लगा कर उसे स्नानागार में स्नान करवा रही है। उसके शरीर पर मालिश कर रही है, उबटन लगा रही है, उसे स्नान करवा रही है। वह नग्न बैठा है, स्नान कर रहा है। उसकी पत्नी बात भी करती जाती है। वह कहती है कि महावीर को सुनने गए थे, मेरे भाई भी उन्हें सुनते हैं; मेरे भाई उनमें बड़ा रस लेते हैं, बड़ा सत्संग करते हैं। इतना ही नहीं उन्होंने यह भी तय कर रखा है कि कभी न कभी एक दिन वे संन्यास की दीक्षा लेंगे।

वह युवक स्नान करते-करते हंसने लगा। उसकी पत्नी ने कहा : आप हंसे क्यों? अचानक आप हंसे क्यों? क्या बात आ गई?

उसने कहाः मैं हंसा इसलिए कि अगर महावीर की बात जंच गई है तो कभी. . .! कभी का क्या सवाल है? अभी क्यों नहीं? कभी की बात का तो मतलब यह होता है : तेरा भाई क्षत्रिय नहीं है। मैं तो यही सोचता था, तू क्षत्रिय घर से आती है, क्षत्राणी है। तेरा भाई क्षत्रिय नहीं है?

वह ऐसे मजाक ही में बात चल रही थी, मगर बिगड़ गई बात। कभी-कभी मजाक खिंच जाता है लंबा। पत्नी ने कहा : तुम कहते क्या हो? तो तुम क्या समझते हो तुम क्षत्रिय हो?

वह उठ खड़ा हुआ। दरवाजा खोल कर बाहर निकलने लगा। उसकी पत्नी ने कहा : कहां जाते हो? नग्न कहां जाते हो?

उसने कहा : बात खत्म हो गई।

क्षत्रिय को छेड़ दिया। वह तो बाहर ही निकल गया। उसने कहा : मैं संन्यस्त हो गया! बात खत्म हो गई। नग्न हूं ही, अब ऐसे ही चला जाऊंगा महावीर के पास।

महावीर तो नग्न रहते ही थे। पत्नी चिल्लाने लगी। घर भर के लोग इकट्ठे हो गए, पड़ौस के लोग इकट्ठे हो गए। उन्होंने कहा : मजाक को इतना आगे नहीं खींचते। उसने कहा : बात ही खत्म हो गई। क्षत्रिय से मजाक करते ही नहीं। बात जंच ही गई मुझे, कि मैं . . . आखिर मुझे भी तो महावीर की बात जंची है। यह पत्नी ने मुझे याद दिला दी, मैं उसका धन्यवादी हूं। जो बात जंच गई, फिर कर लेनी है, फिर दांव पर लगा देना है।

फिर वह संन्यस्त ही हो गया। फिर वह दिगंबर मुनि हो गया। यह कथा मुझे प्रीतिकर लगती है। हिम्मत, साहस, दुस्साहस--जरा सी चिनगारी से प्रदीप्त हो जाता है। मजाक की बात भी कभी गहरी हो जाती है, साहस हो तो। और नहीं तो सदगुरु तुम्हारे सिर पर डंडे मारता रहे, मारता रहे--और तुम झपकी खाते रहोगे और सोए रहोगे।

"यह जानते हुए भी कि संसार और मोक्ष एक साथ नहीं सधते, उसका रस दोनों में है।"

दो तो हैं ही नहीं, इसलिए दो में से तो रस हो नहीं सकता। वह भ्रांति छोड़ दो। मेरा सारा शिक्षण यही है कि एक ही है। हां, उसको पाने का ठीक ढंग है और उसको खोने का भी एक ठीक ढंग है। परमात्मा को खोने का ठीक ढंग--संसार। और परमात्मा को पाने का ठीक ढंग--संन्यास। परमात्मा को खोना हो तो उलझे रहो क्षुद्र बातों में, हजार बातों में, दो कौड़ी की बातों में उलझाए रहो अपने मन को; भागे रहो--यहां से वहां, इस लोभ में उस लोभ में, इस पद, उस आकांक्षा में, अहंकार की मानो।

अगर परमात्मा से बचना है तो अहंकार सुनिश्चित तरकीब है। कभी नहीं धोखा खाओगे। अगर परमात्मा से बचना है, अहंकार की सुनो और अगर परमात्मा में थोड़ा भी रस है तो समझो कि संसार में रस मिलता कहां है, किसको मिला है, कब मिला है! एक भी तो खबर नहीं है सदियों-सदियों में। इतने लंबे इतिहास में एक आदमी भी तो गवाह नहीं है कि जो कह सकेः मुझे संसार में रस मिला। चाहा सभी ने, मिला किसको! चाहोगे तुम भी, गंवाओगे तुम भी--पाओगे नहीं। तो अगर सिर्फ चाहने में ही बात हो तो तुम्हारी मर्जी। लेकिन अगर पाना हो, अगर उत्सुकता पाने में हो, तो रस तो एक ही है--परमात्मा का।

तुम जब अपनी पत्नी में डूबते हो या अपने पति में डूबते हो, तब भी तुम परमात्मा का ही रस लेना चाह रहे हो। सिर्फ तुमने जरा लंबा रास्ता चुना है देह, फिर देह के भीतर मन है, और मन के भीतर आत्मा है--और आत्मा के भीतर परमात्मा छिपा है। तुम पत्नी की देह में ही उलझ गए, तो ऐसा हुआ कि छीलने चले थे प्याज की गांठ को, बस पहली ही पर्त उघाड़ पाए। पत्नी के मन तक पहुंचो--दूसरी पर्त उघड़ेगी। पत्नी की आत्मा तक पहुंचो--तीसरी पर्त उघड़ेगी। और पत्नी के भीतर भी तुम्हें परमात्मा के दर्शन होंगे, पत्नी मंदिर बन जाएगी। और जब तक पत्नी मंदिर न बन जाए और पति मंदिर न बन जाए, तब तक समझना कि प्रेम था ही नहीं, वासना ही थी।

तुमने जहां भी खोजना चाहा है, वहीं परमात्मा को खोजो। दुकान पर ग्राहक आए तो उसकी आंख में भी झांको और राम को तलाशो। और तुम चकित हो जाओगेः राम का ख्याल आते ही ग्राहक से तुम्हारा संबंध बदल जाता है। अब तुम इसको लूट नहीं लेना चाहते। अब तुम इसकी सिर्फ सेवा कर देना चाहते हो। राम आया दरवाजे पर, तो लूटना कैसे चाहोगे! तुम सिर्फ सेवा कर देना चाहते हो। अगर तुम इससे दो पैसे लाभ भी लेते हो तो उससे कह देते हो कि दो पैसे लाभ ले रहा हूं, वह भी सिर्फ इसीलिए कि तुम्हारी सेवा के लिए कल भी मौजूद रहूं; और कोई कारण नहीं है। तुम कल भी आओ तो मौजूद रहूं। तो तुम से दो पैसे लाभ भी ले रहा हूं। यह दस रुपए की चीज है, इसमें दो पैसे यह लाभ है।

तुम्हारा ग्राहक से संबंध बदल जाता है। यह ग्राहक अब ग्राहक न रहा--यह "राम जी" हो गए!

ऐसे ही तो कबीर कपड़ा बेचने जाते थे। बेचते ही रहे आखिरी तक। भक्तों ने बहुत कहा कि अब आप बेचते हैं, अच्छा नहीं लगता। हम इतने आपके सेवक हैं। आपको क्या कमी? आप कपड़ा बुनें अब इस वृद्धावस्था में और बाजार बेचने जाएं, हमें बड़ी लज्जा आती है। लोग हमसे पूछते हैं कि तुम्हारा गुरु कपड़े बेचता है!

लेकिन कबीर कहतेः तुम मेरी तो सोचते हो, रामजीयों की भी तो सोचो! वे जो सदा से मेरा कपड़ा पहनने का रस लेते रहे हैं, उनका क्या होगा! वे मेरी प्रतीक्षा करते हैं। मैं जितने प्रेम से कपड़ा बुनता हूं, कौन उनके लिए बुनेगा!

कबीर जब अपने ग्राहक से भी बोलते थे तो उसे रामजी ही कह कर उद्बोधित करते थे। कहते थे : राम जी, सम्हाल कर रखना, यह चदरिया बड़ी मेहनत से बुनी है। झीनी झीनी बीनी रे चदरिया! खूब जतन से बीनी रे चदरिया! यह ऐसी चदरिया नहीं है--इसमें राम-राम जप-जप कर भरा है। इसमें ध्यान उंड़ेला है। यह जिंदगी भर तुम्हारे साथ चलेगी। यह मैंने बड़े भाव से भरी है। यह तुम्हारे लिए ही बनाई है। मैं धन्यभागी कि तुम यह चादर ले जा रहे हो। राम ने पसंद की, मैं अनुगृहीत!

ऐसा कबीर का भाव था।

दुकान पर ही बैठे-बैठे मंदिर हो सकता है। बाजार में ही हिमालय आ सकता है। दृष्टि की बात है। मगर एक ख्याल ले लो : रस तो एक ही है। उसी रस को स्मरण करो। और उस एक ही रस को सब तरफ खोजो। तब तुम पाओगे : कुछ जगह मिलता है, कुछ जगह नहीं मिलता। जहां नहीं मिलता, वह अपने-आप व्यर्थ होती जाएगी जगह।

मनोवैज्ञानिक चूहों पर प्रयोग करते हैं, तो उनको एक भूल-भुलैया बना देते हैं। डब्बे... अनेक कटघरे बना देते हैं एक डब्बे में। और एक समझो कि बीस कमरे हैं उस डब्बे में--छोटे-छोटे कमरे। और सब में चूहा जा सकता है। फिर एक ही कमरे में उसका भोजन रखा है। तो वह पहले सब कमरों में भागता है--इस कमरे में जाता है, उस कमरे में जाता है; फिर जब एक दफा उसको भोजन मिल जाता है, फिर उसको छोड़ो, उसका ढक्कन खोला कि वह भागा और सीधा उसी कमरे में पहुंच जाता है। फिर तुम उसे धोखा नहीं दे सकते। फिर वह यहां-वहां नहीं जाता। एक दो दफे भूल-चूक भी करता है। फिर धीरे-धीरे-धीरे निकला अपने कमरे से और सीधा वहां पहुंच जाता है जहां उसका भोजन रखा है।

ऐसी ही स्थिति है। यह जगत एक भूल-भुलैया है। यहां तुम सब जगह तलाश रहे हो, लेकिन तलाश परमात्मा को रहे हो। जहां-जहां नहीं मिलता है, इतना तो समझदारी बरतो कि वहां-वहां दुबारा-दुबारा न जाओ। और मैं यह तुम से नहीं कहता कि एक बार न जाओ; एक बार जरूर जाओ, नहीं तो जानोगे कैसे? जरूर जाओ। भूल करनी ही पड़ेगी। नहीं तो भूल सुधरेगी कैसे? मगर एक भूल एक ही बार करो, दुबारा न करो। फिर जहां मिलता हो, उस दिशा में ज्यादा जाओ। धीरे-धीरे-धीरे सब तरफ जाना बंद हो जाएगा। उसी एक रस में तुम डूबने लगोगे।

लेकिन याद रखो : रस एक ही है। संसार और परमात्मा दो नहीं हैं। संसार में भी वही समाया हुआ है। अगर तुम गहरी खोज करोगे, प्राणपण से खोज करोगे तो उसे पा लोगे। बाहर भी वही विराजमान है। लेकिन बाहर पाने के पहले उसे भीतर पा लेना आवश्यक है। नहीं तो बाहर पाना बहुत मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि

भीतर तुम्हारे बिलकुल निकट है। वहां पाना मुश्किल हो रहा है तो बाहर तो दूर हो गया; यात्रा करनी पड़ेगी। पहले भीतर उसकी झलक। पहले अपने भीतर उससे मिलन, फिर सबके भीतर उससे मिलन होने लगता है।

और इसे कल पर मत टालो। क्षत्रिय बनो। पलटू कहते हैं : राजपूत बनो। इसे कल पर मत टालो। कल का क्या भरोसा? कल तुम हो, न हो। कल तुम्हें जगाने वाला हो, न हो। कल यह सत्संग चले, न चले। कल पर मत टालो। जो करना है, आज कर लो, अभी कर लो।

काल करै सो आज कर, आज करै सो अब

पल में प्रलय होयगी, बहुरि करोगे कब?

मगर आदमी बड़ा उलटा है। इस बात के भी बड़े उलटे अर्थ ले लेता है।

मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन की दुकान में अड़चन थी, दफ्तर में कठिनाई थी। किसी मनोवैज्ञानिक से उसने पूछा कि क्या करूं, कोई काम ही नहीं करता! तो उसने कहा : तुम यह तख्ती टांग दो अपने दफ्तर में ले जाकर :

"काल करै सो आज कर, आज करै सो अब

पल में प्रलय होयगी, बहुरि करोगे कब?"

यह तख्ती टांग दो। इससे जरा बोध आएगा।

पांच-सात दिन बाद गया मनोवैज्ञानिक अपनी फीस की तलाश में। मुल्ला को बैठा देखा, सिर पर पट्टी बंधी है, हाथ-पैर पर पलस्तर चढ़ा है। बड़ा उदास। दुकान भी कुछ टूटी-फूटी हालत में। पूछा कि नसरुद्दीन, क्या हुआ? परिणाम नहीं हुआ तख्ती का?

नसरुद्दीन ने कहा : परिणाम हुआ। यह देख रहे हो परिणाम! परिणाम हुआ। वह जो खजानची था मेरा, लेकर भाग गया सब। "काल करै सो आज कर. . ." वह जो मेरा मैनेजर था टाइपिस्ट को उड़ा कर नदारद हो गया। और वह जो मेरा दरबान था, उसने मेरा सिर खोल दिया। पता चलाने पर पता चला कि दरबान सदा से सोचता था कि कब इसका सिर खोल दूं। जब उसने यह तख्ती देखी, उसको बोध आया। उसने सोचा, यह बात तो सच है; कल अगर प्रलय हो गई तो फिर कब करोगे! तो कर ही लो। जो निबटाना है निबटा ही दो। यही परिणाम हुआ। आपकी सलाह का बड़ा गजब का परिणाम हुआ। दुकान चौपट है। फीस लेने शायद आप आए हैं, हम ही चले चलते हैं आपके घर, क्योंकि अब और कुछ फीस नहीं है।

आदमी ऐसा ही है। गलत को तो अभी कर लेता है; सही को कल पर टाल देता है। चोरी करनी हो तो अभी। क्रोध करना हो तो अभी। जब तुम्हें कोई गाली देता है तो तुम यह नहीं कहते कि कल करूंगा क्रोध, सोचूंगा, विचारूंगा, पत्नी-बच्चों से भी सलाह लूंगा, कल करूंगा क्रोध। जब तुम्हें क्रोध करना होता है तब तुम अभी करते हो। किसी की हत्या करनी होती है तो अभी करते हो। और जब तुम्हें जीवन में कुछ शुभ का भाव उठता है, उमंग उठती है--संन्यास लेना, कि ध्यान करना, कि प्रार्थना में उतरना--तो तुम सोचते हो, सोचेंगे। सोचने का मतलब होता है टालोगे। टालने का मतलब होता है हिम्मत नहीं है।

तो जो करना हो उसे कर लो। परमात्मा में रस है तो खोजो। और मैं तुमसे यह कहे देता हूं : कम से कम मेरे पास उठने-बैठने वाले सत्संगियों को तो भूल कर भी यह भेद नहीं खड़ा करना चाहिए संसार और परमात्मा का। यह दो की बात ही नहीं उठानी चाहिए। मैं तो कहता हूं एक ही है। यह संसार भी उसी का है। संसार में भी वही छिपा है। अगर थोड़ी मेहनत करोगे तो वहां भी उसी को पाओगे। मगर वहां मेहनत करके पा सकोगे, बड़ी कठिन होगी बात। अपने भीतर सुगमता से पा लोगे। पहले भीतर साक्षात्कार कर लो, फिर बाहर हो जाएगा।

और कल पर टालो ही मत।

आज जी भर कर देख लो तुम चांद को
क्या पता यह रात फिर आए न आए
दे रहे लौ स्वप्न भीगी आंख में
तैरती हो ज्यूं दीवाली धार पर

ओंठ पर कुछ गीत की लड़ियां पड़ीं
हंस पड़े जैसे सुबह पतझार पर
पर न यह मौसम रहेगा देर तक
हर घड़ी मेरा बुलावा आ रहा
कुछ नहीं अचरज अगर कल ही यहां
विश्व मेरी धूल तक पाए न पाए
आज जी भर कर देख लो तुम चांद को
क्या पता यह रात फिर आए न आए।

ठीक क्या किस वक्त उठ जाए कदम
काफिला कर कूच दे इस ग्राम से
कौन जाने कब मिटाने को थकन
जा सुबह मांगे उजाला शाम से
काल के अद्वैत अधरों पर धरी
जिंदगी यह बांसुरी है चाम की
क्या पता कल श्वास के स्वरकार को
साज यह आवाज यह भाए न भाए
आज जी भर देख लो तुम चांद को
क्या पता यह रात फिर आए न आए।

यह सितारों से जड़ा नीलम नगर
बस तमाशा है सुबह की धूप का
यहां बड़ा-सा मुस्कुराता चंद्रमा
एक दाना है समय के सूप का
है नहीं आजाद कोई भी यहां
पांव में हर एक के जंजीर है
जन्म से ही जो परायी है मगर
सांस का क्या ठीक कब गाए न गाए
आज जी भर देख लो तुम चांद को,
क्या पता यह रात फिर आए न आए।

स्वप्ननयना इस कुमारी नींद का
कौन जाने कल सबेरा हो न हो
इस दीये की गोद में इस ज्योति का
इस तरह फिर से बसेरा हो न हो
चल रही है पांव के नीचे धरा
और सर पर घूमता आकाश है
धूल तो संन्यासिनी है सृष्टि से
क्या पता वह कल कुटी तक छाए न छाए
आज जी भर देख लो तुम चांद को
क्या पता यह रात फिर आए न आए।

हाट में तन का पड़ा मन का रतन
कब बिके किस दाम पर अज्ञात है
किस सितारे की नजर किसको लगे

ज्ञात दुनिया में किसे यह बात है
है अनिश्चित हर दिवस हर एक क्षण
सिर्फ निश्चित है अनिश्चितता यहां

इसलिए संभव बहुत है, प्राण
कल चांद आए चांदनी लाए न लाए
आज जी भर देख लो तुम चांद को
क्या पता यह रात फिर आए न आए।

एक-एक क्षण बहुमूल्य है; उसे क्षुद्र में मत गंवाओ। एक-एक क्षण बहुमूल्य है; उसे कौड़ियां, कंकड़-पत्थर, शंख-सीपी बीनने में मत लगाओ।

यह एक-एक क्षण परमात्मा का अनुभव बन सकता है।

यह एक-एक क्षण समाधि बन सकता है।

और ध्यान रहे, उसी की तलाश है। संसार में भी तुम उसी को खोज रहे हो। जहां भी कोई खोज रहा है, उसी को खोज रहा है। जान कर खोजो, अनजान खोजो--वही की खोज चल रही है। जाग कर खोजो, सोए खोजो--उसी एक की तलाश और टटोल चल रही है। रस तो एक ही है : रसो वै सः! उस परमात्मा का ही रस!

इस बात के प्रति जैसे-जैसे तुम जागरुक होते जाओगे, वैसे-वैसे तुम पाओगेः बाजार तो रहा लेकिन बाजार न रहा; दुकान तो रही, लेकिन दुकान न रही; परिवार तो रहा, लेकिन परिवार न रहा। पहले जैसा कुछ भी न रहा। सब बदल गया। तुम बदले कि सब बदला। दृष्टि बदली कि सृष्टि बदली।

तुम्हारी आंख का ही सारा खेल है। और आंख का ही संन्यास है। आंख का ही संसार है। आंख का एक ढंग--संसार; आंख का दूसरा ढंग--संन्यास। ऐसा सोच कर जो चलता है कि परमात्मा के अतिरिक्त कोई रस है, वह संसारी। और ऐसा सोच कर जो चलने लगा कि परमात्मा ही एकमात्र रस है, वही संन्यासी।

आज इतना ही।

इक्कीसवां प्रवचन

पलटू भगवान की गति न्यारी

सच्चे साहिब से मिलने को
मेरा मनु लिहा बैराग है, जी।
मोह निसा में सोइ गई,
चोंक परी उठि जाग है, जी।।
दोउ नैन बने गिरि के झरना,
भूषन बसन किया त्याग है, जी।
पलटू जीयत तन त्याग दिया,
उठी विरह की आगि है, जी।। 13।।

साहिब के दास कहाय यारो,
जगत की आस न राखिए, जी।
समरथ स्वामी को जब पाया,
जगत से दीन न भाखिए, जी।।
साहिब के घर में कौन कमी,
किस बात को अंते आखिए, जी।
पलटू जो दुख सुख लाख परै,
वही नाम सुधा-रस चाखिए जी।। 14।।

घर-घर से चुटकी मांगिके; जी
छुधा को चारा डारि दीजै।
फूटा इक तुम्बा पास राखौ,
ओढ़न को चादर एक लीजै।।
हाट-बाट महजित में सोय रहौ,
दिन-रात सतसंग का रस पीजै।
पलटू उदास रहौ जक्त सेती,
पहिले बैराग यहि भांति कीजै।। 15।।

जब मैं नाही तब वह आया,
मैं, ना वह, यह कौन मानै।
गूंगे ने गुड़ खाई लिया,
जबान बिना क्या सिफत आनै।।
दरियाव और लहर तो दोय नाहीं,
समा और रोशनी कौन छानै।

पलटू भगवान की गति न्यारी,

भगवान की गति भगवान जानै।। 16।।

लो प्यारे पलटू की अमृतवाणी का अंतिम दिन भी आ गया। ये वचन प्यारे थे। ये वचन हीरों जैसे चमकदार थे। ये वचन मात्र सुनने के लिए नहीं थे--गुनने के लिए थे। और गुनने के लिए ही नहीं, जीने के लिए थे। इन सीधी-साफ बातों में धर्म का सारा सार पलटू ने कहा है। कुछ भी बचाया नहीं। मुट्ठी बंधी नहीं रखी--मुट्ठी पूरी खोली है। खूब लुटाया! धन्यभागी हैं वे जो अपनी झोली भर लें। अभागे हैं वे जो वंचित रह जाएं।

सदगुरु देते हैं। लेने वाले ले लेते हैं। नहीं लेने वाले चूक जाते हैं। और सदगुरु से चूक जाना इस जगत में सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। क्योंकि सदगुरु से जो चूका, वह साहब से चूका। साहब से जोड़ने के लिए और कोई सेतु भी तो नहीं है। लेकिन आदमी का अहंकार ऐसा है--ऐसा मजबूत, ऐसा जहर से भरा, ऐसी पत्थर की दीवाल जैसा--कि जब भी कभी कोई अमृत वचन कान पर पड़े, तो अहंकार उसे झुठलाने की कोशिश करता है। अहंकार सब तर्क खोजता है उसके विपरीत। अहंकार अपने को बचाता है।

और जिसने अपने को बचाया, उसने अपने को बुरी तरह खो दिया। जन्मों-जन्मों भटकेगा। अपने को बचाने में ही हम भटक गए हैं। अपने को बचाने से ही यह सारा संसार फैलता है। अपने को मिटाने से परमात्मा से मिलन होता है।

इन वचनों को तुम तर्कजाल में मत ले जाना। ये एक सीधे-सादे आदमी के वचन हैं। इनमें पांडित्य नहीं है--प्रज्ञा के स्वर हैं। इनमें शास्त्रीय विश्लेषण, तर्कजाल, सिद्धांत, धारणाएं, उनका विस्तार नहीं है। इनमें सीधी हृदय पर चोट है। ये तीर हैं। अगर तुमने द्वार खोला तो चुभ जाएंगे सीधे हृदय में, बैठ जाएंगे तुम्हारे अंतस्तल में। बीज की तरह डूब जाएंगे तुम्हारे प्राणों में। और जल्दी ही तुम पाओगे : वसंत आता है। जल्दी ही तुम पाओगेः बीज अंकुरित होता है, बढ़ता है। हजार-हजार फूल लगते हैं और तुम्हारा जीवन सुवासित हो जाता है।

ये सिद्धांत नहीं हैं, जो पलटू ने कहे। ये बीज हैं। ये क्रांति-बीज हैं। ये तुम्हें आमूल बदल दे सकते हैं। तुम इन्हें विचार मत समझना। विचार तो मुर्दा होते हैं। विचारों से कौन कब बदला है! विचारों से थोड़ी सजावट भला हो जाए, तुम्हारे ज्ञान का दंभ थोड़ा बढ़ जाए... । विचार वस्त्रों से ज्यादा नहीं हैं। सुंदर वस्त्रों में तुम्हें सुंदर होने का भ्रम पैदा हो सकता है। विचार आभूषण हैं। ये विचार नहीं हैं; ये क्रांति हैं। ये आग हैं। इनमें तुम जलोगे। और जो हिम्मतवर हैं वे ही इनमें प्रवेश कर सकेंगे। इसलिए पलटू ने राजपूतों को ललकारा है, साहसियों को पुकारा है।

ख्याल रखना, कमजोर--निर्बल के अर्थ में नहीं है। निर्बल तो कमजोर होता ही नहीं। निर्बल के बल राम। निर्बल को तो राम का बल मिल जाता है। उससे ज्यादा शक्तिशाली तो कोई भी नहीं। कमजोर मैं कह रहा हूंः भयभीत, भीरु, डरे हुए लोग। एक कदम अज्ञात में नहीं ले सकते। अंधेरे रास्ते पर जरा नहीं बढ़ सकते। ऐसे डरे हुए लोग। और परमात्मा तो अज्ञात है।

सूफियों की कहानी हैः लैला-मजनू। कहानी से तुम परिचित हो। लेकिन उसमें जो सूफीयाना माधुर्य भरा है, उससे तुम परिचित नहीं हो। मजनू है साधक, लैला है भगवान। वह सूफियों का प्रतीक है। क्योंकि सूफी परमात्मा को स्त्री के रूप में देखते हैं, प्रेयसी के रूप में देखते हैं। पुरुष के रूप में नहीं। लैला प्रतीक है परमात्मा की। लैला शब्द का अरबी में अर्थ होता है : रात्रि, घनी रात्रि। परमात्मा बड़ी अंधेरी रात जैसा है।

अंधेरी रात में उतरने का साहस है, तो ही तुम मजनू हो सकोगे। और मजनू हो तो ही अंधेरी रात में उतर सकोगे। मजनू ही लैला को खोज सकता है। मजनू का अर्थ होता हैः दीवाना, पागल। कौन जाता है अंधेरी रात में! कौन जाता है--अपने आंगन की साफ-सुथरी दुनिया को छोड़ कर घने जंगलों में भटकने! कौन जाता है--

व्यवस्था को छोड़ कर अराजकता में उतरने! कौन जाता है नक्शों की दुनिया को छोड़ कर, नक्शे-रहित अस्तित्व में प्रवेश करने! कौन छोड़ता है सुरक्षा!

जो सुरक्षा छोड़ देता है--वही संन्यासी। जो सुरक्षा को पकड़ कर जीता है, वही गृहस्थ है। घर यानी सुरक्षा का प्रतीक। अपनी जमीन है, अपना मकान है, अपनी दीवाल है, अपना द्वार, अपना दरवाजा। रात ताला मार कर सो जाते हैं। सुरक्षा है। धन जमीन में गड़ा है; पत्नी-बच्चे निकट हैं, अपने पास हैं। दूसरों का क्या भरोसा है! बाहर कौन अपना है! सब अजनबी हैं। कौन धोखा दे जाए, किसको पता है!

गृहस्थ का अर्थ इतना ही नहीं होता कि जो घर में रहता है। वह तो ऊपरी प्रतीक है। गृहस्थ का अर्थ होता है : जो सुरक्षा में रहता है; जो असुरक्षा में जरा नहीं जाता; जहां देखता है अंधेरा है, वहां से लौट आता है; जहां देखता है यहां खतरा है, वहां कदम नहीं मारता; जहां देखता है यहां जीवन दांव पर लगाना पड़ेगा, उस तरफ तो फिर कभी नहीं जाता; जहां कुछ भी दांव पर लगाना हो, जाता ही नहीं। फिर स्वभावतः अगर तुम कोल्हू के बैल की तरह जीते हो तो कुछ आश्चर्य नहीं है। उसी रास्ते पर बार-बार परिक्रमा काटते रहते हो--कोल्हू के बैल! जाना-माना रास्ता। जाने-माने ढंग। सब सुरक्षित, सब व्यवस्थित। कोई खतरा नहीं, कोई भय नहीं। घूमते रहते हो, घूमते-घूमते मर जाते हो। यह कोई जीवन नहीं है।

जीवन तो अभियान में है। जीवन तो वहां है जहां तुम रोज जाने-माने को छोड़ देते हो, जहां तुम रोज नए हो जाते हो। जीवन तो वहां है जहां तुम अपने बालक मन के आश्चर्य को खोते ही नहीं; तुम सदा युवा बने रहते हो; तुम्हारी आंखें सदा तलाशती रहती हैं, खोजती रहती हैं; तुम चुनौती की प्रतीक्षा करते हो--जीवन वहां है। सुरक्षा की नहीं--चुनौती की। कोई चुनौती आए। कोई कठिनाई उठे। क्योंकि कठिनाइयों की सीढ़ियों पर ही चढ़ कर कोई जीवन के उत्तुंग शिखर पर चढ़ता है।

चला जाता हूं हंसता खेलता मौज-ए-हवादिस से
अगर आसानियां हों, जिंदगी दुशवार हो जाए।

अगर सब आसान ही आसान हो, जिंदगी दुश्वार हो जाए, फिर जीना मुश्किल है। यह संन्यासी का भाव है।

चला जाता हूं हंसता खेलता मौज-ए-हवादिस से

ये जो तूफान उठते हैं, ये जो अंधड़ आते हैं, यह जो सागर में बड़ी हलचल हो जाती है, नाव अब डूबी तब डूबी होने लगती है, यह मौजे हवादिस, यह जो दरिया का तूफानी रूप है, यह जो दरिया का तांडव नृत्य है, इसमें अपनी छोटी सी डोंगी को लेकर--चला जाता हूं हंसता। जो हंसता हुआ चलता जाए... ।

हर नया तूफान एक नया अभियान है। हर नया तूफान एक नई चुनौती है। हर नया तूफान परमात्मा की तरफ से एक आमंत्रण, कि उठ, इसके भी ऊपर ऊपर उठ।

चला जाता हूं हंसता खेलता मौज-ए-हवादिस से
अगर आसानियां हों, जिंदगी दुशवार हो जाए।

यह चित्त है संन्यासी का। असुरक्षा ही जो जीवन बना ले, अज्ञात ही जिसकी धुन हो जाए--ऐसा मजनू। अंधेरी रात जिसकी प्रेयसी हो जाए। लैला जिसकी प्रेयसी हो जाए।

तुमने अक्सर सुना है : परमात्मा प्रकाश है। तुमने बहुत ही मुश्किल से कभी सोचा होगा कि परमात्मा परम अंधकार है। क्यों आदमी बार-बार कहता है परमात्मा प्रकाश है? इसलिए नहीं कि आदमी को पता है कि परमात्मा प्रकाश है, आदमी को कुछ भी पता नहीं। आदमी को परमात्मा का पता हो तो आदमी आदमी बचता ही नहीं; आदमी आदमी रह ही नहीं जाता, परमात्मा को जानते ही परमात्मा हो जाता है। जिसने उसे जाना, वही हो गया, वैसा ही हो गया। जानने में ही आदमी विसर्जित हो जाता है।

आदमी ने परमात्मा को तो जाना नहीं, लेकिन आदमी दोहराता है बार-बार : परमात्मा प्रकाश है। अंधेरी रात को तो कोई नमस्कार नहीं करता--न हिंदू न मुसलमान, न ईसाई। सूर्योदय को लोग नमस्कार करते हैं। सुबह को लोग नमस्कार करते हैं। सूर्य-नमस्कार! क्यों? अंधेरी रात उसकी नहीं? सूरज उसका है, माना; अंधेरी रात किसकी है? रोशनी उसकी है, माना; अंधेरा किसका है? और ख्याल करना, रोशनी की सीमा होती है, अंधेरे की कोई सीमा नहीं। अंधेरा ज्यादा परमात्मा का प्रतीक बन सकता है, क्योंकि अंधेरा अनंत है। रोशनी आती है, जाती है; अंधेरा रहता है। दीया जला लो, जलाना पड़ता है; बुझा दो, बुझाना पड़ता है। तुम दीया जलाओ, बुझाओ; अंधेरे को न जलाते, न बुझाते हैं--अंधेरा है। अंधेरा बस है। दीया जल जाता है तो थोड़ी देर को छिप जाता है, दिखाई नहीं पड़ता; दीया बुझा कि फिर मौजूद है। अंधेरा शाश्वत है।

और तुमने अंधेरे की शांति देखी! शांति ही अंधेरे में है। इसीलिए तो रात अंधेरे में तुम सो जाते हो, दिन में सोना मुश्किल हो जाता है। विश्राम अंधेरे में है। इसलिए तो आंख बंद कर लेते हो, दीया बुझा देते हो, पर्दे डाल देते हो, अंधेरा कर लेते हो--सो जाते हो। अंधेरे में कहीं तुम भीतर अपनी गहराइयों में डूब जाते हो।

रात निद्रा के अंधेरे में कहां जाते हो? जहां जाते हो, वहीं परमात्मा है। इसलिए पतंजलि ने कहा हैः सुषुप्ति और समाधि कुछ-कुछ एक जैसे हैं। गहरी नींद और समाधि कुछ-कुछ एक जैसे हैं। जहां स्वप्न भी खो जाता है, वह समाधि जैसा ही है। क्योंकि परमात्मा में डुबकी मार दी। इसलिए सुबह जाग कर तुम कहते होः ताजा हो गया! पुनरुज्जीवन मिला! जिस रात गहरी नींद सो गए, जिस रात ऐसी नींद सो गए कि सपनों ने भी पंख न मारे और सपनों ने भी चहल-पहल न की और सपनों की भी गतिविधि न हुई और सपनों का शोरगुल न मचा और सपनों की भीड़ न रही--जिस रात ऐसे सो गए, थोड़ी देर को ही सही, उस सुबह तुम कितने ताजे होकर लौटते हो! कितने जीवंत! कितने ज्योतिर्मय! जैसे फिर जगत नया हुआ! जैसे फिर से जन्म हुआ! और जब किसी रात ऐसा नहीं हो पाता और सपने अपनी भीड़ मचाए रखते हैं और तुम्हारे चारों तरफ उछलते-कूदते ही रहते हैं, उनकी बंदरों जैसी जमात तुम्हें रात भर नहीं छोड़ती--उस सुबह तुम थके-मांदे उठते हो--उससे भी ज्यादा थके-मांदे, जितने तुम तब थे जब तुम बिस्तर पर सोने गए थे। क्या हुआ? समाधि की वह जो थोड़ी सी घटना घटनी थी, नहीं घटी। परमात्मा से जो थोड़ा सा प्रसाद नींद में मिल जाता, वह भी न मिला।

अंधेरा, गहरा अंधेरा--विश्राम का प्रतीक है।

और भी ख्याल करना : गहरे अंधेरे में ही सृजन का आविर्भाव होता है। बीज फूटता है--जमीन के अंधकार में। बीज को ऐसे जमीन के ऊपर रख दो, न फूटेगा। उसे दबाना पड़ता है जमीन के अंधकार में। जहां रात हो जाती है, अंधेरा हो जाता है--वहां बीज फूटता है, वहां जन्म होता है।

ऐसे ही बच्चे का जन्म होता है मां के गर्भ में; वहां गहन अंधकार है। वहां कोई रोशनी नहीं जाती। वहां जन्म होता है। गहरे अंधकार में जन्म, जीवन का आविर्भाव होता है।

बहुत कम लोगों ने लेकिन परमात्मा को अंधकार की तरह सोचा। लोगों ने सदा सोचा प्रकाश की तरह। क्यों? इसलिए नहीं कि परमात्मा प्रकाश ही है। परमात्मा प्रकाश भी है। लेकिन लोगों ने इसलिए सोचा कि लोग भयभीत हैं अंधेरे से। लोग ग्रस्त हैं। इसलिए लोगों ने सोचा परमात्मा प्रकाश है। इसलिए शास्त्र दोहराते हैंः परमात्मा रोशनी है, परमात्मा प्रकाश है। क्योंकि प्रकाश में तुम्हें भय कम लगता है, अंधेरे में भय ज्यादा लगता है। यही जगह, यही स्थान, अगर रोशनी है, तुम कम भयभीत; और अंधेरा हो जाए, तो तुम ज्यादा भयभीत। अकेले भी हो, दीया जलता हो तो तुम कम भयभीत; दीया बुझ जाए तो तुम बहुत भयभीत। क्यों? अंधेरे में कुछ दिखाई नहीं पड़ता--क्या क्या है? अंधेरे में कुछ दिखाई नहीं पड़ता--कौन-कौन है? अंधेरा सब सीमाओं को मेट देता है और सभी चीजों को गड्डमड्ड कर देता है। और अंधेरे में सीमाओं का जो भेद है वह

विलीन हो जाता है। अंधेरे में सब चीजें असीम में लीन हो जाती हैं, सीमाएं खो जाती हैं। घबड़ाहट पैदा होती है।

अंधकार से जो दोस्ती बनाने में समर्थ है--वही संन्यासी।

इसलिए लैला का अर्थ बड़ा प्यारा हैः अंधेरी रात! अंधेरी रात की तलाश! अज्ञात की तलाश!

और ख्याल रखना कि सूरज भी उसका है, रोशनी भी उसकी है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि रोशनी उसकी नहीं है। सब उसका है। रोशनी भी उसकी है। लेकिन आदमी क्यों जोर देता है कि रोशनी है परमात्मा। आदमी अपने भय के कारण जोर देता है। घबड़ाहट के कारण। और जो घबड़ाता है, उसका ईश्वर से कोई संबंध नहीं हो पाता।

पलटू के ये प्यारे वचन तुमने सुने! थोड़ी हिम्मत करो। थोड़ा पलटू के साथ अज्ञात की यात्रा में उतरो।

"सच्चे साहिब से मिलने को

मेरा मन लिहा बैराग है, जी।"

पलटू कहते हैं : मैं संन्यस्त हो गया। सच्चे साहब को मिलने को!

फर्क समझो।

कुछ लोग संसार इसलिए छोड़ते हैं कि संसार बुरा है; इसलिए छोड़ते हैं कि संसार पाप है; इसलिए छोड़ते हैं कि संसार में दुख ही दुख है। यह नकारात्मक संन्यास हुआ। कुछ लोग इसलिए संन्यास लेते हैं और संसार छोड़ते हैं कि संसार में सुख है, पर क्षणभंगुर। चख लिया। जितना संसार में मिल सकता था, जान लिया। उतने से मन भरता नहीं। उससे प्यास मिटती नहीं--और बढ़ती है। उससे आग में और घी पड़ता है। संसार में देख लिए, सुख के थोड़े से कण बरसते हैं, कभी-कभी कोई बूंद पड़ जाती है, संसार के रेगिस्तान में भी कभी-कभी वर्षा होती है--ज्यादा नहीं, इंच-दो-इंच, कभी-कभी बूंदाबांदी हो जाती है--लेकिन उन बूंदों से एक बात समझ में आ गई कि जल होता है और जल के सरोवर भी कहीं होंगे, जहां से ये बादल उठते हैं। और अगर एकाध बूंद गिर सकती है, तो फिर कहीं जल के अखंड स्रोत भी होंगे। उनकी तलाश में निकलता है साधक।

फर्क समझो।

एक तो साधक ऐसा होता है, जो संसार में दुख पाया। दुख पाया, इसलिए संसार छोड़ देता है, क्योंकि यहां दुख ही दुख हैं, क्या रखा है इसमें! इसका छोड़ना नकारात्मक है। इसके छोड़ने में उदासी होगी। इसके छोड़ने में बड़ी निराशा होगी। इसके छोड़ने में बड़ी हताशा होगी। यह छोड़ कर प्रसन्नचित्त नहीं होगा। दुख को छोड़ कर क्या कोई प्रसन्नचित्त होगा। और इसने संसार में कोई सुख तो जाना नहीं, इसलिए यह भरोसा भी कैसे करे! इसने एक बूंद भी तो नहीं जानी इस मरुस्थल में, यह भरोसा भी कैसे करे कि कहीं दूर हिमालय में छिपा मानसरोवर भी होगा। इसका भरोसा भी डगमगाता होगा।

यही भक्त और साधारण धार्मिक व्यक्ति में भेद है। भक्त छोड़ता है संसार को--इसलिए नहीं कि यहां दुख ही दुख है, बल्कि इसलिए कि यहां सुख तो है, पर क्षणभंगुर है। यहां सुख तो है, लेकिन बस बूंदाबांदी होती है। अब बूंदाबांदी में कब तक बैठे रहें। नहाना भी नहीं हो पाता, हृदय की प्यास भी नहीं बुझती, आत्मा निर्मल भी नहीं हो पाती। मगर बूंदों ने इतना भरोसा दे दिया कि सुख कहीं होता है, सुख का भी कोई अस्तित्व है। अब हम उसकी तलाश में चलें, जहां से ये बादल उठ कर आते हैं, जहां से यह बूंदाबांदी आती है--उस सागर की खोज में निकलें।

तो भक्त बड़ी आस्था से जाता है। ज्ञानी बड़ी निराशा से जाता है। ज्ञानी सोचता है : हो न हो, भगवान है या नहीं! संसार तो देख लिया, व्यर्थ पाया; अब देख लें, यह भी खोज करके देख लें, शायद हो, शायद न हो। ज्ञानी के भीतर एक संदेह बना ही रहता है। भक्त बड़ी आस्था से जाता है। वह कहता है : इस संसार में भी था। थोड़ा था। भगवान कभी-कभी झांका था। कहीं-कहीं खिड़की खुल गई थी। और क्षण भर को। ताजी हवा आई थी। कभी-कभी सुवास नासापुटों में भर गई थी। भगवान यहां भी था, लेकिन बड़े पर्दों में था, पर्दानशीन था,

घूंघट और घूंघट, और घूंघट... । मगर कभी-कभी घूंघट उठे थे और उसकी आंख में आंख मिल गई थी। अब हम बिना घूंघट के परमात्मा को पाना चाहते हैं। उसमें आस्था है। उसमें भरोसा है। उसमें उमंग है। वह इतनी बात जान कर ही चलता है कि परमात्मा है। संसार में उसने परमात्मा की थोड़ी सी झलक पा ली, दूर से सही, बहुत दूर से सही, हजार कोस से सही, मगर थोड़ी सी झलक पाई है। जैसे कि हजारों मील से भी तुम चाहो, किसी खुले दिन में जब आकाश में बादल न हों और सूरज साफ-साफ हो, तो हिमालय के उत्तुंग शिखर दिखाई पड़ जाते हैं। उन पर जमी हुई कुंवारी बर्फ, पड़ती हुई सूरज की किरणें और बिखरती चांदी बहुत दूर से दिखाई पड़ जाती है। सपना जैसा ही है, मगर खोज शुरू होती है।

फर्क समझना।

एक आदमी फूलों की तलाश में निकला, क्योंकि संसार में कांटे ही कांटे पाए; अब सोचता है : चलो परमात्मा में खोज कर देख लें, शायद फूल वहां हों। एक आदमी फूलों की तलाश में निकला, क्योंकि संसार में कुछ फूल पाए; कांटे बहुत थे, मगर कभी-कभी कोई गुलाब भी खिला था कांटों पर। इसके लिए परमात्मा "शायद" नहीं है। अब यह एक ऐसे गुलाब की तलाश में निकला है, जहां फूल ही फूल खिलते हों। और जहां कांटे न हों। ऐसे गुलाब भी होते हैं, जिनमें कांटे नहीं होते। इन दोनों की खोज में फर्क होगा। वही पलटू कह रहे हैं :

"सच्चे साहिब से मिलने को

मेरा मन लिहा बैराग है, जी।"

मैंने जो वैराग्य लिया, जो संन्यास लिया, उसमें संसार को छोड़ देने का उतना सवाल नहीं है, जितना परमात्मा को खोजना है। संसार के प्रति विरक्ति है, ऐसा नहीं, परमात्मा के प्रति अनुरक्ति है, ऐसा।

बड़ा फर्क है। थोड़ा सा दिखाई पड़ता है शब्दों में, फर्क जमीन-आसमान जैसा है। यह संसार भी उसका है।

ऐसा ही समझो कि तुमने किसी संगीतज्ञ का रिकार्ड सुना, ग्रामोफोन पर सुना। रिकॉर्ड रिकॉर्ड है। रिकॉर्ड में भरा हुआ संगीत भी बस कामचलाऊ संगीत है। लेकिन इससे खबर तो मिली कि संगीतज्ञ कहीं है। किसी की वाणी पकड़ी गई है, वह वाणी कहीं होगी। तुमने रिकार्ड सुना, अब तुम संगीतज्ञ की खोज में चले। तुम्हारे पैरों में बल होगा।

इसलिए पलटू कहते हैं : "जैसे बारात चली उमंगिके।"

उमंग से भरी बरात चली। हम दुल्हा बने और दुल्हनिया की खोज में निकले।

कबीर ने कहा हैः राम मेरी दुल्हनिया! बड़ी उमंग से बरात चल रही है। पक्का भरोसा हैः दुल्हन है। दूर से देखी थी झलक, या कि तस्वीर देखी थी, या कि दर्पण में देखी थी, मगर दुल्हन है। उसके होने में कोई रत्ती भर संदेह नहीं है। उसका होना सुनिश्चित है। उसका होना इतना सुनिश्चित है कि भक्त अपने को गंवाने को तैयार है--उसे पाने को। उसका होना अपने होने से ज्यादा सुनिश्चित है। यह जीवन को देखने की विधायक दृष्टि।

एक नकारात्मक दृष्टि है--निगेटिव। दुख है। संसार में दुख ही दुख है। छोड़ दो। संसार को छोड़ोगे तो परमात्मा मिलेगा। ऐसा आश्वासन समझो। संदेह तो रहेगा। जब यहां सुख नहीं है, उसके बनाए हुए संसार में सुख नहीं है, तो उसमें भी पता नहीं हो या न हो। और जब उसने ऐसा दुख-भरा संसार बनाया है, तो वह सुख-भरा कैसे होगा! ये सब सवाल उठेंगे हीः सुखी आदमी इतना दुखी संसार बनाता है? जिसके भीतर आनंद बरस रहा हो, वह ऐसी कहानी लिखेगा, दुख भरी? ऐसा नाटक रचेगा दुख भरा? संदेह तो यही होता है कि कोई परमात्मा नहीं है, यह सिर्फ दुर्घटना है। दुर्घटना ही इतनी दुख भरी हो सकती है। इसके पीछे कोई चलाने वाला नहीं है; कोई हाथ नहीं है इस विराट उपद्रव के पीछे। दुख है, उपद्रव है। इसके पीछे कोई संयोजक नहीं है। या कभी रहा होगा तो अब मर चुका है।

जैसा नीत्शे ने कहा कि ईश्वर मर गया है, कभी रहा होगा। चलो मान लेते हैं, कभी रहा होगा; क्योंकि यह सब है तो किसी ने बनाया होगा। लेकिन बनाने वाला मर चुका है। यह सब इतनी अव्यवस्था, इतना दुख,

इतनी पीड़ा! यहां पीड़ा पर पीड़ा उठती आती है, दुख पर दुख लगता जाता है। यहां कभी सुख की एक किरण दिखाई नहीं पड़ती। तब भी कोई आदमी वैराग्य लेता है। उसका वैराग्य नकारात्मक होगा। उसके वैराग्य में परमात्मा का अनुराग नहीं है। उसके वैराग्य में सिर्फ संसार की उपेक्षा, संसार का निषेध है। उसके वैराग्य में सिर्फ संसार का विरोध है। संसार के प्रति द्वेष है उसके वैराग्य में; परमात्मा के प्रति प्रेम नहीं।

परमात्मा के प्रति प्रेम तो तभी संभव है जब संसार को भी तुमने सहज भाव से स्वीकार किया हो, अंगीकार किया हो; इसमें भी कुछ फूल मिले हों। नहीं चलो फूल तो फूल की पंखुरी ही, कुछ मिला हो--तो भरोसा आए। दूर की ध्वनि सुनाई पड़ी हो, छाया दिखाई पड़ी हो जल में, मगर कुछ दिखाई पड़ा हो, कुछ अनुभव हुआ हो। और अनुभव यहां हो सकता है, क्योंकि कृत्य में कर्ता मौजूद होता है। नृत्य में नर्तक मौजूद होता है।

"सच्चे साहिब से मिलने को

मेरा मनु लिहा बैराग है, जी।

मोह निसा में सोई गई,

चोंक परी उठि जाग है, जी।।"

"मोह निसा में मैं सोइ गई।"

इस संसार में मैं सो गया था, खो गया था, मूर्च्छित हो गया था, प्रमाद से भर गया था, झपकी लग गई थी। मेरा संन्यास सिर्फ आंख का खुल जाना है। अब मैं जाग पड़ा हूं। अब मैं ऐसा आंख बंद किए-किए नींद-नींद में न चलूंगा; अब मेरी आंखें खुल गई हैं। बस इतना ही फर्क है।

संसारी में और संन्यासी में इतना ही फर्क है कि एक आंख बंद किए चल रहा है और एक आंख खोल कर चल रहा है। जगह तो यही है। यही मकान, यही बाजार, यह मंदिर-मस्जिद, यही लोग, यही पत्नी, पति, बच्चे, परिवार--सब यही है। फर्क इतना है कि संन्यासी आंख खोल कर चल रहा है। और आंख खोलना इतना बड़ा फर्क है कि और फर्क क्या मांग सकते हो! और ज्यादा फर्क होता ही नहीं। बस पलक खुलने और बंद होने का फर्क है। जरा सा फर्क है।

"मोह निसा में सोइ गई

चोंक परी उठि जाग है, जी।"

तो पलटू कहते हैंः कुछ और खास नहीं हो गया, एक नींद लग गई थी, एक सपना देखा था। एक मोह की तंद्रा पकड़ गई थी। मेरे-तेरे का भाव पकड़ गया था। मैं हूं, मेरा है--ऐसे संसार का जन्म हो गया था। "मोह-निसा" में स्मरण न रहा था कि क्या वस्तुतः है। अपनी कल्पना को ही सच मानने लगा था।

तुम रोज तो करते हो यही। रात सपना देखते हो, सपने में भूल जाते हो कि यह सपना है। सपने में याद ही नहीं आती कि यह सपना है। सपने में लगता है कि यही सच है--सब सचों का सच। सुबह जाग कर फिर हंसते हो, अपने पर हंसते हो। हैरानी होती है, भरोसा नहीं आता कि मैं भी कैसा मूढ़, रात सपना देखा और मान लिया कि सच है! अब कभी ऐसा न करूंगा। अब ऐसी भूल न करूंगा।

और ऐसा कितनी बार नहीं हो चुका! हजारों बार हो चुका। हजारों बार सुबह जाग कर हंसे हो, अपनी मूढ़ता को पाया है, तय किया है कि अब दुबारा ऐसी भूल न होगी--और फिर रात सोओगे, और फिर सपना सच हो जाएगा। नींद में सपने सच मालूम होने लगते हैं।

जब आदमी सोया हो तो फर्क कैसे करे कि क्या झूठ और क्या सच? जागरण में कसौटी है। जागरण में, सार-असार का स्पष्ट भेद हो जाता है। कुछ करना नहीं पड़ता; जागे हुए आदमी को सीधा दिखाई पड़ने लगता है कि क्या है और क्या नहीं है। जो नहीं है, वह अपने आप तिरोहित हो जाता है; और जो है, वही शेष रह जाता है।

सोया हुआ आदमी प्रक्षेपण करता है। जो उसके मन की कामनाएं हैं, वासनाएं हैं, दमित इच्छाएं हैं, अधूरी अपूरित तृष्णाएं हैं--वे फैल जाती हैं। वही तो सपना बनती हैं। तुमने दिन में उपवास किया, रात भोजन करने लगे सपने में। दिन भर दबाया था भूख को, रात भूख उबली। भूख इतनी जोर से उठी कि भूख ने अपना भोजन निर्मित कर लिया। भूख ने एक सपना बना लिया कि राजमहल में तुम्हारा निमंत्रण हुआ है और सुस्वादु भोजन का ढेर लगा है और तुम दिल खोल कर खा रहे हो।

यह सपना पैदा कैसे हो रहा है? पहली तो नींद जरूरी है। दूसरी कोई दमित वासना जरूरी है। कोई टूटी-फूटी वासना जरूरी है, जो भर न पाई हो जागने में। बस ये दो बातें मिल जाएं तो सपना पैदा हो जाएगा। यह सपने का यंत्र है : दबी हुई वासना, अधूरी वासना, अपूरित वासना और तंद्रा, बेहोशी।

इसलिए जो आदमी शराब पी लेता है, उसे कुछ का कुछ दिखाई पड़ने लगता है।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को लेकर शराब घर में बैठा था। फिर अचानक बोला कि बस अब रुक जाओ, अब ज्यादा मत पीओ। तुम्हें मैं यह पाठ सिखाता हूं। यह पीने वालों का अनिवार्य पाठ है। देखो उस किनारे पर दो लोग बैठे हैं। उस लड़के ने पीछे लौट कर देखा। वहां कोई नहीं, एक आदमी बैठा है। मुल्ला कह रहा है कि देखो वहां पीछे दो लोग बैठे हैं, जब ये चार दिखाई पड़ने लगें, तब पीना बंद कर देना।

उसके बेटे ने कहाः पिता जी, वहां एक ही है। आप पहले ही काफी पी चुके हैं, अब बंद करने का कोई मतलब नहीं है।

जब चार दिखाई पड़ने लगें--मुल्ला कह रहा है--तब पीना बंद कर देना, यह सूत्र है घर लौटने का, नहीं तो फिर घर नहीं लौट पाओगे। जैसे ही चार दिखाई पड़ें, जल्दी से बंद करके अपने घर चले जाना, ताकि घर पहुंच जाओ सुरक्षित, बिस्तर में लेट जाओ, नहीं तो किसी नाली में पड़े रहोगे।

मगर वह पहले ही पी चुका है काफी। जहां एक है, वहां दो तो दिखाई पड़ ही रहे हैं। अब थोड़ी और पीएगा तो चार भी दिखाई पड़ेंगे। थोड़ी और पी लेगा तो आठ भी दिखाई पड़ने लगेंगे। और आदमी की जगह सिंह और भालू दिखाई पड़ सकते हैं, हाथी और घोड़े दिखाई पड़ सकते हैं।

एक दिन मुल्ला अपने सिर पर एक टोकरी लिए घर की तरफ आ रहा है और किसी ने पूछाः इसमें क्या है? तो उसने कहा : इसमें एक नेवला लाया हूं पकड़ कर। "नेवला!" उस आदमी ने पूछाः नेवला किसलिए पकड़ कर लाए हो? उसने कहा कि जब मैं शराब पी लेता हूं ज्यादा तो मुझे सांप दिखाई पड़ते हैं। तो नेवले को कमरे में रखूंगा। यह निपट लेगा सांपों से। कहते हैं न कि नेवला तो सांप को टुकड़े-टुकड़े कर देता है! इसलिए ला रहा हूं।

वह आदमी हंसा। वह बोलाः लेकिन शराब पीकर जो सांप दिखते हैं, वे सच थोड़े ही होते हैं, वे झूठ होते हैं। मुल्ला हंसा और बोला : तुम क्या समझते हो, इसमें नेवला सच है? खाली टोकरी, सिर्फ ख्याल।

आदमी मूर्च्छा में "जो नहीं है", वैसा देखने लगता है। इसे उलटा करके समझो। इसको कसौटी समझो मूर्च्छित होने कीः अगर तुम्हें जो नहीं है, वैसा दिखाई पड़ता हो तो समझो कि तुम मूर्च्छित हो। रात तुम्हें सपना दिखाई पड़ता है, यह सबूत है कि तुम मूर्च्छित हो। बुद्धपुरुषों को सपना नहीं दिखाई पड़ता। और जिसको रात सपना दिखाई पड़ता है, दिन में वह कोई दूसरा थोड़े ही हो जाएगा। है तो वही का वही। भीतर तो सपने बहते ही रहेंगे। दिन में भी तुम्हें कुछ का कुछ दिखाई पड़ता है।

एक राह से तुम गुजरते हो, एक मकान तुम्हें दिखाई पड़ता है बहुत सुंदर, मन होता है खरीद लें, अपना हो। मगर यह मकान इतना सुंदर है, या कि तुम्हारी तृष्णा के कारण दिखाई पड़ रहा है? जिस दिन तुम्हारे भीतर तृष्णा न रहेगी उस दिन यह मकान इतना सुंदर दिखाई पड़ेगा? इसी मकान के पास से बुद्ध गुजरेंगे,

उनकी नजर जाएगी इस मकान पर? यह मकान में सौंदर्य है, या तुम्हारी तृष्णा इस मकान को सुंदर बना रही है?

एक स्त्री तुम्हें सुंदर दिखाई पड़ती है। इस स्त्री में सौंदर्य है, या तुम्हारी वासना तुम्हें सौंदर्य दिखा रही है? बुद्ध गुजरेंगे तो उन्हें तो सौंदर्य दिखाई नहीं पड़ेगा।

तुम्हें जब किसी आदमी में कुरूपता दिखाई पड़ती है, तो कुरूपता वहां है, या यह भी तुम्हारा प्रक्षेपण है? एक आदमी बैठा है राह के किनारे, कोढ़ी, शरीर गला हुआ, बदबू निकल रही है। तुम नाक बंद करके दूसरी तरफ मुंह फेर कर एकदम तेजी से निकल जाते हो--इतना कुरूप आदमी! लेकिन यह आदमी कुरूप है, या यह भी तुम्हारा प्रक्षेपण है? यह तुम्हारा भय है। तुम डरते हो कि कहीं किसी दिन ऐसी मेरी हालत न हो जाए। उसी भय के कारण तुम भाग रहे हो।

जो तुम चाहते हो मुझे मिले, वह सुंदर दिखाई पड़ता है। और जो तुम चाहते हो कभी मुझे न मिले, कभी ऐसा न हो मुझे, वह तुम्हें कुरूप दिखाई पड़ने लगता है। कुरूप और सौंदर्य वस्तुओं में नहीं होते--तुम्हारी तृष्णाओं में, तुम्हारी धारणाओं में, तुम्हारे भयों में, तुम्हारी कामनाओं में छिपे होते हैं।

जिस दिन किसी व्यक्ति की मूर्च्छा टूट जाती हैः न कुछ सुंदर है न कुछ असुंदर है। बस वैसा ही है जैसा है। कुछ कहने का अर्थ ही नहीं होता। ये वृक्ष वृक्ष हैं। आदमी आदमी हैं। स्त्रियां स्त्रियां हैं। पत्थर पत्थर हैं। नदियां नदियां हैं। जो जैसा है वैसा है। तुम्हारी कोई धारणा नहीं बनती।

जागा हुआ आदमी गुजर जाता है, उसकी कोई धारणा नहीं होती। उसे सब जैसा होना चाहिए वैसा है। चूंकि उसके भीतर कोई आकांक्षा नहीं है कि यह मुझे मिले और ऐसी भी कोई आकांक्षा नहीं है कि मिल जाए तो मेरा दुर्भाग्य होगा, इसलिए कोई धारणा सिर नहीं उठाती। उसके भीतर कोई सपना नहीं पैदा होता। जिस दिन जो है वैसा ही तुम्हें दिखाई पड़ने लगे, उस दिन जानना कि जागरण हुआ है।

"मोह निसा में सोइ गई,

चोंक परी उठि जाग है, जी।"

पलटू कहते हैंः कुछ और नहीं हुआ, वह जो मोह-निशा थी, टूट गई है, मैं जाग गया। यही मेरा संन्यास। यही मेरा वैराग्य। जागरण--वैराग्य।

सुनते हो! त्याग नहीं--जागरण। छोड़ना नहीं--जागरण। छोड़ने में तो नींद बनी ही हुई है। जब कोई आदमी कहता है मैं छोड़ता हूं, तो उसका मतलब यह होता है कि अभी भी पकड़ने का मन था, नहीं तो छोड़ने की भी इतनी क्या चिंता! जब कोई आदमी कहता है : मैंने छोड़ा, तो उसका मतलब होता है कि अभी भी पकड़े हुए हैं, नहीं तो छोड़ता भी क्यों! छूट जाता। जागरण!

"दोउ नैन बने गिरि के झरना

भूषन बसन किया त्याग है, जी।"

पलटू कहते हैं आंखें तो झरने हो गई हैं। आंसू ऐसे बह रहे हैं, जैसे झरना हो, जैसे कभी न रुकेगा।

दोउ नैन बने गिरि के झरना!

क्योंकि जो छोटी सी झलक इस संसार में दिखाई पड़ गई है, अब वह तड़फाती है। अब उस प्राणप्यारे की खोज के लिए बड़ी आकांक्षा पैदा हुई है। विरह उठा है। स्वाद लग गया है।

कहते हैं एक आदमी ने एक सिंह पाला था। बचपन से पाला था और उसे शाकाहारी बना लिया था। शाकाहारी बनना पड़ा था सिंह को; बचपन से उसे मांस मिला नहीं, उसने मांस का स्वाद नहीं जाना। शाक-सब्जी, फल इत्यादि खाकर ही जीता था, जानता था यही भोजन है। उस आदमी के पैर में एक दिन चोट लग गई और सिंह उसके पास ही बैठा था, जैसा वह सदा बैठता था। पैर में से खून बह रहा था। और उस सिंह ने अपनी जीभ से वह खून चाट लिया। बस फिर मुश्किल हो गई। स्वाद लगा कि जैसे सोया हुआ सिंह, जिसे पता

ही नहीं था कि मैं सिंह हूं, एकदम उठ कर खड़ा हो गया। हुंकार निकल गई, जो उसके मुंह से कभी नहीं निकलती थी। शाकाहारी सिंह कहीं हुंकार देते हैं! एकदम हुंकार निकल गई। वह आदमी भी घबड़ा गया। उस आदमी ने भी अपनी बंदूक उठा ली। अब यह सिंह खतरनाक था। अब इसको घर में रखना खतरे से खाली नहीं था। उसे जंगल में छोड़ देना पड़ा। स्वाद लग गया!

ऐसी ही दशा हो जाती है भक्त की। संसार में परमात्मा का थोड़ा सा स्वाद मिल गया। थोड़ा सा! बस जरा सा! जीभ पर लगा ही लगा। मगर बस बात बदल गई। अब संसार में कोई रस न रहा। अब तो इस परम प्यारे को खोजना है।

"दोउ नैन बने गिरि के झरना

भूषन बसन किया त्याग है, जी।"

समझना, यह बड़ी प्यारी बात है। पलटू कहते हैं : अब कहां याद कपड़े-लत्तों की, भूषण-आभूषण की! यह उन दिनों की बात है जब हिंदुस्तान में पुरुष भी आभूषण पहनते थे। तो तुम थोड़ा चौंकोगे कि पुरुष और आभूषण की बात कर रहे हैं पलटूदास! यह पहनते थे पुरुष उन दिनों।

सच तो यह है कि आभूषण सबसे पहले पुरुषों ने ही पहनने शुरू किए, बाद में धीरे-धीरे स्त्रियां सीखीं। और यह ज्यादा प्राकृतिक लगता है कि पुरुष आभूषण पहने। स्त्रियां वैसे ही सुंदर हैं। तो यह तकलीफ पुरुष को उठी होगी कि वह स्त्रियों जैसा सुंदर नहीं है। तो उसने आभूषण बनाए होंगे। ये आभूषण दीनता से उठे होंगे, हीनता से उठे होगे।

तुम प्रकृति में भी देखोगे तो यही पाओगे। मुर्गे को देखते हो, सिर पर कलगी का आभूषण! मुर्गी को कुछ नहीं। मोर को देखते हो! पुरुष को तो कितना सुंदर आभूषण है--पंख! मोरनी को कुछ भी नहीं। सिंह को देखते हो! तुम चारों तरफ देख डालो प्रकृति में--पुरुष को तुम पाओगे आभूषणों से लदा हुआ। स्त्री के तो स्त्री के होने में ही इतना माधुर्य है कि अब और किसी बात की जरूरत नहीं है। इसलिए प्रकृति ने स्त्रियों को सुंदर आभूषण नहीं दिए हैं। पुरुष ने खोजे हैं। और इसकी कभी वैज्ञानिक खोज होगी तो यह पाया जाएगा कि यह जो कलगी है मुर्गे के ऊपर, यह भी प्रकृति ने नहीं दी है, मुर्गे ने पैदा की होगी, खोजी होगी। आदमी को चिंता लगी रहती है। उसे स्त्री से ज्यादा सुंदर होना चाहिए। उसे कुछ न कुछ परिपूरक करना पड़ता है। कुछ खोजना पड़ता है।

वैज्ञानिक तो कहते हैं कि आदमी ने जो इतने आविष्कार किए हैं, इतने चित्र बनाता, मूर्ति बनाता, संगीत का निर्माण करता, विज्ञान की खोज करता, चांद-तारों पर जाता--इन सबके पीछे एक ही दंश है कि वह बच्चे पैदा नहीं कर सकता। स्त्री से हारा हुआ है। स्त्री जन्म दे पाती है जीवित बच्चे को। और यह पुरुष को काटता है। वह भी कुछ जन्म देने की कोशिश करता है, तो सब्स्टीट्यूट, परिपूरक खोजता है। वह कहता हैः देखो, मैंने एक चित्र बनाया! आदमी तो बना नहीं सकता, चित्र बनाया। कविता लिखी, संगीत रचा। हिमालय पर चढ़ गया। देखते हो, चांद पर पहुंच गया। यह पुरुष के भीतर कुछ थोड़ी सी एक बेचैनी है। बेचैनी इस बात की है कि एक काम स्त्री कर लेती है, जो वह नहीं कर पाताः जीवन को जन्म दे लेती है।

और इसका ही दूसरा अंग हैः इसलिए स्त्रियां कविता इत्यादि नहीं लिखतीं, मूर्ति भी नहीं बनाती, संगीत की भी चिंता नहीं करतीं। चांद-तारों पर जाने में उनको हंसी आती है कि किसलिए, क्या फायदा, क्या फायदा, क्या सार! हिमालय पर किसलिए चढ़ रहे हो? स्त्री की समझ में ही नहीं आता। वह तृप्त है।

स्त्री को गौर से देखो तो उसमें एक तृप्ति मालूम पड़ती है। और जब कोई स्त्री मां बन जाती है, तो बड़ी तृप्त हो जाती है। उसमें एक गोलाई है। पुरुष में थोड़े से कोने निकले हैं, जिनको वह घिसता रहता है कि किसी तरह गोलाई आ जाए। सृष्टा बनने की, सुंदर होने की--एक स्पर्धा है।

तो पुरुष ने ही सबसे पहले आभूषण खोजे हैं। फिर धीरे-धीरे रोग स्त्रियों को लगा। खोजता पुरुष है, फिर रोग लग जाता है स्त्रियों को। फिर जब स्त्रियां उन आभूषणों का उपयोग करने लगीं, तो पुरुष ने छोड़ दिया। वह भी उसके अहंकार को नहीं सोहता, वह भी उसके अहंकार को नहीं जंचता कि अब स्त्रियों ने पहन लिए

आभूषण, अब मैं पहनूं, तो स्त्रैण जंचता हूं! तो उसने छोड़ दिए। अब स्त्रियां भी छोड़ रही हैं। इस बात की बहुत संभावना है कि आने वाली सदी में पुरुष फिर आभूषण पहनने लगें। अगर स्त्रियां छोड़ दें तो पुरुष फिर पहन लेगा। स्त्रियां छोड़ रही हैं आभूषण। पश्चिम में तो स्त्रियां छोड़ रही हैं। पूरब में भी कम होता जाता है। अभद्र मालूम होने लगा है आभूषणों से लदा होना, फूहड़ मालूम होने लगा है। कोई आवश्यकता नहीं है।

तो पलटू उस समय की बात कर रहे हैं, जब पुरुष भी आभूषण पहनते थे।

"दोउ नैन बने गिरि के झरना

भूषन बसन किया त्याग है, जी।"

यह त्याग हो गया। आंखें रो रही हैं विरह में, झरने बह रहे हैं आंखों के। आंसू ही आंसू हैं। अब किसको फिकर रही आभूषण पहनने की! अब कौन सजावट करे! यह सजावट तो स्त्रियों को लुभाने के लिए थी; अब तो परम प्यारे को लुभाने चले, अब वहां आभूषण काम न आएंगे। वहां तो कुछ आत्मिक आभूषण चाहिए--सरलता चाहिए, सादगी चाहिए, ईमान चाहिए, श्रद्धा चाहिए, प्रेम चाहिए, अनन्य भक्ति चाहिए, प्रार्थना चाहिए, पूजा चाहिए, अर्चना चाहिए। वहां तो कुछ दूसरे आभूषण चाहिए। ये सोने-चांदी की बातें परमात्मा को न लुभा सकेंगी। ये तो बातें बाहर की हैं; अब भीतर के आभूषण चाहिए। अब बाहर के वस्त्र मैले-कुचैले भी रहे तो चल जाएगा; अब तो अंतरात्मा स्वच्छ होनी चाहिए। अब तो सफाई वहां करनी है। अब तो स्नान वहां करना है। और जब आंख झरने बन जाती हैं, तो आत्मा शुद्ध होने लगती है।

उम्र कैसे कटेगी सैफ यहां

रात कटती नजर नहीं आती।

एक-एक पल भक्त का मुश्किल में कटने लगता है। एक तरफ भक्त बड़ा आह्लादित है कि प्रभु की तरफ चल पड़ा और दूसरी तरफ बड़ी पीड़ा है कि मिलन कब होगा!

उम्र कैसे कटेगी सैफ यहां

रात कटती नजर नहीं आती।

और सब लुटा देता है। सब लुटा देता है! भूषन-बसन, जो कुछ भी है, सब धीरे-धीरे लुट जाता है।

बहारें लुटा दीं, जवानी लुटा दी

तुम्हारे लिए जिंदगानी लुटा दी।

वह कुछ भी रोक नहीं रखता। रोक रख सकता ही नहीं। जो भी दे सकता है, दे ही देता है। रोकने का पाप कर ही नहीं सकता। क्योंकि वह उसी को काटेगा। वही अपराध बन जाएगा उसका। अगर उसने सब उसके लिए नहीं छोड़ दिया है तो वह खुद ही सोचेगाः मैं खुद ही कुछ पकड़े बैठा हूं अभी, और अगर प्यारा न आए तो शिकायत क्या! सब छोड़ कर न आए तो शिकायत हो सकती है। तो हम गुहार मचा सकते हैं। तो हम चीख-पुकार मचा सकते हैं कि तेरे लिए सब लुटा दिया।

बहारें लुटा दीं, जवानी लुटा दी

तुम्हारे लिए जिंदगानी लुटा दी।

अब तो आओ! अब क्या कमी बची है? अब तो सुधि लो।

"पलटू जीयत तन त्याग दिया

उठी विरह की आगि है, जी।"

पलटू कहते हैं : ये जो गैरिक वस्त्र पहन लिए मैंने, यह जो संन्यस्त हो गया, यह जो विराग ले लिया--इसे कुछ ऐसा ही मत समझना... । आग लगी है! आग उठी है! विरह की आग जन्मी है!

ये गैरिक वस्त्र तो अग्नि के प्रतीक हैं।

"पलटू जीयत तन त्याग दिया।"

पलटू कहता हैः मैंने तो छोड़ ही दिया अपनी तरफ से तन। उस प्यारे को पाना है तो अब क्या पकडूं तन को! यह जीवन तो मेरी तरफ से गया; मेरे हाथ में अब इस जीवन की कोई पकड़ नहीं है। अब तो सारी ऊर्जा उसी की तरफ जा रही है। और एक लपट उठी है विरह की। अब उसके बिना एक पल नहीं कटता।

"दोउ नैन बने गिरि के झरना

उठी विरह की आगि है, जी।"

साहिब के दास कहाय यारो,

जगत की आस न राखिए, जी।"

कहते हैं कि मित्रो, साहिब के दास कहाय! कहते तो हो कि प्रभु के चरणों की आशा लगाए हैं; और फिर भी संसार में भी तुम्हारी आशा उलझी हुई है! कहते हो प्रभु को पाना है; और संसार को भी पाने में लगे रहते हो! कहते हो प्रभु की तरफ ही सारा जीवन बह रहा है; फिर भी संसार पर पकड़ बनी रहती है, पकड़ नहीं छूटती!

"साहिब के दास कहाय यारो,

जगत की आस न राखिए, जी।"

अब तो आशा जगत से छोड़ो। सारी आशा उसी पर आरोपित करो। जब सारी इच्छाएं और सारी आशाएं और सारी तृष्णाएं और सारी चाहत एक प्रबल धार बन जाती है वेगवान और परमात्मा की तरफ बहने लगती है, तभी मिलन है। ऐसे खंड-खंड रहोगे, एक हाथ यहां जा रहा है, एक हाथ वहां जा रहा है, एक धार यहां बह रही है, एक धार पूरब, एक पश्चिम; एक उत्तर, एक दक्षिण--तो तुम पहुंच न पाओगे सागर तक। सागर तक जाना हो तो एकजुट हो जाओ, एकाग्र हो जाओ। सारी आशाओं को उसी पर टिका दो। सारी आशाएं, जैसे किरणों को इकट्ठा एक जगह डाल दो तो आग पैदा हो जाती है, ऐसे ही जब सारी आशाएं समग्रीभूत रूप से परमात्मा पर आरोपित हो जाती हैं तो अग्नि पैदा होती है। अग्नि--जिसमें तुम जल जाओगे।

तुम, जो कि झूठे हो।

तुम, जो कि मिथ्या हो।

तुम, जो कि माया हो।

और फिर जो तुम्हारी राख में पड़ा हुआ जो शेष रह जाएगा--वही परम धन है, वही परमात्मा है, या कहो कि वही तुम्हारा असली रूप है। वही तुम असली हो।

एक नकली मैं है तुम्हारा और एक असली मैं। नकली मैं संसार में आशा रखता है; असली मैं परमात्मा में आशा रखता है।

"साहिब के दास कहाय यारो

जगत की आस न राखिए, जी।

समरथ स्वामी को जब पाया,

जगत से दीन न भाखिए, जी।।"

जब प्रभु की तरफ चल पड़े, जब सम्राटों का सम्राट तुम्हारी आंखों में आ गया, तो अब तुम संसार के सामने भीख मांगते हो! अभी भी संसार से आशा रखते हो कि कुछ मिल जाए! अभी भी कौड़ियां बटोरने का मन है! अभी भी सपने देख रहे हो!

"समरथ स्वामी को जब पाया

जगत से दीन न भाखिए, जी।"

अब छोड़ो यह दीनता। अब यह भिखमंगापन छोड़ो। यहां मांग तो लिया जन्मों-जन्मों तक, क्या पाया? भिक्षापात्र खाली का खाली है; जरा भी भरा नहीं। जितना मांगा, उतनी ही मांग बढ़ती गई। जितना चाहा, उतनी ही चाह प्रगाढ़ होती गई। यहां कोई भी चीज तो कभी तृप्त नहीं हुई। कभी कोई संतुष्ट नहीं हुआ।

"साहिब के घर में कौन कमी,

किस बात को अंते आखिए, जी।"

क्या तुम सोचते हो कि साहिब के घर में कुछ कमी है, कि तुम्हें इधर-उधर भी मांगना पड़ेगा? संसार के सामने भी भिक्षापात्र फैलाना पड़ेगा? तो तुम्हारा भरोसा ही नहीं है। तो तुम्हारे भीतर अभी श्रद्धा की परम घटना नहीं घटी। जब श्रद्धा की परम घटना घटती है तो साहब काफी है। वह देने वाला--आखिरी देने वाला--मिल गया। जिसने जीवन दिया, वही मिल गया। जिसने तुम्हें प्राण दिए, वही मिल गया उसके घर में सब है।

"साहिब के घर में कौन कमी

किस बात को अंते आखिए, जी।

पलटू जो दुख सुख लाख परै

वही नाम सुधा-रस चाखिए, जी।।"

और अगर सुख आएं, दुख आएं, तो डांवाडोल मत होना। तुम तो उसके नाम-रस को ही चखते जाना। तुम तो उसके नाम-रस में ही डुबकी मारते जाना। तुम तो पीए जाना प्याले पर प्याले उसके ही नाम-रस के। सुख आए तो भी रुकना मत। यह मत कहना कि अभी सुख आया, थोड़ा सुख भोग लूं, फिर राम को याद कर लूंगा। और दुख आए तो भी रुकना मत, कि जरा इस दुख से लड़ लूं, फिर राम को याद कर लूंगा। सुख आएं, आने दो; दुख आएं, आने दो। आने दो, जाने दो। तुम डूबे रहो--अपने रस में विमुग्ध।

"पलटू जो दुख सुख लाख परै,

वही नाम सुधा-रस चाखिए, जी।"

वे सुख-दुख भी सब परीक्षाएं हैं। उनसे गुजर-गुजर कर आदमी निखरता है। उनसे गुजर-गुजर कर आदमी सुघड़ता है। उनसे गुजर-गुजर कर आदमी के भीतर जो सही है, जो सच है, बचता है; और जो झूठ है, वह गिरता है।

सुख और दुख परीक्षाएं हैं। तुमने यह तो सुना होगा कि दुख परीक्षा है; तुमने यह नहीं सुना होगा कि सुख भी परीक्षा है। मैं तुमसे वह भी कह देता हूं। सुख भी परीक्षा है। लोग दुख को तो कहते हैं परीक्षा; और सुख को कहते हैं--फल, पुरस्कार। यह झूठी बात है। दुख को परीक्षा कहना अपने को समझाना है; सांत्वना देना है कि भगवान परीक्षा ले रहा है; गुजार दो, थोड़ी देर की बात है; अभी सुबह हुई जाती है; देखो ज्यादा देर नहीं है, थोड़ा और। दुख परीक्षा है, लोग कहते हैं, ताकि दुख की व्याख्या, परीक्षा हो जाए, तो झेलना आसान हो जाए। लेकिन सुख को नहीं कहते कि परीक्षा है। सुख को क्यों कहो परीक्षा? सुख को तो वे कहते हैं : पुण्यों का फल है; जो पीछे पुण्य किए थे, राम-नाम जपा था इतने दिन, उसका फल मिल रहा है, पुरस्कार मिल रहा है। सुख को तो पकड़ो जोर से।

लेकिन पलटू ठीक बात कहते हैं। वे कहते हैं--

"पलटू जो दुख सुख लाख परै।"

दुख आए कि सुख, दोनों को परीक्षा जानना। सुख भी परीक्षा है--और मेरे हिसाब से दुख से बड़ी परीक्षा है। क्योंकि दुख को तो कोई पकड़ना नहीं चाहता; सुख को लोग पकड़ना चाहते हैं। इसलिए सुख परीक्षा है। और जब तुम सुख को भी पकड़ते नहीं, तुम परमात्मा की धुन में लीन ही रहते हो, तुम सुख से कहते हो तू अपनी राह पर आ और जा, ऐसे सुख आते-जाते रहते हैं, मुझे अब रस नहीं है... । जब कोई गाली दे, तब शांत रह

जाना इतना कठिन नहीं है--जितना तब कठिन है जब कोई प्रशंसा कर जाए। गाली देते वक्त शांत रहने का तो अभ्यास करवाया गया है; कहा गया है कि गाली कोई दे, शांत रहना, अपने पर संयम रखना, यह सज्जन का लक्षण है। लेकिन जब कोई प्रशंसा कर जाए, फूलमाला पहना जाए, तब? तब तो किसी ने नहीं कहा है कि शांत रहना। क्योंकि शांत रहने की बात तो इसीलिए कही गई है कि गाली के कारण कोई झंझट खड़ी न हो, तुम गाली न दे दो, कोई झगड़ा-फसाद न हो जाए--तो सामाजिक व्यवस्था बिगड़ती है; इसलिए गाली कोई दे तो शांत रहना। यह सामाजिक शिक्षण है।

धार्मिक शिक्षण हैः कोई गाली दे कि कोई प्रशंसा करे, तुम्हारे भीतर तरंग पैदा न हो। कोई प्रतिक्रिया पैदा न हो। तुम निस्तरंग ही रहना। फूल कोई चढ़ा गया तो ठीक; कांटे कोई पहना गया तो ठीक। तुम दोनों हालत में वैसे के वैसे रहना जैसे इस घटना के पहले थे--फूल चढ़ाने के पहले, कांटे चढ़ाने के पहले; गाली के पहले, स्तुति के पहले। तुम जैसे थे उसमें कुछ भेद न आए। तुम संतुलित रहना। तुम थिर रहना।

"पलटू जो दुख सुख लाख परै

वही नाम सुधा-रस चाखिये, जी।"

तुम तो एक ही बात करना--उस प्रभु के रस में ही लीन रहना। धीरे-धीरे न दुख आएंगे, न सुख आएंगे। एक दिन तुम पाओगे : अब कोई भी नहीं आता; सिर्फ परमात्मा आता है। अब तुम्हारे दरवाजे और कोई आता ही नहीं; सिर्फ परमात्मा ही आता है। प्रतिपल नित नए रूप में आता है। मगर परमात्मा ही आता है।

"घर-घर से चुटकी मांगिके, जी

छुधा को चारा डारि दीजै।"

पलटू कहते हैं : शरीर को दो रोटी चाहिए, मांग लेना।

"घर-घर से चुटकी मांगिके, जी

क्षुधा को चारा डारि दीजै।

"फूटा इक तुम्बा पास राखौ

ओढ़न को चादर एक लीजै।।"

पलटू कहते हैंः इतना काफी है--एक चादर हो ओढ़ने को, एक फूटा तुंबा हो पास। दो रोटी की जब भूख लगे तो किसी से भी मांग लेना, कोई भी दे देगा।

"हाट-बाट महजित में सोए रहो।"

फिर बाजार हो, मंदिर हो कि मस्जिद, फिर कहीं भी सोए रहो।

"हाट-बाट महजित में सोए रहौ

दिन रात सतसंग का रस पीजै।"

पर एक बात ख्याल रखना कि सत्संग का रस चलता रहे। ये तो गौण बातें हैं। दो रोटी किसी से भी मांग लेना और डाल देना पेट में, भूख मिटा देना। चादर ओढ़ लेना कोई भी, शरीर की सुरक्षा हो जाएगी। सोने को पूछते हो तो कहीं मस्जिद में ही सो जाना, कि हाट-बाजार में सो जाना। इन छोटे से कामों के लिए सारे जीवन को संलग्न करने की जरूरत नहीं है। यह काम इतने महत्वपूर्ण नहीं।

लोग क्या करते हैं? लोग सारा जीवन एक ही बात में लगाते हैं कि कैसे मकान बनाएं, कैसे दुकान लगाएं। और आखिर में करते क्या हो? आखिर में एक चादर ओढ़ कर रात सो रहते हो। दो रोटी पेट में डाल कर क्षुधा मिट जाती है। फिर चाहे तुम सोने के पात्र में पानी पिओ या एक फूटे तुंबे में, न तो तुंबे से पानी और प्यास का कोई संबंध है, न सोने का पानी और प्यास से कोई संबंध है। प्यास का संबंध तो पानी से है। अब पानी तुंबे में है कि सोने के पात्र में, क्या फर्क पड़ता है! लेकिन लोग पानी की कम फिकर करते हैं, सोने के पात्र की ज्यादा

फिकर। जीवन लगा देते हैं। प्यासे, भूखे दौड़ते रहते हैं कि सोने का पात्र चाहिए। सोने का पात्र मिलेगा, तब उनकी प्यास बुझेगी। अब, सोने के पात्र से प्यास के बुझने का संबंध क्या है? प्यास पानी से बुझती है। एक फूटा तुंबा काफी है।

पलटू यह कह रहे हैं कि जीवन में जो जरूरी है, उसे पूरा कर लेना। मगर जरूरत के पीछे दीवाने होकर सदा मत दौड़ते रहना। कहीं ऐसा न हो कि परमात्मा को बिसार ही दो। तुंबे को सोने का पात्र बनाना है। छप्पर पर चांदी की छड़ें लगाना है। वस्त्रों में हीरे-जवाहरात टांकने हैं। ... तो तुम मतलब की बात ही भूल गए। तुम असली बात ही भूल गए कि वस्त्र तन को ढांकने को हैं; छप्पर वर्षा धूप से बचा लेने को है।

तुम अपने जीवन में झांकना। तुम्हारे जीवन में अक्सर यही होता है कि असार के लिए तुम ज्यादा शक्ति लगाए रखते हो। सार पर कोई शक्ति लगती ही नहीं। फिर अगर जीवन में विषाद आता है तो कौन जिम्मेवार है!

"ओढ़न को चादर एक लीजै,

छुधा को चारा डारि दीजै।"

ये तो बातें गौण हैं।

असली बात हैः "दिन रात सतसंग का रस पीजै।"

उसकी तलाश करो। वही है सोना। सत्संग है सोना। उसकी तलाश करो। जहां कोई जाग गया हो, उसकी खोज करो। जहां वाणी प्रभु की बरसती हो, उन चरणों को गहो। जहां उस प्यारे का नाम चलता हो, जहां उस प्यारे की कथा होती हो, जहां चार दीवाने बैठ कर गुनगुनाते हों, जहां चार मस्त नाचते हों प्रभु के रस में डूब कर--वहां खोजो। वहां जाओ। क्योंकि अंततः उसी से असली क्षुधा मिटेगी, असली प्यास बुझेगी। और उसी से असली चादर मिलेगी, जिसको तान कर तुम सदा के लिए विश्राम में डूब जाओगे। गिरह हमारा सुन्न में अनहद में विसराम!

"पलटू उदास रहौ जक्त से ती,

पहिले वैराग यही भांति कीजै।"

पलटू कहते हैंः वैराग्य का पहला कदम है कि संसार में अब आशा नहीं रही। देख लिया; जो मिलता था मिल गया, जान लिया, पहचान लिया। अब आशा संसार की तरफ नहीं बहती है। एक बात साफ हो गई कि यहां कुछ-कुछ मिल सकता है, लेकिन कुछ-कुछ से मन नहीं भरता। यहां क्षणभंगुर मिल सकता है, लेकिन क्षणभंगुर से तृप्ति नहीं होती। यहां सपने मिलते हैं, छायाएं बिकती हैं, प्रतिबिंब बिकते हैं; लेकिन असली का पता नहीं चलता।

संसार ऐसे है जैसे चांद झील में प्रतिबिंब बनाता है। सुंदर लगता है। अगर झील के किनारे बैठ कर देखते रहो तो बड़ा सुंदर लगता है चांद। फिर अगर उतर जाओ झील में और डुबकी मारो चांद को पकड़ने को तो मुश्किल में पड़ोगे। और ऐसा भी नहीं है कि वह जो झील में चांद दिखाई पड़ता है, उसका असली चांद से कोई संबंध नहीं है--असली चांद से संबंध है। असली चांद के बिना वह प्रतिबिंब बन ही नहीं सकता।

जब किसी स्त्री के चेहरे पर तुम्हें कोई चमक दिखाई पड़ी है तो वह झील में पड़ी चांद की चमक है। और जब किसी पुरुष की आंखों में तुम्हें ओज दिखाई पड़ा है तो वह असली चांद की झील में पड़ी हुई चमक है। जब किसी की वाणी में तुम्हें सत्य का स्वर मालूम पड़ा है तो वह चांद की पानी में पड़ी झलक है। झलक को समझ कर चांद की खोज में निकलो। डुबकी लगा कर झील में डूबने से चांद न मिलेगा। चांद मिलना तो दूर, वह जो चांद का प्रतिबिंब बन रहा था, वह भी खो जाएगा। डुबकी मारोगे तो पानी हिल जाएगा, सब गड़बड़ हो जाएगा।

इसलिए संसार में जो जितने भागते हैं उतने ही दूर निकलते जाते हैं--झील में डुबकी मार रहे हैं। बड़ा अभ्यास करते हैं डुबकी मारने का। नीचे जाकर कुछ नहीं पाते हैं; रेत हाथ लगती है। चांद तो मिलता ही नहीं; लोग डुबकी मार-मार कर श्वास रोके हुए झीलों में चले जा रहे हैं। प्राण संकट में पड़े हैं। मगर सोचते हैं कि

शायद थोड़ा और खोज लें, कहीं चांद पड़ा हो। वह चांद जो चमकता हुआ दिखाई पड़ा था किनारे से, वह चांद कहीं है। लेकिन वह चांद झील में नहीं है।

परमात्मा कहीं है। और परमात्मा की झलक संसार में पड़ती है। संसार झील है।

तो पलटू कहते हैं--

"पलटू उदास रहो जक्त सेती।"

यह जगत के प्रति अब आशा छोड़ दो--यह पहला पाठ वैराग्य का। "पहले वैराग्य यही भांति कीजै।"

"छुधा को चारा डारि दीजै
ओढ़न को चादर एक लीजै।
दिन रात सतसंग का रस पीजै
पहिले वैराग्य यहि भांती कीजै।।"

शुरू-शुरू इतना भी हो जाए तो बहुत।

दिल दिल से मिल सके, ये बड़ी बात है मगर
फिलहाल यह दुआ है नजर से नजर मिले।

एकदम दिल से दिल मिलाने की बातें मत करो।

दिल से दिल मिल सके, ये बड़ी बात है मगर
फिलहाल यह दुआ है नजर से नजर मिले।

अभी तो आंख से आंख मिल जाए तो बहुत। अभी तो क्षण भर को आंख से आंख मिल जाए तो बहुत। फिर आंख से आंख मिल गई तो दिल से दिल भी मिलेगा। ज्यादा दूर नहीं है। दिल आंख के बहुत पास है। दिल आंख से जुड़ा है।

इसलिए तो हम साधारणतः अजनबियों से आंख नहीं मिलाते। अजनबी से हम दिल ही नहीं मिलाना चाहते तो आंख क्यों मिलाएंगे! आंख से आंख तो हम उसी से मिलाते हैं जिससे गहरा प्रेम हो--उसी की आंख में झांकते हैं। क्योंकि आंख के ठीक पीछे हृदय है। अगर दो आंखें शांत भाव से मिल जाएं तो दोनों हृदयों के द्वार खुल जाते हैं। वह अगला कदम है।

"दिन-रात सतसंग का रस पीजै।"

क्या है सत्संग का रस? सत्संग का रस हैः जहां बैठ कर उस परम प्यारे की याद आए, सहज आए। जहां और दूसरी बात ही न चलती हो। जहां की हवा में उसी का गुणगान हो। जहां उसी की विरह की बातें होती हों। जहां दीवाने रोते हों। जहां लोग उसी की मस्ती में डोलते हों।

सत्संग का अर्थ है : विरह की रात्रि। अकेले में तुम भूल जाओ, भूल जाने की संभावना है। जन्मों-जन्मों से सोए रहे हो, अकेले में शायद सो जाओ। संग साथ में सो न पाओगे। तुम सोओगे तो कोई दूसरा जागेगा। कोई दूसरा जागेगा तो तुम्हें जगाए रखेगा। वह दूसरा सोने लगेगा तो तुम जागोगे, तुम उसे जगाए रखोगे। ऐसे जागते-जागते यह विरह की रात गुजर जाए। फिर जिस दिन परमात्मा से मिलन होता है, उस दिन पता चलता है कि वे विरह की रातें भी बड़ी अदभुत थीं, बड़ी प्यारी थीं। लौट कर देखने पर पता चलता है, क्योंकि उनकी विरह की रातों में यद्यपि परमात्मा नहीं था, लेकिन परमात्मा की याद तो थी! परमात्मा दूर रहा हो, लेकिन हृदय तो उसी के लिए पुकारता था। जैसे चातक पुकारता, स्वाती की बूंद के लिए प्रतीक्षा करता। जैसे पपीहा चिल्लाता--पी कहां, पी कहां, पी कहां!

तेरे फिराक की रातें कभी न भूलेंगी
मजे मिले इन्हीं रातों में उम्र भर के मुझे।

मगर यह लौट कर ही पता चलता है जब फिराक की रात होती है, जब विरह की रात होती है, तब तो आंसू ही बहते हैं। यह तो लौट कर पता चलता है कि तेरी याद में भी जो दिन गुजरे, वे भी बड़े प्यारे थे। तेरी याद में गुजरे, तो प्यारे ही थे! तुझे जिन दिनों याद न किया, वे ही दिन बेकार गए। जब तुझे भूले रहे, वे ही दिन

बेकार गए। कभी धन में भूले, कभी पद में भूले, कभी कुछ और में भूले--जो दिन तेरी याद में न गुजरे वे बेकार गए। जो तेरे रोने में बीते, जब तेरे लिए आंसू गिरे और जब हृदय तेरे लिए जार-जार हुआ... ।

तेरे फिराक की रातें कभी न भूलेंगी
मजे मिले इन्हीं रातों में उम्र भर के मुझे।

"जब मैं नाहीं तब वह आया,

मैं, ना वह, यह कौन मानै।

गूंगे ने गुड़ खाइ लिया,

जबान बिना क्या सिफत आनै।।
दरियाव और लहर तो दोय नाहीं।
समा और रोशनी कौन छानै।

पलटू भगवान की गति न्यारी,

भगवान की गति भगवान जानै।।"

इस अंतिम वचन पर हम पूरा करते हैं। यह अपूर्व वचन है।

समझोः "जब मैं नाहीं तब वह आया।"

जब मैं-भाव जाता है तभी वह आता है। असल में यह कहना ठीक नहीं कि वह आता है। मैं-भाव के कारण छिपा पड़ा रहता है; मैं-भाव गया कि प्रकट हो जाता है। मैं-भाव ऐसे ही है, जैसे बीज पर चढ़ी खोल। खोल टूटती है तो बीज उमगने लगता है। मैं-भाव के जाने पर वह आता है, यह तो कहना पड़ता है भाषा में। यह भाषा की मजबूरी है। कहां उसका आना, कहां उसका जाना! कहां आएगा, कहां से आएगा, कहां जाएगा? सब जगह वही है। बस वही है; और तो कुछ भी नहीं है। तुम्हारे भीतर भी वही बैठा है--इस क्षण भी वही बैठा है। मगर तुम्हारा मैं-भाव आंखों में चढ़ा है। तुम मैं के मद में डूबे हो। तुम कहते होः मैं, मैं, मैं! इस मैं की गुहार के कारण जो तुम्हारे भीतर पड़ा है, दिखाई नहीं पड़ता। इस मैं की धुंध में खो गया है। सूरज तो निकला है, लेकिन मैं के बादलों में खो गया है। मिट नहीं गया। और जब मैं के बादल चले जाएंगे तो कहीं से आएगा भी नहीं, था ही।

परमात्मा का अर्थ ही वही होता है जो सदा है; शाश्वत है; नित्य है; न आता, न जाता; न आ सकता, न जा सकता। उसके अतिरिक्त कोई स्थान भी नहीं जहां चला जाए। लेकिन हमारी आंखें धुंध से भरी हो सकती हैं, हम भीतर देखें ही न।

मैं-भाव बाहर देखता है। मैं-भाव बहिर्गामी है। क्योंकि मैं की तृप्ति बाहर है। मैं की आकांक्षा बाहर है। मैं कहता हैः धन चाहिए, ज्यादा धन चाहिए! जितना ज्यादा धन होगा, उतना ही मैं मजबूत हो सकेगा। गरीब का मैं कैसे मजबूत हो?

पास क्या है उसके? अमीर का मैं ज्यादा मजबूत हो जाता है।

मैं कहता हैः बड़ा पद चाहिए। यह क्या--चपरासी बने रहे! राष्ट्रपति होना है!

मैं-भाव कहता हैः कुछ खोजो। कहीं चलो।

मैं-भाव में महत्वाकांक्षा छिपी है। महत्वाकांक्षा तो बाहर ही पूरी होगी। और बाहर भी कहां पूरी होती है; बस पूरी होती लगती है, पूरी कभी नहीं होती। एक जगह पहुंचे, आगे दिखाई पड़ने लगता है कि वहां चलें, शायद वहां हो। ऐसे दौड़ता आदमी मृग-मरीचिका में। महत्वाकांक्षा यानी मृग-मरीचिका। और जिसकी तलाश चल रही है, वह भीतर मौजूद है। कस्तूरी कुंडल बसै! वह जो भाग रहा है हरिण, पागल होकर भाग रहा है कस्तूरा, उसके नाभि में कस्तूरी पड़ी है। इसीलिए तो उसका नाम कस्तूरा है। उसकी नाभि में कस्तूरी पड़ी है। उसी की नाभि से उठती है कस्तूरी की गंध। उसी की नाक से उठती है कस्तूरी की गंध। उसी की श्वास से उठती

है कस्तूरी की गंध। चारों तरफ फैलती है वह दीवाना हो जाता है। वह खोजता है--कहां से आ रही है, कहां से आ रही है! भागता है।

ऐसी ही दशा आदमी की है। जिसकी तुम तलाश कर रहे हो, वह तुम्हारे घर में बैठा है। जिसे तुम खोजने निकले हो, उसे खोजने जाने की जरूरत ही नहीं है। जिसे तुम खोजने निकले हो, वह खोजने वाले में छिपा है। तो जब तक यह खोजने वाला रहेगा और खोज रहेगी, तब तक तुम उसे न पा सकोगे। जब तक यह मैं रहेगा, तब तक तुम चूकते चले जाओगे। यह मैं चुकाता है।

पलटू कहते हैंः मेरी कौन मानेगा!

पलटू कहते हैंः "जब मैं नाहीं तब वह आया।"

मैं, ना वह, यह कौन माने।"

कौन मेरी मानेगा कि जब तक मैं था, तब तक वह नहीं था; और अब वह है मैं नहीं हूं।

हमारा मन कहेगाः यह तो फिर कुछ बड़ा मिलन न हुआ, यह तो बड़ा अजीब सा मिलन हुआ। यह तो बड़ी विचित्र स्थिति हुई। हम तो खोजने निकले थे। अगर हम खो ही गए तो फायदा भी क्या!

बुद्ध से लोग आकर बार-बार पूछते थे कि आप कहते हैं उस परम दशा में सब शून्य हो जाएगा, मैं भी शून्य हो जाऊंगा? बुद्ध कहतेः निश्चय ही, वहां सब शून्य हो जाएगा, तुम भी नहीं रहोगे, वहां सन्नाटा होगा। तो लोग कहतेः फिर ऐसे सन्नाटे को खोजने की जरूरत क्या! यह भी आप अजीब सी बात बताते हैं। इसको ही खोजने में जीवन लगाना है? अपने को गंवाने के लिए? इससे तो यहां क्या बुरे हैं? कुछ तो हैं! बुरे भले जैसे हैं, हैं तो!

आदमी की जीवेषणा बड़ी गहरी है। आदमी कहता हैः नरक में भी रह लेंगे, मगर होना चाहिए। कम से कम बचूं। स्वर्ग की भी आकांक्षा नहीं है, अगर मिट कर मिलता हो। और अड़चन यही है, गणित यही है जीवन काः यहां जो भी मिलता है, मिट कर मिलता है। जब तुम खो जाते हो।

मगर समझना, खो जाने का मतलब यह नहीं होता कि तुम न ही हो गए, नकार हो गए। नहीं; खो जाने का इतना ही अर्थ होता हैः शोरगुल न रहा। खो जाने का इतना ही अर्थ होता हैः अस्तित्व तो रहा, मैं-भाव न रहा। खो जाने का इतना ही अर्थ होता है जैसे नदी सागर में उतर जाती है, तो खो थोड़ी गई है। है तो अब भी। अब विराट हो गई। अब सागर के साथ एक हो गई।

खो जाने में विराट हो जाना छिपा है। छोटापन खो गया। सरितापन खो गया, सागरपन आ गया। अहंकार खो जाता है, ब्रह्मभाव आ जाता है।

वही तो मंसूर ने कहाः "अनलहक! मैं परमात्मा हूं।" वही उपनिषदों ने कहाः अहं-ब्रह्मास्मि! मैं ब्रह्म हूं!

लेकिन ख्याल रखना, इस मैं का अर्थ तुम्हारे मैं जैसा नहीं है। यह केवल भाषा में कहने की बात है। ब्रह्म हूं मैं, ऐसा कहने वाला ऋषि केवल इतना ही कह रहा हैः अब मैं नहीं हूं, ब्रह्म है। वही "अनलहक" कह रहा है। वही अनलहक में कहा गया है। सत्य है, हक है, परमात्मा है--मैं नहीं हूं।

मंसूर की बात लोग समझ न पाए। सूली पर चढ़ा दिया। मंसूर हंसता हुआ मरा। मंसूर था ही नहीं, नहीं तो चिंता पैदा होती। मंसूर को जब सूली लगी तो मंसूर ने यही कहा कि तुम जिसे मार रहे हो, वह तो बहुत पहले मर चुका है। तुम किसे मार रहे हो? और जो अब है उसे तो मारा नहीं जा सकता। वह तो अमृतधर्मा है। मगर कौन सुने! लोग बहरे हैं। और लोग अंधे हैं। और लोग बहरे और अंधे ही होते तो भी ठीक था--लोग हृदयहीन हैं।

"जब मैं नहीं तब वह आया,

मैं, ना वह, यह कौन मानै।

गूंगे ने गुड़ खाई लिया

जबान बिना क्या सिफत आनै।।"

और पलटू कहते हैंः मेरी भी बड़ी मुश्किल है। लोग मुझसे पूछते हैं कि कुछ कहो, कुछ समझाओ, हमारी समझ में नहीं आता : अब मैं कैसे समझाऊं!

"गूंगे ने गुड़ खा लिया।"

गुड़ तो मैंने खा लिया, स्वाद भी मैंने जान लिया। लेकिन जबान कहां है जो उस स्वाद को कह दे! शब्द कहां हैं जो उस निःशब्द को बांध ले! भाषा कहां है जो उस अनिर्वचनीय को प्रकट करे! जबान नहीं है।

परमात्मा को जान कर सभी गूंगे हो जाते हैं। और ऐसा नहीं कि वे नहीं बोलते--बोलते हैं। लेकिन जो भी बोलते हैं, वह बस करीब-करीब आता है, लेकिन पूरा-पूरा सत्य नहीं होता। हो नहीं सकता। थोड़ी-थोड़ी उसमें झलक हो सकती है। इशारे!

ज्यादा से ज्यादा क्या है संतों का कहना? संत ने गुड़ खा लिया। वह मस्त हो रहा है। वह उस मधु-रस में डूब रहा है। वह नाच रहा है। तुम उससे पूछते हो कि कुछ कहो। वह कुछ कहता भी है। करुणा है तो कहता है। तुम्हें समझाने की कोशिश करता है। लेकिन वह जानता है कि तुम समझ न पाओगे। क्योंकि वह जानता है कि अगर किसी और ने भी उसे जानने के पहले जनाया होता, तो वह भी नहीं मानता। क्योंकि वह जानता है कि दूसरों ने यही बातें पहले उससे भी कही थीं और उसकी भी समझ में न पड़ी थीं। वह भलीभांति जानता है कि वह भी संदेह से भरा रहा था।

जब तक स्वाद न आए, संदेह जाता ही नहीं। इसलिए एक बात तो साफ है कि लोग मानेंगे नहीं। या तो लोग समझेंगे पागल हो गया या लोग समझेंगे धूर्त है, धोखा दे रहा है।

संतों के बाबत लोगों की दो ही धारणाएं होती हैं--या तो धूर्त, कि धोखा दे रहा है; या पागल, दीवाना हो गया, होश खो दिया। कुछ भी बक रहा है--अनर्गल, असंगत। अब इसमें कुछ अर्थ नहीं है। और लोग भी मजबूर हैं। ऐसा कहना उन्हें पड़ता है। क्योंकि जो संत कहता है, वह भाषा में नहीं आता। फिर भी भाषा में कहने की कोशिश करता है। समाता नहीं, अटता नहीं, शब्द छोटे पड़ जाते हैं, ओछे पड़ जाते हैं। जैसे कोई छोटी सी मुट्ठी में सारे आकाश को रखने चला हो। अब मुट्ठी छोटी पड़ जाए तो आश्चर्य क्या! आकाश इतना विराट, शब्द तो मुट्ठी से भी छोटे हैं।

"गूंगे ने गुड़ खाई लिया।

जबान बिना क्या सिफत आनै।"

और जबान खो गई। गुड़ क्या खाया, उसी में जबान खो गई। जब तक तुम जानते नहीं, तब तक बोलना बहुत आसान है। जिस दिन जानोगे, उस दिन बड़ी मुश्किल हो जाती है। जिस दिन जानोगे उस दिन पाओगे कि अरे, जब तक पता नहीं था, तब तक कितनी सुविधा से बोल लेते थे! एक संगति थी बोलने में, एक तर्क, एक व्यवस्था थी, बल था, जरा भी झिझक न थी। जानने के बाद एक-एक शब्द पर झिझकने लगते हो। जानने के बाद एक-एक शब्द को तौलते हो--यह शब्द काम देगा कि नहीं देगा! और हर शब्द का उपयोग करके पाते हो; चूक गए। फिर चूक गए। फिर-फिर कहने की कोशिश होती है।

संत अगर इतना दोहराते हैं तो उसका कारण तुम समझ लेना। उसका कारण केवल इतना ही है : एक बार चूक जाते हैं, फिर से कहते हैं; फिर भी चूक जाते हैं, फिर से कहते हैं। कहना तो वही है, और चूकते ही चले जाते हैं। संतों को वही समझ पाते हैं जो अपनी जबान खोने को तैयार हैं--जो खुद भी गूंगे होने को तैयार हैं; जो खुद भी चुप होने को तैयार हैं; जो कहते हैं, हम भी शून्य हो जाएंगे, हम शून्य से ही शून्य को जोड़ेंगे। लेकिन जिनकी जिद्द है कि जब तक भाषा के द्वारा हमें समझाया न जाएगा और जब तक भाषा के द्वारा सिद्ध न किया जाएगा, जब तक भाषा के और तर्क के प्रमाण न दिए जाएंगे, तब तक हम इंच भर न सरकेंगे--उन पर वर्षा होती रहती है संतों की, वे उलटे घड़े की तरह पड़े रहते हैं। वे कभी नहीं भरते हैं।

"गूंगे ने गुड़ खाई लिया

जबान बिना क्या सिफत आनै
दरियाव और लहर तो दोय नाहीं।"

सागर और सागर की लहर दो तो नहीं हैं। ऐसे पलटू कहते हैंः अब मैं और वह परमात्मा दो नहीं हैं। मैं तो गया। मैं तो पिघल गया। मैं तो खो गया। मैं तो अब नहीं हूं--सागर ही है।

"दरियाव और लहर तो दोय नाहीं,

समा और रोशनी कौन छानै।"

और अब छानो भी कैसे कि शमा कौन और रोशनी कौन! कहां रोशनी समाप्त होती है, कहां शमा शुरू होती है! कहां शमा समाप्त होती है, कहां रोशनी शुरू होती है! दोनों जुड़े हैं, संयुक्त हैं, इकट्ठे हैं। इतने इकट्ठे हैं कि अलग-अलग होते ही नहीं।

इसलिए पलटू कहते हैं : अब मैं क्या कहूं! मैं कौन और परमात्मा कौन! अब भक्त और भगवान दो न रहे।

अगर ज्ञान के मार्ग से चलते हो तो ज्ञानी बचा। क्योंकि भगवान ज्ञानी में डूब गया, भगवान ध्यानी में लीन हो गया। अगर भक्ति के मार्ग से चलते हो तो भगवान बचा, भक्त भगवान में डूब गया। मगर क्या फर्क पड़ता है, बात एक ही है।

कबीर ने कहा हैः

"हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।

बुंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाई।।"

बूंद सागर में खो गई, अब उसे वापस कैसे निकालें! और कबीर ने दूसरा वचन भी कहा है कि--

"हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।

समुंद समाना बुंद में, सो कत हेरी जाई।।"

और समुद्र बूंद में समा गया, अब उसको कैसे निकालें! ये दोनों वचन भक्ति और ज्ञान के प्रतीक-वचन हैं। भक्ति का अर्थ होता है : बूंद सागर में समा गई।

भक्त खो गया, भगवान बचा। ज्ञान का अर्थ होता है : सागर बूंद में समा गया। भगवान खो गया, ध्यानी बचा।

इसलिए महावीर और बुद्ध ने भगवान की बात नहीं की। वे ध्यानी हैं। मीरा, चैतन्य, पलटू, कबीर, नानक, भगवान की बात कहे। वे भक्त हैं। मगर दोनों की बात में जरा भी फर्क नहीं। जरा भी फर्क नहीं है! क्या फर्क पड़ता है! एक बूंद सागर में गिरा दो, फिर तुम जो चाहो कहो--तुम कहो कि बूंद सागर में समा गई या चाहो तो कहो कि सागर बूंद में समा गया। ये तो कहने के ही फर्क हुए।

अंतिम स्थिति में ध्यान और प्रेम एक ही जगह ले आते हैं। मगर चूंकि जीवन भर एक खास ढंग की भाषा का अभ्यास किया, यह अंतिम अनुभव भी अलग-अलग ढंग से कहा जाता है। महावीर कहते हैं : आत्मा ही बची, कोई परमात्मा नहीं। यह आत्मा की परम दशा ही परमात्मा है; कोई और परमात्मा नहीं।

पलटू कहते हैंः तू ही बचा, अब मैं नहीं।

दरियाव और लहर तो दोय नाहीं,

समा और रोशनी कौन छानै।

पलटू भगवान की गति न्यारी।

फिर पलटू कहते हैं कि फिर मैं सीधा-सादा आदमी। पलटू निरगुन बनिया! मैं राम का मोदी। मेरी कोई ज्यादा पकड़ भी शब्दों पर नहीं है; भाषा का कोई बहुत बड़ा ज्ञाता भी नहीं हूं। सीधा-सादा सामान्य सा आदमी हूं। यह परमात्मा की परमगति मैं कैसे कहूं!

"पलटू भगवान की गति न्यारी।"

और यह वचन इतना प्यारा हैः

"भगवान की गति भगवान जानै।"

पलटू कहते हैंः उन्हीं से पूछ लेना। उन्हीं से मिल लेना। और ज्यादा जानकारी चाहिए हो तो मालिक से, साहब से ही मिल लेना। मुझ चौकीदार को ज्यादा मत सताओ। मैं तो दरवाजे पर पहरा दे रहा हूं। जितना जानता था कह दिया।

मैंने सुना एक घर में नई-नई एक नौकरानी रखी गई। बुहारी लगाती थी कि तभी फोन आया। फोन आया तो उसने फोन उठाया और कहाः हल्लो। दूसरी तरफ से पूछा गयाः कौन है? डाक्टर साहब घर में हैं, नहीं हैं? मैं फलां-फलां बोल रहा हूं। लेकिन सन्नाटा रहा। उसने पूछाः भाई बोलते क्यों नहीं? बात क्या है? चुप क्यों हो गए?

उस नौकरानी ने कहा कि जितना मैं जानती थी उतना बोल चुकी--हल्लो! इससे ज्यादा मुझे कुछ पता नहीं है। नई-नई हूं। इस भाषा से भी परिचित नहीं हूं, फोन भी पहली दफे पकड़ा है। इस घर के बाबत भी मेरी कोई ज्यादा जानकारी नहीं।

उसने कहाः जितना मैं जानती थी बोल ही चुकी--हल्लो! बस उतना ही जानती थी।

ऐसा पलटू कहते हैं कि अब मुझे मत पूछो। साहब से ही मिल लो। स्वाद ही ले लो। यह मालिक का दरवाजा खोल दिया; मैं तो चौकीदार हूं, यह दरवाजा खोल कर खड़ा हूं, निमंत्रण दे दिया कि आ जाओ। ज्यादा पूछताछ में समय मत गंवाओ। मालिक भीतर है।

"पलटू भगवान की गति न्यारी,
भगवान की गति भगवान जानै।"

आज इतना ही।